संवर्ग–1 जीवन विज्ञान : परिचय

इकाई–1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, स्वरूप, परिभाषा, दृष्टिकोण, लक्ष्य एवं उद्देश्य

इकाई की संरचना

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 जीवन मूल्यों का प्रशिक्षण

1.3. जीवन विज्ञान का इतिहास

1.3.1 अणुव्रत आन्दोलन – प्रथम चरण

1.3.2 शिक्षा जगत और अणुव्रत

1.3.3 प्रेक्षाध्यान – दूरारा चरण

1.3.4 अध्यापक प्रशिक्षक प्रशिक्षण शिविर

1.3.5 जीवन विज्ञान का नामकरण

1.4 जीवन विज्ञान का स्वरूप

1.4 .1 जीवन विज्ञान – नयी विद्या शाखा

1.4 .2 जीवन विज्ञान – नियमों की खोज

1.4 .3 जीवन विज्ञान – समन्वित पद्धति

1.4 .4 जीवन विज्ञान का हृदय

1.4 .5 जीवन विज्ञान के आयाम

1.5 जीवन विज्ञान की प्रकृति

1.6 जीवन विज्ञान की परिभाषा

1.6.1 जीवन विज्ञान विभिन्न दृष्टियों में

1.7 जीवन विज्ञान का दृष्टिकोण

1.7.1 जीवन विज्ञान के परिप्रेक्ष्य का अर्थ

1.8 जीवन विज्ञान के लक्ष्य

1.9 जीवन विज्ञान के उद्देश्य

1.10 सारांश

1.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.12 संदर्भ ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.0 प्रस्तावना

मनुष्य में चेतना है। जानने की क्षमता है। जिज्ञासा वृति है। वह अपने आस–पास प्रकृति को जानने के लिए सदैव उत्सुक रहा है। इससे ज्ञान–विज्ञान के नये–नये विषयों तथा विद्या शाखाओं का विकास हुआ। उसने इन विद्या शाखाओं के माध्यम से निरन्तर अपने ज्ञान में वृद्धि की। इसी क्रम में जीवन में गिरते हुए मूल्यों और उससे उत्पन्न समस्याओं के प्रति भी मनीषियों का ध्यान आकर्षित हुआ। गम्भीर चिन्तन–मन्थन हुआ। समाधान के रूप में जीवन विज्ञान विषय का जन्म हुआ। इसका इतिहास बहुत पुराना नहीं है। जीवन विज्ञान विषय की उत्पत्ति का श्रेय प्रसिद्ध दार्शनिक एवं अध्यात्म योगी आचार्य महाप्रज्ञ को है। उन्होंने 28 दिसबर 1978 को इस नये विषय का नामकरण किया।

शास्त्रीय अध्ययन सामान्य से विशेष की ओर होता है। जीवन विज्ञान को समझने से पहले उसके सामान्य सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है। वे सामान्य सिद्धान्त उन सभी विशेष तथ्यों की पृष्ठ भूमि हैं। उदाहरण के लिए जीवन विज्ञान में जीवन मूल्यों के विकास के लिए वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग किया जाता है। जीवन विज्ञान में यह वैज्ञानिक पद्धति क्या है? जीवन विज्ञान एक विज्ञान विषय का व्यवस्थित अध्ययन है। जीवन विज्ञान का विषय क्या है? उसका दृष्टिकोण क्या है? उसका क्षेत्र क्या है? ये सब परस्पर सम्बन्धित प्रश्न विशेष अध्ययन के पूर्व विचारणीय हैं। क्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक ज्ञान का जीवन में मूल्य होता है तथा व्यावहारिक जीवन में उसकी क्या उपयोगिता है– आदि प्रश्न स्वाभाविक ही हैं। प्रस्तुत इकाई–1 में जीवन विज्ञान के सामान्य सिद्धांत, उसके अर्थ, परिभाषा, प्रकृति, दृष्टिकोण, लक्ष्य तथा उद्देश्यों का विवेचन किया जाएगा। जीवन विज्ञान क्या है? उसका क्या अर्थ है? इन प्रश्नों का उत्तर भिन्न–भिन्न समय में भिन्न–भिन्न प्रकार से दिया गया है। जीवन विज्ञान के कार्यों के विस्तार के साथ इसके अर्थ का दायरा भी बदलता एवं बढ़ता गया। अतः जीवन विज्ञान के अर्थ को जानने के लिए उसका पिछला इतिहास भी जान लेना आवश्यक है। इससे जीवन विज्ञान के क्षेत्र पर भी प्रकाश पड़ेगा। किसी भी विज्ञान का अर्थ निश्चित करने के लिए शाब्दिक अर्थ के साथ–साथ उसके इतिहास, प्रकृति, क्षेत्र, पद्धति आदि सभी का ज्ञान आवश्यक होता है। अतः जीवन विज्ञान की सही अवधारणा तो विद्यार्थी को इस सम्पूर्ण पत्र को पढ़ने के बाद ही ज्ञात होगी। फिर भी वैज्ञानिक अध्ययन में किसी भी विज्ञान का अध्ययन करने से पहले उसका अर्थ निश्चित करना भी आवश्यक है। यह एक विरोधाभास (Paradox) है। जीवन विज्ञान का अर्थ निश्चित किये बिना उसका अध्ययन नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर जीवन विज्ञान का अध्ययन किए बिना उसका ठीक–ठीक अर्थ पूरी तरह समझ में नहीं आ सकता। इस समस्या को कैसे सुलझाया जाये –इसके लिए दोनों ओर से चलना पड़ेगा। प्रस्तुत अध्याय में अस्थायी रूप में से जीवन विज्ञान का अर्थ निश्चित किया जायेगा। फिर विभिन्न पाठों में जीवन विज्ञान के विभिन्न पहलुओं का परिचय दिया जाएगा जिससे अन्त तक पहुंचते–पहुंचते विद्यार्थी को जीवन विज्ञान की मूल रूपरेखा स्पष्ट हो जाये।

1.1 उद्देश्य

व्यक्ति अपनी शक्तियों एवं क्षमताओं के बारे में बहुत कम जानता है। इस कारण वह अपनी क्षमताओं का पूरा उपयोग नहीं कर पाता है। जिसकी वजह से कई बार उसे कष्टदायक परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है। जीवन विज्ञान विषय हमें अपनी शक्तियों से परिचित करवाता है। प्रस्तुत पाठ में आप जीवन विज्ञान का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। इस पाठ के माध्यम से आप जान पायेंगे कि–

क्या जीवन मूल्यों का प्रशिक्षण संभव है?

जीवन विज्ञान का विकास कैसे हुआ?

जीवन विज्ञान के अन्तर्गत किन–किन बातों का समावेश है?

जीवन विज्ञान विषय कला है या विज्ञान?

जीवन विज्ञान किस दृष्टिकोण से जीवन का अध्ययन करता है?

जीवन विज्ञान के उद्देश्य क्या हैं? यह क्या करना चाहता है तथा इसके लक्ष्य क्या हैं?

1.2 जीवन–मूल्यों का प्रशिक्षण

मनुष्य के पास विवेक चेतना है। तर्क शील मस्तिष्क है। वह इनके आधार पर सब की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानदण्ड व मूल्यों का निर्धारण करता है। इससे समाज में सुव्यवस्था, पारस्परिक विश्वास व सौहार्द बना रहता है। जिस समाज में अधिकाधिक व्यक्ति मानदण्ड व मूल्यों का अनुसरण करते हैं वह समाज स्वस्थ, सुसंस्कृत व शक्तिशाली होता है। इसके ठीक विपरीत जिस समाज में अधिकांश व्यक्ति मूल्यों की अवहेलना करते है उस समाज की व्यवस्थाएं ठीक से नहीं चल सकती। आपसी विश्वास समाप्त हो जाता है। भय, आशंका, निरंकुशता और विद्रोह जैसे भाव परस्पर पनपने लगते हैं।

एक बार की बात है। एक घी बेचने वाला ग्वाला घी का डब्बा लेकर बाजार पहुंचा। एक सुनार के पास गया। घी का डब्बा देकर उससे कुछ आभूषण खरीद लिए। वह आभूषण लेकर घर लौटा। अपनी पत्नी को दिखाते हुए बड़ी प्रसन्न मुद्रा में बोला–''मैंने आज सुनार को ठग लिया। घी के बर्तन में घी तो केवल ऊपर–ऊपर था। नीचे तो केवल गोबर था। सुनार को मैंने वह बेचकर तुम्हारे लिए आभूषण ले आया हूं।'' पत्नी ने तपाक से पूछा–'' आभूषण नकली है या असली।'' ग्वाला ने अपने पास के ही सुनार से उसकी जांच करवाई। वे सारे आभूषण भी नकली थे। ऊपर–ऊपर सोने–चांदी का पालिश था। नीचे केवल तांबा था। प्रश्न है किसने किसको ठगा? जिस समाज के अधिकांश, व्यक्ति, समूह या संस्थाएं इस प्रकार का आचरण करने लगती हैं क्या उस समाज में शांन्ति, सौहार्द व निर्भयता रह सकती है? आज शाश्वत जीवन–मूल्यों का ह्रास जिस प्रकार से हो रहा है वह किसी से छुपा नहीं है। सामाजिक जीवन का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रत्येक क्षेत्र– शिक्षा, चिकित्सा, प्रशासन, राजनीति, व्यवसाय एवं उद्योग, न्याय एवं विधि आदि सभी इस समस्या से आक्रान्त हो रहे हैं। इसके प्रतिकूल प्रभाव व्यक्ति के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ रहे हैं। परिवार टूट रहे हैं। समाज में अपराध, अलगाववाद, व्यसन आदि बढ़ते जा रहे हैं। राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद, भ्रटाचार आदि तेजी से पैर फैला रहे हैं। असीम भौतिक आकांक्षाओं से पर्यावरण असंतुलन भी बढ़ता जा रहा है। अन्ततः इन जीवन–मूल्यों के क्षरण को कौन रोकेगा? क्यों नहीं रुक रहा है? क्या इसे रोका भी जा सकता है– ये ज्वलन्त प्रश्न हैं। इनका समाधान सबको मिलकर ही करना होगा।

संस्कारों के निर्माण व मूल्यों के व्यवस्थित प्रशिक्षण में सबसे कारगर संस्था यदि कोई हो सकती है तो वह शिक्षा ही हो सकती है– किन्तु आज शिक्षा जगत् में शाश्वत जीवन मूल्यों के प्रशिक्षण व अभ्यास का नितान्त अभाव है। जो कुछ थोड़ा बहुत चलता है वह मात्र उपदेशात्मक है। इसके वांच्छित परिणाम नहीं आ रहे हैं। अतः यह अत्यन्त अपेक्षित हो गया है कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर– प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक, स्नातक एवं स्नातकोत्तर पर जीवन–मूल्यों के प्रशिक्षण एवं अभ्यास की समुचित व्यवस्था की जाये। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र हेतु विशेषज्ञ तैयार करने वाली संस्थाएं हैं। प्रत्येक संस्थान अपने–अपने विशेषज्ञों के लिए आचार–संहिता एवं मूल्यों को प्रस्तुत करते हैं। यदि समाज में गिरते हुए मूल्यों को थामना है तो मूल्यों के प्रशिक्षण की ठोस योजना को क्रियान्वित करना होगा। शिक्षा, चिकित्सा, प्रबन्धन , इन्जीनियरिंग आदि व्यावसयिक तथा प्रशासनिक सभी पाठ्यक्रमों में मूल्य–प्रशिक्षण को समुचित स्थान देना होगा। जीवन विज्ञान का उद्‌भव इसी सोच का परिणाम है।

1.3 जीवन विज्ञान का इतिहास

आज प्रत्येक विज्ञान विकास के उच्चतम सोपानों पर आरोहण करता दिखाई दे रहा है। इसका मूल कारण वैज्ञानिकों द्वारा सतत् किये जा रहे अनुसंधान कार्य हैं। इन्हीं अनुसंधान कार्यों ने मानव को चन्द्रमा पर पहुंचाया है। अब आगे उसका लक्ष्य मंगल तथा अन्य ग्रह हैं। प्रत्येक विज्ञान की जो अवस्था आज दिखाई दे रही है, शताब्दियों पूर्व उसका यह स्वरूप नहीं था। अर्थात् प्रत्येक विज्ञान का निरन्तर व क्रमिक विकास हुआ है।

जीवन विज्ञान की कहानी भी इसी प्रकार की है। इसकी कहानी गिरते हुए मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा से जुड़ी हुई है। प्राचीन काल से ऋषि, मुनि, साधु, महात्मा, सन्त, परिव्राजक आदि महापुरूष घूम–घूम कर सत्य, अंहिसा, प्रेम, करुणा, मैत्री, नैतिकता आदि जीवन–मूल्यों को जन–जीवन में सम्प्रेषित और पल्लवित करते रहते थे। इससे व्यक्ति–व्यक्ति में चेतना के परिष्कार और समाज में जीवन–मूल्यों के विकास का क्रम आगे बढ़ता रहा। इस दृष्टि से जीवन विज्ञान कोई नई बात नहीं है। अतः इसका उद्‌भव कब हुआ? कहना कठिन है। भारत की स्वतन्त्रता के बाद इसका उद्‌भव एक नई घटना है।

जीवन का एक क्रम है– उतार एवं चढ़ाव। शत्रुओं के आक्रमण और लम्बे समय तक देश की गुलामी के कारण प्राचीन साहित्य एवं भाषा से जन मानस की दूरी बढ़ी फलतः स्वयं की संस्कृति से अपरिचय बढ़ा, जीवन के उन्नत मूल्यों से दूरी बढ़ती गई। सहिष्णुता, सह–अस्तित्व, सौहार्द एवं प्रेम की जगह असहिष्णुता, साम्प्रदायिकता और विद्वेष ने अपना स्थान बनाया। समाज में जीवन मूल्यों के प्रति भारी गिरावट आई। शताब्दियों की परतन्त्रता के बाद 15 अगस्त, 1947 को भारत आजाद हुआ। कुछ विघटनकारी शक्तियों की वजह से हिन्दु–मुस्लिम दंगे भड़के। लाखों लोग मारे गये। हिन्दुस्तान विभक्त हो गया। यहां लोकतंत्रीय प्रणाली तो हुई पर जातिवाद, अस्पृश्यता, साम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार, अप्रामाणिकता, अनुशासनहीनता, पद की लालसा, अनुचित महत्त्वाकांक्षाएं भी बढ़ती गई। इन समस्याओं से चरित्र विकृत और मानस उत्पीड़ित होने लगा।

1.3.1. अणुव्रत आन्दोलन – प्रथम चरण (Anuvrat Movement:First Step)

तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक व धार्मिक परिस्थितियों ने महामना, उदारचेता, कोमल हृदय आचार्यश्री तुलसी की चेतना को झंकृत किया। समस्या के समाधान में आपका विचार बना कि देश में असली आजादी तभी आ सकती है जब चारित्रिक–नैतिक उत्थान हो। इसी उदात्त भावना, चिन्तन मनन एवं प्रबल पुरुषार्थ का परिणाम बना–अणुव्रत आन्दोलन। 2 मार्च 1949 में यह आन्दोलन जीवन मूल्यों के विकास में पहला प्रस्थान बना। अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य तुलसी ने जीवन मूल्यों के विकास में अहर्निश प्रयत्न किया। आपने जन–जन तक नैतिकता की आवाज बुलन्द करने हेतु लगभग 60 हजार किलोमीटर की पदयात्रा पूरे भारतवर्ष में की तथा लाखों लोगों से सम्पर्क साधा। ग्रामीण की झोपड़ी से लेकर संसद भवन तक अपने विचार पहुंचाये।

1.3.2. शिक्षा जगत् और अणुव्रत (Education Anuvrat)

अणुव्रत का अर्थ है– छोटे–छोटे संकल्पों के द्वारा नैतिक चेतना को बलवान बनाना। शिक्षा–जगत् की अपनी समस्याएं हैं। उच्छृंखलता, अनैतिकता, व्यसन व हिंसात्मक उपद्रव की प्रवृत्तियां सभी के लिए चिंता का विषय बनी हैं। इनके समाधन के लिए

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अणुव्रत आन्दोलन ने विद्यार्थी अणुव्रत एवं शिक्षक अणुव्रत की बात कही। अनेक विद्यालयों, महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में इनकी गहन चर्चा चली। लाखों विद्यार्थी और शिक्षक अणुव्रती बने। क्रम आगे बढ़ता रहा । भारत सरकार ने भी शिक्षा की समस्याओं के समाधान के लिए कुछ कदम उठाये। शिक्षा की व्यापक समीक्षा एवं देश की अपेक्षा के अनुकूल संशोधन के लिए अनेक शिक्षा आयोग गठित किये गये। उनमें एक था– कोठरी आयोग। सन् 1965 में अणुव्रत अनुशास्ता श्री तुलसी एवं आचार्यश्री महाप्रज्ञ का प्रवास दिल्ली में था। उस समय कोठारी आयोग के अध्यक्ष डॉ. डी. एस. कोठारी एवं मुख्य सचिव श्री जे. पी. नाइक आपके सम्पर्क में आये। श्री नाइक के साथ अनेक बार इस विषय पर गम्भीर विचार–विमर्श हुआ। शिक्षा की समस्याओं के बारे में चिंतन मनन हुआ। उस विचार मंथन से नैतिक पाठमाला का विकल्प सामने आया। आयोग ने चाहा कि नैतिकता व चारित्रिक उत्थान के लिए 'अणुव्रत' द्वारा पाठयक्रम प्रस्तुत किया जाए। तत्काल आचार्य श्री महाप्रज्ञ के निर्देशन में 14 जीवन मूल्यों की सूची तैयार की गई। इस संदर्भ में यह सोचा गया कि महापुरुषों के जीवन के प्रेरक प्रसंगों से नैतिक जीवन की आभा को निखारा जाए। कालान्तर में इस आधार पर कुछ पुस्तकें निर्मित की गई। सरकारी स्तर पर कुछ कठिनाइयों से यह कार्य आगे नहीं बढ़ सका। फिर भी अणुव्रत की ओर से ''नैतिक जीवन पाठमाला भाग–1, नैतिक पाठमाला भाग–2'' तैयार हुईं। वे ही पुस्तकें आज अणुव्रत परीक्षाओं में उपयोगी बन रही हैं। आज तक लाखों विद्यार्थियों ने उनसे लाभ उठाया है। यह परीक्षा विज्ञ, विशारद, रत्न एवं विशेषज्ञ; इन चार श्रेणियों में विभक्त है। जीवन मूल्यों के विकास में यह कदम एक मील का पत्थर बना।

1.3.3. प्रेक्षाध्यान – दूसरा चरण (Preksha Meditation : Second Step)

अणुव्रत आंदोलन का मुख्य आधार रहा – व्यक्ति की संकल्पशक्ति का जागरण। बहुत सारे व्यक्ति अणुव्रत के नियमों को स्वीकार करते, कुछ लोग प्रतिकूल परिस्थितियों में और अधिक दृढ़ बन जाते किन्तु कुछ लोग चाहकर भी परिस्थिति में अडिग नहीं रह पाते। तब यह आवश्यकता अनुभव हुई कि ऐसे लोगों की संकल्प शक्ति के विकास के लिए योग साधना की प्रायोगिक प्रक्रिया भी जुड़े। अणुव्रत–आचार संहिता सैद्धान्तिक उपक्रम था। उसके प्रायोगिक पक्ष के रूप में प्रेक्षाध्यान के प्रयोग 1975 में सामने आये। प्रेक्षाध्यान का यह सिद्धात है कि ''दृष्टिकोण बदल सकता है। आदत, स्वाभाव और व्यवहार में परिवर्तन हो सकता है।'' यह तथ्य विभिन्न शिविरों में अभ्यास के समय और अधिक स्पष्टता से उजागर हुये, प्रमाणित हुये। वृत्तियों को बदलने के लिए भिन्न–भिन्न उपाय निर्दिष्ट हुये। अनेक व्यक्तियों ने प्रयोग किये। परिणाम अच्छे आये और विचार उत्पन्न हुआ क्या इसका प्रयोग शिक्षा में नहीं हो सकता? विद्यार्थी को नहीं बदला जा सकता? समाधान मिला कि बडे आदमी को बदलने की अपेक्षा छोटे बालकों को बदलना आसान है। चिंतन–मंथन चलते–चलते इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि शिक्षा के क्षेत्र में प्रेक्षाध्यान का प्रयोग करना चाहिए।

1.3.4. अध्यापक प्रशिक्षक प्रशिक्षण शिविर

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी के सम्मुख उनके एक शिष्य मुनिश्री किशनलाल जी ने अध्यापक प्रशिक्षक प्रशिक्षण शिविर की योजना प्रस्तुत की। आचार्य श्री ने मुस्कराकर कहा–''तुम कल्पना तो लाये हो, उसकी क्रियान्वित कैसे होगी? सरकारी तन्त्र के अधीन कार्यरत अध्यापक प्रशिक्षण क्यों और कैसे लेगा?'' उनके विमाग एवं अध्यापकों को कैसे आकृष्ट किया जा सकेगा?'' आचार्य श्री की प्रेरणा से सरदार शहर चातुर्मास प्रवास (संवत् 2033) में अध्यापकों से सम्पर्क किया गया। अध्यात्म योग एवं नैतिक शिक्षा की योजना पर विस्तार से चर्चा हुई। अध्यापकों के प्राथमिक प्रयोग एवं परिणाम से लगा कि यह कार्य राज्य स्तर पर चलाकर फिर राष्ट्रीय स्तर पर चलाया जाये तो अच्छा परिणाम आ सकता है।

इसी क्रम में राजस्थान के विभिन्न जिला शिक्षा अधिकारियों, नागौर क्षेत्र के अनेक प्रधानाध्यापकों एवं अध्यापकों की एक संगोष्ठी जैन विश्व भारती में आयोजित हुई जिसमें अध्यात्म–योग एवं नैतिक शिक्षा पर विचार–विमर्श हुआ। शिक्षा अधिकारियों एवं शिक्षकों ने इस योजना की भूरि–भूरि प्रशंसा की। तत्कालीन शिक्षा उपनिदेशक श्री गुडलिया जी ने तुलसी अध्यात्म नीडम् में एक प्रायोगिक शिविर की अनुमति दी। जिला शिक्षा अधिकारी, नागौर श्री सीताराम दाधीच ने आचार्य प्रवर से निवेदन किया कि इसका प्रथम प्रयोग नागौर क्षेत्र के शिक्षकों पर होना चाहिए। अध्यापक शिविर का प्रयोग सफल ही नहीं अपितु एक नवीन आशा के साथ सम्पन्न हुआ। कालान्तर में अनेक शिविर आयोजित हुए। सैकड़ों शिक्षकों ने प्रशिक्षण लिया। विद्यालयों में कार्य प्रारम्भ हुआ। बच्चों के साथ–साथ अनेक शिक्षकों के जीवन में भी परिवर्तन घटित हुए।

1.3.5. जीवन विज्ञान का नामकरण (Naming of Science of Living)

वर्ष 1978 में शिक्षण संस्थाओं की शरद्कालीन छुट्टियों के दिन थे। ''अध्यात्म–योग–नैतिक शिक्षा प्राध्यापक प्रशिक्षण शिविर'' तुलसी अध्यात्म नीडम्, लाडनूं में आयोजित किया गया। इस शिविर में आचार्य महाप्रज्ञ का सान्निध्य प्राप्त हुआ। प्रशिक्षण एवं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रायोगिक प्रक्रिया के नाम के बारे में व्यापक चर्चा चली। इस प्रशिक्षण को शिक्षा जगत में किस नाम से प्रस्तुत किया जाए? चिंतन–मंथन की प्रक्रिया में अनेक नाम सामने आए– योग शिक्षा, नैतिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा, मूल्यपरक शिक्षा आदि। इन पर उस समय अनेक दृष्टियों से विचार हुआ–

योग शिक्षा – अनेक शिक्षा आयोगों का अभिमत रहा कि योग शिक्षा को शिक्षा के साथ जोड़ना चाहिए। यह बहुत ही आवश्यक है पर आज योग के वास्तविक अर्थ एवं अभ्यास को विस्मृत किया जा रहा है। आज योग का अर्थ केवल आसन–प्राणायाम के प्रशिक्षण एवं अभ्यास तक ही सीमित कर दिया गया है। अतः इससे जीवन के समग्र विकास की परिकल्पना नहीं की जा सकती। समस्या यह है कि जीवन का समग्र विकास कैसे हो? जीवन के समग्र विकास के लिए प्रशिक्षण के अतिरिक्त जीवन के सूक्ष्म नियमों का ज्ञान भी आवश्यक है।

नैतिक शिक्षा – ''नैतिक'' शब्द अपने आप में स्पष्ट नहीं है। अनेक भ्रान्तियां उत्पन्न होती हैं। इसकी प्रक्रिया उपदेशात्मक है। उपदेश का प्रभाव व्यापक एवं स्थायी नहीं रहता। स्थायित्व के लिए प्रयोग एवं अभ्यास आवश्यक है। समग्र जीवन के विकास में नैतिक विकास मात्र एक पक्ष है। यह समग्रता को प्रतिनिधित्व नहीं दे सकता।

स्वास्थ्य शिक्षा – इसका भी क्षेत्र सीमित है। यह भी शारीरिक स्वास्थ्य तक ही रह जाता है। इससे समाज के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है। समग्र जीवन के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती।

मूल्यपरक शिक्षा – नई शिक्षा प्रणाली ने मूल्यपरक शिक्षा का स्वर मुखर किया है। यह नैतिक शिक्षा का नवीनीकरण है। केन्द्रीय सरकार इस पर कार्य कर रही है किन्तु अभी तक इसका कोई स्वरूप निर्धारित नहीं हो पाया है।

जीवन विज्ञान – आचार्यश्री महाप्रज्ञ नये शब्द को स्पष्ट करते हुए कहते हैं–''जीवन विकास के लिए नए शब्द की आवश्यकता हुई जो धर्म की मूल भावनाओं को स्पर्श करने वाला हो। जीवन में धर्म का विकास, नैतिकता का विकास, अध्यात्म का विकास करने वाला हो। ये शब्द आज विवाद के विषय बन गये हैं। इसलिए नया शब्द ढूंढना चाहिए जो आज के मानस को स्पर्श कर सके पर कोई प्रतिक्रिया पैदा न करे। इन दृष्टियों से सोचने पर एक नया नाम जंचा और वह है– जीवन विज्ञान। इसकी प्रक्रिया का किसी धर्म विशेष से सम्बन्ध नहीं है। इसका संबंध है जीवन से। यह नाम समग्र मानव जीवन का प्रतिनिधित्व करता है, व्यापक है, असाम्प्रदायिक है।'' यह नैतिक शिक्षा, योग शिक्षा, मूल्यपरक शिक्षा व स्वास्थ्य शिक्षा सबको समाहित करता है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने इस 'अध्यात्म योग नैतिक शिक्षा' के उपक्रम को ''जीवन विज्ञान'' की संज्ञा दी। यह सम्पूर्ण उपक्रम ''जीवन विज्ञान'' अर्थात् जीवन जीने की कला के विज्ञान के नाम से आगे बढ़ा। शिविर समापन समारोह में दिल्ली विश्वविद्यालय के डॉ. दयानन्द भार्गव, बांगड़ विश्वविद्यालय (डीडवाना) के प्राध्यापक डॉ. आनन्द मंगल वाजपेयी, श्री बी. पी. सिंह, श्री माथुर, श्री शेखावतजी ने संस्मरण प्रस्तुत किए। वे बड़े प्रेरणादायी थे। सभी ने स्वीकार किया कि ऐसे शिविर व्यक्तिगत उपलब्धि के साथ शिक्षाजगत् की जटिल समस्याओं का सहज समाधान उपलब्ध कराते हैं। समापन समारोह में बोलते हुए आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने कहा–''शिक्षण संस्थाओं में अन्य विषयों के साथ सम्यक् जीवन जीने की कला के विज्ञान का प्रशिक्षण अवश्य होना चाहिए। उसके बिना जो रिक्तता शिक्षा जगत् में अनुभव की जा रही है उससे सारा राष्ट्र उद्वेलित है। इसके समाधान के लिए शिक्षण संस्थाओं में अन्य विषयों की तरह जीवन विज्ञान का शिक्षण–प्रशिक्षण आधुनिकतम विज्ञान और मनोविज्ञान के उपलब्ध तथ्यों के आधार पर होने से ही यह पूर्णता आ सकती है।''

1.4. जीवन विज्ञान का स्वरूप (Nature of Science of Living)

मनुष्य को सही अर्थ में मनुष्य बनाना शिक्षा का प्रमुख कार्य है। क्या आज की शिक्षा मनुष्य को सही अर्थों में मनुष्य बना रही है? इस प्रश्न के समाधान के लिए अपेक्षा है कि ऐसी विद्याशाखा विकसित हो जो शिक्षा को जीवनोन्मुखी भी बना सके। व्यक्ति के भावनात्मक पक्ष एवं आध्यात्मिक पक्ष को उजागर कर सके। इसका एक मुख्य कारण यह है कि आध्यात्मिक विकास और भावनात्मक विकास ही नैतिकता और चरित्र का मूल आधार है।

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार–''युग की सबसे बड़ी बीमारी है– कोरा वैज्ञानिक होना, आध्यात्मिक न होना। व्यक्ति की इसी मनोवृत्ति ने बहुत सारी बीमारियों को जन्म दिया है। जीवन विज्ञान का मुख्य सूत्र है– आध्यात्मिक–वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण। न कोरा वैज्ञानिक न कोरा आध्यात्मिक। यह वर्तमान युग की सबसे बड़ी अपेक्षा है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.4.1. जीवन विज्ञान – नई विद्याशाखा (Science of Living : A New Discipline)

सन् 1981 में राजस्थान शिक्षा सचिवालय द्वारा अणुव्रत अनुशास्ता श्री तुलसी एवं आचार्य महाप्रज्ञ के सान्निध्य में एक शिक्षा गोष्ठी का आयोजन किया गया। शिक्षा मंत्री श्री चन्दनमल बैद, शिक्षा सचिव, उपसचिव, प्रौढ़शिक्षा अधिकारी, स्कूलों–कॉलेजों के शिक्षक, प्राध्यापक अनेक शिक्षा शास्त्री तथा सार्वजनिक क्षेत्र के लोगों ने उसमें भाग लिया। नैतिक शिक्षा संबंधी गहन–विचार विमर्श हुआ। श्री चन्दनमल बैद ने कहा–''हमने यह निर्णय लिया है कि हमारी शिक्षा प्रणाली में कुछ नये प्रयोग किए जाएं। हम चाहते हैं कि परस्पर विचार विमर्श कर निर्णायक रूप में ऐसा हल खोजा जाए जो शिक्षा के सम्बन्ध में हमारे प्रयोगों का मार्गदर्शन कर सके।'' आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि ''मैं नहीं समझता कि केवल पुस्तकीय ज्ञान छात्रों के नैतिक विकास में कोई विशेष सहयोग कर सकेगा। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा में जीवन विज्ञान को एक विद्याशाखा के रूप में स्वीकार किया जाये। मैं मानता हूं कि यदि जीवन विज्ञान को साइन्स की तरह सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक स्तर पर चेतना के जागरण के लिए उपयोग किया जाए तो एक क्रान्ति घटित हो सकती है। उससे संतुलित व्यक्ति निकलेंगे।''

1.4.2. जीवन विज्ञान – नियमों की खोज

विज्ञान का अर्थ है– नियमों की खोज। भौतिक विज्ञान में भौतिक पदार्थों के अध्ययन के द्वारा नियमों की खोज की जाती है। रसायन विज्ञान में रासायनिक पदार्थों के अध्ययन के द्वारा नियमों की खोज की जाती है। इसी प्रकार जीवन विज्ञान में जीवन के विभिन्न पक्षों के अध्ययन द्वारा नियमों की खोज की जाती है। जिससे उसके उपयोग द्वारा जीवन के सभी पक्षों का विकास किया जा सके। इस तथ्य को उजागर करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा है–''जीवन विज्ञान का अर्थ है– जीवन के नियमों की खोज। जीवन विज्ञान के तीन मुख्य पक्ष हैं– ज्ञानात्मक पक्ष, भावनात्मक पक्ष तथा क्रियात्मक पक्ष। अतः जीवन विज्ञान का उद्देश्य है–

- ❖ जीवन के उन नियमों की खोज जिनसे इन तीनों पक्षों का परिष्कार किया जा सके।
- ❖ जीवन के उन नियमों की खोज जिनसे भावनात्मक विकास और बौद्धिक विकास में संतुलन स्थापित किया जा सके।
- ❖ जीवन के उन नियमों की खोज जिनसे प्रज्ञा को, अन्तःकरण को, शुद्ध चेतना को जगाया जा सके। अचेतन मन को परिष्कृत किया जा सके।

1.4.3. जीवन विज्ञान – समन्वित पद्धति

शिक्षा का अर्थ है– ग्रहण व आसेवन। आसेवन या अभ्यास के बिना शिक्षा परिपूर्ण नहीं हो सकती, अधूरी रहती है। इस विद्या शाखा में ज्ञान के साथ–साथ आचरण और अभ्यास पर बहुत बल दिया गया है। विभिन्न प्रायोगिक अभ्यासों द्वारा इसे संपादित किया गया है। आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं– जीवन विज्ञान समन्वित पद्धति का नाम है। इसमें अहिंसा की शिक्षा, नैतिक शिक्षा और आन्तरिक परिवर्तन की शिक्षा तीनों का समन्वय है। इसे शिक्षा के क्षेत्र में अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान के समन्वय से विकसित किया गया है। जीवन विज्ञान एक संतुलित व परिपूर्ण विद्या शाखा भी है। संतुलित इसलिए है कि इसमें शारीरिक व बौद्धिक विकास के साथ–साथ मानसिक एवं भावनात्मक विकास का संतुलन स्थापित किया गया है। परिपूर्ण इसलिए है कि इसमें सैद्धान्तिक के साथ–साथ प्रायोगिक अभ्यास भी अनिवार्य है।

1.4.4. जीवन विज्ञान का हृदय (Heart of Science of Living)

जीवन विज्ञान का हृदय क्या है? मूल तत्त्व क्या है? जीवन विज्ञान में जीवन के किन–किन तत्त्वों का अध्ययन किया जाता है? किस–किस पर प्रयोग किया जाता है? आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार जीवन की व्याख्या के सात सूत्र हैं–1. शरीर, 2. श्वास, 3. प्राण, 4. मन, 5. भाव/आभामंडल/लेश्या, 6. कर्म, 7. चेतना। इन सात अंगों की समष्टि का नाम है जीवन। किसी एक कोण से होने वाली जीवन की परिभाषा समग्र नहीं हो सकती। जीवन की समग्र परिभषा के लिए इन सात बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है।'' जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान में इन सातों अंगों पर प्रयोग किये गये हैं एवं उनके पारस्परिक संबंधों पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया गया है। जीवन को समग्रता से समझने के लिए उक्त सात बिन्दुओं पर ध्यान देना और उनके परिष्कार की चेष्टा करना मानवीय मूल्यों के विकास का प्रथम सोपान है।

1.4.5. जीवन विज्ञान के आयाम

एक वह युग था जब व्यक्ति ज्ञान–विज्ञान की सभी शाखाओं में निष्णात होता था। अरस्तु, प्लेटो आदि दार्शनिक भी थे, वैज्ञानिक और काव्यशास्त्री भी। जैसे–जैसे ज्ञान–विज्ञान की शाखाओं का विकास हुआ यह माना जाने लगा एक ही व्यक्ति ज्ञान–विज्ञान की सभी शाखों में दक्ष नहीं हो सकता। परिणामस्वरूप विशेषज्ञता का युग आया। जो वैज्ञानिक हैं उन्हें दर्शन पढ़ने का अवकाश नहीं है। विज्ञान इतना जटिल हो गया कि वह दार्शनिक की पकड़ से बाहर है। इस स्थिति में आज की शिक्षा किसी शाखा विशेष का विशेषज्ञ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तो तैयार करती है किन्तु उसमें ऐसी समग्र दृष्टि का विकास नहीं होता है जो जीवन के प्रत्येक पक्ष का स्पर्श कर सके। यही कारण है कि आज की शिक्षा व्यक्ति का एकांगी विकास करती है, सर्वांगीण विकास नहीं।

जीवन विज्ञान के दर्शन और पाठ्यक्रम के संदर्भ में जैनविश्वभारती लाडनूं में आयोजित संगोष्ठी (15–16 मई, 1998) को संबोधित करते हुए आचार्यप्रवर ने कहा– ''जीवन विज्ञान शिक्षा का समग्र दृष्टिकोण है। यह जीवन के प्रत्येक पक्ष का स्पर्श करता है। जीवन के सर्वांगीण व समग्र विकास की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है।

जीवन विज्ञान शिक्षा के तीन आयाम हैं– जीवनोमुखी शिक्षा, समाजोन्मुखी शिक्षा एवं जीविकोन्मुखी शिक्षा। ये आयाम विद्यार्थी को तीन प्रकार से समर्थ बना सकते हैं–

1. व्यक्ति के रूप में।
2. सामाजिक प्राणी के रूप में।
3. सम्मानपूर्ण आजीविका उपार्जित करने में सक्षम सदस्य के रूप में।

जीवनोन्मुखी शिक्षा–

भारतीय चिन्तन परम्परा के अनुसार प्राण, शरीर, इन्द्रिय, मन, भाव, बुद्धि और चेतना ये जीवन के सात स्तर हैं। व्यक्ति इन सात स्तरों पर जीवन को जीता है। जीवन विज्ञान जीवन के इन सात तत्त्वों के प्रति सम्यक् दृष्टिकोण का निर्माण करता है, स्वस्थ एवं शांतिपूर्ण जीवन का पथ प्रशस्त करता है। जीवन में इसकी फलश्रुति होगी–

1. प्राण का विकास, 2. स्वास्थ्य चेतना का विकास, 3. अनासक्ति या इन्द्रिय के प्रति सम्यक् दृष्टिकोण,
4. मानसिक क्षमता का विकास, 5. बुद्धि का विकास, 6. भावों का विकास एवं
7. चेतना का विकास।

समाजोन्मुखी शिक्षा–

व्यक्ति समाज के स्तर पर जीवन को जीता है। स्वस्थ समाज की संरचना में प्रत्येक व्यक्ति की सहभागिता आवश्यक है। जीवन विज्ञान की शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति में इन सामाजिक मूल्यों के विकास में बहुत उपयोगी सिद्ध होगी–

1. सामुदायिक चेतना, 2. संवेदनशीलता एवं करुणा की चेतना, 3. नैतिक मूल्य,
4. अहिंसा की चेतना और 5. संग्रह की सीमा की चेतना।

जीवनोन्मुखी शिक्षा–

सामाजिक व्यक्ति के लिए जीविकोपार्जन एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। जीवन विज्ञान का शिक्षण–प्रशिक्षण व्यक्ति को जीवन तत्त्वों का समग्र सैद्धान्तिक ज्ञान करवाएगा। वह ज्ञान उन तत्त्वों के विकास, स्वास्थ्य, परिष्कार एवं प्रबन्धन की प्रविधियों में प्रायोगिक अभ्यास द्वारा पारंगत करेगा। इतना ही नहीं, कार्य क्षेत्रीय अनुभव के द्वारा आत्म–विश्वास व व्यावसायिक दक्षता प्रदान करेगा। इस प्रकार जीवन विज्ञान व्यक्ति को इतना सक्षम बना देगा कि वह अपने सैद्धान्तिक ज्ञान, प्रायोगिक अभ्यास एवं कार्यक्षेत्रीय अनुभव के आधार पर शिक्षा जगत्, चिकित्सा जगत्, प्रशासन जगत् एवं प्रबन्ध के क्षेत्र में से किसी एक में अपनी सेवाओं द्वारा महत्त्वपूर्ण योगदान के साथ–साथ सम्मानपूर्वक आजीविका प्राप्त कर सकेगा।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने समय–समय पर जीवन विज्ञान के विविध पहलुओं को प्रकाशित किया है। उपरोक्त विवेचन के अनुसार जीवन विज्ञान का स्वरूप इस प्रकार सामने आता है–

1. जीवन विज्ञान सम्यक् जीवन जीने की कला के विज्ञान का प्रशिक्षण है।
2. जीवन विज्ञान अहिंसा की शिक्षा, नैतिकता की शिक्षा, आंतरिक परिवर्तन की शिक्षा पद्धति का नाम है।
3. शिक्षा में अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान की समन्वित पद्धति का नाम जीवन विज्ञान है।
4. जीवन के नियमों की खोज का नाम जीवन विज्ञान है।
5. जीवन विज्ञान शिक्षा का समग्र दृष्टिकोण है।

इस प्रकार जीवन विज्ञान एक शिक्षण विद्या है जो आध्यात्मिक प्रज्ञा, जीवन–दर्शन, वैज्ञानिक ज्ञान, भारतीय योग पद्धति – प्रेक्षाध्यान की प्रविधिक निपुणताओं पर आधारित है। इसका उद्देश्य व्यक्ति की सहायता करना है जिससे वह मूल्यों से परिपूर्ण,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संतुलित एवं स्वस्थ जीवन जी सके। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि 'जीवन विज्ञान प्रशिक्षण' एक आजीविकोन्मुखी (व्यावसायिक) सेवा भी है। यह समग्र जीवन एवं भारतीय योग पद्धति – प्रेक्षाध्यान सम्बन्धी प्राचीन प्रज्ञा, वैज्ञानिक ज्ञान एवं अभ्यासजन्य निपुणताओं पर आधारित है। इसके प्रशिक्षक स्वयं अपने जीवन का निर्माण कर अपनी सेवाएं समाज को प्रदान करते हैं, जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपनी सुषुप्त चेतना एवं क्षमताओं को जागृत कर अपने लक्ष्य में आने वाली बाधाओं को दूर कर सके, संतुलित, स्वस्थ व सुसमायोजित जीवन जी सके।

1.5. जीवन विज्ञान की प्रकृति

जीवन विज्ञान की प्रकृति का निर्धारण करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि क्या जीवन विज्ञान एक विज्ञान है? क्या यह विज्ञान की विशेषता और लक्षणों को अपने में समाहित करता है, इसकी मीमांसा और समीक्षा अपेक्षित है। विज्ञान का तात्पर्य क्रमबद्ध और व्यवस्थित अध्ययन से है। इसके लिए वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है चाहे वह विषय प्राकृतिक विज्ञान का हो या सामाजिक विज्ञान का।

1. जीवन विज्ञान के अध्ययन का आधार वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Method is Base of Science of Living's study) – जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञानों में तथ्यों के संतुलन करने, निष्कर्ष निकालने के लिए वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार जीवन विज्ञान में प्रेक्षाध्यान एवं योग के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। वैज्ञानिक पद्धति की जिन विशेषताओं– सत्यापनशीलता, वस्तुनिष्ठता, निश्चयात्मकता, सानान्यता तथा पूर्वानुमान की क्षमता का उल्लेख किया जाता है उन सभी विशेषताओं को ध्यान में रखकर ही जीवन विज्ञान का अध्ययन किया जाता है।

2. अवलोकन पद्धति से तथ्यों का संकलन (Collection of Data by Observation Method) – जीवन विज्ञान में अध्ययन करने वाला व्यक्ति प्रेक्षाध्यान एवं योग का प्रत्यक्ष अवलोकन कर आवश्यक तथ्यों का संकलन करता है। विज्ञान में दार्शनिक या काल्पनिक विचारों का महत्त्व अधिक नहीं होता। इसलिए जीवन विज्ञान में अनुसंधानकर्त्ता स्वयं निरीक्षण कर उपयोगी तथ्यों का संकलन करता है।

3. तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण (Classification and Analysis of Data) – शोधकर्त्ता प्राकृतिक विज्ञानों में तथ्यों को संकलित करके उसका वर्गीकरण एवं विश्लेषण करते हुए निष्कर्ष निकालता है। जीवन विज्ञान में भी अनुसंधानकर्त्ता तथ्यों का संकलन करके समानता एवं भिन्नता के आधार पर वर्गीकरण करके तालिकाओं का निर्माण करके निष्कर्ष निकालता है।

4. जीवन विज्ञान के नियम सार्वभौमिक हैं – जिस प्रकार विज्ञान के नियम सार्वभौमिक होते हैं, उसी प्रकार जीवन विज्ञान के नियम भी सार्वभौमिक होते हैं। इसका अर्थ यह है कि अगर परिस्थितियां समान रहें तो जीवन विज्ञान के नियम भी सभी कालों एवं व्यक्तियों पर समान उतरते हैं। जैसे– श्वास को मन्द व लम्बा करने से मन की चंचलता कम होती है।

5. जीवन विज्ञान के नियमों की पुनः परीक्षा संभव है (Possibility of Reaplication of Rules of Science of Living) – प्राकृतिक विज्ञानों में सिद्धान्त की परीक्षा व पुनः परीक्षा संभव है। भौतिक विज्ञान में एक सामान्य नियम है कि पानी सौ डिग्री तापमान पर भाप में बदल जाता है। इसकी जांच संभव है क्योंकि यह वैज्ञानिक पद्धति द्वारा अध्ययन पर आधारित है। वैसे ही जीवन विज्ञान के नियमों की परीक्षा व पुनः परीक्षा संभव है। एक नियम है कि कायोत्सर्ग से तनावमुक्ति होती है। इस नियम या सिद्धान्त की पुनः परीक्षा की जा सकती है।

6. जीवन विज्ञान कार्य कारण सम्बन्ध पर आधारित है (Science of Living are Based on Cause-effect) – जीवन विज्ञान में प्रेक्षा ध्यान और योग का अध्ययन करते समय 'क्या है' का वर्णन करके ही अध्ययनकर्त्ता अपनी जिज्ञासा संतुष्ट नहीं कर लेता बल्कि वह यह जानने का भी प्रयास करता है कि इन घटनाओं के पीछे किन कारणों का हाथ है। कोई भी घटना जब घटती है तो उसके पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है, इसका पता लगाना जीवन विज्ञान के अध्येता का प्रमुख कार्य है।

7. जीवन विज्ञान भविष्यवाणी करता है (Science of Living Do Prediction) – जीवन विज्ञान को इस कारण भी विज्ञान की श्रेणी में रखा जाता है क्योंकि यह 'क्या है' के आधार पर 'क्या होगा' की बात भी बताता है, अर्थात् जीवन विज्ञान भविष्यवाणी करने की क्षमता रखना है। जीवन विज्ञान में जो भी भविष्यवाणी की जाती है अध्येता/अनुसंधानकर्त्ता अपनी मर्जी या इच्छा से नहीं करता बल्कि वर्तमान परिवर्तनों के आधार पर व्यक्ति का जीवन कैसा होगा, बताने का काम करता है।

उपर्युक्त आधारों पर यह कहा जा सकता है जीवन विज्ञान एक विज्ञान है और इसकी प्रकृति वैज्ञानिक है।

जीवन विज्ञान किस प्रकार की विद्या शाखा है? यह किस प्रकार का विज्ञान है? जो विज्ञान केवल ''क्या है?'' इस तथ्य पर केन्द्रित होकर अध्ययन करते हैं उन्हें निरपेक्ष विज्ञान (Categorical Science) कहते हैं। जैसे भौतिक विज्ञान जो विज्ञान ''क्या होना चाहिए'' जैसे विवरणों का भी अध्ययन करते हैं उन्हें ''आदर्शात्मक विज्ञान'' (Nor Mative Science) कहा गया है जैसे नीति शास्त्र।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जो विज्ञान केवल सिद्धान्तों की खोज करते हैं उन्हें परिशुद्ध विज्ञान (Pure Science) कहा गया है एवं जो विज्ञान उन सिद्धान्तों के व्यावहारिक उपयोग की संभावनाओं का अध्ययन करते हैं उन्हें व्यावहारिक विज्ञान (Behavioural Scince ; Applied Science) कहा जाता है। जिन तथ्यों का अध्ययन आधुनिक उपकरणों द्वारा किया जा सकता है। उन्हें मूर्त्त विज्ञान (Concrete Science) कहा जाता है। जिनका अध्ययन उपकरणों द्वारा नहीं किया जा सकता उन्हें अमूर्त्त विज्ञान (Abstract Science) कहा जाता है। जिनको तर्क द्वारा सिद्ध किया जा सकता है उन्हें तार्किक विज्ञान (Logical Science) कहा गया है। जिन्हें तर्क द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता जो केवल अनुभव के विषय बनते हों उनके अध्ययन को अनुभवात्मक विज्ञान (Empirical Science) कहा गया है। इस प्रकार विभिन्न विद्याशाखाओं को भिन्न–भिन्न दृष्टियों से देखा जाता हैं, उन पर विचार किया जाता है। जीवन विज्ञान भी एक नई विद्याशाखा है। इस नई विद्याशाखा की प्रकृति क्या है?

इसकी प्रकृति केवल सैद्धान्तिक मात्र नहीं है। इसमें सैद्धान्तिक अध्ययन के रूप में जीवन तत्त्वों का आध्यात्मिक और वैज्ञानिक अध्ययन तथा परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन समाविष्ट है। इसमें अनेकान्त, अहिंसा और अणुव्रत के वैज्ञानिक अध्ययन के साथ उनके विकास हेतु प्रायोगिक पक्ष का अध्ययन किया जाता है। प्रायोगिक प्रविधि के रूप में प्रेक्षाध्यान का सैद्धान्तिक अध्ययन प्रायोगिक अभ्यास एवं प्रशिक्षण दक्षता हासिल की जाती है। इसका कार्यक्षेत्रीय अनुभव भी इस विद्या का प्रमुख हिस्सा है, जिसके बिना विद्यार्थी में आत्मविश्वास जागृत नहीं हो सकता एवं उसकी भावी उपयोगिता का ठीक से अभ्यास एवं आंकलन संभव नहीं हो सकता।

जीवन विज्ञान की प्रकृति में सैद्धान्तिक ज्ञान, प्रायोगिक अभ्यास एवं कार्यक्षेत्रीय अनुभव समाविष्ट है। जीवन विज्ञान में सैद्धान्तिक ज्ञान के रूप में किन विषयों का समावेश हो और किन विषयों को छोड़ दिया जाए? समाधान के रूप में कहा गया है कि जीवन विज्ञान विभिन्न विषयों का जोड़ नहीं है प्रत्युत स्वयं ही एक नया विषय है। इसमें सभी विषयों की सहायता लेकर एक ऐसी नई विद्या शाखा का विकास किया गया जो उस शिक्षा की प्रक्रिया से गुजरने वाले का सर्वतोमुखी विकास कर सके।

सार रूप में जीवन विज्ञान की प्रकृति को निम्नानुसार समझा जा सकता है –

जीवन विज्ञान – एक निरपेक्ष विज्ञान एवं आदर्शात्मक विज्ञान (Categorical Science aud Notrmative Science) – जीवन विज्ञान ''प्रेक्षाध्यान'' का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। इसमें वह प्रेक्षाध्यान 'क्या' है और ''उससे क्या–क्या होता है'' जैसे विवरणों का भी अध्ययन करता है। यह जीवन क्या है और कैसा होना चाहिए, इन दोनों का विमर्श करता है। जीवन मूल्यों के सम्बन्ध में भी यह विचार करता है। अतः यह निरपेक्ष विज्ञान के साथ–साथ आदर्शात्मक विज्ञान भी है।

जीवन विज्ञान परिशुद्ध एवं व्यावहारिक विज्ञान (Pure Science and Behavaioral Science) – जीवन विज्ञान प्रेक्षाध्यान एवं योग के विषय में ज्ञान प्राप्त करता है एवं उस ज्ञान के साथ–साथ उसके व्यावहारिक उपयोग पर भी अध्ययन करता है। जीवन विज्ञान के ज्ञान का जीवन में विभिन्न क्षेत्रों– शिक्षा, चिकित्सा, प्रबन्धन व प्रशासन में (मूल्यों की समस्या के समाधान में) उपयोग किया जाता है। अतः यह व्यावहारिक विज्ञान भी है। जीवन विज्ञान में प्रेक्षाध्यान व योग के सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि के रूप में जीवन के मूल तत्वों के पारस्परिक सम्बन्धों का भी अध्ययन करता है । अतः यह परिशुद्ध विज्ञान भी है।

जीवन विज्ञान मूर्त्त एवं अमूर्त विज्ञान (Abstract and Concrete Science) – जीवन विज्ञान प्रेक्षाध्यान एवं योग की विभिन्न प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है जो मूर्त्त हैं। जिनका अध्ययन वैज्ञानिक उपक्रमों के द्वारा किया जा सकता है। अतः यह मूर्त्त विज्ञान है। दूसरी ओर जीवन विज्ञान जीवन के मूर्त्त एवं अमूर्त्त दोनों प्रकार के तत्त्वों का अध्ययन करता है। जैसे शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, भाव व चेतना। इसमें कुछ मूर्त्त तत्त्व हैं कुछ अमूर्त्त भी। अतः मूर्त्त एवं अमूर्त्त दोनों को अपना अध्ययन का विषय बनाता है। अतः यह अमूर्त्त विज्ञान भी है।

जीवन विज्ञान के तार्किक विज्ञान होने के साथ–साथ अनुभवात्मक विज्ञान भी है (Science of Living is Both a Logical and Empirical Science) । जीवन विज्ञान के अन्तर्गत प्रेक्षाध्यान व योग पर अनुसन्धान के विरल वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। अतएव इसके अन्तर्गत केवल इन्हीं तत्त्वों का अध्ययन सम्मिलित किया जाता है जिन्हें तर्क द्वारा सिद्ध किया जा सकता है एवं व्यक्तिशः अनुभव भी किया जा सकता है। प्रेक्षाध्यान योग द्वारा होने वाले शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक प्रभावों का वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा अध्ययन किया जा सकता है।

1.6 जीवन विज्ञान की परिभाषा

जीवन विज्ञान को परिभाषित करना सरल नहीं है और न ही इसकी एक सर्वमान्य परिभाषा ही दी जा सकती है। जीवन विज्ञान को अनेक विद्वानों ने अनेक आधारों पर परिभाषित किया है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि जीवन विज्ञान अन्य विद्या शाखाओं की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भांति जीवन के किसी पहलू विशेष को लेकर नहीं चलता बल्कि सम्पूर्ण जीवन पर प्रकाश डालता है एवं विकास हेतु एक विशेष प्रकार की योग पद्धति प्रेक्षाध्यान का प्रशिक्षण हेतु उपयोग करता है।

जीवन विज्ञान के विभिन्न पहलुओं के आधार पर इस 'नई विद्या शाखा' को समग्रता से इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है– ''जीवन विज्ञान वह विज्ञान है, जो जीवन के मुख्य अंग, उनके विकास के साधन एवं उनका जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अनुप्रयोग का वैज्ञानिक अध्ययन करता है जिसकी परिणति संतुलित जीवन एवं सर्वांगीण व्यक्तित्व के रूप में होती है (मुनि धर्मेश, 1994)''।

इस परिभाषा को तीन भागों में विश्लेषित किया जा सकता है–

1. जीवन के मुख्य अंग,
2. उनके विकास के साधन,
3. उनके निष्कर्षों का जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग।

1. जीवन के मुख्य अंग – शरीर, श्वास, प्राण, मन, भाव, कर्म एवं चेतना जीवन को टिकाने वाले मूल सात तत्त्व हैं। हर मानव अपना जीवन सात स्तर पर जीता है। इनका जीवन विज्ञान में आधुनिक विज्ञान व प्राच्य विद्याओं के संदर्भ में मुख्य अंग के रूप में अध्ययन किया जाता है।

2. उनके सम्यक् विकास के साधन– यहां साधन से तात्पर्य वे साधन या प्रयोग प्रविधियां हैं। जिनके द्वारा जीवन के मुख्य अंगों पर प्रयोग किया जाता है। साधन एवं प्रयोग प्रविधि के अंतर्गत मुख्य रूप से अनेकान्त, अहिंसा, अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान पद्धति का समावेश है।

3. जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इनके उपयोग का अध्ययन– हमारे जीवन के विभिन्न क्षेत्र हैं– शिक्षा क्षेत्र, प्रशासनिक क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र, व्यक्तित्व निर्माण क्षेत्र, शारीरिक चिकित्सा, मानसिक चिकित्सा, भावात्मक परिष्कार आदि। इन क्षेत्रों से संबंधित समस्याओं के समाधान में जीवन विज्ञान की संभावनाओं का अध्ययन जीवन विज्ञान के निष्कर्षों एवं प्रयोगों के उपयोग द्वारा किया जाता है।

1.6.1. जीवन विज्ञान – विभिन्न दृष्टियों में

मुनि महेन्द्र कुमार ने जीवन विज्ञान को समझाते हुए लिखा है कि शिक्षा जगत् में बच्चों के दृष्टिकोण परिवर्तन, व्यवहार परिष्कार और सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास के लिए प्रेक्षाध्यान का व्यावहारिक उपयोग जीवन विज्ञान है। जीवन विज्ञान का केन्द्रीय तत्त्व प्रेक्षाध्यान का प्रायोगिक प्रशिक्षण है।

1. जीवन विज्ञान – क्रिया – कलाप, कार्य एवं सेवाओं की दृष्टि से

- जीवन विज्ञान का प्रमुख कार्य व्यक्तियों की उन आंतरिक, मानसिक व भावनात्मक समस्याओं को दूर करने में मदद करना है जिसे वह एक संगठित समूह की सेवाओं को प्रयोग करने में या एक संगठित समूह के सदस्य के रूप में अपने कार्य सम्पादन में अनुभव करते हैं।
- जीवन विज्ञान का कार्य व्यक्ति में उन क्षमताओं का विकास करना है जिससे वह संतुलित जीवन जी सके और अपने सर्वांगीण व्यक्तित्व को विकसित कर सके।
- जीवन विज्ञान का कार्य व्यक्ति के स्व–ज्ञान, आंतरिक आनन्द व असीम शक्ति को जागृत करना है जिससे व्यक्ति अपनी परिस्थितियों के साथ समायोजन कर सके।

2. जीवन विज्ञान – एक प्रणाली एवं प्रक्रिया के रूप में

जीवन विज्ञान एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति के अकेले या समूह में वैसी वर्तमान या भविष्य में आने वाली सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक अड़चनों से निपटने में सहायता देता है जो उनके जीवन को अस्त–व्यस्त कर देती हैं।

3. जीवन विज्ञान – विज्ञान एवं कला के रूप में

- जीवन विज्ञान एक विज्ञान और एक कला दोनों ही है। यह जीवन के उन मूल सात तत्त्वों के परस्पर संबंधों के विज्ञान पर आधारित है एवं उनके प्रशिक्षण के अभ्यासजन्य कौशल द्वारा निष्पन्न होता है।
- जीवन विज्ञान एक ऐसी कला है जिसमें योग प्रशिक्षण का प्रयोग वैयक्तिक क्षमताओं के जागरण के लिए किया जाता है। ऐसा करने में एक ऐसी वैज्ञानिक प्रणाली प्रेक्षाध्यान क प्रयोग किया जाता है जिसमें लोगों का प्रशिक्षण इस ढ़ंग से किया जाता है कि वे स्वयं अपना प्रशिक्षण कर सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. जीवन विज्ञान – एक जीविकोन्मुखी (व्यावसायिक) सेवा के रूप में

- ''जीवन विज्ञान योग प्रशिक्षण'' एक जीविकोन्मुखी (व्यावसायिक) सेवा है जिसका उद्देश्य लोगों को अपनी व्यक्तिगत क्षमताओं से परिचित कराना, उनके विकास, परिष्कार व जागरण की पद्धति के अभ्यास में सहायता करना है जिससे वे अपनी इच्छाओं एवं योग्यताओं तथा सामाजिक इच्छाओं एवं योग्यताओं में सामंजस्य करके संतोषजनक जीवन को जी सकें।
- जीवन विज्ञान जीविकोन्मुखी (व्यावसायिक) सेवा का एक रूप है जिसका आधार ज्ञान एवं निपुणताओं के ऐसे मिश्रण पर है जो व्यक्तियों की आंतरिक क्षमताओं के विकास एवं उसकी बाधाओं को दूर करने में व्यक्ति की सहायता करता है।
- जीवन विज्ञान एक जीविकोन्मुखी (व्यावसायिक) सेवा है जो जीवन के संघटकों के अन्तः सम्बन्धों की प्राचीन प्रज्ञा वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित है। यह व्यक्तियों को अकेले या समूह में सहायता करता है ताकि वे सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन में संतुष्टि एवं स्वतंत्रता प्राप्त कर सकें।

1.7. जीवन विज्ञान का दृष्टिकोण

प्रत्येक वस्तु के साथ नियम जुड़े होते हैं। कुछ हमें ज्ञात हैं, कुछ अज्ञात हैं। सारे नियम हम नहीं जानते। अनेक नियम अज्ञात ही रह जाते हैं। जैसे–जैसे विकास हो रहा है अज्ञात नियम ज्ञात होते जा रहे हैं। मनुष्य इन नियमों का उपयोग करता है किन्तु जो ज्ञात हैं वे बिन्दु मात्र हैं। अज्ञात का समूह अभी भी अछूता ही है। ज्ञात अल्प हैं, अज्ञात अनन्त हैं। हमारे जीवन के भी अनन्त नियम हैं। जीवन विकास के अनगिनत नियम हैं। हम बहुत अल्प नियमों को जानते हैं और जैसे–जैसे आगे बढ़ते जाते हैं, जानने की सीमा भी आगे बढ़ती जाती है।

शिक्षा जगत् में अनेक विद्याशाखाएं हैं। जब–जब नये–नये प्रश्न, जिज्ञासाएं एवं समस्याएं उभरती हैं उसी संदर्भ में नई–नई विद्याशाखाएं उभरती रहती हैं। प्रत्येक नई विद्याशाखा का समस्याओं के समाधान में एक निश्चित दृष्टिकोण रहता है। उसका अपना परिप्रेक्ष्य रहता है। उसके अध्ययन के लक्ष्य व उद्देश्य रहते हैं। अपने लक्ष्य एवं दृष्टिकोण से अध्ययन व अनुसंधान होने पर उसका विकासक्रम आगे से आगे बढ़ता है। कालान्तर में समस्या समाधान में वह विद्या शाखा नई दृष्टि प्रदान करती है जिससे व्यक्ति और समाज लाभान्वित होते हैं।

सामान्यतया परिप्रेक्ष्य का आशय यह है कि किसी विषय के अंतर्गत अध्ययन की सामग्री को किस दृष्टि से देखा जाए। किसी भी घटना को देखने हेतु अनेक दृष्टिकोण हो सकते हैं। अध्ययनकर्त्ता उस घटना का किसी एक दृष्टिकोण से अध्ययन करता है। उसी पर केन्द्रित हो जाता है। अन्य दृष्टिकोणों से अपना अध्ययन का विषय नहीं बना पाता है। यह प्रवृत्ति ही अध्येता के विशेष (Perspective) या दृष्टिकोण की परिचायक है। किसी विषय–वस्तु का निश्चित उद्देश्य के लिए किया गया अध्ययन ही उसे एक निश्चित दिशा प्रदान करता है। दृष्टिकोण की अनेकता के कारण एक ही विषय वस्तु के अध्ययन की अनेक परम्पराएं जन्म लेती हैं। वे परम्पराएं एक–दूसरे के पूरक एवं सहायक होती हैं। अनेक बार इस सम्बन्ध में मतभेद दिखाई देता है किस घटना या विषय–वस्तु का अध्ययन किस विषय के अंतर्गत किया जाए और उसी के अंतर्गत क्यों किया जाए? यह प्रश्न इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि यह प्रश्न कि उस विशेष घटना या विषय–वस्तु का अध्ययन किस परिप्रेक्ष्य या दृष्टिकोण या संदर्भ को ध्यान में रखकर किया जाए। एक विषय–वस्तु या घटना का अध्ययन अलग–अलग विद्याशाखाएं कर सकती हैं परन्तु उनके अध्ययन का दृष्टिकोण, परिप्रेक्ष्य या संदर्भ भिन्न–भिन्न होंगे। विभिन्न विद्याशाखाओं में विषय–वस्तु के समान होने पर भी परिप्रेक्ष्य की भिन्नता उन विषयों की सीमा में भिन्नता ला देती है।

अनेक ऐसी विद्याशाखाएं हैं जो जीवन का अध्ययन करती हैं; जैसे– जीवन विज्ञान, मनोविज्ञान, शरीरविज्ञान, पर्यावरणविज्ञान, दर्शनशास्त्र, धर्म आदि। इस प्रकार विभिन्न विद्याशाखाओं में जीवन को अपने–अपने दृष्टिकोण से समझने का प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार जीवन की घटनाओं को अनेक दृष्टिकोण से समझा एवं विश्लेषित किया जा सकता है। इस प्रकार हर विषय अपने व्यापक परिप्रेक्ष्य के दायरे में जीवन को समझाने का दायित्व वहन करता है। उदाहरण के लिए हम देखते हैं कि जीव विज्ञान का परिप्रेक्ष्य जीव–जन्तुओं का जीवन है। अर्थात् एक जीव वैज्ञानिक किसी विषय–वस्तु का अध्ययन जीव–जन्तुओं के जीवन से प्रारम्भ एवं अन्त तक के कालचक्र, उसके तंत्र व अन्तःक्रिया के अंतर्गत आता है। पर्यावरण विज्ञान का परिप्रेक्ष्य पर्यावरण का संतुलन है। वह किसी विषय–वस्तु का अध्ययन पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों के दायरे में करता है। वनस्पति शास्त्र का अध्ययन का परिप्रेक्ष्य वनस्पति है। अर्थात् उसके अन्तर्गत वनस्पति वैज्ञानिक वनस्पति से सम्बंधित संरचना, प्रक्रिया, जीवनचक्र–गुणधर्म के महत्त्व का अध्ययन करता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है। शरीर विज्ञान का अध्ययन का परिप्रेक्ष्य शरीर है। इसके अंतर्गत शरीर शास्त्री शरीर संरचना और शरीर क्रिया का अध्ययन करता है। मनोविज्ञान का अध्ययन केन्द्र व्यक्ति है। अत: वह व्यक्तित्व (Personality) के अध्ययन पर विशेष जोर देता है। इसके अंतर्गत मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के आंतरिक व बाह्य व्यवहार व क्रियाओं का अध्ययन करता है। इसी प्रकार मनावशास्त्र विश्व के किसी भी क्षेत्र में निवास करने वाले आदिम मानव (Primitive man) के जीवन के समस्त पक्षों का अध्ययन करता है। यही मानवशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य है।

जीवन विज्ञान इनसे सर्वथा भिन्न परिप्रेक्ष्य से जीवन का अध्ययन व विश्लेषण करता है। जीवन विज्ञान जीवन का अध्ययन इस विशेष दृष्टिकोण से करता है कि जीवन में मूल्यों का विकास कैसे हो? जीवन में संतुलन कैसे हो? वे कौन से घटक तत्त्व हैं जो मूल्यों के विकास एवं संतुलन में भागीदार होते हैं? वह कौन सी तकनीक, पद्धति या प्रक्रिया है जो मूल्य–विकास व संतुलन में सहायक होती है एवं वे किस प्रकार से सहयोग करती हैं? जीवन के इस प्रकार के विश्लेषण व अभ्यास पद्धतियों को ही सामान्य रूप से जीवन विज्ञान कहा जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी घटना या विषय वस्तु का विश्लेषण अनेक विज्ञान या विषय करते हैं परन्तु उनके अध्ययन का परिप्रेक्ष्य अलग–अलग होता है। मनुष्य, समाज और उसके जीवन को अनेक परिप्रेक्ष्यों से समझा एवं विश्लेषित किया जाता है। अर्थशास्त्र उसके आर्थिक पक्ष का, मनोविज्ञान उसके वैयक्तिक / मानसिक पक्ष का, इतिहास उसके ऐतिहासिक पक्ष का, राजनीति विज्ञान उसके राजनैतिक पक्ष का, मानवशास्त्र उसके आदिम जीवन के पक्ष का, लोक प्रशासन उसके प्रशासिनक पक्ष का और समाजशास्त्र मोटे तौर पर उसके 'सामाजिक पक्ष' का अध्ययन करता है। जीवन विज्ञान जीवन–मूल्यों के विकास का परिप्रेक्ष्य लेकर अध्ययन करता है।

1.7.1. जीवन विज्ञान के परिप्रेक्ष्य का अर्थ

जीवन विज्ञान की परिभाषाओं की व्याख्या हम इससे पूर्व विस्तार से दे आये हैं। उसी परिभाषिक विश्लेषण के आधार पर हम यहां 'जीवन विज्ञान के परिप्रेक्ष्य' को सुविधापूर्ण ढंग से समझ सकते हैं। जीवन विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में हम व्यक्ति के जीवन के आंतरिक घटकों का अध्ययन एवं प्रशिक्षण करते हैं। इससे जीवन के एक ऐसे यथार्थ का सृजन होता है जो जीवन के मूल्यों– स्वबोध, आत्मविश्वास आदि का निर्माण करता हैं जिसका व्यक्ति के जीवन मे बहुत मूल्य है।

जब हम जीवन विज्ञान के परिप्रेक्ष्य की बात करते हैं तो इसका अभिप्राय यही है कि हम जीवन को मानवीय मूल्यों के संदर्भ में अध्ययन करते हैं न कि एक इतिहासकार, मनोवैज्ञानिक, अर्थशास्त्री या राजनीतिशास्त्री के रूप में। इस प्रकार जीवन विज्ञान एक विशेष दृष्टिकोण से जीवन का अध्ययन करता है। जीवन विज्ञान के परिप्रेक्ष्य या दृष्टिकोण के अंतर्गत एक पक्ष तो जीवन की मूल्यवान आंतरिक क्षमताएं हैं जिन्हें हम शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, नैतिक व आध्यात्मिक मूल्य के रूप में जानते हैं, इनका अध्ययन करते हैं। इसी दृष्टिकोण का दूसरा पक्ष यह है कि उन तकनीकों का भी वैज्ञानिक अध्ययन व अभ्यास कौशल को विकसित करते हैं जो इनके विकास में सक्षम हैं।

इस प्रकार कोई विषयवस्तु किसी एक विषय के अंतर्गत आये, यह आवश्यक नहीं है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हम उस वस्तु का किस दृष्टिकोण से अध्ययन करते हैं अथवा हमारे अध्ययन का संदर्भ क्या है? इस प्रकार दृष्टिकोण की विभिन्नता के कारण हम एक ही वस्तु का अनेक दृष्टिकोणों से अध्ययन कर सकते हैं। कुछ उदाहरणों द्वारा इसे अधिक स्पष्ट किया जा सकता है– एक भवन का अध्ययन एक वनस्पतिशास्त्री इस दृष्टिकोण से करेगा कि भवन में लगी लकड़ी कहां लगी है एवं किस वर्ग में आती है? भवन का अध्ययन एक अर्थशास्त्री भी कर सकता है जो यह देखने का प्रयास करेगा कि कितने में खरीदा गया? कितने में बेची गयी? उससे विक्रेताओं को क्या लाभ मिला अथवा क्या हानि हुई? एक सामाजशास्त्रीय भवन को प्रस्थिति प्रतीक (Status Symbol) के रूप में देखेगा। वह यह देखेगा कि उस भवन में कौन व्यक्ति रहता है? उसका समाज में क्या स्थान है? जीवन विज्ञान का अध्येता मकान का इस दृष्टिकोण से अध्ययन करेगा कि यह भवन मानवीय मूल्यों के विकास में किस प्रकार सहयोगी बन सकता है? जीवन विज्ञान के शिक्षण एवं प्रशिक्षण की तकनीकी अभ्यास के लिए उपयुक्त है या नहीं? इसमें आन्तरिक क्षमताओं के लिए किया जाने वाला अभ्यास संभव हो पायेगा या नहीं? कौन सा अभ्यास इसमें किया जा सकता है, कौन सा नहीं किया जा सकता है? यह दृष्टिकोण जीवन विज्ञान का परिप्रेक्ष्य है।

एक और उदाहरण हम क्रिकेट का ले सकते है। क्रिकेट के खेल के अध्ययन के भी अनेक परिप्रेक्ष्य या दृष्टिकोण हो सकते हैं। एक अर्थशास्त्री यह देखने का प्रयास करेगा कि इस खेल का आयोजन करने में कुल कितनी लागत आयेगी एवं टिकटों के बिक जाने से कितनी आय होगी? इससे कुल कितना लाभ या हानि होने की संभावना है? यह अर्थशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य से क्रिकेट खेल का अध्ययन है। एक इतिहासकार (Historian) की रुचि नि:सन्देह क्रिकेट के इतिहास में होगी। वह क्रिकेट की उत्पत्ति एवं उसके क्रमिक विकास में अपनी रुचि प्रदर्शित करेगा। एक राजनीतिशास्त्री (Politician) यह देखने का प्रयास करेगा कि किस राष्ट्र के साथ क्रिकेट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के माध्यम से राजनीतिक सम्बन्धों को सुधारा जा सकता है अथवा क्रिकेट के कप्तान का चयन उसके विशिष्ट राजनीतिज्ञ सम्बन्धों के कारण हुआ है। एक मनोवैज्ञानिक (Psychologist) खिलाड़ियों के मनोभावों या दर्शकों की खिलाड़ियों के प्रति मनःस्थिति का अध्ययन कर सकता है। एक समाजशास्त्री (Socialogist) खिलाड़ियों के सम्बन्धों, सहयोग, संघर्ष, प्रतिस्पर्धा के दृष्टिकोण से एवं उनकी प्रस्थिति तथा भूमिका (Status and Role) के आधार पर तथा समग्र रूप में अलग–अलग खिलाड़ियों के आधार पर पायी जाने वाली व्यवस्था का अध्ययन करेगा। यही समाजशास्त्री परिप्रेक्ष्य है। एक जीवन विज्ञान का अध्येता एवं प्रशिक्षक इस बात का अध्ययन करेगा कि खेल में सफलता के लिए खिलाड़ियों में एकाग्रता, आत्मविश्वास, स्वास्थ्य, साहस, नैतिक मूल्य, सामाजिक मूल्य व भावनात्मक मूल्यों की भूमिका व उनका विकास कितना है? जीवन विज्ञान की प्रकृति को समझने का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है कि इसका अध्येता, अभ्यासी जो कुछ करते हैं, उस पर ध्यान दिया जाये, उनके कथन मात्र पर नहीं। इससे यह ज्ञात होता है कि विषयों की विभिन्नता का मूलाधार विषयवस्तु की भिन्नता नहीं है क्योंकि समस्त ज्ञान शाखाएं जो जीवन का अध्ययन कर रहे हैं वे एक ही हैं। भिन्नता केवल अध्ययन हेतु अपनाये गये दृष्टिकोण के कारण है। इस प्रकार जीवन विज्ञान का परिप्रेक्ष्य एक विशिष्ट दृष्टिकोण से अन्य ज्ञान शाखाओं से पृथक् है।

इस प्रकार जीवन विज्ञान के सामने जीवन और जीवन–मूल्यों से सम्बन्धित निश्चित दृष्टिकोण, प्रश्न और जिज्ञासाएं हैं–जैसे जीवन–मूल्यों का विकास कैसे हो? किस प्रकार जीवन को स्वस्थ एवं संतुलित बनाया जा सके, जीवन का परिष्कार कैसे हो? जीवन का समग्र विकास कैसे हो? किस प्रकार व्यक्ति सफल एवं संतुष्ट जीवन जी सके? इत्यादि।

1.8 जीवन विज्ञान के लक्ष्य

जीवन विज्ञान के लक्ष्य वर्तमान युग में चुनौती भरे कार्य हैं। वर्तमान युग में बाह्य वातावरण आकर्षण व्यक्ति को अपने अन्दर झांकने के लिए बड़ी कठिनाई से ही अवसर प्रदान करते हैं। जीवन विज्ञान के सामने मुख्य लक्ष्य हैं–

1. आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण करना। आध्यात्मिक व्यक्तित्व अर्थात् ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करना जिसमें आध्यात्मिक चेतना जागृत हो जो स्वयं के प्रति जागरूक हो एवं दूसरों के प्रति संवेदनशील हो। वैज्ञानिक व्यक्तित्व अर्थात् ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण जिसमें सत्यनिष्ठा हो, प्रयोगधर्मिता हो, साहस हो, बुद्धि और प्रज्ञा का संतुलन हो।
2. प्रेक्षाध्यान पद्धति का वैज्ञानिक अध्ययन व अनुसंधान करना।
3. जीवन के संघटक तत्त्वों का अध्ययन व अनुसंधान करना जिससे जीवन के ज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं क्रियात्मक पक्ष के विकास व परिष्कार के नियमों की खोज चलती रहे।
4. स्वस्थ समाज की संरचना के लिए ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करना जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की समस्याओं के समाधान में वैज्ञानिक ढ़ंग से सहायता प्रदान कर सके। जैसे शिक्षण –प्रशिक्षण, अध्यापन, अनुसंधान, क्षेत्रीय कार्य आदि।

1.9 जीवन विज्ञान के उद्देश्य

जीवन विज्ञान की कुछ परिभाषाओं मे जीवन विज्ञान के लक्ष्य स्पष्ट होते हैं। जीवन विज्ञान का सम्बन्ध जीवन के संघटक तत्त्वो की समझ और उनके प्रशिक्षण से है। इसका संबंध मुख्य रूप से जीवन के संघटक तत्त्वों के परस्पर अन्तःक्रिया से होने वाली व्यक्ति की आंतरिक स्थिति एवं बाह्य वातावरण से समाज में उत्पन्न होने वाली जीवन–मूल्यों के ह्रास एवं व्यक्तित्व विघटन जैसी समस्याओं से है। जीवन विज्ञान प्रशिक्षण का उद्देश्य जीवन के सभी संघटक तत्त्वों का समुचित प्रशिक्षण करना है जिससे व्यक्ति अपनी आंतरिक क्षमताओं से परिचित हो सके, स्वयं अपनी बाधाओं को दूर कर अपना सर्वांगीण विकास कर सके, जीवन–मूल्यों को जीते हुए समाज के साथ सही रूप में समायोजन बिठा सके। सामाजिक दृष्टिकोण से विज्ञान का उद्देश्य भावों में परिवर्तन द्वारा व्यवहार शुद्धि कर व्यक्ति के चरित्र का विकास करना है जिससे समाज में चरित्र निर्माण, नैतिक निष्ठा, अहिंसा में विश्वास व मानवीय सम्बंधों में सुधार को प्रतिष्ठित किया जा सके।

जीवन विज्ञान शिक्षण के दो मुख्य उद्देश्य हैं– वैयक्तिक एवं सामाजिक मूल्यों का जीवन में समुचित विकास करना। जीवन विज्ञान शिक्षण उन व्यक्तियों को सहायता प्रदान करता है जिन्हें अपनी क्षमताओं के विकास के साधन एवं उपयोग का ज्ञान नहीं है। जो स्वयं अपनी मानसिक व भावनात्मक समस्याओं का समाधान नहीं कर पाते हैं। जीवन विज्ञान का उद्देश्य व्यक्ति को पराश्रित करना नहीं है। इसके विपरीत व्यक्ति को अपने प्रति जागरूक बनाना है, वास्तविकताओं का सामना करने एवं अपनी क्षमताओं के विकास में सहायता करना है। जीवन विज्ञान का उद्देश्य व्यक्ति के उस दृष्टिकोण, भाव और व्यवहार को परिष्कृत करने में सहयोग करना है जो चारित्रिक पतन, व्यक्तित्व विघटन एवं कुसमायोजन को जन्म देते हैं या बढ़ावा देते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जीवन विज्ञान में संतुलन लाने वाले जिन तत्त्वों पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया जाता है। वे हैं– बुद्धि और प्रज्ञा का संतुलन, अनुकम्पी और परानुकम्पी नाड़ी तंत्र का संतुलन, दायें–बायें मस्तिष्क का संतुलन तथा ज्ञाता और ज्ञेय जगत् का संतुलन। इन तत्त्वों के ज्ञान एवं संतुलन लाने वाली योग पद्धति प्रेक्षाध्यान का उपयोग करके जीवन विज्ञान व्यक्ति एवं समूह की रचनात्मक शक्तियों को विकसित करने का प्रयास करता है। जिससे व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण, सौहार्दमय, संतुष्ट एवं सफल जीवन जी सके। जीवन विज्ञान का प्रशिक्षण लोकतंत्रीय सिद्धान्त, अपने दायित्व एवं कर्त्तव्यों के प्रति भी जागरूकता पैदा करता है जिससे व्यक्ति अच्छा नागरिक भी बन सके। इस प्रकार जीवन विज्ञान के अनेक उद्देश्य उभर कर सामने आते हैं–

1. जीवन व उसके घटक तत्त्वों को समझने एवं उनको प्रशिक्षित करने में व्यक्ति की सहायता देना जिससे व्यक्ति अपने वैयक्तिक जीवन और सामाजिक जीवन के बीच समायोजन स्थापित कर सके।
2. व्यक्तियों की अन्तर्दृष्टि (प्रज्ञा) एवं सृजनशीलता बढ़ाने में सहयोग करना जिससे व्यक्ति अपनी क्षमताओं का प्रयोग मानव कल्याण और प्राकृतिक–पर्यावरण के अनुकूल जीवन व्यतीत करने में कर सके।
3. व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं को संयमित एवं योग्यताओं को विकसित करने में सहायता देना जिससे उसका सर्वांगीण विकास हो।
4. व्यक्ति की अपूर्ण वैयक्तिक, सामूहिक और सामुदायिक आवश्यकताओं के कारण उत्पन्न होने वाले अभ्यन्तर वैयक्तिक (आन्तरिक), अन्तर्वैयक्तिक (परस्पर, एक–दूसरे में) समायोजन संबंधी समस्याओं के निदान एवं निराकरण करने में सहायता प्रदान करना।
5. व्यक्ति की आंतरिक जगत् से जुड़ी हुई मानसिक व भावनात्मक समस्याओं को दूर करने में सहायता प्रदान करना।
6. व्यक्ति को अपनी विकृतियों–मादक वस्तुओं के सेवन आदि से मुक्त होने में सहयोग प्रदान करना।
7. व्यक्ति को संतुलित, संयमित, प्रशान्त एवं स्वस्थ जीवन जीने में सहायता प्रदान करना।
8. सामाजिक जीवन में व्यक्ति को सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने, मानवीय समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता को विकसित करने, नैतिक मूल्यों पर अडिग रहने और सामाजिक व्यवहार को निश्छल एवं मैत्रीपूर्ण बनाने में सहायता प्रदान करना।
9. सामाजिक अन्याय के प्रति अहिंसक प्रतिरोध की क्षमता को विकसित करना।

1.10 सारांश

1. जीवन मूल्यों के गिरते स्तर को ऊपर उठाने की दृष्टि से विकसित इस नई विद्याशाखा का नाम जीवन विज्ञान है। इसकी मान्यता है कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर जीवन मूल्यों के विकास के लिये स्वतन्त्र प्रशिक्षण व अभ्यास जरुरी है।

2. विज्ञान के अनुसंधानों से जीवन के सभी क्षेत्रों में विकास हुआ है किन्तु जीवन मूल्यों के विकास की दृष्टि से विशेष प्रगति नहीं हुई है। दो मार्च 1949 को आचार्य श्री तुलसी ने अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन किया, यह जीवन मूल्यों के विकास हेतु प्रथम चरण बना। द्वितीय चरण के अन्तर्गत आचार्य श्री महाप्रज्ञ द्वारा योग साधना की पद्धति प्रेक्षाध्यान विकसित की गई। इसका मानना है कि व्यक्ति का दृष्टिकोण व स्वभाव बदला जा सकता है। तृतीय चरण में 28 दिसम्बर 1978 को बच्चों में मूल्यों के विकास हेतु जीवन विज्ञान नयी विद्या शाखा का नामकरण किया गया।

3. जीवन विज्ञान में योग शिक्षा, नैतिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा तथा मूल्यपरक शिक्षा स्वतः समाहित है। जीवन विज्ञान के सैद्धान्तिक अध्ययन व प्रायोगिक अभ्यास से आध्यात्मिक–वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण संभव है। जीवन विज्ञान जीवन के नियमों की खोज करता है। जीवन विज्ञान के सात मुख्य अंग है– शरीर, श्वास, प्राण, मन, भाव, कर्म और चेतना। इनके प्रशिक्षण व परिष्कार से जीवन मूल्यों का विकास संभव होता है। जीवन विज्ञान प्रविधि में अहिंसा, अनेकान्त, अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान सम्मिलित हैं।

4. जीवन विज्ञान का विषय कला भी है और विज्ञान भी। प्रेक्षाध्यान और योग के वैज्ञानिक अध्ययन में सत्यापनशीलता, वस्तुनिष्ठता, निश्चयात्मकता तथा पूर्वानुमान की क्षमता है।

5. स्वरूप की दृष्टि से जीवन विज्ञान की परिभाषा के तीन आयाम हैं। जीवन के मुख्य अंग, उनके विकास के साधन, जीवन के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में उनका उपयोग। जीवन विज्ञान को कार्य की दृष्टि से प्रणाली व प्रक्रिया के रूप में, विज्ञान और कला के रूप में जीविकोन्मुखी विद्या शाखा के रूप में भी परिभाषित किया गया है।

6. मनोविज्ञान, शरीरविज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, दर्शनशास्त्र, वनस्पति विज्ञान, जीव विज्ञान तत्संबंधी विषय का अध्ययन करते हैं, उसी प्रकार जीवन विज्ञान भी जीवन का अध्ययन करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

I- वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. जीवन विज्ञान के कार्यों के विस्तार के साथ इसके .... भी बदलता एवं बढ़ता गया।
2. प्रत्येक संस्थान अपने–अपने विशेषज्ञों के लिए .... को प्रस्तुत करते हैं।
3. जीवन विज्ञान का केन्द्रिय तत्त्व .... है।
4. अनेक नियम .... अज्ञात ही रह जाते हैं।
5. जीवन विज्ञान एक .... जीवन का अध्ययन करता है।

II- लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. जीवन विज्ञान को समझने के लिए क्या आवश्यक है?
2. मनुष्य मानदंड और मूल्यों का निर्धारण किसके आधार पर करता है?
3. जीवन के मुख्य अंग कितने हैं?
4. जीवन विज्ञान का क्या उद्देश्य है?
5. मनोविज्ञान के अध्ययन का केन्द्र कौन है?
6. विशिष्ट परिप्रेक्ष्य में जीवन को समझाने का प्रयास किसने किया है?

III- निबन्धात्मक प्रश्न

1. जीवन विज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभमि को समझाइये।
2. जीवन विज्ञान को समग्रता से कैसे परिभाषित किया जा सकता है? विश्लेषण करें।

1.12 सन्दर्भ पुस्तकें

1. (सं.) मुनि धर्मेश : जीवन विज्ञान की रुपरेखा. जैन विश्वभारती संस्थान. लाडनूं.।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–2 जीवन विज्ञान के मूल तत्त्व एवं बहुआयामी शिक्षा प्रणाली

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 जीवन विज्ञान के मूल तत्त्व
2.2.1 शरीर
2.2.2 श्वांस
2.2.3 प्राण
2.2.4 मन
2.2.5 भाव, आभामण्डल, लेश्या
2.2.6 कर्म
2.2.7 चेतना
2.3 जीवन विज्ञान बहुआयामी शिक्षा प्रणाली
2.3.1 जीवन विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र।
2.3.2 जीवन विज्ञान सामान्य विज्ञान या विशेष विज्ञान।
2.3.3 जीवन विज्ञान का अन्य ज्ञान शाखाओं से सम्बन्ध।
2.4 जीवन विज्ञान और अन्य शाखाएं
2.4.1 जीवन विज्ञान और भौतिक विज्ञान।
2.4.2 जीवन विज्ञान और जीव विज्ञान
2.4.3 जीवन विज्ञान और शरीर शास्त्र।
2.4.4 जीवन विज्ञान और मनोविज्ञान।
2.4.5 जीवन विज्ञान और समाजशास्त्र का सम्बन्ध।
2.4.6 जीवन विज्ञान और तत्वज्ञान या दर्शनशास्त्र।
2.4.7 जीवन विज्ञान और तर्कशास्त्र, सौन्दर्य एवं नीतिशास्त्र।
2.4.8 जीवन विज्ञान और नीतिशास्त्र।
2.4.9 जीवन विज्ञान और शिक्षाशास्त्र।
2.5 सारांश
2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
2.7 संदर्भ ग्रंथ

2.0 प्रस्तावना

'पढमं नाणं तओ दया' पहले ज्ञान फिर सदाचरण – यह भारतीय चिन्तन का चिरन्तन निष्कर्ष रहा है। सदाचार के बाद जानने का द्वार बन्द नहीं होता, फिर जानो फिर करो– यह द्वार सदा खुला रहता है। इस मार्ग पर चलकर ही मानव विकास की ऊँचाईयों को छूआ जा सकता है। जिस विषय का हमें ज्ञान नहीं होता है उसके आचरण में हमारा आकर्षण नहीं होता। अज्ञान सबसे बड़ी बुराई है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यथार्थ को जानना बुराई को चुनौती है। ज्ञान को पुष्ट करना अनाचरण को उखाड़ने की दिशा में प्रस्थान है। शिक्षा का स्वयंभू उद्देश्य है– अज्ञात का ज्ञात करना एवं मानव को सदाचार में प्रतिष्ठित करना। इसी दृष्टि से 'णाणस्स सारमायारो' अर्थात् 'ज्ञान का सार है– आचार' को जैन विश्वभारती संस्थान के ध्येय सूत्र के रूप में अपनाया गया है।

जीवन विज्ञान के शिक्षण प्रशिक्षण में जीवन को समझना भी आवश्यक है। हमारे जीवन में भी अनेक ऐसी बातें हैं जो हमें ज्ञात नहीं हैं। उनका हम सही उपयोग नहीं कर सकते। जो शक्तियां हमारे अन्दर निहित हैं उनसे हम अपरिचित है। उन अपरिचित शक्तियों को जानने का एक माध्यम है–जीवन विज्ञान। जीवन विज्ञान अर्थात् जीवन का विज्ञान। जीवन के नियमों की खोज जिससे हम अपनी शक्तियों को जान सकें, एक संतुलित एवं स्वस्थ जीवन जी सकें। जीवन के संघटक तत्वों का ज्ञान एवं उनके पारस्परिक सम्बन्धों की खोज जीवन विज्ञान के मूल तत्त्व हैं।

2.1 उद्देश्य

शिक्षा के क्षेत्र में अनेक विद्या शाखाएं है। प्रत्येक विद्याशाखा अलग-अलग होते हुए भी अन्य अनेक विद्या शाखाओं से जुड़ी हुई है। जीवन विज्ञान भी अन्य अनेक विद्या शाखाओं से सम्बन्धित है। जीवन अनेक संघटक तत्वों से बना है। उनके ज्ञान और प्रशिक्षण के लिए जीवन विज्ञान में अन्य विद्या शाखाओं का सहयोग भी लिया जाता है। जिससे जीवन विज्ञान विषय द्वारा विद्यार्थियों को जीवन के घटक तत्वों का पूरा ज्ञान हो एवं उसके विकास में वे सहयोगी बन सके। प्रस्तुत अध्याय में आप जान पायेंगे कि -

- जीवन विज्ञान के मूल तत्त्व कौन-कौन से है?
- जीवन विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र और विषय क्षेत्र क्या है?
- जीवन विज्ञान का अन्य विद्या शाखाओं से क्या सम्बन्ध है?

2.2 जीवन विज्ञान के मूल तत्त्व

जीवन क्या है– यह सबसे पहला और सबसे बड़ा प्रश्न है। पहला इसलिये कि जीवन के होने पर सब कुछ होता है और जीवन के न होने पर कुछ भी नहीं होता। मनुष्य की सारी प्रवृत्तियां जीवन के पीछे चलती हैं। जीवन की समाप्ति का अर्थ है–मानसिक, वाचिक, कायिक, सभी प्रवृत्तियों की समाप्ति। बड़ा इसलिए कि जीवन के अस्तित्व काल में जिन वस्तुओं का मूल्य होता है, जीवन की समाप्ति के साथ वे वस्तुएं उसके लिये मूल्यहीन हो जाती हैं।

जीवन के अंग हैं–

1. शरीर,	2. श्वास,
3. प्राण,	4. मन,
5. भाव / आभामंडल / लेश्या,	6. कर्म एवं
7. चित्त–चेतना।	

इन सात अंगों की समष्टि का नाम है जीवन। किसी एक कोण से होने वाली जीवन की परिभाषा पूर्ण नहीं हो सकती। जीवन की समग्र परिभाषा व विकास के लिये इन सातों बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है। ये अंग साधक भी बनते हैं, बाधक भी बनते हैं। जीवन के विकास के हेतु भी बनते हैं और अवरोधक भी बनते हैं। यदि इन्हें शिक्षित कर लिया जाता है तो यह साधक बन सकते हैं, अशिक्षित रहते हैं तो बाधक भी बन जाते हैं। प्रश्न है अभ्यास देने का, शिक्षित करने का। अतः जीवन विज्ञान में इन सातों अंगों पर विचार और प्रेक्षाध्यान के प्रयोग किये गये हैं।

2.2.1. शरीर (Body)

जीवन का पहला घटक तत्त्व है शरीर। एक चिकित्सक के सामने भी सबसे पहले शरीर होता है। सारी बातें शरीर में होती हैं। बहुत रहस्यपूर्ण है हमारा शरीर। आज मेडिकल साइंस में काफी अन्वेषणायें की गई हैं, बहुत कुछ खोजा गया है किन्तु जो खोजा गया है वह एक बिन्दु जितना है। हमारा ज्ञान का जगत बहुत छोटा सा है। अज्ञान एक महासागर है। मनुष्य अपने मस्तिष्क और इन्द्रियों से बहुत खोज करता है किन्तु सत्य इतना अनंत है कि उसके कुछेक पर्याय (अवस्थाएं) ही सामने आ पाती हैं। एक चिकित्सक चिकित्सा की दृष्टि से शरीर को समझता है। वह नाड़ी तन्त्र और ग्रंथि तन्त्र दोनों को समझने का प्रयत्न करता है किन्तु जीवन विज्ञान के संदर्भ में शरीर को पढ़ना होता है तो पढ़ने का दृष्टिकोण बदल जाता है। हमारे शरीर में कुछ एक ऐसे केन्द्र हैं जहां चेतना सघन रूप से केन्द्रित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है। प्रेक्षाध्यान की भाषा में उन्हे चैतन्य केन्द्र कहा जाता है। उन पर ध्यान के प्रयोग कराये जाते हैं। यदि आध्यात्मिक शक्ति को जानना है तो दर्शन केन्द्र पर ध्यान का प्रयोग करना होता है। संतुलित, अनुशासित और आत्म–नियंत्रित होना है तो विशुद्धि केन्द्र पर ध्यान करना होता है। नशे की आदत छोड़ना है तो कान पर ध्यान करना होता है। नशा मुक्ति का केन्द्र है अप्रमाद केन्द्र।

प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में शरीर को पढ़ने से यह भी समझ में आता है कि भावात्मक परिवर्तन के केन्द्र कहां–कहां हैं। भावात्मक परिवर्तन के प्रयोग आध्यात्मिक प्रयोग हैं। केवल शरीर के रहस्यें को खोज कर कुछेक ध्यान के ऐसे प्रयोग कराए जाते हैं जिनसे एकाग्रता बढ़ती है, भावात्मक समस्याएं समाहित होती हैं।

शरीर के दस तन्त्र हैं–

1. अस्थि तंत्र (Skeletal System),
2. मांसपेशीय तंत्र (Mascular System),
3. पाचन तन्त्र (Digestive System),
4. श्वसन तन्त्र (Raspiratory System),
5. रक्त परिसंचरण तन्त्र (Circulatory System),
6. रोग प्रतिरोधी तंत्र,
7. उत्सर्जन तंत्र,
8. नाड़ी तंत्र,
9. ग्रंथि तंत्र एवं
10. प्रजनन तंत्र।

ये एक साथ संगठित होकर मानव शरीर की रचना करते हैं। इन तंत्रों को प्रशिक्षित किया जा सकता है। इनका सम्बन्ध केवल शारीरिक क्रिया से नहीं है, मानवीय व्यवहार से भी गहरा सम्बन्ध है। हिंसा, सांप्रदायिकता, उत्तेजना, शांति और कलह, सौहार्द और वैमनस्य–इन सबके लिये केवल मन और भाव ही उत्तरदायी नहीं हैं, शरीर भी उत्तरदायी है।

शारीरिक प्रशिक्षण के साधन हैं– आसन, यौगिक क्रियाएं, कायोत्सर्ग, शरीर प्रेक्षा एवं अनुप्रेक्षा–(सुझाव और संकल्प का प्रयोग)।

2.2.2. श्वास (Breath)

जीवन का दूसरा घटक तत्त्व है श्वास। श्वास को भी बहुत कम समझा गया। मस्तिष्क के दो पटल हैं, दायां पटल और बायां पटल। दायें स्वर से लिया गया श्वास बायें पटल को सक्रिय करता है और बायें स्वर से लिया गया श्वास दायें पटल को सक्रिय करता है। नाड़ीतन्त्र को संतुलित करने के प्रयोग भी प्रेक्षाध्यान में कराये जाते हैं। श्वास के अनेक प्रयोग भावात्मक परिवर्तन में महत्वपूर्ण हेतु बनते हैं।

2.2.3. प्राण (Vital Energy)

जीवन का तीसरा घटक तत्त्व है प्राण। प्राण संचार की प्रक्रिया महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। रक्त संचार की प्रक्रिया आयुर्विज्ञान में ज्ञात है। प्राण सूक्ष्म तत्त्व है। उसका यन्त्र के द्वारा ग्रहण नहीं होता इसलिए वह अज्ञात है। स्वास्थ्य का अर्थ है–प्राण का संतुलन। प्राण असंतुलित होता है, मनुष्य रुग्ण हो जाता है। बहुत से लो कष्ट का अनुभव करते हैं किन्तु परीक्षण करवाने पर कोइ्र बीमारी ज्ञात नहीं होती कारण उनके रोग प्राण असंतुलन का परिणाम होते हैं। वह प्राण संतुलन का प्रयोग करते हैं और स्वस्थ हो जाते हैं। प्राण योग का तत्त्व है। आयुर्विज्ञान (Medical science) में वह अभी सम्मत नहीं है। प्राण विज्ञान आयुर्विज्ञान के साथ जुड़े, ऐसी अपेक्षा है।

प्राण हमारी जीवनीशक्ति का मुख्य स्रोत है। शरीर प्राण से संचालित है। श्वास प्राण से संचालित है। मन और वाणी भी मनोबल और वचनबल से संचालित हैं। प्राण का संतुलन पूरे जीवन को व्यवस्थित करता है। उसके असंतुलित होने पर शारीरिक स्वास्थ्य गड़बड़ा जाता है, पूरी जीवन प्रणाली अस्त–व्यस्त हो जाती है। प्रेक्षाध्यान पद्धति में प्राण को संतुलित रखने के साधन हैं– 1. शरीर प्रेक्षा, 2. तैजस केन्द्र प्रेक्षा, 3. विशुद्धि केन्द्र प्रेक्षा एवं 4. समवृत्ति श्वास प्रेक्षा।

2.2.4. मन (Mind)

जीवन का चौथा घटक तत्त्व है – मन। मानसिक स्वास्थ्य शारीरिक स्वास्थ्य से अधिक मूल्यवान है। मन की अधिक चंचलता से अधिक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। मन की एकाग्रता अनेक समस्याओं का समाधान है। प्रेक्षाध्यान के अभ्यास में मन की एकाग्रता के लिये अनेक प्रयोग कराये जाते हैं। स्मृति, कल्पना और चिंतन ये तीनों मन के कार्य हैं। तीनों ही जीवन के लिये आवश्यक हैं। ये अनावश्यकता के बिन्दु पर पहुंच जाते हैं तब मानसिक तनाव बढता है। एकाग्रता की साधना होने पर आवश्यकता शेष रहती है। उनका अनावश्यक प्रयोग समाप्त हो जाता है।

मन की दो अवस्थाएं हैं–चंचलता और एकाग्रता। चंचल म्न असफलता के लिये उत्तरदायी है और एकाग्र मन सफलता का महाद्वार है। एकाग्रता के साधन हैं–

1. दीर्घ श्वास प्रेक्षा (लयबद्ध दीर्घ श्वास), 2. विधियुक्त श्वास संयम (कुंभक), 3. प्राण केन्द्र प्रेक्षा, 4. दर्शन केन्द्र प्रेक्षा, 5. अनिमेष प्रेक्षा, 6. विचार प्रेक्षा एवं 7. अनुप्रेक्षा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.2.5. भाव, आभामण्डल, लेश्या

जीवन का पाँचवां घटक तत्त्व है– भाव (संवेग)। मन जड़ तत्त्व है। वह स्वयं संचालित नहीं है। उसका प्रेरक तत्त्व है– भाव (संवेग)। मन का संबंध सूक्ष्म शरीर से है। स्थूल शरीर के भीतर एक सूक्ष्म शरीर है; जिसका नाम है तैजस शरीर। वह तेजोमय अथवा विद्युतमय शरीर (Electrical Body) है। उस शरीर के केन्द्र में भाव का निर्माण होता है। भाव जीवन का प्रेरक एवं निर्णायक तत्त्व है। वह स्थूल शरीर में चित्त को प्रभावित करता है। चित्त मस्तिष्क के माध्यम से जीवन की सारी प्रक्रियाओं को प्रभावित व संचालित करता है।

चित्त की शुद्धि और अशुद्धि का मानदण्ड है भाव की शुद्धि और अशुद्धि। विशुद्ध भाव, पवित्र लेश्या आभामडण्ल। अशुद्ध भाव, मलिन लेश्या आभामण्डल। विधायक भाव से सफलता और सहज संतोष प्राप्त होता है। आयुर्विज्ञान में भाव–विशुद्धि या भाव–चिकित्सा का उल्लेख नहीं है। प्रेक्षाध्यान का मूल सूत्र भावात्मक परिवर्तन है अर्थात निषेधात्मक भाव समाप्त हो, विधायक भाव की संप्राप्ति हो। मानसिक स्वास्थ्य का मूल आधार भावात्मक स्वास्थ्य है। प्रेक्षाध्यान का आधारभूत सूत्र है–व्याधि (शारीरिक रोग), आधि (मानसिक रोग), उपाधि (भावात्मक रोग) से मुक्ति। व्यक्ति समाधि का जीवन जीना चाहता है। समाधि के यह तीन विघ्न हैं–व्याधि, आधि और उपाधि। भावात्मक रोग मानसिक रोग का हेतु है और मानसिक रोग अनेक रोगों का हेतु है। प्रेक्षाध्यान की पद्धति में सर्वप्रथम भावात्मक स्वास्थ्य पर ध्यान दिया जाता है। भाव स्वस्थ है तो मन स्वस्थ होगा ही और शरीर भी साथ में । भावात्मक स्वास्थ्य या भाव विशुद्धि के प्रयोग हैं– 1. लेश्याध्यान, 2. मैत्री की अनुप्रेक्षा, 3. करुणा की अनुप्रेक्षा एवं 4. सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा।

2.2.6. कर्म (Karma)

जीवन का छठवां घटक तत्त्व है– कर्म। जीवन में जो कुछ होता है, वह आकस्मिक, अहेतुक या परिस्थितिजनक ही नहीं होता। कुछ घटनाएं परिस्थिति से प्रभावित हो सकती हैं किन्तु अधिकांश घटनाओं के पीछे कोई हेतु होता है और वह है कर्म। कुछ रोग भी कर्मज होते हैं। आयुर्वेद में कर्मज रोग भी सम्मत हैं। आयुर्वेद का दर्शन आत्मा से जुड़ा हुआ नहीं है इसलिए उसमें कर्म का सिद्धान्त भी मान्य नहीं है। आश्चर्य है कि शरीर की एक–एक कोशिका और जैविक रसायन की खोज करने वाले शरीर शास्त्री आत्मा की खोज में आगे नहीं बढ़े। आत्मा की खोज का पहला रूप है कर्म की खोज। क्या कर्म को अस्वीकार करने का अर्थ चिकित्सा के एक आयाम का अस्वीकार करना नहीं है?

कर्म मानवीय पुरुषार्थ की प्रतिक्रिया है। वर्तमान का पुरुषार्थ, पुरुषार्थ कहलाता है और अतीत का पुरुषार्थ कर्म। मनुष्य जीवन को प्रभावित करने वाले तत्वों में कर्म एक प्रमुख तत्त्व है। इस अदृश्य शक्ति को अस्वीकार नहीं किया जा सकता और इसे सर्वोपरि भी नहीं माना जा सकता। इसमें परिवर्तन किया जा सकता है। कर्म को परिवर्तित करने के सूत्र हैं– 1. निर्विचार अथवा निर्विकल्प ध्यान, 2. अपाय विचय, 3. विपाक विचय, 4. लेश्याध्यान, 5. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा एवं 6. जप।

2.2.7. चित्त (Psyche)

जीवन का सातवां घटक है– चित्त। आत्मा एक ज्ञान सूर्य है। उसके ज्ञान–प्रकाश की हजारों रश्मियां जीवन को आलोकित करती हैं। ज्ञान प्रकाश की एक रश्मि है चित्त। चित्त हमारी चेतना से प्रभावित है और वह हमारे स्थूल शरीर को प्रभावित करता है। वह मस्तिष्क अथवा नाड़ीतन्त्र के माध्यम से जीवन की प्रत्येक क्रिया–शरीर, वाणी, मन को संचालित करता है, नियंत्रित करता है। प्रेक्षाध्यान का उद्देश्य है चित्त की विशुद्धि। चैतन्य के आवरण का विलय होता रहे और उसमें मूर्च्छा की मलिनता का प्रवेश न हो। चित्त की शुद्धि होने पर ही मनुष्य मादक वस्तुओं के सेवन, अपराध और अनावश्यक हिंसा से बच सकता है। चित्त की निर्मलता के साधन हैं– 1. चैतन्य केंद्र प्रेक्षा, 2. राग–द्वेष मुक्तक्षण का अनुभव, 3. सामायिक–शुद्ध चैतन्य का अनुभव, 4. निर्विचार प्रेक्षा, 5. ज्ञाता–द्रष्टा भाव का प्रयोग एवं 6. भाव क्रिया।

जीवन के अनगिनत रहस्यों को समझने और जीवन में परिवर्तन लाने के लिये इन सात पक्षों पर प्रेक्षाध्यान के प्रभाव का वैज्ञानिक उपकरणों एवं मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से अध्ययन करना ही जीवन विज्ञान का उद्देश्य, लक्ष्य और दृष्टिकोण है। जीवन को समग्रता से समझने के लिए उक्त सात बिंदुओं पर ध्यान देना और उनके परिष्कार की चेष्टा करना मानवीय मूल्यों के विकास का प्रथम सोपान है। श्वास, प्राण, शरीर, मन, भाव, कर्म और चेतना के सम्मिलन से निर्मित मानव जीवन में अनेक प्रकार के क्रिया–कलाप होते हैं जिनका इन संघटक तत्वों पर अनुकूल व प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। योग विधा की तकनीक ऐसी प्रक्रिया है जो प्राण, चित्त, मन व भावों के अन्तःसंबंधों पर आधारित है। यह जीवन के संघटक तत्वों पर स्कारात्मक प्रभाव डालती है। इस ध्यान योग से सभी संघटक तत्वों का प्रशिक्षण सम्भव होता है जिससे वे संतुलित परिष्कृत होकर समग्र विकास की दिशा में अग्रसर होते हैं। योग की ही एक विशिष्ट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रणाली है प्रेक्षाध्यान। प्रेक्षाध्यान जीवन विज्ञान के अन्तर्गत अध्ययन की एक मूलभूत इकाई है। इस प्रकार जीवन विज्ञान के अन्तर्गत अध्ययन की दिशाएं इस प्रकार से सामने आती हैं–

1. जीवन तत्वों का अलग–अलग व सम्मिलित रूप में प्राच्य विद्या एवं आधुनिक विज्ञान दृष्टि से।
2. इन के विकास हेतु अनेकान्त, अहिंसा, अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान का अध्ययन एवं व्यक्तिगत जीवन में अभ्यास व प्रशिक्षण कौशल का विकास।
3. जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में जीवन विज्ञान के प्रशिक्षण के द्वारा सहायता प्रदान करने हेतु उन क्षेत्रों की समस्याओं का अध्ययन।

जीवन के मुख्य तत्त्व क्या–क्या हैं? इस प्रश्न पर भिन्न–भिन्न समय में भिन्न–भिन्न प्रकार के दृष्टिकोण से विचार सामने आये हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने जीवन विज्ञान संगोष्ठी में यह प्रतिपादित किया कि मनुष्य सात स्तर पर जीवन को जीता है। वे स्तर हैं–प्राण, शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, भाव और चेतना। इन सात स्तरों को मानव जीवन और उसके जीवन स्तर को ध्यान में रखते हुए वर्तमान पाठ्यक्रम में जीवन विज्ञान के मुख्य तत्त्व के रूप में सम्मिलित किया गया है। उपरोक्त विवेचन में हमने देखा कि जीवन की समग्र परिभाषा की दृष्टि से सात तत्त्व निरूपित हुए– श्वास, प्राण, शरीर, मन, भाव, कर्म और चेतना।

2.3 जीवन विज्ञान : बहुआयामी शिक्षा प्रणाली

2.3.1. जीवन विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र

किसी विषय के क्षेत्र से तात्पर्य उस संभावित दायरे या सीमा से है जहां तक कि उस विषय के अध्ययन का विस्तार हो सकता है। शिक्षा जगत् में अनेक विद्याशाखाएं हैं। उनके उद्भव का अपना इतिहास रहा हैं। निश्चित परिस्थितियां तथा कारण रहे हैं। उद्भव के बाद उस विषय के अन्तर्गत क्या– क्या पढ़ाना चाहिए? उसकी सीमाएं क्या होनी चाहिएं? इसका विद्वान लोग विचार करते रहे हैं। अपने–अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुति करते रहे हैं। इससे विषय का विकास होता है। सक्षम स्वरूप बनता है।

जीवन विज्ञान भी शिक्षा जगत् में एक नया विषय है। इसका जन्म गिरते मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए हुआ है। वैज्ञानिक दृष्टि से मूल्यों में गिरावट का कारण व्यक्ति का आन्तरिक जैविक असंतुलन है। जैविक असंतुलन को दूर करने एवं मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए योग विद्या का उपयोग किया गया है। योग विद्या समग्र जीवन को प्रभावित करती है। योग विद्या का सम्यक् ज्ञान एवं अभ्यास जीवन को समझने एवं संवारने का विशेष ज्ञान है। वह प्रयोग आधारित अनुभूति परक विज्ञान है। अतः इसका नाम जीवन के रूप में हुआ है। इसके विषय क्षेत्र के बारे में भी विचार चलता रहा है। इसके विकास की अपरिमित संभावनाएं हैं। यह विषय जीवन को संतुलित करने, आन्तरिक क्षमताओं को समझने व समुन्नत करने, उनके उपयोग के कौशल को हस्तगत करने में सहायता करता है। अतः यह विचारणीय है कि इस विषय का दायरा क्या होना चाहिए?

यदि जीवन विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र को निश्चित और विशिष्ट नहीं किया जाता है तो इसका स्वरूप अत्यधिक अनिश्चित हो जायेगा। यह जीवन विज्ञान के अध्ययन के रूप में शरीर विज्ञान, शरीर क्रिया–विज्ञान, मनोविज्ञान, मनोचिकित्सा, पोषाहार आदि में भटकता रहेगा। उस स्थिति में जीवन विज्ञान का न तो कोई पृथक अस्तित्व होगा और न कोई विशेष महत्व ही। अतः जीवन विज्ञान को विशिष्ट बनाना होगा।

किसी भी वस्तु का अध्ययन तीन तरह से किया जाता जा सकता है– (1) उसके बाह्य स्वरूप का अध्ययन (2) उसके अन्तर्वस्तु का अध्ययन और (3) उसके उपयोग का अध्ययन। बाह्य स्वरूप का तात्पर्य वस्तु के बाहरी आकार प्रकार से है जबकि अन्तर्वस्तु का तात्पर्य वस्तु की आन्तरिक संरचना या घटक तत्वों से है। उपयोग का तात्पर्य यह है कि उस वस्तु का उपयोग कहां–कहां किस–किस प्रकार से किया जा सकता है। जैसे अनेक आकार प्रकार के घड़े उनके बाह्य स्वरूप को दर्शाते हैं। घटक तत्वों में लोहा, पीतल, चांदी, मिट्टी आदि आते हैं जिनसे घड़ा निर्मित होता है। उपयोग के अन्तर्गत घड़े का उपयोग पानी, तेल, घी, अनाज आदि संग्रह करने में होता है। इसी प्रकार जीवन विज्ञान का अध्ययन तीन प्रकार से हो सकता है– (1) उसके बाह्य स्वरूप का अध्ययन। इसके अन्तर्गत जीवन विज्ञान की प्रायोगिक प्रणाली प्रेक्षाध्यान एवं उसके वैज्ञानिक अध्ययन एवं अनुसंधान का समावेश किया जा सकता है। (2) जीवन विज्ञान के आन्तरिक स्वरूप का अध्ययन, इसके अन्तर्गत जीवन के मूल तत्त्व समाविष्ट हैं। प्रेक्षाध्यान जीवन के मूल तत्त्वों के आन्तरिक सम्बन्धों एवं नियमों पर आधारित है। ये मूल तत्त्व हैं– प्राण, शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, भाव, और चेतना। इनका अध्ययन प्राचीन तथा आधुनिक विज्ञान के संदर्भ में करना है। (3) जीवन विज्ञान के उपयोग का अध्ययन–मूल्यों के विकास के लिए जीवन के विभिन्न क्षेत्र– शिक्षा, चिकित्सा, प्रबन्धन, प्रशासन आदि में इसके व्यापक उपयोग का अध्ययन एवं प्रशिक्षण।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.3.2. जीवन विज्ञान : सामान्य विज्ञान या विशेष विज्ञान

जीवन विज्ञान के विषय–क्षेत्र की दृष्टि से दो प्रकार के विचार उभरते हैं–

(1) जीवन विज्ञान को विशिष्ट विज्ञान होना चाहिए,

(2) जीवन विज्ञान को सामान्य विज्ञान होना चाहिए।

जीवन विज्ञान तभी विशुद्ध जीवन विज्ञान रह सकता है जब इसमें अन्य विज्ञानों के उद्देश्य का पिष्ट–पोषण न हो। इसके नियम व तकनीक अन्य विज्ञानों से पृथक् रहें। इसकी अपनी विशिष्टता हो। जीवन विज्ञान के प्रतिपक्ष में यह तर्क हो सकता है कि ऐसे अनेक विज्ञान हैं जो शरीर, मन आदि जीवन तत्त्वों का अध्ययन करते हैं जैसे शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान आदि। अतः जीवन विज्ञान की अपनी विशिष्टता क्या होगी? उसे स्वतन्त्र विषय के रूप में कैसे मान्य किया जा सकेगा?

यह ठीक है कि अनेक विज्ञान शरीर व मन का अध्ययन करते हैं पर आधुनिक विज्ञान व प्राच्य विद्याओं के संदर्भ में समग्र जीवन व जीवन मूल्यों की समस्या का अध्ययन कोई भी विद्या शाखा नहीं कर रही है। अन्य विज्ञान जैसे– शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, पोषाहार आदि जीवन के किसी एक पक्ष का अध्ययन करते हैं। वर्तमान में ऐसी कोई भी विद्या शाखा नहीं है जो जीवन के सभी पक्षों का अध्ययन करती है। अतः जीवन विज्ञान को सामान्य विज्ञान बनाना चाहिए। जीवन से सम्बद्ध प्रत्येक विद्या शाखा में कुछ सामान्य विचार धाराएं होती हैं जो जीवन के विभिन्न पक्षों का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनके अध्ययन से जीवन को ठीक से समझने में सहायता मिलती है। अतः जीवन विज्ञान को इन सामान्य विशेषताओं का अध्ययन करना चाहिए जो मानव जीवन में मूल्यों की प्रतिष्ठा में सहयोगी बन सकें।

जीवन विज्ञान का एक प्रमुख कार्य जीवन से सम्बन्धित सभी तत्त्वों के प्राचीन व आधुनिक तथा दार्शनिक व वैज्ञानिक प्रस्थानों का अध्ययन करना व समन्वय खोजना है। इसके साथ ही जीवन को सार्थक व सफल दिशा देने वाले मौलिक तत्त्वों का पता लगाकर उनका सामान्यीकरण करना है। इस तरह जीवन विज्ञान को एक सामान्य विज्ञान के रूप में स्थापित करना जिससे दार्शनिक व वैज्ञानिक तथा प्राचीन व आधुनिक प्रस्थानों के बीच समन्वय हो जाये।

जीवन के तत्वों के स्वरूप को समझने, उनके अन्तः सम्बन्धों को जानने एवं उनके संतुलन, परिष्कार व विकास के लिए योग विद्या को उपयोग में लाने की दृष्टि से यह कहना उचित नहीं होगा कि जीवन विज्ञान केवल सामान्य विज्ञान है या विशिष्ट विज्ञान। उदाहरण के लिए यह सभी जानते हैं कि प्राणी शास्त्र एक अर्थ में अनेक विज्ञानों का संकलन है। इसमें प्रत्येक विज्ञान स्पष्टतः एक विशिष्ट विज्ञान है परन्तु इस बात को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इन विशिष्ट विज्ञानों के अतिरिक्त सामान्य प्राणी शास्त्र भी होता है। वह प्राणी शास्त्र (जीव विज्ञान) जीवन की सामान्य दशाओं का अनन्त भण्डार है। इसी प्रकार जीवन विज्ञान में भी जीवन के तत्वों से सम्बन्धित अनेक विशिष्ट विज्ञान हैं। इस रूप मे जीवन विज्ञान जीवन के समस्त तत्वों के विज्ञान के समूह के समान है। एक अन्य अर्थ मे यह स्वयं ही विशिष्ट विज्ञान है जिसका अपना विशिष्ट उद्देश्य है– मानवीय मूल्यो की समस्या का समाधान खोजना। इसकी अपनी विशिष्ट पद्धति है–प्रेक्षाध्यान। इसका अपना एक विशिष्ट कार्य है–अन्य विज्ञानों के बीच पाये जाने वाले पारस्परिक सम्बन्धों की खोज करना एवं संबंधों की सामान्य विशेषताओं का विवरण देना। जिससे जीवन मूल्यों के विकास हेतु योग विद्या आदि उन्नत पद्धतियों के रहस्यों को उजागर कर सके। इसका अर्थ यह है कि जीवन विज्ञान विशिष्ट विज्ञान के रूप में जीवन के तत्वों से सम्बन्धित प्राचीन व नवीन तथ्यों का अध्ययन करता है। उनमें पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करता है। मानव जीवन से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रों की समस्याओं के निराकरण में सहायता प्रदान करता है।

2.3.3. जीवन विज्ञान का अन्य ज्ञान शाखाओं से सम्बन्ध

ज्ञान–विज्ञान की समस्त शाखाएं एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। उनकी कुछ सामान्य मान्यताएं, सामान्य कठिनाईयां, सामान्य निष्कर्ष हैं जो उन्हें एक दूसरे के समान बनाते हैं परन्तु फिर भी उनमें दृष्टिकोण, क्षेत्र, विधि, प्रकृति आदि को लेकर भिन्नताएं भी हैं जिससे वे असमान हैं और स्वतंत्र हैं। ज्ञान की अन्य शाखाओं से जीवन विज्ञान के सम्बन्ध के विवेचन से जहां अन्य शाखाओं से उसकी समानताएं स्पष्ट होंगी, वहीं अन्तर भी दिखाई देंगे। इससे जीवन विज्ञान के विद्यार्थी को उसकी विशेषताएं एवं रूपरेखा समझने में आसानी होगी।

ज्ञान की शाखाओं को दो भागों में बांटा जा सकता है। प्राचीन ज्ञान शाखाएं एवं आधुनिक ज्ञान विज्ञान की शाखाएं। प्राचीन ज्ञान शाखाओं में दर्शन, अध्यात्म, धर्म, योग, आयुर्वेद, स्वरोदय विज्ञान आदि आते हैं। दूसरी ओर आधुनिक विज्ञान में सामाजिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान मुख्य हैं। सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, मानव शास्त्र आदि सम्मिलित हैं। प्राकृतिक विज्ञान में भौतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान आदि हैं। प्राकृतिक विज्ञानों की विषय वस्तु में प्राकृतिक घटनाओं का अध्ययन किया जाता है। जबकि सामाजिक विज्ञानों में सामाजिक घटनाओं का जिनमें समाज, सामाजिक सम्बंध, मानवीय व्यवहार, मानवीय क्रियाओं आदि का अध्ययन किया जाता है।

प्राचीन ज्ञान शाखाओं की केंद्रीय विषय वस्तु क्या रही है? इस पर ध्यान दें तो लगेगा कि उस समय जीवन एवं जीवन में दुःख मुक्ति कैसे हो? इस पर अध्ययन केंद्रित था। आधुनिक विद्या शाखाएं प्राकृतिक व सामाजिक घटनाओं के अध्ययन और उनसे प्राप्त ज्ञान द्वारा सुख–समृद्धि के संसाधनों के विकास पर केंद्रित हैं। प्राचीन काल में ज्ञान को जीवन से जोड़ा गया था और दुःख मुक्ति के उपायों की खोज हुई और ध्यान–योग जैसी आध्यात्मिक विकास की प्रणालियाँ प्रकाश में आईं। दुःख के मूल कारण को आंतरिक असंतुलन के रूप में समझा गया। वर्तमान आधुनिक ज्ञान शाखाओं की पृष्ठभूमि में दुःख के कारण को वस्तुओं का अभाव माना गया। अतः ज्ञान के विकास के साथ उसका उपयोग संसाधनों के निर्माण में हुआ। उसके परिणामतः आज पदार्थ की प्रचुरता है पर जीवन अशांत होता जा रहा है। आज अपेक्षा है कि ज्ञान विज्ञान को जीवन से जोड़ा जाए।

जीवन विज्ञान एक नई विद्या शाखा है। इसका कार्य है आधुनिक विज्ञान को जीवन से जोड़ना। जीवन में संतुलन व शांति आए, अतः जीवन विज्ञान का सम्बंध प्राचीन ज्ञान व आधुनिक ज्ञान–विज्ञान की सभी शाखाओं से है जो जीवन से जुड़ी हुई हैं। जीवन विज्ञान एक प्रायोगिक पद्धति है जिसका उद्गम स्रोत प्राचीन ज्ञान शाखाओं में निहित है। इसका सम्बंध सामाजिक विज्ञान व प्राकृतिक विज्ञान से भी है क्योंकि ये विद्या शाखाएं इनके वैज्ञानिक परीक्षण व व्याख्या में सहायक होती हैं। आधुनिक ज्ञान–विज्ञान जीवन के किसी एक विशिष्ट पक्ष का विधायक अध्ययन करते हैं जबकि जीवन विज्ञान जीवन के किसी एक पक्ष का अध्ययन नहीं करता बल्कि सम्पूर्ण जीवन का अध्ययन करता है। इसीलिए इसे सामान्य विज्ञान कहा जा सकता है। अतः जीवन विज्ञान की प्रकृति अन्य शाखाओं से भिन्न अवश्य है। जीवन विज्ञान का अन्य ज्ञान शाखाओं से क्या सम्बंध है इसे जानने से पहले जीवन विज्ञान की विषय वस्तु पर पुनः विचार कर लिया जाए।

1. जीवन विज्ञान जीवन का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। जीवन का अध्ययन वैसे शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान भी करते हैं लेकिन वे इसके किसी एक विशिष्ट पक्ष का विधायक अध्ययन करते हैं जबकि जीवन विज्ञान सम्पूर्ण जीवन का अध्ययन करता है। वह विधायक व नियामक दोनों प्रकार का अध्ययन करता है।

2. जीवन विज्ञान अन्य विज्ञानों का समन्वय है। ऐसा कहना पूर्ण रूप से सही नहीं होगा। जीवन विज्ञान अन्य विज्ञानों की भांति स्वतंत्र विज्ञान है। जीवन विज्ञान जीवन के समस्त प्रकार के संघटकों का अध्ययन करता है– प्राण, शरीर, इंद्रिय, मन, बुद्धि, भाव और चेतना जो सामान्यतः अन्य विज्ञान के दायरे में नहीं हैं।

जीवन विज्ञान जीवन को संतुलित करने वाली प्राचीन प्रायोगिक प्रणाली ध्यान एवं योग का आधुनिक विज्ञान के संदर्भ में वैज्ञानिक अध्ययन एवं व्यवहार है। जीवन संतुलित तभी हो सकता है जब जीवन में मानवीय मूल्यों का विकास करने वाली प्रायोगिक प्रक्रियाएं जीवन के अंग बनें। वैज्ञानिक तथ्यों को जीवन से जोड़कर समझाया जाए एवं उसके प्रकाश में जीवनशैली का विकास हो। 'णाणस्स सारमायारो' ज्ञान का सार आचार है। 'विज्जा चरणं पमोक्खं' ज्ञान और आचरण की संयुक्तता ही दुःख मुक्ति का हेतु है। अतः जीवन में दुःख मुक्ति एवं शांति की चाह रखने वालों को कोरा ज्ञान या कोरा आचरण अधूरा होगा। अतः यह मान लें कि विज्ञान के विकास व जीवन निर्वाह के साधनों की प्रचुरता से जीवन शांत व संतुलित हो सकता है तो यह अधूरी सच्चाई होगी। पूरा सत्य यह है कि विज्ञान के साथ आचार पक्ष, मूल्यों का पक्ष, भावात्मक पक्ष, मानसिक पक्ष पर भी ध्यान देना अपेक्षित होगा। जीवन विज्ञान जीवन निर्वाह एवं जीवन में शांति, दोनों पक्षों का समग्रता से वैज्ञानिक अध्ययन एवं व्यावहारिक प्रशिक्षण पर बल देता है।

2.4 जीवन विज्ञान और अन्य शाखाएं

जीवन विज्ञान की विषय वस्तु को उसके उद्देश्य, मूल तत्त्व, साधन एवं प्रयोग भूमि की दृष्टि से चार भागों में बांट सकते हैं–

1. मूल्यों से संबंधित विद्या शाखाएं–दर्शन शास्त्र, धर्म शास्त्र, नीति शास्त्र, सौंदर्य शास्त्र, समाज शास्त्र आदि।
2. जीवन के मूल तत्वों से संबंधित आधुनिक विद्या शाखाएं–जीवन विज्ञान, शरीर विज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान, मनोविज्ञान आदि। प्राचीन विद्या शाखाओं के अन्तर्गत आयुर्वेद, स्वरोदय विज्ञान, भारतीय मनोविज्ञान आदि।
3. योग विद्या से सम्बंधित शाखाएं–पांतजल योग, बौद्ध योग, जैन योग, तंत्र आदि। आधुनिक योग पद्धतियों के अन्तर्गत प्रेक्षाध्यान, विपश्यना, भावातीत ध्यान आदि समकालीन योग पद्धतियां। योग पर अनुसंधान की दृष्टि से आधुनिक अनुसंधान विधियां।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. जीवन विज्ञान के व्यावहारिक उपयोग या अनुप्रयोग (Application) की दृष्टि से वैयक्तिक एवं सामाजिक स्तर पर सम्बंधित विद्या शाखाएं— स्व–प्रबंधन, व्यक्तित्व मनोविज्ञान, शिक्षा शास्त्र, चिकित्सा विज्ञान, प्रबंधन विज्ञान, अपराध मनोविज्ञान, सुरक्षा विज्ञान आदि।

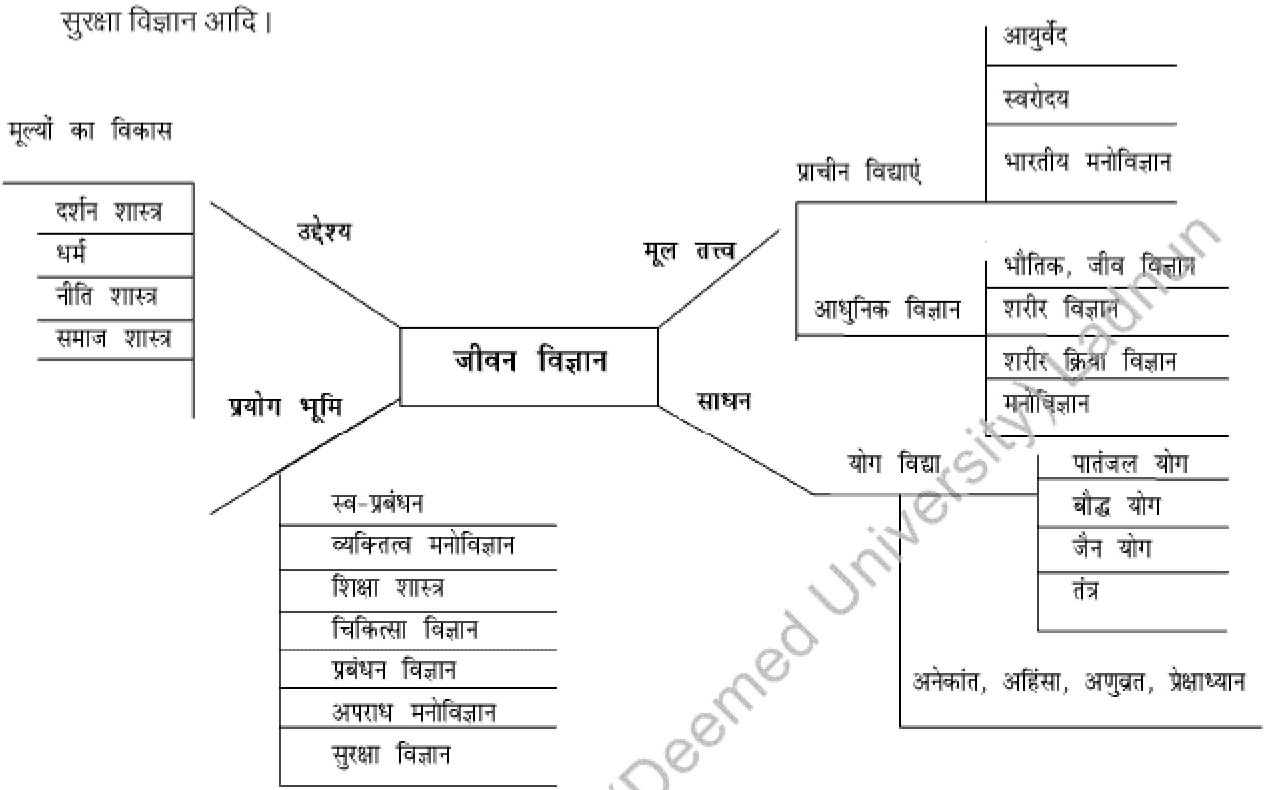

जीवन विज्ञान से सम्बंधित विद्या शाखाओं को सुविधा की दृष्टि से मुख्य रूप में निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(i) प्राकृतिक विज्ञान

(क) भौतिक विज्ञान, (ख) जीव विज्ञान एवं (ग) शरीर विज्ञान।

(ii) व्यावहारिक विज्ञान

(क) मनोविज्ञान, (ख) समाज शास्त्र एवं (ग) पर्यावरण।

(iii) नियामक विज्ञान

(क) दर्शन शास्त्र, (ख) तर्क शास्त्र एवं (ग) नीति शास्त्र।

(iv) अनुप्रायोगिक विज्ञान

(क) चिकित्सा विज्ञान, (ख) मनोचिकित्सा शास्त्र एवं (ग) शिक्षा शास्त्र।

2.4.1. जीवन विज्ञान और भौतिक विज्ञान

जीवन विज्ञान भौतिक विज्ञान से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित नहीं है फिर भी आधुनिक खोजों के फलरूवस्प यह मान्यता दृढ़ होती जा रही है कि जीवन की रहस्यमयी चेतना को समझे बिना प्रकृति के सत्य को भी समझा नहीं जा सकता। एक समय था जब यह माना जाता था कि भौतिक विज्ञान पदार्थ का विज्ञान है। वस्तुतः आज खोज इतनी आगे बढ़ गई है कि पदार्थ आज पदार्थ नहीं रह गया है। परमाणु के आगे सूक्ष्म कण, तरंग, ऊर्जा और शून्य तक की यात्रा पहुंच गई है। भौतिक वैज्ञानिक चेतना की ओर मुड़ रहे हैं। आज भौतिक वैज्ञानिक निश्चित रूप से चेतना और आध्यात्मिक सत्यों के बारे में कुछ कहने की स्थिति में नहीं है पर आज उन्हें लग रहा है कि यह दिशा अवश्यम्भावी है। इसके अतिरिक्त भौतिकी द्वारा प्रदत्त प्रकृति के नियमों का ज्ञान प्राकृतिक शक्तियों को नियंत्रित कर प्रकृति पर विजय की गाथा है। इसी कारण आजकल का मनुष्य सागर के वक्षस्थल को रौंदने में लेशमात्र भय का अनुभव नहीं करता। जीवन विज्ञान चेतना के नियमों की खोज और चेतना की शक्तियों पर नियंत्रण द्वारा जीवन को संतुलित, स्वस्थ व सफल बनाने की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

दिशा में प्रयत्न करता है। इस प्रकार जीवन विज्ञान परोक्ष रूप में भौतिक विज्ञान से सम्बंधित है और भविष्य में और अधिक निकटता की संभावना है क्योंकि चेतना का अध्ययन व उस पर प्रयोग करना जीवन विज्ञान का केन्द्रीय तत्त्व है।

2.4.2. जीवन विज्ञान और जीव विज्ञान

डार्विन ओर स्पैन्सर जैसे विकासवादियों की खोजों ने यह सिद्ध कर दिया है कि जीवन का सम्बंध जीवन विज्ञान के तथ्यों से है। डार्विन के अनुसार प्रत्येक जीव में अस्तित्व के लिए संघर्ष होता है और प्रकृति की चयन योजना में योग्यतम ही बच पाते हैं – यद्यपि इन सिद्धान्तों में सत्यांश ही है क्योंकि इन तथ्यों का अनुभव पशु जगत् में ही किया जाता है। मानव जगत् में निर्बलों की रक्षा की जाती है, संघर्ष की जगह परस्पर सहयोग को देखा जाता है, योग्यतम विचार जीवित रहते हैं न कि योग्यतम शरीर। फिर भी यह निर्विवाद है कि मानव शरीर संरचना मानव जीवन को समझने में एक महत्वपूर्ण संघटक है। जीवन में संतुलन विकास व सफलता के लिए शरीर के नियमों को समझना अत्यंत सहायक सिद्ध होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि जीवन विज्ञान का जीव विज्ञान से सीधा संबंध है।

जीवन विज्ञान जीवन मूल्यों के विकास के लिए योग का औपचारिक शिक्षा के माध्यम से प्रशिक्षण है। जीवन का एक मुख्य संघटक शरीर है। शरीर पर प्रेक्षाध्यान एवं योग के प्रभावों को एवं मूल्यों के वैज्ञानिक आधार को समझने के लिए जीव विज्ञान एवं शरीर का ज्ञान बहुत सहायक है। मूल्यों के अन्तर्गत नैतिक, मानसिक तथा भावनात्मक मूल्यों के साथ शारीरिक मूल्य एवं शारीरिक विकास भी समाहित हैं। जीव शास्त्र जीवित प्राणियों की क्रियाओं का अध्ययन करता है। वह मनुष्य की उत्पत्ति और जैविक विकास का अध्ययन करता है। उसकी प्रजातीय, प्रजनन, शारीरिक तथा व्यक्तिगत विशेषताओं का वर्णन करता है और पर्यावरण से उसके अनुकूलन के सिद्धान्त बतलाता है। डार्विन का विकासवाद जैविक सिद्धान्तों का एक उदाहरण है। मूल्यों को समझने के लिए जैविकीय आधार महत्वपूर्ण हैं। अतः जैविकीय सिद्धान्तों के ज्ञान के बिना शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक मूल्यों की वैज्ञानिक व्याख्या नहीं की जा सकती।

जीवन विज्ञान और जीव शास्त्र में घनिष्ठ संबंध है पर केवल मूल्यों की व्याख्या या उसके जैविकीय संबंधों के बोध से मूल्यों का विकास संभव नहीं है। उसके लिए तकनीकी विकास अर्थात् प्रायोगिक अभ्यास अपेक्षित है। प्रायोगिक अभ्यास जीवन विज्ञान की विशिष्टता है। यह जीव विज्ञान का विषय नहीं है।

जीवन विज्ञान का क्षेत्र मानव जीवन है। जीव शास्त्र का क्षेत्र सभी शारीरिक एवं जैविकीय क्रियाएं हैं। जीव शास्त्र सभी जीवों का अध्ययन करता है। यह मानव को केवल एक जीव मात्र मानकर अध्ययन करता है। जीवन विज्ञान मानव जीवन के आंतरिक पक्ष, उसके अन्तःसंबंधों एवं क्षमताओं का अध्ययन करता है एवं प्रेक्षाध्यान व योग के द्वारा प्रशिक्षण में सहायता करता है। स्पष्ट है कि जीवन विज्ञान और जीवशास्त्र में संबंध होते हुए भी वे स्वतंत्र विज्ञान हैं और परस्पर सहायक मात्र हैं।

2.4.3. जीवन विज्ञान और शरीर शास्त्र

जीवन विज्ञान, जीवन में मूल्यों के विकास की प्रायोगिक पद्धति है। शरीर शास्त्र शरीर का शास्त्र है। वह श्वास, प्रश्वास, रक्त संचार, ग्रंथि जन्य (grandular) क्रियाओं तथा स्वाभाविक क्रियाओं का अध्ययन करता है। इन क्रियाओं का शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक मूल्यों पर प्रभाव पड़ता है। अंग्रेजी में एक कहावत है "Healthy mind in healthy body" स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन। 'शरीरमाध्यं खलु धर्मसाधनं'। शरीर धर्म का पहला साधन है। अर्थात् मूल्यों के विकास का प्रथम माध्यम है– शरीर। अतः जीवन विज्ञान और शरीर शास्त्र में निकट सम्बंध होना स्वाभाविक है। शारीरिक अवस्थाओं के साथ मानसिक व भावनात्मक मूल्यों में परस्पर सह सम्बंध देखे जा सकते हैं। शरीर के भावों के साथ व्यक्ति के भावनात्मक मूल्यों, शान्ति, पवित्रता का घनिष्ट सम्बंध है और एक के होने पर दूसरा देखा जा सकता है।

शरीर का भाव केवल 'क्या है' यह बताता है पर शारीरिक, मानसिक व भावात्मक मूल्यों को प्राप्त करने व उन्हें स्वस्थ बनाए रखने के लिए शरीर को कैसा प्रशिक्षण दिया जाए, यह नहीं बताता है। शारीरिक क्रियाओं के अध्ययन से प्रेक्षाध्यान एवं योग की प्रशिक्षण पद्धति व उनके शरीरगत प्रभावों को समझने में सहायता अवश्य मिलती है परन्तु इन दोनों को एक नहीं माना जा सकता। अतः जीवन विज्ञान शरीर शास्त्र का अंग नहीं हैं जीवन विज्ञान और शरीर शास्त्र के क्षेत्र अलग–अलग हैं। शरीर शास्त्र का क्षेत्र शारीरिक क्रियाएं हैं। जीवन विज्ञान का क्षेत्र सम्पूर्ण जीवन की आंतरिक क्षमताओं का विकास, उनका प्रशिक्षण है। जीवन विज्ञान और शरीर शास्त्र के दृष्टिकोण भिन्न–भिन्न हैं। शरीर शास्त्र शरीर की विभिन्न क्रियाओं का पृथक–पृथक अध्ययन करता है। जीवन विज्ञान मूल्यों के विकास की दृष्टि से जीवन का समग्रता से अध्ययन करता है एवं उसका प्रशिक्षण भी देता है। इस प्रकार जीवन विज्ञान और शरीर शास्त्र परस्पर सम्बन्धित होते हुए भी स्वतंत्र हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.4.4. जीवन विज्ञान और मनोविज्ञान

यद्यपि जीवन विज्ञान और मनोविज्ञान का सम्बंध निकट एवं महत्वपूर्ण है फिर भी एक सीमा है। जीवन विज्ञान योग का प्रशिक्षण है परन्तु योग का आधार जीवन के सूक्ष्म नियम हैं जो मन, भाव एवं चेतना से संबंधित हैं। मनोविज्ञान यथार्थ ज्ञान होने के कारण हमारे सम्पूर्ण मानसिक (आंतरिक) जीवन की प्रक्रिया बताता है। मनोविज्ञान बताता है जीवन व्यवहार के प्रेरक के रूप में इच्छाओं, अभिप्रायों, बुद्धि, अंतरात्मा और संकल्प आदि की क्या प्रक्रिया होती है। मनोविज्ञान यह भी बताता है कि क्रोधपूर्ण आचरण में शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है। दूसरे शब्दों में मनोविज्ञान 'क्या है' का पूर्ण चित्र उपस्थित कर देता है। स्पष्ट है कि जीवन विज्ञान में जीवन को समझने के लिए मनोवैज्ञानिक ज्ञान आवश्यक है। फिर भी जीवन विज्ञान और मनोविज्ञान का क्षेत्र मनोविज्ञान के क्षेत्र से भिन्न है। मनोविज्ञान ज्ञान, भाव और संकल्प का अध्ययन करता है जबकि जीवन विज्ञान प्राण, शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, भाव और चेतना के सूक्ष्म नियमों का अध्ययन तो करता ही है एवं उस पर आधारित प्रेक्षाध्यान एवं योग के प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान केन्द्रित करता है। मनोविज्ञान यथार्थ ज्ञान होने के कारण 'क्या है' का अध्ययन करता है जबकि जीवन विज्ञान 'क्या होना चाहिए' एवं 'कैसे हो' के प्रशिक्षण पर भी ध्यान केन्द्रित करता है।

2.4.5. जीवन विज्ञान और समाज शास्त्र

समाज शास्त्र और जीवन विज्ञान में बड़ा ही घनिष्ठ सम्बंध है। मानव जीवन में मूल्यों के विकास के बिना सामाजीकरण व सामाजिक व्यवस्थाओं का सम्यक् संचालन संभव नहीं हैं इसलिए सामाजिक व्यवस्थाओं के सम्यक् संचालन में मूल्यों की उपादेयता समझे बिना व्यक्ति में मूल्यों को विकसित करने की मनोभावना का विकास कम संभव है। इस प्रकार दोनों विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं।

जीवन विज्ञान के लिए समाज का अध्ययन महत्वपूर्ण क्षेत्र है। समाज शास्त्री प्रमुख रूप से नवीन समाज का अध्ययन करता है तथा समूह, व्यवहार संस्थाएं, अंतर समूह सम्बंध, सामाजिक नियंत्रण, प्रतिमान तथा मूल्यों को समझने में रुचि रखता है। चूंकि मानव एक सामाजिक प्राणी है। उसका सारा जीवन समूह के सदस्यों के रूप में व्यतीत होता है। समाज की व्यवस्था को बनाए रखने में मानव जीवन में स्थापित मूल्यों का बड़ा हाथ रहता है। अतः जीवन विज्ञान में मानव व्यवहार को समझने, मूल्यों की स्थापना करना एवं समाजीकरण, सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक नियंत्रण को समझने हेतु समाज शास्त्र का अध्ययन आवश्यक है। जीवन विज्ञान और समाज शास्त्र में निकट सम्बंध होते हुए भी पर्याप्त अंतर है। जीवन विज्ञान का दृष्टिकोण मूल्यों के विकास का प्रशिक्षण है एवं प्रशिक्षण प्रणाली का वैज्ञानिक अध्ययन है। समाज शास्त्र का दृष्टिकोण मूल्यों का विधायक अध्ययन करता है न कि उसके विकास के लिए प्रशिक्षण पद्धति बनाता है। समाज शास्त्र में अध्ययन की प्रधानता है, किसी प्रायोगिक प्रणाली के प्रशिक्षण या तकनीक का विकास नहीं है। समाज शास्त्र मूल्यों के सामाजिक महत्त्व का अध्ययन करता है।

जीवन विज्ञान में प्रशिक्षण की इकाई व्यक्ति है, समाजशास्त्र में समूह को इकाई माना जाता है। जीवन विज्ञान व्यक्ति की आंतरिक क्षमताओं के विकास के लिए प्रशिक्षण प्रदान करता है। समाजशास्त्र व्यक्ति में परिवर्तन के लिए सामाजिक परिवेश पर बल देता है। जीवन विज्ञान तथा समाज शास्त्र की प्रणालियां अलग–अलग हैं।

2.4.6. जीवन विज्ञान और तत्त्व ज्ञान या दर्शन शास्त्र

तत्त्व ज्ञान या दर्शन शास्त्र का लक्ष्य मूल्यों के मूल्य अर्थात् परम सत् को खोजना है। तत्त्व ज्ञान में हम विश्व का समग्र रूप में अध्ययन करते हैं। इसमें मानव जीवन की समस्त समस्याएं सम्मिलित हो जाती हैं। उदाहरणार्थ मानव जीवन का स्वरूप क्या है, उसका सार तत्त्व आत्मा या बुद्धि या इन्द्रिय या शरीर है या ये सभी आत्मा है। क्या आत्मा अमर है? पुनर्जन्म की वैद्यता किस रूप में स्वीकार की जानी चाहिए आदि प्रश्नों के समाधान के बिना मानव के नैतिक आदर्शों अर्थात् मूल्यों की स्थापना नहीं हो सकती और स्थापना कर भी दी जाय तो उसकी वैधता पर एक प्रश्नवाचक चिह्न होगा। अलग–अलग विचारकों ने अपने भिन्न–भिन्न सिद्धान्तों और योग पद्धतियों को प्रतिपादित किया है। इस भिन्नता का एक मात्र कारण उन विचारकों को जीवन दर्शन है। मूल्यों की स्थापना भी दर्शन पर आधारित होती है। अतः मूल्यों की स्थापना एवं उसकी प्राप्ति के साधनों का चयन दोनों ही जीवन दर्शन पर आधारित होते हैं।

इस प्रकार दर्शन शास्त्र तथ्यों और मूल्यों को व्यवस्थित और समस्त रूपों में देखता है। वस्तुओं को समग्र रूप में देखना ही दार्शनिक दृष्टिकोण है। इसमें प्रत्येक वस्तु को समस्त विश्व की पृष्ठभूमि में देखा जाता है। जीवन विज्ञान जीवन मूल्यों के विकास की योग आधारित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पद्धति है। मूल्यों के निर्धारण, महत्त्व को समझने आदि में दर्शन शास्त्र का बहुत सहयोग है। इसी प्रकार जीवन एवं उसके संघटक तत्त्वों– प्राण, शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, भाव और चेतना का भारतीय दर्शन की तत्त्व विवेचन में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

जीवन विज्ञान और दर्शन के संबंध को भली प्रकार जानने के लिए उनका अंतर जानना भी आवश्यक है। अन्यथा कुछ लोग जीवन विज्ञान को दर्शन शास्त्र ही मान लेंगे। जीवन विज्ञान और दर्शन में घनिष्ठ संबंध होते हुये भी जीवन विज्ञान एक स्वतन्त्र अध्ययन है। इस प्रसंग में दोनों में मुख्य अंतर निम्नलिखत हैं–

1. **क्षेत्र का अंतर** :– जीवन विज्ञान का क्षेत्र मानव जीवन है। दर्शन के क्षेत्र में सभी ज्ञान विज्ञानों के दार्शनिक पहलू आ जाते हैं।
2. **प्रकृति का अंतर** :– दर्शन और जीवन विज्ञान की प्रकृति में अंतर है क्योंकि जीवन विज्ञान की प्रकृति दार्शनिक होकर भी वैज्ञानिक है। वह केवल वैचारिक या सैद्धान्तिक चर्चा तक ही नहीं रुकता बल्कि प्रायोगिक प्रशिक्षण एवं वैज्ञानिक अनुसंधान पर बल देता है। जीवन विज्ञान का एक उद्देश्य अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय है।
3. **दृष्टिकोण का अंतर** :–दर्शन का दृष्टिकोण समग्र और समन्वयवादी है। जीवन विज्ञान का दृष्टिकोण समग्र होते हुए भी मानव जीवन तक सीमित है। यह प्रायोगिक प्रशिक्षण है एवं अनुसंधान की दृष्टि से एक विज्ञान के समान विश्लेषणात्मक और सीमित भी है।
4. **पद्धतियों का अंतर** :– जीवन विज्ञान अनुभूतियों के परीक्षण के लिए वैज्ञानिक पद्धतियों, मनन, निदिध्यासनं, तर्क तथा सहज ज्ञान आदि का उपयोग करता है पर दर्शन शास्त्र में परम सत् के परीक्षण के लिए वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग नहीं किया जा सकता।

2.4.7. जीवन विज्ञान एवं तर्कशास्त्र

जीवन विज्ञान मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा हेतु प्रेक्षाध्यान एवं योग का प्रशिक्षण है। मूल्यों की खोज तर्कशास्त्र द्वारा की जाती है। तर्कशास्त्र वैध विचारों के नियमों की खोज करता है।

तर्कशास्त्र विचार (Thought) का विज्ञान है, इसमें प्रत्यय (Concept), निर्णय (Judgement) तथा अनुमान (Interence) आदि के नियमों तथा कसौटियों पर विचार किया जाता है। जीवन विज्ञान भी तर्क निर्णय आदि का अध्ययन जीवन की महत्त्वपूर्ण क्षमताओं के रूप में करता हैं उसके विकास हेतु प्रेक्षाध्यान एवं योग की प्रक्रियाओं का प्रशिक्षण करता है तथा उनका वैज्ञानिक परीक्षण भी करता है। परन्तु जीवन विज्ञान और तर्कशास्त्र में निम्नलिखत मौलिक अंतर हैं–

1. **प्रकृति में अंतर** – तर्कशास्त्र केवल एक नियामक विज्ञान है जबकि जीवन विज्ञान नियामक विज्ञान के साथ एक व्यावहारिक विज्ञान भी है। वह योग और प्रेक्षाध्यान की प्रायोगिक प्रणाली का जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मूल्यों के विकास में उपादेयता का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। जीवन विज्ञान यह बताता है कि चिन्तन एवं निर्णय की क्षमता का विकास कैसे हो? उसके लिए कौन सी योग आधारित पद्धतियों का अभ्यास करना चाहिए? तर्कशास्त्र यह बतलाता है कि हमें कैसे सोचना चाहिए।
2. **क्षेत्र में अंतर** – जीवन विज्ञान का क्षेत्र तर्कशास्त्र से कहीं अधिक विस्तृत है। तर्कशास्त्र केवल विचार से संबन्धित है। उसका जीवन की अन्य आंतरिक क्षमताओं से कोई संबंध नहीं है। जीवन विज्ञान की सभी आंतरिक क्षमताओं के अधिकतम व संतुलित विकास पर ध्यान केन्द्रित करता है।
3. **दृष्टिकोण का अंतर** – तर्कशास्त्र का दृष्टिकोण नियामक है। जीवन विज्ञान का दृष्टिकोण नियामक होते हुए भी व्यावहारिक है। इस प्रकार परस्पर सहायक होते हुए भी ये दो स्वतन्त्र विज्ञान हैं।

2.4.8. जीवन विज्ञान और नीतिशास्त्र

नीतिशास्त्र का विवेचन व्यक्ति के आदर्शों, शुभ लक्ष्यों एवं चरित्र को दिशा प्रदान करता है। नीतिशास्त्र की समस्या है कि वैयक्तिक आचरण और शुभ का समाजीकरण कैसे हो? व्यक्ति के स्वार्थ समाज के स्वार्थ से टकराते हैं। इसलिए नीतिशास्त्र ऐसे सामाजिक शुभ को खोजता है जो सर्वमान्य हो। अच्छाई और बुराई दोनों सामाजिक हैं। नीतिशास्त्र यह पता लगता है कि हमें कौन से संकल्प करने चाहिए। जीवन विज्ञान भी यह बताता है कि जीवन में संतुलन के लिए किस प्रकार के संकल्प करने चाहिए। साथ–साथ यह भी बताता है कि संकल्प के निर्वाह के लिए किस प्रकार की साधना की जानी चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जीवन विज्ञान मूल्यों के समाजीकरण का प्रशिक्षण है। मैकाइबर ने ठीक ही कहा है कि मूल्यों के बिना समाज को नहीं समझा जा सकता है। विभिन्न संस्थाएं व विश्वास किन्हीं मूल्यों के ही परिणाम होते हैं। स्वस्थ और टिकाऊ नैतिकता को किसी सार्वभौम आध्यात्मिक सिद्धान्त पर ही टिकाया जा सकता है। नीतिशास्त्र और जीवन विज्ञान मनुष्य के व्यवहार के आन्तरिक पक्ष पर बल देते हैं इस प्रकार यह आत्मगत व्यवहार पर बल देते है। दोनों विषयों में गहन संबंध को स्वीकार करते हुए भी कुछ अंतरों को ध्यान में रखना होगा।

1. **प्रकृति में अंतर**– जीवन विज्ञान व्यावहारिक विज्ञान है और नीतिशास्त्र आदर्शात्मक तथा नियामक विज्ञान है। जीवन विज्ञान मूल्यों तथा आदर्शों को प्राप्त करने के लिए प्रायोगिक पद्धति बतलाता है। नीतिशास्त्र नैतिक शुभ के प्रकाश में उसकी व्याख्या करता है। नीतिशास्त्र का विषय है ''होना चाहिए'' और जीवन विज्ञान का विषय है उसकी प्रायोगिक पद्धति का प्रशिक्षण।
2. **क्षेत्र में अंतर**– जीवन विज्ञान का क्षेत्र नीतिशास्त्र से कहीं अधिक विस्तृत है। जीवन विज्ञान का कार्य संकल्प, ज्ञान व भावना तीनों का प्रशिक्षण है। नीतिशास्त्र का संबंध केवल संकल्प व संकल्प की प्रक्रिया के अध्ययन से है। यदि वह ज्ञान व भावना का अध्ययन करता भी है तो केवल संकल्प कर्म प्रकृति के प्रसंग में।
3. **दृष्टिकोण का अंतर**– जीवन विज्ञान और नीतिशास्त्र दोनों के दृष्टिकोण में अंतर है। जीवन विज्ञान नैतिक तथ्यों का अध्ययन उनके प्रशिक्षण के दृष्टिकोण से करता है जबकि नीतिशास्त्र केवल नैतिक दृष्टिकोण से तथ्यों का अध्ययन करता है।

2.4.9. जीवन विज्ञान और शिक्षाशास्त्र

''जीवन विज्ञान'' का नामकरण शिक्षा में प्रेक्षाध्यान एवं अणुव्रत के व्यावहारिक उपयोग का परिणाम है। अतः जीवन विज्ञान का शिक्षाशास्त्र से गहरा संबंध है। शिक्षा का कार्य क्षमताओं का विकास करना है। जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान और योग का प्रायोगिक प्रशिक्षण है जो क्षमताओं के विकास का सशक्त साधन है। अतः जीवन विज्ञान का शिक्षा से सीधा संबंध है।

जॉन डीवी के अनुसार– ''शिक्षा कोई ऐसी बात नहीं है जिसे युवकों और बच्चों पर बाहर से लादना है वरन् यह उन क्षमताओं का विकास है जिन्हें मानव शिशु जन्म के समय से ही लाता है।''[1] शिक्षा का कार्य मनुष्य की आन्तरिक संभावनाओं को विकसित करना है। गांधीजी का कथन है कि ''शिक्षा को निश्चय ही लड़के या लड़की में निहित समग्र मानव को बाहर ले आना है और कोई शिक्षा सम्यक् नहीं हो सकती अगर वह उपयोगी नागरिक निर्मित नहीं करती है एवं लडके और लडकियों को समग्र मानव नहीं बनाती है।''

इससे सिद्ध होता है कि शिक्षा का लक्ष्य समग्र विकास है। जीवन विज्ञान का भी यही लक्ष्य है। इस दृष्टि से दोनों में समानता है परन्तु आज शिक्षा को देखें तो उसकी विषय वस्तु व पाठ्यक्रम लग्भग 80 बौद्धिक विकास और 20 शारीरिक विकास के लिए निर्मित किए हुए हैं। भावनात्मक व मानसिक विकास के लिए शिक्षा जगत् में कोई पाठ्यक्रम उपलब्ध नहीं है, न ही उस प्रकार का प्रशिक्षण। जीवन विज्ञान प्रेक्षाध्यान एवं योग के प्रशिक्षण द्वारा मानसिक व भावनात्मक विकास के प्रयोगों पर विशेष बल देने के साथ–साथ शारीरिक व बौद्धिक विकास पर भी ध्यान देता है।

जीवन विज्ञान वर्तमान शिक्षा का पूरक है। दोनों में अंतर यह है कि शिक्षाशास्त्र समग्र विद्या शाखाओं के माध्यम से जीवन के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक पहलुओं का प्रशिक्षण करता है जबकि जीवन विज्ञान वैयक्तिक एवं सामाजिक पक्ष के प्रशिक्षण को पूरा करता है। दोनों ही का साध्य है सर्वांगीण व्यक्तिव का विकास, समग्र मानव का सृजन।

2.5 सारांश

जीवन विज्ञान के अभी तक के विवेचन से स्पष्ट है कि यह मानव जीवन में मूल्यों के विकास के लिए प्रेक्षाध्यान एवं योग के दार्शनिक, प्रायोगिक एवं अनुप्रायोगिक पक्ष का अध्ययन एवं प्रशिक्षण करता है। हमने अध्ययन और अभ्यास, सिद्धात और साधना में अंतर भी देखा। इस दृष्टि से जीवन विज्ञान का क्षेत्र एक सीमा रखता है पर प्रेक्षाध्यान एवं योग के परिणामों पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि यह तकनीक जीवन की समग्र अर्हताओं और शक्तियों के विकास की पद्धति है। उदाहरणार्थ ध्यान के अभ्यास से व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, भावात्मक एवं आध्यात्मिक सभी पक्षों का विकास होता है। सच है कि कोरा सिद्धान्त या उपदेश केवल मस्तिष्क तक जाकर रुक जाता है। वह हमारे भीतर आन्तरिक प्रेरणा तो पैदा कर सकता है पर प्रायः स्थायी नहीं रहता। दूसरी ओर अभ्यास हमारे मस्तिष्क से आगे अन्तःस्रावी ग्रन्थियों को प्रभावित करता है एवं आमूल चूल परिवर्तन में सहायक होता है।

जीवन एक समग्रता है, उसे केवल शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक व आध्यात्मिक पक्षों में बांटा नहीं जा सकता। अतः केवल शारीरिक या बौद्धिक विकास तक शिक्षा को सीमित कर देना असंतुलित शिक्षा पद्धति का द्योतक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आशय यह है कि समग्र जीवन और उसके सभी पक्षों पर ध्यान केन्द्रित करना, उसके प्रशिक्षण कौशल को विकसित करना एवं प्रशिक्षकों को तैयार करना जीवन विज्ञान का कार्य है। इसलिए जीवन विज्ञान विभिन्न विज्ञानों एवं विद्याओं से न केवल संबन्धित है वरन् ध्यान एवं योग के प्रशिक्षण के वैज्ञानिक स्वरूप को समझने के लिए व आधुनिक विज्ञान व विद्या शाखाओं की उपेक्षा नहीं कर सकता। विभिन्न शाखाएं हमें यथार्थ ज्ञान देती हैं। यह ज्ञान जीवन मूल्यों तथा योग और ध्यान को समझने में कितना सहायक है यह देखना जीवन विज्ञान का कार्य है। जीवन विज्ञान, शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान, भारतीय मनोविज्ञान, परामनोविज्ञान आदि जीवन के मुख्य संघटक तत्त्वों के बारे में तथ्यों को देते हैं जिससे जीवन के समस्त विकास की दृष्टि से मूल्यांकन करना जीवन विज्ञान का कार्य है। इस प्रकार जीवन विज्ञान ज्ञान की अन्य शाखाओं से संबन्धित है।

जीवन के पीछे ही सारी प्रवृत्तियां चलती हैं। जीवन के अभाव में वस्तु मूल्यहीन हो जाती है। शरीर, श्वास, मन, प्राण, कर्म, भाव, चेतना, जीवन के संघटक तत्त्व हैं। ये प्रशिक्षित होने पर जीवन विकास में सहायक बनते हैं, अन्यथा बाधक। जीवन विज्ञान इनका प्रशिक्षित करने का व्यवस्थित उपक्रम है। जीवन विज्ञान जीवन के संघटक तत्वों एवं उनके अन्तः सम्बन्धों का अध्ययन करता है। जीवन विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में जीवन से सम्बन्धित सभी तत्वों के प्राचीन व आधुनिक, दार्शनिक व वैज्ञानिक प्रावधानों का समावेश हुआ है। प्राचीन ज्ञान शाखा का केन्द्रिय तत्त्व था– जीवन में दुखः मुक्ति कैसे हो? वर्तमान विद्या शाखाओं का केन्द्रीय तत्त्व है– सुख समृद्धि के संसाधनों का विकास कैसे हो? जीवन विज्ञान में जीवन मूल्यों एवं उनके विकास से सम्बन्धित योग विद्या की शाखाओं का विशेष रूप से अध्ययन एवं अभ्यास किया जाता है। जीवन मूल्यों से सम्बन्ध रखने वाली प्रमुख विधा शाखाएं हैं– दर्शनशास्त्र राजनीतिशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र व समाजशास्त्र। अध्ययन की दृष्टि से योग विद्या की शाखाएं हैं– पातंजल योग, बौद्ध, जैन, विपश्यना, भावातीत ध्यान व प्रेक्षाध्यान। जीवन विज्ञान में समाज का अध्ययन भी महत्वपूर्ण क्षेत्र है। जीवन विज्ञान सम्पूर्ण जीवन का अध्ययन विधायक व नियोजक दोनों प्रकार से करता है। जीवन विज्ञान का राम्बन्ध भौतिक विज्ञान और जीव विज्ञान रो भी है। इरागें अध्ययन की इकाई व्यक्ति है। दर्शनशारत्र व तत्त्व ज्ञान का भी जीवन विज्ञान से सीधा सम्बन्ध है परन्तु प्रकृति, दृष्टिकोण व पद्धतियों का अन्तर पाया जाता है। जीवन विज्ञान का शिक्षाशास्त्र से भी गहरा सम्बन्ध है। यह वर्तमान शिक्षा में भावात्मक विकास की कमी को पूरा करती है।

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. जीवन विज्ञान एक नई———————————————————— है।
2. प्रायोगिक अभ्यास———————————————————— की विशिष्टता है।
3. जीवन विज्ञान और ———————————————— के दृष्टिकोण भिन्न–भिन्न हैं।
4. जीवन विज्ञान जीवन मूल्यों के विकास की————————————————है।
5. शिक्षा का कार्य———————————————————— विकास करना है।

II. अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. दु:ख के मूल कारण को किस रूप में समझा गया?
2. जीवन विज्ञान किस पर बल देता है?
3. मूल्यों से संबन्धित विद्या शाखाएं कौन–सी हैं?
4. धर्म का पहला साधन कौन है?
5. जीवन विज्ञान किस पर ध्यान केन्द्रित करता है?

III. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. जीवन विज्ञान के विषय क्षेत्र को संक्षेप में समझाइए।
2. जीवन विज्ञान का भौतिक विज्ञान तथा जीव विज्ञान से क्या संबन्ध है?

IV. निबंधात्मक प्रश्न

1. जीवन विज्ञान के मूल तत्त्वों की व्याख्या कीजिए।

2.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. जीवन विज्ञान की रूपरेखा – मुनि धर्मेश।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–3 व्यक्तित्व विकास, शिक्षा एवं चिकित्सा में जीवन विज्ञान की उपयोगिता

इकाई की संरचना

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 जीवन विज्ञान की उपयोगिता

- 3.2.1 शिक्षा का भारतीयकरण
- 3.2.2 शिक्षा और धार्मिक शिक्षा का प्रश्न
- 3.2.3 योग विद्या
- 3.2.4 योग विद्या – समस्या और समाधान
- 3.2.5 जीवन विज्ञान – योग शिक्षा

3.3 जीवन विज्ञान का कार्य क्षेत्र

3.4 व्यक्तित्व विकास में जीवन विज्ञान

- 3.4.1 व्यक्तिगत अनुभव
- 3.4.2 वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन

3.5 शिक्षा में जीवन विज्ञान

- 3.5.1 भारतीय शिक्षा नीति में जीवन विज्ञान का योगदान
- 3.5.2 जीवन विज्ञान पाठ्यक्रम – राज्यवार स्थिति
- 3.5.3 शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय में जीवन विज्ञान पर शोध
- 3.5.4 छात्रों पर जीवन विज्ञान का शोध कार्य

3.6 चिकित्सा में जीवन विज्ञान

- 3.6.1 प्रेक्षा चिकित्सा केन्द्र
- 3.6.2 राजनांदगांव में त्रिदिवसीय शिविर
- 3.6.3 उज्जैन में प्रेक्षाध्यान पर डाक्टरों की गोष्ठी
- 3.6.4 हृदय रोगियों पर शोध कार्य
- 3.6.5 मेडिकल कॉलेज में जीवन विज्ञान
- 3.6.6 शिविरों में वैज्ञानिक परीक्षण
- 3.6.7 प्रेक्षा चिकित्सा शोध परियोजना
- 3.6.8 AIIMS नयी दिल्ली के साथ प्रेक्षाध्यान चिकित्सा परीक्षण
- 3.6.9 चिकित्सकों का व्यक्तिगत अनुभव
- 3.6.10 चिकित्सा व्यवसाय में जीवन विज्ञान

3.7 खेलों में जीवन विज्ञान

3.8 सारांश

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.0 प्रस्तावना

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करें तो यह बात उभकर सामने आती है कि शिक्षा के आदान–प्रदान का संबंध प्राचीन काल से ही धर्म से जुड़ा रहा है। कालान्तर में जब धर्म में रूढ़िवादिता, अंधविश्वास व उपासना की प्रधानता बढ़ी तब उसके प्रतिकार में पाश्चात्य जगत् में वैज्ञानिक आंदोलन का जन्म हुआ। शिक्षा को धर्म से अलग करने की बात उठी। शिक्षा संस्थानों का पृथक रूप से विकास हुआ। पश्चिम से अंग्रेज जब भारत आये तब उन्होंने संविधान में भी शिक्षा को धर्म से अलग करने की बात जोड़ दी। इतना ही नहीं शिक्षा के प्रारूप में अंग्रेजों ने अपनी आवश्यकता, भाषा, साहित्य, संस्कृति और तात्कालिक उद्देश्यों को सामने रखा। उन्होंने शिक्षा को ऐसा रूप दिया जो सैद्धान्तिक अधिक था। जिससे उनकी अपनी आवश्यकतानुरूप बुद्धिजीवी वर्ग तैयार हो सके। उस शिक्षा में श्रम के प्रति आदर या स्वावलम्बन की शिक्षा का विशेष स्थान नहीं था। जिसके परिणामस्वरूप अनेक समस्याएं उत्पन्न हुईं –

1. शिक्षा पाठ्यक्रमों में धार्मिक और नैतिक शिक्षा का अभाव,
2. जनजीवन में नैतिक मूल्यों का ह्रास,
3. स्वावलम्बन और धर्म के प्रति अनुत्साह,
4. बेरोजगारी में वृद्धि,
5. अनुशासनहीनता में वृद्धि,
6. संस्कृति के प्रति अपनत्व का अभाव,
7. राष्ट्रीय भावना में न्यूनता एवं
8. उपभोक्ता संस्कृति की ओर रुचि।

3.1 उद्देश्य

आज शिक्षा के प्रारूप में सैद्धान्तिक पक्ष अधिक होने के कारण धार्मिक व नैतिक शिक्षा का अभाव है। इसका परिणाम है– स्वावलम्बन के प्रति अरुचि, बेरोजगारी, राष्ट्रीय भावना की कमी अदि। अनेक भारतीय मनीषियों ने शिक्षा में भारतीयता को पुष्ट करने का भरपूर प्रयास किया। योग विद्या भारत की प्राचीन विद्या है। योग विद्या को शिक्षा से जोड़ने पर अनेक समस्याओं का निराकरण सहज हो सकता है। जीवन विज्ञान, योग विद्या का प्रतिनिधित्व करने वाली विद्या शाखा है। जीवन विज्ञान की मांग आज जीवन के सभी क्षेत्रों में बढ़ती जा रही है। जीवन विज्ञान के प्रायोगिक कार्यक्रम और प्रेक्षाध्यान के देश–विदेश में लगने वाले शिविरों में हजारों हजारों लोगों के व्यक्तिगत अनुभव जीवन विज्ञान की विभिन्न क्षेत्रों में आवश्यकता और व्यक्तित्व में आये परिवर्तन को रेखांकित करते हैं। इस पाठ में आप जान पायेंगे कि–

- भारतीय शिक्षा में जीवन विज्ञान की उपयोगिता क्या है?
- जीवन विज्ञान का कार्य क्षेत्र कहां तक है?
- जीवन विज्ञान व्यक्तित्व विकास में किस प्रकार सहायक है?
- जीवन विज्ञान की शिक्षा क्षेत्र में क्या उपयोगिता है?
- एवं चिकित्सा क्षेत्र में इस की क्या उपयोगिता है?

3.2 जीवन विज्ञान की उपयोगिता

3.2.1 शिक्षा का भारतीयकरण

आजादी से पहले ही भारतीय मनीषियों का ध्यान उस ओर गया। उन्होंने नये शिक्षा संस्थानों और वैज्ञानिक ज्ञान का स्वागत तो किया परन्तु जो कमियां थीं उसको दूर करने के लिए भी आवाज को बुलंद किया। उनमें महर्षि दयान्द सरस्वती, स्वामी विवेकान्द, राजा राम मोहन राय, महर्षि अरविन्द, महात्मा गांधी, आचार्य तुलसी आदि उल्लेखनीय रहे हैं। इन्होंने भारतीय संस्कृति, श्रम और स्वावलम्बन पर आधारित शिक्षा संस्थानों के विकास की बात स्वीकार की एवं इसे मूर्त रूप भी प्रदान किया पर इससे भी सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति की दिशा और दशा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। निराकरण की दृष्टि से इन समस्याओं के समाधान में कोई विशेष सफलता नहीं मिली। इन महापुरुषों के प्रयासों में भारतीय संस्कृति के प्रति अभिरुचि जागृत करने की क्षमताएं तो थी किन्तु उनमें ऐसा कोई प्रायोगिक अभ्यास नहीं था जिससे बालक की अभिरुचि में स्थिरता और स्थायित्व आ सके। वर्तमान शिक्षा में आमूल–चूल परिवर्तन कर सकें, ऐसी स्थिति तब भी नहीं बनी। अतः वर्तमान शिक्षा पद्धति की ऐसी असहाय स्थिति है कि वह उपरोक्त समस्याओं का स्थायी हल नहीं दे पा रही है। शिक्षण संस्थान संख्यात्मक दृष्टि से बहुत तेजी से बढ़ रहे है पर गुणात्मक दृष्टि से अभिलाषित (वांछनीय) परिणाम नहीं दे रहे हैं। इन क्षणों में कुछ मौलिक विचार और तदनुसार व्यवस्था की जरूरत है जो इन समस्याओं की मूल जड़ों तक पहुंच सके और उसका समाधान कर सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.2.2 शिक्षा और धार्मिक शिक्षा का प्रश्न

सौभाग्य से भारतीय संस्कृति इतनी समृद्ध है, इसके विचार, इसकी व्यवस्थाएं और उनसे उपजने वाली वस्तुएं वर्तमान की समस्याओं का समाधान देने में सक्षम है। आज देश में अनेक धर्म हैं, अनेक पंथ और उनकी उपासना की परम्पराएं हैं। किसी एक उपासना को महत्त्व देना या सभी के समवाय को प्रवेश देना सम्भव प्रतीत नहीं होता। आचार्य श्री तुलसी ने धर्म के तीन रूप बताए– अध्यात्म, नैतिकता व उपासना। सभी धर्मों की उपासना पद्धतियां भिन्न–भिन्न हैं। नैतिकता सभी धर्मों में स्वीकृत है। अध्यात्म सभी धर्मों की जननी है। वह सबका मूल है। धर्म के मूल तत्त्व पर किसी को आपत्ति नहीं हो सकती है। धर्म का मूल है– अध्यात्म। यह वैज्ञानिक भी है और प्रायोगिक भी। यह भारतीय संस्कृति की एक अमूल्य धरोहर है। इसका शिक्षा में समावेश करने से किसी को आपत्ति नहीं हो सकती है।

3.2.3 योगविद्या

भारतीय अध्यात्म विद्या का प्रायोगिक स्वरूप है– योग विद्या। यह योग विद्या आत्म साधना का मार्ग है जो सभी धर्मों के मौलिक स्वरूप का एक निदर्शन है। यह धर्म के मौलिक रूवरूप को अभिव्यक्त करता है। धर्म का मूल स्वरूप है– अध्यात्म। यदि योग विद्या को शिक्षा से जोड़ दिया जाता है तो शिक्षा की अनेक समस्याओं का निराकरण तो होता ही है साथ–साथ सामाजिक एवं राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती है। व्यक्ति को अपने जीवन की अनेक समस्याओं का समाधान मिलता है। शिक्षा की एक समस्या है उद्देश्य और पाठ्यक्रम की दूरी। शिक्षा का उद्देश्य है सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास लेकिन वर्तमान पाठ्यक्रम केवल शारीरिक और बौद्धिक विकास तक ही सीमित रह गया है। इसमें भी शारीरिक विकास की प्रक्रिया में पर्याप्त शिथिलता है। बौद्धिक विकास का मापन भी परीक्षा प्रणाली पर केन्द्रित हो गया है और व्यापकता और निरन्तरता का अभाव है। योग विद्या के समावेश से मानसिक, आध्यात्मिक, संवेगात्मक अर्थात् भावनात्मक विकास में प्रभावी ढंग से सहयोग मिलता है। शिक्षा के सैद्धान्तिक रूप के साथ–साथ प्रायोगिक रूप भी सामने आता है। इससे शिक्षा संतुलित और सर्वांगीण बन सकती है। प्रयोग का प्रभाव स्थायी रहता है। योग विद्या के समावेश से अनेक सामाजिक समस्याओं का समाधान मिल सकता है। समाज में गिरते हुए नैतिक मूल्य, व्यसन की समस्या, हिंसा की समस्या, बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या, श्रम के प्रति हीनभावना की समस्या, संस्कृति के प्रति दुराव की समस्या आदि समकक्ष समस्याओं का काफी हद तक निदान हो सकता है।

योग विद्या के समावेश से अनेक राष्ट्रीय समस्याओं का समधान मिल सकता है। योग विद्या से आत्मसंतुष्टि की भावना उत्पन्न होती है। इससे राष्ट्र और सब धर्मों के प्रति आदर का भाव उत्पन्न होता है जिससे राष्ट्रीय एकता को बल मिलता है। व्यक्ति के जीवन में योग विद्या के अभ्यास से स्वास्थ्य की सुरक्षा, मनोबल का विकास और संवेग नियंत्रण की शक्ति विकसित होती है। इससे व्यक्ति अपने जीवन में अधिक सफल हो सकता है। योग विद्या की उपयोगिता सर्वदा परिलक्षित हो रही है। इस क्षेत्र में आजीविका की विपुल सम्भावनाएं भी बढ़ी हैं।

3.2.4 योग विद्या – समस्या और समाधान

योग विद्या के शिक्षण में भी कुछ समस्याएं हैं उन पर विचार करना आवश्यक है। भारतीय योग विद्या के अनेक प्रकार हैं, अनेक शाखाएं हैं। इसके प्रमुख प्रकार हैं– कर्मयोग, भक्तियोग, लययोग, नादयोग, हठयोग, राजयोग, ज्ञानयोग। इसकी शाखाओं के अन्तर्गत– तंत्रयोग, जैनयोग, बौद्धयोग, पातंजल योग आदि भी सामाविष्ट हैं। प्रश्न यह होता है कि शिक्षा में योग विद्या को किस स्वरूप में प्रस्तुत किया जाये? कितना प्रस्तुत किया जाये? कैसे प्रस्तुत किया जाये? आज योग शिक्षा के प्रति व्यापक आकर्षण बढ़ा है। शिक्षा में यत्र–तत्र योग का समावेश भी किया गया है। कहीं–कहीं इसे शारीरिक शिक्षा के साथ भी जोड़ने का प्रयत्न किया गया है पर उसकी तस्वीर खंडित व एकांगी है। केवल योगासन व प्राणायाम के अभ्यास तक ही योग विद्या को सीमित कर दिया गया है। इसमें परिष्कार व संवर्धन के साथ पूरी शिक्षण–प्रशिक्षण की प्रणाली पर ध्यान देना आवश्यक है।

1. इसमें ध्यान का अभ्यास भी आवश्यक है।
2. सैद्धान्तिक पक्ष की पूरी जानकारी भी दी जानी चाहिए।
3. जहां थोड़ी बहुत जानकारी दी जाती है, उसे भी आधुनिक वैज्ञानिक –अनुसंधान के साथ जोड़ने की आवश्यकता है।
4. विद्यार्थियों को योग के सभी प्रकारों व शाखाओं से परिचित कराने की जरूरत है।
5. उसके दार्शनिक, आध्यात्मिक पक्ष के साथ–साथ भावनात्मक, मानसिक व शारीरिक प्रभावों की वैज्ञानिक जानकारी देना भी आवश्यक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आज योग विद्या को केवल अध्यात्म विद्या के रूप में ही नहीं वरन् जीवन के विज्ञान के रूप में प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। इसमें सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करने व दिशा देने की अपूर्व क्षमता है।

1. इन सबके व्यवस्थित, दार्शनिक व वैज्ञानिक ज्ञान तथा अभ्यास जन्य निपुणता को प्राप्त करने के लिए समग्र दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है।
2. उसका व्यवस्थित प्रशिक्षण देने के लिए मानव संसाधन की आवश्यकता है।
3. शिक्षा में उसे एक विषय के रूप में प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है। इससे व्यापक स्तर पर विद्यार्थी, शिक्षक एवं अभिभावकों को लाभ मिलेगा।
4. योग शिक्षा को अपनाना स्वास्थ्य शिक्षा, मूल्यपरक शिक्षा व नैतिकता की शिक्षा की कमी को पूरा करने में एक महत्त्वपूर्ण योगदान होगा।

3.2.5 जीवन विज्ञान – योग शिक्षा

जीवन विज्ञान सम्पूर्ण भारतीय योग विद्या का प्रतिनिधित्व करने वाली नई विद्या शाखा है। यह योग विद्या को समग्रता में स्वीकार करता है। यह केवल समवाय नहीं बल्कि भारतीय योग विद्या का आधुनिकतम संस्करण है। इसमें योग विद्या के सैद्धान्तिक ज्ञान तथा प्रायोगिक अभ्यास का समावेश है। इसके सैद्धान्तिक ज्ञान में प्राचीन ज्ञान का आधुनिक विज्ञान के साथ प्रस्तुतीकरण है एवं तुलनात्मक अध्ययन पर विशेष बल दिया गया है। जीवन विज्ञान में व्यक्ति के दृष्टिकोण और वैज्ञानिक अभिरुचि के विकास के साथ–साथ योग विद्या का पारम्परिक ढंग से अभ्यास भी कराया जाता है। वर्तमान शिक्षा पद्धति के साथ जीवन विज्ञान के समावेश से अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है। इसकी उपयोगिता अनेक दृष्टियों से उभरती है–

1. धार्मिक शिक्षा की जटिलता सुलझ जाती है और वांछित परिणाम भी प्राप्त हो जाते हैं।
2. नैतिक शिक्षा में प्रयोगात्मक पक्ष के अभाव से जो वांछित परिणाम नहीं आ पा रहे हैं वह जीवन विज्ञान से आ सकते हैं।
3. मूल्य परक शिक्षा के द्वारा जिन मूल्यों का विकास करना चाहते हैं वह जीवन विज्ञान से सहज हो जाता है क्योंकि इसमें मूल्यों के वैज्ञानिक आधार पर ध्यान दिया जाता है तथा उन्हें प्रयोग व अभ्यास के माध्यम से पुष्ट किया जाता है।
4. चारित्रिक विकास हमारे स्थायी भावों के विकास का परिणाम है। जीवन विज्ञान की प्रायोगिक प्रक्रियाओं के अभ्यास से बालक का चरित्र सुदृढ़ होता है। इससे बच्चों में अच्छे संस्कार विकसित होते हैं।
5. सुदृढ़ चरित्र वाला परिस्थितियों का दास नहीं होता, वह विपरीत परिस्थिति में भी नये सृजन की क्षमता रखता है।

3.3 जीवन विज्ञान का कार्य क्षेत्र

संसार में अनेक प्रकार के पदार्थ हैं। उनमें कुछ उपयोगी और कुछ अनुपयोगी हैं। जो वस्तुएं अनुपयोगी होती हैं उनका विकास अवरुद्ध हो जाता है। वे धीरे–धीरे काल के गर्त में चली जाती हैं, लुप्त हो जाती हैं। जो पदार्थ उपयोगी होते हैं उनका विकास होता रहता है, मांग बढ़ती जाती है। शिक्षा जगत् में 'जीवन विज्ञान' एक उपयोगी विद्या-शाखा सिद्ध हो रही है। यद्यपि इसका अध्ययन–अध्यापन बहुत पुराना नहीं है। जब से जीवन विज्ञान का उद्‌भव हुआ है तभी से इसकी मांग बढ़ती जा रही है। शिक्षा जगत् के अतिरिक्त भी प्रशिक्षकों ने जीवन विज्ञान को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आजमाया है। उन्हें अप्रत्याशित सफलता मिली है। इसके वस्तुनिष्ठ परीक्षण किये हैं। व्यक्तिनिष्ठ अनुभव और अभिमत भी एकत्रित किये गये है। इन सब अनुभवों ने इसकी असीम उपयोगिता एवं संभावनाओं को उजागर किया है। अब यह पद्धति प्रशासन, चिकित्सा, स्वास्थ्य प्रबन्धन, उद्योग एवं व्यवसाय, सेना, पुलिस, अपराध–सुधार आदि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उपयोगी सिद्ध हो रही है। इन क्षेत्रों में ऐसे प्रशिक्षकों की तीव्र मांग आ रही है जो इन क्षेत्रों में जा कर इसका प्रशिक्षण एवं अभ्यास करा सके। इस मांग को देखते हुए हजारों–हजारों दक्ष प्रशिक्षकों की अपेक्षा है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी क्षमता एवं दक्षता से समस्याओं के समाधान में नई पहल और दृष्टि दे सकें। यह अपेक्षा जीवन विज्ञान पढ़ने वालों के लिए असीम संभावनाओं को अभिव्यक्त करती है।

आधुनिक युग में जीवन विज्ञान का कार्य क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जहां आंतरिक क्षमताओं के विकास की अपेक्षा है वह जीवन विज्ञान का भी कार्य क्षेत्र है। अतः जीवन विज्ञान का कार्य क्षेत्र बड़ा व्यापक एवं विस्तृत है। मुख्य रूप से जीवन विज्ञान के कार्य क्षेत्र के दो पक्ष हैं–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. वैयक्तिक जीवन में क्षमताओं का विकास एवं

2. सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की समस्याओं का समाधान।

सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न प्रकार की क्षमताओं के अभाव में उस क्षेत्र में कार्यरत व्यक्ति स्वयं असंतोष का अनुभव करते हैं एवं सेवा लेने वाले लोग भी पूर्ण संतुष्ट नहीं हो पाते हैं। वे क्षमताएं शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, व्यवहारिक या ज्ञानात्मक हो सकती हैं। जीवन का कोई भी क्षेत्र हो सकता है। शिक्षा, चिकित्सा, प्रबंधन, प्रशासन, अपराध–सुधार या सुरक्षा आदि का क्षेत्र। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी–अपनी आवश्यकताएं होती हैं। उसी के अनुरूप वहां कार्य करने वाले लोगों में विशेष प्रकार की क्षमता, गुणों / मूल्यों की अपेक्षा की जाती है जिससे वे विशिष्ट प्रकार के कार्य सम्पादन कर सकें, समस्याओं का समाधान कर सकें (देखें तालिका)। जीवन विज्ञान के कार्य क्षेत्र को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है–

1. व्यक्तित्व विकास और स्व–प्रबंधन, 2. शिक्षा, 3. चिकित्सा, 4. प्रशासन एवं सुरक्षा बल, 5. उद्योग एवं प्रबन्धन तथा 6. अपराध सुधार एवं पुनर्वास।

इन क्षेत्रों में व्यक्तियों में भिन्न–भिन्न क्षमताओं की अपेक्षा होती है। इन क्षमताओं के संदर्भ में जीवन विज्ञान के प्रशिक्षकों द्वारा सेवा के क्षेत्रों में सहायता करते समय इन क्षेत्रों से संबंधित समस्याओं एवं आवश्यकताओं का समाधान हो, ऐसा दृष्टिकोण अपनाया गया है। वे समस्याएं जो जीवन विज्ञान प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण की सीमा में आती हैं वे निम्नोक्त हैं–

जीवन–क्षेत्र एवं मूल्य तालिका

जीवन–क्षेत्र	अपेक्षित मूल्य / आचार संहिता	जीवन विज्ञान से अनुभूत एवं विकसित जीवन मूल्य
अध्यापन	अध्यापन व आचरण में दूरी न रहे, शांत एवं धैर्यवान, वाक्कुशलता, मैत्रीपूर्ण व्यवहार, अध्ययन एवं अनुसंधान–रुचि, स्वतंत्र एवं निर्भीक सम्मति, अध्यापन में जागरूकता एवं समर्पण, विद्यार्थियों के साथ समभाव एवं सहयोग, चुगली न करना, अध्यापन में बाधक व्यवसाय का निषेध।	चित्त की एकाग्रता, संवेग नियंत्रण की क्षमता, कार्य–रुचि, स्मरण–शक्ति, सकारात्मक दृष्टिकोण, विधायक भाव आदि। नाड़ी–गति, श्वास गति, भूख, पाचन क्रिया पर सकारात्मक प्रभाव।
प्रशासन	संवेदनशीलता, सेवा परायणता, नैतिकता, कुशलता, तटस्थता, संवेग नियंत्रण, जनतंत्रीय पद्धतियों के प्रति जागरूकता, समाज के प्रति समर्पित, निर्णय लेने में सक्षमता।	एकाग्रता, उत्साह, कर्त्तव्य परायणता, आत्म–विश्वास, शांति, मानसिक स्थिरता, निर्णय की प्रक्रिया, निष्पक्षता आदि।
चिकित्सा	सेवा ज्ञान का सदुपयोग, मानव जीवन के प्रति सम्मान, सबके प्रति समान व्यवहार, व्यवसाय के प्रति आदर एवं सम्मान, रोगी के स्वास्थ्य को प्राथमिकता, गोपनीयता, साथी चिकित्सकों के प्रति भ्रातृत्व, मृदुता, गंभीरता, धैर्य, निश्चितता, पवित्रता।	मानसिक शांति, एकाग्रता, उत्साह, स्फूर्ति, कार्यक्षमता, विचारशुद्धि, वृत्ति–शोधन, आत्म–विश्वास, स्वास्थ्य लाभ, मृदुता, उत्तेजना में कमी, मानसिक संतुलन आदि।

शारीरिक स्वास्थ्य संरक्षण, बीमारियां, मानसिक विकास, मानसिक रुग्णता, निर्णय लेने की क्षमता, स्मृति विकास, चिन्तन विकास, कल्पना का विकास, क्रोध शमन, अहंकार विसर्जन, सरलता का विकास, आकांक्षाओं का संयम, व्यवहार शुद्धि, समाज विरोधी व्यवहार, पारिवारिक असमायोजन आदि।

इन समस्याओं के निवारण के लिए एवं अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए जिन प्रयोगात्मक अभ्यासों का मुख्य रूप से आयोजन किया जाता है वे हैं–

➢ **शिक्षा के क्षेत्र में–** शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक विकास का प्रशिक्षण, आसन–प्राणायाम, ध्यान, मुद्रा, कायोत्सर्ग, श्वास प्रेक्षा, शरीर प्रेक्षा, चैतन्य केंद्र प्रेक्षा, लेश्या ध्यान और अनुप्रेक्षा।

➢ **चिकित्सा के क्षेत्र में–** शारीरिक रोग, मानसिक रोग एवं भावनात्मक समस्याओं के निवारण हेतु स्वास्थ्य सेवाएं, प्रेक्षा चिकित्सा के विशेष प्रयोग।

➢ **प्रशासन एवं प्रबंधन के क्षेत्र में–** तनाव प्रबंधन, निर्णय क्षमता, अन्तर्दृष्टि–जागरण व कार्यक्षमता विकास आदि का प्रशिक्षण।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

➢ **अपराध सुधार के क्षेत्र में** – क्रोध संतुलन, कलह–निवारण, शांति, अहिंसा की चेतना एवं आत्मौपम्य भाव का प्रशिक्षण।

➢ **सुरक्षा बल के क्षेत्र में**– एकाकीपन से जूझने, सहिष्णुता / तनाव–प्रबंधन आदि का प्रशिक्षण।

उपरोक्त क्षेत्रों में जीवन विज्ञान की सेवाओं को प्रदान करते समय जो समस्याएं उत्पन्न होती हैं उनको सुलझाने के लिए योग और ध्यान का अनुभव, प्रायोगिक अभ्यास की निपुणता, कौशल एवं वैज्ञानिक ज्ञान की आवश्यकता होती है। इन क्षेत्रों में सेवा प्रदान करने के लिए जीवन विज्ञान की अपनी प्रमुख प्रणालियों– अनेकान्त, अहिंसा, अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान का प्रयोग करना होता है।

3.4 व्यक्तित्व – विकास में जीवन विज्ञान

जीवन में सफलता का रहस्य है– शक्ति। अपनी शक्तियों का उपयोग करने के लिए उनसे परिचित होना आवश्यक होता है। यदि व्यक्ति अपनी शक्ति एवं गुणों से परिचित ना हो तो जीवन में सफल होना असम्भव है। जीवन विज्ञान व्यक्ति को अपनी शक्ति एवं गुणों से परिचित कराता है। उसके विकास में योगदान देता है एव उसे शक्तियों का उपयोग करना सिखाता है। उसके व्यवहार को परिमार्जित एवं परिष्कृत करता है।

प्रेक्षाध्यान जीवन विज्ञान की प्रायोगिक प्रणाली है। व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए जन–जन में 1975 से ही प्रेक्षाध्यान शिविरों का आयोजन किया जाने लगा था। एक दिवस से लेकर महीने भर तक के अनेकानेक शिविरों का आयोजन भारत एवं विदेशों में किया जा चुका है। जिनमें लाखों व्यक्ति भाग लेकर लाभ उठा चुके हैं । उनके व्यक्तिगत अनुभव उनके व्यक्तित्व में आये परिवर्तन को रेखांकित करते हैं।

3.4.1 व्यक्तिगत अनुभव

जीवन विज्ञान शिविरों में लाभान्वित प्रतिभागियों से प्राप्त व्यक्तिगत अनुभवों में से कुछ इस प्रकार हैं–

- मुझे नकारात्मक भाव एवं बुरे विचार आते थे। यहाँ मानसिक शांति प्राप्त हुई है। कैसे स्वस्थ रहा जाये? इसकी पूर्ण जानकारी मिली। सजगता बढ़ी है। विभिन्न प्रयोगों द्वारा रोगों के निवारण की विधि का भी ज्ञान हुआ है। ध्यान और कायोत्सर्ग सबसे अच्छे लगे – **(वीरेन्द्र बैद, भीनासर, राजस्थान)।**
- शिविर से मैंने समय का सदुपयोग करना सीखा। समय का सदुपयोग करने के लिए मैंने नए–नए आयामों को जीवन में जोड़ा है। सौहार्द एवं परस्पर मैत्री भाव का विकास हुआ है। शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक ज्ञान बढ़ा है **(समता दूगड़, राजलदेसर)।**
- कायोत्सर्ग में मुझे आनन्द की अनुभूति हुई। हमें क्रोध एवं भय से होने वाली हानी एवं इन पर विजय प्राप्त करने के सूत्र की जानकारी प्राप्त हुई। हमें आहार संबंधी भी कई बातें बतायी गयी। मैंने जो सीखा है, उसका अभ्यास प्रतिदिन करूंगी **(सुनिता पुगलिया, मलिक स्ट्रीट, कोलकत्ता)।**
- शिविर में हमें प्रेक्षाध्यान एवं योगासन के द्वारा शारीरिक, मानसिक बीमारियों के समाधान संबंधी अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ मिली। पहले मैं भारीपन महसूस करता था पर जब से ध्यान शुरू किया तब से मैं हल्का महसूस कर रहा हूँ **(सहिक्या बैद, कोलकत्ता)।**
- कायोसर्ग से तनाव दूर हुआ एवं मानसिक शांति प्राप्त हुई। ध्यान एवं प्राणायाम से मानसिक एकाग्रता की अनुभूति हुई स्मरण शक्ति के प्रयोग अच्छे लगे **(नीतू संचेती, हावड़ा)।**
- प्रेक्षाध्यान से मुझे अपने भीतर झांकने का मौका मिला। प्रारम्भ में सीधा बैठना मेरे लिए कठिन कार्य था परन्तु अब मैं एक घंटा तक सीधा बैठ सकता हूँ। विधेयात्मक सोच से हम अपने जीवन के तनाव को कैसे कम कर सकते हैं, अपने आपको कैसे बदल सकते हैं, यह सीखा। मानसिक सुदृढ़ता, चित्तशुद्धि एवं शांति का अनुभव हो रहा है। मैं पहले से अधिक संयमित हो गया हूँ। स्वास्थ्य संबंधी जानकारियों के बाद मुझे स्वयं में कई कमियां ज्ञात हुई, उन्हें दूर करने के उपाय किए। अब मैं अधिक स्वस्थ महसूस कर रहा हूँ। इसके लिए मैं पूज्य गुरूदेव, मुनिश्री एवं श्रमणवृन्द का आभारी हूँ **(नवीन बैद, कोलकत्ता)।**
- शिविर में हमारे जीवन से संबंधित ऐसी महत्वपूर्ण जानकारियां मिली जिनसे अब तक हम अनभिज्ञ थे। हमें ऐसे प्रयोग सिखाए गए जिनसे हम जीवन में आने वाली शारीरिक, मानसिक कठिनाईयों का सामाना करने में सक्षम हो सकें। कायोत्सर्ग, अनुप्रेक्षा शरीर में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रंगों का ध्यान, जप आदि करने की प्रक्रिया भी सिखायी गयी। मानसिक संतुलन बनाए रखने के लिए कई प्रयोग बताए गए। इस तरह के शिविर में भाग लेकर हम लोग अपनी आत्म चेतना शक्ति जागृत कर सकते हैं **(समता वैद, राजलदेसर)।**

3.4.2 वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन

प्रेक्षाध्यान अभ्यास शिविर के द्वारा व्यक्तित्व में अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन व्यवहार परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। उनका वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन करने के लिए मनोवैज्ञानिक डॉ. कुलदीप कुमार (एन.सी.ई.आर.टी.) ने दस दिवसीय शिविर का वस्तुनिष्ठ अध्ययन किया। इसमें अध्यापक, राज्य कर्मचारी, व्यवसायी, एवं गृहिणियों के अतिरिक्त सामान्य जनता ने भी भाग लिया।

ध्यानाभ्यासों के फलस्वरूप व्यक्तित्व में व्यवहारगत परिवर्तन क्या–क्या हुए, यह जानने के लिए 16 सूत्रीय व्यक्तित्व मापदण्ड का प्रयोग किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति में हुए इन परिवर्तनों के आधार पर इस अन्तर के आंकड़ों की जांच से पता लगता है कि स्वनिष्ठ, बहिर्मुख, विनम्र, अनमस्त तथा अनुशासन विहीन तथा अनुशासित विषयक व्यवहारों में स्पष्ट अन्तर आया। सम्पूर्ण ध्यानाभ्यासियों में से 65 से 73 प्रतिशत व्यक्तियों के व्यवहारों में महत्त्वपूर्ण अभिवृद्धि दिखाई दी।

ध्यानाभ्यास का दीर्घकालीन प्रभाव मालूम किया गया। जो व्यक्ति पहले से ही ध्यानाभ्यासी थे उनकी तुलना नये व्यक्तियों के साथ की गई। पुराने ध्यानाभ्यासी नये के अनुपात में 10 प्रतिशत अधिक भावुकता की दृष्टि से स्थिर, नियमों के पालक, कल्पनाशील, आत्मविश्वासी एवं तनाव मुक्त पाये गये।

यद्यपि उपर्युक्त निष्कर्ष छोटे उदाहरणों पर आधारित है तथापि उनके द्वारा कुछ व्यवहारगत आयामों पर ध्यानाभ्यासों के वास्तविक प्रभाव का ठोस प्रमाण मिलता है। निष्कर्ष यह है कि ध्यानाभ्यासरत व्यक्ति प्रेरित, सहकारी, अनुकूलनीय, स्वपर्याप्त, तनावमुक्त, शांत और संतुष्ट होते हैं।

सृजनात्मकता पर ध्यानाभ्यासों का प्रभाव जानने के लिए एक गवेषणात्मक अध्ययन किया गया। इसके प्राप्तांक सृजनात्मकता के चारों उत्पादनों में वृद्धि का संकेत देते हैं– धारा प्रवाहित, लचीलापन, मौलिकता, विवर्धन। गवेषणा से यह भी पता लगता है कि दस दिवसीय कार्यक्रमों में ध्यान के अभ्यासों से धारा प्रवाहित और विवर्धन के प्राप्तांको में वृद्धि हुई तथा जो परिवर्तन देखा गया, वह आंकड़ों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण पाया गया।

3.5 शिक्षा में जीवन विज्ञान

शिक्षा के क्षेत्र में शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक विकास के साथ–साथ नैतिकता व मूल्यों के विकास की समस्याएं होती हैं जिनके समाधान के लिए बच्चों को प्रशिक्षण देना होता है। जीवन विज्ञान के प्रशिक्षक जीवन विज्ञान की प्रणालियों का प्रयोग करके बच्चों को प्रशिक्षण देते हैं। वर्तमान काल में शिक्षा के क्षेत्र में जीवन विज्ञान का अभ्यास बढ़ता ही जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में जीवन विज्ञान ने असीम संभावनाओं को उजागर किया है। स्मृति, चिन्तन, तर्क आदि मानसिक क्रियाओं के विकास के प्रयोग खोजे जा रहे हैं। बालकों की रुचि, योग्यता और व्यक्तित्व विकास के लिए प्रायोगिक अभ्यास व सैद्धान्तिक ज्ञान के शिविर एवं कालांशों का आयोजन किया जाता है। विभिन्न शोध कार्य भी किये जाते हैं। जीवन विज्ञान द्वारा जीवन मूल्यों के विकास हेतु नये–नये उपायों की खोज की जाती है। शिक्षकों के व्यक्तित्व विकास, मधुरता, कर्तव्यनिष्ठता और व्यवहार कुशलता के विकास के लिए भी जीवन विज्ञान की अहम् भूमिका है। बालकों में अनुशासन, स्वस्थ आदतों का निर्माण, बुरी आदतों से मुक्ति तथा उनकी विभिन्न योग्यताओं का सर्वोत्तम विकास किस तरह किया जाए, यह जीवन विज्ञान का मुख्य कार्य है। जीवन विज्ञान प्रशिक्षक विभिन्न प्रायोगिक अभ्यास द्वारा विद्यार्थियों के विकास में सहायता करते हैं। बालकों के सर्वांगीण विकास पर विशेष ध्यान देते हैं। बच्चे देश के भावी नागरिक होते हैं। अतः उन्हें सामाजिक कुरीतियों से, बुराईयों से दूर रहने की प्रेरणा के साथ साथ अच्छे संस्कार निर्माण के लिए विशेष अभ्यास करवाये जाते हैं। मादक द्रव्यों के सेवन से होने वाली हानियों के प्रति भी विद्यार्थियों को जागृत किया जाता है। विद्यार्थियों की शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक समस्याओं का उपचार व समाधान प्रशिक्षक जीवन विज्ञान के अन्तर्गत करते हैं।

वर्ष 1978 में जीवन विज्ञान शिक्षा जगत् से जुड़ा। इसका लाभ अधिक से अधिक शिक्षक और विद्यार्थियों तक पहुचे अतः शिक्षण संस्थाओं में जीवन विज्ञान के प्रसार के साथ ही जीवन विज्ञान शिक्षक प्रशिक्षण शिविर एवं छात्र शिविरों के आयोजन विभिन्न स्थानों में प्रेक्षा केन्द्र एवं स्थानीय संस्थाओं के सहयोग से किये जाते हैं। समय–समय पर केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकार की शिक्षा से सम्बंधित संस्थाओं के तत्वावधान में भी ऐसे शिविर आयोजित किये गये। अणुव्रत शिक्षक संसद एवं जीवन विज्ञान अकादमी के द्वारा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भी ऐसे शिविर समय—समय पर आयोजित किये जाते हैं। अब तक अनेक शिविर आयोजित किये जा चुके हैं। इनमें शिक्षक एवं छात्र लाभाविन्त हुए हैं। शिक्षा विभाग, राजस्थान सरकार द्वारा स्वीकृत जीवन विज्ञान परियोजना के अन्तर्गत सन् 1982—83 में चयनित विद्यालयों में छात्रों को प्रशिक्षण दिया गया था।

1988 में हरियाणा शिक्षा विभाग की ओर से ग्रीष्मावकाश में मैसीव टीचर ओरियन्टेशन प्रोग्राम के अन्तर्गत लगभग 50 स्कूलों में प्रशिक्षण का प्रयोग चला। बोकारो इस्पात संयंत्र के विद्यालयों में वर्ष 1991 से जीवन विज्ञान जुड़ा और वहां लगातार शिविर आयोजित किये जाते रहे। भारत के विभिन्न भागों में यथा— दिल्ली, मुंबई, अहमदाबाद, सूरत, खेडब्रह्मा, भुवनेश्वर, भोपाल, राजसमंद, गुड़गांव, मदुरै, मद्रास, बैंगलौर, इन्दौर, नौखा आदि क्षेत्रों में जीवन विज्ञान के प्रशिक्षण शिविर आयोजित किये गये हैं। नवोदय एवं केन्द्रीय विद्यालयों के शिक्षकों के लिए भी जीवन विज्ञान के प्रशिक्षण शिविर आयोजित किये गये हैं।

3.5.1 भारतीय शिक्षा नीति में जीवन विज्ञान का योगदान

शिक्षा किसी भी देश के मेरुदंड की भांति उसके सम्पूर्ण ढांचे को दृढ़ता ही नहीं सुंदरता और तंत्रगत सुविधा भी प्रदान करती है। आज के वैज्ञानिक युग में तो शिक्षा का महत्व प्रत्यक्ष ही देखते बनता है। सक्षम अधिकारियों के निष्पक्ष व सहयोगी रवैये और प्रयोगकर्ताओं की मुखर अनुभूतियों ने जीवन विज्ञान विषय को सरकारी मान्यता पाने का मार्ग प्रशस्त किया।

1. दिल्ली राज्य— दिल्ली राज्य में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड दिल्ली के सचिव श्री एस.सी. गुप्ता ने पत्र क्रमांक एस/पी/ए/95/121—124 के द्वारा केन्द्रीय जीवन विज्ञान आकदमी द्वारा प्रस्तुत पाठ्यक्रम की भरपूर प्रशंसा की। यह भी स्वीकार किया कि इस पाठ्यक्रम में समाविष्ट कायोत्सर्ग, प्रेक्षाध्यान, श्वास प्रेक्षा, शरीर रचना व शरीर क्रिया विज्ञान आदि वैज्ञानिक आयामों सहित सारी प्रक्रिया शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक स्वास्थ्य को सुधारने व छात्रों को अधिक सबल व सक्षम करने में सहायक होगी।

मानव संसाधान विकास मंत्रालय के शिक्षा विभाग के माध्यमिक शिक्षा के संयुक्त सचिव डा.के.जे. चतरथ के पत्र सं. डी—ओ सं. 9—60/94 —वि.—3 के द्वारा केंद्रीय विद्यालय संगठन की आयुक्त श्रीमती जैकब को केन्द्रीय विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों और अध्यापकों को प्रशिक्षण के लिए प्रोत्साहित करते हुए अपने मंत्रालय द्वारा उपलब्ध की जा सकने वाली संभावित मदद की पेशकश की।

दिल्ली नगरपालिका के शिक्षा विभाग के निदेशक श्री टी.डी. त्यागी ने एक विज्ञप्ति क्रमांक—2664/पी.ए/निदेशक (शिक्षा) के माध्यम से श्रीमती एन. कौशल के संयोजकत्व में प्रौढ़ प्रशिक्षणार्थियों तथा अन्य इच्छुक अभ्यर्थियों को भी इसके लिए प्रोत्साहित किया। इसी संदर्भ में अन्य कार्यालयादेश सं. 2679/पी.ए. निदेशक (शिक्षा) के द्वारा दिल्ली नगरपालिका के अध्यापकों को जीवन विज्ञान प्रशिक्षण के लिए अध्यक्ष की अनुमति की सूचना दी।

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के निदेशक श्री.एस. पटनायक के पत्र क्रमांक पी.ए./डी.ई./ 95/441 के माध्यम से मूल्यपरक शिक्षा के इस कार्यक्रम को लागू करने तथा प्रशिक्षण के लिए शिक्षकों का चुनाव करके उन्हें यात्रा भत्ते आदि के प्रावधान की सुविधा प्रदान की। जिसका विस्तार उपशिक्षा निदेशक (विद्यालय) श्री टोलिया ने पत्रांक 23/32 क्र—94 द्वारा सभी मंडल निदेशकों को प्रशिक्षण में भाग लेने के इच्छुक शिक्षकों को वित्तीय प्रावधान और अवकाश की सुविधा देने का निर्देश दिया। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के शिक्षा निदेशालय के पत्र सं. 4564—5574/पी.ई. के द्वारा दिल्ली के सभी सरकारी, अनुदान व मान्यता प्राप्त माध्यमिक व उच्चतर विद्यालयों में प्रार्थना सभा में योग और जीवन विज्ञान के लघु प्रयोगों को दैनिक रूप से लागू करने का आदेश दिया गया।

पड़ौसी राज्य राजस्थान और जीवन विज्ञान की जन्मभूमि में इसका स्थान अन्य राज्यों के सम्मुख एक जीवंत उदाहरण जैसा है। राजस्थान की जयपुर स्थित केन्द्रीय विद्यालय संगठन के क्षेत्रीय कार्यालय से वहां के सहायक आयुक्त श्री राजेन्द्र कुमार जैन ने अपने पत्र 9.2.95 के वि.सं. (जयपुर) मू.शि./9041 द्वारा जयपुर संभाग के 21 में से 11 विद्यालयों में जीवन विज्ञान लागू करके सुचारू रूप से चलाने के लिए अपने शिक्षकों को प्रशिक्षित करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। प्रशिक्षण कार्यक्रम को सुव्यवस्थित व प्रभावशाली ढंग से चलाने के लिए संवाहक प्रशिक्षण की योजना को क्रियान्वित किया गया। इसके लिए एक त्रैमासिक प्रशिक्षण की व्यवस्था केन्द्रीय जीवन विज्ञान अकादमी, लाडनूं की ओर से दिल्ली में ही की गई थी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

भारत के तपोवन और आधुनिक युग में प्रसिद्ध औद्योगिक केंद्र बिहार में भी बोकारो स्थित निजी शिक्षण संस्थाओं में इसके महत्त्व को स्वीकारते हुए अपनाया गया। बोकारो इस्पात संयंत्र के विद्यालयों में जीवन विज्ञान एक स्वतंत्र विषय के रूप में पढ़ाया जाता है। अतः बोकारो के उपमुख्य (शिक्षा) श्री.वी.के.सिंह ने अक्टूबर में दिल्ली के आठ अध्यापकों को त्रैमासिक प्रशिक्षण दिलवाया। अंबाला के केंद्रीय विद्यालयों में जीवन विज्ञान प्रार्थना सभा में नियमित रूप से चल रहा है जिससे छात्रों के व्यवहार में चमत्कारिक परिवर्तन देखे गये।

हरियाणा राज्य में भी भाषात्मक और मानसिक रूप से छात्रों की सहायतार्थ शिक्षाविदों ने इसे स्वीकार किया। हरियाणा राज्य में वहां के माध्यमिक शिक्षा निदेशक के पत्रांक 15/63–96 कॉर्ड (4) के द्वारा गुड़गांव जिले के प्रधानाचार्यों/प्रधानाध्यापकों और शिक्षकों के प्रशिक्षण को जारी रखने के लिए अगले शिविरों के आयोजन का प्रस्ताव रखा गया।

अहिंसा को क्रिया रूप में स्वीकार करके भारत के प्रतीक बन जाने वाले राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की जन्मभूमि गुजरात की शिक्षामंत्री ने सिद्धान्ततः इसे स्वीकार करते हुए आगामी कार्यवाही के लिए प्रोत्साहित किया। गुजरात राज्य में पत्र क्रमांक–300/शिक्षा/प्राथमिक माध्यमिक प्रौढ़ शिक्षण महिला व कल्याण कार्यालय के अंग सचिव श्री किरीट अध्वर्यु ने अपने राज्य में जीवन विज्ञान के शिक्षा जगत् में परिचय के लिए 27–28 मई, 2000 को शिविर का आयोजन किया। जिसमें गुजरात राज्य शैक्षिक अनुसंधान प्रशिक्षण केन्द्र के लगभग 120 अधिकारियों ने भाग लिया। गुजरात के नगर प्राथमिक शिक्षा समिति अहमदाबाद के शासनाधिकारी श्री उमाकांत त्रिपाठी ने अपने 22 जून, 2000 के पत्र सं–सी/34 के माध्यम से अहमदाबाद महानगर के सभी गुजराती, हिन्दी, उर्दू, मराठी, सिंधी माध्यम के 566 प्राथमिक विद्यालयों में लागू करने की मंजूरी संबंधी आदेश जारी किये, जिसके लिए 566 विद्यालयी शिक्षकों को 27 जुलाई को प्रशिक्षित करने संबंधी शासनाधिकारी की प्रशासकीय अनुमति, आदेश क्रमांक–433 दिनांक 27 जून 2000 के रूप में जारी की गई।

जीवन विज्ञान को लेकर अनेक राज्यों की शिक्षण संस्थाओं ने पत्रों के द्वारा इस विषय पर विचार प्रस्तुत किये। प्रस्तुत है एन.सी.ई. आर.टी. द्वारा लिखे गये पत्र का मुख्य अंश –

F.No.25-5/DTEE/99-2000

Respected Muni Shri Kishan Lalji,

Some of my colleagues met you on 13th March 2000 and have reported to me the outcome of their interaction. I am indeed happy to know that you have very kindly agreed to organize programmes for the NCERT faculty and teacher educators from other instiutions on Jeevan Vigyan in Delhi and also subsequently at four Regional Institutes of Education located at Ajmer, Bhopl, Bhuvaneshwar and Mysore. These programmes will give a new direction to the content of teacher education and would strengthen the affective part of the development and growth of every individual teacher in due course. This effort, initiated with your blessing, will have a great-multiplied effect leading to the preparation of quality teachers. With kind regards,

Yours sincerely,
(J.S.Rajput)
Director, NCERT

जीवन विज्ञान. सी.डी.

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् द्वारा जीवन विज्ञान पर एक सी.डी. बनाई गई। परिषद् के अध्यक्ष श्री अमरनाथ महेश्वरी ने कहा कि जीवन विज्ञान पर जो यह सी.डी. बनाई गई है, इसके माध्यम से मूल्य शिक्षा के क्षेत्र में देश के तीन लाख शिक्षकों को महत्त्वपूर्ण जानकारी ही नहीं मिलेगी अपितु अनेकों शिक्षक जीवन विज्ञान को अपने व्यवहार का अंग बनाएंगे। उन्होंने कहा कि अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में यह एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

3.5.2 जीवन विज्ञान पाठ्यक्रम – राज्यवार स्थिति

जीवन विज्ञान पाठ्यक्रम को कई राज्यों में विभिन्न स्तरों पर अपनाया गया है और वहाँ इस विषय के निर्मित पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तकों, शिक्षक संदर्शिका और ग्रंथों का प्रयोग हो रहा है। अब तक जीवन विज्ञान की अधिकृत स्थितियाँ इस प्रकार हैं–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. राजस्थान

1. स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम और अनुसंधान 1991 (संस्थान का गठन) से जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) लाडनूं (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, भारत सरकार द्वारा मान्य) में।
2. स्नातक स्तर पर जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं (मान्य विश्वविद्यालय) तथा महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविद्यालय अजमेर, महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर व सम्बद्ध महाविद्यालयों – ब्यावर, पाली, सरदारशहर, गंगापुर, राणावास, पीलीबंगा आदि में ।
3. ऐच्छिक विषय : उच्च माध्यमिक कक्षाओं के लिए माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान द्वारा पाठ्यक्रम अनुमोदित व आगामी सत्र 2001 से शिक्षण की स्वीकृति।
4. सेवारत शिक्षकों, लोक जुम्बिश परियोजना के शिक्षकों व अधिकारियों को प्रशिक्षण व नियमित अनुवर्तन।
5. स्तरानुसार प्रयोगों को प्राथमिक, उच्च प्राथमिक और माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किया गया है।

2. दिल्ली

1. केन्द्रीय विद्यालयों, नवोदय विद्यालयों के शिक्षकों व संस्था प्रधानों का प्रशिक्षण।
2. प्रार्थना सभा में राजकीय व गैर राजकीय विद्यालयों में तथा सीमित शिक्षण कालांशों में शिक्षण सत्र 2000 से।
3. दिल्ली राज्य के शिक्षकों व अधिकारियों का नियमित प्रशिक्षण।
4. वायुकर्मियों, व्यावसायिक अधिकारियों, सामान्य नागरिकों के लिए प्रशिक्षण।
5. गहन प्रशिक्षण – संदर्भ व्यक्ति निर्माणार्थ।
6. एन.सी.ई.आर.टी. के कतिपय अधिकारियों का प्रशिक्षण तथा क्षेत्रीय संस्थान, मैसूर, अजमेर, भोपाल, भुवनेश्वर के शिक्षाविदों का प्रशिक्षण।

3. बिहार

1. बोकारो स्टील ऑथोरिटी द्वारा संचालित सभी विद्यालयों में नियमित शिक्षण।
2. अन्य शिक्षण संस्थाओं में विषय शिक्षण।
3. प्रतिवर्ष ग्रीष्मावकाश, शरदावकाश में छात्रों व शिक्षकों के प्रशिक्षण।
4. जीवन विज्ञान में शोध कार्य प्रस्तावित है।

4. हरियाणा

1. सेवारत शिक्षा अधिकारियों, संस्था प्रधानों और शिक्षकों का प्रशिक्षण।
2. सेवारत शिक्षकों का नियमित प्रशिक्षण।
3. क्रमिक रूप से सभी जिलों की विद्यालयी शिक्षा में विषय का आरम्भ 1999 से।

5. गुजरात

1. जीवन विज्ञान अकादमी की स्थापना और क्षेत्रवार शिक्षकों का प्रशिक्षण।
2. राज्य सरकार द्वारा आरम्भ करने की घोषणा व पूर्व तैयारी का आरम्भ।

6. मध्यप्रदेश

1. नगरपालिका इन्दौर के शिक्षकों का प्रशिक्षण।
2. नगरपालिका इन्दौर के 50 विद्यालयों में जीवन विज्ञान शिक्षण।

7. तमिलनाडु

1. शिक्षकों का प्रशिक्षण।
2. चुने हुए विद्यालयों (चेन्नई) में जीवन विज्ञान का शिक्षण।
3. हिन्दी प्रचार सभा चेन्नई द्वारा नियमित पाठ्य पुस्तकों में जीवन विज्ञान के प्रमुख प्रकरणों का समावेश।
4. दवल्लिमल संस्थान मदुरै में नियमित प्रशिक्षण शिविर आयोजित।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8. महाराष्ट्र व कर्नाटक

1. शिक्षकों का प्रशिक्षण।
2. कतिपय विद्यालयों में शिक्षण।
3. महाराष्ट्र व कर्नाटक राज्यों की क्षेत्रीय भाषा में जीवन विज्ञान पाठ्य पुस्तकों का अनुवाद कर प्रयोग।

9. उड़ीसा

1. शिक्षकों व नागरिकों का प्रशिक्षण।
2. जीवन विज्ञान अकादमी की शाखा राउरकेला में स्थापित।

3.5.3 शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय में जीवन विज्ञान पर शोध

जीवन विज्ञान मूल्यपरक शिक्षा हेतु व्यवहारिक शिक्षा क्रम है। इस शिक्षा क्रम के लिए प्रशिक्षित शिक्षकों की आवश्यकता होगी। इसको ध्यान में रखते हुए प्रायोगिक तौर पर 'गांधी विद्या मंदिर' सरदारशहर (राज.) के शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय के 115 छात्राध्यापक–छात्राध्यापिकाओं पर शोध कार्य किया। यह 14.4.93 से 23.4.93 तक एक दस–दिवसीय जीवन विज्ञान प्रवेश प्रशिक्षण के रूप में चला। जीवन विज्ञान प्रशिक्षण रिपोर्ट बी.टी.टी. कॉलेज के प्रोफेसर डॉ. डी.एल.शर्मा ने तैयार की। उन्होंने 17 पैरामीटर्स के आधार पर इस शिविर के परिणामों के वैज्ञानिक तरीके से विश्लेषण एवं निष्कर्ष प्रस्तुत किये। जो इस प्रकार हैं–

शरीर पर प्रभाव

1. **शारीरिक भार पर प्रभाव**– शारीरिक भार पर प्रभाव की दृष्टि से निष्कर्ष यह निकला कि शिविर के क्रिया–कलापों का प्रभाव शारीरिक भार घटने की ओर इंगित करता है। क्योंकि 96 में से 55 अर्थात् 57.29 प्रतिशत शिविर प्रशिक्षणार्थियों के शरीर–भार में कमी हुई, यह सकारात्मक प्रभाव के रूप में अंकित किया गया।
2. **नाड़ी–गति पर प्रभाव**– नाड़ी–गति को संतुलित करने में शिविर के क्रिया–कलाप सफल रहे।
3. **श्वास–गति पर प्रभाव**– छात्र–छात्राओं की श्वास–गति अधिक थी। शिविर में भाग लेने से उनकी श्वास–गति घटी है।
4. **भूख की क्रिया पर प्रभाव**– भूख की क्रिया पर भी शिविर के क्रिया–कलापों का अनुकूल प्रभाव पड़ा। 67.80 प्रतिशत छात्र–छात्राओं के भोजन के परिमाण में वृद्धि हुई।
5. **उत्सर्जन क्रिया पर प्रभाव**– उपर्युक्त तीन शारीरिक प्रभावों की अपेक्षा उत्सर्जन क्रिया पर अधिक प्रभाव पड़ा। 72.91 प्रतिशत छात्र–छात्राओं की उत्सर्जन क्रिया में सुधार हुआ।

मानसिक एवं भावात्मक प्रभाव

1. 76.74 प्रतिशत छात्र–छात्राओं की आवेग–संवेगों पर नियंत्रण की क्षमता बढ़ी।
2. 90.62 प्रतिशत छात्र–छात्राओं की चित्त की एकाग्रता की स्थिति का विकास हुआ।
3. 82.29 प्रतिशत छात्र–छात्राओं की कार्य करने की रुचि बढ़ी है।
4. 75 प्रतिशत छात्र–छात्राओं की स्मरण शक्ति के विकास के लक्षण शिविर के स्मरण शक्ति पर प्रभाव को दर्शाते हैं।
5. शिविर के परिणाम–स्वरूप छात्र–छात्राओं का दृष्टिकोण सकारात्मक हुआ। अधिसंख्या अर्थात् 84.37 प्रतिशत में निषेधात्मक सोच कम हुई।
6. शिविर के परिणाम स्वरूप छात्र–छात्राओं की भावनाएं विधायक हुई हैं। इनकी निषेधात्मकता कम हुई है। 66.66 प्रतिशत छात्राओं की भावनाओं का परिष्कार हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.5.4 छात्रों पर जीवन विज्ञान का शोध कार्य

जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान का छात्रों के सर्वांगीण विकास पर पड़ने वाले प्रभाव को जानने के लिए 1996–97 में एक शोध कार्य किया गया। इसके प्रधान अनुसंधानकर्त्ता डा. बी.पी. गौड़ थे। इस कार्य के लिए दो विद्यालयों में कक्षा 8 से 25–25 छात्रों के दो समूहों का चयन किया गया, एक नियन्त्रित समूह एवं दूसरा प्रायोगिक समूह।

1. नियन्त्रित समूह के प्रयोज्यों (जिनको जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान का ज्ञान नहीं दिया गया) में पूर्व एवं पश्चात् परिस्थितियों के परीक्षणों में कोई सार्थक परिवर्तन नहीं देखा गया।
2. प्रायोगिक समूह के प्रयोज्यों (जिनको जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करवाया गया) में पूर्व परीक्षण की तुलना में 'पश्च' परीक्षणों में निम्न सांख्यिकीय सार्थक परिवर्तन देखे गये–
3. नियन्त्रित समूह की तुलना में प्रायोगिक समूह में उक्त चारों परीक्षणों में सार्थक धनात्मक परिवर्तन देखे गये। ये परिवर्तन l k[; dh l kFkd Lrj (P<.01 से P<.001) पर रहे।
   - अ. बौद्धिक विकास में सार्थक वृद्धि (P<.01)
   - ब. भावात्मक स्थिरता में वृद्धि (P<.05)
   - स. भय में सार्थक कमी (P<.01)
   - द. व्यक्तित्व के कुल 14 कारकों में से 9 कारकों पर धनात्मक प्रभाव देखा गया। इसमें इगो स्ट्रेन्थ, सुपर इगो स्ट्रेन्थ में सार्थक वृद्धि (P<.01) तथा शारीरिक एवं मानसिक थकान (एर्जिक टेन्शन) में कमी (P<.001) आदि सार्थक धनात्मक परिवर्तन देखे गये।

इस शोध कार्य के परिणामों से इस बात की आशा बनती है कि यदि जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान का प्रयोग अन्य विद्यालयों के कालांशों में नियमित किया जाए तो बच्चों के सर्वांगीण विकास में अच्छी सहायता मिल सकती है।

3.6 चिकित्सा में जीवन विज्ञान

चिकित्सा के क्षेत्र में जीवन विज्ञान की उपयोगिता निर्विवाद स्थापित है। इस क्षेत्र में जीवन विज्ञान से स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्याओं को समझने, उनके कारणों का पता लगाने तथा उनका निराकरण करने में सहायता मिलती है। स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए जीवन विज्ञान का ज्ञान एवं प्रायोगिक अभ्यास सहायक होता है। शिविर के माध्यम से विभिन्न रोगों तथा योग, प्रेक्षाध्यान द्वारा उनकी चिकित्सा की जानकारी दी जाती है एवं प्रायोगिक अभ्यास करवाया जाता है। जीवन विज्ञान के प्रभाव को आंकने के लिए समय–समय पर वैज्ञानिक, चिकित्सक, मनोचिकित्सक एवं मनोवैज्ञानिकों द्वारा शोध कार्य किये जाते हैं। रुग्ण की सेवा के लिए जीवन विज्ञान प्रशिक्षक अपने अनुभव और योग विद्या का प्रयोग करते हुए रुग्ण की रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास और विधायक दृष्टिकोण का निर्माण कर रुग्णता के निवारण में सहायता प्रदान करते हैं।

वर्तमान युग में मनोकायिक अस्वस्थता के कुछ मुख्य कारण यह भी माने गये हैं– तनाव, खान–पान तथा रहन–सहन। आज के युग में अत्यधिक स्पर्धा होने के कारण विद्यार्थी, व्यापारी, अधिकारी, नेता सभी जीवन की भाग–दौड़ में तनावग्रत हैं। इससे अनेक व्यक्ति मधुमेह, मनोकायिक एवं दीर्घकालिक घातक रोगों जैसे उच्च रक्त चाप, हृदय रोग, अस्थमा, अल्सर, मधुमेह, पक्षाघात, ब्रेन हैमरेज आदि से ग्रसित हो जाते हैं। व्यक्ति यदि तनाव के कारणों को अच्छी तरह समझ ले और उसका ठीक से प्रबन्धन कर ले तो इस स्पर्धा के युग में भी स्वस्थ रह सकता है। इस हेतु कायोत्सर्ग, चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा, अनुप्रेक्षा के प्रयोग अत्यन्त प्रभावकारी है। जीवन विज्ञान का प्रशिक्षण तनाव के प्रबन्धन में व्यक्ति की सहायता करता है।

जीवन विज्ञान के द्वारा असामान्य व्यवहार को समझने, उनके कारणों का पता लगाने तथा उनका निराकरण करने में भी सहायता मिलती है। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर अपने व्यवहार को समझने व बदलने की क्षमता होती है। जीवन विज्ञान के प्रयोगों के द्वारा व्यक्ति की आन्तरिक क्षमताओं को जागृत किया जाता है। इससे वह स्वयं की दमित भावनाओं एवं असामान्य व्यवहार के प्रति जागरूक होता है।

जीवन विज्ञान प्रेक्षा चिकित्सा के अन्तर्गत व्यक्ति की अर्न्तदृष्टि को जागृत करने के लिए दर्शन केन्द्र पर ध्यान करवाया जाता है। व्यसन से मुक्त करने के लिए अप्रमाद केन्द्र पर ध्यान करवाया जाता है। क्रोध व निषेधात्मक भावों से छुटकारा पाने के लिए ज्योति केन्द्र पर ध्यान करवाया जाता है। विभिन्न प्रयोगों के माध्यम से व्यक्ति की प्राण धारा को संतुलित करने में सहयोग दिया जाता है। इससे व्यक्ति का आत्म–विश्वास व मनोबल विकसित होकर सुदृढ़ हो जाता है। व्यक्ति अपने असामान्य व्यवहार को बदलने में सक्षम हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.6.1 प्रेक्षा चिकित्सा केन्द्र

जैन विश्व भारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) के अन्तर्गत अध्यात्म साधना केन्द्र, महारौली, नई दिल्ली में एक प्रेक्षा चिकित्सा केंद्र के उद्घाटन के अवसर पर अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के हृदय रोग विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष डॉ. एस. सी. मनचंदा ने बताया कि गलत जीवन शैली, भोजन का असंयम एवं असंतुलन तथा भावों के आवेश–आवेग के कारण बड़ी संख्या में लोग असमय ही हृदय रोग के शिकार हो जाते हैं। उन्होंने कहा कि हमने पूर्ण वैज्ञानिक पद्धति से अनुसंधान कर यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रेक्षाध्यान एवं योग के द्वारा हम न केवल हृदय रोग या उच्च रक्तचाप जैसी बीमारियों का पूर्ण सफल उपचार कर सकते हैं। अपितु यदि बाल्यावस्था से ही ये प्रयोग नियमित किये जाएं तो उनकी भली–भांति रोकथाम की जा सकती है। प्रेक्षा चिकित्सा में ध्यान, कायोत्सर्ग, योगासन, प्राणायाम आदि द्वारा 'रिस्क फैक्टर्स' को कम किया जाता है जिससे रोगी सदा–सदा के लिए रोगमुक्त हो जाता है फिर बाईपास सर्जरी या एंजियोप्लास्टी आदि की जरूरत नहीं रहती। अध्यात्म साधना केंद्र के निर्देशक स्वामी धर्मानंदजी ने बताया कि हृदय रोग के अलावा डायबिटिज, अल्सर, अस्थमा आदि का भी प्रेक्षा चिकित्सा द्वारा सफल उपचार किया गया है। इस केंद्र में प्रतिमास नियमित रूप से प्रेक्षा चिकित्सा शिविरों के माध्यम से रोगोपचार में सहायता की जाती है। इसी प्रकार विभिन्न स्थानों पर केंद्र संचालन तथा शिविरों के माध्यम से जीवन विज्ञान प्रशिक्षक एवं विशेषज्ञ रोग निवारण व स्वास्थ्य संबंधी अपनी सेवाएँ प्रदान करते हैं।

3.6.2 राजनांदगांव में त्रिदिवसीय शिविर

चिकित्सकों का दिनांक 14.3.96 से त्रिदिवसीय शिविर राजनांदगांव में आयोजित किया गया। लगभग 25 संभागियों ने भाग लिया। उन्हें तनाव प्रबंधन, आंतरिक क्षमताओं के विकास संबंधी विशेष जानकारी व प्रयोग करवाये गये।

3.6.3 उज्जैन में प्रेक्षाध्यान पर डाक्टरों की गोष्ठी

इस गोष्ठी में 90 डॉक्टरों ने भाग लिया। ख्याति प्राप्त हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ. महाजिक एवं डॉ. गवारीकर ने कहा– प्रेक्षाध्यान पद्धति सर्वांगीण स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त जरूरी है। यदि हमारे हॉस्पिटल में भी एक स्वतंत्र विभाग प्रेक्षाध्यान एवं योग का वैकल्पिक चिकित्सा के रूप में खोल दिया जाए तो मरीजों के साथ चिकित्सकों को भी अच्छा लाभ हो सकता है।

3.6.4 हृदय रोगियों पर शोध कार्य

हृदय रोगियों पर योग तथा जीवन शैली में बदलाव के प्रभाव को जानने के लिए प्रो. डॉ. एस. सी. मनचंदा (कोर्डियोलॉजी विभागाध्यक्ष, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली) के द्वारा एक शोध कार्य किया गया। इसके लिए 32 से 37 वर्ष की आयु के 42 पुरुषों को शोध कार्य के लिए चुना गया। इनको 21–21 दो भागों में बांटा गया। एक भाग का लगातार दवाइयों द्वारा उपचार किया गया जिसे कन्ट्रोल ग्रुप की संज्ञा दी गई। दूसरे भाग को दवाइयों के अतिरिक्त योग एवं जीवन शैली बदलने के लिए चुना गया उन्हें योग ग्रुप कहा गया।

रोगियों को छोटे–छोटे समूहों में अध्यात्म साधना केंद्र, नई दिल्ली में 4 दिनों के लिए रखा गया। तथा निम्न प्रयोग कराये गये– शारीरिक व्यायाम, आसन, प्राणायाम, प्रेक्षाध्यान साथ ही अणुव्रत, शाकाहार आदि की सैद्धांतिक–प्रायोगिक जानकारी भी दी गई। प्रयोग–शोधकाल में आहार विवेक, आहार–संयम के सफल प्रयोग किये गये।

सब रोगियों (योग–ग्रुप) को साधना केंद्र में प्रत्येक पखवाड़े बुलाया जाता या उनकी समस्याएं सुलझायी जाती थी। मिलकर जानकारी भी दी जाती थी तथा प्रोत्साहन दिया जाता था। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में प्रतिमाह में एक बार बुलाया जाता था। सबने 80 प्रतिशत कार्यक्रम को अपने जीवन में उतारा। इन सब रोगियों को एक वर्ष तक जांच में रखा गया और उसके बाद इन l cdh, fâ ; ks kQhnksckj dhxbZ l cdkot u] jks dk: i (Pathological status), खून में चर्बी (TMT) का रिकार्ड रखा गया। इनके परिणामों को दो अलग–अलग प्रेक्षकों द्वारा अन्वेषण कराया गया। शोध कार्य के पश्चात् रोगियों में निम्न परिवर्तन पाये गये–

- योग एवं जीवन शैली में बदलाव का रोगियों पर लाभकारी प्रभाव निश्चय पूर्वक पड़ा।
- योग समूह के सदस्यों में एन्जाइना दर्द में कमी हुई। मानसिक स्थिति में सुधार हुआ तथा अच्छा सोचने के लिए प्रेरित हुए।
- खून की चर्बी (Cholestrol) में कमी हुई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- TMT Exercise Test करने में अधिक सक्षम हुए।
- यद्यपि धमनियों में रुकावट कम नहीं हुई परन्तु उसका बढ़ना रुक गया। यह एक विशेष उपलब्धि रही।

निष्कर्ष– योग तथा जीवन शैली में बदलाव से हृदय रोग, धमनियों में रुकावट, उच्च रक्त चाप पर काबू किया जा सकता है। अध्यात्म साधना केंद्र, नई दिल्ली में प्रतिमाह इस प्रकार के शिविर लगाए जाते हैं।

3.6.5 मेडिकल कॉलेज में जीवन विज्ञान

जैन विश्व भारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) की ओर से बीकानेर के सरदार पटेल मेडिकल कॉलेज में 5 से 10 जनवरी 1998 तक चिकित्सा विज्ञानियों के लिए 6 दिन का जीवन विज्ञान का संक्षिप्त प्रशिक्षण शिविर लगाया गया। बारह सत्रों में जीवन विज्ञान और प्रेक्षाध्यान के सिद्धान्त और व्यवहार पक्ष तथा प्रयोगो पर प्रकाश डाला गया। दोपहर 3 से 5 बजे तक पहला सत्र और सायंकाल सात बजे से रात्रि नौ बजे तक दूसरा सत्र होता था। पहले दिन उद्घाटन की औपचारिकता के बाद सभी बारह सत्रों में कायोत्सर्ग, योगासन और यौगिक क्रियाएं, श्वास प्रेक्षा, शरीर प्रेक्षा और अन्तर्यात्रा, चैतन्य केंद्र प्रेक्षा, लेश्या ध्यान, अनुप्रेक्षा आदि के प्रयोगों व सिद्धान्तों पर विशद विवेचन व प्रयोग कराए गये। इसके साथ ही इस लघु प्रशिक्षण शिविर की अवधि में शारीरिक व्याधियों का ध्यान के माध्यम से उपचार, रक्तचाप, तनाव और कायोत्सर्ग, मानसिक तनाव और ध्यान के द्वारा भावनात्मक तनाव आदि पर भी प्रयोग व चर्चा हुई। माइक्रोबॉयोलोजी विभागाध्यक्ष डॉ. श्रीमती सुमित्रा जैन की राय थी कि इस प्रवृत्ति को चिकित्सा विज्ञान के साथ जोड़ा जाना चाहिए। उन्होनें व्यावहारिक प्रयोगों को व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास के लिए बहुत कारगर माना। श्वसन विभाग के अध्यक्ष डॉ. विक्रम कुमार जैन ने प्रायोगिक क्रियाओं को बहुत महत्त्वपूर्ण माना। पैथोलॉजी विभाग के एसोसियेट प्रो. डॉ. राजेन्द्रलाल सोलंकी ने इस शिविर को नया अनुभव माना और समूचे कार्यक्रम को उपयोगी बताते हुए रोगों के उपचार की अपेक्षा उसके निरोध पर अधिक जोर देने की बात को स्वीकार करते हुए इसके यथोचित वैज्ञानिक दृष्टिकोण को पुष्ट करने पर जोर दिया। इस शिविर में सरदार पटेल मेडिकल कॉलेज के छात्रों ने भी हिस्सा लिया। इन छात्रों में से एक छात्र दीपक गुप्ता ने कहा कि आयुर्विज्ञान के पाठ्यक्रम के साथ प्रथम सेमेस्टर से ही छात्रों को प्रेक्षाध्यान कराया जाना चाहिए। अन्य छात्रों ने भी इसी तरह की राय प्रकट की।

3.6.6 शिविरों में वैज्ञानिक परीक्षण

दिनांक 12 से 21 अगस्त 1984 तक जोधपुर में दस दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन किया गया। शिविर काल में होने वाले शारीरिक व मानसिक परिवर्तन का वैज्ञानिक परीक्षण का लक्ष्य बना। पांच चिकित्सकों का एक दल इस कार्य के लिए प्रस्तुत हुआ। जिसमें डा.के.सी. मदानी, डा. नरेश भण्डारी, डा. आनंद भीनावत, डा. आनंद खीबेसरा सम्मिलित थे।

प्रथम दिन समस्त शिविरार्थियों– जिसमें 58 पुरुष एवं 48 महिलाएं थीं, उनका शारीरिक परीक्षण किया गया। उनकी शारीरिक–मानसिक समस्याओं को सुना गया। इसका संक्षिप्त ब्यौरा उनके परीक्षण पत्र में लिखा गया। अंतिम दिन पुनः परीक्षण किये। रिपोर्ट के निष्कर्ष शारीरिक एवं मानसिक स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन की ओर संकेत करते हैं।

1. अधिकांश लोगों ने मानसिक तनाव व उत्तेजना में कमी होने की अनुभूति की, गुस्से की वृत्ति पर भी संयम रहा।
2. अधिकांश लोगों को पूर्ण अथवा आंशिक रूप से कब्ज निवारण हुआ।
3. वजन वाले लोगों के वजन में इन दस दिनों के अन्त तक 2 से 3 किलोग्राम की कमी भी नोट की गई।
4. प्रारम्भ में अधिकांश शिविरार्थियों के हृदय की गति बढ़ी हुई प्राप्त हुई थी। यह 90 से 120 के बीच थी पर इन दिनों के बाद यह गति 70 से 90 पर आ गई जो कि स्पष्ट रूप से उनके मानसिक स्थायित्व को अभिव्यक्त कर रही थी।
5. नजला–जुकाम एवं अस्थमा के प्रकोप में भी न्यूनता पाई गई।
6. डायबिटीज के 3 बीमारों में से दो की ब्लड शुगर क्रमशः 190 व 196 से 120 एवं 130 आ गई। तीसरे को महत्त्वपूर्ण फायदा नहीं हो सका।
7. ब्लड प्रेशर के बीमारों के परीक्षण से यह तथ्य सामने आया कि अधिकांश लोगों के उच्च रक्तचाप में सुधार हुआ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.6.7 प्रेक्षा चिकित्सा शोध परियोजना

इस चिकित्सा पद्धति के द्वारा होने वाले शारीरिक लाभ की वैज्ञानिक ढ़ंग से जांच हेतु एक परियोजना का प्रेक्षाध्यान जीवन विज्ञान केंद्र, जयपुर में क्रियान्वयन किया गया। इस परियोजना के चिकित्सीय पक्ष का संचालन एस.एम.एस. मेडिकल कॉलेज जयपुर के तीन प्रमुख चिकित्सक डॉ. डी.एस. पोखना, डॉ. शिव गौतम एवं डॉ. वीरेन्द्र सिंह की देखरेख में किया गया।

इस परियोजना में उदर रोग, मानसिक रोग एवं श्वास रोग पर वैज्ञानिक अध्ययन किया गया। दो ग्रुप बनाये गये। श्वास रोग के अतिरिक्त दूसरे दो अध्यायों में एक ग्रुप को प्रेक्षाध्यान करवाया गया एवं दूसरे ग्रुप को दवा दी गई। ध्यान के ग्रुप वाले 27 मरीजों में से 56.5 प्रतिशत रोगियों को विशेष तथा 26 प्रतिशत रोगियों को साधारण लाभ मिला। इसके विपरीत दवाइयों वाले 17 रोगियों के ग्रुप में 16 प्रतिशत को विशेष एवं 35.3 प्रतिशत को साधारण लाभ हुआ। प्रेक्षाध्यान वाले रोगियों को कोई साइड एफेक्ट नहीं हुए जबकि दवाइयों वाले 30 प्रतिशत मरीजों में दवाइयों के कई हानिकारक असर हुए। मानसिक रोगी वैसे ही रहे। प्रेक्षाध्यान के प्रयोग से मानसिक विक्षेपों में कमी आई। तनाव कम हुआ, मानसिक शांति का अहसास हुआ। अनिद्रा की स्थिति दूर हो गई।

मानसिक रोगों पर प्रेक्षाध्यान की प्रभावशीलता के आकलन हेतु 25 ऐसे रोगियों पर इसका अध्ययन किया गया जो मानसिक तनाव, चिंता, विक्षिप्तता एवं अवसाद से ग्रस्त थे। 25 में से 18 रोगियों ने प्रेक्षाध्यान के प्रति सकारात्मक मनोवृत्ति दर्शायी। 5 रोगी अनिश्चित थे तथा 2 का मत था कि इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं था। लगभग 75 फीसदी रोगियों को दुश्चिंता, अवसाद एवं मानसिक तनावों से उल्लेखनीय राहत मिली।

श्वास रोगियों पर प्रेक्षाध्यान का प्रभाव जानने हेतु डबल ब्लाइंड पद्धति के अनुसार अध्ययन दो ग्रुपों में किया गया। एक असली ध्यान का ग्रुप और दूसरा नकली ध्यान का। कुल 20 रोगियों में से 10 को असली प्रेक्षाध्यान से लाभ हुआ और शेष को नकली प्रेक्षाध्यान से। दिमागी चिंता से सभी को राहत मिली।

3.6.8 अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान (AIIMS), नई दिल्ली के साथ प्रेक्षाध्यान चिकित्सा परीक्षण

अक्टूबर 1992 में श्वास रोग पर प्रेक्षा के परीक्षण हेतु सप्तदिवसीय शिविर का आयोजन किया गया। इसमें दमा ग्रस्त (Bronchial asthama) 9 रोगियों ने भाग लिया। सात रोगियों ने पूरे शिविर काल में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान दिल्ली के डॉ. विमल छाजेड़ ने वैज्ञानिक परीक्षण किये। शिविर समापन तक 6 रोगियों की दवाई पूरी तरह छूट गई। 96 प्रतिशत दवाई लेने में कमी आई। 55 प्रतिशत छाती का विस्तार बढ़ा। अस्थमा के लक्षण विलीन हो गये। इन प्रयोगों से यह परिणाम निकला कि प्रेक्षाध्यान अनेक व्याधियों की चिकित्सा में अच्छी और सस्ती चिकित्सा सिद्ध हो सकती है।

3.6.9 चिकित्सकों का व्यक्तिगत अनुभव

रोगों की चिकित्सा में जीवन विज्ञान की बहुत संभावनाएं सामने खड़ी हैं। चिकित्सकों के व्यक्तिगत जीवन एवं व्यावसायिक जीवन में भी प्रेक्षाध्यान बहुत सहायक सिद्ध हुआ है। राजनांदगांव में दिनांक 14 से 23 अक्टूबर 1992 तक 21 चिकित्सकों का दस दिवसीय शिविर का आयोजन किया गया। उनके अनुभव जीवन विज्ञान की उपयोगिता को उजागर करते हैं –

''मैंने 10 दिन के प्रेक्षाध्यान से ऐसा अनुभव किया है कि इससे मानसिक शांति, एकाग्रता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। दिन भर के उत्साह, स्फूर्ति, काम की क्षमता में वृद्धि हुई। विचार व वृत्तियां परिष्कृत होने लगीं। इससे स्वाभाविक ही आत्म–विश्वास में वृद्धि हुई (डॉ. नरेन्द्र गांधी एम. बी. बी. एस. डी. सी. एच. जनप्रेक्टिशनर एवं शिशु स्वास्थ्य विशेषज्ञ)।''

''प्रेक्षाध्यान की साधना की उपलब्धियां शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही रूपों में मिली। ध्यान से पूर्व आसन एवं यौगिक क्रियाओं से शरीर के लचीलेपन की शुरूआत हुई है। प्रत्यक्ष लाभ मेरे कमर दर्द में हुआ है। स्फूर्ति बढ़ी है। पांच घंटे की नींद के बाद भी सुबह का आलस्य नहीं है। दूसरा महत्वपूर्ण अनुभव है मेरे ब्लडप्रेशर का। पहले दिन भर की चर्या के बाद जब कभी भी सिरदर्द या भारीपन लगता था तब नापने पर मेरा ब्लड–प्रेशर 140 / 90–94 तक आता था। पिछले दो दिनों से मेरा ब्लड–प्रेशर दिन भर के क्रिया–कलापों के बाद (कल जबकि दिनभर बिजली बंद रही, गैस बत्ती में लगभग मुझे 10 घंटे काम करना पड़ा) मेरा ब्लड–प्रेशर 120 / 80 था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शरीर से अधिक प्रभाव मन पर हुआ है। पिछले कुछ महीनों से अपने कार्य में एकरसता आने लगी थी। पिछले दिनों में इस एकरसता का तारतम्य टूटा है। अपने क्रियाकलापों में, व्यवसाय में एकाग्रता बढ़ी है। चिड़चिड़ापन कम हुआ है। स्वभाव में हल्कीसी मृदुता का आभास मुझे स्वयं लगने लगा है। अपनी भावनाओं पर नियंत्रण मैं श्वास प्रेक्षा के द्वारा कर सकूंगा। इस दिशा में परिवर्तन का क्रम मैंने महसूस किया है। मन का संतुलन बढ़ने लगा है। विपरीत परिस्थितियों में होने वाली उत्तेजना कम हुई है (डॉ. उत्तम कोठारी, एम. डी. (चाइल्ड हेल्थ) एफ. आई. सी. पी. (एस. डब्ल्यू))।

3.6.10 चिकित्सा व्यवसाय में जीवन विज्ञान

प्रेक्षाध्यान की चिकित्सा में प्रभावकता को देखते हुए कुछ साहसी चिकित्सकों ने व्यावसायिक चिकित्सा पद्धति के रूप में इसका सफल प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया है। डॉ. विमल छाजेड़ ने **(AIIMS)** का प्रतिष्ठित व्याख्याता पद छोड़कर 'प्रेक्षाध्यान से चिकित्सा' को अपना व्यावसायिक जीवन क्षेत्र बना लिया।

प्रेक्षाध्यान का चिकित्सा में प्रयोग के लिए मुम्बई में 'अर्हम् क्लीनिक' का उद्‌घाटन किया गया। इस क्लीनिक में उच्च रक्तचाप, हृदय रोग सहित सभी प्रकार के रोगों का इलाज यौगिक क्रिया, ध्यान, कायोत्सर्ग, अनुप्रेक्षा, प्राण चिकित्सा, लेश्याध्यान, एक्यूप्रेशर की विधि से किया जाता है। आवश्यकतानुसार होम्योपैथिक एवं आयुर्वेदिक औषधियों का प्रयोग भी किया जाता है। इस चिकित्सा केंद्र में डॉ. अश्विनी मेहता, डा. शांतिलाल बोहरा, श्री चांदमल बोहरा (रिटायर्ड जज) का सहयोग प्राप्त हो रहा है।

3.7 खेलों में जीवन विज्ञान

खेल या क्रीड़ा में भी जीवन विज्ञान का पर्याप्त उपयोग है। खिलाड़ियों के मनोबल, आत्म–विश्वास, एकाग्रता और उत्साह बढ़ाने में जीवन विज्ञान एवं योग पद्धतियों के अभ्यास बहुत उपयोगी होते हैं। यदि खिलाड़ी किसी कारणवश हतोत्साहित हो जाए तो ऐसी स्थिति में जीवन विज्ञान के प्रयोग सहायक होते हैं। खेल या प्रतियोगिता के समय चिन्ता, निराशा एवं कुंठाएं उत्पन्न हो सकती हैं। इससे प्रतियोगिता का एक दवाब बना रहता है । ऐसी स्थिति में जीवन विज्ञान के प्रायोगिक अभ्यास दवाब को निपटने में बहुत सहायक होते हैं। खिलाड़ियों के मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए भी जीवन विज्ञान एवं योग के प्रयोग उपयोगी होते हैं।

3.8 सारांश

शिक्षा के आदान–प्रदान का सम्बन्ध प्राचीन काल से ही धर्म के साथ रहा है। भारतीय मनीषियों जैसे– महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, राजा राममोहन राय, महर्षि अरबिन्द, महात्मा गांधी और आचार्य तुलसी ने शिक्षा जगत की कमियों को दूर करने का पूरा प्रयत्न किया। शिक्षण संस्थान संख्यात्मक दृष्टि से बढ़ रहे हैं परन्तु गुणात्मक दृष्टि से अभिलाषित परिणाम नहीं आ रहे हैं। आचार्य तुलसी ने धर्म के तीन रूप आध्यात्मिकता, नैतिकता व उपासना बताये। उपासना पद्धतियां सबकी भिन्न हैं और नैतिकता सभी धर्मों में स्वीकृत है। अध्यात्म सभी धर्मों का मूल है। आध्यात्म साधना का मार्ग योग विद्या है। शिक्षा में योग विद्या के समावेश से मानसिक, आध्यात्मिक व भावनात्मक विकास में प्रभावी ढंग से सहयोग मिलता है। इससे शिक्षा संतुलित व सर्वांगीण बन सकती है। इसका व्यवस्थित प्रशिक्षण देने के लिये मानव संसाधन की आवश्यकता है। प्रशिक्षित सुदृढ़ चरित्र वाला मानव विपरीत परिस्थितियों में भी नये सृजन की क्षमता रखता है।

जीवन विज्ञान के उद्‌भव के बाद से ही इसके प्रशिक्षकों ने इसे जीवन के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में आजमाया है। मांग को देखते हुए आज भी हजारों दक्ष प्रशिक्षकों की शिक्षा जगत को अपेक्षा है। जीवन विज्ञान का अध्यापन, प्रशासन, चिकित्सा व खेल के क्षेत्रों में आने वाली जीवन मूल्यों की समस्या का समाधान करने में सक्षम है। जीवन विज्ञान व्यक्ति के शक्तिव्यवहार को परिमार्जित एवं परिष्कृत करता है। देश–विदेश में आयोजित अभ्यास शिविरों में लाखों व्यक्ति भाग लेकर लाभ उठा चुके हैं। उनके अनुभव परिवर्तन को रेखांकित करते हैं। अनुभवों में बताया गया कि नकारात्मक एवं बुरे विचारों से मुक्ति मिली एवं मानसिक शान्ति प्राप्त हुई। समय का सदुपयोग करना सीखा। मानसिक एकाग्रता का अनुभव हुआ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

संक्षिप्त प्रश्न

1. प्राचीन काल में शिक्षा का सम्बंध किससे जुड़ा था?
2. आचार्यश्री तुलसी के अनुसार धर्म के तीन रूप कौन से हैं?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. शिक्षा में विद्यार्थियों के लिए जीवन विज्ञान से किस प्रकार की सहायता मिलती है?
2. व्यक्तित्व विकास में जीवन विज्ञान किस प्रकार से उपयोगी होता है?

निबंधात्मक प्रश्न

1. वर्तमान शिक्षा पद्धति के साथ जीवन विज्ञान के जुड़ने से किन–किन समस्याओं का समाधान हो सकता है?
2. जीवन विज्ञान के कार्य क्षेत्र को कितने भागों में विभाजित किया गया है? किन–किन मुख्य समस्याओं को वह अपने क्षेत्र में मानता है।
3. अध्यापन क्षेत्र में अध्यापक से किन–किन मूल्यों की अपेक्षा की जाती है?
4. एक चिकित्सक में किस प्रकार के मूल्य होने चाहिए?
5. छात्रों पर जीवन विज्ञान के शोध कार्य की मुख्य निष्पत्तियां क्या रहीं?
6. वर्तमान युग में मनोकायिक अस्वास्थ्य के मुख्य कारण क्या माने गये हैं?
7. व्यक्ति असमय में ही हृदय रोग के शिकार क्यों होते हैं?
8. प्रेक्षाध्यान में 'रिस्क फेक्टर्स' को कैसे कम किया जाता है?
9. प्रेक्षा चिकित्सा केन्द्र का संचालन कहां किया जा रहा है?
10. जीवन विज्ञान पाठ्यक्रम को किन–किन राज्यों में लागू करने के प्रयास चल रहे हैं?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–4 सामाजिक जीवन, प्रशासन, उद्योग एवं पुनर्वास में जीवन विज्ञान की उपयोगिता

इकाई की संरचना

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 सामाजिक जीवन में जीवन विज्ञान

4.2.1 विश्व शान्ति

4.2.2 सामाजिक शान्ति

4.2.3 विकलांग समुदाय हेतु जीवन विज्ञान शिविर

4.2.4 व्यसन मुक्ति हेतु जीवन विज्ञान शिविर

4.2.5 जीवन विज्ञान राजनेताओं की दृष्टि में

4.3 प्रशासन में जीवन विज्ञान

4.3.1 प्रशासनिक अधिकारियों को जीवन विज्ञान प्रशिक्षण

4.3.2 प्रशासनिक अधिकारियों हेतु व्यक्तित्व विकास शिविर

4.3.3 पुलिस विभाग में जीवन विज्ञान शिविर

4.3.4 राजस्थान पुलिस अकादमी में शिविर

4.3.5 हैदराबाद पुलिस अकादमी में शिविर

4.3.6 आन्ध्रप्रदेश पुलिस अकादमी तथा पुलिस ट्रेनिंग कॉलेज में शिविर

4.3.7 अधिकारियों के व्यक्तिगत अनुभव

4.4 उद्योग में जीवन विज्ञान

4.4.1 व्यक्तिगत अनुभव

4.4.2 मथुरा रिफाइनरी में जीवन विज्ञान शिविर

4.5 पुनर्वास में जीवन विज्ञान

4.5.1 पुनर्वास हेतु प्रशिक्षण शिविर

4.5.2 व्यक्तिगत अनुभव

4.5.3 तिहाड़ जेल में जीवन विज्ञान शिविर

4.5.4 घर से भागे हुए बच्चों का पुनर्वास

4..6 जीवन विज्ञान की विशेषताएँ

4.7 जीवन विज्ञान की मौलिक मान्यतायें

4.8 जीवन विज्ञान के समक्ष चुनौतियाँ

4.9 सारांश

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.11 संदर्भ ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.0 प्रस्तावना

हमारे जीवन के अनेक क्षेत्र हैं। सामाजिक क्षेत्र में हम सभी नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित देखना चाहते हैं। उसे रूढ़ि मुक्त तथा कुरीतियों जैसे–दहेज, बाल विवाह व जाति भेद से मुक्त देखना चाहते हैं। समाज शान्ति से जीये, ऐसा सभी चाहते हैं। नैतिकता के अभाव में प्रशासन निकम्मा व कमजोर हो जाता है। परिणाम स्वरूप न्याय नहीं हो पाता। यह सभी को अपेक्षा है कि प्रशासन में अधिकारी कुशल व योग्य हों। औद्यौगिक क्षेत्र में कार्य करने वाले तनाव मुक्त रहें तो उनकी कार्य क्षमता अच्छी रहेगी। जीवन विज्ञान इन सब के लिये प्रकाश की नयी किरण है।

4.1 उद्देश्य

- इस पाठ के माध्यम से आप जीवन के सभी क्षेत्रों की समस्याओं का समाधान जान पायेंगे, जैसे–
- सामाजिक जीवन में जीवन विज्ञान की क्या उपयोगिता है?
- प्रशासन में जीवन विज्ञान के प्रयोगों के द्वारा नैतिकता का निर्माण किस प्रकार से हो सकता है?
- औद्योगिक क्षेत्र में प्रबन्धन, गुणवत्ता व लक्ष्य को जीवन विज्ञान के माध्यम से कैसे प्राप्त किया जा सकता है?
- पुनर्वास में जीवन विज्ञान की क्या भूमिका है?
- जीवन विज्ञान की मौलिक मान्यताएं क्या हैं?
- जीवन विज्ञान के समक्ष चुनौतियां क्या हैं?

4.2 सामाजिक जीवन में जीवन विज्ञान

जीवन विज्ञान का सामाजिक समस्याओं को सुलझाने तथा सही और स्वस्थ समाज का निर्माण करने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। समाज को नैतिक मूल्यों में आस्थाशील बनाने, रूढ़ि मुक्त करने में जीवन विज्ञान उपयोगी सिद्ध हुआ है। जाति भेद समस्या, रूढ़िवादी मानसिकता, दहेज प्रथा और बाल विवाह जैसी ज्वलंत समस्याओं पर अणुव्रत के संकल्पों का उपयोग किया जाता है। इन सभी को जीवन विज्ञान द्वारा सुलझाने में सहायता मिलती है। सामाजिक जीवन के कुछ प्रासंगिक क्षेत्रों का वर्णन इस प्रकार है–

4.2.1. विश्व शांति

विश्व शांति को बनाये रखने के लिए जीवन विज्ञान की बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका है। व्यक्तिगत विभिन्नता और वैचारिक स्वतंत्रता के कारण और महत्त्व को समझ लेने पर विभिन्न राष्ट्रों के लोगों के आपसी मतभेद कम हो जाते हैं। प्रतिपक्षी के दृष्टिकोण को समझने में अनेकान्त का सिद्धान्त बहुत उपयोगी है व्यक्ति की हिंसा की भावना, असीमित आकांक्षा और संग्रह वृत्ति के दुष्परिणामों के ज्ञान, अहिंसात्मक संकल्प और विधायक भावों के अभ्यास द्वारा विश्व में हिंसा और संघर्ष कम किये जा सकते हैं। अहिंसात्मक जीवन शैली अपनाकर व्यक्ति स्वस्थ समाज और विश्व शांति में अपना योगदान दे सकता है। विश्व शांति की समस्या व्यक्ति के आंतरिक और पारस्परिक सम्बंधों से जुड़ी हुई है। इनके सम्यक् ज्ञान, सम्यक् संकल्प व सम्यक् अभ्यास द्वारा विश्व में शांति लाई जा सकती है। जीवन विज्ञान के विशेषज्ञ विश्व स्तरीय अहिंसा एवं शांति सम्मेलनों के आयोजन एवं वार्ताओं द्वारा एक–दूसरे को नजदीक लाने में सहयोग करते हैं एवं अहिंसा–प्रशिक्षण द्वारा व्यक्ति–व्यक्ति में अहिंसक चेतना को जागृत करने का प्रयास करते हैं।

4.2.2. सामाजिक शांति

समाज में अमन–चैन रहे, निश्चिन्तता रहे, सुरक्षा रहे सभी चाहते हैं पर हो कैसे? समाज शास्त्री, राजनेता एवं प्रशासकों ने व्यवस्था पक्ष पर ध्यान दिया। दूसरी और अध्यात्म–पुरुषों ने व्यक्ति के आंतरिक पक्ष पर ध्यान दिया। इससे व्यक्ति में मूल्यों का विकास हुआ। जब अनुशासन का विकास होता है तब प्रशासन व अनुशासन को बनाये रखना आसान हो जाता है। केवल दण्ड का भय आनन्द को छीन लेता है, अराजकता व प्रतिक्रिया को जन्म देता है। अहिंसा, निःस्वार्थ भावना, कर्तव्य परायणता व दायित्व–बोध एवं प्रामाणिकता जैसे मूल्यों के विकास से ही आत्मानुशासन संभव है। अतः प्रत्येक व्यक्ति, वर्ग, समुदाय एवं व्यावसायिक क्षेत्र में गिरते हुए मूल्यों को रोकने और विकसित करने की आवश्यकता है तभी समाज में अमन–चैन के वातावरण का निर्माण हो सकता है। अणुव्रत एवं प्रेक्षाध्यान समाज में इन मूल्यों को लाने में अहम् भूमिका निभा रहे हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

समाज में प्रेक्षाध्यान प्रशिक्षक शिविरों के माध्यम से व्यक्ति–व्यक्ति में इन मूल्यों की स्थापना में गतिशील है। शिविर एक ओर सामान्य लोगों में लगते हैं तो दूसरी ओर विशिष्ट वर्ग / समुदाय के लोगों के कल्याण के लिए भी लगते हैं। चक्षु एवं विकलांग समुदाय में भी शिविर लगते हैं। बच्चों में संस्कार निर्माण और बुजुर्गों मे मानसिक शांति व स्वास्थ्य के लिए भी समय–समय पर प्रेक्षा योग के विशेष शिविर आयोजित किये जाते हैं।

4.2.3. विकलांग समुदाय हेतु जीवन विज्ञान शिविर

आंखें बंद करते ही व्यक्ति के सामने से जगत् अदृश्य हो जाता है। बड़ा अजीब लगता है। अंधकार अपने आप में सबको समेट लेता है। यह तो स्वल्प–काल की घटना है किन्तु जिन लोगों को जीवन भर आंखों के बिना जीना होता है उनकी क्या स्थिति होती है। उनकी कठिनाइयों का अहसास सामान्य व्यक्ति नहीं कर सकता। वे भी सामान्य मनुष्य की तरह उदासी, कुंठा, हीन भावना, व्यसन और गुस्से से पीड़ित पाये जाते हैं। जीवन विज्ञान प्रशिक्षण अचक्षु एवं विकलांग व्यक्तियों के जीवन निर्माण, प्रज्ञा चक्षु (अन्तर्दृष्टि) के जागरण, आत्म–विश्वास संवर्धन में उपयोगी पाया गया है।

राजस्थान नेत्रहीन संघ, जयपुर एवं तुलसी अध्यात्म नीडम् के संयुक्त तत्त्वाधान में दिनांक 12 अप्रैल से 18 अप्रैल, 1981 को प्रेक्षाध्यान शिविर लगा। 35 नेत्रहीन एवं विकलांग संभागियों ने भाग लिया। जीवन विज्ञान प्रशिक्षण की उपयोगिता को प्रतिभागियों ने अपने अनुभवों के द्वार किया–

मैं काम–भावना से तनावग्रस्त रहता था। इससे परेशानी थी। इस पर काबू पाया है, सुख–दुःख की इससे अब कोई अनुभूति नहीं होती। ध्यान की गहराइयों में तो नहीं पहुंच पाया किन्तु आसन मुझे उपयुक्त लगे। श्वास लेने की प्रक्रिया एवं पाचन के ज्ञान से बहुत व्यावहारिक जानकारी मिली। ऐसे शिविर समय–समय पर लगते रहने चाहिए। मैं अभ्यास नित्य करूंगा **(श्री जितेन्द्र भार्गव)।**

शिविर अच्छा लगा। बीड़ी–सिगरेट पीना छोड़ दिया। पुनः इस प्रकार के शिविर में भाग लेना चाहता हूं। स्वास्थ्य लाभ हुआ। धनुरासन विशेष अच्छा लगा **(श्री रतनलाल कोठारी)।**

मैं सिगरेट पीता था, वह छूट गई। श्वास लेने का अनुभव हुआ। चित्त को जहां चाहे वहां ले जा सकता हूं। पहले पेट दर्द होता था वह लम्बा श्वास लेने से ठीक हुआ। सवेरे की चाय छूट गई। श्वास का अभ्यास करूंगा। खाने के समय का मंत्र सीखा हूं। गुस्सा आता था। पहले दिल में जो बातें आती थीं वह नहीं आती। अब जीवन सुधारूंगा **(श्री रामगोपाल)।**

4.2.4. व्यसन मुक्ति हेतु जीवन विज्ञान शिविर

व्यसन व्यक्ति के आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक, मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। एक बार आदत पड़ जाने पर उससे मुक्त होना आसान नहीं होता। प्रेक्षाध्यान व्यसन–मुक्ति की ओर बढ़ रहे व्यक्तियों के लिए बहुत सहायक साबित हुआ है। अणुव्रत शिक्षक संसद एवं अणुव्रत समिति के सहयोग से व्यसन मुक्ति शिविर आयोजित किये जाते रहे हैं। आवश्यकतानुसार स्थानीय संस्थाएं अथवा प्रेक्षा केंद्रों के द्वारा भी इस प्रकार के शिविरों का आयोजन किया गया है। हजारों संभागियों ने इस प्रकार के शिविर में अपनी जीवन शैली बदली एवं नशा मुक्त जीवन का संकल्प लिया है।

30.10.87 से 4.11.87 तक अहमदाबाद में व्यसन मुक्ति प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन किया गया। इनमें अनेक शिविरार्थी लाभान्वित हुए। ये परिणाम भविष्य में व्यापक अनुसंधान व प्रयोग को प्रोत्साहित करते हैं। परिणाम निम्न प्रकार से हैं –

- श्री चंपकमल खामड़ होटल वाले ने धूम्रपान की कई वर्षों की आदत को छोड़ा।
- कम्पोज की आठ गोलियों का प्रयोग करने वाली श्री गीता बेन को इसके प्रयोग के बिना नींद आना प्रारम्भ हुआ।
- सुश्री गीता सोलह वर्ष की छात्रा ने तम्बाकू सूंघने की आदत से छुटकारा पाया।
- श्री शोभाराम दर्जी की बीस साल पुरानी मद्यपान की आदत छूटी।
- श्री दिनेश गांधी व्यापारी आंशिक समय के लिए ही आए किन्तु चरस प्रयोग की आदत में आंशिक सुधार हुआ।

4.2.5. जीवन विज्ञान राजनेताओं की दृष्टि में

राजनेता भी समाज में चल रही गतिविधियों के दर्शक होते हैं। उन्होंने भी जीवन विज्ञान को देखा और समय–समय पर समीक्षा की। जीवन विज्ञान और योग पर रचित साहित्य के विमोचन के अवसर पर भारत के प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने कहा[1] कि जीवन विज्ञान के बिना शिक्षा अधूरी है। जीवन विज्ञान व्यक्ति को जीना सिखाता है। अतः शिक्षा की सम्पूर्णता के लिए आवश्यक है कि शिक्षा में जीवन विज्ञान का समावेश हो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तत्कालीन शिक्षा मंत्री, दिल्ली राज्य, श्री साहिब सिंह वर्मा ने जीवन विज्ञान के महत्त्व को उजागर करते हुए कहा– 'भारत की संस्कृति विश्व में सर्वश्रेष्ठ रही है। कुछ विकृतियां इसमें पाश्चात्य अनुकरण से आ रही हैं। ऐसे में संस्कृति की सुरक्षा जीवन विज्ञान जैसे कार्यक्रमों से ही हो सकती है। यह विश्व का अद्वितीय एवं श्रेष्ठ कार्यक्रम भारत की उस क्षति की सुरक्षा कर सकता है।'

तत्कालीन शिक्षा मंत्री, राजस्थान सरकार श्री हरि कुमार औदित्य ने जीवन विज्ञान के प्रयोगों के महत्त्व को व्यक्त किया– 'वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मुझे आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रतिपादित जीवन विज्ञान का विचार अधिक प्रभावी और सार्थक प्रतीत हो रहा है क्योंकि जीवन विज्ञान की अवधारणा मूल्यपरक शिक्षा के सैद्धान्तिक आधार का प्रायोगिक स्वरूप है।'

4.3 प्रशासन में जीवन विज्ञान

जीवन विज्ञान के सिद्धान्त और प्रयोग प्रशासकों के लिए भी उपयोगी हैं। नैतिकता प्रशासनिक सेवाओं की रीढ़ है। उसके अभाव में प्रशासन की जो स्थिति है उसके परिणाम भोगने के लिए सबको विवश होना पड़ता है। व्यवस्था का ढ़ांचा बाहर से बहुत सुंदर दिखाई देता है किन्तु जो व्यवस्था का संचालक है वह कुशल, तटस्थ और आवेग तथा संवेगों पर नियंत्रण रखने वाला हो तभी वास्तविक सुन्दरता दे सकता है। जीवन विज्ञान के प्रयोग नैतिकता में आस्था जगाने व स्वयं पर नियंत्रण करने की क्षमता पैदा करते हैं। इससे प्रशासक अपनी क्षमता को पहचान कर सही दिशा में उपयोग करने हेतु संकल्पबद्ध होते हैं। प्रशासक और अधिकारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे संवेदनशील, समाज के प्रति समर्पित एवं तनाव मुक्त रहकर सही समय पर सही निर्णय लेने वाले कुशल एवं योग्य अधिकारी बनें।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी के अनुसार सफलता के लिए आवश्यक है– लक्ष्य का निर्माण। एक साधारण लक्ष्य है– स्वस्थ व्यक्ति, स्वस्थ परिवार, स्वस्थ समाज, सम्पन्न राष्ट्र और मैत्रीमय अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज। यह एक स्वास्थ्य की पूरी श्रृंखला है। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु व्यक्ति–व्यक्ति में भावनात्मक चेतना का जागरण होना चाहिए। व्यक्ति अपने संवेगों पर नियंत्रण कर सके तथा संतुलित रह सके। प्रशासक तनाव मुक्त होगा तो वह सही निर्णय ले सकेगा। जीवन विज्ञान के प्रयोगों द्वारा तनाव मुक्त रहने व सही निर्णय लेने में सहायता मिलती है। अतः जीवन विज्ञान के शिविर एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रशासनिक अधिकारियों, पुलिस कर्मियों एवं सुरक्षा बल के नौजवान सैनिकों के लिए लगते रहते हैं। जहां जीवन विज्ञान के विशेषज्ञ, प्रशिक्षक एवं कार्यकर्ता उन्हें पूर्णावधि या अल्पावधि का अपेक्षानुसार प्रशिक्षण देते हैं।

4.3.1. प्रशासनिक अधिकारियों को जीवन विज्ञान प्रशिक्षण

राजस्थान के अधिकारियों के शिविर में (22.4.91 से 9.5.91 तक) जीवन विज्ञान और प्रेक्षाध्यान प्रशिक्षण जयपुर में दिया गया। इसमें विभिन्न प्रशासकीय सेवाओं के प्रशिक्षक जो प्रेक्षाध्यान एवं जीवन विज्ञान प्रशिक्षण में शामिल हुए उनकी संख्या इस प्रकार है– राजस्थान सेवा–17, पुलिस सेवा–13, लेखा सेवा–12, सहकारिता सेवा–14, उद्योग सेवा– 6, पर्यटन सेवा–1, वाणिज्य कर सेवा–11। प्रशिक्षण के पश्चात् जो विचार प्रशिक्षणार्थियों ने व्यक्तिशः प्रकट किये उनके कुछ दृष्टांत इस प्रकार हैं–

डॉ. रामदेव सिंह (पुलिस सेवा) ने लिखा है कि प्रेक्षाध्यान से पूर्व मेरी मानसिक स्थिरता, निर्णय प्रक्रिया, निष्पक्षता एवं शारीरिक क्रियाओं पर नियंत्रण कम था। मन चंचल था, स्थिर रहना असंभव था। प्रेक्षाध्यान से इन सभी पर प्रभाव पड़ा है।

सुश्री ऋतु माथुर (राजस्थान लेखा विभाग) ने लिखा है कि प्रेक्षाध्यान के पश्चात् शांति और आनंद का अनुभव होता है।

श्री महावीर प्रसाद (राज. प्रशासन सेवा) ने अपने विचार प्रकट किये 'प्रेक्षाध्यान से मुझे अभूतपूर्व मानसिक शांति मिली है तथा मनोविकारों में भी कमी आई है।'

श्री रामबल मीणा (राज. पर्यटन सेवा) लिखते हैं कि प्रेक्षाध्यान से मानसिक स्तर पर उनकी एकाग्रता बढ़ी है।

पाठ्यक्रम निदेशक श्री पुखराज सालेचा ने प्रेक्षाध्यान कार्यक्रम की एक रिपोर्ट में अपनी भावना प्रकट की– 'मेरा मानना है कि प्रेक्षाध्यान से इन अधिकारियों में निरपेक्ष भाव से उनके निजी और राजकीय कार्यों को देखने की प्रवृत्ति विकसित हुई है। जिसमें अधिकारी अपना व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और राजकीय जीवन अत्यन्त शांत, सौम्य, कर्त्तव्यनिष्ठा, लगन और कुशलता से सम्पन्न कर पायेंगे। इसके परिणामस्वरूप वे राष्ट्र, राज्य, समाज के विकास में अमूल्य रचनात्मक योगदान प्रदान कर सकेंगे।'

4.3.2. प्रशासनिक अधिकारियों हेतु व्यक्तित्व विकास शिविर

केंद्रीय जीवन विज्ञान अकादमी द्वारा व्यक्तित्व विकास और जीवन विज्ञान शिविर दिल्ली सरकार की मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित के प्रिंसिपल सचिव एस. रघुनाथन के अनुरोध पर दिल्ली के उपायुक्त एवं अन्य अधिकारियों के लिए अध्यात्म साधना केंद्र में समायोजित किया गया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अन्तःस्राव नियंत्रण पर श्री एस. रघुनाथन ने कहा जीवन विज्ञान के अभ्यास से मेरे जीवन में परिवर्तन हो गया। मेरा गुस्सा शांत हुआ है। इसका श्रेय मुनिश्री किशनलाल जी (प्रेक्षाध्यापक) को है जिन्होंने जीवन विज्ञान के प्रयोगों से मेरे स्वभाव को बदल दिया। कुछ दिन पूर्व मैं भय से भयभीत था कि कहीं कोई ऐसा कार्य नहीं हो जाये। अच्छा काम करते हैं, कम पैसा खर्च करते हैं फिर भी प्रेस वाले बदनाम कर देते हैं कि कितना शानदार आफिस बनाया है। मुनिश्री ने कहा आप ईमानदार हैं तब डरने की जरूरत क्या है। उन्होंने प्राण प्रयोग और अभय की अनुप्रेक्षा करायी। मैं शक्ति सम्पन्न और अभय हो गया।

सुश्री नंदिता दत्ता ने कहा कि मन के अंदर झांकने का एक अच्छा मौका मिला। शिक्षण एवं प्रशिक्षण के समय कार्यक्रमों में जीवन विज्ञान के प्रयोग जोड़े जाने चाहिए। शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए यह अत्यावश्यक विज्ञान है।

श्रीमती अनिता पाल का मानना है कि इस शिविर में व्यतीत किये गए दो दिन मुझे आजीवन उपयोगी रहेंगे। जीवन के जिन सूक्ष्म पहलुओं पर हम उपेक्षित दृष्टिकोण रखते थे उनको ही हमारे ध्यान का मुख्य केंद्र बनाया गया और उनके महत्त्व को समझाया गया। मैं भविष्य में भी ऐसे शिविरों में अपनी उपस्थिति दिखलाती रहूंगी।

20 मई से 26 मई 1999 तक पश्चिमी रेलवे के रेलवे क्लब कोलाबा, मुम्बई में प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन किया गया। इस शिविर का मुख्य लक्ष्य उच्च अधिकारियों की कार्य कुशलता में वृद्धि एवं स्वास्थ्य संवर्धन था। इसमें 34 संभागियों ने भाग लिया।

4.3.3. पुलिस विभाग में जीवन विज्ञान शिविर

जीवन विज्ञान पुलिस कर्मियों की समस्याओं के समाधान में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। पुलिस को जन संकुल व कोलाहलपूर्ण वातावरण में रहना पड़ता है। उन्हें अत्यन्त प्रतिकूल व दबावपूर्ण स्थिति में कार्य करना पड़ता है। परिणामतः वे भी तनावग्रस्त और स्वभाव से जिद्दी आवेश वाले हो जाते हैं। उनका ऐसे लोगों से सदैव वास्ता पड़ता है जिन्हें डांटना, मारपीट करना संभव बन जाता है। उसका परिणाम परिवार, समाज व राष्ट्र को भोगना पड़ता है। वर्तमान में पुलिस विभाग में भी आर्थिक भ्रष्टाचार व नशा हावी हो रहा है। पुलिस कर्मियों में व्यवहार परिवर्तन लाने के लिए प्रेक्षाध्यान एवं जीवन विज्ञान के प्रयोग सकारात्मक परिणाम ला रहे हैं। जीवन विज्ञान का ज्ञान उन्हें सही जीवन शैली से परिचित कराता है। कर्त्तव्य निष्ठा की भावना को जगाने में सहायता करता है। जीवन में आंतरिक परिवर्तन लाता है। नशा मुक्त रहने की संकल्प शक्ति को जगाता है। रासायनिक परिवर्तन घटित करने में उपयोगी बनता है। प्रतिकूल परिस्थिति में अपने आवेग पर नियंत्रण की पद्धति सिखाता है। व्यग्रता एवं अशांति को दूर करने के अभ्यास द्वारा कार्य कुशलता के विकास की कला सिखाता है। प्रशिक्षण द्वारा गंदी आदतों को दूर कर नई अच्छी आदतों के निर्माण में मदद मिलती है। प्रशिक्षण से रक्तचाप, आमाशय एवं आंतों की क्रियाशीलता में स्वस्थता आती है। राष्ट्र के प्रति नई चेतना जगाने में जीवन विज्ञान सहायता करता है।

प्रेक्षाध्यान पद्धति के प्रारम्भ के साथ ही पुलिस के जवानों के लिए पुलिस प्रशिक्षण स्थल, मुख्यालयों एवं प्रेक्षा केंद्रों में अनेक पांच दिवसीय, सात दिवसीय एवं पंद्रह दिवसीय शिविर आयोजित किये गये। वर्ष 1981 में राजस्थान पुलिस अकादमी, जयपुर एवं तुलसी अध्यात्म नीडम् के संयुक्त तत्वावधान में 15 दिवसीय शिविर आयोजित किया गया। वर्ष 1997 में आर.ए.सी. के जवानों के लिए भी लाडनूं में अनेक प्रशिक्षण शिविर आयोजित किये गये।

4.3.4. राजस्थान पुलिस अकादमी में शिविर

2.5.1981 के जयपुर शिविर में 119 चुने हुए पुलिस जवानों ने भाग लिया। तत्कालीन वरिष्ठ पुलिस महानिरीक्षक डी. पी. गुप्ता ने इस अवसर पर कहा कि हमारे प्रधानमंत्रीजी ने इस बात पर बल दिया है कि पुलिस में ऐसे तत्त्व शामिल किये जाएं जिससे कि ये अधिक संवेदनशील, सेवा परायण और जनतंत्रीय पद्धतियों के प्रति जागरूक बन सकें। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए हमने इस विशेष प्रशिक्षण शिविर का प्रायोगिक स्तर पर आयोजन किया है। इसमें मनोवैज्ञानिक तथा शरीर सिद्धान्तों के साथ–साथ ध्यान और योग के सिद्धान्तों का आधार लिया जाएगा।

शिविर समापन के अवसर पर सवाई मानसिंह अस्पताल के उपाचार्य एवं फिजीशीयन डॉ. खूंटेटा तथा मनोचिकित्सक डॉ. शिव गौतम, राजस्थान विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान शास्त्री श्री वी. सी. जैन; पुलिस अकादमी के फिजीशीयन डॉ. श्रीवास्तव ने विभिन्न क्षेत्रों में किये गये प्रयोग एवं परीक्षण की प्रारम्भिक रिपोर्ट के आधार पर बताया कि प्रेक्षाध्यान से शरीर एवं मन के स्वास्थ्य एवं व्यवहार में आशातीत परिवर्तन दिखाई देने लगे हैं। प्रशिक्षणार्थी पुलिस कर्मियों ने भी अपने व्यक्तिगत अनुभव सुनाते हुए कहा कि इस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रयोग से उनकी एकाग्रता बढ़ी है। तत्कालीन पुलिस महानिरीक्षक श्री जी. पी. सिंघवी ने अपने संक्षिप्त वक्तव्य में कहा कि प्रेक्षाध्यान पद्धति सचमुच एक बड़ी उपलब्धि है इसके लिए एक स्वतंत्र अकादमी की स्थापना की संभावनाएं बढ़ी हैं।

4.3.5. हैदराबाद पुलिस अकादमी में शिविर

पुलिस कर्मियों के लिए प्रेक्षा ध्यान का एक पंच दिवसीय शिविर 2.8.99 से किया गया। इसमें नेशनल इंडस्ट्रियल सेक्युरिटी तथा केंद्रीय रिजर्व पुलिस के जवानों और अधिकारियों ने भाग लिया। सी.आर.पी.एफ. के सैकेण्ड इन कमांडर जगरूप सिंह ने प्रेक्षा ध्यान के उत्तम प्रयोगात्मक शिविर के सम्बंध में जो भाव व्यक्त किये वे इस प्रकार हैं–

The training imported by them in countering the stress in day to day life is very simple and useful with complete integrated development of a person making him honest, sincere and loyal. Our personal will definitely be benefitted in future course of their life.

राष्ट्रीय औद्योगिक सुरक्षा अकादमी, हकीमपेठ, हैदराबाद में चार सप्ताह का प्रेक्षाध्यान का योग प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया। इसमें पूरे भारत से आये 50 इंस्पेक्टर, हैड कांस्टेबल, कांस्टेबल ने भाग लिया एवं प्रशिक्षण प्राप्त किया। शिविर समापन समारोह में डायरेक्टर रेड्डी साहब ने कहा– हमारे सी. आई. एस. एफ. में यह एक महीने का पहला शिविर लगा है। इससे दिमागी संतुलन बना रहता है। लालसाओं में कमी होती है। वे स्वयं ध्यान का प्रयोग कर रहे हैं।

उपरोक्त संस्थान में ही प्रशिक्षण के महत्त्व व उपयोगिता को देखते हुए तीसरा प्रेक्षाध्यान प्रशिक्षण शिविर 6 से 25 नवम्बर, 2000 तक चला। इस 21 दिवसीय शिविर में ग्यारह सहायक कमाण्डेण्ट एवं एक डिप्टी कमाण्डेण्ट प्रतिभागी थे। समापन समारोह में एन. आई. एस. ए. के डिप्टी इंस्पेक्टर जनरल पी. के. रेड्डी ने सभी संभागियों को संबोधित करते हुए कहा कि औद्योगिक सुरक्षा बल में ध्यान का प्रवेश एक शुभ संकेत है। इसके माध्यम से हम तनावों को कम कर सकते हैं। अपनी क्षमता को बढ़ा सकते हैं, मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं।

4.3.6. आंध्र प्रदेश पुलिस अकादमी तथा पुलिस ट्रेनिंग कॉलेज में शिविर

दिनांक 13 से 18 जुलाई 1999 तक आंध्र प्रदेश पुलिस अकादमी (ए.पी.) तथा पुलिस ट्रेनिंग कॉलेज में 6 दिवसीय प्रेक्षाध्यान जीवन विज्ञान प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया। ए. पी. के प्रशिक्षण शिविर में लगभग 200 अधिकारियों ने लाभ लिया। पी.टी.सी. कैम्प में 100 प्रशिक्षणार्थी लाभान्वित हुए। शिविर काल में प्रातः सायं दो–दो घंटे का प्रशिक्षण दिया गया।

दिनांक 28 फरवरी से 7 मार्च 2000 तक पुलिस अकादमी एवं अन्य स्थानों पर प्रेक्षाध्यान शिविर आयोजित किये गये। आंध्र प्रदेश पुलिस अकादमी में आयोजित प्रेक्षाध्यान शिविर में कुल 150 प्रशिक्षणार्थी सम्मिलित हुए।

दिनांक 17 अप्रैल से 12 मई 2000 तक केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल, सिकन्दराबाद में शिविर आयोजित किया गया। जिसमें कुल 44 संभागियों ने भाग लिया। इनमें इंस्पेक्टर, कांस्टेबल आदि सम्मिलित थे।

दिनांक 1 मार्च से 15 मार्च 1997 तक तुलसी अध्यात्म नीडम्, लाडनूं में प्रेक्षाध्यान जीवन विज्ञान पुलिस प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया। इस शिविर में आर. ए. सी. के बारह बटालियनों के 35 एवं एम. बी. सी. के तीन; कुल 38 पुलिस कर्मियों ने भाग लिया।

दिनांक 27 अप्रैल 97 से 1 मई 97 तक तुलसी अध्यात्म नीडम् लाडनूं में प्रेक्षाध्यान जीवन विज्ञान पुलिस प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया। इस शिविर में कुल 27 पुलिस कर्मियों ने भाग लिया।

दिनांक 16 से 20 जुलाई 1996 तक आर.ए.सी. कैंपस, जयपुर, में प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन किया गया। इस शिविर में राजस्थान के 11 बटालियनों के 58 पुलिस कर्मियों ने गहरी निष्ठा एवं उत्साह से प्रशिक्षण प्राप्त किया।

दिनांक 27 से 29 जनवरी तक पुलिस लाईन बीकानेर के पुलिस जवानों के लिए त्रिदिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन किया गया। इसमें 30 संभागियों ने भाग लिया।

4.3.7. अधिकारियों के व्यक्तिगत अनुभव

जीवन विज्ञान अकादमी, नई दिल्ली द्वारा पुलिस कर्मियों हेतु अध्यात्म साधना केंद्र में जीवन विज्ञान योग प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन किया गया। पुलिस के जवानों ने प्रयोगों द्वारा स्वयं में जो शांति की अनुभूति की एवं गुणात्मक परिवर्तन महसूस किये। उनको स्वयं अपने संस्मरणों में लिखते हैं–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रधान सिपाही श्री सुरेन्द्र सिंह, अष्टम् वाहिनी दिल्ली–17, पी.टी.एस. मालवीय नगर से लिखते हैं कि– 'मन को शांति मिली। हल्कापन महसूस हुआ। सारी परेशानियां एवं मानसिक तनाव दूर हो गये। पहले अनिद्रा रोग से ग्रसित था। अब पूर्ण रूप से निद्रा आने लगी है।'

सिपाही शिवानी, सप्तम वाहिनी–17, पुलिस लाइन कहती हैं– जीवन विज्ञान का प्रयोग करने से मन शांत हुआ। मैं पहले तम्बाकू का अत्यधिक सेवन करती थी। अब मेरी तम्बाकू की आदत पूर्ण रूप से छूट गई है। सही जीवन जीने का रास्ता जीवन विज्ञान अकादमी ने दिखाया मैं सदा आपकी आभारी रहूंगी। इस शिक्षा को लोगों तक पहुंचाना होगा।

उपनिदेशक महेन्द्र सिंह, पुलिस ट्रेनिंग स्कूल, झड़ौदाकलां दिल्ली ने कहा कि मैं इस प्रशिक्षण से अपने आपमें काफी बदलाव महसूस कर रहा हूं और कई बुराइयों को त्यागा है, जैसे अब में नशा नहीं करता, तनाव कम महसूस होता है, गुस्से में काफी कमी आयी है पर कई बुराइयां मैं अभी भी अपने में महसूस करता हूं उन्हें भी दूर करने की कोशिश कर रहा हूं। योग और ध्यान के प्रयोग मैंने परिवार के सदस्यों तथा विशेषकर बच्चों को करवाये। उन्होंने बहुत ही रुचि व उत्साह से ध्यान व आसन किये। मैंने खुद अपने चार साथियों से शराब और धूम्रपान छुड़वाया।

रजनीश गुप्ता, असिस्टेंट कमिश्नर पुलिस, पश्चिम दिल्ली से लिखते हैं कि– जीवन विज्ञान का अभ्यास अत्यधिक प्रभावकारी एवं लाभदायक सिद्ध हुआ है। आत्मसंयम के द्वारा मेरे तनाव में कमी आई है जिससे मेरी कार्यक्षमता बढ़ी है और मैं अपने समय का सही सदुपयोग करने की कला जान गया हूं। ऑटोसजेशन की पद्धति के द्वारा एक–एक कोशिका और मांसपेशी शिथिल करने की पद्धति जानने के बाद मेरे आलस्य और शरीर दर्द में कमी आई है। यह मूल्य आधारित प्रशिक्षण केवल मेरे शरीर एवं मन तक ही सीमित नहीं रहा है; मेरे परिवार, ऑफिस एवं समाज के लिए भी लाभदायक है।

सुरक्षा बल में जीवन विज्ञान– सैनिक जवानों में भी एकाकीपन, अन्तर्द्वन्द्व व तनाव से निपटने में जीवन विज्ञान प्रशिक्षण सहायता करता है। अध्यात्म साधना केंद्र, महरौली, दिल्ली में 7 मार्च से 18 मार्च 1996 तक वायु सैनिक जीवन विज्ञान प्रशिक्षण शिविर आयोजित किये गये। इसमें बैंगलोर, हैदराबाद, शिलोंग, पूना आदि स्थानों से 45 वायु सैनिकों ने उत्साह से प्रशिक्षण प्राप्त किया।

जीवन विज्ञान अकादमी, दिल्ली, वायु सैनिकों में चार शिविरों का सफल आयोजन कर चुकी है तथा इस प्रशिक्षण से वायु सैनिकों में विशेष परिवर्तन देखने को मिला है। देश के विभिन्न भागों से प्रशिक्षित वायु सैनिकों के फीडबैक से यह धारणा पुष्ट हो रही है कि जीवन विज्ञान कोरा शारीरिक योग नहीं है बल्कि भावनात्मक परिवर्तन द्वारा व्यक्तित्व निर्माण का अमोघ साधन है।

4.4 उद्योग में जीवन विज्ञान

वर्तमान युग तनाव का युग माना जाता है। यह तनाव कार्य की अधिकता, भोग प्रधान जीवन शैली और तीव्र शहरी जीवन का परिणाम है। आज के इस व्यस्त जीवन में तनाव एवं चिन्ता जीवन के अंग बन गए हैं। यद्यपि कार्य निष्पादन के लिए कुछ मात्रा में तनाव आवश्यक है पर यह सहनशीलता की सीमा से अधिक होने पर कार्य में बाधक एवं व्यक्तित्व विघटन का कारण बन जाता है। स्वयं की क्षमता को बढ़ाने एवं स्वस्थ जीवन जीने के लिए कार्य दबाब का प्रबंधन एवं विसर्जन आवश्यक है। जीवन विज्ञान के प्रयोग उपरोक्त उद्देश्य की प्राप्ति में बहुत सहायक होते हैं।

वर्तमान युग में औद्योगिक क्षेत्र में कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। इससे अधिकारी वर्ग एवं कर्मचारी समूह पर अत्यधिक मानसिक दबाव पड़ता है। जीवन विज्ञान उद्योग में रहने वाले एवं कार्यरत अधिकारी व कर्मचारियों के तनावों का विशेष रूप से अध्ययन करता है एवं उसके उपचार के रूप में तनाव प्रबंधन की विशेष विधियों का प्रशिक्षण देता है। तनाव से निपटने में सहायता करता है। औद्योगिक संस्था में प्रबन्धक की विशिष्ट भूमिका होती है। सम्पूर्ण संचालन का दायित्व, संतुलित व्यक्तित्व, निर्णय–कौशल आदि गुण प्रबंधक की विशिष्टता होती है। प्रबंधकों की निर्णय क्षमता का विकास, आंतरिक क्षमताओं से परिचय, चिन्ता निवारण, उच्च लक्ष्यों की प्राप्ति आदि में जीवन विज्ञान का ज्ञान एवं प्रयोग उपयोगी होते हैं।

गुणवत्ता प्रबन्धन ही किसी संस्था, समूह अथवा कंपनी की सफलता का एक प्रमुख बिन्दु है। संपूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन (Total quality management) जैसे प्रबंधन सिद्धान्तों ने अपनी उपयोगिता सिद्ध की है। प्रबन्धन करने वाली इकाई मानव संसाधन है जिसके स्वास्थ्य एवं गुणवत्ता पर ही प्रबंधन की सफलता निर्भर करती है। प्रबन्धन की सफलता ही संस्थान की सफलता है।

जीवन विज्ञान–प्रेक्षा प्रबंधन में मानव संसाधन विकास को प्रमुखता दी गई है। सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन के लिए संपूर्ण गुणवान मानव के लिए सबसे महत्वपूर्ण है कि वह केवल बौद्धिक न होकर भावनात्मक रूप से भी संतुलित हो। आज के मनोवैज्ञानिक अब मानने लगे हैं कि व्यक्ति की सफलता में 80 प्रतिशत योगदान भावनात्मक विकास का है बाकी 20 प्रतिशत अन्य विकास का योगदान है। भावनात्मक नियंत्रण की महता इससे भी प्रमाणित होती है। जब आज का डाक्टर कहता है कि 80 प्रतिशत से अधिक रोग मनोकायिक हैं। रोगों का मूल कारण भावनात्मक व मानसिक तनाव है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इसी तरह आज के प्रबन्धन सिद्धान्तों ने बाहरी व्यवस्थाओं एवं नियंत्रण पर इतना सुन्दर प्रकाश डाला है जो पहले नहीं था लेकिन प्रबंधन करने वाले मानव संसाधनों के मानसिक एवं भावनात्मक विकास के अभाव में सभी व्यवस्थाएं एवं नियंत्रण कार्यकारी सिद्ध नहीं हो पा रहे हैं। प्रेक्षा प्रबंधन भावनात्मक विकास द्वारा सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास को बल देता है। भावनात्मक विकास से व्यक्ति का चारित्रिक विकास होता है जिससे हर परिस्थिति में वह नैतिक बना रहता है जो कि हर संस्था, संस्थान, समाज एवं राष्ट्र की आवश्यकता है। सफलता के लिए अच्छा प्रबंधन, अच्छे प्रबंधन के लिए अच्छा प्रबंधक एवं अच्छे प्रबंधक के लिए उसमें में निम्न गुणों का विकास होना आवश्यक है–

P	=	Positive Thinking	विधायक चिन्तनय	R	=	Relaxation	तनाव मुक्ति;
E	=	Emotional Developmnet	भावनात्मक विकास;	K	=	Knowledge (Wisdom)	ज्ञान (प्रज्ञा);
S	=	Self Management	स्व प्रबंधन;	H	=	Holistic Health	समग्र स्वास्थ्य;
A	=	Attitudinal Change	(सम्यक् दृष्टिकोण)।				

प्रेक्षा प्रबंधन केवल उपदेशात्मक या सैद्धान्तिक नहीं है बल्कि उपर्युक्त गुणों के विकास के लिए प्रेक्षाध्यान प्रद्धति के प्रयोगों को भी इसमें शामिल किया गया है। प्रेक्षा प्रबंधन द्वारा प्रबंधक में निम्न गुणों का विकास किया जा सकता है –

1. व्यक्ति का ऊर्जावान एवं स्वस्थ अनुभव करना, 2. थकान एवं बोरियत का संवेदन कम करना, 3. किसी भी तरह के नशे से मुक्त करना, 4. स्व जागरूकता के द्वारा अपनी शक्तियों को पहचानना, 5. कार्य क्षमता विकास द्वारा उत्पादन वृद्धि, 6. व्यक्तियों के समूह के बीच भावनात्मक संतुलन एवं सामंजस्य पैदा करना, 7. आपसी कटुता व अविश्वास को कम कर अच्छे कार्य वातावरण का निर्माण करना, 8. व्यक्ति व संस्थान को तनाव, प्रतिक्रिया एवं आवेग–आवेश से मुक्त करना, 9. व्यक्ति को विधायक चिन्तन हेतु प्रेरित करना, 10. व्यक्ति को डर, हीन, उच्च भावना एवं निराशा से मुक्त करना, 11. व्यक्ति में मानवीय एवं नैतिक चेतना का विकास कर उसे संस्थान, समाज एवं राष्ट्र के प्रति ईमानदार बनाना, 12. चिंतन एवं निर्णय क्षमता का विकास करना, 13. आपसी सम्बंधों की मधुरता बढ़ाना, 14. नेतृत्व क्षमता का विकास, 15. आपसी मनमुटाव एवं कलह को दूर करने की क्षमता।

प्रेक्षा प्रबंधन शोध एवं निष्पत्ति–

लम्बे समय तक किए गए प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि दस दिवसीय प्रेक्षा प्रबंधन कार्यक्रम द्वारा निम्न बदलाव प्रकाश में आए –

1. औसत उच्च रक्तचाप एवं निम्न रक्तचाप में क्रमशः 30% एवं 15% की कमी, 2. तनाव, प्रतिक्रिया, उत्तेजना एवं चिडचिड़ेपन के स्तर में कमी, 3. कब्ज से आराम, 4. मोटापे से परेशान लोगों के वजन में कमी, 5. नाड़ी गति में 105 औसत से 80 औसत तक कमी जो मानसिक स्थिरता का द्योतक है, 6. अस्थमा एवं सर्दी जुकाम में विशेष आराम, 7. मधुमेह रोगियों के रक्त शर्करा में कमी, 8. गहरी नींद तथा स्वस्थता एवं ऊर्जा का अनुभव, 9. नशामुक्ति।

इस तरह प्रमाणित होता है कि प्रेक्षा प्रबंधन आंतरिक व्यक्तित्व को सुंदर बनाकर सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास संभव बनाता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि प्रेक्षा प्रबंधन आध्यात्मिक व्यक्तित्व को उजागर करता है। प्रेक्षा प्रबंधन के प्रयोगों से आध्यात्मिक–वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण होता है, एक नए मानव का जन्म होता है जो प्रबन्धन एवं युग की समस्याओं का सामाधान दे सकता है।

4.4.1. व्यक्तिगत अनुभव

उद्योग में जीवन विज्ञान और प्रेक्षाध्यान के समय–समय पर कार्यक्रम आयोजित होते रहे हैं। प्रतिभागियों के व्यक्तिगत अनुभवों को एकत्र किया जाता है। एक कार्यक्रम की रिपोर्ट इस प्रकार है–

"हरडिल्ला केमिकल्स लिमिटेड" बोम्बे में 27 अगस्त,1992 को एक दिवसीय कार्यक्रम "Stress Management" के नाम से श्री अरूण भाई झवेरी द्वारा आयोजित किया गया। वह कार्यक्रम प्रातः 10.00 बजे से सायं 5.00 बजे तक चला। कम्पनी के 24 उच्च अधिकारियों ने इसमें भाग लिया। जिनके अनुभव इस प्रकार हैं–

Programme on stress management at Herdilla Chemicas limited was held on 27-8-1992. Twenety- four senior executives participated at Herdilla Club/ conference Hall. All of them were Senior Managers and highly educated. They were generally very much satisfied and demanded for further programmes. Some of the experiences have written by the patricipants- "The Programme was very good as it explained the stress management, relaxation in most scientific, and logical way **(P.N. Paldit: B.Sc. Plant Manager)**.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

"The programme of the stress management opened up a new horizon in management education." -N.V. Solanki B.E (Mechanical) DMS DY. Chief Engineer (Planing).

"The programme was very useful. It was well conducted." - S.S. PADTE, B. Tech (Chem. Engg.), General Manager Works.

" It was good programme" and changed one than the routine programme" -V.R MIRANI, B.SC. (Member of American Institute of Chem. Engg.) Production Manager.

"I carry good impression about the programme. The awareness methods and rlaxation techniques are useful to us for improving our effectiveness." -U.B.LAL. BSC (Elect Engg.), Dy. Chief Engineer Electrical.

"Useful and relevent theme" ably demonstrated." -P.B. KALANTAI. (B. Tech: M. Chem. Engg.), Manager Process Engineer.

4.4.2. मथुरा रिफाईनरी में जीवन विज्ञान शिविर

दिनांक 1 से 10 नवम्बर 2000 तक मथुरा रिफाइनरी में प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन किया गया। शिविर में 20 इंजीनियरों ने भाग लिया। शिविर के दौरान योगासन, प्रेक्षाध्यान, कायोत्सर्ग, अनुप्रेक्षा तथा यौगिक क्रिया 6 से 8 बजे तक तथा सांयकाल भी 6 से 8 बजे तक चलते थे। कार्यक्रम के प्रति रुचि देखकर उनकी विशेष मांग पर औद्योगिक परिसर के सेमीनार हॉल में **सायं 3 से 5 बजे** तक जीवन विज्ञान के विशेष कार्यक्रम आयोजित किये गये। इस सम्पूर्ण कार्यक्रम में प्रेक्षाध्यान के द्वारा मधुमेह, हृदय रोग, श्वास रोग निवारण तथा तनाव प्रबंधन, लक्ष्य निर्माण आदि पर विशेष जानकारी एवं प्रयोग कराए गये।

4.5 पुनर्वास में जीवन विज्ञान

कारागृह में बंद कैदी भी मनुष्य हैं। सामाजिक मूल्यों के अतिक्रमण एवं अपराध के दोषी पहचान लिए जाने पर जेल तक पहुंच जाते हैं। अमानवीय व विकृत व्यवहार की चिकित्सा क्या हो सकती है? इसका अध्ययन करना जीवन विज्ञान का एक कार्य है। जीवन सुधारने में जीवन विज्ञान बहुत सहायक सिद्ध होता है। जीवन विज्ञान के प्रशिक्षक जेलों में जाकर व्यसन मुक्ति, शांति, अहिंसा की प्रेरणा देते हैं एवं उनको प्रायोगिक अभ्यास करवाते हैं। इससे उनके मन में बुराइयों से बचने की भावना पैदा होती है। अनेक कैदी आजीवन अपराध एवं व्यसन आदि का मन से त्याग कर देते हैं।

जनसंख्या वृद्धि, बेरोजगारी, उपभोग संस्कृति, अतिभोग व महत्त्वाकांक्षा ने अपराध एवं अपराधियों की संख्या बढ़ा दी है। जीवन विज्ञान के अनुसार व्यक्ति में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के संस्कार होते हैं। परिस्थितियों के अनुरूप व्यक्ति में संस्कार का उभार होता है। अपराधी को सुधरने का मौका, प्रेरणा और अनुकूल योग व अभ्यास प्राप्त होने पर उनकी भावनाओं में अभूतपूर्व परिवर्तन होता है। जीवन विज्ञान प्रशिक्षकों द्वारा अपराधियों की मानसिकता और भावनाओं को बदलने वाले आध्यात्मिक अभ्यास करवाये जाते हैं जिससे वह भविष्य में अपराध कर ही नहीं सके। वे बाहरी दुनिया के अतिरिक्त एक भीतरी दुनिया से भी परिचित होते हैं जहां शान्ति व आनन्द का अनुभव करते हैं। मनोवैज्ञानिकों द्वारा जीवन विज्ञान प्रशिक्षण के प्रभावों पर अनुसंधान कार्य भी किये जाते हैं।

आसन–प्राणायाम, ध्यान, कायोत्सर्ग आदि को कैदी बड़े मनोयोगपूर्वक करते हैं। कायोत्सर्ग के साथ अनुप्रेक्षा द्वारा कैदियों की मानसिकता में अभूतपूर्व परिवर्तन होता है। अनेक व्यक्तियों को शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं व्यावहारिक लाभ हुआ। अनेकों ने धूम्रपान का भी परित्याग किया। शांति की अनुभूति, बुरे विचारों से मुक्ति, मैत्री भाव में वृद्धि, हीन भावना में कमी, आत्मविश्वास में वृद्धि, क्रोध में कमी, तनावों से मुक्ति, अच्छा जीवन जीने का संकल्प, भाईचारे की भावना, अपराध भावना में कमी इत्यादि लाभों की प्राप्ति में जीवन विज्ञान के प्रयोग बहुत उपयोगी हुए हैं। समय–समय पर विभिन्न कारागृह और सुधार गृहों में जीवन विज्ञान प्रशिक्षकों द्वारा शिविर आयोजित किये जाते रहे हैं।

4.5.1. पुनर्वास हेतु प्रशिक्षण शिविर

बाल सुधार गृह, हिसार में 3 जून से 18 जून 1996 तक 15 दिन का गहन प्रेक्षाध्यान शिविर आयोजित किया गया। शिविर में कुल 25 बंदियों ने भाग लिया जिनकी उम्र 17 वर्ष से 22 वर्ष के बीच थी। इन शिविरार्थियों में 13 आजीवन कारावास सजा प्राप्त बंदी थे। युनिवर्सिटी ग्रांट कमीशन नई दिल्ली के सौजन्य से संचालित इस प्रोजेक्ट के मुख्य सचेतक डॉ. श्रीमती स्वतंत्रता जैन, लेक्चरर मनोविज्ञान विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय एवं प्रोजेक्ट फेलो सेवानन्द थे।

• आंध्रप्रदेश के चंचलबगुड़ा तथा मशीराबाद जेल में 19 जनवरी से 24 जनवरी 1998 तक जीवन विज्ञान के प्रयोग कराए गए। लगभग 300 कैदियों ने लाभ उठाया।

• केन्द्रीय कारागार अजमेर में तीन दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर आयोजित किया गया। इसमें 77 कैदियों ने भाग लेकर लाभ उठाया।

• इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ करैक्शन्स एण्ड जुवेनाइल मैनेजमेंट के तत्त्वावधान में दिनांक 19 दिसम्बर से 4 जनवरी तक सत्रह दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर जयपुर के 'सैंट्रल जेल' में आयोजित किया गया। प्रारम्भ में शिविर दस दिनों का था परन्तु कैदियों की भारी मांग को देखते हुए इसे एक सप्ताह और बढ़ाया गया।

4.5.2. व्यक्तिगत अनुभव

कुछ शिविरार्थियों के अनुभव इस प्रकार रहे –

- मेरे मन को शांति मिली है। पहले की तरह गलत विचार अब नहीं आते हैं। मेरे दुश्मन के साथ भी मैं मित्रता का व्यवहार रखूंगा। सबके साथ मीठी वाणी बोलने की भावना हो गई है **(चेताराम)।**
- महाप्राण ध्वनि से सिर के आंतरिक विकार जैसे– सिर दर्द होना, रात में स्वप्न आना समाप्त हो गये हैं। प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों से मन एकाग्र हुआ है। कमर दर्द, पैरों के जोड़ों में दर्द, कंधों के दर्द, पेट के विकारों से छुटकारा मिला है **(महे)।**
- कभी–कभी किसी के प्रति जो हीन भावनााएं आती थीं, वे अब नहीं हैं। आत्म विश्वास में वृद्धि हुई है। नींद भी अच्छी आने लगी है **(यादवेन्द्र)।**
- मेरी रीढ़ की हड्डी का दर्द ठीक हुआ है। अब मुझे पहले की तरह क्रोध नहीं आता। मैंने संकल्प लिया है कि मैं किसी भी गलत रास्ते से नहीं चलूंगा **(रमेश)।**

जिला सुधार गृह भिवानी के लिए दिनांक 25 अगस्त से 27 सितम्बर, 2000 तक आयोजित प्रेक्षाध्यान के मासिक शिविर के चंद संभागियों के अनुभव –

- प्रेक्षाध्यान के अभ्यास से शरीर दर्द मुक्त हो गया है। अर्हम एवं महाप्राण ध्वनि ने तन–मन को पवित्र बनाने का कार्य किया है। पहले छोटी–छोटी बातों पर गुस्सा आ जाता था। किसी से बात करने में संकोच होता था। एक माह के प्रयोग से जो बदलाव आया है उसके लिए आभारी रहूंगा। नया जीवन शुरू हुआ। ऐसे अवसर मिलते रहें तो अपने जीवन को अच्छे कार्य में लगाना आसान हो जाएगा। भविष्य में ऐसा कार्यक्रम स्थायी रखा जाए ताकि जेल में रहने वाले इस शिक्षा को ग्रहण कर सकें **(गोपाल)।**
- प्रेक्षाध्यान शिविर से अनेक लाभ मिले। मेरुदण्ड की क्रिया से शरीर का दर्द दूर हो गया। अर्हम् एवं महाप्राण ध्वनि करने से मन इधर– उधर नहीं भागता है तथा शांति का वातावरण बन जाता है। कायोत्सर्ग से शरीर स्थिर किया जा सकता है तथा आत्मा का दर्शन मिल सकता है। हम बंदी भाई चाहते हैं कि ऐसा कार्यक्रम जेल में स्थायी रखा जाए। निरन्तर इसका अभ्यास कराया जाना चाहिए जिससे बंदीजनों का कल्याण हो सके **(सुरेश पुत्र चिरंजीलाल)।**
- प्रेक्षाध्यान शिविर हम सबके लिए बहुत लाभप्रद हुआ है। योगाभ्यास से शरीर तंदुरुस्त और मानसिक संतुलन भी ठीक रहता है। जीवन विज्ञान के द्वारा क्रोध एवं हिंसा को कम करना सीखा। यह अभ्यास लगातार करने की इच्छा है **(सुरेश कुमार)।**
- बंदियों के बीच प्रेक्षाध्यान कार्यक्रम कराने के लिए अत्यन्त आभारी हूं। सिखाए गए व्यायामों से हमारे मन की प्रवृत्ति में काफी बदलाव आया है। हमें शांति मिली है। प्राणायाम से सांस क्रिया संतुलित हो जाती है। दीर्घ श्वास में सफलता मिली। अब शरीर में दर्द नहीं होता। कायोत्सर्ग में शरीर का पता ही नहीं चलता। हीन भावना समाप्त होती है। भविष्य में ऐसा कार्यक्रम स्थायी रखा जाए ताकि आगे भी बंदी भाई इसका लाभ उठा सकें **(पवन शर्मा)।**
- जेल में प्रेक्षाध्यान का आयोजन बहुत लाभदायक है। शरीर तनाव व दर्द मुक्त तथा स्वस्थ हो गया है। शरीर में स्फूर्ति का संचार हुआ है। पेट की बीमारी में आराम मिला है। प्रतिदिन प्रयोग करने से रोगों से बचाव होता है। नींद व भूख अच्छी लगती है। सभी क्रियाएं बहुत पसंद आयी। हमारे जैसे बंदियों की समस्याओं को देखते हुए अगर जेल में ऐसे कार्यक्रमों का स्थायी इंतजाम हो जाए तो हम सबका कल्याण हो सकेगा **(हनुमानप्रसाद)।**
- प्रेक्षाध्यान शिविर में बहुत कुछ सीखा है। पहले मेरी दिनचर्या अस्त–व्यस्त थी। तनाव बहुत आता था। प्रयोग करने से शरीर का दर्द, बैचेनी एवं उतावलापन में काफी सुधार हो गया है। मन में शांति आयी है। सबके प्रति अपनापन व प्रेम आने लगा है। मुझे स्वप्न बराबर आते थे, अब मैं ठीक से सोता हूं। स्फूर्ति व एकाग्रता का विकास हुआ है। बताए गए प्रयोगों को मैं रोज करता हूं। मानसिक संतुलन आया है। गंदे व हिंसक विचार कम आते हैं **(कृष्ण)।**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.5.3. तिहाड जेल में जीवन विज्ञान शिविर

अध्यात्म साधना केन्द्र और 'अहिंसा प्रिय समाज' द्वारा स्वस्थ जीवनशैली और शाकाहार पर पांच दिवसीय कार्यक्रम तिहाड़ जेल में किया गया। आवेग और आवेशवश व्यक्ति गलती कर लेता है किन्तु जब वह आत्म अवलोकन करता है तब उसे महसूस होता है कि उसने सही नहीं किया, उसे संतुलित रहना चाहिए। जीवन को स्वस्थ और संतुलित बनाने के लिए प्रेक्षाध्यान के प्रयोग बड़े कामयाब हैं। स्वास्थ्य का पहला लक्षण है– मेरुदण्ड स्वस्थ और लचीला रहे। मेरुदण्ड को लचीला रखने के लिए मेरुदण्ड की क्रियाएं और सीधा बैठना आवश्यक है। दीर्घश्वास से एकाग्रता का विकास और गुस्सा शांत होता है। योग निद्रा से तनाव में कमी और शांति मिलती है। विधायक सोच और मैत्री भावना से मैत्री का विकास होता है। योग मुद्राओं से स्वभाव बदलता है। इस कार्यक्रम से प्रेरित होकर जेल के कैदियों ने हिंसा तथा नशा से मुक्त जीवन जीने का संकल्प व्यक्त किया।

4.5.4. घर से भागे हुए बच्चों का पुनर्वास

जयपुर के उन छोटे–बड़े बच्चों में मानसिक व भावनात्मक रुग्णता को दूर करने में प्रेक्षाध्यान, जीवन विज्ञान के प्रयोग बहुत सहायक सिद्ध रहे जो अपने घरों से भागे हुए थे और अपनी आजीविका स्टेशन पर यात्रियों का सामान ढो कर, होटलों में प्लेटें साफ करके या फिर प्राइवेट ट्रेवल्स की बसों या ट्रकों में मजदूरी करके प्राप्त करते थे। एक बार का आवेश जीवन भर उन्हें अंधेरी गलियारों से गुजरने के लिए मजबूर कर देता है। उनके उत्थान के लिए जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) के पूर्व छात्र श्री बूटीराम को प्रेक्षाध्यान से जो सहयोग मिला, वह उन्हीं के शब्दों में–

'मैंने पाया कि बसों में काम करने वाले किशोर रात्री में जागने के लिए गुटके खाते हैं। ऐसा ही एक दिल्ली से भागा हुआ 15 वर्षीय मनोज मात्र इसलिए मानसिक रूप से उग्र रहने लगा था कि वह कई दिनों से सोया नहीं था। मैंने प्लेटफार्म पर खाली ट्रेनों की बर्थों पर कई बार उसे कायोत्सर्ग (प्रेक्षाध्यान का एक प्रयोग) करवाया। एक दिन मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब इसी क्रम में सत्रहवें दिन मनोज खर्राटे लेकर गहरी नींद लेने लगा। मैंने जैन विश्वभारती संस्थान में रहकर जीवन विज्ञान की जो कला सीखी है वह आज मेरे कार्य की सफलता में वरदान साबित हो रही है। आजीविका अर्जित करने का क्षेत्र चाहे जो भी, जीवन विज्ञान प्रत्येक कार्य को एक कला प्रदान करता है। यही कला स्वयं के जीवन उत्थान में तो सहायक बनती ही है साथ ही स्वयं के कौशल से कार्य की पहचान भी अलग बनती है। मैं दर्जनों घर से भागे लड़कों को उनके घर पहुंचा चुका हूं।'

4.6 जीवन विज्ञान की विशेषताएं (Characteritic of Science of Living)

इतिहास, स्वरूप, परिभाषा एवं क्षेत्रों के अध्ययन एवं विश्लेषण से जीवन विज्ञान की निम्नलिखित विशेषताओं का ज्ञान होता है–

1. जीवन विज्ञान एक जीवनोन्मुखी विद्या शाखा है जो एक विशेष प्राचीन आध्यात्मिक धरोहर एवं आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के संश्लेषण पर आधारित है। इस संश्लेषण का संबंध मानव जीवन से है।
2. जीवन विज्ञान जीवनोन्मुखी के साथ–साथ जीविकोन्मुखी व्यावसायिक सेवा भी है जो जीवन के सूक्ष्म रहस्यों से संबंधित प्रेक्षाध्यान की निपुणता पर आधारित है। व्यावसायिक सेवा हेतु जीवन को समझने के लिए प्राचीन जीवन–दर्शन की अन्तः प्रज्ञा, आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के संश्लेषण की क्षमता, जीवन के मुख्य अंगों को समझने की योग्यता एवं प्रशिक्षण देने की निपुणता का होना अनिवार्य है।
3. जीवन विज्ञान प्रशिक्षक व्यक्तियों को व्यक्तिगत या सामूहिक प्रशिक्षण के रूप में सहायता प्रदान करता है। यह सहायता उनकी आंतरिक क्षमताओं के विकास हेतु प्रदान की जाती है जिसके लिए एक विशेष ज्ञान, अनुभव और एक विशेष निपुणता की आवश्यकता पड़ती है। यह विशेष ज्ञान, अनुभव और विशेष निपुणता एक विशेष औपचारिक प्रक्रिया द्वारा अर्थात् शिक्षा एवं प्रशिक्षण पद्धति और अभ्यास द्वारा ग्रहण की जा सकती है। जीवन विज्ञान की व्यावसायिक सेवाओं का प्रदान किया जाना इसी ज्ञान, अनुभव और निपुणता पर आधारित होता है।
4. जीवन विज्ञान प्रशिक्षण ऐसा प्रशिक्षण है जिसके तीन भाग हैं– ध्यानयोग का प्रशिक्षण, आध्यात्मिक जीवन–दर्शन का ज्ञान, न्यूनतम मानवीय आचार–संहिता का संकल्प।
5. जीवन विज्ञान व्यावसायिक सेवा का संबंध व्यक्तियों की समस्याओं से है जो मनुष्य की आंतरिक एवं बाहरी समायोजन से संबंधित होती हैं। आंतरिक वैयक्तिक समायोजन का अर्थ है कि व्यक्ति की मनोवृत्तियों एवं मूल्यों का एकीकरण करना या उसमें संतुलन लाना। अंतर्वैयक्तिक समायोजन व्यक्ति को अपनी क्षमताओं को समझने एवं उसको विकसित करने में सहायता प्रदान करता है जिसमें वह सामाजिक आकांक्षाओं एवं व्यक्तिगत अपेक्षाओं के अनुरूप अपने लक्ष्य को संवार कर समस्त शक्तियों का सही दिशा में नियोजन कर सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6. जीवन विज्ञान प्रशिक्षण एक ऐसी व्यावसायिक सेवा भी है जो व्यक्तियों की आकांक्षाओं के सीमाकरण व उनको एक दिशागामी बनाने तथा उसकी प्राप्ति के लिए क्षमताओं के कुशल प्रबन्धन पर बल देती है।

7. जीवन विज्ञान प्रशिक्षण एक ऐसी जीविकोन्मुखी व्यावसायिक सेवा भी है जो उन बाधाओं को दूर करने का प्रयास करती है जो व्यक्ति के मानसिक व भावनात्मक विकास में बाधक होती है।

जीवन विज्ञान का संबंध व्यक्तियों की क्षमताओं के विकास, उनकी इच्छाओं के संयम (समायोजन) एवं पर्यावरण की दशाओं के कुशल प्रबन्धन से है। जब क्षमताओं के बारे में अज्ञान रहता है एवं इच्छाएं असीमित रहती हैं तब समस्या का रूप धारण कर लेती हैं जिससे व्यक्तिगत समायोजन प्रभावित होने लगता है, जीवन में संतुलन बिगड़ने लगता है। इसलिए जीवन विज्ञान प्रशिक्षण व्यक्तियों की सहायता करता है ताकि वह अपनी शक्तियों, योग्यताओं, क्षमताओं और सामाजिक साधनों का प्रयोग करते हुए जीवन में संतुलन व शान्ति को प्राप्त कर सके। जीवन में संतुलन सर्वांगीण क्षमताओं के विकास से होता है एवं शांति इच्छाओं के समायोजन से। जीवन विज्ञान प्रशिक्षण की भूमिका तब प्रारम्भ होती है जब व्यक्ति को अपनी क्षमताओं के बारे में जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती है।

जीवन विज्ञान की प्रमुख प्रणालियां जिनका प्रयोग करके क्षनताओं के विकास की पूर्ति में व्यक्ति को सहायता दी जाती है वे इस प्रकार हैं–

1. **अनेकान्त** – जीवन विज्ञान की वह कार्यप्रणाली जो व्यक्ति के जीवन की सभी क्षमताओं को समग्रता से समझने हेतु सहायता कार्य में प्रयोग में लायी जाती है।

2. **अहिंसा** – व्यक्ति के सामाजिक पर्यावरण को स्वस्थ बनाने हेतु सहायता कार्य में प्रयोग में लाई जाती है।

3. **अणुव्रत** – व्यक्ति की इच्छाओं को संयोजित व संयमित करने में सहायता कार्य में प्रयोग में लाया जाता है।

4. **प्रेक्षाध्यान** – व्यक्ति की क्षमताओं के जागरण एवं विकास हेतु सहायता कार्य में प्रयोग में लाया जाता है।

1. जीवन विज्ञान का ज्ञान अनेक ज्ञानों का मिश्रण है। जीवन विज्ञान का संबंध मानव जीवन से है। जीवन एक गतिशील प्रवाह है और इसकी समस्याएं भी जटिल होती हैं। मानव जीवन की इन समस्याओं के अनेक परस्पर कारण होते हैं इसलिए एक से अधिक विद्या शाखाओं का सहारा लेने की आवश्यकता होती है। जीवन विज्ञान के ज्ञान का एक भाग ऐसा है जो दूसरे विज्ञानों शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान, शिक्षा शास्त्र आदि से ग्रहण किया गया है। जीवन विज्ञान का दूसरा भाग ऐसा है जिसे किसी अन्य विज्ञानों से ग्रहण नहीं किया गया बल्कि जिसे जीवन विज्ञान ने योग विद्या के सांस्कृतिक–दार्शनिक एवं आध्यात्मिक धरोहर के अनुसंधान, प्रयोग व अभ्यास से विकसित किया है। इसी कारण यह जीवन विज्ञान का अपना विशेष ज्ञान कहा जाता है। जीवन विज्ञान के इस भाग में प्रेक्षाध्यान की प्रमुख प्रणालियां (प्रविधियां) आती हैं जिनके माध्यम से जीवन विज्ञान को अभ्यास में लाया जाता है।

2. जीवन विज्ञान में क्षमताओं के विकास क्रम में व्यक्तिगत प्राथमिकताओं, आवश्यकताओं, इच्छाओं और अभिरुचियों को ध्यान में रखा जाता है। मानव जीवन में क्षमताओं, आवश्यकताओं और सामाजिक परिस्थितियों में सामंजस्य के अभाव के कारण व्यक्ति अशांति व तनाव का अनुभव करता है। शांति के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति की आवश्यकता व सामाजिक परिस्थिति के अनुरूप क्षमताओं का विकास हो जिससे वह शांति व तनावमुक्त जीवन जी सके। क्षमताओं के विकास में यह ध्यान रखा जाता है कि ऐसे व्यक्तित्व से समाज के हित आहत न हों।

3. जीवन विज्ञान की जीविकोन्मुखी व्यावसायिक सेवा विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से एवं वैयक्तिक रूप में भी प्रदान की जाती है। विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाली संस्थाओं, धार्मिक संस्थाओं, योग केन्द्रों, शिक्षा संस्थाओं, प्रशासनिक–प्रशिक्षण संस्थाओं, व्यावसायिक औद्योगिक संस्थानों, चिकित्सा संस्थाओं, अपराध सुधार संस्थाओं आदि के माध्यम से यह सेवा, प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षक की नियुक्ति करके प्रदान की जाती है। वे प्रशिक्षक संस्था की नीतियों, उद्देश्यों के अनुसार ही सेवा प्रदान करते हैं। अनेक प्रशिक्षक व्यक्तिशः अपना केन्द्र संचालन करके भी सेवा प्रदान कर रहे हैं।

4. जीवन विज्ञान का उद्देश्य अपने सेवार्थ में स्वयं की क्षमताओं के प्रति आस्था को जगाना एवं उनको विकसित करने के उपायों का अभ्यास करने में सहायता प्रदान करना है। जीवन विज्ञान प्रशिक्षक सहायता प्रदान करते समय इस बात का प्रयास करते हैं कि सेवार्थी अपने पैरों पर खड़ा हो सके। अपने जीवन की लगाम अपने हाथ में पकड़ सके। प्रशिक्षक अपने सेवार्थी का मार्ग प्रदर्शन करता है और उसमें निर्णय लेने और अपनी समस्याओं का समाधान करने की शक्ति एवं समर्थता उत्पन्न करने का प्रयास करता है। अपनी समस्याओं के निदान और समाधान में सेवार्थी द्वारा भाग लेना और उसका सक्रिय सहयोग, आवश्यक समझा जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. जीवन विज्ञान एक कला है जिसके द्वारा व्यक्ति के जीवन में शांति व संतुलन के लिए विभिन्न आन्तरिक क्षमताओं व सामाजिक साधनों का समन्वय किया जाता है और इन क्षमताओं को विकसित एवं गतिमान किया जाता है। ऐसा करने में वैज्ञानिक ज्ञान और आध्यात्मिक पद्धति प्रेक्षाध्यान का प्रयोग किया जाता है। जीवन विज्ञान के प्रशिक्षक को जीवन की आन्तरिक क्षमताओं के ज्ञान के साथ ही उनको विकसित करने की पूरी विधियों का ज्ञान भी होता है। जीवन विज्ञान प्रशिक्षक आन्तरिक क्षमताओं, आवश्यकताओं और सामाजिक साधनों में समायोजन स्थापित करने में निपुणता रखता है।

6. जीवन विज्ञान व्यक्ति की आन्तरिक क्षमताओं का विकास भी करता है एवं आन्तरिक समस्याओं को दूर भी करता है। समस्याओं के सुलझाने के साथ–साथ व्यक्ति के दृष्टिकोण एवं व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है अर्थात् जीवन विज्ञान प्रशिक्षण में निदान एवं निराकरण के कार्यक्रमों के साथ–साथ दृष्टिकोण व व्यवहार–परिष्कार का बड़ा महत्त्व है।

4.7 जीवन विज्ञान की मौलिक मान्यतायें

जीवन विज्ञान प्रशिक्षक कुछ बातों में दृढ़ विश्वास रखते हैं––

1. जीवन विज्ञान एक प्रशिक्षण है। जीवन विज्ञान के प्रशिक्षण में बौद्धिक क्रियाकलापों के साथ–साथ जीवन विज्ञान प्रशिक्षक के उत्तरदायित्व की भी आवश्कता पड़ती है। यह केवल शास्त्रीय या अकादमिक ही नहीं बल्कि अपने उद्देश्यों में व्यावहारिक / प्रायोगिक एवं अभ्यासात्मक भी है। इसका अपना विशिष्ट ज्ञान एवं प्रविधियां हैं। इसे आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक साहित्य के ज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान–योग के अनुभव द्वारा संचालित किया जा सकता है।

2. जीवन विज्ञान प्रशिक्षक के कार्य करने में जो मौलिक बात है वह मानव जीवन एवं मानवीय मूल्यों को समझने की प्रशिक्षक की योग्यता है। जीवन विज्ञान कला और विज्ञान दोनों है। एक तरफ यह ज्ञान का प्रयोग के कौशल की दृष्टि से कला है तथा दूसरी तरफ मानव जीवन के रहस्यों की वैज्ञानिक पद्धति से खोज भी करता है, अतः यह विज्ञान भी है।

3. जीवन विज्ञान एवं मूल्यपरक शिक्षा समान अवधारणाएं नहीं हैं। हालांकि कुछ अर्थो में समान लगती हैं मूल्य परक शिक्षा का अभी तक कोई स्वरूप उभरकर सामने नहीं आया है। इसके अन्तर्गत यत्र–तत्र नैतिक शिक्षा का ही प्रचलन है। उसमें भी केवल महापुरूषों की कथाओं एवं उद्देश्यों तक ही सीमित है। उसमें कोई प्रायोगिक प्रशिक्षण एवं अभ्यास का समावेश नहीं है। आवश्यकता है कि उसको भी अधिक से अधिक प्रायोगिक प्रशिक्षण एवं अभ्यास द्वारा परिपुष्ट किया जाये।

4. जीवन विज्ञान की अपनी प्रतिक्रियाएं एवं प्रविधियां हैं। इसके अभ्यास की कुशलताओं के साथ–साथ अन्य चीजों की भी आवश्यकता पड़ती है। जीवन विज्ञान प्रशिक्षण जिस क्षेत्र में दिया जाना है उस क्षेत्र की मानसिक व भावनात्मक समस्याओं एवं समाधान का ज्ञान भी जीवन विज्ञान प्रशिक्षक के लिए आवश्यक हैं जिससे वह उस क्षेत्र की आवश्यकताओं के अनुरूप जीवन विज्ञान के ज्ञान एवं प्रविधियों के प्रशिक्षण द्वारा सहायता कर सके।

5. जीवन विज्ञान का अपना जीवन–दर्शन एवं एक निश्चित दृष्टिकोण है। जीवन विज्ञान यह मानता है कि व्यक्तिगत क्षमताओं व आकांक्षाओं में, विचार व आचार में असामंजस्य रहता ही है जिसका प्रभाव व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन पर भी पड़ता है।

6. जीवन विज्ञान प्रशिक्षक के लिए अपने प्रशिक्षण की प्रकृति को देखते हुए कई प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसलिए उसे सम्बद्ध विषयों का आध्यात्मिक ज्ञान एवम् वैज्ञानिक संदर्भो की पूरी जानकारी होनी चाहिए।

7. जीवन विज्ञान प्रशिक्षक व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक क्षमताओं एवं उसके सामाजिक समायोजन एवं उसकी आवश्यकताओं के प्रति जागरूक होता है। जिनके असामंजस्य से व्यक्तिगत समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

8. जीवन विज्ञान प्रशिक्षक का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति की आन्तरिक क्षमताओं से परिचित कराने तथा उसको सशक्त बनाने से है।

4.8 जीवन विज्ञान के समक्ष चुनौतियां

भौतिक विज्ञान के विकास के अनुपात में मनुष्य ने थोड़ा भी अपने आपको समझने की दिशा में प्रगति नहीं की। इसका वृहद् स्तर पर मानव समाज जो परिणाम भोग रहा है। वह है शाश्वत मूल्य– शांति से दूरी। इसी अपेक्षा की पूर्ति के लिए जीवन विज्ञान प्राचीन और अर्वाचीन ज्ञान और विज्ञान का व्यवहारिक उपयोग है। यह शिक्षा जगत् में एक नई विद्या शाखा के रूप में विकसित हो रहा है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जीवन विज्ञान का कार्य प्रेक्षाध्यान एवं योग का वैज्ञानिक अध्ययन करना है। इसकी वैज्ञानिकता को प्रस्तुत करना है। जीवन मूल्यों की समस्याओं के समाधान में प्रेक्षाध्यान और योग के बहुमुखी उपयोग को वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा सामने लाना है। विज्ञान को योग के द्वारा जीवन से जोड़ना है। योग को सामान्य जन–जीवन से जोड़ना है। एक समय था जब यह माना जाता था कि योग केवल संन्यासियों के लिए है पर आज यह सिद्ध हो गया है कि सामान्य गृहस्थ के लिए भी यह उतना ही महत्वपूर्ण व उपयोगी है। यह तभी संभव है जब सामान्य जन–जीवन की समस्याओं के निराकरण में इसकी सशक्त भूमिका को वैज्ञानिक अनुसंधान व विज्ञान सम्मत तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत किया जाए। जीवन विज्ञान का यही कार्य है और मुख्य चुनौती भी।

4.9 सारांश

1. जीवन विज्ञान का एक उद्देश्य स्वस्थ समाज की संरचना है। इसमें जीवन विज्ञान का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जातिभेद की समस्या रूढ़िवादी मानसिकता, दहेज प्रथा, बाल विवाह जैसी ज्वलन्त सामाजिक समस्याओं को जीवन विज्ञान द्वारा सुलझाने में सहायता मिलती है। विश्व शान्ति को बनाये रखने के लिये जीवन विज्ञान महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। जीवन विज्ञान के विशेषज्ञ अहिंसा व शांति के सम्मेलनों के आयोजनों एवं वार्ताओं द्वारा एक देश को दूसरे देश के नजदीक लाने में सहयोगी हैं। दिव्यांग व्यक्तियों के जीवन निर्माण में जीवन विज्ञान की उपयोगिता उभरकर सामने आई है। जीवन विज्ञान व्यक्ति को नशे की लत से मुक्त कराने में सहायक है। अनेक राजनेताओं, समाजशास्त्रियों एवं शिक्षाविदों ने अनुभव किया कि जीवन विज्ञान शिक्षा की सम्पूर्णता के लिये आवश्यक है।

2. जीवन विज्ञान प्रशासनिक अधिकारियों में नैतिकता व आस्था की क्षमता जगाकर कुशल व योग्य अधिकारी बनाने में सक्षम है। प्रेक्षाध्यान एवं जीवन विज्ञान के प्रयोग पुलिस कर्मियों में व्यवहार परिवर्तन कर उन्हें सही जीवन शैली से परिचित करवाता है। जीवन विज्ञान के प्रयोगों द्वारा तनावों को कम कर अपनी क्षमताओं को बढ़ाकर मानसिक स्वास्थ्य में सम्वर्द्धन किया जा सकता है। जीवन विज्ञान के द्वारा सैनिकों में एकाकीपन, अन्तर्द्वन्द्व व तनाव को मिटाया जा सकता है।

3. जीवन विज्ञान औद्योगिक क्षेत्र में कार्यरत अधिकारियों व कर्मचारियों के समूहों में तनाव प्रबन्धन की विधियों द्वारा तनाव को दूर करने, सन्तुलित व्यक्तित्व विकास, निर्णय कौशल, चिन्ता निवारण, उच्च लक्ष्यों की प्राप्ति आदि में भी सहायक है। यह प्रेक्षा प्रबन्ध द्वारा प्रबन्धन में ऊर्जा, जागरूकता, कार्य क्षमता का विकास, विधायक चिन्तन, उच्च भावना, राष्ट्र भावना, निर्णय क्षमता, मधुरता व नेतृत्व क्षमता के विकास का कार्य करता है।

4. कारागृह में बन्द कैदियों में अमानवीय व विकृत व्यवहार के परिष्कार, व्यसन मुक्ति, शान्ति व अहिंसक व्यवहार की प्रेरणा जीवन विज्ञान के द्वारा दी जा सकती है। इससे अपराधों की कमी होगी। जीवन विज्ञान के प्रयोग आसन, प्राणायाम, ध्यान, कायोत्सर्ग को कैदियों द्वारा मनोयोगपूर्वक करते हुये देखा गया हैं। कैदियों पर योग मुद्राओं के प्रयोग से उनके मानसिक स्वभाव में सहज ही परिवर्तन आता है।

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रशासनिक सेवाओं की रीढ़ क्या है?
2. व्यसन किसको प्रभावित करता है?
3. प्रेक्षा प्रबंधन के प्रयोगों से क्या होता है?
4. स्वास्थ्य का पहला लक्षण क्या है?
5. जीवन विज्ञान का क्या कार्य है?
6. जीवन विज्ञान व्यक्ति को .... सिखाता है।
7. पुलिस को .... वातावरण में रहना पड़ता है।
8. प्रेक्षा प्रबंधन भावात्मक विकास द्वारा .... पर बल देता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9. जीवन विज्ञान के प्रशिक्षक जेलों में जाकर .... प्रेरणा देते हैं .... करवाते हैं।

10. विज्ञान को .... जीवन से जोड़ना है।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. जीवन विज्ञान की क्या विशेषताएं हैं?
2. जीवन विज्ञान की मौलिक मान्यताएं क्या हैं?

निबंधात्मक प्रश्न

1. उद्योग में जीवन विज्ञान की उपयोगिता को समझाएं।

4.11 संदर्भ ग्रंथ

1. मुनि धर्मेश, जीवन विज्ञान की रूपरेखा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–2 जीवन विज्ञान का सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक आधार

इकाई–5 अनेकान्त व्यवहार : सिद्धान्त और प्रयोग

इकाई की संरचना

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 अनेकान्त का महत्त्व

5.2.1 अनेकान्त : जीवन की प्रशस्त पद्धति

5.2.2 अनेकान्त : जीवन की साधना

5.3 सापेक्षता का सिद्धान्त

5.3.1 सापेक्षता

5.4 अनेकान्त का स्वरूप

5.4.1 वस्तु सत्य एवं अनेकान्त

5.4.2 सत्य की खोज और अनेकान्त

5.4.3 व्यवस्था का आधार विरोधी युगल

5.4.4 सह–अस्तित्व : प्रकृति का नियम

5.5 अनेकान्त और अहिंसा

5.5.1 भेद

5.5.2 हिंसा और एकांगी दृष्टिकोण

5.6 अनेकान्त के आधार सूत्र

5.6.1 सप्रतिपक्ष

5.6.2 सह अस्तित्व

5.6.3 स्वतंत्रता

5.6.4 सापेक्षता

5.6.5 समन्वय

5.7 अनेकान्त के व्यावहारिक प्रयोग

5.7.1 परिवार और अनेकान्त

5.7.2 समाज और अनेकान्त

5.7.3 अर्थनीति और अनेकान्त

5.7.4 राजनीति और अनेकान्त

5.7.5 विश्वशान्ति और अनेकान्त

5.7.6 लोकतंत्र और अनेकान्त

5.8 सारांश

5.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.10 सहायक ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.0 प्रस्तावना

एक ही दृष्टिकोण से सोचने और उसी को समग्र सत्य मान लेने से जीवन में अनेक समस्याएं पैदा हो जाती हैं। आक्रमक प्रवृत्ति, आतंकवाद, सामाजिक विघटन, पारिवारिक टूटन, धर्म के नाम पर संघर्ष, शिक्षा के साथ अहंकार और तनाव आदि अनेक समस्याएं व्यक्ति की आग्रहपूर्ण दृष्टि के ही परिणाम हैं। इनका समाधान खोजने के लिए अनेक प्रयास किये जाते रहे हैं। संगोष्ठियों का समायोजन किया जाता है। सैनिक गतिविधियों को तीव्र किया जाता है और भी नई–नई योजनाएं बनाई जाती हैं किंतु उनकी सफलता की संभावना कम ही होती है। इन समस्याओं का स्थाई समाधान तभी संभव है जब आग्रहयुक्त दृष्टि को त्याग कर सहअस्तित्व, सहिष्णुता, सामंजस्य आदि जीवन मूल्यों को अपने व्यावहारिक जीवन में स्थान दिया जाये। उक्त सभी मूल्य अनेकान्त के ही परिणाम हैं। मनुष्य अनेकान्त को समझे और उसके अनुसार जीवन यापन करे तो जीवन की अनेक सच्चाइयों से परिचित हो सकता है और युगीन समस्याओं का समाधान पा सकता है। राजनीति का क्षेत्र हो या समाजनीति का, धर्मनीति का हो या शिक्षानीति का सफलता के लिए अनेकान्त दर्शन को जीवन व्यवहार में अपनाना आवश्यक है।

5.1 उद्देश्य

जीवन विज्ञान की प्रविधियों में पहली प्रविधि अनेकान्त है। इस पाठ में आप अनेकान्त को विस्तार से समझेंगे। साथ ही उससे संबन्धित अनेक पक्षों के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर पायेंगे, जैसे कि–

- अनेकान्त व्यवहार क्या है?
- सापेक्षता का सिद्धान्त क्या है?
- सत्य की खोज में अनेकान्त किस प्रकार सहयोग करता है?
- अनेकान्त और अहिंसा में क्या सम्बन्ध है?
- अनेकान्त के आधार सूत्र क्या हैं?
- अनेकान्त के व्यावहारिक प्रयोग किन क्षेत्रों में किये जा सकते हैं?

5.2. अनेकान्त का महत्व

विश्व में कुछ भी अलग नहीं है। सब कुछ जुड़ा हुआ है। सर्वथा भेद या सर्वथा अभेद। सर्वथा विरोध या सर्वथा अविरोध, सर्वथा अपना या सर्वथा पराया। यह केवल विपर्यय है, यथार्थ नहीं। यदि हमें यथार्थ के साथ रहना है तो हमें जीवन और व्यवहार में अनेकान्त दृष्टि को विकसित करना होगा।

5.2.1. अनेकान्त : जीवन की प्रशस्त पद्धति

अनेकान्त जीवन की एक प्रशस्त पद्धति है। इस पद्धति का प्रारंभ होता है दृष्टि परिवर्तन के द्वारा। दृष्टि जब सम्यक् नहीं होती तब हमारी धारणाएं सूक्ष्म और स्थूल दोनों जगत् के द्वारा छनकर नहीं आती। जब तक हमारा ज्ञान व्यक्त और अव्यक्त दोनों पर्यायों के समन्वय में नहीं होता तब तक हम सही निर्णय नहीं ले पाते और आपदाओं से बचना तब तक सम्भव नहीं होता। वस्तु का स्वभाव बहुत बड़ा सत्य है। उसकी हम अवहेलना न करें, उसको समझने का प्रयत्न करें। कोई भी व्यक्ति वस्तु सत्यों को उलटकर इन नियमों के विपरीत चलकर सुखी नहीं बन सकता। सुखी और शांत जीवन वही जी सकता है जो वस्तु सत्यों को मानकर चलता है, न कि अपनी धारणाओं के अनुसार सत्य को ढालने का प्रयास करता है। प्रायः होता यह है कि मनुष्य वैसा बनना नहीं चाहता किंतु आदर्श को अपने अनुकूल ढालने का प्रयत्न करता है, उसे नीचे उतार लेना चाहता है और भगवान् को अपने समान धरातल पर ले आना चाहता है। यही विकृति है, यही मिथ्या दृष्टिकोण है। यदि यह दृष्टिकोण बदल जाये और सत्य को अखण्ड और शाश्वत नियम मानकर चलें, फिर दुःखी होने का कोई रास्ता नहीं बनता।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने लिखा है कि दृष्टिकोण के निर्माण का सबसे पहला उपाय है अनेकान्त का जीवन में प्रयोग करें। भगवान् महावीर ने अनेकान्त का दृष्टिकोण दिया जिसमें भावात्मक संतुलन, मस्तिष्कीय संतुलन और शारीरिक क्रियाओं का संतुलन बना रहे। जहां एकान्तवाद है, वहां आग्रह है। आग्रह में स्थिति उलझती है। आग्रह बहुत तनाव पैदा करता है। तनाव हृदय रोग की उत्पत्ति में भी बहुत जिम्मेदार बनता है। समग्र स्वास्थ्य के संदर्भ में शरीर, इन्द्रिय, श्वास, प्राण, भाव और भाषा इन सात तत्त्वों पर विचार करना आवश्यक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.2.2. अनेकान्त : जीवन की साधना

आचार्य महाप्रज्ञ ने अनेकान्त दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए लिखा कि अनेकान्त कोरा दर्शन नहीं है, यह साधना है। एकांगी आग्रह राग और द्वेष से प्रेरित होता है। राग–द्वेष क्षीण करने का प्रयत्न किये बिना एकांगी आग्रह या पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण से मुक्ति नहीं पाई जा सकती। जैसे–जैसे राग–द्वेष क्षीण होता है वैसे–वैसे अनेकान्तदृष्टि विकसित होती है, जैसे–जैसे अनेकान्तदृष्टि विकसित होती है वैसे–वैसे राग–द्वेष क्षीण होता है। जैनदर्शन ने राग–द्वेष को क्षीण करने के लिए अनेकान्तदृष्टि प्रस्तुत की। अनेकान्त का चक्षु वस्तु जगत् के स्थूल और सूक्ष्म दोनों पर्यायों या परिवर्तनों को जानने की सर्वोत्तम दार्शनिक प्रणाली है। इस प्रणाली के द्वारा अनाग्रह का विकास किया जा सकता है, विवादों को सुलझाया जा सकता है और संघर्ष की चिंगाँरियों को शांत किया जा सकता है।

आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने लिखा है महत्त्वपूर्ण बात है न हीन भावना, न अहं की भावना, न अपना उत्कर्ष और न दूसरों का अपकर्ष, न एकान्तिक आग्रह और न मिथ्या पकड़, एक समन्वित अनेकान्त की प्रणाली। यह व्यक्तित्व निर्माण का सबसे सुन्दर सिद्धान्त है।

जिस व्यक्ति ने अनेकान्त को हृदयंगम किया है, उसके व्यक्तित्व का निर्माण अपने आप हो गया। उसे ज्यादा चिंता करने की जरूरत नहीं है। व्यक्तित्व का विखंडन एकान्तवादी दृष्टिकोण के द्वारा होता है। जिसका दृष्टिकोण एकान्तवादी बन जाता है, उनका व्यक्तित्व अपने आप विघटित हो जाता है।

अनेकान्त ने विश्व के नियमों की व्याख्या में संतुलन का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। आचार–विचार के क्षेत्र में भी अनेकान्त की अनुपम देन है। संयम और समता भी उसी की देन हैं यदि अनेकान्त की दृष्टि न हो तो संयम और समता की कोई जरूरत नहीं है। अनेकान्त कोरा तत्त्व दर्शन नहीं वह हमारा समग्र जीवन दर्शन है।

अनेकान्तवाद परमार्थ तथा व्यवहार दोनों का आश्रय स्थान है। यथार्थ में वस्तु के सत्य में विभिन्नता लक्षित होती है। लोक में स्थिति, स्थान, समय तथा भावों की विलक्षणता के कारण एक ही वस्तु, व्यक्ति या स्थान की प्रतीति अलग–अलग समयों में भिन्न–भिन्न रूप से अनुभव में आती है परन्तु स्वसंवेदन जन्य अतिलौकिक आनंद की अनुभूति सबमें समान रूप से अनुस्यूत होती है। इस प्रकार यह अनेकान्तवाद परमार्थ तथा लोक व्यवहार दोनों का समान रूप से साधक है। पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक सभी क्षेत्रों में इस सिद्धान्त के अपनाने से अनेक विषमताएं समाप्त हो सकती हैं।

5.3. सापेक्षता का सिद्धान्त

20वीं शदी के पूर्वार्द्ध में अल्बर्ट आइन्सटीन द्वारा सापेक्षता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। विगत शताब्दी में यह सिद्धान्त भौतिकी के एक आधार स्तम्भ के रूप में परिणत हो गया है। बिना इस सिद्धान्त के आधुनिक भौतिकी को समझना लगभग उसी तरह असंभव है जैसे बिना अणु–परमाणु की अवधारणाओं के भौतिकी समझ लेना अनगिनत भौतिकीय संवृत्तियां हैं जिनकी व्याख्या सापेक्षता सिद्धान्त के बिना असंभव है। इस प्रकार आज का युग सापेक्षता से बहुत परिचित हो चुका है।

5.3.1. सापेक्षता

5.3.1.1. क्या हर कथन का अर्थ होता है?

स्पष्ट है, नहीं। यहां तक कि यदि पूर्णतया सार्थक शब्द ले और उन्हें पूर्णतया व्याकरण–संगत रूप में मिलाया जाये, तब भी संभव है कि कोई अर्थ न निकले। उदाहरणार्थ, कथन ''यह पानी त्रिभुजाकार है'' का कोई अर्थ लगाना कठिन है पर कठिनाई यह है कि सभी निरर्थकताएं इतनी स्पष्ट नहीं होती और अक्सर प्रथम दृष्टि में पूरी तरह अर्थवान प्रतीत होने वाला कथन भी विश्लेषण के बाद निरर्थक सिद्ध हो जाता है।

5.3.2. दायां और बायां

घर रास्ते के किस ओर है– दायें या बायें? इस प्रश्न का उत्तर तुरंत नहीं दिया जा सकता। नीचे दिये गए चित्र के अनुसार पुल से जंगल की ओर चलने पर घर बायीं ओर होगा और जंगल से पुल की ओर चलने पर घर दायीं ओर होगा। स्पष्ट है कि रास्ते के दायें या बायें पार्श्व की बात करते समय हम दिशा को नजरअंदाज नहीं करें, ऐसा करना गलत होगा क्योंकि इसी के सापेक्ष हम दायां और बायां निर्दिष्ट करते हैं।

नदी के दायें तट की बात करना इसीलिये मानी रखता है क्येंकि नदी की दिशा पानी की धारा ही निर्धारित करती है। इसी तरह से यह कहना भी कि मोटर–गाड़ियां बायें चलती हैं, सिर्फ इसलिए बेमानी नहीं होगा कि स्वयं मोटर–गाड़ियों की गति सड़क की एक दिशा स्थापित कर देती है। फिर भी यह कथन उन देशों के लिए निरर्थक है, जहां वाहन सड़क पर बायें नहीं दायें चलाये जाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस प्रकार, ''दायें'' और ''बायें'' की अवधारणाएं सापेक्षिक हैं– वे तभी अर्थ रखती हैं जब दिशा निर्दिष्ट की जाती है जिसके सापेक्ष उनकी परिभाषा दी जाती है।

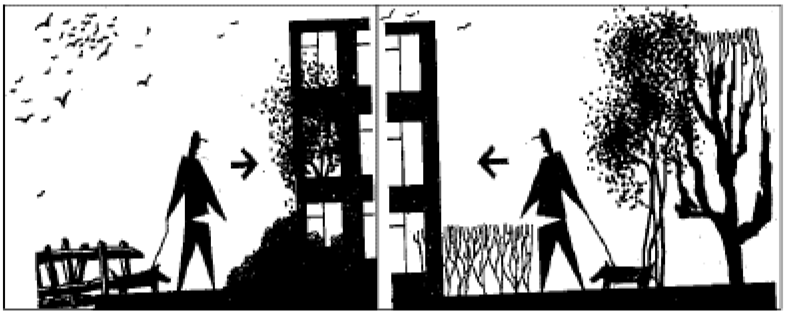

बायां दायां

5.3.3. अभी दिन है या रात?

उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि प्रश्न किस जगह पूछा गया है। जब भारत में दिन होता है, अमेरिका में रात होती है। इसमें कोई अंतर्विरोध नहीं है। बात इतनी ही है कि दिन और रात सापेक्षिक अवधारणाएं हैं और इस प्रश्न का उत्तर तब तक नहीं दिया जा सकता जब तक आप यह न बतायेंगे कि पृथ्वी के किस बिन्दु की बात चल रही है।

5.3.4. कौन बड़ा है?

बायें चित्र में मोटर–गाड़ी स्पष्टतः सड़क के चिन्ह से बड़ा है और दायें चित्र में सड़क का चिन्ह मोटर–गाड़ी से बड़ा है। यहां भी कोई अंतर्विरोध नहीं है। बात यह है कि ये चित्र दो भिन्न बिदुओं पर स्थित प्रेक्षकों द्वारा लिये गये हैं– एक मोटर–गाड़ी के निकट खड़ा था, दूसरा सड़क के चिन्ह के पास। चित्र के लिए वस्तुओं के वास्तविक आकार महत्त्वपूर्ण नहीं होते, उसके लिये वह कोण महत्त्वपूर्ण होता है, जिस पर हम वस्तुओं को देखते हैं। जाहिर है कि वस्तुओं की ये कोणिक मापें सापेक्षिक होती हैं।

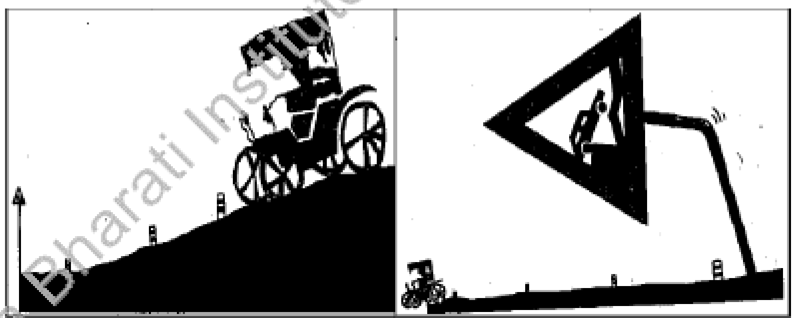

बायां दायां

5.4. अनेकान्त का स्वरूप

वस्तु अनन्तधर्मात्मक कही जाती है। वस्तु स्वभाव से ही ऐसी है कि उसका अनेक दृष्टियों या अपेक्षाओं से विचार किया जा सकता है और अनेक दृष्टिकोण से विचार करने पर ही वस्तु के यथार्थ ज्ञान या पूर्ण ज्ञान की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है। इस दृष्टि का नाम ही अनेकान्तवाद है।

'अनेकान्तवाद' यह शब्द 'अनेक' और 'अन्त' इन दो पदों के मेल से बना है। 'अनेक' का अर्थ है– एक से भिन्न या अधिक और 'अन्त' का अर्थ है– धर्म स्वभाव। जैन दर्शन की दृष्टि से भी प्रत्येक वस्तु में विभिन्न अपेक्षाओं से अनन्त धर्म रहते हैं, अतः एक वस्तु में अनेक धर्मों के रहने का नाम अनेकान्त नहीं है किंतु प्रत्येक धर्म अपने प्रतिपक्षी धर्म के साथ वस्तु में रहता है। ऐसा प्रतिपादन करना ही अनेकान्त का प्रयोजन है अर्थात् सत्–असत् का अविनाभावी अर्थात् एक के होने से दूसरे का होना भी अनिवार्य हो जाता है और एक अनेक का अविनाभावी है, यह सिद्ध करना ही अनेकान्त का मुख्य लक्ष्य है। अपेक्षाओं को ध्यान में रखे बिना जीवन की सामान्य बातों को भी समझना कठिन हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.4.1. वस्तु सत्य एवं अनेकान्त

प्रवचन के प्रसंग में भगवान् महावीर ने आचारांग सूत्र (2/177) में कहा– 'के यं पुरिसे कं च णए'। प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व वक्ता को यह ध्यान रखना चाहिए कि पूछने वाला पुरुष कौन है। किस नय, दृष्टिकोण या अभिप्राय से जानना चाहता है अथवा उसकी दार्शनिक या वैचारिक मान्यता क्या है? आदि।

यदि कोई जिज्ञासु व्यक्ति पूछता है कि यह वस्तु क्या है? इस प्रश्न के सटीक उत्तर के लिए वक्ता को कुछ विशेष बातों की जानकारी होनी आवश्यक है; जैसे–

1. यथार्थ में वस्तु क्या है? सत्य क्या है?
2. श्रोता या जिज्ञासु किस दृष्टि से जानना चाहता है? उसका अभिप्राय क्या है? उसी दृष्टिकोण या अभिप्राय से उसे बताना।
3. बताते समय उसकी अपेक्षा के अनुरूप सही शब्द व स्पष्ट भाषा का प्रयोग करना।

वस्तु–सत्य क्या है? इस बारे में वक्ता की दृष्टि स्पष्ट होनी चाहिए। वक्ता की दृष्टि स्पष्ट न हो तो श्रोता की जिज्ञासा का समाधान वह नहीं कर सकता। भगवान् महावीर की दृष्टि में, उनके दर्शन में वस्तु को अनन्त गुण धर्मात्मक कहा गया है। अर्थात् वस्तु अनन्त गुणधर्म वाली है। वह भी सप्रतिपक्ष है। प्रतिपक्ष गुणधर्म एक साथ एक ही वस्तु में रहते हैं। यह दृष्टि, स्वीकृति, मान्यता या सिद्धान्त ही अनेकान्त कहलाता है।

श्रोता या जिज्ञासु किस दृष्टि से जानना चाहता है। उसी दृष्टि या अभिप्राय से वस्तु के गुण धर्म का प्रतिपादन किया जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वस्तु में अन्य गुणधर्म नहीं हैं या अन्य गुणों का निरसन किया जाए या अपलाप किया जाए। यदि ऐसा किया जाता है तो वक्ता सत्य से दूर हो जाता है। अतः वक्ता प्रस्तुत अभिप्राय या दृष्टि से अन्य दृष्टि या अभिप्राय का खण्डन न करते हुए प्रतिपादन करता है। यह वक्ता का जो अभिप्राय है– उसे नय कहा गया है।

वक्ता को विवक्षित अभिप्राय से वस्तु का प्रतिपादन करने के लिए सही शब्द व भाषा का प्रयोग करना होगा क्योंकि एक ही शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। अतः प्रस्तुत अभिप्राय को स्पष्ट करने वाली शब्दों के प्रयोग की पद्धति को 'निक्षेप' कहा गया है।

अनेकान्त सिद्धान्त की विकास यात्रा में चार निष्पत्तियां दिखाई देती हैं–

1 दृष्टि की समग्रता या सम्यक्त्व पर विशेष बल।
2. कथन के अभिप्राय को स्थिर व स्पष्ट करना अन्य अभिप्राय का निरसन या अपलाप न करना।
3. भाषा व शब्दों का अभ्रांत, स्पष्ट व सम्यक् उपयोग करना।
4. उपरोक्त तीन के आधार पर सम्पूर्ण अध्यापन शैली या अभिव्यक्ति कौशल का विकास।

प्रथम को अनेकान्त सिद्धान्त, द्वितीय को नय, तृतीय को निक्षेप तथा चतुर्थ को अनुयोग कहा गया है।

5.4.2. सत्य की खोज और अनेकान्त

जैनदर्शन अनेकान्तवादी दर्शन है। अनेकान्त का न केवल दार्शनिक दृष्टि से महत्त्व है अपितु जीवन–व्यवहार के हर क्षेत्र में उसकी उपादेयता है। प्रत्येक दर्शन की अपनी विशेष दृष्टि होती है। जैनदर्शन वस्तु की अनेकान्तात्मकता को स्वीकार करता है। अनेकान्त उसका प्राण–तत्त्व है। इस प्रकार सत्य की व्याख्या किसी एक दृष्टि से नहीं हो सकती। कोई भी शास्त्र सम्पूर्ण सत्य की व्याख्या नहीं कर पाता और कोई भी व्यक्ति शास्त्रीय आधार पर सम्पूर्ण सत्य को नहीं जान सकता। विश्व में इतना विरोध और असामंजस्य है कि अनेकान्त के बिना उसमें अविरोध और सामंजस्य समझा नहीं जा सकता।

प्रत्येक वस्तु के अनन्त धर्म हैं। उसको जानने के लिए अनन्त दृष्टियां हैं। प्रत्येक दृष्टि सत्यांश है। सब धर्मों का वर्गीकृत रूप अखण्ड वस्तु और सत्यांशों का वर्गीकरण अखण्ड सत्य होता है।

अखण्ड वस्तु जानी जा सकती है किंतु एक शब्द के द्वारा एक समय में कही नहीं जा सकती। मनुष्य जो कुछ कहता है, उसमें वस्तु के किसी एक पहलू का निरूपण होता है। वस्तु के जितने पहलू हैं, उतने ही सत्य हैं, जितने सत्य हैं, उतने ही द्रष्टा के विचार हैं। जितने विचार हैं, उतनी ही अपेक्षाएं हैं, उतने ही कहने के तरीके हैं। जितने तरीके हैं, उतने ही द्रष्टा के विचार हैं। जितने तरीके हैं, उतने ही मतवाद हैं। मतवाद एक केन्द्र बिन्दु है। उसके चारों ओर विवाद–संवाद, संघर्ष, समन्वय, हिंसा और अहिंसा की परिक्रमा लगती है। एक से अनेक के सम्बन्ध जुड़ते हैं, सत्य या असत्य के प्रश्न खड़े होने लगते हैं, बस, यहीं से विचारों का स्रोत दो धाराओं में बह चलता है– अनेकान्त या सत् अहिंसा, एकान्तदृष्टि असत् हिंसा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कोई बात या कोई शब्द सही है या गलत इसकी परख करने के लिए एक दृष्टि की अनेक धाराएं चाहिए। वक्ता ने जो शब्द कहा तब वह किस अवस्था में था? उसके पास की परिस्थितियां कैसी थी? उसका शब्द किस शब्द शक्ति से युक्त था? उसका उद्देश्य क्या था? वह किस साध्य के लिए चला था? उसकी अन्य निरूपण समर्थक स्थितियां कैसी थीं? आदि अनेक छोटे–बड़े वाक्य मिलकर एक–एक शब्द को सत्य की तराजू में तोलते हैं। भगवान् महावीर ने कहा– 'प्रत्येक धर्म को अपेक्षा से ग्रहण करो। सत्य सापेक्ष होता है। एक सत्यांश को साथ ले कर छिपे अनेक सत्यांशों को ठुकराकर कोई उसे पकड़ना चाहे तो वह सत्यांश भी उसके सामने असत्यांश बनकर आता है।'

5.4.3. व्यवस्था का आधार विरोधी युगल

अनेकान्तवाद के अनुसार प्रत्येक वस्तु या द्रव्य में चार विरोधी युगलों का निर्देश किया जाता है–

1. शाश्वत और परिवर्तन,
2. सत् और असत्,
3. सामान्य और विशेष,
4. वाच्य और अवाच्य।

इन चार विरोधी युगलों का निर्देश केवल एक संकेत है। द्रव्य में इस प्रकार के अनन्त विरोधी युगल होते हैं। उन्हीं के आधार पर अनेकान्त का सिद्धान्त प्रतिष्ठित हुआ है।

हमारी सम्पूर्ण व्यवस्था का आधार है विरोधी युगल। पक्ष और प्रतिपक्ष दोनों आवश्यक हैं। प्रत्येक पदार्थ अपने विरोधी पदार्थ से जुड़ा हुआ है। वैज्ञानिकों ने प्रतिकण को खोजने के सूक्ष्म उपकरणों का प्रयोग किया। ऐसा सूक्ष्म यंत्र बनाया गया जो एक सैकेण्ड के पन्द्रहवें अरब हिस्से में होने वाले परिवर्तन को पकड़ ले तब उन्हें प्रतिकण का पता चला। आज यह सिद्धान्त प्रतिष्ठापित हो चुका है कि प्रतिकण के बिना कण का अस्तित्व नहीं हो सकता। दोनों का होना अनिवार्य है। अनेकान्त का मूल आधार है– विरोधी के अस्तित्व की स्वीकृति, प्रतिपक्ष की स्वीकृति। इस स्वीकृति से ही अनेकान्त का विकास होता है। अनेकान्त कहता है– सत्य को एक दृष्टि से मत देखो। सत्य को अस्तित्व की दृष्टि से देखते हो तो साथ–साथ उसे नास्तित्व की दृष्टि से भी देखो। स्वीकृति के साथ अस्वीकृति दोनों साथ–साथ चलनी चाहिए। एक से काम नहीं चलता। हमारे जीवन का पूरा व्यवहार, समाज का सारा व्यवहार इन विरोधी तत्त्वों से बना है।

5.4.4. सह–अस्तित्व : प्रकृति का नियम

जीवन की विभिन्न प्रणालियों में सह–अस्तित्व जरूरी है। सह–अस्तित्व की भावना प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यक है। हमारे शरीर में खरबों कोशिकाएं हैं। प्रति सैकेण्ड पांच करोड़ कोशिकाएं नष्ट होती हैं और पांच करोड़ कोशिकाएं उत्पन्न होती हैं। यह सह–अस्तित्व बना रहता है। जन्मना और मरना, पैदा होना और नष्ट होना। कोशिकाएं नष्ट न हों तो शरीर मुर्दा बन जाता है, कोशिकाएं पैदा न हों तो शरीर टूट जाता है। दोनों चालू रहते हैं तब शरीर टिकता है।

अनेकान्त का अर्थ है– अभिन्नता को स्वीकार करना और भिन्नता में सह–अस्तित्व की संभावना को खोजना। सह–अस्तित्व का नियम भी स्वाभाविक है। द्वन्द्वात्मक जीवन का होना, विरोधी युगलों का एक साथ होना, विरोधी धर्मों का एक साथ अवस्थान होना तथा सह–अस्तित्व होना यह भी प्राकृतिक नियम है। इस नियम की व्याख्या सबसे पहले अनेकान्त ने की है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने लिखा है– भारतीय दर्शन तथा विश्व के सभी दर्शनों में सह–अस्तित्व की व्याख्या का ऐतिहासिक श्रेय यदि किसी को दिया जा सकता है तो वह अनेकान्त को ही दिया जा सकता है। जब व्यक्ति सह–अस्तित्व को समझ लेता है तब जीवन और सत्य को व्याख्यायित करना सरल हो जाता है तथा जीवन और सत्य को एक भाषा दी जा सकती है। विरोधी को मिटाने की भावना समाप्त हो जाती है।

अहिंसा का विचार अनेक भूमिकाओं पर विकसित हुआ। कायिक, वाचिक और मानसिक अहिंसा के बारे में अनेक धर्मों में विभिन्न धारायें मिलती हैं। स्थूल रूप में सूक्ष्मता के बीज न मिलते हों, वैसी बात नहीं किंतु बौद्धिक अहिंसा के क्षेत्र में भगवान् महावीर से जो अनेकान्त दृष्टि मिली, यही खास कारण है कि जैन धर्म के साथ अहिंसा का अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित हो गया।

भगवान् महावीर ने देखा कि हिंसा की जड़ विचारों के विरोधाभास में है। वैचारिक असमन्वय से मानसिक उत्तेजना बढ़ती है और फिर वाचिक एवं कायिक हिंसा के रूप में अभिव्यक्त होती है। शरीर जड़ है, वाणी भी जड़ है। जड़ में हिंसा और अहिंसा के भाव नहीं होते। इनकी उद्भव भूमि मानसिक चेतना है। उसकी भूमिकाएं अनन्त हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.5. अनेकान्त और अहिंसा

5.5.1. भेद

हमारा जगत् द्वन्द्वात्मक अथवा भेदाभेदात्मक है। अभेद छिपा रहता है और भेद सामने है। मनुष्य में अनेक प्रकार के भेद हैं–

1. मान्यता अथवा अवधारणा का भेद। 2. विचार का भेद। 3. रुचि का भेद।
4. स्वभाव का भेद। 5. संवेग का भेद।

5.5.1.1. मान्यता–भेद

मान्यता–भेद के आधार पर अनेक सम्प्रदाय बने हैं, उनके अनुयायियों की संख्या का विस्तार हुआ है। सांप्रदायिक भेद होना वैचारिक स्वतंत्रता का लक्षण है। मनुष्य यांत्रिक नहीं है। वह चिंतनशील प्राणी है, अपने ढंग से सोचता है, सिद्धान्त का निर्धारण करता है और स्वीकार करता है।

मनुष्य चिंतनशील होने के साथ–साथ संवेगयुक्त भी है। यदि वह केवल चिंतनशील होता तो भेद भेद ही रहता। वह विरोध का रूप लेकर साम्प्रदायिक विद्वेष, कलह और झगड़े की स्थिति का निर्माण नहीं करता। सांप्रदायिक उत्तेजना का मूल कारण सिद्धांत भेद नहीं है, उसका कारण है संवेगजनित आग्रह।

5.5.1.2. विचार–भेद

प्रत्येक मनुष्य का अस्तित्व स्वतंत्र है इसलिए चिंतन का भेद होना स्वाभाविक है। यदि वह यंत्र होता अथवा यंत्र द्वारा संचालित होता तो एक ही प्रकार से सोचता। वह वैसा नहीं है। सबकी अपनी–अपनी चेतना है, इसलिए अपना–अपना चिंतन हो, यह अस्वाभाविक नहीं है। यह विचार का भेद संवेग से प्रभावित होकर संघर्ष की स्थिति का निर्माण करता है।

5.5.1.3. रुचि–भेद

इन्द्रिय संवेदना सब मनुष्यों की एक जैसी नहीं होती। एक ही वस्तु किसी मनुष्य के लिए सुख के संवेदन का हेतु बनती है और किसी के लिए दुःख के संवेदन का। संवेदन की भिन्नता में कोई संघर्ष नहीं है। इसमें संघर्ष की चिंगारी डालने वाला संवेग ही है।

5.5.1.4. स्वभाव–भेद

जितने मनुष्य उतने स्वभाव, नाना प्रकार की आदतें। स्वभाव–भेद के लिए उत्तरदायी है मनुष्य के आंतरिक व्यक्तित्व की संरचना। स्वभाव–भेद के कारण जो टकराव होता है, उसके लिए उत्तरदायी है संवेग।

5.5.1.5. संवेग–भेद

मनुष्य–मनुष्य में होने वाले भेद का प्रमुख कारण है संवेग, किंतु सब मनुष्यों में संवेग समान नहीं होता। उसका तारतम्य ही भेद का सृजन करता है। संवेग की तरतमता के मुख्य प्रकार तीन और अवान्तर प्रकार नौ हैं–

1. मृदु (अल्प मात्रा वाला संवेग) 2. मध्य (मध्य मात्रा वाला संवेग) 3. तीव्र (अधिक मात्रा वाला संवेग)

मृदु के तीन प्रकार हैं– मृदु, मध्य मृदु और अधिमात्र मृदु।
मध्य के तीन प्रकार हैं– मध्य, मध्य–मध्य और अधिमात्र मध्य।
तीव्र के तीन प्रकार हैं– तीव्र, मध्यतीव्र और अधिमात्र तीव्र।

मृदु संवेग वाला व्यक्ति शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व में विश्वास करता है। वह तोड़–फोड़, कलह आदि प्रवृत्तियों में भाग नहीं लेता और आत्महत्या तथा परहत्या की कल्पना भी नहीं करता।

मध्य मृदु संवेग वाला व्यक्ति कलह, उपद्रव, तोड़–फोड़ आदि में प्रवृत्त नहीं होता है।

अधिमात्र मृदु साम्प्रदायिक उत्तेजना नहीं फैलाता है।

मध्य संवेग वाला व्यक्ति कलह, उपद्रव, तोड़–फोड़ आदि में प्रवृत्त होता है।

मध्य–मध्य संवेग वाला व्यक्ति वर्ण और जाति के आधार पर घृणा करता है, छुआछूत में विश्वास करता है, ऊंच–नीच की भेदरेखा को विस्तार देता है।

अधिमात्र मध्य संवेग वाला व्यक्ति साम्प्रदायिक उत्तेजना फैलाता है, अभिनिवेशवश सांप्रदायिक संघर्ष की स्थिति का निर्माण करता है।

तीव्र संवेग वाला व्यक्ति आत्महत्या परहत्या जैसे हिंसात्मक कार्यों में प्रवृत्त होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मध्यतीव्र संवेग वाला व्यक्ति जातीयता और सांप्रदायिकता के आधार पर हिंसा भड़का देता है।

अधिमात्र तीव्र संवेग वाला व्यक्ति जनता को युद्धोन्माद की ओर ले जाता है।

5.5.2. हिंसा और एकांगी दृष्टिकोण

संवेग जितना तीव्र होता है, उतना ही प्रबल हो जाता है मिथ्या अभिनिवेश, एकांगी आग्रह। मिथ्या अभिनिवेश और एकांगी आग्रह हिंसा के मुख्य बिन्दु हैं। हम हिंसा को केवल शस्त्रीकरण और युद्ध तक सीमित करना नहीं चाहते। पारिवारिक कलह, मानवीय सम्बन्धों में कटुता, जातीय संघर्ष, सांप्रदायिक संघर्ष, क्षेत्रीय संघर्ष, सहानवस्थान– या तुम या हम की मनोवृत्ति। ये सब हिंसा के प्रारंभिक रूप हैं और ये ही मानव–जाति को शस्त्रीकरण और युद्ध की दिशा में ले जाते हैं। निःशस्त्रीकरण और युद्धवर्जना के सिद्धांत बहुत अच्छे हैं किंतु सबसे पहले हिंसा के प्रारंभ बिंदुओं पर ध्यान केन्द्रित करना जरूरी है। मिथ्या अभिनिवेश समाज को क्रूरता की रेखा तक ले जाता है, हिंसा के द्वार खुल जाते हैं। अभिनिवेश को कम करने के लिए अनेकांत एक महत्त्वपूर्ण विकल्प है।

5.6. अनेकांत के आधार–सूत्र

अनेकांत अभिनिवेश और आग्रह से मुक्त होने का प्रयोग है। उसके मूलभूत सिद्धांत पांच हैं– 1. सप्रतिपक्ष, 2. सह–अस्तित्व, 3. स्वतंत्रता, 4. सापेक्षता एवं 5. समन्वय।

5.6.1. सप्रतिपक्ष

5.6.1.1. दार्शनिक पक्ष– इस विश्व में उसी का अस्तित्व है जिसका प्रतिपक्ष है। अस्तित्व सप्रतिपक्ष है– यत् सत् तत् सप्रतिपक्षं। कोई भी अस्तित्व ऐसा नहीं। जिसका प्रतिपक्ष न हो।

5.6.1.2. व्यावहारिक पक्ष– प्रतिपक्ष अपने अस्तित्व का अनिवार्य अंग है, पूरक है, इसलिए उसे शत्रु मत मानो। उसके साथ मित्र के जैसा व्यवहार करो किंतु राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रणालियों में परस्पर आदर का व्यवहार नहीं है, शत्रु जैसा व्यवहार है। लोकसभा और विधानसभा में विपक्ष का महत्त्वपूर्ण स्थान है, फिर भी उसके प्रति आदर का दृष्टिकोण कम रहता है, विरोधी जैसा व्यवहार अधिक होता है।

5.6.1.3. साधना पक्ष– प्रतिपक्ष का सिद्धांत सार्वभौम नियम है। फिर भी मनुष्य अपनी संवेगात्मक प्रकृति और विरोधी हितों के कारण प्रतिपक्ष को अपना शत्रु मान लेता है। इस संवेगात्मक दृष्टिकोण को बदलने के लिए सामंजस्य की साधना बहुत सहयोगी बनती है। प्रतिपक्ष का आदर करना अस्तित्व की सुरक्षा का महत्त्वपूर्ण पहलू है। विरोधात्मक दृष्टिकोण को बदलने के लिए सामंजस्य की अनुप्रेक्षा की जाती है।

5.6.2. सह–अस्तित्व

5.6.2.1. दार्शनिक पक्ष– प्रत्येक वस्तु में अनन्त विरोधी युगल हैं। वे सब एक साथ रहते हैं।

5.6.2.2. व्यवहार पक्ष– दो विरोधी विचार वाले एक साथ रह सकते हैं। तुम भी रहो और मैं भी रहूं, यही सूत्र हमारे जगत् का सौन्दर्य है। इसलिए विरोधी को समाप्त करने की बात मत सोचो। सीमा का निर्धारण करो। तुम अपनी सीमा में रहो, वह अपनी सीमा में रहे। सीमा का अतिक्रमण मत करो।

5.6.2.3. साधना पक्ष– विरोध हमारी मानसिक कल्पना है। सह–अस्तित्व में वही बाधक है। यदि हम भय और घृणा के संवेग का परिष्कार करें तो सह–अस्तित्व की बाधा समाप्त हो सकती है। संवेग–परिष्कार के लिए सह–अस्तित्व की अनुप्रेक्षा उपयोगी है।

5.6.3. स्वतंत्रता

5.6.3.1. दार्शनिक पक्ष– प्रत्येक पदार्थ का अस्तित्व स्वतंत्र है। कोई किसी के अस्तित्व में हस्तक्षेप नहीं करता, इसलिए सब पदार्थ अपने–अपने मौलिक गुणों के कारण अपनी विशिष्टता बनाए हुए हैं।

5.6.3.2. व्यवहार पक्ष– मनुष्य की स्वतंत्रता अथवा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मूल्यांकन किए बिना समाज स्वस्थ नहीं रहता। सामाजिकता के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी वैयक्तिक स्वतंत्रता का मूल्य कम नहीं आंकना चाहिए।

5.6.3.3. साधना पक्ष– एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधक न बने। ऐसा वही व्यक्ति कर सकता है जो अपने विचार को सर्वोपरि सत्य नहीं मानता। अपने विचार को ही सब कुछ मानने वाला दूसरे की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप किए बिना नहीं रहता। इस हस्तक्षेपी मनोवृत्ति को बदलने के लिए स्वतंत्रता की अनुप्रेक्षा बहुत मूल्यवान् है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.6.4 सापेक्षता

5.6.4.1. दार्शनिक पक्ष— हमारा अस्तित्व स्वतंत्र और निरपेक्ष है किंतु हमारा व्यक्तित्व सापेक्ष है। व्यक्तित्व की सीमा में स्वतंत्रता भी सापेक्ष है। इसलिए कोई भी व्यक्ति पूर्ण स्वतंत्र नहीं है और वह पूर्ण स्वतंत्र नहीं है इसलिए सापेक्ष है। विकासवाद का सूत्र है— जीवन का मूल आधार है संघर्ष। अनेकांत का सूत्र है— जीवन का मूल आधार है परस्परावलम्बन। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के सहारे पर टिका हुआ है।

5.6.4.2. व्यवहार पक्ष— एकांगी दृष्टिकोण वाले विचारक व्यक्ति और समाज को खंडित कर देते हैं। कोई विचारक समाज को ही सब कुछ मानता है तो कोई विचारक व्यक्ति को ही सब कुछ मानता है। अनेकांत का दृष्टिकोण सर्वांगीण है। उसके अनुसार व्यक्ति और समाज दोनों सापेक्ष हैं। यदि समाज ही सब कुछ है तो व्यक्तिगत स्वतंत्रता अर्थहीन हो जाती है और यदि व्यक्ति ही सब कुछ है तो सापेक्षता का कोई अर्थ नहीं होता। स्वतंत्रता की सीमा है सापेक्षता और सापेक्षता की प्रयोगभूमि है व्यक्ति एवं समाज के बीच होने वाला सम्बन्धन सूत्र।

मानवीय सम्बन्धों में जो कटुता दिखाई दे रही है, उसका हेतु निरपेक्ष दृष्टिकोण है। संकीर्ण राष्ट्रवाद और युद्ध भी निरपेक्ष दृष्टिकोण के परिणाम हैं। सापेक्षता के आधार पर सम्बन्ध विज्ञान को व्यापक आयाम दिया जा सकता है। मनुष्य, पदार्थ, विचार, वृत्ति और अपने शरीर के साथ सम्बन्ध का विवेक करना अहिंसा के विकास के लिए बहुत आवश्यक है। मनुष्यों के प्रति क्रूरतापूर्ण, पदार्थ के प्रति आसक्तिपूर्ण, विचारों के साथ आग्रहपूर्ण, वृत्तियों के साथ असंयत, शरीर के साथ मूर्च्छापूर्ण सम्बन्ध है तो हिंसा अवश्यंभावी है।

5.6.4.3. साधना पक्ष— एकांगी अथवा निरपेक्ष दृष्टिकोण को बदलने के लिए अभ्यास आवश्यक है। परिवर्तन केवल जानने मात्र से नहीं होता। उसके लिए दीर्घकालीन अभ्यास अपेक्षित है। सर्वांगीण और सापेक्ष दृष्टिकोण को विकसित करने के लिए सापेक्षता की अनुप्रेक्षा अपेक्षित है।

5.6.5. समन्वय

5.6.5.1. दार्शनिक पक्ष— कोई भी विचार समग्र सत्य नहीं होता। वह सत्यांश होता है। जैसे अपने विचार को सत्य मानते हो वैसे ही दूसरे के विचार में भी सत्य की खोज करो। अपने विचार को सत्य ही मानना और दूसरे के विचार को असत्य ही मानना एकांगी आग्रह है। यह एकांगी आग्रह मनुष्य को असत्य की ओर ले जाता है। सत्य की खोज का मार्ग है अनाग्रह। अनाग्रही मनुष्य दो भिन्न विचारों में समन्वय साध सकता है।

5.6.5.2. व्यवहार पक्ष— आग्रही मनोवृत्ति सांप्रदायिक उत्तेजना के लिए उत्तरदायी है। एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय द्वारा सम्मत सत्यांश को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। आचार्य विनोबा ने लिखा—'मैं कबूल करता हूं कि मुझ पर गीता का गहरा असर है। उस गीता को छोड़कर महावीर से बढ़कर किसी का असर चित्त पर नहीं है। उसका कारण यह है कि महावीर ने जो आज्ञा दी है, वह विनोबा को पूर्ण मान्य है। आज्ञा यह है कि सत्यग्राही बनो। आज जहां—जहां जो उठा सो सत्याग्रही होता है। विनोबा को भी व्यक्तिगत सत्याग्रही के नाते गांधीजी ने पेश किया था लेकिन विनोबा जानता था वह कौन है? वह सत्याग्रही नहीं, सत्यग्राही है। हर मानव के पास सत्य का अंश होता है, इसलिए मानव—जन्म सार्थक होता है। तो सब धर्मों में, पंथों में, सब मानवों में सत्य का जो अंश है, उसको ग्रहण करना चाहिए। हमको सत्यग्राही बनना चाहिए, यह जो शिक्षा है महावीर की, विनोबा पर गीता के बाद उसी का असर है।'

5.6.5.3 साधना पक्ष— रैप्टेलियम मस्तिष्क से प्रभावित व्यक्ति सांप्रदायिक और जातीय घृणा फैलाने में तत्पर रहता है। साधना के द्वारा उसके प्रभाव को कम किया जा सकता है। समन्वय की चेतना के विकास के लिए समन्वय की अनुप्रेक्षा बहुत उपयोगी है।

5.7. अनेकान्त के व्यावहारिक प्रयोग

अनेकान्त का सिद्धान्त भगवान् महावीर की देन है। अनेकान्त के सिद्धान्त का अनेक आचार्यों ने दार्शनिक जगत् में तत्त्वमीमांसा के क्षेत्र में प्रयोग किया है किंतु अनेकान्त जैसे दार्शनिक विषय को व्यावहारिक क्षेत्र में प्रस्तुत करना आचार्य महाप्रज्ञ की मौलिक देन है।

अनेकान्त विचार पद्धति के व्यावहारिक क्षेत्र में तीन प्रमुख योगदान हो सकते हैं—

1. विवाद् पराङ्मुखता या वैचारिक संघर्ष का निराकरण।
2. वैचारिक सहिष्णुता या वैचारिक अनाग्रह।
3. वैचारिक समन्वय और सत्य के सम्बन्ध में एक व्यापक दृष्टि का निर्माण।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उपर्युक्त विश्लेषण अनेकान्त के व्यावहारिक स्वरूप की प्रतीति देता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार अनेकान्त का दर्शन केवल तत्त्ववाद का दर्शन नहीं है। वह तत्त्ववाद और आचारशास्त्र दोनों का समन्वित दर्शन है। उसका स्पर्श किए बिना तत्त्व और आचार दोनों ही सम्यक् नहीं हो सकते। वही तत्त्व सम्यक् हैं जो अनेकान्त के आलोक में आचरित हैं। अनेकान्त के व्यवहारिक प्रयोग को हम कुछ बिंदुओं के आधार पर स्पष्ट जान सकते हैं–

5.7.1. परिवार और अनेकान्त

संगठन की पहली इकाई, सम्बन्धों का प्रथम आधार और सह–अस्तित्व, सहयोग की आधारशिला का नाम है– परिवार। परिवार में व्यक्ति अनेक सम्बन्धों से बंधा हुआ होता है। उन आपसी सम्बन्धों में कभी–कभी खींचतान भी हो सकती है। जीवन और वातावरण अशान्त भी बन सकता है क्योंकि सबके विचार, रुचि, सोचने का तरीका भिन्न–भिन्न होता है।

परिवार की सफलता भावनात्मक स्थिति पर निर्भर है। भावनात्मकता का विकास हुए बिना परिवार का जीवन अच्छा नहीं चल सकता। भावनात्मक विकास के लिए आचार्य महाप्रज्ञ ने सूत्र दिया सहिष्णुता का। उनका कहना है कि एक दूसरे को सहन करने की कला परिवार को स्वर्ग बना देती है। असहिष्णुता मानसिक अशांति का द्वार खोल देती है। इसी बात की पुष्टि गुरुदेवश्री तुलसी के इस कथन से होती है–

मेरी हरकत सहे सहज वह, मैं भी उसकी क्यों न सहूं।
साथी रूप निभाना है तो सहिष्णुता के साथ रहूं।

पारिवारिक संगठन को बनाये रखने के लिए पिता पुत्र को सहन करे, सास बहू को तथा पति पत्नी को सहन करे। सहन करने वाला ही सफलता के द्वार तक पहुंच सकता है। 1999 में आचार्य महाप्रज्ञ ने सूत्र दिया– सहन करो सफल बनो। प्रश्न है किसको सहन करें? आचार्य महाप्रज्ञ का अभिमत है–

1. परिस्थितियों को सहन करें। 2. दूसरे व्यक्तियों को सहन करें। 3. अपने से भिन्न विचारों को सहन करें।

इन सबको सहन करने वाला व्यक्ति ही विकास कर सकता है। अनेकान्त का सिंहनाद है– जो सहता है वह रहता है जो व्यक्ति विपरीत विचारों, स्थितियों व व्यवस्थाओं को सहन करता है, उसकी मानसिक शांति को कोई भंग नहीं कर सकता।

जहां सोचने का नजरिया साफ नहीं होता वहां छोटी सी चिंगारी विकराल दावानल का रूप धारण कर लेती है। जहां अनाग्रही दृष्टिकोण नहीं होता वहां छोटी–छोटी बातें महाभारत बनकर पारिवारिक जीवन में कटुता का ऐसा विष घोल देती हैं कि फिर जीना मौत से भी बदतर प्रतीत होने लगता है। अपने ही विचारों का आग्रह एकान्तवादी दृष्टिकोण को जन्म देता है। अनेकान्त का आशय है दूसरों के भी विचारों को समझने का प्रयत्न करो। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी दृष्टि और अपना चिंतन होता है। यह कभी संभव नहीं कि सब दृष्टियां और सब चिंतन समान हो जाएं। विचारों की भिन्नता में जो सत्यांश है, उसका सम्मान करके ही व्यक्ति शांतिपूर्ण वातावरण का निर्माण कर सकता है।

अनेकान्त का सिद्धान्त है गौण मुख्यवाद। देश, काल के परिवर्तन के अनुसार गौण मुख्य हो जाता है और मुख्य गौण। इस सच्चाई को समझकर व्यवहार चलाने वाला परिवार को एक सूत्र में बांधे रख सकता है अन्यथा परिवार के विघटन की प्रक्रिया शुरु हो जाती है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ का कहना है कि अनेकान्त का प्रयोग व्यवहार जगत् में प्रारंभ होने से ही परिवार में छोटी–छोटी बातों की जो समस्याएं हैं, उनका सही समाधान हो सकता है।

5.7.2. समाज और अनेकान्त

'नया मानव और नया विश्व' पुस्तक में आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने लिखा है समूह में व्यक्ति छिपा हुआ है और व्यक्ति की पृष्ठभूमि में समूह छिपा हुआ है। दोनों जुड़े हुए हैं। समाजशास्त्रियों ने कहा व्यक्ति सामाजिक प्राणी है। यह एक सच्चाई है। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। दूसरी सच्चाई यह है कि व्यक्ति व्यक्ति मिलकर समाज बनता है। हम कहीं–कहीं व्यक्ति को प्रधान और समाज को गौण कर देते हैं। यह अनेकान्त की प्रणाली है। जहां हम व्यक्ति की चर्चा करें, वहां समाज को अस्वीकार नहीं किया जा सकता और जहां समाज की चर्चा करें वहां व्यक्ति का लोप नहीं किया जा सकता। केवल हमारा दृष्टिकोण प्रधान या गौण का होता है। जहां एक प्रधान होता है, दूसरा गौण हो जाता है। इस अनेकान्त की भाषा और प्रणाली को समझकर ही हम व्यक्ति और समाज की सम्यक् मीमांसा कर सकते हैं।

समाज और व्यक्ति में समष्टि और व्यष्टि का सम्बन्ध है। समाज समष्टि एवं व्यक्ति व्यष्टि है। समाज का एक घटक है व्यक्ति। जैसा व्यक्ति होगा, वैसा ही समाज होगा। समाज शास्त्रियों का मन्तव्य है कि व्यक्ति का वास्तविक अस्तित्व समाज में है, इसलिए व्यक्ति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

को सामाजिक प्राणी कहा जाता है। समाज व्यक्ति की सुरक्षा एवं उसके व्यक्तित्व निर्माण का साधन बनता है। अतः व्यक्ति अकेला नहीं रहता। वह सामूहिक जीवन यापन करता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ का कहना है कि सामुदायिकता की व्याख्या पारस्परिकता के द्वारा ही की जा सकती है। दो या अनेक की जो पारस्परिकता है वही समुदाय है। समन्वयवादी नीति के अनुसार व्यक्ति और समाज की स्थिति सापेक्ष है। समाजवादी दार्शनिकों का सिद्धान्त यह है कि व्यक्ति और समाज को एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। वर्तमान विकास के इतिहास में व्यक्ति ने समाज के द्वारा ही प्रगति की है, अतः समाज ही मुख्य है। एक विचारधारा ने व्यक्ति को सर्वोपरि स्थान प्रदान किया है तो दूसरी ने समाज को।

अनेकान्त के व्याख्याता आचार्यश्री महाप्रज्ञ 'जैनदर्शन : मनन मीमांसा' पुस्तक में लिखते हैं–कहीं व्यक्ति गौण बनता है, समाज मुख्य और कहीं समाज गौण बनता है और व्यक्ति मुख्य। अनेकान्तवाद व्यक्ति एवं समाज के सम्बन्ध की सापेक्ष व्याख्या करता है। व्यक्ति में वैयक्तिकता और सामाजिकता दोनों के मूल तत्त्व सन्निहित हैं। अतः व्यक्ति और समाज एक भी है और भिन्न भी है।

सामाजिक सम्बन्धों की भूमिका में एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है– सापेक्ष चिंतन। समन्वय का दृष्टिकोण ही सहअस्तित्व पर बल देता है और सापेक्षता सह–अस्तित्व को संभव बनाती है। निरपेक्ष दृष्टिकोण से सामाजिकता नहीं हो सकती क्योंकि निरपेक्ष दृष्टि कहती है– पड़ोसी मरे या जीए, भूखा रहे या खाए, मुझे क्या? जबकि सामाजिक दृष्टि कहती है– 'परस्परोपग्रहोजीवानाम्'।

प्राचीनकाल की वर्ण व्यवस्था ने समाज में अनेक वर्गों को जन्म दिया। अनेकान्त के अनुसार वर्ण व्यवस्था गलत नहीं है। वर्ण व्यवस्था तो समाज के श्रम का विभाजन है। श्रम विभाजन की दृष्टि से यह व्यवस्था उचित है किंतु जन्म के साथ जाति व्यवस्था को जोड़ना उचित नहीं है। अनेकान्त के अनुसार जन्म से नहीं कर्म से जाति व्यवस्था हो। मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से महान् बनता है। उत्तराध्ययन का उद्घोष है– कम्मुणा बम्हणो जाइ अर्थात् जाति के आधार पर मनुष्य छोटा–बड़ा नहीं हो सकता। 'एगा मणुस्स जाइ'' अर्थात् मनुष्य जाति एक है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ''नया व्यक्ति नया समाज'' पुस्तक में लिखते हैं– घृणा और अहं इन दो तत्त्वों ने समाज में विषमताएं पैदा की हैं। कहीं जाति को लेकर असमानता है, कहीं रंग को लेकर असमानता है। जातीय संकीर्णता आज सामाजिक संघर्षों का एक प्रमुख कारण बनी है। हम कुछ जातीय पूर्वाग्रहों का पालन करते हैं क्योंकि इनसे हमारी सुरक्षा, प्रतिष्ठा तथा मान्यता जैसी कतिपय आवश्यकताओं की संतुष्टि होती है। यद्यपि कानूनी रूप से विभिन्न जातियों के बीच ऊंच–नीच की भावना के कारण विभिन्न जातियों में वैर भाव रहता है तथा जातीय संघर्ष चलते रहते हैं। जब तक व्यक्ति में अहं एवं घृणा का भाव है, तब तक इस समस्या का समाधान नहीं हो सकता।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ कहते हैं– जाति, रंग और वर्ग के भेदों को लेकर सिद्धान्त भिन्न–भिन्न हैं। उन भिन्न–भिन्न सिद्धान्तों के आधार पर जो संघर्ष चल रहे हैं उनका आधार है विषम मनोवृत्ति। उसके बीज की भूमि एकान्तवाद है। अनेकान्त के आधार पर व्यक्ति एवं समाज की सापेक्ष मूल्यवत्ता की स्वीकृति ही इन समस्याओं से मुक्ति प्रदान कर सकती है। हम–एक दूसरे की सहायता लिए बिना आगे नहीं बढ़ सकते, विकास नहीं कर सकते। प्रत्येक मनुष्य समान है, विकास करने में सबका समान अधिकार है। यह सूत्र समझ में आ जाए तो समानता का विकास शीघ्र ही संभव हो सकता है।

5.7.3. अर्थनीति और अनेकान्त

हिंसा बढ़ रही है। यह स्वर चारों और सुनाई दे रहा है किंतु हिंसा क्यों बढ़ रही है? कारणों की खोज पर चिंतन करने से अनेक कारण सामने आए। उन सब में मुख्य है– आर्थिक प्रलोभन। आर्थिक प्रलोभन को बढ़ाने का सबसे बड़ा कारण है– अर्थ और अर्थनीति के प्रति मिथ्या अवधारणा। अपने पास एक रूपया है तो 14 रुपये का कर्ज लो। उस कर्ज को चुकाने के लिए अधिक श्रम होगा, अधिक व्यवसाय होगा, अधिक वेदना पैदा होगी, कर्ज आज आर्थिक विक स का आधार बन गया है। आर्थिक विकास का एकांगी दृष्टिकोण शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शांति, भावनात्मक संतुलन और पर्यावरण विशुद्धि से निरपेक्ष बन गया। आर्थिक विकास का एकान्तवाद मानवीय मस्तिष्क को यांत्रिक बनाये हुए है। हर मनुष्य के मन में आर्थिक साम्राज्य स्थापित करने की लालसा प्रबल हो गई है।

आज की अर्थनीति का मूल है– विशाल पैमाने पर उद्योग लगाओ, उत्पादन करो जिससे कोई भी व्यक्ति भूखा न रहे। सभी को रोटी, कपड़ा, मकान मिल सके। प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। वर्तमान में इन अर्थनीतियों के प्रति बहुत आकर्षण है। राष्ट्र अपने संसाधनों को इतना बढ़ाये जिससे सब सम्पन्न बन जाएं और संसाधनों का प्रचुरतम उपयोग किया जा सके। आर्थिक प्रचुरता के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आकर्षण के कारण तनाव बढ़ा है, मानसिक अशांति बढ़ी है और विश्वशांति के लिए भी खतरा बढ़ा है। हत्या, आत्महत्या, तलाक आदि समस्याएं दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञ का अभिमत है कि इन समस्याओं के समाधान हेतु अर्थनीति के कुछ पेरामीटर सामने रखने होंगे। जैसे–

1. वह विश्वशांति के लिए खतरा न बने, 2. वह हिंसा को प्रोत्साहन न दे, 3. अपराध में कमी लाए, 4. इच्छा परिमाण, 5. न गरीबी और न विलासिता का जीवन, 6. समाज व्यवस्था संतुलित बने, 7. आवश्यकता की संतुष्टि के लिए धन का अर्जन किंतु दूसरों को हानि पहुंचाकर अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि न हो, इसका जागरूक प्रयत्न करे, 8. विसर्जन की क्षमता का विकास करे, 9. स्वार्थ की सीमा निर्धारित करे एवं 10. अहिंसा और साधन शुद्धि में विश्वास करे।

अनेकान्त की चार प्रमुख दृष्टियां हैं– द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। किसी भी वस्तु का मूल्यांकन द्रव्य सापेक्ष, काल सापेक्ष एवं भाव सापेक्ष होना चाहिए। निरपेक्ष मूल्यांकन अनेक उलझनों को पैदा करता है। आर्थिक विकास के लिए शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शांति, भावनात्मक संतुलन और पर्यावरण विशुद्धि गौण हो जाए तो ऐसी अर्थनीति मात्र विडम्बना ही होगी। आर्थिक दौड़ ने उपभोग की जो आकांक्षा पैदा की है उससे गरीबी की समस्या अधिक बढ़ी है। आर्थिक सम्पदा कुछेक राष्ट्रों और कुछेक व्यक्तियों तक सिमट रही है। यह सब विकास के प्रति होने वाले एकांगी दृष्टिकोण का परिणाम है। यदि अर्थनीति के केन्द्र में मनुष्य हो तो एक संतुलित अर्थनीति की कल्पना की जा सकती है। एकांगी या निरपेक्ष दृष्टिकोण द्वारा कभी संतुलित अर्थनीति की कल्पना नहीं की जा सकती।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ का कहना है कि पदार्थ का अत्यधिक उपभोग, विलासिता का जीवन जीना, इच्छा पर अनियंत्रण आदि ने आर्थिक क्षेत्र में विषमता, शोषण आदि समस्याओं को पैदा किया है जिसके परिणामस्वरूप एक के पास आलीशान मकान, दूसरे के पास रहने के लिए झोपड़ी भी नहीं, एक के पास अरबों–खरबों की संपत्ति, दूसरे व्यक्ति के पास खाने के लिए अन्न भी नहीं। ये सारी विषमताएं एकान्तवाद के कारण ही पनपती हैं। अनेकान्त का सूत्र है– सह–अस्तित्व अर्थात् सबके साथ समानता का व्यवहार, समान वितरण, संविभाग, समान अधिकार प्राप्त हो। इसका फलित होगा कोई भी व्यक्ति भूखा नहीं रहेगा, सबको आवश्यकतानुसार सामग्री प्राप्त होगी, साथ ही साथ पूंजीवाद साम्यवाद की जो समस्याएं हैं वे समाप्त होंगी तथा आर्थिक क्षेत्र में जो घोटाले चल रहे हैं इनका सही समाधान होगा।

5.7.4. राजनीति और अनेकान्त

वर्तमान में राजनैतिक जीवन भी वैचारिक संकीर्णता से परिपूर्ण है। पूंजीवाद–समाजवाद आदि अनेक विचारधाराएं तथा राजतंत्र–प्रजातंत्र आदि अनेक शासन प्रणालियां वर्तमान में प्रचलित हैं। ये विरोधी विचार एवं व्यवस्थाएं एक–दूसरे को समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं। इतना ही नहीं प्रत्येक खेमे के राष्ट्र अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने हेतु भी तत्पर हैं। आज का युग राजनीतिक संघर्ष का युग है। आज अमेरिका, रूस और चीन अपनी वैचारिक प्रभुसत्ता के प्रभाव को बढ़ाने के लिए ही प्रतिस्पर्धा में लगे हुए हैं। यहां तक कि वे सम्पूर्ण मानव जाति को समाप्त करने की दौड़ में हैं।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार जीवन की विभिन्न प्रणालियों में सह–अस्तित्व जरूरी है। वस्तु का अस्तित्व विरोधी धर्मों के बिना होता ही नहीं है। एक ही वस्तु में विरोधी युगलों का रहना प्राकृतिक नियम है। आज जो शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व की बात कही जा रही है, वह अनेकान्त का ही सिद्धान्त है। एक समाजवादी विचारधारा है, एक पूंजीवादी विचारधारा है। एक लोकतंत्र की प्रणाली है तो दूसरी एकतंत्र की प्रणाली है। दोनों संसार में चल रही हैं और परस्पर विरोधी भी हैं। यदि इस भाषा में सोचा जाए कि दोनों में से एक रहेगा तो युद्ध के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रहेगा किंतु आज एक ही संसद में अनेक विरोधी विचार वाले बैठते हैं। उनका सह–अस्तित्व है। यह अनेकान्त की अवधारणा है। आज के राजनैतिक जीवन मेंअनेकान्त के दो व्यावहारिक प्रयोग वैचारिक सहिष्णुता और समन्वय अत्यन्त आवश्यक हैं। विरोधी पक्ष के द्वारा की जाने वाली आलोचना के प्रति सहिष्णु होकर उसके द्वारा अपने दोषों को समझना जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता है। अनेकान्त दृष्टि कहती है–

1. सभी अपना दृष्टिकोण सम्यक् बनायें। 2. समस्या सुलझाने हेतु एक साथ बैठें। 3. एक दूसरे को समझने का प्रयास करें।

5.7.5. विश्वशांति और अनेकान्त

परिवार, जाति, समाज, राष्ट्र, विश्व इन सभी क्रमिक संगठनों का अर्थ है सापेक्षता। बिना सापेक्ष दृष्टिकोण के कोई भी संगठन अधिक दिनों तक नहीं चल सकता। एक राष्ट्र दूसरे पर प्रभुत्व जमाना चाहता है, परिणाम होगा संघर्ष, अशांति। वैयक्तिक, जातीय,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सामाजिक, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सापेक्षता के परिणाम स्वरूप समता, सामीप्य, व्यवस्था, स्नेह, मैत्री व शांति का जन्म होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में अनेक समस्याएं हैं, उनमें से एक है अस्त्र–शस्त्रों की। आज अस्त्र–शस्त्रों के भयावह खतरे के बावजूद शस्त्रीकरण की होड़ जारी है। पारस्परिक अविश्वास व शक्ति संतुलन का सिद्धान्त इस समस्या को और अधिक गहरा बनाये हुए है। शांति स्थापना के लिए, आर्थिक कल्याण व पुनर्निर्माण के लिए, समस्याओं के शांतिपूर्ण समाधान के लिए तथा आणुविक संकट व पर्यावरण प्रदूषण से बचने के लिए निःशस्त्रीकरण की अपेक्षा है। नि शस्त्रीकरण से ही विश्वशांति संभव है। आज के परमाणुविक युग में जब हिंसा समग्र हो गई है तो हमारे पास केवल दो ही विकल्प हैं– या तो हम विश्वशांति को अपना लें या फिर महाविनाश के लिए तैयार हो जाएं। हिंसा की समग्रता ने सह–अस्तित्व की धारणा को और अधिक पुष्ट किया है। युद्ध से तो यह मानव जाति ही समाप्त हो जाएगी। मनुष्य जाति को जीना है तो उसका एक मात्र मार्ग है सह–अस्तित्व और सापेक्षता।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ का अभिमत है कि राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जितनी भी समस्याएं हैं, इनका सही समाधान सहअस्तित्व एवं सापेक्षता से ही किया जा सकता है। वे कहते हैं कि निरपेक्ष दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में सदैव विषमता पैदा करते आए हैं। अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख के लिए निरपेक्ष दृष्टिकोण ने ही हिटलर को यहूदियों पर अत्याचार का अवसर दिया। बहुसंख्यकों के लिए अल्प संख्यकों तथा बड़ों के लिए छोटों का बलिदान भी निरपेक्ष दृष्टि का ही फल है। सापेक्ष नीति कहती है–किसी के लिए किसी का अनिष्ट नहीं किया जा सकता। आज विश्व स्वयं सहअस्तित्व के विचार की तरफ बढ़ रहा है, सापेक्षता की तरफ बढ़ रहा है क्योंकि परमाणविक युग में यही उसका प्राण है। विकसित राष्ट्र विकासशील राष्ट्रों से निरपेक्ष रहकर अपना अस्तित्व दीर्घकाल तक नहीं बनाए रख सकते। उनकी स्वयं की समृद्धि ही उन्हें लील जाएगी। इसलिए विकसित राष्ट्रों ने अविकसित एवं विकासशील राष्ट्रों की सापेक्षता को स्वीकार किया है तथा उनके विकास में सहयोग प्रदान की इच्छा से प्रयत्न करने लगे हैं।

5.7.6. लोकतंत्र और अनेकान्त

जगत् का बहुत बड़ा नियम है कि मुख्य एक होता है, दो नहीं। सत्य के लिए भी एक होना आवश्यक है। व्यवस्था दी गई कि वस्तु में अनन्त धर्म होते हैं किंतु उनमें एक धर्म मुख्य होगा और शेष सब धर्म अव्यक्त होंगे, गौण होंगे। लोकतंत्र का विकास इसी गौण–मुख्य व्यवस्था के आधार पर हुआ था। लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में विपक्षी दलों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। एक बार आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी ने लोकतंत्र में विपक्ष के स्थान पर प्रतिपक्ष शब्द का प्रयोग करने हेतु प्रेरित किया था। उन्होंने कहा था विपक्ष शब्द में तो इस बात को स्वीकृति प्राप्त होती है जो कुछ सत्ता पक्ष विचार प्रस्तुत कर रहा है उससे विपरीत दिशा में चलना है परन्तु प्रतिपक्ष में सत्ता पक्ष की अच्छी नीतियों के प्रति सहयोगात्मक रूख का भी परिचय मिलता है। प्रजातंत्र में जितना सत्ता पक्ष का महत्त्व है प्रतिपक्ष का भी उतना ही महत्त्व है। अनेकान्त पक्ष के साथ प्रतिपक्ष को भी स्वीकृति प्रदान करता है। अतः लोकतंत्र की सफलता में अनेकान्त का विशेष महत्त्व है।

तारतम्य मनुष्य की प्रकृति है। रूचि की भिन्नता है। सबके विचार समान नहीं हैं। आचार भी सबका एक जैसा नहीं है, अनेक भाषाएं, अनेक संप्रदाय, इस बहुविधि अनेकता को एकता के सूत्र में पिरोये रखने का कार्य करता है लोकतंत्र। लोकतंत्र का प्रमुख सिद्धान्त है– मौलिक अधिकारों की समानता। असमानता के आधार पर पृथक्करण की नीति का नहीं किंतु असमानता में समानता के सूत्र को खोजने का प्रयत्न है लोकतंत्र। समानता का सूत्र लोकतंत्र का प्राण तत्त्व है। पूर्व राष्ट्रपति राधाकृष्णन ने कहा था– आज का लोकतंत्र महावीर के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसका कारण है सापेक्षता, समानता, सहअस्तित्व और स्वतंत्रता। ये लोकतंत्र के भी सिद्धान्त हैं तथा अनेकान्त के भी। भगवान् महावीर ने जो अनेकान्त का दर्शन दिया वह आज लोकतंत्र में फलित हो रहा है।

अनेकता और एकता में सामंजस्य किये बिना लोकतंत्र की प्रतिमा प्रतिष्ठित नहीं हो सकती। इस सामंजस्य की प्रणाली का दार्शनिक आधार है अनेकान्त। उसके अनुसार कोई भी वस्तु सर्वथा सदृश नहीं है और कोई भी वस्तु सर्वथा विसदृश नहीं है। सदृशता के आधार पर एकता को पुष्ट कर सकते हैं। विसदृशता के आधार पर व्यक्ति की विशेषताओं का उपयोग कर सकते हैं। इसलिए असमानता और समानता में सामंजस्य स्थापित करने का दर्शन है अनेकान्त।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ का अभिमत है कि सबको विकास करने का समान अवसर है। इसी आधार पर लोकतंत्र में हर व्यक्ति को सर्वोच्च सत्ता पर आसीन होने का अधिकार है। असमानता और समानता इन दोनों सच्चाइयों को समझाकर ही लोकतंत्र की प्रणाली को स्वस्थ आधार दिया जा सकता है। लोकतंत्र के संदर्भ में अनेकान्त को तीन रूपों में व्यक्त कर सकते हैं–

1. वैचारिक संघर्ष का निराकरण। 2. वैचाकिर सहिष्णुता। 3. वैचारिक समन्वय।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.7.6.1. वैचारिक संघर्ष का निराकरण– लोकतंत्र में विरोधी पक्षों का होना स्वाभाविक है और उनकी वैचारिक भिन्नता होना भी स्वाभाविक है किंतु उनका निराकरण करना भी आवश्यक है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ उसके निराकरण में महावीर को उद्धृत करते हुए सापेक्षता का सूत्र देते हैं। सापेक्षता का अर्थ है– समागम अवसर। सापेक्षता लोकतंत्र की रीढ़ है। लोकतंत्र में किसी प्रकार का दुराग्रह नहीं चलता।

5.7.6.2. वैचारिक सहिष्णुता– अनेकान्त का दूसरा लोकतंत्रीय पक्ष है वैचारिक सहिष्णुता। लोकतंत्र में दूसरों के विचारों, मतों, अवधारणाओं, रीति–रिवाजों, भाषा साहित्य आदि के प्रति विशाल दृष्टिकोण रखना आवश्यक है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ का कहना है यदि हम दूसरे व्यक्ति, समाज, राष्ट्र के विचारों, मान्यताओं का आदर करते हैं, उनके प्रति सहिष्णुतापूर्ण व्यवहार करते हैं तो हम देश, समाज, राष्ट्र में शांति का वातावरण निर्मित कर सकते हैं।

5.7.6.3. वैचारिक समन्वय– राजनीतिक धरातल पर यदि वैचारिक समन्वय हुआ तो लोकतंत्र की सफलता निश्चित है। वैचारिक समन्वय एक व्यापक दृष्टि है। इसके द्वारा ही एकता की स्थापना संभव है। जहां समन्वय होगा वहां पक्षपात नहीं होगा। अनेकान्त का सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक और समन्वयवादी है। काका कालेलकर ने अनेकान्त को जैन दर्शन की बहुत बड़ी देन कहा है। उन्होंने कहा अनेकान्त के आधार पर हम सर्वधर्म समभाव का प्रचार कर सकते हैं, प्रेम सौहार्द की भावना को विकसित कर सकते हैं।

''अनेकान्त है तीसरा नेत्र'' पुस्तक में आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने लिखा है– अनेकान्त का महत्त्वपूर्ण सूत्र है एक मुख्य होगा, शेष सारे गौण हो जायेंगे। लोकतंत्र का विकास इसी गौण–मुख्य व्यवस्था के आधार पर हुआ। एक व्यक्ति मुख्य बनता तो शेष गौण होकर पीछे चले जाते, यह सामंजस्य पूर्ण व्यवस्था है। जब एक कुर्सी पर सौ व्यक्ति बैठना चाहें तो लोकतंत्र की व्यवस्था टूट जाती है। जो मुख्य होगा वह दूसरों की अपेक्षा कर चलेगा, वह कभी निरपेक्ष होकर नही चलेगा। इसी आधार पर सापेक्षता का विकास हुआ है।

निष्कर्ष की भाषा में कहा जा सकता है कि अनेकान्त ने विश्व को संतुलन, सापेक्षता, सह–अस्तित्व आदि ऐसे सिद्धान्त दिये हैं जिनको अपना कर वर्तमान की समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। अनेकान्त दृष्टि वाला कभी निरपेक्ष या एकांगी दृष्टि से चिंतन नहीं करेगा। उसका चिंतन सापेक्ष होगा, अनाग्रही होगा। हम सब जानते हैं यह विश्व विरोधी युगलों का समवाय है। यदि संतुलन न हो तो सब कुछ अस्त–व्यस्त हो जाता है। संतुलन का सेतु है अनेकान्त। अनेकान्त से फलित होता है सम्यक् दृष्टिकोण।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने अनेकान्त के व्यवहारिक स्वरूप में– सहिष्णुता, समन्वय, समानता, सह–अस्तित्व आदि अनेक सूत्र प्रदान किये हैं। इन सूत्रों को व्यवहार जगत् में लागू कर पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्रों की समस्याओं को हल कर विश्व को शांति का संदेश दिया जा सकता है।

5.8 सारांश

जीवन को देखने की अनेक दृष्टियां हैं। सम्यक् दृष्टिकोण से देखने पर जीवन की अनेक समस्याओं का समाधान स्वतः ही हो जाता है। समाजनीति, राजनीति, धर्मनीति या शिक्षा नीति की सफलता के लिए अनेकान्त को जीवन में अपनाना आवश्यक है। अपना या पराया यह केवल विपर्यय हैं। अनेकान्त का प्रारंभ ही दृष्टि परिवर्तन के द्वारा होता है। एकान्तवाद में आग्रह है। जिससे स्थिति उलझती है। अनेकान्त को हृदयंगम करने वाले के व्यक्तित्व का निर्माण स्वतः ही हो जाता है।

भौतिकी विज्ञान को समझने के लिए सापेक्षता को समझना जरूरी है। हर कथन का शाब्दिक अर्थ नहीं निकलता। उसका अर्थ तभी निकाला जा सकता है जब उसकी दिशा तय हो।

प्रत्येक धर्म अपने प्रतिपक्षी धर्म के साथ वस्तु में रहता है। व्यक्ति को किसी प्रश्न का उत्तर देने से पहले यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रश्नकर्ता के दृष्टिकोण का अभिप्राय क्या है? अनेकान्त सिद्धान्त की विकास यात्रा में सम्यक् (सही दृष्टिकोण) कथन के अभिप्राय को स्थिर व स्पष्ट करना, भाषा शब्दों का अभ्रान्त तथा तीनों के आधार पर अध्यापन या अभिव्यक्ति कौशल का विकास शामिल है। मतवाद के केन्द्र में विवाद, संवाद, संघर्ष, समन्वय, हिंसा और अहिंसा की परिक्रमा लगती रहती है। सत्य हमेशा सापेक्ष रहता है। व्यवस्था का आधार ही विरोधी युगल है। सत्य को जानने के लिये उसे अस्तित्व की दृष्टि के साथ–साथ नास्तित्व की दृष्टि से भी देखना होगा।

अहिंसा के बारे में अनेक धर्मों में विभिन्न बातें मिलती है। वस्तुतः भेद के आधार पर ही अनेक सम्प्रदाय बनते हैं। जो आगे जाकर साम्प्रदायिक विद्वेष, कलह और झगड़े की स्थिति का निर्माण करते हैं। उत्तेजना का मूल कारण संवेग जनित आग्रह होता है। तुम या हम की मनोवृत्ति हिंसा का प्रारंभिक रूप है।

जिसका अस्तित्व है, उसका प्रतिपक्ष भी होगा पक्ष प्रतिपक्ष का सिद्धान्त सार्वभौम नियम है। यह अस्तित्व में विरोधी मानसिकता की कल्पना बाधक है। प्रत्येक पदार्थ का स्वतंत्र अस्तित्व है। दूसरा पदार्थ उसके अस्तित्व में हस्तक्षेप नहीं करता। व्यक्ति और समाज सापेक्ष है। दृष्टिकोण परिवर्तन के लिये दीर्घ कालीन अभ्यास जरूरी है। अपने विचार को सत्य व दूसरे के विचार को असत्य मानना एकांगी आग्रह है। सत्य की खोज का मार्ग है, अनाग्रह।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने अनेकान्त दर्शन को व्यवहारिक क्षेत्र में अपनाने पर जोर दिया। अनेकान्तदर्शन तत्ववाद और आचारशास्त्र दोनों का समन्वित दर्शन है। परिवार में सहिष्णुता (सहने की कला) परिवार को स्वर्ग बना देती है। सहन करो, सफल बनों। सभी मनुष्य समान है और सभी को अपना विकास करने का समान अधिकार है। हिंसा को बढ़ाने में आर्थिक प्रलोभन सबसे आगे है। अर्थ प्रचुरता के आकर्षण से तनाव बढ़ा, मानसिक अशान्ति बढ़ी, हत्या, आत्महत्या, तलाक आदि समस्याएं दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। आज का युग राजनैतिक संघर्ष का युग है। समस्त मानव जाति को समाप्त करने की दौड़ चल रही है। मनुष्य जाति को सुखी जीवन जीने के लिये सह–अस्तित्व व सापेक्षता को अपनाना पड़ेगा। समानता का सूत्र लोकतंत्र का प्राण तत्त्व है। असमानता और समानता में सामंजस्य स्थापित करने का दर्शन अनेकान्त है।

5.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठात्मक प्रश्न

1. एक ही दृष्टिकोण से सोचने और उसे ही समग्र सत्य मान लेने से क्या होता है?
2. अनेकान्त दृष्टि और राग–द्वेष का क्या संबंध है?
3. 20वीं सदी के पूर्वार्ध में 'सापेक्षता' का सिद्धान्त किसने दिया?
4. अनेकान्त शब्द किससे बना है?
5. प्रवचन के प्रसंग में भगवान् महावीर ने क्या कहा?
6. प्रत्येक वस्तु में चार विरोधी युगल कौन–कौन से होते हैं?
7. अनेकान्त का अर्थ क्या है?
8. साम्प्रदायिक भेद होना .... का लक्षण है?
9. अनेकान्त के मूलभूत सिद्धान्त कौन–से हैं?
10. मनुष्य में मुख्य रूप से कितने प्रकार के भेद हैं?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अनेकान्त सिद्धान्त की विकास यात्रा की चार निष्पत्तियां कौन–सी हैं?
2. सह–अस्तित्व के दार्शनिक, व्यवहारिक एवं साधना पक्ष को उजागर करें।

निबंधात्मक प्रश्न

1. अनेकान्त के व्यावहारिक प्रयोग पर एक सार–गर्भित लेख लिखें।

5.10 संदर्भ ग्रंथ

1. सापेक्षिकता सिद्धान्त की कहानी – डॉ. अश्वनीदत्ता।
2. लोकतंत्र : नया व्यक्ति नया समाज – आचार्य महाप्रज्ञ, सम्पादक– मुनि धनंजयकुमार, प्रकाशक– जैन विश्व भारती प्रकाशन।
3. अनेकान्त : संकलन समणी मंगलप्रज्ञा, निर्देशन– गणाधिपति तुलसी, आचार्य महाप्रज्ञ।
4. अनेकान्त का व्यवहार–दर्शन : आचार्य महाप्रज्ञ के चिंतन के संदर्भ में – डॉ. अशोककुमार जैन।
5. अनेकान्त के व्यावहारिक प्रयोक्ता – आचार्य महाप्रज्ञ, लेख– समणी हिमप्रज्ञा, पुस्तक– युग के आचार्यश्री महाप्रज्ञ का योगदान, प्रकाशक– जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं।
5. अनेकान्त है तीसरा नेत्र – आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ, चुरू।
6. जैन दर्शन और अनेकान्त – आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ, चुरू।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई– 6 अहिंसा : अहिंसक समाज संरचना : विधि एवं निष्पतियाँ

इकाई की संरचना

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 अहिंसा एक अवधारणा

6.2.1 जीव जगत का ज्ञान

6.2.2 अस्तित्व की स्वीकृति

6.2.3 हिंसा के साधन

6.3 अहिंसा का सूक्ष्म विश्लेषण

6.3.1 अहिंसा पालन – सूक्ष्म दृष्टि

6.3.2 लोक दृष्टि और धार्मिक दृष्टि

6.3.3 अहिंसा साध्य और साधन

6.3.4 अहिंसा का अल्पीकरण

6.4 स्वस्थ समाज की संरचना

6.4.1 शोषण विहीन समाज रचना

6.4.2 लोकतन्त्र और अहिंसा

6.5 अहिंसा प्रशिक्षण का आधार

6.5.1 हिंसा की जड़

6.5.2 हिंसा का निवारण

6.5.3 उपादान है व्यक्ति

6.5.4 उपादान और निमित्त

6.6 अहिंसा प्रशिक्षण के चार आयाम

6.6.1 हृदय परिवर्तन

6.6.2 दृष्टिकोण परिवर्तन

6.6.3 जीवन शैली परिवर्तन

6.6.4 व्यवस्था परिवर्तन

6.7 सारांश

6.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.9 संदर्भ ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.0 प्रस्तावना

जीवन विज्ञान की प्रविधियों में दूसरी प्रविधि अहिंसा है। यह आचार का मुख्य तत्त्व है। अहिंसा शान्तिमय जीवन और स्वस्थ समाज का आधारभूत मूल्य है। अत: मनुष्यों और पशुओं के साथ क्रूरता का व्यवहार नहीं करना चाहिए। "हमारा जगत प्राणियों का जगत है" यह ज्ञान सबसे जरुरी है। प्राणियों के प्रति हिंसा प्रमाद है। अहिंसक को अपने अस्तित्व एवं साथ ही दूसरे जीवों के अस्तित्व के प्रति भी जागरुक होना होता है। जागरुकता आत्मतुला के सिद्धान्त से विकसित होती है। केवल विरागात्मक प्रवृत्ति से समाज की आवश्यकताएं पूर्ण नहीं होती इसलिये रागात्मक और विरागात्मक दोनों के सन्तुलन से ही समाज की व्यवस्था को नया रुप दिया जा सकता है और हिंसा की बाढ़ को रोका जा सकता है।

6.1 उद्देश्य

- अहिंसा की अवधारणा क्या है?
- अहिंसा पालन की सूक्ष्म दृष्टि कैसे विकसित होती है?
- स्वस्थ समाज रचना का आधार क्या है?
- अहिंसा प्रशिक्षण के स्रोत कौन–कौन से है?
- अहिंसा प्रशिक्षण के आयाम कौन–कौन से है?

6.2. अहिंसा की अवधारणा

आचार का मुख्य तत्त्व है अहिंसा अर्थात् किसी को मत सताओ, किसी को उत्पीड़ित मत करो, किसी को मत मारो। अहिंसा से पहले ज्ञान की बात आती है। जब तक जीव और अजीव का सम्यक् ज्ञान नहीं होता तब तक अहिंसा की चर्चा ही नहीं की जा सकती। मनुष्य और पशु को मत मारो, यह एक स्थूल बात है। हमारा जगत् मनुष्य और पशु का जगत् ही नहीं है, यह प्राणियों का जगत् है। कितने प्राणी हैं? यह ज्ञान सबसे पहले जरूरी है।

6.2.1 जीव जगत का ज्ञान

सारा संसार जीवों से भरा पड़ा है। जब तक अहिंसा की बात करने वाला इस सच्चाई को न जान ले, सूक्ष्म जीवों के नियमों को न जान ले, तब तक वह अहिंसा की बात को पूरा कैसे जानेगा? इसीलिए कहा गया– जो जीव को नहीं जानता, अजीव को नहीं जानता वह संयम और अहिंसा को कैसे जानेगा?

जो जीवे वि न याणई, अजीवे वि न याणई।
जीवाजीवे अयाणंतो, कहं सो नाहिइ संजमं।।

अर्थात् पहले यह ज्ञान कर लेना आवश्यक है कि जीव क्या है? अजीव क्या है? जीव और अजीव क्या हैं? यह जानने के बाद अहिंसा की बात सहज समझ में आ सकती है।

पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस– जीवों के ये छह निकाय हैं। महावीर ने कहा– इनके अस्तित्व को अस्वीकार करने का अर्थ होगा अपने अस्तित्व का अस्वीकार। इनके अस्तित्व को मिटाकर कोई भी व्यक्ति अपने अस्तित्व को बचा नहीं सकता। इनके अस्तित्व के प्रति प्रमत्त रहकर कोई भी व्यक्ति अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक नहीं रह सकता।

हिंसा स्वयं प्रमाद है अथवा प्रमाद की निष्पत्ति है। अहिंसा अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक होना ही नही है अपितु दूसरे जीवों के अस्तित्व के प्रति भी जागरूक होना है। यह जागरूकता आत्मतुला के सिद्धान्त से विकसित होती है। इसीलिए महावीर ने कहा– आत्मतुला का अन्वेषण करो– 'एयंतुलमन्नेसिं'।

6.2.2 अस्तित्व की स्वीकृति

जीवों के छह निकाय हैं। इनमें सारे जीव समाहित हो जाते हैं। इनमें से पांच स्थावर काय के जीव सूक्ष्म हैं। हमें आंखों से ऐसे जीव दिखाई नहीं देते। चलने–फिरने वाले जीव त्रस हैं। वे स्थूल जीव हैं। उनका आंखों से पता चल जाता है। महावीर ने सूक्ष्म जीवों के अस्तित्व का विस्तृत विवेचन किया है। उन्होंने सूक्ष्म जीवों के अस्तित्व की स्वीकृति मार्मिक भाषा में प्रस्तुत की–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

से बेमि–णेव सयं लोगं अब्माईक्खेज्जा, णेव अत्ताणं अब्माइक्खेज्जा।
जे लोगं अब्माईक्खइ, से अत्ताणं अब्माईक्खइ। जे अत्ताणं अब्माइक्खइ से लोगं अब्माइक्खइ।।

अर्थात् ''मैं कहता हूं– व्यक्ति न लोक के अस्तित्व को अस्वीकार करे और न अपनी आत्मा के अस्तित्व को अस्वीकार करे। जो लोक के अस्तित्व को अस्वीकार करता है, वह अपनी आत्मा के अस्तित्व को अस्वीकार करता है। अपने अस्तित्व की स्वीकृति लोक की स्वीकृति है, अन्य जीवों के अस्तित्व की स्वीकृति है। लोक की अस्वीकृति सूक्ष्म जीवों के अस्तित्व की अस्वीकृति है, अपने अस्तित्व की अस्वीकृति है।''

6.2.3 हिंसा के साधन

हिंसा के साधन को समझे बिना अहिंसा का सिद्धान्त समग्रता से नहीं समझा जा सकता। हिंसा का मुख्य साधन है– परिग्रह। आधुनिक अर्थशास्त्रीय अवधारणा ने हिंसा को प्रोत्साहन दिया है। अर्थशास्त्र अभिमत है– अर्थ के प्रति राग उत्पन्न करो। महावीर कहते हैं– पदार्थ के प्रति विराग उत्पन्न करो। समाज के विकास का आधार है– रागात्मक प्रवृत्ति। इस सत्यांश को पूर्ण सत्य मान लेने के कारण ही हिंसा और आतंक को फैलने का अवसर मिला है। समाज का आधार विरागात्मक प्रवृत्ति भी है, इस सत्यांश को समाज के साथ जोड़ने पर एक नया दृष्टिकोण विकसित होता है। केवल रागात्मक प्रवृत्ति समाज को स्पर्धा और हिंसा की ओर ले जाती है। केवल विरागात्मक प्रवृत्ति से समाज की आवश्यकताएं पूर्ण नहीं होतीं। इसीलिए रागात्मक और विरागात्मक– दोनों के संतुलन से ही समाज की व्यवस्था को नया रूप दिया जा सकता है और हिंसा की बाढ़ को रोका जा सकता है।

6.3 अहिंसा का सूक्ष्म विश्लेषण

जैन दर्शन में अहिंसा का जितना सूक्ष्म चिन्तन एवं विश्लेषण मिलता है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। अन्य दर्शनों में अहिंसा संबंधी अवधारणा में शिथिलता है। अहिंसा संबंधी विचार प्रस्तुत करने वाले कुछ विद्वान् भी अहिंसा का अंकन परिस्थितियों के आधार पर करते हैं। महात्मा गांधी ने अहिंसा के अमोघ शस्त्र को अपनाया था और आजीवन इस व्रत का पालन भी किया था। इस महनीय शस्त्र को अपनाकर भारत की आजादी जैसे दु:साध्य लक्ष्य को प्राप्त किया था। उनकी इस उपलब्धि पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए वायसराय लार्ड माउण्टबेटन ने कहा था कि जो कार्य पचास हजार सिपाही नहीं कर सकते थे, वह कार्य गांधीजी ने अहिंसा के शस्त्र से कर दिखाया। सब अस्त्र–शस्त्र एक तरफ और गांधीजी का अहिंसा–अस्त्र एक तरफ।

जैन दर्शन में किसी भी परिस्थिति में अहिंसात्मक अवधारणा में बदलाव स्वीकार नहीं किया गया। यहां 108 प्रकार की अहिंसा का चित्रण मिलता है। मन, वचन और काय की तीन प्रकार की अहिंसा है जो कृत, कारित, अनुमोदित से नौ प्रकार की अहिंसा हुई। क्रोध, मान, माया, लोभ के शमन से 9x4=31 प्रकार की अहिंसा दृष्टिगोचर होती है और मृदु, मध्य और तीव्र की दृष्टि से 36x3=108 प्रकार की अहिंसा का सूक्ष्म विश्लेषण जैन दर्शन में मिलता है। अहिंसा मात्र किसी को घात करना ही नहीं अपितु न वाणी से न किसी को ठेस पहुंचाना और न ही मन में किसी प्रकार की दुर्भावना लाना है। एक सौ आठ प्रकार की अहिंसा को संक्षेप में इस प्रकार समझा जा सकता है:–

मन	वचन	काय	–	3 x 1	=	3
कृत	कारित	अनुमोदित	–	3 x 3	=	9
क्रोध शमन	मान शमन	माया शमन	लोभ शमन	9 x 4	=	36
मृदु	मध्य	तीव्र	–	36 x 4	=	144

6.3.1 अहिंसा पालन – सूक्ष्म दृष्टि

अहिंसा के पुराने और नए सभी आचार्यों ने यही बताया है कि कृत, कारित, अनुमोदित, मनसा, वाचा, कर्मणा रुप से प्राणि मात्र को कष्ट न पहुंचाना ही अहिंसा है। किसी भी आचार्य ने अपनी परिभाषा में सूक्ष्म जीवों की हिंसा की छूट नहीं दी है और न उनकी हिंसा को अहिंसा बताया है। इस निर्णय के अनन्तर ही जटिल समस्या यह रही है कि ऐसी अहिंसा को पालता हुआ मानव जीवित कैसे रह सके? इसके समाधान में विभिन्न विचारधाराएं चल पड़ीं। जैनाचार्यों ने इसका उत्तर यह दिया कि पूर्ण संयम किए बिना कोई भी मानव पूर्ण अहिंसक नहीं बन सकता। पूर्ण संयमी के सामने मुख्य प्रश्न अहिंसा है, जीवन–निर्वाह का प्रश्न उसके लिए गौण होता है। उसे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शरीर से मोह नहीं होता। शरीर उसे तब तक मान्य है, जब तक कि वह अहिंसा का साधन रहे, अन्यथा उसे शरीर त्याग करने में भी कोई संकोच नहीं होता। जैसा कि आचारांग में बताया है–

"इह संति–गया दविया, णावकखंति जीविऊ"अर्थात् संयमी पुरुष अन्य प्राणियों की हिंसा के द्वारा अपना जीवन चलाना नहीं जानते।" अपूर्ण संयमी हिंसा से बच नहीं सकता, अतः उसके लिए हिंसा के दो भेद किए गए हैं– 1. अर्थ हिंसा एवं 2. अनर्थ हिंसा। अर्थ हिंसा यानी जीवन–निर्वाह के लिए होने वाली अनिवार्य हिंसा। गृहस्थ इसको नहीं त्याग सके तो अनर्थ हिंसा को तो अवश्य त्यागे पर यह नहीं कि अपनी दुर्बलता से हिंसा करनी पड़े और उसे अहिंसा या धर्म समझे।

श्री किशोरीलाल मश्रूवाला ने अहिंसा के विशुद्ध और व्यवहार्य– ये दो भेद कर व्यवहार्य अहिंसा की परिभाषा करते हुए लिखा है– बुराई से रहित और भलाई के अंश से युक्त न्याय स्वार्थ–वृत्ति व्यावहार्य अहिंसा है। यह आदर्श या शुद्ध अहिंसा नहीं है।

6.3.2 लोक दृष्टि और धार्मिक दृष्टि

लौकिक दृष्टि की प्रधानता से जिस प्रकार जैन तार्किकों ने इन्द्रिय मानस ज्ञान जो कि वास्तव में परोक्ष है, को व्यवहारिक प्रत्यक्ष माना है, वैसे ही उस परिभाषा में लोकप्रियता की रक्षा करते हुए अर्थ हिंसा को व्यवहार्य अहिंसा का रूप दिया मालूम होता है क्योंकि लोकदृष्टि में सब हिंसा या सब स्वार्थ–दृष्टि बुरी नहीं मानी जाती। समाज जिसको अनैतिक मानता है, वह बुरी मानी जाती है। लोकदृष्टि में हिंसा नैतिक और अनैतिक कार्य के रूप में बदल जाती है। सामाजिक न्याय और औचित्य की सीमा से परे हिंसा अनैतिक हो जाती है। उदाहरण के रूप में– एक मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य की हत्या कर रहा है, उस समय वहां एक तीसरा व्यक्ति चला आया, उसने आक्रान्ता को समझाया, आक्रान्ता ने उसकी बात नहीं मानी, तब वह उस दुर्बल का पक्ष ले आक्रान्ता के सामने आ गया और उसने आक्रान्ता को मार डाला। सामाजिक नीति या व्यवस्था के अनुसार दुर्बल को बचाने वाला हिंसक नहीं माना जाता प्रत्युत उसका वैसा करना कर्त्तव्य समझा जाता है और दुर्बल की सहायता न करना अनुचित माना जाता है। धार्मिक सीमा इससे भिन्न है। आक्रान्ता को उपदेश देना धर्म को मान्य है। वह उपदेश न माने, उस स्थिति में उसे मार डालना धार्मिक मर्यादा के अनुकूल नहीं। उपदेशक का काम है हिंसक की हिंसा छुड़ाना न कि हिंसक की हिंसा को मोल लेना, हिंसक के बदले स्वयं हिंसा करना। एक प्राणी की रक्षा के लिए दूसरे प्राणी को मारना या कष्ट पहुंचाना अहिंसा की दृष्टि से क्षम्य नहीं।

भगवान् महावीर ने हिंसा करने के कारणों का उल्लेख करते हुए बताया है कि– कुछ व्यक्ति इसने मुझे पहले मारा था, इसलिए मारते हैं। कुछ व्यक्ति यह मुझे मार रहा है, इसलिए मारते हैं और कुछ व्यक्ति यह मुझे मारेगा इसलिए मारते हैं। यह सब हिंसा है।

6.3.3 अहिंसा साध्य और साधन

रक्षा का सामान्य अर्थ है बचाना। इससे संबन्ध रखने वाले महत्त्वपूर्ण प्रश्न चार हैं– रक्षा किसकी? किससे? क्यों? और कैसे? प्रत्येक प्रश्न के दो–दो विकल्प बनते हैं–

1. रक्षा शरीर की या आत्मा की?
2. रक्षा कष्ट से या हिंसा से?
3. रक्षा जीवन को बनाए रखने के लिए या संयम को बनाए रखने के लिए?
4. रक्षा हिंसात्मक पद्धति से या अहिंसात्मक पद्धति से?

अहिंसात्मक पद्धति द्वारा संयम को बनाए रखने के लिए हिंसा से आत्मा को बचाने की वृत्ति का नाम है– आत्म–रक्षा। वास्तव में शरीर–रक्षा और आत्मा–रक्षा ये दोनों लाक्षणिक शब्द हैं। इनका तात्पर्यार्थ है– हिंसात्मक प्रवृत्ति द्वारा विपदा से बचने का प्रयत्न करना शरीर–रक्षा है और हिंसा से बचने का प्रयत्न करना आत्म–रक्षा है।

साध्य जैसे शुद्ध हों, वैसे ही साधन भी शुद्ध होने चाहिएँ। आत्मरक्षा के लिए साध्य और साधन दोनों अहिंसात्मक होने चाहिएँ। थोड़े में यों कहा जा सकता है कि आत्म–रक्षा का अर्थ है– राग–द्वेषात्मक आदि असंयममय वृत्तियों से बचना। इसका साध्य है– आत्म–मुक्ति। इसके साधन हैं– 1. धार्मिक उपदेश, 2. मौन या उपेक्षा एवं 3. एकान्त शमन।

हिंसा करना उचित नहीं है इस प्रकार हिंसक को समझाना, उसकी हिंसा करने की भावना को बदलने का प्रयत्न करना, धार्मिक उपदेश है। धार्मिक उपदेश द्वारा प्रेरणा देने पर भी वह न समझे तो मौन हो जाना, उसकी उपेक्षा करना, यह दूसरा साधन है। धार्मिक उपदेश काम न करे और मौन न रखा जा सके, उस स्थिति में वहां से हटकर एकान्त में चले जाना, यह तीसरा साधन है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भगवान महावीर ने हिंसा से बचने के ये तीन साधन बताए हैं। ये तीनों अहिंसात्मक हैं, इसलिए आत्मरक्षा की मर्यादा के अनुकूल हैं। अहिंसात्मक साधनों द्वारा कष्टों से बचाव किया जा सकता है, हिंसा से नहीं।

हिंसक के प्रति हिंसा बरतना, बल प्रयोग करना, प्रलोभन देना; यह अहिंसा की मर्यादा में नहीं आता। अहिंसा की मर्यादा है कि अहिंसक हर स्थिति में अहिंसक ही रहे। वह किसी भी स्थिति में हिंसा की बात न सोचे। अहिंसक पद्धति से हिंसा का विरोध करना अहिंसा धर्मी का कर्तव्य है। वह अहिंसा के लिए अपने प्राणों का त्याग कर सकता है परन्तु अहिंसा के लिए हिंसा का मार्ग नहीं अपना सकता। तीनों प्रकार की रक्षा के आठ विकल्प बनते हैं–

1. जीवन को बनाए रखने के लिए हिंसात्मक पद्धति द्वारा कष्ट से बचाव।
2. संयम को बनाए रखने के लिए हिंसात्मक पद्धति द्वारा कष्ट से बचाव।
3. जीवन को बनाए रखने के लिए हिंसात्मक पद्धति द्वारा हिंसा से बचाव।
4. संयम को बनाए रखने के लिए हिंसात्मक पद्धति द्वारा हिंसा से बचाव।
5. जीवन के लिए अहिंसात्मक पद्धति द्वारा कष्ट से बचाव।
6. संयम के लिए अहिंसात्मक पद्धति द्वारा कष्ट से बचाव।
7. जीवन के लिए अहिंसात्मक पद्धति द्वारा हिंसा से बचाव।
8. संयम के लिए अहिंसात्मक पद्धति से बचाव।

इनमें चार विकल्प शरीर–रक्षा के हैं।

विकल्प एक : जीवन को बनाए रखना। यह अहिंसा का उद्देश्य नहीं है। उसका उद्देश्य है– संयम का विकास करना। संयम का विकास जीवन सापेक्ष है। जीवन ही न रहे, तब संयम का विकास कौन करे? अतः संयम का विकास करने के लिए जीवन को बनाए रखना आवश्यक है। इस प्रकार का विकास करने के लिए जीवन को बनाए रखना आवश्यक है। इस प्रकार जीवन को बनाए रखना भी अहिंसा का उद्देश्य है, यह फलित होता है। यह प्रश्न हो सकता है किंतु अहिंसा का सीधा संबंध संयम से है, इसलिए जीवन को कोई महत्त्व नहीं दिगा जा सकता। जीनन बना रहे और संगम न हो तो नह अहिंसा नहीं होती। संगम की सुरक्षा में जीनन चला जाए तो भी यह अहिंसा है। आगे के संयम के लिए वर्तमान का असंयम संयम नहीं बनता। आगे की अहिंसा के लिए वर्तमान की हिंसा अहिंसा नहीं बनती। इसलिए जीवन को बनाए रखना अहिंसा का साध्य या उद्देश्य नहीं हो सकता। साधन–मीमांसा में इतना ही होगा कि अहिंसा के साधन हिंसात्मक नहीं हो सकते।

अहिंसा का स्वरूप है, असंयम से बचना, संयम करना। कष्ट संयम हो सकता है और सुख असंयम, इसलिए कष्ट से बचाव करना और सुख प्राप्त करना यह अहिंसा का स्वरूप नहीं बन सकता। उपवास व अनशन जैसी कठोर तपस्याएं कष्टकर अवश्य हैं, फिर भी अहिंसात्मक हैं। भोगोपभोग सुख है, फिर भी हिंसा है। अहिंसा की दृष्टि संयम की ओर होनी चाहिए। अमुक कष्ट से बचा या नहीं बचा, अहिंसा के लिए यह शर्त नहीं होती। उसकी शर्त है– असंयम से बचा या नहीं। पहले विकल्प के तीनों रूप शरीर–रक्षा की कोटि के हैं।

विकल्प दो : इसमें साध्य सही है। साधन की प्रक्रिया साध्य के प्रति भ्रम उत्पन्न करती है। संयम को बनाए रखने के लिए हिंसात्मक साधन करते जाएं, वहां संयम नहीं रहता। इसलिए संयम को बनाए रखने के लिए हिंसात्मक साधनों को अपनाना मानसिक भ्रम जैसा लगता है।

विकल्प तीन : जीवन को बनाए रखने का उद्देश्य मुख्य होने पर हिंसा से बचाव करने की बात गौण हो जाती है। संयम जीवन से अलग नहीं होता। संयम को बनाए रखने के साथ जीवन का अस्तित्व अपने आप आता है। जीवन को बनाए रखने के साथ संयम का अस्तित्व स्वयं नही आता है। इसलिए अहिंसा का रूप जीवन के अस्तित्व को प्रधानता नहीं देता। उसमें संयम की प्रधानता होती है।

विकल्प चार : संयम को बनाए रखने के लिए हिंसा से बचाव करना, यह सही है किन्तु हिंसा से कैसे बचा जाए, इसका विवेक होना चाहिए। हिंसा से बचाव करने के लिए हिंसात्मक साधन अपनाए जाएं, वहां न संयम बना रहता है और न हिंसा से बचाव होता है। इसलिए चौथा विकल्प भी आत्म–रक्षा की भावना नहीं देता।

विकल्प पांच : पांचवें विकल्प में साधन–पद्धति को छोड़ शेष अहिंसा की दृष्टि से अनुकूल नहीं है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विकल्प छह व सात : छठे विकल्प में कष्ट से बचाव करने और सातवें में जीवन को बनाए रखने की बात मुख्य है, इसलिए ये भी अहिंसा के शुद्ध रूप का निर्माण नहीं करते। इन दो (6–7) और पांचवें विकल्प को व्यावहारिक या सामाजिक अहिंसा कहा जा सकता है।

आठवां विकल्प : अहिंसा का पूर्ण शुद्ध रूप है।

6.3.4 अहिंसा का अल्पीकरण

अणुव्रत एक व्यावहारिक प्रयोग है। यह हिंसा के अल्पीकरण का सूत्र देता है। सामाजिक क्रान्ति, जीवन–विकास और अस्तित्व की स्थिरता के लिए यह सूत्र सर्वथा उपयुक्त है। हिंसा की उन्मुक्तता महाहिंसा की ओर प्रयाण है। ऐसे प्रयाण जहां भी हुए हैं, वहां सांस्कृतिक खतरे उपस्थित हुए हैं। प्राचीन संस्कृतियों के ह्रास और विकास में असंतुलन का बहुत बड़ा हाथ है। असंतुलन को रोकने के लिए हिंसा के अल्पीकरण के सिद्धान्त को मान्यता देनी होगी। यह सिद्धान्त केवल धार्मिक दृष्टि से ही मूल्यवान नहीं है। यह सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य भी रखता है। इसलिए हिंसा की सघनता को तोड़ना अपेक्षित है।

हिंसक शक्तियां केन्द्रित न हों, इस चिंतन से ही संस्कृति का विकास प्रारंभ होता है। जहां हिंसा केन्द्रित हो जाती है, अन्तिम शिखर पर पहुंच जाती है, अन्तिम बिन्दु का स्पर्श कर लेती है, वहीं से संस्कृति के पतन का दौर शुरू हो जाता है। केन्द्रित हिंसा के स्वरूप तथा उसके परिणाम के आधार पर ही अणुव्रत ने उसके विरोध में हिंसा के अल्पीकरण का स्वर उठाया है। वह जीवन की अनिवार्य अपेक्षाओं की पूर्ति के साथ अवांछनीय तत्त्वों को समाप्त करता है।

कुछ राजनीतिक पद्धतियां जीवन के स्तर पर नहीं किन्तु विचारों के स्तर पर हिंसा की अनिवार्यता को स्वीकार करती हैं। कुछ धार्मिक मंच भी वैचारिक स्तर पर हिंसा को मान्यता देते हैं। इनके अनुसार अपना विचार और धर्म बलात् थोपा जा सकता है। यदि कोई उसे स्वीकार न करे तो उस व्यक्ति को निरस्त करना भी मान्य है। अणुव्रत की दृष्टि से स्वस्थ समाज–रचना के लिए उक्त दोनों तथ्य अवांछनीय हैं। वैचारिक स्तर पर हिंसा की अनिवार्यता को स्वीकृति देने का अर्थ है मारकाट के सिलसिले को अनन्तता प्रदान करना। आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अभिमत में धार्मिक और वैचारिक स्वतंत्रता स्वाभाविक है। स्वतंत्र विचारों की परिधि में भिन्नता भी स्वाभाविक है। भिन्न परिवेश में अपनी बात समझाई जा सकती है पर थोपने की बात सम्यक् रूप से घटित नहीं हो सकती। इसमें जो हिंसा की परम्परा चलती है, वह टूटती नहीं, अधिक गहरी हो जाती है। यह हिंसा जीवन के उपकरण, कृषि आदि की भांति अनिवार्य भी नहीं है। एक दृष्टि से यह महा–हिंसा की ओर प्रस्थान है।

हिंसा के अल्पीकरण का सिद्धान्त साधन–शुद्धि के सिद्धान्त का विकास है। साध्य चाहे कितना ही प्रशस्त हो पर साधन शुद्ध नहीं हैं तो वह प्रयत्न वांछनीय नहीं हो सकता। समाजवादी व्यवस्था का उद्देश्य है समाज के बहुसंख्यक लोगों को यथेष्ट सुख–सुविधा उपलब्ध कराना। कुछ धर्मों का उद्देश्य है– जैसे–तैसे अधिकांश व्यक्तियों को अपने धर्म का अनुयायी बनाना। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समाज के कुछ व्यक्तियों को मिटा देने का सिद्धान्त प्रशस्त नहीं है। जो धार्मिक मंच बलात् धर्म–परिवर्तन के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं, वे धर्म की आत्मा को उपलब्ध नहीं कर सकते। उनमें धर्म की अपेक्षा संगठन या सम्प्रदाय मुख्य रहता है। साम्प्रदायिक अभिनिवेशों से हिंसा को जो खुला प्रोत्साहन मिलता है, वह और अधिक घातक है।

इस स्थिति में निरपवाद मार्ग है साध्य और साधन–दोनों की शुद्धि का अर्थात् हिंसा के अल्पीकरण का। जिस समाज में हिंसा की अल्पता की ओर गति होती रहेगी, उस समाज में दुर्भावना और दुश्चिंताएं स्वयं क्षीण होती जाएंगी, क्रूर व्यवहार और प्राणवध जैसी घटनाओं को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा। अपने अहं पोषण के लिए दूसरे के अस्तित्व को खतरा उपस्थित करने का मनोभाव नहीं रहेगा तथा नहीं रहेगा सहानवस्थान जैसा अस्पृहणीय विचार। अणुव्रत हिंसा को जीवन का आधार कभी नहीं मान सकता और न ऐसा मानने से सामाजिक जीवन को आलम्बन मिल सकता है। समता, मैत्री, प्रेम, सौहार्द एवं सामंजस्य, ये सब हिंसा के अल्पतर और अल्पतम होने से ही घटित हो सकते हैं।

6.4 स्वस्थ समाज की सरंचना

अणुव्रत का प्रारंभिक लक्ष्य वर्तमान समाज में संशोधन करने का रहा है। समाज को विकृत करने वाले तत्त्वों, भ्रष्ट आचरणों, अन्धविश्वासों व अर्थहीन रूढ़–परम्पराओं के विरुद्ध उसने एक सशक्त आवाज उठाई और समाज में नैतिक चेतना के वातावरण का निर्माण किया। शोषण–विहीन समाज रचना के अभाव में सामाजिक मूल्यों में संघर्ष होना अनिवार्य है। इस स्थिति में सर्वोपरि महत्त्व नैतिक मूल्यों का नहीं होता, व्यवस्थागत मूल्यों का होता है। आन्दोलन मानसिक स्तर पर कार्य करे और व्यवस्थाएं सामाजिक स्तर पर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भिन्न प्रभाव डालें तो फिर दोनों में सामंजस्य नहीं होता। मनोभूमिका और व्यवस्था अलग–अलग पड़ जाते हैं और मनोभूमिका पर किया गया कार्य समाज की भूमिका तक आते–आते क्षीण हो जाता है।

6.4.1 शोषण विहीन समाज–रचना

अणुव्रत का आधार संयम है। वह प्रत्येक समस्या को संयम के माध्यम से सुलझाना चाहता है। उसका विश्वास है कि संयम ही मनुष्य को शान्तिपूर्ण जीवन की व्यवस्था दे सकता है। उस शोषणविहीन समाज की रचना के मूल में भी संयम की प्रतिष्ठा ही होगी।

शोषणविहीन समाज का क्या स्वरूप हो, उसको लेकर अणुव्रत के सामने रेखाएं बहुत स्पष्ट हैं–

1. वह समाज अल्पेच्छा, अल्प परिग्रह और अल्प भोगोपभोग को पहला स्थान देगा। अल्पेच्छा से तात्पर्य है कि उसकी आकांक्षाएं निरंकुश नहीं हों। आकांक्षाओं का विस्तार, संग्रह या परिग्रह का कारण बनता है और संग्रह शोषण का कारण बनता है, इसलिए अणुव्रत इच्छा–संयम पर बल देता है। इच्छा के साथ संग्रह–संयम स्वयं हो जाएगा। इसके साथ–साथ भोगोपभोग का अल्पीकरण होने से आवश्यक संग्रह की अपेक्षा नहीं रहेगी।

2. अणुव्रत अर्थ और सत्ता के केन्द्रीकरण को, फिर चाहे वह व्यक्तिगत स्तर पर हो या राष्ट्रीय स्तर पर, प्रश्रय नहीं देगा। अर्थ और सत्ता का यह केन्द्रीकरण ही शोषण और संग्रह की समस्याओं को जन्म देता है।

3. उस समाज में श्रम और स्वावलम्बन की प्रतिष्ठा होगी। व्यक्ति आत्म–निर्भर बने और श्रम का मूल्यांकन सामाजिक स्तर पर हो, यह प्रयत्न किया जाएगा।

4. संग्रह करने वाले को उसमें सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी। मनुष्य बहुधा अधिक संग्रह प्रतिष्ठा पाने के लिए ही करता है। आवश्यकतापूर्ति के लिए मनुष्य को अधिक धन अपेक्षित नहीं होता। फिर भी धन के प्रति उसकी जो लालसा देखी जाती है, उसका एकमात्र कारण प्रतिष्ठा ही है। एक बार किसी बड़े उद्योगपति से जालसाजी करने का कारण पूछा गया। उसने कहा कि मैं हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा उद्योगपति बनना चाहता हूं। आज भी लोगों के मन में संग्रह के प्रति जो आकर्षण है, उसके पीछे सामाजिक प्रतिष्ठा की भावना ही काम कर रही है। यही कारण है कि वे सब प्रकार के छल, प्रपंच, फरेब और षड्यंत्र रचकर भी पैसा कमाना चाहते हैं। आज यदि अर्थ की भूमिका में से सामाजिक प्रतिष्ठा को निकाल लिया जाए तो दूसरे ही क्षण संग्रह का महल ढह जाने वाला है।

5. उस समाज के आधार में अहिंसा होगी। उसका यह विश्वास होगा कि समस्या का सही समाधान अहिंसा में ही है। अपनी हर समस्या को वह अहिंसा के माध्यम से ही सुलझाने का प्रयत्न करेगा।

इस प्रकार वह एक संयम–प्रधान समाज होगा। निरंकुश मनोवृत्ति, संग्रह और परिग्रह के प्रति आकर्षण, अर्थ और सत्ता का केन्द्रीकरण, अर्थ की प्रतिष्ठा, हिंसा और शक्ति–बल का उसमें कोई स्थान नहीं होगा।

6.4.2 लोकतंत्र और अहिंसा

वर्तमान युग लोकतंत्र का है। लोकतंत्र में सब समान हैं। जाति, रंग और सम्प्रदाय कोई बाधा नहीं है। राष्ट्रपति राधाकृष्णन् ने कहा था– आज का लोकतंत्र महावीर के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसका कारण है– सापेक्षता, समानता, सह–अस्तित्व और स्वतंत्रता। ये चारों लोकतंत्र के सिद्धान्त भी बन जाते हैं। यह कहा जा सकता है कि भगवान् महावीर ने जो अनेकांत का दर्शन दिया था वह आज लोकतंत्र में सामाजिक रूप से फलित हो रहा है। यह एक तत्त्वज्ञ का दर्शन है। उसका व्यावहारिक रूप है समाजिक प्रणाली।

भगवान् महावीर राजतंत्र की परम्परा में नहीं जन्मे थे। उनका जन्म गणतंत्र की परम्परा में हुआ था। गणतंत्र की परम्परा के प्रभाव को हम ऐतिहासिक दृष्टि से अस्वीकार कैसे करें? हमें स्वीकार करना होगा– गणतंत्रीय परम्परा का भगवान् महावीर पर प्रभाव था। उसी का तात्त्विक रूप बन गया– अनेकांतवाद। व्यावहारिक रूप बन गया– गणतंत्र और आज की भाषा में उसे कहा गया लोकतंत्र। सिद्धांत वे ही हैं जो सिद्धान्त अनेकांत के हैं, वे ही लोकतंत्र के हैं।

जैन दर्शन ने समानता का सिद्धान्त प्रस्तुत किया– प्रत्येक प्राणी समान है। लोकतंत्र का आधारभूत सिद्धान्त है प्रत्येक नागरिक समान है। जहां इस समानता के सिद्धान्त का अतिक्रमण हो वहां विरोध और विद्रोह की स्थिति बन जाती है। समस्या यह है कि व्यक्ति दूसरे के अधिकार को मान्यता नहीं देना चाहता। जहां वह समस्या होती है, वहां लोकतंत्र विकसित नहीं हो सकता। जहां

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

असमानता की चेतना प्रबल होती है, वहां लोकतंत्र विकसित नहीं हो सकता। जहां असमानता की चेतना प्रबल होती है, वहां असहिष्णुता को पनपने का अवसर मिलता है। जब असहिष्णुता का भाव प्रखर बनता है, मानवीय संबंध बिखरने लग जाते हैं। मानवीय संबंधों का बिखराव लोकतंत्र के स्वास्थ्य को लील जाता है। जहां समानता है, वहां सहिष्णुता है। जहां सह–अस्तित्व है वहां भी सहिष्णुता का होना जरूरी है किन्तु सहिष्णुता का विकास समानता की चेतना के उन्नयन से ही सम्भव है।

6.5 अहिंसा प्रशिक्षण का आधार

अहिंसा प्रशिक्षण का आधार है हिंसा के बीजों को प्रसुप्त बनाकर अहिंसा के बीजों को जागृत करना। अहिंसा के बीज बोने के लिए प्रशिक्षण बहुत आवश्यक है। अहिंसा प्रशिक्षण की प्रक्रिया के दो चरण हैं– 1. सैद्धान्तिक बोध और 2. प्रायोगिक अभ्यास। अहिंसा के सैद्धान्तिक बोध के अन्तर्गत हिंसा के कारण, परिणाम एवं उपाय का प्रशिक्षण समाविष्ट है जिससे व्यक्ति की अवधारणाओं में परिष्कार का अवसर मिले और उसके साथ–साथ प्रायोगिक प्रशिक्षण भी चले।

6.5.1 हिंसा की जड़

हिंसा स्वयं प्रवृति नहीं है, वह परिणाम है। हमारी चिन्ता परिणाम पर अधिक कारण पर कम होती है। हिंसा एक परिणाम है। हिंसा को मिटाने के लिए उसके कारणों पर ध्यान देना आवश्यक है। हिंसा का मूल कारण क्या है, हिंसा की जड़ कहां है, इस पर अनेक लोगों ने अनेक विचार प्रकट किये हैं। जो जिस विषय का वैज्ञानिक है, जिस विषय का तार्किक है, दार्शनिक है, उसी प्रकार के मत को प्रतिपादित करता है। इन सब मतों पर विचार करें तो निष्कर्ष यह निकलेगा कि ये सारे एकांगी दृष्टिकोण हैं। सर्वांगीण किसी को नहीं कहा जा सकता। असत्य भी नहीं कहा जा सकता। 'जीन' भी एक कारण बनता है। परिवेश भी एक कारण बनता है। मौलिक मनोवृत्ति भी एक कारण बनती है। कर्म भी एक कारण बनता है। ये अनेक घटक हैं जो मिलकर घटना का निर्माण करते हैं। एक घटना के लिए कोई भी एक घटना सर्वथा उत्तरादायी नहीं हैं। सबका योग मिलता है तो इस प्रकार की घटना घटित होती है। वस्तुतः हिंसा के कारण बाहर परिवेश में भी हैं और अन्दर हमारी वृत्तियों में भी। कुछ कारण व्यक्ति में हैं, कुछ समाज में हैं। हिंसा का मूल कारण, उपादान व्यक्ति में है। उसको उद्दीप्त करने वाले निमित्त कारण परिवेश में, समाज में हैं। अनेक आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक कारण समाज में हैं जो हिंसा को प्रोत्साहन देते हैं। विषमता, बेरोजगारी, शोषण, दरिद्रता, अतिभाव, विलासिता आदि ऐसे आर्थिक कारण हैं, निमित्त हैं, जिनसे व्यक्ति में निहित उपादान को उत्तेजना मिलती है। जो हिंसा भड़काने में निमित्त बनते हैं। हिंसा को भड़काने में सामाजिक विकृतियां, वर्णभेद, अस्पृश्यता, विषम परिस्थितियां, रूढ़ियां, दासता आदि का भी बहुत बड़ा हाथ रहा है।

राजनीति में सैद्धान्तिक आतंकवाद तथा व्यावसायिक आतंकवाद हिंसा की आग में घी डालने का काम करते हैं। साम्प्रदायिक कट्टरता भी हिंसा भड़काती है। ये बाह्य कारण व्यक्ति के भीतर आन्तरिक कारण को जगाते हैं। व्यक्ति के भीतर हिंसा के अनेक कारण हैं। उसमें मुख्य हैं– व्यक्ति की वृत्तियां जो हिंसा का उपादान कारग भी हैं। निषेधात्मक भाव, क्रूरता, भय, ईर्ष्या, क्रोध, अहंकार, लोभ आदि वृत्तियां हिंसा को जन्म देती हैं।

व्यक्ति में हिंसा का दूसरा कारण है गलत दृष्टिकोण। गलत दृष्टिकोण अर्थात् अपने मत का दुराग्रह, स्वयं को ही सही समझने की दृष्टि। अपने से भिन्न मत वाले को गलत समझने का दृष्टिकोण अन्ततः हिंसा को प्रोत्साहित करता है, हिंसा को पोषण देता है। व्यक्ति की जीवन शैली का भी हिंसा से बहुत गहरा संबंध है। सुविधावादी, असंयमित, भोगप्रधान जीवन शैली हिंसा को उत्तेजित करती है।

6.5.2 हिंसा का निवारण

आचार्य श्री महाप्रज्ञ कहते हैं–"हिंसा और अहिंसा दोनों मनुष्य के भीतर हैं। हिंसा की जड़ भी हमारे भीतर विद्यमान है और अहिंसा की जड़ भी हमारे भीतर विद्यमान है। किसको पकड़ना है और किसे विकसित करना है, यह सोचना है। इस स्थिति में वातावरण पर ध्यान देना बहुत जरूरी है क्योंकि वही सबसे पहले हमारे सामने आता है। हम परिवेश को कैसे अच्छा बनाएं, वातावरण को कैसे अच्छा बनाएं, परिस्थिति को कैसे अच्छा बनाएं, इस बात प्र ध्यान बहुत आवश्यक है। वातावरण, परिवेश, परिस्थिति को जब तक नहीं बदलेंगे, हिंसा को उत्तेजना देने वाली जो घटनाएं और निमित्त हैं वे उभरेंगी, हिंसा उभरेगी।" यह नहीं माना जा सकता कि परिवेश बदलने से सब कुछ बदल जाएगा। जड़ की बात पर भी हमें जाना होगा, मूल तक जाना होगा।

6.5.3. उपादान है व्यक्ति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निमित्त कारणों का संबंध ज्यादातर समाज से होता है, उपादान का संबंध व्यक्ति से होता है। समाज में हिंसा के कारण बहुत हैं पर हिंसा का उपादान समाज नहीं है, उसका उपादान है व्यक्ति। समाज सापेक्ष है व्यक्ति का जीवन। यदि समाज के प्रति हृदय–परिवर्तन नहीं होता है तो अहिंसा की बात संभव नहीं बनती।

वर्तमान चिन्तन की अभिमुखता समाज की ओर अधिक है। व्यक्ति गौण है, समाज प्रधान है। समाज में परिवर्तन, समाज का सुधार, समाज का विकास– ये चिन्तन के प्रमुख बिन्दु हैं। व्यवस्था के बारे में जितना ध्यान दिया गया, उतना ध्यान व्यवस्था के संचालन करने वाले के बारे में नहीं दिया गया। व्यवस्था 'समाज' के लिए होती है। उसको संचालित करने वाला 'व्यक्ति' होता है। व्यवस्था बहुत अच्छी है किन्तु यदि उसे संचालित करने वाला व्यक्ति अच्छा नहीं है तो क्या अच्छी व्यवस्था अच्छा परिणाम लाएगी? व्यवस्था को संचालित करने वाला व्यक्ति अच्छा है और व्यवस्था अच्छी नहीं है तो भी समस्या सुलझ नहीं पाएगी।

6.5.4 उपादान और निमित्त

भगवान महावीर ने दो नयों के आधार पर एक नया दृष्टिकोण दिया। उन्होंने कहा– निमित और उपादान, परिस्थिति और अन्तर्जगत्, दोनों को तोड़कर मत देखो। कुछ लोग सारा भार परिस्थिति पर ही डाल देते हैं। परिस्थिति नहीं बदलेगी तो समस्या का समाधान नहीं होगा। दूसरी ओर जो अध्यात्मवादी लोग हैं, उनका मत है– अन्तर्जगत् में सुधार नहीं होगा, उपादान नहीं बदलेगा तो समस्या का समाधान नहीं होगा। ये दोनों ही एकांगी दृष्टिकोण हैं। निमित्त और उपादान– दोनों जुड़े हुए हैं। उपादान शक्तिशाली और निमित्त प्रतिकूल है तो उपादान कुछ नहीं कर पाएगा। जो घटित होता है इन दोनों के योग से होता है। समग्र परिवर्तन के लिए दोनों पर ध्यान देना अपेक्षित है। यह सर्वांगीण दृष्टिकोण है। व्यवस्था–परिवर्तन बहुत अपेक्षित है तो साथ–साथ उपादान–परिष्कार भी आवश्यक है।

6.6 अहिंसा–प्रशिक्षण के चार आयाम

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी एवं आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने अहिंसा प्रशिक्षण की एक व्यावहारिक कार्यविधि के विकास की अवधारणा पर बल दिया। जहां कुछ विद्वान्, मानस–परिवर्तन, संरचनात्मक परिवर्तन, व्यक्तिवादी प्रशिक्षण एवं सामूहिक प्रशिक्षण को एकल रूप में रेखांकित करते हैं, वहीं इन महापुरुषों की अवधारणा एक समेकित प्रारूप के प्रस्तुतीकरण पर बल देती है। उनके द्वारा विकसित अहिंसा प्रशिक्षण की चतुरायामी अवधारणा मात्र व्यक्ति या मात्र समाज तक ही नहीं पहुंचती है वरन दोनों को एक साथ समाहित करती है। इसमें समग्रता के चारों आयाम यथा– हृदय–परिवर्तन, दृष्टिकोण परिवर्तन, जीवन–शैली परिवर्तन एवं तद्नुरूप संरचनात्मक परिवर्तन (व्यवस्था परिवर्तन) सम्मिलित हैं।

6.6.1 हृदय–परिवर्तन

अहिंसा प्रशिक्षण का प्रथम आयाम है– हृदय–परिपर्तन। हृदय–परिपर्तन का अर्थ है भाप परिपर्तन। भावों का उद्‌गम स्थल है मस्तिष्क का एक भाग– लिम्बिक संस्थान अतः इसे मस्तिष्कीय प्रशिक्षण भी कहा गया है। हृदय परिवर्तन का पहला सूत्र है निषेधात्मक भावों के परिवर्तन का प्रशिक्षण। निषेधात्मक भावों का उद्दीपन हमरे शारीरिक अस्वास्थ्य के कारण भी होता है। हृदय–परिवर्तन का दूसरा सूत्र है शारीरिक स्वास्थ्य एवं मिताहार का प्रशिक्षण।

निषेधात्मक भावों का परिवर्तन– निषेधात्मक भावों (संवेगों) के परिवर्तन के लिए पहले निषेधात्मक भावों तथा उनके परिणामों के बारे में जानना आवश्यक है–

हिंसा के हेतु	परिणाम
1. लोभ	अधिकार की मनोवृत्ति
2. भय	शस्त्र निर्माण और शस्त्र प्रयोग
3. वैर–विरोध	प्रतिरोध की मनोवृत्ति
4. क्रोध	कलहपूर्ण सामुदायिक जीवन
5. अहंकार	घृणा, जातिभेद के कारण छुआछूत
6. क्रूरता	शोषण, हत्या
7. असहिष्णुता	साम्प्रदायिक झगड़ा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ये संवेग (निषेधात्मक भाव) व्यक्ति को हिंसक बनाते हैं। हृदय–परिवर्तन का तात्पर्य है संवेगों का परिष्कार करना, इनके स्थान पर नए संस्कार–बीजों का वपन करना।

सैद्धान्तिक प्रशिक्षण के सूत्र–

निषेधात्मक भावों (संवगों) के परिवर्तन के लिए निम्न निर्दिष्ट सिद्धान्त सूत्रों का प्रशिक्षण आवश्यक है –

1. लोभ का अनुदय	शरीर और पदार्थ के प्रति अमूर्च्छा भाव का प्रशिक्षण।
2. भय का अनुदय	अभय का प्रशिक्षण (आत्मौपम्य भाव का प्रशिक्षण)। शस्त्र निर्माण और शस्त्र व्यवसाय न करने की संकल्प–शक्ति का प्रशिक्षण।
3. वैर–विरोध का अनुदय	मैत्री का प्रशिक्षण। प्रतिशोधात्मक मनोवृत्ति से बचने का प्रशिक्षण।
4. क्रोध का अनुदय	क्षमा का प्रशिक्षण।
5. अहंकार का अनुदय	विनम्रता का प्रशिक्षण, अहिंसक प्रतिरोध का प्रशिक्षण, अन्याय के प्रति असहयोग का प्रशिक्षण।
6. क्रूरता का अनुदय	करुणा का प्रशिक्षण।
7. असहिष्णुता का अनुदय	साम्प्रदायिक सद्‌भाव का प्रशिक्षण, भिन्न–भिन्न विचारों को सहने का प्रशिक्षण।

आधुनिक मनोविज्ञान (शरीर क्रिया मनोविज्ञान) के अनुसार आचार और व्यवहार हमारे भावों (संवेगों) द्वारा नियमित होते हैं। हमारे भावों का नियमन रसायनों द्वारा होता है। ये रसायन अन्तःस्रावी ग्रंथि–तंत्र द्वारा स्रावित होते हैं। उनका संचालन लिम्बिक संस्थान (भाव–संस्थान) द्वारा होता है। प्रेक्षाध्यान, अनुप्रेक्षा के प्रयोगों द्वारा इन रसायनों को प्रभावित कर संतुलित किया जा सकता है। इससे भावधारा, आचरण और व्यवहार में परिवर्तन घटित होते हैं।

प्रायोगिक प्रशिक्षण के अभ्यास सूत्र

निषेधात्मक भावों (संवेगों) के परिष्कार तथा सकारात्मक भावों (संवेगों) के विकास के लिए निम्न निर्दिष्ट अनुप्रेक्षाओं का अभ्यास आवश्यक है–

1. लोभ का अनुदय	अनासक्ति की अनुप्रेक्षा
2. भय का अनुदय	अभय की अनुप्रेक्षा
3. वैर–विरोध का अनुदय	मैत्री की अनुप्रेक्षा
4. क्रोध का अनुदय	शांति की अनुप्रेक्षा
5. अहंकार का अनुदय	मृदुता की अनुप्रेक्षा
6. क्रूरता का अनुदय	करुणा की अनुप्रेक्षा
7. सहिष्णुता का अनुदय	सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा

भावनात्मक परिवर्तन के लिए अनुप्रेक्षा के प्रयोग बहुत सफल रहे हैं। इस प्रयोग में मस्तिष्क और पूरे शरीर को शिथिल कर सुझाव दिये जाते हैं, साथ–साथ रंगों का ध्यान भी किया जाता है। ध्वनि और रंग दोनों ही अचेतन या अवचेतन मन को प्रभावित करते हैं। इनसे पुराने संस्कारों और अर्जित आदतों का क्षय हो जाता है। नए संस्कारों और नई आदतों के निर्माण की भूमि प्रशस्त हो जाती है। ये प्रयोग संकल्प–शक्ति, आत्म–विश्वास और आत्म–निरीक्षण की क्षमता को बढ़ाते हैं।

स्वास्थ्य और मिताहार का प्रशिक्षण

हृदय–परिवर्तन का दूसरा सूत्र है– स्वास्थ्य और मिताहार का प्रशिक्षण। शारीरिक स्वास्थ्य और अहिंसा में भी आंतरिक संबंध है। शारीरिक स्वास्थ्य के अभाव में हिंसा का भाव उपजता है। आत्महत्या का एक हेतु है रक्त में शर्करा की कमी होना। यकृत (लीवर) और तिल्ली (स्प्लीन) की विकृति हिंसा के भाव को जन्म देती है। हिंसा और अहिंसा से संबंध रखने वाले आहार–शास्त्र और स्वास्थ्य–शास्त्र का प्रशिक्षण अहिंसा के प्रशिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

आज आहार के विषय में नई–नई खोजें सामने आ रही हैं। उनसे अनेक भ्रान्तियां टूटी हैं और टूटती जा रही हैं। आज माना जाने लगा है कि अधिक प्रोटीन खाना हानिकारक है। अण्डे और मांस का सेवन करना बीमारी को निमंत्रण देना है। यह भोजन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बीमारियों को ही नहीं बढ़ाता, भावानात्मक स्थिति को भी बिगाड़ देता है। भावनात्मक स्थितियों की गड़बड़ी में दो मुख्य तत्त्व हैं– मांसाहार और मादक वस्तुओं का सेवन।

वर्तमान में व्यक्ति में जो भावनात्मक असंतुलन है उसका एक मुख्य घटक आहार भी है। व्यक्ति के आहार में वे पदार्थ अधिक हैं जो भावनात्मक असंतुलन पैदा करते हैं। पहले कहा जाता था– जैसा अन्न, वैसा मन। आज कहा जाता है– जैसा आहार, वैसा न्यूरोट्रान्समीटर जैसा न्यूरोट्रान्समीटर वैसा व्यवहार। आदमी जो भोजन करता है, उससे शरीर में अनेक प्रकार के रसायन बनते हैं। भोजन के द्वारा मस्तिष्क में न्यूरोट्रान्समीटर बनते हैं जो तंत्रिका–तंत्र के संप्रेषक होते हैं। इनके द्वारा मस्तिष्क शरीर का संचालन करता है। वैज्ञानिकों ने अनेक न्यूरोट्रान्समीटरों का पता लगा लिया है जो भोजन से बनते हैं। इनसे अनेक प्रकार के व्यवहार घटित होते हैं।

भोजन के द्वारा एमिनो एसिड आदि अनेक प्रकार के एसिड भी बनते हैं। यूरिक एसिड जहर है। वह भी भोजन से बनता है। हमारी प्रवृत्ति और भोजन के द्वारा अनेक विषैले तत्त्व शरीर में बनते हैं। अतः इस बात को जानना होगा कि किस प्रकार का भोजन करने से क्या बनता है? जिस भोजन से विष अधिक बनता है, वैसा भोजन करने पर मानसिक समस्याएं पैदा होती हैं। भावनात्मक उलझनें बढ़ती हैं। इन विष–द्रव्यों को शरीर में जमा न होने देना, अहिंसा के विकास का महत्त्वपूर्ण सूत्र है। अतः भाव परिवर्तन के लिए मिताहार और स्वास्थ्य का सैद्धान्तिक प्रशिक्षण आवश्यक है।

प्रायोगिक प्रशिक्षण

केवल सैद्धान्तिक प्रशिक्षण ही नहीं, प्रायोगिक अभ्यास भी आवश्यक है। शारीरिक प्रशिक्षण के प्रायोगिक अभ्यास के अन्तर्गत योगासन और प्राणायाम का अभ्यास अहिंसा प्रशिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। योगासनों के द्वारा एसिड में संतुलन स्थापित किया जा सकता है। कुछ वैज्ञानिकों ने प्रयोग करके देखा है कि सन्तुलन स्थापित करने में आसन बहुत उपयोगी हैं। जब आदमी के रक्त में, मस्तिष्क में, मूत्र में एमिनो एसिड की मात्रा बढ़ जाती है तो आदमी हिंसक बन जाता है, क्रूर बन जाता है और हत्यारा बन जाता है। इसकी मात्रा में एक सन्तुलन स्थापित करना योगासनों के द्वारा संभव है।

हिंसा का संबंध अम्लों से, नाड़ी तंत्र से और ग्रंथि तंत्र, इन सबसे है। हिंसा पर नियंत्रण करने में आसनों की बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। ये हमारे अम्लों को, नाड़ी तंत्र को और ग्रंथि तंत्र को संतुलित बनाते हैं। आसन शरीर में एकत्रित होने वाले विजातीय तत्त्वों को भी बाहर करते हैं। शरीर में जो विष जमा होते हैं उन्हें निकालने का एक उपाय है उपवास तो दूसरा उपाय है योगासन। पद्मासन, शशांकासन, योगमुद्रा, वज्रासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, गोदोहिकासन आदि ग्रंथि तंत्र और नाड़ी तंत्र को प्रभावित करते हैं। इनके द्वारा हिंसा के शारीरिक उपादान क्षीण होते हैं। अनुलोम–विलोम, चन्द्रभेदी, नाड़ी– शोधन, उज्जाई और शीतली प्राणायाम शरीर में उपस्थित हिंसा के बीजों का विरेचन करते हैं।

6.6.2 दृष्टिकोण–परिवर्तन

अहिंसा–प्रशिक्षण का द्वितीय आयाम है– दृष्टिकोण–परिवर्तन। गलत दृष्टिकोण के कारण मिथ्या धारणाएं, निरपेक्ष चिन्तन और एकांगी आग्रह पनपते हैं। मिथ्या धारणाएं, निरपेक्ष चिन्तन और एकांगी आग्रह हिंसा के मुख्य कारणों में हैं। मनुष्य की अनेक मिथ्या धारणाएं बन गई हैं। यह मान लिया गया है कि मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है किन्तु यह जिस दृष्टि से कहा गया उस दृष्टि से ग्रहण नहीं किया गया। विकास की दृष्टि से यह कहा जा सकता है प्राणी जगत् में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है। इसका उपयोग इस रूप में कर लिया गया– मनुष्य सृष्टि का स्वामी है, जितने पदार्थ हैं, सब मनुष्य के लिए हैं क्योंकि वह सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य भोक्ता है, शेष सब भोग्य हैं। इसी दृष्टिकोण ने पर्यावरण को प्रदूषित कर दिया। नियंता, कर्त्ता और भोक्ता, तीनों ही मनुष्य बन गया। उसका पदार्थ एवं प्राणी–जगत् के प्रति दृष्टिकोण गलत हो गया। जितने प्राणी हैं, उन सब पर मनुष्य का अधिकार है। वह उनका दोहन कर सकता है। उनका आरोहण तथा आहार कर सकता है। प्रसाधन के लिए जीवित प्राणियों के अवयवों एवं चमड़े का उपयोग कर सकता है। इस सारी क्रूरता का मूल–स्रोत यही अवधारणा है कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है। इस धारणा ने मनुष्य को क्रूर एवं हत्यारा बनाया है।

बहुत से लोग निरपेक्ष चिन्तन करते हैं जबकि सापेक्ष चिन्तन सामाजिक संबंधों की भूमिका में एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। निरपेक्ष चिन्तन का स्वरूप है– 'मैंने पीया, मेरे बैल ने पीया, अब चाहे कुआं ढह पड़े।' सापेक्ष चिन्तन का स्वरूप है– 'मैंने रोटी खाई है, मेरा पड़ोसी भूखा है तो इसका परिणाम मेरे लिए अच्छा नहीं होगा। वह चोर, डाकू या लुटेरा अवश्य बनेगा और मुझ पर आक्रमण करेगा।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

यह सापेक्ष चिन्तन है तो फिर स्वार्थ की सीमा निश्चित हो जाती है। यह नहीं हो सकता कि समाज के बीस प्रतिशत आदमी गुलछर्रें उडाएं और अस्सी प्रतिशत आदमी भूखे मरते रहें। ऐसा कब तक चलेगा? इस स्थिति में प्रतिक्रियात्मक हिंसा अनिवार्य हो जाएगी।

मानवीय संबंधों में जो कटुता दिखाई दे रही है उसका हेतु निरपेक्ष दृष्टिकोण है। संकीर्ण राष्ट्रवाद और युद्ध भी निरपेक्ष दृष्टिकोण के परिणाम हैं। सापेक्षता के आधार पर संबंध–विज्ञान को व्यापक आयाम दिया जा सकता है। मनुष्य, पदार्थ, वृत्ति, विचार और शरीर के साथ संबंध का विवेक करना अहिंसा के विकास के लिए बहुत आवश्यक है। मनुष्यों के प्रति क्रूरतापूर्ण, पदार्थ के प्रति आसक्तिपूर्ण, विचारों के साथ आग्रहपूर्ण, वृत्तियों के साथ असंयत, शरीर के साथ मूर्च्छापूर्ण संबंध हैं तो हिंसा अवश्यंभावी है। सत्य की खोज का मार्ग है अनाग्रह। अनाग्रही मनुष्य दो भिन्न विचारों में समन्वय साध सकता है। हिंसा को केवल शस्त्रीकरण और युद्ध तक सीमित नहीं किया जा सकता। पारिवारिक कलह, मानवीय संबंधों में कटुता, जातीय संघर्ष, साम्प्रदायिक संघर्ष, क्षेत्रीय संघर्ष, सहानवस्थान– 'या तुम या हम' की मनोवृत्ति ये सब हिंसा के प्रारंभिक रूप हैं और ये ही मानव जाति को शस्त्रीकरण और युद्ध की दिशा में ले जाते हैं। निःशस्त्रीकरण और युद्धवर्जन के सिद्धान्त बहुत अच्छे हैं किन्तु पहले हिंसा के प्रारंभिक बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करना जरूरी है। मिथ्या अवधारणाएं, निरपेक्ष चिन्तन और एकांगी आग्रह समाज को क्रूरता की रेखा तक ले जाते हैं, हिंसा के द्वार खुल जाते हैं। इनको कम करने के लिए अनेकान्त का प्रशिक्षण आवश्यक है।

अनेकान्त का प्रशिक्षण मिथ्याधारणा, निरपेक्ष चिन्तन और आग्रह से मुक्त होने का प्रयोग है। परिवर्तन केवल जानने से नहीं होता। इसके लिए दीर्घकालिक अभ्यास अपेक्षित है। सर्वांगीण दृष्टिकोण को विकसित करने के लिए निम्न निर्दिष्ट अनेकान्त के सिद्धान्त और प्रायोगिक अभ्यास (अनुप्रेक्षाओं) का प्रशिक्षण आवश्यक है–

प्रायोगिक प्रशिक्षण के अभ्यास सूत्र–

दृष्टिकोण परिवर्तन हेतु निम्ननिर्दिष्ट अनुप्रेक्षाओं का अभ्यास आवश्यक है–

1. सप्रतिपक्ष	सामंजस्य की अनुप्रेक्षा
2. सह–अस्तित्व	सह–अस्तित्व की अनुप्रेक्षा
3. स्वतंत्रता	स्वतंत्रता की अनुप्रेक्षा
4. सापेक्षता	सापेक्षता की अनुप्रेक्षा
5. समन्वय	समन्वय की अनुप्रेक्षा

6.6.3 जीवन–शैली का परिवर्तन

अहिंसा–प्रशिक्षण का तीसरा आयाम है– जीवन शैली का परिवर्तन। जीवन–शैली परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है– सुविधावादी जीवन–शैली में परिवर्तन। हम प्रदूषण से चिन्तित हैं, त्रस्त हैं। सुविधावादी जीवन–शैली प्रदूषण पैदा कर रही है। उस पर हमारा ध्यान ही नहीं जा रहा है। समाज सुविधा छोड़ नहीं सकता किन्तु वह असीम न हो यह विवेक आवश्यक है। यदि सुविधाओं का विस्तार निरन्तर जारी रहे, आडम्बरयुक्त और विलासपूर्ण जीवन चलता रहे तो अहिंसा का स्वप्न यथार्थ में परिणत नहीं होगा। आश्चर्य है कि अहिंसा की बात करने वाले भी इच्छा–संयम पर ध्यान नहीं दे रहे हैं। इच्छाओं की वृद्धि से हिंसा को पल्लवन मिला है। जब तक इच्छा का संयम नहीं होगा, जीवन–शैली में संयम को प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी, तब तक अहिंसा की बात का सार्थक परिणाम नहीं आ सकेगा।

अणुव्रत का यह उद्घोष है– **संयमः खलु जीवनम्** अर्थात् संयम ही जीवन है। संयम रखेंगे तो जीवन चलेगा। यदि असंयम बढ़ता गया तो एक आदमी की ही नहीं, पूरी सृष्टि की हिंसा का प्रसंग आ सकता है।

जीवन–शैली का अनिवार्य अंग होना चाहिए श्रम की प्रतिष्ठा। आज श्रम के प्रति थोड़ी हीन भावना पैदा हो गई। इसका कारण है आदमी आराम चाहता है। मैं आराम करूं किन्तु दूसरों की मेहनत का फल मुझे मिल जाए। एक मिथ्या धारणा बन गई कि श्रम करने वाला छोटा होता है और श्रम न करने वाला बड़ा होता है, इस दृष्टिकोण ने श्रम की व्यवस्था और महत्त्व को भुला दिया। हम इस सच्चाई को भुला रहे हैं कि दुनिया में जितने भी महान् आदमी हुए हैं, वे प्रायः श्रमिक हुए हैं, परिश्रमी हुए हैं। श्रम–निष्ठा और स्वावलम्बन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का सिद्धान्त प्रत्येक व्यक्ति की जीवन–शैली का मुख्य अंग होना चाहिए।

मनुष्य में लालच है, बहुत पाने की इच्छा है। वह श्रम कम करना चाहता है, धन अधिक पाना चाहता है। इस मनोवृत्ति से अपराध को बढ़ावा मिलता है। अपराध यानी बिना श्रम किये पैसा पाने की मनोवृत्ति। इस मनोवृत्ति ने अपराध को एक नया आयाम दिया है। अपराध और हिंसा को बढ़ाने में एक बड़ा निमित्त है मादक द्रव्यों का सेवन। अहिंसा के विकास के लिए आवश्यक है जीवन–शैली व्यसन से मुक्त हो। जीवन–शैली परिवर्तन के लिए संयम, स्वावलम्बन और व्यसन–मुक्त जीवन का सैद्धान्तिक प्रशिक्षण अपेक्षित है। अणुव्रत की समग्र और वर्गीय आचार–संहिता की जीवन में स्वीकृति जीवन–शैली परिवर्तन का बहुत बड़ा आलम्बन है। इसके साथ–साथ निम्नलिखित प्रायोगिक अभ्यास अहिंसा प्रशिक्षण में समाविष्ट हैं– 1. अहिंसा की अनुप्रेक्षा, 2. सत्य–अचौर्य की अनुप्रेक्षा, 3. ब्रह्मचर्य की अनुप्रेक्षा, 4. इच्छा–परिमाण/अपरिग्रह की अनुप्रेक्षा, 5. स्वावलम्बन की अनुप्रेक्षा, 6. व्यसन–मुक्ति के प्रयोग एवं शारीरिक श्रम का अभ्यास।

6.6.4 व्यवस्था–परिवर्तन

अहिंसा–प्रशिक्षण का चतुर्थ आयाम है– व्यवस्था–परिवर्तन। व्यक्ति के आन्तरिक रूपान्तरण के साथ–साथ व्यवस्थागत परिवर्तन भी आवश्यक है। व्यवस्थाओं के मुख्य तीन पहलू हैं– आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था तथा राजनैतिक व्यवस्था।

6.6.4.1 आर्थिक व्यवस्था– आचार्य श्री महाप्रज्ञ आर्थिक व्यवस्था के परिवर्तन की भूमिका को स्पष्ट करते हुए कहते हैं– अर्थ की प्रकृति में ही हिंसा है अतः अर्थशास्त्र एवं आर्थिक व्यवस्थ को पूर्णतः अहिंसक नहीं बनाया जा सकता; परन्तु इससे अपराध, क्रूरता, हिंसा, शोषण और विलासिता को अवश्य समाप्त किया जा सकता है।

मात्र भौतिक विकास की अवधारणा पर आधारित अर्थव्यवस्था का विकल्प अहिंसक अर्थव्यवस्था से ही संभव है। अहिसंक व्यवस्था में साधन–शुद्धि, व्यक्तिगत स्वामित्व की सीमा, उपभोग की सीमा, अर्जन के साथ विसर्जन तथा विलासिता की सामग्री के उत्पादन और आयात पर रोक की व्यवस्था का ईमानदारी के साथ व्यक्ति तथा सरकार दोनों को पालन करना होगा। इसके साथ–साथ अहिंसक तकनीक की खोज, अहिंसक वर्ग–संघर्ष, सहकार का अर्थशास्त्र तथा स्वदेशी को आवश्यक स्थान देना होगा।

अहिंसक अर्थव्यवस्था में किसका उत्पादन हो और किसका नहीं हो? मानव की प्राथमिकता के आधार पर आवयकताएं हैं– रोटी, पानी, वस्त्र, मकान, चिकित्सा, परिवार और सन्तान। अहिंसक समाज में अनिवार्य आवश्यकताओं की सामग्रियों का उत्पादन ही मान्य हो सकता है और अनावश्यक पदार्थों– जैसे मादक पदार्थ, शृंगार की सामग्री जिसका उत्पादन क्रूरता के सहारे होता है, उनका उत्पादन मान्य नहीं हो सकता।

6.6.4.2 सामाजिक व्यवस्था– आर्थिक व्यवस्था के निदान के अन्दर ही अहिंसक समाज–व्यवस्था का स्वरूप छिपा होता है। जिस समाज में आर्थिक शोषण होता है वह समाज अहिंसक नहीं हो सकता। अहिंसक समाज का आधार अशोषण है। अशोषण के लिए श्रम तथा स्वावलम्बन की चेतना और व्यवस्था का विकास, व्यवसाय में प्रामाणिकता तथा क्रूरता का वर्जन अनिवार्य है।

समाज में अनेक प्रकार की हिंसा होती है। अहिंसक समाज–व्यवस्था में कुछ विशेष प्रकार की हिंसा का सर्वथा वर्जन हो। उदाहरणार्थ– आक्रामक हिंसा, निरपराध व्यक्तियों की हत्या, भ्रूण हत्या, जातीय–घृणा, छुआछूत आदि का व्यवस्थागत निषेध हो। इनको महिमा मंडित करने वाले पत्र व मीडिया पर भी नियंत्रण हो। साम्प्रदायिक अभिनिवेश, मादक वस्तुओं का सेवन तथा प्रत्यक्ष हिंसा को जन्म देने वाली रूढ़ियों और कुरीतियों का वर्जन भी आवश्यक है।

नई समाज–व्यवस्था के अन्तर्गत ऐसी चिकित्सा–पद्धति का भी विकास करना चाहिए जिसमें रोगों का उपचार आयुर्वेद, आसन–प्राणायाम, ध्यान और व्यायाम से ही हो जाये। आहार को निरामिष बनाना नैतिक ही नहीं किन्तु आर्थिक और स्वास्थ्य की दृष्टि से भी उपयोगी है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.6.4.3 राजनैतिक व्यवस्था– अहिंसक राजनैतिक व्यवस्था का स्वरूप क्या हो? इस प्रश्न के समाधान में आचार्य श्री महाप्रज्ञ का कथन है कि अच्छी राजनीति या अहिंसा की राजनीति वह है जिसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन नहीं होता। जहां व्यक्ति और राष्ट्र का संबंध मात्र यान्त्रिक नहीं होता, व्यक्ति की स्वतंत्रता का मूल्यांकन किया जाता है, व्यक्ति का राष्ट्र के साथ संबंध होता है वहां व्यक्ति की स्वतंत्रता आत्मानुशासित और अक्षुण्ण होती है। ऐसी स्वतंत्रता सचमुच व्यक्तिगत विशेषताओं का संरक्षण है जो राष्ट्र की समृद्धि की आवश्यक शर्त है।

अहिंसक राजनीति की दूसरी विशेषता है, व्यक्ति निर्माण की दिशा में ठोस कार्यक्रम लागू करना। केवल हिंसा की रोकथाम करना और विधि–व्यवस्था कायम रखना राजनीति का काम नहीं है। अच्छी राजनीति का लक्ष्य है व्यक्ति का हित और मानव कल्याण। दलगत राजनीति हिंसा का एक कारण है। यह पक्षपात और पूर्वाग्रह को जन्म देती है। राजनीति की व्यवस्था में अहिंसा का आदर्श होना चाहिए। व्यवस्था में अहिंसा अंतर्भूत रहे। ऐसी व्यवस्था में सबको आजीविका, रोटी तथा विकास के साधन उपलब्ध होंगे। कहीं भी हिंसा को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा। उसमें शासन–प्रणाली उभयविधि होगी– नीचे ग्राम से पंचायती राज का विकास होगा और ऊपर केन्द्र की सरकार बड़े–बड़े कार्यों को करने के लिए रहेगी। जनतंत्र में अहिंसा का प्रशिक्षण आवश्यक है। वर्तमान राजनीति में आदर्श राजनीति के प्रशिक्षण के लिए कोई स्थान नहीं है। परिणामस्वरूप गुणवत्ता के स्थान पर सिर्फ दक्षता ही इसका आधार रह गया है।

वर्तमान चुनाव–पद्धति में जातिवाद, सम्प्रदायवाद जैसे अनेक हिंसक व्यापार जुड़े हुए हैं। इसे अहिंसक बनाने के लिए अणुव्रत–नीति का पालन होना चाहिए। लोकतंत्र और अहिंसा तथा अणुव्रत जैसे विषयों पर शोध होना चाहिए। अहिंसक राजनीति के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण आवश्यक है जिससे शासक निरंकुश न हो और एक व्यक्ति के अहं को मौका न मिले।

व्यवस्था–परिवर्तन के लिए संगठनात्मक प्रशिक्षण भी आवश्यक है। जिसमें अनुसंधान, योजना, कार्य के लिए तैयार होना, प्रचार–कार्य, नेतृत्व आदि संगठन के विभिन्न पहलुओं के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक है।

एक सर्वोच्च संसद का निर्माण अति आवश्यक है जो समाज की नियामक और निर्णायक नहीं बल्कि निदेशक हो। ऐसी संसद में धर्मगुरु, वैज्ञानिक, दार्शनिक, पत्रकार जैसे तटस्थ और निष्पक्ष लोग रहें। इनके निर्देश नियम से भी अधिक प्रभावशील होंगे और इससे अहिंसक समाज के निर्माण में सहयोग मिलेगा।

6.7 सारांश

1. अहिंसक को अपने अस्तित्व के प्रति जागरुक होना होता है। साथ–साथ दूसरे जीवों के प्रति भी जागरुक होना होता है। जो दूसरे सूक्ष्म जीवों के अस्तित्व को नकारता है। वह स्वयं के अस्तित्व को भी अस्वीकार करता है।

2. पूर्णतया जीवों की हिंसा से अपनी आत्मा मलिन होती है। सूक्ष्म जीवों की हिंसा से पूर्ण बचाव एवं सूक्ष्म अहिंसा का पूर्ण पालन, पूर्ण संयम से ही हो सकता है। अपूर्ण संयमी अपने जीवन निर्वाह के लिये यदि अर्थ हिंसा (प्रयोजनवस) को नहीं छोड़ पाता तो वह कम से कम अनर्थ (निष्प्रयोजन) हिंसा का त्याग एवं अर्थ हिंसा का अल्पीकरण (संयम) अवश्य कर सकता है।

3. शोषण विहीन समाज रचना का आधार संयम ही हो सकता है। संयम प्रधान समाज में निरंकुश मनोवृति संग्रह और परिग्रह के प्रति आकर्षण, अर्थ और सत्ता का केन्द्रीकरण, अर्थ की प्रतिष्ठा, हिंसा और बल प्रयोग का कोई स्थान नहीं होगा। लोकतन्त्र का स्वास्थ्य तब ही सुदृढ़ हो पायेगा।

4. हिंसा के बीजों को नष्ट करना व अहिंसा के बीजों को बोना, अहिंसा प्रशिक्षण का आधार है। इसके लिये प्रशिक्षण आवश्यक है। हिंसा का मूल कारण व्यक्ति है। उसको उत्तेजित करने वाले कारक तत्त्व बाहर समाज में हैं। समग्र परिवर्तन के लिये व्यक्ति और समाज दोनों पर ध्यान देना आवश्यक है।

5. अहिंसा प्रशिक्षण की चतुर आयामी अवधारणा व्यक्ति और समाज दोनों को एक साथ समाहित करती है। इसके चार (चरण) आयाम हैं– हृदय परिवर्तन, दृष्टिकोण परिवर्तन, व्यवस्था परिवर्तन व जीवन शैली परिवर्तन।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अहिंसा का अर्थ बतावें।
2. आचार का मुख्य तत्त्व क्या है?
3. अहिंसा से पहले .... की बात आती है।
4. जीवों के छह निकाय कौन–से हैं?
5. भगवान् महावीर ने ....नयों के आधार पर नया दृष्टिकोण दिया।
6. अहिंसा–प्रशिक्षण के कितने आयाम हैं?
7. भावनात्मक परिवर्तन के लिए दूसरा सूत्र क्या है?
8. हृदय–परिवर्तन का दूसरा सूत्र क्या है?
9. प्रायोगिक–प्रशिक्षण के अभ्यास सूत्र कितने हैं?
10. व्यवस्था–परिवर्तन के मुख्य तीन पहलू कौन–से हैं?

लघुत्तरीय प्रश्न

1. आचार का मुख्य तत्त्व अहिंसा है। कैसे?
2. अहिंसा–प्रशिक्षण की प्रक्रिया के सैद्धान्तिक और प्रायोगिक दृष्टिकोण का उल्लेख करें।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अहिंसा की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए अहिंसा–प्रशिक्षण के आधार पर प्रकाश डालें।

6.9 संदर्भ ग्रंथ

1. अहिंसा तत्त्व दर्शन : आचार्य श्री महाप्रज्ञ।
2. अहिंसा–प्रशिक्षण : संपादन–मुनि धर्मेश।
3. अहिंसा और अणुव्रत : समाकलन–मुनि सुखलाल, आनन्द प्रकाश त्रिपाठी 'रत्नेश'।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई 7 व्रत : अवधारणा एवं स्वरूप दार्शनिक एवं वैज्ञानिक आधार

इकाई की संरचना

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 अणुव्रत आन्दोलन का सूत्रपात एवं विकास

7.2.1 अधिवेशन

7.3 व्रत का स्वरूप

7.3.1 व्रत का महत्त्व

7.3.2 व्रत भंग का निषेध

7.3.3 व्रत की उपयोगिता

7.3.4 व्रत और भगवान महावीर

7.3.5 श्रावक की आचार संहिता

7.3.6. शिक्षा व्रत

7.3.7 . गुण व्रत

7.4 अणुव्रत आन्दोलन – दार्शनिक पृष्ठभूमि

7.4.1 व्यक्ति और समाज

7.4.2 स्वार्थ–संयम और अध्यात्म

7.4.3 समाज परिवर्तन की अक्षमता

7.4.4 आध्यात्मिकता क्यों?

7.4.5 अध्यात्म का व्यवहारिक रुप

7.4.6 संयम का अर्थ

7.5 अणुव्रत आन्दोलन – वर्तमान स्वरूप

7.5.1 अर्थ एवं परिभाषा

7.5.2 प्रकृति एवं स्वरूप

7.5.3 अणुव्रत के निर्देशक तत्त्व

7.5.4 अणुव्रत आचार संहिता

7.5.5 वर्गीय अणुव्रत

7.5.6 स्वस्थ समाज संरचना

7.5.7 अणुव्रत का कार्य क्षेत्र

7.5.8 अणुव्रत आन्दोलन – भावी अभियान

7.5.9 अहिंसा समवाय

7.6 सारांश

7.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.8 संदर्भ ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.0 प्रस्तावना

आज से लगभग सात दशक पूर्व तक भारतवर्ष राजनैतिक दासता के घेरे में बंदी था। देश के अधिसंख्य लोगों ने उस दासता को अपने ऊपर ओढ़ लिया था। कुछ चिन्तनशील नागरिकों में अन्तर्द्वन्द्व जगा। उन्होंने देश को दासता की गिरफ्त से मुक्त कराने का संकल्प लिया। लम्बे संघर्ष के उपरान्त आखिर जीत हुई। शताब्दियों की परतंत्रता के बाद हिन्दुस्तान स्वतंत्र हुआ। कांग्रेस ने शासन संभाला। हिन्दू–मुस्लिम दंगे हुए। इन दंगों में लाखों आदमी मौत के घाट उतरे। जातीयता का नग्न रूप सामने आया। स्त्रियों और बच्चों के साथ निर्दय व्यवहार किये गए। ऐसी स्थिति उत्पन्न की गई कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में मुसलमान उध ार गए, हिन्दू इधर आये। दोनों राष्ट्र शरणार्थियों से आक्रान्त हो गये। उनके पुनर्वास की समस्या जटिल हो गई।

कांग्रेस सरकार ने समाजवादी समाज–व्यवस्था का लक्ष्य निश्चित किया। व्यापार और सम्पत्ति पर विभिन्न कर लगाए, देशी राज्यों का विलय हुआ और जमींदारी का अंत हुआ। अस्पृश्यता को अपराध माना गया। खाद्यान्न की कमी थी। उस पर नियंत्रण किया गया। विकास की योजनाएं बनीं और उसके लिए बहुमुखी प्रयत्न होने लगे। ये स्थितियां शैशव अवस्था में थीं। नया निर्वाचन, नया शासन, नया अनुभव और नई व्यवस्था थी। महात्मा गांधी संसार में नहीं रहे। दूसरे प्रमुख नेता अपने–अपने राजनैतिक दलों में फंस गये। स्वतंत्रता के संघर्ष में जो एकता थी, वह टूट गई। आजादी के आकर्षण ने जिन मौलिक समस्याओं पर आवरण डाल रखा था, वे क्रमशः उभरती गईं।

जातिवाद, अस्पृश्यता, साम्प्रदायिकता, अमीरी–गरीबी, महंगाई और भिक्षावृत्ति ये हिन्दुस्तान की मौलिक समस्याएं हैं। अनुशासनहीनता, पद की लालसा, महत्त्वाकांक्षा, प्रान्तीयता और भाषाई विवाद.ये स्वतंत्रता के बाद उपजी हुई समस्याएं हैं और इन जैसी और–और समस्याओं से जनता का चरित्र विकृत और मानस उत्पीड़ित हो रहा था। शिक्षा बढ़ रही थी, बुद्धि का विकास हो रहा था। प्राचीन मान्यताएं शिथिल हो रही थी। नये सिद्धान्त जन्म ले रहे थे।

युवकों में निराशा और आक्रोश का भाव पनपने लगा था। उनका मानना था कि आज के युग में कोई भी प्रामाणिकता का जीवन नहीं जी सकता। धर्म के सारे उपदेश अपने स्थान पर सही हैं पर आज धर्म को सही अर्थ में अपने जीवन में नही उतारा जा सकता। धार्मिक आस्थाएं डगमगा रही थीं। कुल मिलाकर जो स्थिति बनी, उसमें ध्वंस अधिक था, निर्माण कम, उत्तेजना अधिक थी, चेतना कम। इससे संतुष्ट कोई नहीं था। सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्रीय.तीनों क्षेत्रों में असंतोष व्याप्त था। चरित्र–पतन और अनुशासनहीनता से सभी का धैर्य विचलित हो रहा था। इन परिस्थितियों में आचार्य तुलसी ने अणुव्रत आंदोलन को प्रस्तुत किया। यद्यपि इसमें कोई नया तत्त्व नहीं था। वे ही पुराने व्रत और वे ही पुरानी मान्यताएं किन्तु परिस्थितियों का सही अंकन था। उसे वर्तमान समस्याओं के निदान और समाधान के रूप में प्रस्तुत किया गया, इसलिए जनता ने उसे आश्वासन माना।

स्वतंत्रता आंदोलन के समय जनमानस अहिंसा की शक्ति से परिचित हो गया था। महात्मा गांधी के ग्यारह व्रतों से भी असंख्य लोग परिचित हो गये थे। व्रत और नैतिकता भारतीय मानस के लिए कोई नई बात नहीं थी फिर भी धर्म और नैतिकता के विभाजन के कारण व्रत का अवमूल्यन हो रहा था। हिन्दुस्तान में इन शताब्दियों में नैतिक विकास की गति मंद थी और स्वतंत्र भारत में उसके मंदतर होने की संभावना थी। इस संभावना को ध्यान में रखकर चरित्र–विकास या नैतिक–विकास की एक आचार–संहिता प्रस्तुत की गई। उसमें श्रावक की व्रत–संहिता का सहारा लिया गया और उसे वर्तमान समस्याओं के संदर्भ में नया रूप दिया गया। इसका राष्ट्रीय स्तर पर स्वागत हुआ और समर्थन भी मिला। अणुव्रत आंदोलन के माध्यम से पूरे देश में नैतिक विकास की गूंज हुई और अधिकांश ने इसको एक राष्ट्रीय चरित्र–विकास के आंदोलन के रूप में स्वीकार किया।

7.1 उद्देश्य

जीवन विज्ञान की प्रविधियों में तीसरा स्थान अणुव्रत का है। व्रत का महत्त्व वैदिक व श्रमण दोनों संस्कृतियों में बहुत है। इससे सहयोग का विकास होता है। वह समाज उन्नत एवं समृद्ध समाज है जिसमें नीति एवं मूल्यों का वर्चस्व है। उन्नति का मापदण्ड बड़े–बड़े भवन, मीलें, कारखानें, लम्बी–चौड़ी सड़कें नहीं होती। उसका मानक है नीति और संस्कृति से भरा लोक जीवन। अणुव्रत आन्दोलन का उद्देश्य बुराइयों को दूर कर एक नीति मान और चरित्र निष्ठ पीढ़ी का निर्माण करना है। इस पाठ के माध्यम से आप जान पायेंगे कि–

- अणुव्रत आन्दोलन का सूत्रपात व विकास कैसे हुआ?
- व्रत और अणुव्रत का स्वरूप क्या है?
- व्रत की दार्शनिक पृष्ठभूमि क्या है?
- अणुव्रत आन्दोलन का वर्तमान स्वरूप क्या है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7.2 अणुव्रत आंदोलन का सूत्रपात एवं विकास

आचार्यश्री तुलसी ने प्रथम स्वतंत्रता दिवस (15 अगस्त, 1947) पर 'असली आजादी अपनाओ' का शंखनाद किया। असली आजादी का अर्थ है— नैतिक विकास। इसका प्रायोगिक रूप है— अणुव्रत आंदोलन। मार्च 1949 में आपने अणुव्रत आंदोलन का प्रवर्तन करते हुए कहा— 'अणुव्रत की आचार—संहिता के लिए कम से कम पच्चीस व्यक्ति मुझे मिलें, यह मेरी आकांक्षा है। मुझे विश्वास है इससे नैतिकता का नया आयाम खुलेगा।' आह्वान कर जैसे ही विराम लिया वैसे ही अणुव्रती बनने की स्पर्धा शुरू हो गई। प्रथम आह्वान में इकहत्तर व्यक्ति अणुव्रती बने। अणुव्रत के प्रति आशावादी लोग प्रसन्न हो रहे थे, निराशावादी व्यक्ति इस संख्या को विस्मय के साथ सुन रहे थे। उनकी कल्पना थी कि पांच—दस व्यक्ति भी अणुव्रत के लिए समर्पित नहीं होंगे। अणुव्रतियों की प्रथम संख्या ने उनकी कल्पना को बदल दिया, इसलिए वे आश्चर्यचकित थे।

प्रथम बार अणुव्रती बनने वालों के नाम आचार्यश्री तुलसी ने स्वयं अपने हाथ से लिखे। उस समय यह कल्पना नहीं थी कि अणुव्रत आंदोलन इतना व्यापक बनेगा। उसका इतना स्वागत होगा किन्तु इसकी व्यापकता के पीछे संकल्प शक्ति और श्रम का चमत्कार है। सैंकड़ों साधु—साध्वियों ने पांव—पांव चलकर अणुव्रत की भावना को गांव—गांव तक पहुंचाया। हजारों कार्यकर्त्ताओं का श्रम जुड़ा। कुछ ही वर्षों में पूरे अणुव्रत की लहर चल पड़ी। आचार्यश्री तुलसी की पदयात्राओं ने उसे और अधिक शक्तिशाली बना दिया।

7.2.1 अधिवेशन

अणुव्रत आंदोलन एक अभाव की पूर्ति था, इसलिए थोड़े समय में ही वह बहुत प्रख्यात हो गया। जनता ने एक प्रकाश—रश्मि के रूप में उसका स्वागत किया। छोटे—छोटे गांवों में सैकड़ों की संख्या में लोग एकत्रित होते, आंदोलन के व्रतों को सुनते, उन्हें अपनाते। आचार्यश्री तुलसी का सन् 1949 में जयपुर में चातुर्मास—प्रवास था। वहां अणुव्रत को और अधिक प्रसार मिला। उसका पहला वार्षिक अधिवेशन सन् 1950 में दिल्ली में हुआ। आंदोलन को सार्वजनिक रूप वहीं मिला पर नये—नये आंदोलनों के प्रति जो आकर्षण था, वह स्वयं अपनी आवश्यकता एवं अपेक्षा का साक्षी था।

उस समय तक अणुव्रत आंदोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी का परिचय एक रूढ़िवादी धर्माचार्य और सम्प्रदाय नेता के रूप में था। उनके द्वारा प्रवर्तित आंदोलन असाम्प्रदायिक हो सकता है, यह कल्पना भी लोग नहीं कर पा रहे थे। आंदोलन रचनात्मक नहीं है, केवल नकारात्मक है। अपने सम्प्रदाय को बढ़ाने के लिए यह एक जाल रचा गया है। इस कोटि की अनेक प्रतिक्रियाएं चल रही थीं। फिर भी पहले अधिवेशन में आंदोलन का जो रूप बना वह कल्पनातीत सुखद था। उसी के आधार पर यह विश्वास बना कि आंदोलन को स्वयं चलना है। जनता को भी इसकी अपेक्षा है।

दिल्ली नगर निगम के प्रांगण में पहला अधिवेशन हुआ। सैकड़ों व्यक्तियों ने समवेत—स्वर में अणुव्रत की प्रतिज्ञाओं को दोहराया। तब लग रहा था कि युग करवट ले रहा है। समाचार पत्रों ने उसे बहुत महत्त्व दिया। विदेशी समाचार—पत्रों ने भी आंदोलन का काफी स्वागत किया। न्यूयार्क के प्रसिद्ध साप्ताहिक 'टाइम' (15 मई, 1950) में 'एटोमिक बॉम' शीर्षक से यह संवाद प्रकाशित हुआ था। अन्य अनेक स्थानों के कुछ व्यक्तियों की तरह एक पतला, दुबला, ठिगना, चमकती आंखों वाला भारतीय संसार की वर्तमान स्थिति के प्रति अत्यन्त चिन्तित है। 34 वर्ष की आयु का वह आचार्य तुलसी है जो जैन तेरापंथ समाज का आचार्य है। यह अहिंसा में विश्वास करने वाला धार्मिक समुदाय है।

7.3 व्रत का स्वरूप

7.3.1 व्रत का महत्त्व

भारतीय संस्कृति में व्रत शब्द गौरवशाली शब्द है। व्रत मनुष्य को संताप से बचाता है। धूप से बचाव करने के लिए छाते का जो उपयोग है, अनैतिक प्रवृत्तियों से बचने के लिए व्रत का भी वही उपयोग है। व्रती व्यक्ति का जीवन सहज, संतुलित और शांत होता है। यदि व्रतों के साथ सहजता, संतुलन और शांति का आविर्भाव नहीं है तो मानना चाहिए कि वे बाहर से थोपे गये हैं। मानस की उनके प्रति सहज स्वीकृति नहीं है। थोपी हुई चीज वह निष्पत्ति नहीं ला सकती जो सहज स्वीकृति से आती है। थोपना दो प्रकार का होता है— दूसरों के द्वारा और अपने द्वारा। अपने द्वारा थोपी हुई वृत्ति चाहे वह कितनी ही शुभ क्यों न हो भी आन्तरिक रूपान्तरण नहीं ला सकती। स्थाई परिणाम नहीं ला सकती।

7.3.1.1 व्रत का अर्थ

किसी कार्य को करने या न करने का मानसिक निर्णय व्रत कहलाता है। व्यवहार की भाषा में इसे संकल्प भी कहा जा सकता है किन्तु संकल्प और व्रत में अंतर है। संकल्प भी मानसिक निर्णय है पर वह बुरा भी हो सकता है। अच्छा भी हो सकता है किन्तु व्रत शुभ ही होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.3.1.2 व्रत की परिभाषाएं

- यावज्जीवन हिंसादि पापों की एक देश (खंडशः) या सर्वदेश (अखंड रूप से) निवृत्ति को व्रत कहते हैं। वह दो प्रकार का है— (1) श्रावकों के अणुव्रत या एक देश व्रत तथा (2) साधुओं के महाव्रत या सर्वदेश व्रत।
- हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य, परिग्रह से निवृत्त होना व्रत है।
- यह करने योग्य है, यह करने योग्य नहीं है इस प्रकार नियम करना व्रत है।
- सर्वनिवृत्ति के परिणाम को व्रत कहते हैं। पात्र–दान आदि शुभ कर्मों में उसी प्रकार संकल्पपूर्वक प्रवृत्ति करना व्रत है।
- निश्चय नय की अपेक्षा विशुद्ध ज्ञान, दर्शन रूप स्वभाव धारक निज आत्म तत्त्व की भावना से उत्पन्न सुख रूपी अमृत के आस्वाद के बल से सब शुभ व अशुभ राग आदि विकल्पों से रहित होना व्रत है।
- स्वात्मना कृत्वा स्वात्मनिर्वर्तनम् इति निश्चयं व्रतं–शील अर्थात् अपनी आत्मा से अपनी आत्मा में प्रवृत्ति करने को निश्चय व्रत है।
- प्राणियों पर दया करना बहिरंग व्रत है। कषायों का त्याग करना अंतरंग व्रत है।

7.3.2 व्रत भंग का निषेध

व्रत को प्राणप्रण से निभाना, यह भारतीय संस्कृति की जनता की मनः स्थिति रही है। कहा भी गया है– रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जाय पर वचन न जाई। यत्र–तत्र सर्वत्र धार्मिक साहित्य में व्रत भंग का निषेध प्राप्त होता है–

1. परमेष्ठी देवता और सर्वसंघ की साक्षीकृत आहार आदि के प्रत्याख्यान का त्याग करने से तो अच्छा है मर जाना।
2. प्राणान्त होने की संभावना होने पर भी गुरु साक्षी में लिये गये व्रत को भंग नहीं करना चाहिए क्योंकि प्राणों के नाश से तो तत्क्षण ही दुःख होता है किन्तु व्रत भंग से भव–भव में दुःख होता है।
3. प्रतिज्ञा भंग करने में महापाप है।

व्रत भंग शोधनार्थ प्रायश्चित्त ग्रहण.द्रव्य, क्षेत्रादि को देखकर व्रत लेना चाहिए। प्रयत्नपूर्वक उसे पालना चाहिए। फिर भी किसी मद के आवेश से या प्रमाद से व्रत छिन्न हो जाये तो उसी समय प्रायश्चित्त लेकर उसे पुनः धारण करना चाहिए।

7.3.3 व्रत की उपयोगिता

भारतीय मानस में व्रतों के संस्कार बहुत पुराने हैं। ये हृदय की स्वतंत्र भावना से लिये जाते हैं। कानून को तोड़ने में संकोच नहीं होता। व्रतों को तोड़ने में बहुत बड़ा पाप माना जाता है। व्रत न लें, यह पाप है पर लेकर उसे तोड़ डालें, यह महापाप है। यह यहां की सामान्य धारणा है।

लोग कहते हैं, इतने महर्षि हुए, व्रतों का जी भरकर उपदेश दिया पर हुआ क्या? अनैतिकता बढ़ी है कम नहीं हुई। सोचने का अपना–अपना दृष्टिकोण है। व्रतों से जो हो सकता है, वह हुआ है। जो व्रतों से नहीं हो सकता, उनकी आशा क्यों करें? लोग व्रतों से समाज व्यवस्था चाहते हैं पर व्रत समाज को व्यवस्था नहीं दे सकते। व्रत हृदय की पूर्ण स्वतंत्रता और पवित्रता के प्रतीक हैं। व्यवस्था में दबाव होता है। व्रत आत्मा का धर्म है। व्यवस्था सामूहिक जीवन की उपयोगिता है। व्रत अपरिवर्तित होते हैं। व्यवस्था देश–काल के परिवर्तन के साथ परिवर्तित होती रही है। जो लोग व्यवस्था की दृष्टि से व्रत का मूल्य आंकते हैं उनकी धारणा में व्रत असफल रहे हैं। व्रतों के आचरणों से समाज की भोग–वृत्ति पर अंकुश रहा है। हिंसा को खुलकर खेलने का मौका नहीं मिला है। अतः व्रत समाज की आत्मा के प्रेरक रहे हैं तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता और पवित्रता को बढ़ाने वाले होते हैं।

व्रती व्यक्ति के व्यवहार में नैतिकता स्वयं फलित होती है। जहाँ नैतिकता के साथ अध्यात्म का अनुबंध नहीं है, वहां नैतिकता का शुद्ध स्वरूप सुरक्षित नहीं रह सकता। अध्यात्म विहीन नैतिकता देश, काल और परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तित होती है और वह मात्र सामयिक अपेक्षा मात्र बनकर रह जाती है। व्रतों का ग्रहण नैतिकता को आध्यात्मिक पृष्ठभूमि प्रदान करता है।

व्रती व्यक्ति का जीवन–क्रम अधिक व्यवस्थित रह सकता है। यह दो दृष्टियों से मननीय है। व्रतों की उच्चतम भूमिका पर आरोहण करना बड़ा आदर्श है। हर व्यक्ति का लक्ष्य आदर्श तक पहुंचना होता है किन्तु वह व्यवहार को छोड़कर थोथे आदर्श की उड़ान नहीं भर सकता। वही आदर्श उपयोगी होता है जो व्यवहार्य हो सके। कुछ व्यक्ति आदर्श पर चल सकते हैं पर हर व्यक्ति के लिए वैसा करना संभव नहीं होता है। इसलिए मध्यम मार्ग की बात ध्यान में रखी गई है। अणुव्रतों को स्वीकार करने वाला व्यक्ति महाव्रतों की ऊंचाइयों और अव्रत की खाइयों के बीच ठोस धरातल पर चलता हुआ संतुलित और संयत जीवन जी सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.3.4 व्रत और भगवान् महावीर

भारतीय दर्शन का आधार स्तम्भ है. आचार पक्ष। पुरुषार्थ चतुष्टय में मोक्ष चरम बिन्दु है। व्यक्ति श्रेष्ठ आचार दर्शन को अपनाकर ही मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। आचार–दर्शन की दृष्टि से सम्पूर्ण भारतीय दर्शन में अत्यधिक समानता है। व्रत की अवधारणा वैदिक, जैन और बौद्ध तीनों परम्पराओं में प्राप्त है। जैनदर्शन आचार पक्ष का अनुपम उदाहरण है। भगवान् महावीर जैनधर्म के चौबीसवें एवं अंतिम तीर्थंकर हुए हैं। उन्होंने व्रतचर्या का प्रतिपादन कर धर्म को दो भागों में विभक्त किया– मुनि धर्म और श्रावक धर्म। मुनियों के लिए पांच महाव्रतों की व्यवस्था की और श्रावकों के लिए पांच अणुव्रतों, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों की। महात्मा बुद्ध ने मध्यम प्रतिपदा का विधान भिक्षुओं के लिए किया। भगवान् महावीर ने मध्यम मार्ग का प्रतिपादन गृहस्थों के लिए किया। वह है– अणुव्रत। वह हिंसा और अहिंसा के बीच का मार्ग है, यथाशक्य अहिंसा का मार्ग है।

हिंसा जीवन का पूर्ण असंयम है और अहिंसा जीवन का पूर्ण संयम। पूर्ण असंयम में रहना मनुष्य के लिए अहितकर है और पूर्ण संयम की साधना कठिन है। अणुव्रत इस चिन्तन का निष्कर्ष है कि मनुष्य पूर्ण संयम न कर सके तो न्यूनतम संयम अवश्य करे। वह न्यूनतम संयम ही अणुव्रत है। अणुव्रत चर्या के निर्माण के समय, ढाई हजार वर्ष पूर्व, वातावरण में अनैतिकता व्याप्त थी। अमानवीय दृष्टिकोण ने सामाजिक व्यवस्था को खोखला कर दिया था। समाज का अंतिम वर्ग शुद्र अन्य उच्च वर्गों से दया की भीख मांग रहा था। इस समय सामाजिक रूढ़ियों की प्रधानता थी। जातिवाद, दास प्रथा, हिंसक यज्ञ, अनुष्ठान, भेदभाव, असहिष्णुता, हिंसा इत्यादि के कारण व्यक्ति और समाज संत्रस्त था। समाज में आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठापित करने तथा व्यक्ति को आध्यात्मिक ऊंचाई प्रदान करने के लिए भगवान् महावीर ने व्रत चर्या का प्रतिपादन किया। ये हैं– अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

7.3.5 श्रावक की आचार संहिता

धर्म का आधार है– समता और संयम। जो व्यक्ति पूर्ण संयम की साधना कर उत्तरोत्तर विकास कर रहे हैं उनके लिए पांच महाव्रतों का मार्ग है। जो व्यक्ति ऐसा करने में असमर्थ हैं उनके लिए 12 व्रत रूप संयम धर्म प्रतिपादित है। इन बारह व्रतों में (5 अणुव्रत, 3 अणुव्रत एवं 4 अणुव्रत) गृहस्थ धर्म की सम्पूर्ण आचार संहिता का समावेश हो जाता है। मूलभूत तत्त्व इनमें पांच अणुव्रत ही हैं। गुणव्रत और शिक्षाव्रत अणुव्रतों के पोषक हैं। उन्हें भी स्वतंत्र व्रतों की स्वीकृति मिली हुई है।

बारह व्रतों के नाम व संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है–

पॉच अणुव्रत–

1. अहिंसा अणुव्रत, 2. सत्य अणुव्रत, 3. अचौर्य अणुव्रत, 4. ब्रह्मचर्य अणुव्रत एवं 5. अपरिग्रह अणुव्रत।

तीन गुणव्रत–

1. दिग्व्रत, 2. भोगोपभोग परिमाणव्रत एवं 3. अनर्थदण्ड विरति व्रत।

चार शिक्षा व्रत (अभ्यास के व्रत) –

1. सामायिक व्रत, 2. देशावकाशिक व्रत , 3. पौषधोपवास व्रत एवं 4. अतिथि–संविभाग व्रत।

7.3.5.1 अणुव्रत स्वरूप बोध

(अ) अहिंसा अणुव्रत– अहिंसा अणुव्रत में स्थूल हिंसा से बचने का संकल्प होता है। निरपराध चलने–फिरने वाले प्राणियों की संकल्पपूर्वक हिंसा स्थूल हिंसा कहलाती है। अहिंसा अणुव्रत की साधना करने वाला व्यक्ति उक्त वृत्तियों और प्रवृत्तियों से अपने व्रत को सुरक्षित नहीं रख सकता। अहिंसा व्रत की सुरक्षा के लिए अणुव्रती व्यक्ति किसी का वध नहीं कर सकता। किसी को बंधन में नहीं डाल सकता। किसी का अंग–भंग नहीं कर सकता। किसी मनुष्य या पशु पर अतिभार नहीं लाद सकता। किसी की आजीविका का विच्छेदन नहीं कर सकता और आगजनी जैसे क्रूर कर्म नहीं कर सकता।

(ब) सत्य अणुव्रत– दूसरा व्रत सत्य अणुव्रत है। इस व्रत को स्वीकार करने वाला वैवाहिक सम्बन्ध, पशु–विक्रय, धरोहर साक्षी आदि के सम्बन्ध में असत्य भाषण का परिहार करता है। सत्य अणुव्रत की साधना में संलग्न व्यक्ति किसी पर किसी प्रकार का दोषारोपण नहीं कर सकता। षड्यंत्र का आरोप नहीं लगा सकता। गुप्त रहस्य का प्रकाशन नहीं कर सकता और कूट लेख जैसे छलनापूर्ण व्यवहार नहीं कर सकता। सत्य की साधना से अहिंसा को पोषण मिलता है। अहिंसा सत्य को सम्बल देती है।

(स) अचौर्य अणुव्रत– तीसरे अणुव्रत में ताला तोड़ने, जेब कतरने, डाका डालने और दूसरों के स्वामित्व का अपहरण जैसी जघन्य प्रवृत्तियों का परिहार होता है। इस व्रत की गहराई में उतरने के लिए चोरी की वस्तु लेना, राज्य की निषिद्ध वस्तु का आयात–निर्यात करना, असली दिखाकर नकली वस्तुएं बेचना, निलावट करना, तोल–माप में कमी–बेसी करना तथा रिश्वत देना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आदि छलना भरे कार्यों से अपने आपको दूर हटाना अपेक्षित है।

(द) ब्रह्मचर्य अणुव्रत– चौथा अणुव्रत पवित्रता की दिशा में गति की प्रेरणा देता है। ब्रह्मचर्य की परिपूर्ण साधना संभव न हो उस स्थिति में विवाहित पति–पत्नी के अतिरिक्त अनैतिक सम्बन्ध का परित्याग ब्रह्मचर्य अणुव्रत है। व्रत की निरतिचार परिपालना के लिए भगवान् ने पर पुरुषगमन, वैश्यागमन, अप्राकृतिक मैथुन, तीव्र कामुकता तथा अमेल विवाह जैसी दुष्प्रवृत्तियों से बचने का मार्ग सुझाया। जो व्यक्ति जिस सीमा तक इन प्रवृत्तियों से बचता है उसको चेतना उतनी ही ऊर्ध्वारोहण कर सकती है।

(य) अपरिग्रह अणुव्रत– परिग्रह दो प्रकार का होता है– 1. वस्तुपरक और 2. मूर्च्छापरक। मूर्च्छा टूट जाए तो वस्तु के होने या न होने मात्र से परिग्रह का सम्बन्ध नहीं रहेगा। जब तक मूर्च्छा नहीं टूटती उसको कम करने के लिए अपने स्वामित्व की सीमा का निर्धारण आवश्यक है। अधिक वस्तु संग्रह परिग्रह है। सीमा का निर्धारण बहुत कठिन है। अपरिग्रह अणुव्रत की साधना करने वाले व्यक्ति अपने अधिकार में प्राप्त भूमि, मकान, पशु, पक्षी, सोना, चांदी आदि का सीमांकन कर अपनी लालसा का संवरण करता है।

अणुव्रतों की साधना से अमानवीय और अनैतिक वृत्तियों को परिमार्जित कर प्रशस्त जीवन जिया जा सकता है।

7.3.5.2 शिक्षा व्रत

जो व्रत अभ्यास–साध्य होते हैं और आन्तरिक पवित्रता बढ़ाते हैं, उन्हें शिक्षाव्रत कहा जाता है। ये चार हैं–

1. सामायिक – असत्प्रवृत्ति से विरत होकर समता का अभ्यास करना।
2. देशावकाशिक व्रत – एक निश्चित अवधि के लिए विधिपूर्वक हिंसा का त्याग करना।
3. पौषध – उपवासपूर्वक असत्प्रवृत्ति का त्याग करना।
4. अतिथि – संविभाग–अपना विसर्जन कर सुपात्र को दान देना।

अणुव्रत और शिक्षाव्रतों का परस्पर सम्बन्ध है। बारह व्रतों की परिकल्पना उन लोगों के लिए की गई थी जिनके अन्तःकरण में धार्मिकता के अंकुर निकल रहे थे। धार्मिक व्यक्ति नैतिक मूल्यों के साथ धर्मोपासना को महत्त्व देते हैं। उपासना से नैतिक बल मिलता है।

7.3.5.3 गुण व्रत

1. दिग्व्रत– इसमें व्यक्ति अपने कार्यक्षेत्र का निर्धारण करता है। यातायात के साधनों को सीमित करता है। निर्धारित क्षेत्र, सीमाओं के बाहर अपने हस्तक्षेप का संवरण करता है।

2. भोगोपभोग परिमाण व्रत– इसमें व्यक्ति उपभोग–परिभोग परिमाण व्रत में आने वाले पदार्थों का सीमाकरण करता है। निस्सीम इच्छाएं व्यक्ति को आनन्दोपलब्धि से विपरीत दिशा में ले जाती है। वस्तु का अभाव होने पर भी अतृप्त आकांक्षा मानसिक व्यथा का निमित्त बनती है। दूसरे गुणव्रत से अपरिग्रह अणुव्रत को पोषण मिलता है और व्यक्ति की भोग्य पदार्थों के प्रति होने वाली लालसा नियंत्रित होती है।

3. अनर्थदण्ड विरति व्रत– यह व्रत अहिंसा का प्रतीक है। सामाजिक व्यक्ति को प्रयोजन वश हिंसा आदि में प्रवृत्त होना पड़ता है किन्तु अपध्यान और प्रमादवश जो अनर्थकारी प्रवृत्तियां होती है उनका निरोध अपेक्षित है।

ये तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत पांच अणुव्रतों के साथ मिलकर बारह व्रत बन जाते हैं। भगवान् महावीर ने श्रावक धर्म की पृष्ठभूमि में इन्हीं व्रतों की चर्चा की है। इनके द्वारा वर्तमान समस्याओं को भी समाहित किया जा सकता है।

7.4 अणुव्रत आन्दोलन – दार्शनिक पृष्ठभूमि

7.4.1 व्यक्ति और समाज

समाज का आधार परस्परावलम्बन है। एक दूसरे को सहारा देता है और एक दूसरे से सहारा लेता है, यह परस्परावलम्बन है। समाज का आधार एक क्षेत्रीयता नहीं किन्तु एक सूत्रता है। एक गांव में हजार आदमी एकत्र हैं किन्तु वे परस्पर सहयोग के धागे में बंधे हुए नहीं हैं तो वे हजार व्यक्ति हैं, एक समाज नहीं है। सहयोग के सूत्र में बंधे हुए पांच व्यक्तियों का भी समाज बन जाता है। व्यक्ति की अंतिम सीमा–रेखा स्वार्थ है और समाज की आदि रेखा परार्थ है। जितना स्वार्थ है, वह अपना है। जितना परार्थ है वह सहयोग है। यह सहयोग ही व्यक्ति के व्यक्तित्व को सामाजिक रूप में बदल देता है। यह स्वार्थ–सयम से ही संभव होता है।

हर व्यक्ति सामाजिक जीवन जीता है। वह अपने व्यक्तित्व को समाज से सम्बद्ध करता है किन्तु विलीन नहीं करता। समाजवादी दर्शन ने यह दृष्टि दी कि व्यक्ति अपने को पूर्ण रूपेण समाज में विलीन कर दे पर ऐसा नहीं हुआ और हो भी नहीं सकता। जहां व्यक्ति को भौतिक स्पर्धाओं में से गुजरने की छूट है और भौतिक विकास ही परम लक्ष्य है, वहां व्यक्ति अपने व्यक्तित्व

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

को समाज में विलीन नहीं कर सकता।

यद्यपि समाजवाद या साम्यवाद स्वार्थ–संयम कि प्रक्रिया है, फिर भी उसके पास स्वार्थ–संयम का कोई प्रबल सूत्र नहीं है। उसे स्वार्थ–संमय का वैधानिक प्रयोग माना जा सकता है किन्तु वह उस (स्वार्थ–संयम) की प्रत्यक्ष प्रेरणा नहीं है। समाजवादी पद्धति में बल–प्रयोग से स्वार्थ को सीमित किया गया है किन्तु उससे स्वार्थ का स्रोत सूखा नहीं है।

7.4.2 स्वार्थ–संयम और अध्यात्म

साम्यवादी जीवन–पद्धति इसी मनोवृत्ति की प्रतिक्रिया है। साम्यवाद को स्वार्थ–संयम का विधान–प्रेरित प्रयोग माना जा सकता है। उसमें स्वार्थ–संयम की प्रत्यक्ष प्रेरणा नहीं है किन्तु वैधानिक ढंग से स्वार्थ को सीमित करने से वह (स्वार्थ–संयम) फलित होता है। कानून की जकड़ में भी कुछ न कुछ स्व का पोषण चलता ही है। कानून की जकड़ ढीली हो जाए तो वह अधिक मात्रा में चल सकता है। इसका फलित यही हुआ कि साम्यवादी जीवन–पद्धति में भी व्यक्ति अपने (स्व) को सुरक्षित रखे हुए है।

लोकतंत्रीय जीवन–पद्धति में स्व को संरक्षण प्राप्त है। वहां कानून की जकड़ कठोर नहीं है इसलिए वहां स्वार्थ–पोषण की संभावनाएं मुक्त हैं।

किसी भी जीवन–पद्धति में व्यक्ति का स्व खंडित नहीं है। अहं (मैं) के संग्रह का विसर्जन नहीं है। वह अहं का संग्रह ही सब दोषों का उत्पत्ति बीज है। हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह ये सब किसलिए हैं? अपने लिए और केवल अपने लिए।

जितनी भी पदार्थवादी पद्धतियां हैं 'स्व' का निरसन करने में असमर्थ हैं। उनका आधार भौतिकता है। भौतिकवादी व्यवस्था स्व का शोधन नहीं करती, नियमन करती है। फलतः वह प्रत्यक्ष में शान्त और परोक्ष में उद्दीप्त रहता है। इसलिए व्यक्ति छिपे–छिपे अनैतिक आचरण करता है।

आध्यात्मिकता का अर्थ है अन्तर–जगत् में प्रवेश। वहां पहुंचने पर व्यक्ति सामाजिक होते हुए भी अकेला रहता है। बाह्य–जगत् का वह उपयोग करता है किन्तु उसके प्रति उसका 'स्व' या 'ममत्व' नहीं होता। यह ममत्व का विसर्जन या स्वार्थ–संयम ही आध्यात्मिकता है। अणुव्रत आंदोलन की आधार भित्ति यही है।

7.4.3 समाज परिवर्तन की अक्षमता

कुछ लोग इस भाषा में सोचते हैं कि आध्यात्मिकता से सामाजिक परिवर्तन नहीं हो सकता। हजारों वर्ष बीत जाने पर भी आध्यात्मिक लोग समाज को नहीं बदल सके हैं। समाजवादी पद्धति ने पचास वर्षों से समाज का ढांचा ही बदल दिया है। उनका सोचना सही है। समाज का ढांचा बदलता है आर्थिक विकास और व्यवस्था से। जहां औद्योगिक क्रांति हुई है, वहां समाज का रूप–परिवर्तन हुआ है। फिर वहां समाजवादी पद्धति है या जनतन्त्रीय प्रणाली।

समाज की जो अपेक्षाएं हैं— रोटी, कपड़ा, मकान, दवा, शिक्षा आदि वे सब अर्थ के अधीन हैं। अर्थाधीन व्यवस्था की पूर्ति की अपेक्षा आध्यात्मिकता से की जाए, यह मूल में भूल है। इस प्रकार आध्यात्मिकता से होने वाले सामाजिक लाभ की अपेक्षा अर्थव्यवस्था से की जाए वह भी मूल में भूल है। हमें हर वस्तु का मूल्यांकन उसके वास्तविक अस्तित्व के आधार पर करना चाहिए।

7.4.4 आध्यात्मिकता क्यों?

आर्थिक विकास और व्यवस्था होने पर भी आज का सम्पन्न मनुष्य उतना ही अर्थ लोलुप है जितना पहले था। वैज्ञानिक विकास अपने चरम शिखर पर है, फिर भी आज का विज्ञानजीवी मनुष्य उतना ही आक्रामक है, जितना पहले था। शिक्षा का स्तर बहुत ऊंचा होने पर भी आज का शिक्षित मानव उतना ही स्वार्थी है, जितना पहले था। आर्थिक, वैज्ञानिक और शैक्षणिक विकास ने मनुष्य के व्यवहार को बदला है पर उसी को बदला है जो उनसे सम्बन्धित है। मनुष्य में ऐसी अनेक मूल प्रवृत्तियां हैं जिन्हें ये नहीं बदल सकते। क्रोध, अभिमान, कपट, लोभ, भय, शोक, घृणा, काम–वासना, कलह ये मनुष्य की शाश्वत मूल प्रवृत्तियों से उत्पन्न होने वाले दोष उनसे नहीं मिटते। मूल प्रवृत्तियों का नियंत्रण या शोधन आध्यात्मिकता से ही हो सकता है, इसलिए समाज में उसका अस्तित्व अनिवार्य है।

आध्यात्मिकता से भले ही समाज का रूप परिवर्तन न हुआ हो किन्तु उससे सत्य के प्रति आस्था की सृष्टि हुई है। चरित्र और नैतिकता के प्रति जो आस्था है, वह आध्यात्मिकता का ही प्रतिफलन है। अध्यात्म का अंकन संख्या से नहीं किया जाता। उसका अंकन गुणवत्ता से किया जाता है। आध्यात्मिक व्यक्तियों का जीवन इसका स्वयंभू प्रमाण है।

7.4.5 अध्यात्म का व्यावहारिक रूप

जिन विचार धाराओं ने मनुष्यों को भौतिक इकाइयों में विभक्त किया है, वे सब काल्पनिक और सामयिक हैं। आध्यात्मिकता का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रतिबिम्ब मानवीय विभक्ति नहीं किन्तु एकता है। उसके अनुसार भौगोलिक, जातीय, साम्प्रदायिक, भाषायी भेद अस्वाभाविक हैं, एकता स्वाभाविक है।

आध्यात्मिक व्यवहार की स्वीकृति के मुख्य अंग हैं—

1. मानवीय एकता में विश्वास, 2. मानवीय स्वतंत्रता में विश्वास, 3. विश्व–शांति एवं विश्व–मैत्री में विश्वास, 4. सह–अस्तित्व में विश्वास, 5. सत्य में विश्वास, 6. प्रामाणिकता में विश्वास, 7. निश्छल व्यवहार में विश्वास, 8. पवित्रता में विश्वास एवं 9. संग्रह की सीमा में विश्वास।

ये विश्वास धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों में आस्था को प्रकट करते हैं। प्रथम चार विश्वास अहिंसा अणुव्रत के फलित हैं। पांचवा सत्य, छठा–सातवां अचौर्य, आठवां ब्रह्मचर्य और नवां अपरिग्रह का फलित है। व्यवहार में अध्यात्म का प्रतिफलन जीवन की महान् सफलता है। इससे व्यक्ति और समाज दोनों लाभान्वित होते हैं।

ज्ञान में बहुत विश्वास किया जाता है पर उस ज्ञान से सफलता का विश्वास नहीं किया जा सकता जो साधना शून्य है। अणुव्रत आंदोलन मात्र ज्ञान का आंदोलन नहीं है, वह साधना का भी आंदोलन है। इसमें ज्ञान की अपेक्षा नहीं है, ऐसा नहीं है। किन्तु इसमें साधना की प्रधानता है। ऐसे अनेक लोग हैं जो बुराई को जानते हैं पर छोड़ नहीं पाते। बुराई को बुराई न जानने वाला उसे न छोड़े वह अज्ञान है पर बुराई को बुराई मानने वाला उसे न छोड़े, वह कुछ और है। इससे फलित होता है कि बुराई कोरे ज्ञान से नहीं छूटती। उसे छोड़ने के लिए कुछ और भी अपेक्षित है। वह है साधना अर्थात् अभ्यास। साधना का तात्पर्य है कि ज्ञान को अभ्यास की आंच में पकाना और उतना पकाना जिससे जानने और करने के बीच की दूरी मिट जाए। आत्म–चिन्तन, ध्यान और मैत्री का अभ्यास यह अणुव्रत की साधना है इससे गृहीत व्रत सिद्ध होते हैं, सुख और शांति के प्रति काल्पनिक मान्यता वास्तविकता में बदल जाती है।

7.4.6 संयम का अर्थ

मनुष्य अपूर्ण है। अपूर्ण इस अर्थ में है कि वह अपेक्षाओं से घिरा हुआ है। उसके शरीर है, इसलिए खाने–पीने की अपेक्षा है। उसके वाणी है इसलिए उसे समाज की अपेक्षा है। उसके मन है, इसलिए मान–सम्मान एवं पूजा–प्रतिष्ठा की अपेक्षा है। एक मनुष्य, हजारों अपेक्षाएं। वे पूरी होती हैं बाह्य जगत् से। वह बाह्य जगत् से लेता है और अपने में भरता है। यह आदान / ग्रहण उसकी व्यक्तिगत सीमा को तोड़ उसे सामाजिक बना देता है व्यक्ति यदि निरपेक्ष होता, बाहर से कुछ भी लेना अपेक्षित नहीं होता तो वह व्यक्ति ही होगा किन्तु ऐसा नहीं है। इसीलिए वह व्यक्ति और सामाजिक दोनों रूपों में अवस्थित है।

समाज की श्रृंखला अपेक्षा है और वही हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रह का उद्‌गम–हेतु है। पूर्णता की ओर बढ़ने का मार्ग है अपेक्षाओं का संयम। अपेक्षाओं के संयम का अर्थ है हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रह का संयम। संयम का अर्थ है– उस व्यक्तित्व का विकास जो बाह्य से निरपेक्ष होकर अपने–आप में परिपूर्ण, संतुष्ट और परितृप्त है। निरपेक्षता की स्थिति ध्यान की उत्कृष्ट साधना के द्वारा प्राप्त हो सकती है। अति–सापेक्षता की स्थिति ध्यान की साधना से प्राप्त हो सकती है। उसमें अपेक्षाएं रहती हैं पर निरंकुश नहीं। उनकी पूर्ति का प्रयत्न किया जाता है पर येन–केन–प्रकारेण नहीं। इस संस्कार धारा में हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रह की प्रवृत्ति सीमित हो जाती है। यही 'अणुव्रत' है। परिभाषा की शब्दावली में ध्यान की मध्यम साधना द्वारा अपेक्षाओं का परिसीमन और फलतः हिंसा आदि का परिसीमन ही 'अणुव्रत' है।

7.5 अणुव्रत आंदोलन – वर्तमान स्वरूप

अणुव्रत नया तत्त्व नहीं है पर वर्तमान की समस्याओं के संदर्भ में नया रूप है। समस्याओं के समाधान में जिन व्रतों की आवश्यकता है उन्हें 'अणुव्रत' में संकलित किया गया है। अणुव्रत शब्द जैनागमों से लिया गया है पर यहां इसका प्रयोग छोटे–छोटे 'व्रत' इस सामान्य अर्थ में किया गया है। व्रत छोटे–बड़े नहीं होते हैं। वे अपने आप में पूर्ण होते हैं किन्तु आचरण की क्षमता की भिन्नता के आधार पर उसके दो स्तर है– महाव्रत और अणुव्रत। सीमा रहित, बिना किसी छूट के व्रतों का स्वीकार महाव्रत है। विभिन्न छूटों एवं सीमा के साथ स्वीकार किये जाने वाले व्रत अणुव्रत कहलाते हैं।

7.5.1 अर्थ एवं परिभाषा

आचार्य तुलसी के अनुसार 'अणुव्रत' क्या है? शाब्दिक दृष्टि से अणु का अर्थ है 'छोटा' और व्रत का अर्थ है 'नियम'। छोटे–छोटे नियमों का एक आचार–संहिता के रूप में संकलन। भावानात्मक दृष्टि से अणुव्रत का अर्थ है–

चरित्र निर्माण की प्रक्रिया; सर्व सम्मत मानव जीवन की आचार संहिता ; एवं सम्प्रदाय विहीन धर्म का प्रयोग।

सम्प्रदाय गौण है और धर्म मुख्य है। उपासना गौण है, चरित्र प्रधान है। केवल अगले जीवन की चिन्ता गौण है, वर्तमान जीवन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

की पवित्रता मुख्य है। रूढ़ परम्पराएं—कर्मकाण्ड गौण हैं, प्रायोगिक जीवन प्रधान है। साम्प्रदायिक मतवाद का आग्रह गौण है, सब धर्म सम्प्रदायों के साथ सद्भाव का प्रयत्न मुख्य है। मानव—मानव का अपना धर्म है, 'अणुव्रत' असाम्प्रदायिक और निर्विशेषण धर्म का प्रतीक है।

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार— 'अणुव्रत चरित्र विकास के लिए किये जाने वाले संकल्प हैं। स्वरूप की दृष्टि से व्रत एक है। व्रत का काम है आत्मा और उसे अपवित्र बनाने वाली दुनिया के बीच में दीवार खड़ी करना पर दीवार कमजोर भी हो सकती है और मजबूत भी। अभ्यास के आरम्भ में वह उतनी मजबूत नहीं बनती जितनी कि अभ्यास करते—करते युगों बाद बनती है। व्रत के प्रारम्भिक या अल्प—अभ्यास को अणु कहा गया है। आत्मा और अपवित्रता के बीच लोहावरण सघन नहीं बना, दीवार मजबूत नहीं बनी, इसलिए इसका नाम अणुव्रत हो गया।'

किशोरलाल मश्रुवाला के अनुसार अणुव्रत का अर्थ है— प्रत्येक व्रत का अणु से लेकर सब व्रतों का क्रमशः बढ़ता हुआ पालन। उदाहरण के लिए कोई आदमी जो अहिंसा और अपरिग्रह में विश्वास रखता है लेकिन उसके अनुसार चलने की ताकत अपने में नहीं पाता, इस पद्धति का आश्रय लेकर किसी विशेष हिंसा से दूर रहने या एक हद के बाहर और किसी खास ढंग से संग्रह न करने का संकल्प करेगा और धीरे—धीरे अपने लक्ष्य की ओर बढ़ेगा। ऐसे व्रत अणुव्रत कहलाते हैं।

डॉ. नथमल टाटिया के अनुसार 'अणुव्रत' बहुचर्चित विषय है। यह जीवन—विकास का मध्यम मार्ग है। अणुव्रत अव्यवहार्य को व्यवहार्य बनाता है। मनुष्य अपनी सारी प्रवृत्तियों में ऐसा मध्यम मार्ग अपनाकर समाज एवं राष्ट्र को उन्नत बना सकता है। वह अनावश्यक संघर्षों से मुक्त रह सकता है और सुखी समाज रचना में प्रवृत्त हो सकता है। अणुव्रत सामूहिक जीवन विकास का एक मंगल मार्ग है। वह एक शब्द या कल्पना मात्र नहीं है। बल्कि भोग और त्याग के सच्चे समन्वय का दिग्दर्शक एवं राजपथ है।

सुरजीतसिंह लाहिड़ी, तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश, कलकत्ता उच्च न्यायालय के अनुसार— 'अणुव्रत आंदोलन का उद्देश्य गृहस्थों का नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान करना है और इसके लिए वह उन्हें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य की एक निर्धारित सीमा तक प्रतिज्ञाएं लेने की प्रेरणा देता है। इसका लक्ष्य है कि मनुष्य अपनी प्रकृति का नैतिक रूपान्तरण करे। इस आंदोलन के सूत्रधार आचार्यश्री तुलसी स्वयं एक महाव्रती हैं इसीलिए वे साधारण व्यक्तियों से अणुव्रत की प्रतिज्ञाएं लेने का अनुरोध करते हैं।'

रामसेवक श्रीवास्तव के अनुसार— 'अणुव्रतों का विधान व्रतों का समीकरण या संयम और असंयम, सत्य और असत्य, अहिंसा और हिंसा, अपरिग्रह और परिग्रह का मिश्रण नहीं अपितु जीवन की मर्यादा का स्वीकरण है।

अणुव्रत आंदोलन मूलतः चारित्रिक आंदोलन है। नैतिकता और सत्याचरण ही इसके मूलमंत्र हैं। आत्म—विवेचन और आत्म—परीक्षण इसके साधन हैं। कल्याण ही जीवन का परम सत्य है। जिसकी साधना आचरण है। अणुव्रत आंदोलन उसी की भूमिका है।

7.5.2 प्रकृति एवं स्वरूप

अणुव्रत आंदोलन की प्रकृति प्रारम्भ से ही असाम्प्रदायिक रही है। यह जनता को जैनधर्म या तेरापंथ में दीक्षित करने का उपक्रम नहीं था। इसका विशुद्ध उद्देश्य था— चरित्र विकास। नामकरण करते समय यह विकल्प उठा कि यह आंदोलन जैन—अजैन सभी के लिए है, तब इसका नाम अणुव्रत आंदोलन क्यों रखा जाए? लोग इसे असाम्प्रदायिक कैसे मानेंगे?

और अनेक नाम सोचे गये पर उपयुक्त नाम जंचा नहीं। अणुव्रत अनुशास्ता का यह विचार था कि नाम बहुत बड़ा और काम छोटा, यह नहीं चाहिए। अणुव्रत शब्द इस भावना का प्रतिनिधित्व करने में समर्थ है। छोटे—छोटे व्रतों से बड़ा काम हो सकता है, इस संकल्प की पृष्ठभूमि पर आंदोलन को 'अणुव्रत आंदोलन' की संज्ञा मिली।

प्रारम्भ में एक कठिनाई थी। लोग जब आचार्यश्री तुलसी को साम्प्रदायिक मानते थे तो उनके आंदोलन को असाम्प्रदायिक कैसे मान लेते? यह कोई अस्वाभाविक बात नहीं थी कि लोग उसे साम्प्रदायिक रूप से देखें। प्रारम्भ में आंदोलन सम्प्रदाय की दृष्टि से ही देखा जाता रहा। आंदोलन के पहले वर्ष में आचार्यश्री जयपुर में चातुर्मास बिता रहे थे। वहाँ डॉ. राजेन्द्र प्रसाद आए। उन दिनों वे भारतीय विधान परिषद् के अध्यक्ष थे। अणुव्रत आंदोलन की चर्चा चलने पर उन्होंने कहा 'इसका प्रसार तीव्र गति से होना चाहिए।' आचार्यश्री ने कहा 'हम भी चाहते है पर अभी एक कठिनाई है।'

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद— 'वह क्या?'

आचार्यश्री— 'यही कि दूध का जला छाछ को भी फूंक कर पीता है। लोग आंदोलन को अभी साम्प्रदायिक दृष्टि से देखते हैं।'

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद 'यह दृष्टिकोण अपने आप मिट जाएगा, जैसे—जैसे लोग सम्पर्क में आएंगे।'

आचार्यश्री— 'हम यही चाहते हैं कि लोग इस भावना को समझें और जिस चरित्र बल की आवश्यकता है, उसे सहसा पूर्ण करें।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रारम्भ में प्रत्येक प्रवृत्ति को कठिनाई का सामना करना पड़ता है, अणुव्रत आंदोलन भी उसका अपवाद कैसे हो सकता था? किन्तु जिसका मूल प्रकाशमय होता है, उसका भविष्य आवरणमय नहीं हो सकता। एक दो वर्ष के सतत् प्रयास के बाद आवरण टूट गया, आंदोलन जनता का बन गया।

जैन, वैष्णव, सनातनी– ये सब हिन्दू समाज के अंग हैं। वे अणुव्रती बने। इससे अणुव्रत का असाम्प्रदायिक अस्तित्व प्रगट होता है पर इसे आश्चर्य नहीं कहा जा सकता। आश्चर्य वह है कि मुसलमानों और ईसाइयों को भी अणुव्रत में अपने–अपने धर्मों की झलक मिली।

दिनांक 17 अगस्त, 1960 को अमेरिका के भारत स्थित सांस्कृतिक सचिव श्री डंकन इमरिक ने आचार्यश्री से वार्तालाप करते हुए कहा– 'मुझे लगता है प्रभु क्राइस्ट ने जो दर्शन दिया है, अणुव्रत आंदोलन उसी के समान है। प्रभु क्राइस्ट ने जिस मनोवैज्ञानिक ढंग से समाज में व्याप्त विकृतियों को दूर करने का प्रयास किया, अणुव्रत आंदोलन उसी प्रकार छोटे–छोटे व्रतों द्वारा समाज की विकृतियों का परिष्कार कर रहा है।'

फ्रांसीसी वाणिज्य महादूत श्री ए. मासामोद अपने उपवाणिज्य महादूत श्री जे.एस. पेसि सहित आए। उन्होंने अणुव्रत आंदोलन सम्बन्धी अनेक प्रश्न पूछे और समुचित समाधान पाकर ऐसा विश्वास व्यक्त किया कि अणुव्रत आंदोलन को विश्व मानवता की रक्षा करने में सफलता मिलेगी। उन्होंने बातचीत के क्रम में बतलाया कि फ्रांसीसी लोगों में इसके प्रति विशेष अभिरूचि है और इसका प्रचार विदेशों में होना चाहिए। पश्चिमी देश ऐसे आंदोलन को अत्यन्त आवश्यक समझते हैं। मैं आश्वासन देता हूं कि मैं अणुव्रत आंदोलन के प्रचार–प्रसार में पूर्ण सहयोग करूंगा।

आचार्यश्री मुम्बई से विदा हो रहे थे। उस समय इंडियन नेशनल चर्च के अध्यक्ष फादर जे.एस. विलियम ने कहा– 'मैं कुछ दिन पूर्व नार्वे में होने वाली शांति परिषद् में भाग लेने जा रहा था। आचार्यश्री की प्रेरणा से मैंने अणुव्रत ग्रहण किए। दिसम्बर की भयानक सर्दी में मैं वहां पहुंचा। साथियों ने कहा– 'मदिरा के बिना इस शीत प्रदेश में ठिठुर जाओगे। पर मैं अणुव्रत ले चुका था। मैं मदिरा कैसे पीता? मेरा संकल्प अडिग रहा। मैं सकुशल लौट आया। मैंने पश्चिम के लोगों से अणुव्रत के बारे में चर्चा की। ब्रिटेन, नार्वे, स्वीडन फ्रांस तथा रूस के लोगों को इससे परिचित कराया। उन्होंने इसमें बड़ी रुचि प्रदर्शित की।

मैं राष्ट्र के ईसाई भाईयों से यह अनुरोध करूंगा कि हमारे राष्ट्र में चलने वाले नैतिक आंदोलन में वे अपना सहयोग करें। यह किसी सम्प्रदाय विशेष का आंदोलन नहीं है। यह तो आत्मशक्ति को जागृत करने का आंदोलन है।

एक मुसलमान भाई आया। अणुव्रत की चर्चा चली। आचार संहिता बताई। आचार्यश्री ने पूछा– 'अणुव्रती बनोगे?' वह बोला– 'खुदा की आज्ञा मिली तो अवश्य बनूंगा।' वह अपने घर चला गया। घर छत पर जा खुदा को पुकारा जोर–जोर से आवाज दी। फिर मन ही मन गुनगुनाने लगा। थोड़ी देर बाद वह प्रसन्नता से भर गया। आचार्यश्री के पास जाकर बोला– 'मुझे खुदा से अनुमति मिल गई है। अब मैं अणुव्रती बनूंगा।' उसने आचार्यश्री के पास अणुव्रत का संकल्प स्वीकार कर लिया।

अणुव्रत के उदार दृष्टिकोण ने उसे सार्वभौम बना दिया उदारता की साधना कठिन है। यदि वह सध जाए तो एक महान् वशीकरण मंत्र है। ठाकुर मोहरसिंह के साथ मोण्डीजी मद्रास आए। वे अभी–अभी मक्का की यात्रा कर लौटे थे। आचार्यश्री से अणुव्रत के बारे में बातचीत कर रहे थे। इतने में नमाज का समय हो गया। वे स्थान की खोज में इधर–उधर देखने लगे। आचार्यश्री ने उनके भाव को समझकर कहा– 'क्या कहीं जाना है?' मोण्डीजी ने कहा– ' नमाज पढ़ने के लिए नीचे एकांत में जाना चाहता हूं फिर आकर बात करूंगा।

आचार्यश्री– क्या यहां एकांत नहीं है।

मोण्डीजी– आपके सामने नमाज पढ़ सकता हूं?

आचार्यश्री– क्यों नहीं? हम भी देखेंगे, आप नमाज कैसे पढ़ते हैं?

मोण्डीजी ने पश्चिम की ओर मुंह कर वहीं नमाज पढ़ी। उपासना की पद्धति भिन्न हो सकती है पर अणुव्रत सबके लिए अभिन्न है। इस अभेद की अवधारणा ने अणुव्रत को समन्वय–मंच बना दिया।

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी राजाजी (राजगोपालाचारी) के निवास–स्थान पर पधारे। राजाजी ने आचार्यश्री के आगमन पर प्रसन्नता प्रकट की। आचार्यश्री ने कहा– 'भारत के वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ एवं महान् चिन्तक से मिलकर मैं भी प्रसन्न हूं।' प्रसन्नता की अभिव्यक्ति के पश्चात् वार्तालाप शुरू हुआ।

अणुव्रत अनुशास्ता– 'हमने कल ही स्वराज्य में अणुव्रत के विषय में आपकी टिप्पणी पढ़ी। वैचारिक मिलन कल हो गया था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आज हम साक्षात् मिल रहे हैं।'

राजाजी— 'मुझे अणुव्रत बहुत पसन्द है।'

आचार्यश्री— 'इस विषय में आपका क्या परामर्श है?

राजाजी— 'अणुव्रत सम्प्रदाय न बने। बस इतना सा आग्रह है।'

आचार्यश्री— 'इस विषय में मैं बहुत सजग हूं।'

राजाजी— 'सम्प्रदाय बुआई के बिना उपजने वाली घास है। इसलिए सजगता अति आवश्यक है।

अणुव्रत आंदोलन धीरे—धीरे असाम्प्रदायिक आंदोलन के रूप में जनमान्य हो गया।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने इसके असाम्प्रदायिक स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा— 'अणुव्रत आंदोलन असाम्प्रदायिक एवं सार्वभौम है। यह चाहे जिस नाम से चले, हमें काम से मतलब है और इसका नामकरण चाहे जो भी कर दिया जाये, लाभ वही होगा। इसलिए अपेक्षा यह है कि आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित नैतिक अभ्युत्थान के इस पथ को समझ, परख और सीखकर जीवन में अनुकरण करें।'

सादिकअली, महाराष्ट्र ने भी इसके सम्प्रदायातीत रूप पर टिप्पणी करते हुए कहा है— 'अणुव्रत मानव मात्र के लिए संगठन सूत्र है। नैतिक उत्क्रांति में आचार्य तुलसी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। सभी महान् धर्मों का मुख्य ध्येय यही रहा कि खासकर मानव जीवन में एकता स्थापित हो। मनुष्यों के बीच विभाजन को तोड़ने का, मानव—मानव को जोड़ने का कार्य अणुव्रत कर रहा है। इसकी रूपरेखा सम्प्रदायातीत है।'

7.5.3. अणुव्रत के निर्देशक तत्त्व

आंदोलन के प्रारम्भ में नियमों की संख्या तेरह थी जो बढ़कर छियासी हो गई। सन् 1958 में अणुव्रतों की संख्या में फिर परिवर्तन किया गया। इस अवसर पर व्रतों की भाषा का परिष्कार किया गया। अणुव्रतियों की श्रेणी बनाई गई— प्रवेशक अणुव्रती, अणुव्रती और विशिष्ट अणुव्रती। प्रवेशक अणुव्रती के लिए ग्यारह नियमों का विधान किया गया। अणुव्रती को अणुव्रतों के साथ उसके शील और चर्या का पालन करना होता है। इस अवसर पर वर्गीय अणुव्रतों का भी विधान किया गया।

सन् 1965—66 के समय उक्त आचार संहिताओं की पुनर्विवेचना कर व्रतों की सख्या और सीमित की गई। अक्टूबर सन् 1983 में एक बार फिर अणुव्रतों में सामंजस्य स्थापित किया गया। अणुव्रत की भाषा और अधिक परिष्कृत की गई। इसमें अणुव्रत के निर्देशक तत्त्व, ग्यारह अणुव्रत, अणुव्रत—साधना तथा वर्गीय अणुव्रतों में शिक्षक, श्रमिक, कृषक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार सम्बन्धी अणुव्रतों को भी प्रथम बार लिया गया तथा पुराने वर्गीय अणुव्रतों में भी दूसरे नवीन अणुव्रत सम्मिलित कर लिये गये। अणुव्रत के निर्देशक तत्त्व निम्न है—

1. दूसरों के अस्तित्व के प्रति संवेदनशीलता।
2. मानवीय एकता।
3. सह—अस्तित्व की भावना।
4. साम्प्रदायिक सद्भाव।
5. अहिंसात्मक प्रतिरोध।
6. व्यक्तिगत संग्रह और भोगोपभोग की सीमा।
7. व्यवहार में प्राथमिकता।
8. साधन—शुद्धि की आस्था।
9. अभय, तटस्थता और सत्य—निष्ठा।

7.5.4. अणुव्रत आचार संहिता

1. मैं किसी भी निरपराध प्राणी का संकल्पपूर्वक वध नहीं करूंगा।
   - आत्महत्या नहीं करूंगा।
   - भ्रूण हत्या नहीं करूंगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. मैं आक्रमण नहीं करूंगा।
   - आक्रामक नीति का समर्थन नहीं करूंगा।
   - विश्व शांति तथा निःशस्त्रीकरण के लिए प्रयत्न करूंगा।
3. मैं हिंसात्मक एवं तोड़फोड़–मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा।
4. मैं मानवीय एकता में विश्वास करूंगा।
   - जाति, रंग आदि के आधार पर किसी को ऊंच–नीच नहीं मानूंगा।
   - अस्पृश्य नहीं मानूंगा।
5. मैं धार्मिक सहिष्णुता रखूंगा।
   - साम्प्रदायिक उत्तेजना नहीं फैलाऊंगा।
6. मैं व्यवसाय और व्यवहार में प्रामाणिक रहूंगा।
   - अपने लाभ के लिए दूसरों को हानि नहीं पहुंचाऊंगा।
   - छलनापूर्ण व्यवहार नहीं करूंगा।
7. मैं ब्रह्मचर्य की साधना और संग्रह की सीमा का निर्धारण करूंगा।
8. मैं चुनाव के सम्बन्ध में अनैतिक आचरण नहीं करूंगा।
9. मैं सामाजिक कुरूढ़ियों को प्रश्रय नहीं दूंगा।
10. मैं व्यसन–मुक्त जीवन जीऊंगा।
   - मादक तथा नशीले पदार्थ.शराब, गांजा, चरस, हेरोइन, भांग, तम्बाकू आदि का सेवन नहीं करूंगा।
11. मैं पर्यावरण की समस्या के प्रति जागरूक रहूंगा।
   - हरे–भरे वृक्ष नहीं काटूंगा।
   - पानी का अपव्यय नहीं करूंगा।

(अणुव्रती के लिए सम्बन्धित वर्गीय अणुव्रतों का पालन अनिवार्य है)

7.5.5 वर्गीय अणुव्रत

विद्यार्थी अणुव्रत

मैं परीक्षा में अवैध उपायों का सहारा नहीं लूंगा।

मैं हिंसात्मक एवं तोड़फोड़–मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा।

मैं अश्लील शब्दों का प्रयोग नहीं करूंगा, अश्लील साहित्य नहीं पढ़ूंगा तथा अश्लील चिलचित्र नहीं देखूंगा।

मैं मादक तथा नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करूंगा।

मैं चुनाव के सम्बन्ध में अनैतिक आचरण नहीं करूंगा।

मैं दहेज से अनुबंधित एवं प्रदर्शन से युक्त विवाह नहीं करूंगा और न भाग लूंगा।

मैं बड़े वृक्ष नहीं काटूंगा और प्रदूषण नहीं फैलाऊंगा।

शिक्षक अणुव्रत

मैं विद्यार्थी के बौद्धिक–विकास के साथ चरित्र–विकास में भी सहयोगी बनूंगा।

मैं विद्यार्थी को उत्तीर्ण करने में अवैध उपायों का सहारा नहीं लूंगा।

मैं अपने विद्यालय में दलगत राजनीति को प्रश्रय नहीं दूंगा। न इसके लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करूंगा।

मैं मादक और नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करूंगा।

मैं अणुव्रत–प्रसार में अपना योग दूंगा।

अधिकारी / कर्मचारी अणुव्रत

मैं रिश्वत नहीं लूंगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मैं अपने प्राप्त अधिकारों का अनुचित प्रयोग नहीं करूंगा।

मैं अपने कर्त्तव्य—पालन में जान—बूझकर विलम्ब या अन्याय नहीं करूंगा।

मैं मादक और नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करूंगा।

श्रमिक अणुव्रत

मैं अपने कार्य में प्रामाणिकता रखूंगा।

मैं हिंसात्मक उपद्रवों एवं तोड़फोड़—मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा।

मैं मद्यपान एवं धूम्रपान नहीं करूंगा तथा नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करूंगा।

मैं जुआ नहीं खेलूंगा।

7.5.6 स्वस्थ समाज संरचना

अणुव्रत की आचार संहिता के अन्तर्गत वर्तमान की कुछ बुराइयों के प्रति संकेत किया गया है पर वास्तव में अणुव्रत एक जीवन दर्शन है। आचार संहिता उसकी अभिव्यक्ति है। उसके माध्यम से आदमी व्रती बनता है। अणुव्रत ने समाज को विकृत कराने वाले तत्त्वों, भ्रष्ट आचरणों, अंधविश्वासों व अर्थहीन रूढ़ि—परम्पराओं को निरस्त करने के लिए आवाज उठाई और समाज में नैतिक चेतना के वातावरण का निर्माण किया। इसी भूमिका के मध्य यह अनुभव हुआ कि केवल संशोधन या सुधार का महत्त्व तो अवश्य है किन्तु व्यवस्थागत कठिनाइयों के बीच संशोधन या सुधार की बात का प्रभाव चिरस्थायी रहना कठिन है। इसी समस्या के निराकरण से स्वस्थ समाज की परिकल्पना सामने आई।

किसी भी समाज के निर्माण में राजनीति और अर्थ का प्रमुख हाथ रहता है। अणुव्रत भी इनके महत्त्व को स्वीकार करता है किन्तु इनको सर्वोपरि महत्त्व नहीं देता। इसका विश्वास है कि व्यवस्थाओं में राजनीति और अर्थनीति से परिवर्तन अवश्य हुए हैं किन्तु उन्हें सर्वोपरि महत्त्व देने से समस्याएं और अधिक गहरा जाती हैं। अणुव्रत समाज व्यवस्था, मानसिक अनुशासन को प्रधानता देती है। कोई भी शासन या अर्थतंत्र तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक उसके साथ मानसिक अनुशासन नहीं जुड़े। मानसिक अनुशासन के विकास में किसी बाहरी अनुशासन की अपेक्षा नहीं होती। मानसिक स्वतंत्रता जितनी पुष्ट होती जाएगी बाहरी सुचारुता उतनी ही बढ़ती जाएगी। इसलिए अणुव्रत जन—जीवन में व्रतों का विकास करना चाहता है। उससे जो अन्तर्जागरण होगा, उससे व्यवस्था भी अपने आप सुचारु बन जाएगी।

किसी भी व्यवस्था को जन्म लेने में देश—काल की परिस्थितियां भी महत्त्वपूर्ण भाग अदा करती हैं। अणुव्रत मानव मात्र को सामने रखकर ऐसी व्यवस्था रूपायित करना चाहता है जो व्यक्ति और समाज दोनों में संतुलन स्थापित कर सके। अणुव्रत के मंच से स्वस्थ समाज रचना पर गहराई से विचार कर कुछ सूत्र इस प्रकार निर्धारित किये गए हैं —

1. हिंसा समस्या का समाधान नहीं, इस आस्था का निर्माण।
2. मानवीय एकता में विश्वास।
3. दूसरों के श्रम का अशोषण।
4. मानवीय सम्बन्धों का विकास।
5. अर्थ एवं सत्ता का विकेन्द्रीकरण।
6. वैचारिक सहिष्णुता।
7. जीवन—व्यवहार में करुणा का विकास।
8. आहार—शुद्धि और व्यसन—मुक्ति।
9. सामाजिक रूढ़ियों का परिष्कार।

7.5.6.1 हिंसा समाधान नहीं

स्वस्थ समाज रचना में हिंसा को समस्या का समाधान नहीं माना जा सकता। वर्तमान राजनीति में हिंसा को, शस्त्र को ही समाधान माना जाता है, यही समस्या का मूल है। एक ओर जब शस्त्र पर धार चढ़ती है तो दूसरी ओर उसे और ज्यादा तेज बनाने का प्रयास शुरू हो जाता है। इस स्पर्धा ने ही संसार में शस्त्रों के भयंकर जखीरे खड़े किए हैं पर उनसे समस्या उलझती ही है। अणुव्रत का पहला व्रत है मैं किसी पर आक्रमण नहीं करूंगा तथा आक्रामक नीति का समर्थन भी नहीं करूंगा। जब आदमी आक्रामक नहीं होगा तो अहिंसा की प्रतिष्ठा अपने आप हो जाएगी। यह अहिंसा में आस्था होने का पहला चरण है।

सामाजिक आदमी पूर्ण अहिंसक न बन सके तो भी आवश्यक है कि उसकी आस्था अहिंसा में रहे। कुछ लोग हिंसा से बच सकते हैं, इसलिए उसे ही समाधान का उपाय मान लेते हैं। यह हिंसा की प्रतिष्ठा है। अणुव्रती कभी—कभी हिंसा से बच नहीं सकता फिर भी उसे आदर्श नहीं मानता, यह अहिंसा की प्रतिष्ठा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि समस्या का अंतिम समाधान अहिंसा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

में ही निहित है। समय पर कभी अशक्य कोटि की हिंसा का आचरण हो भी जाता है तो भी वह स्वस्थ जीवन का विकास नहीं है। हिंसा हिंसा को जन्म देती है। सारा संसार इस क्रिया–प्रतिक्रिया के जाल में उलझ रहा है। हिंसा समस्या का समाधान नहीं है; इस पर आस्था, अहिंसा की एक महत्त्वपूर्ण उद्घोषणा है।

7.5.6.2 मानवीय एकता

अणुव्रत समाज रचना का दूसरा सूत्र है– मानवीय एकता में विश्वास। हमें भूगोल और इतिहास की इस सच्चाई को स्वीकार करना चाहिए कि मानव समाज कई भागों में बंटा हुआ है। इसी से राष्ट्रों की सीमाएं खड़ी होती हैं। भविष्य में भी इस विभाजन को मिटाया जा सके, यह संभव नहीं है। फिर भी यदि मानवीय एकता में विश्वास किया जाए तो भावात्मक दूरियों को समाप्त किया जा सकता है। जमीन पर खिंची हुई लकीरें कृत्रिम हैं। जब मन में दीवार खड़ी हो जाती है तो उनमें प्राण पड़ जाते हैं। इसलिए संकीर्ण राष्ट्रवाद से ऊपर उठकर मानवीय एकता पर विश्वास स्वस्थ समाज–रचना का महत्त्वपूर्ण पहलू बन जाता है।

7.5.6.3 परस्परोपग्रह

समाज रचना के बारे में एक मान्यता मत्स्य न्याय की रही है। उसके अनुसार बड़ी मछली हमेशा छोटी मछली को निगलकर ही अपना अस्तित्व कायम रख सकती है पर यह तो जंगल का न्याय है। आदमी का न्याय तो परस्परोपग्रह (परस्पर उपकार / सहयोग) की भूमिका पर अधिष्ठित हो सकता है। एक मनुष्य का हित दूसरे के विरोध में नहीं अपितु सहयोग में ही निहित है। भले ही कुछ लोग अपनी बौद्धिक सामर्थ्य से गरीब लोगों के श्रम का शोषण कर एक बार बड़े बन जाएं पर यह व्यवस्था बहुत लम्बी नहीं चल सकती। इसमें कुछ गरीब लोग भले ही कुछ दिनों के लिए चुप रह जाए पर अंततः प्रतिक्रिया घटित होती ही है। इससे जहां कुछ लोगों को कष्टमय जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ता है वहां अन्य लोग यदि दूसरों के श्रम का शोषण करे तो केवल वह स्वयं ही शांत जीवन नहीं जी सकता है। अपितु दूसरे लोगों के लिए भी शांत जीवन की पृष्ठभूमि का निर्माण करता है। ऐसे लोग ही मशीन की अपेक्षा मनुष्य को ज्यादा महत्त्व दे सकते हैं।

7.5.6.4 आहार–शुद्धि

आहार मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता में है। आहार मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण का प्रमुख घटक है। वह न केवल शरीर का पोषक है अपितु वृत्तियों के निर्माण में भी उसकी अहं भूमिका है। संतुलित आहार के अभाव में जहां एक ओर लाखों–करोड़ों लोग भूखे मरते हैं, वहीं लाखों–करोड़ों लोग अधिक खा–खाकर मरते हैं। तामसिक आहार से समस्याएं और अधिक जटिल बनती जा रही हैं।

7.5.6.5 व्यसन–मुक्ति

नशे से आदमी का स्वास्थ्य बिगड़ता है। चेतना भी सुप्त–लुप्त हो जाती है। अपराधों की एक अजस्र परम्परा प्रारम्भ हो जाती है। आज नशे से पूरी मानवता लहूलुहान हो गई है। इसकी तीव्रता ने दुनिया की अर्थव्यवस्था को डांवाडोल बना दिया है। काले धन की और तस्करी की समस्या भी पूरे यौवन पर है। ऐसी अवस्था में अणुव्रत–प्रेरित समाज–व्यवस्था में आहार–शुद्धि तथा व्यसन–मुक्ति की बात अनिवार्य रूप से जुड़ जाती है।

7.5.6.6 अल्पारम्भ और अल्प–परिग्रह

लोकतंत्र आज की मान्य शासन पद्धति बन गई है। चुनाव इसका मुख्य आधार है पर जब सत्ताशीर्ष पर कुछ लोग जमने की कोशिश करते हैं तो चुनाव में गंदगी का प्रवेश होता है। जिस दिन सत्ता और पूंजी पर लोक का स्वत्व होगा उसी दिन सच्चा लोकतंत्र प्रतिष्ठित होगा। यही अहमिन्द्रता तथा सच्चा समाजवाद होगा। निश्चय ही इस दृष्टि से नये अर्थतंत्र को विकसित करना होगा। अल्पारम्भ और अल्प–परिग्रह उस समय तक शांति से नहीं जी सकते। दूसरी ओर तंत्र के दो महत्त्वपूर्ण आधार बनेंगे। यह सारा हृदय–परिवर्तन से ही संभव है। केवल कानून या दण्ड के बल पर लोकतंत्र को संस्थापित नहीं किया जा सकता। उसके लिए जन–जन की चेतना को जगाना पड़ेगा। लोक–चेतना जागृत होगी, तभी लोकतंत्र विकसित हो सकेगा।

7.5.6.7 सापेक्ष–दृष्टि

व्यक्ति है तो व्यक्तित्व भी रहेगा। व्यक्तित्व की सबसे पहली अभिव्यक्ति है– विचार। विचार ही सम्प्रदाय तथा वाद के भेद के रूप में प्रकट होता है। यह संभव नहीं है कि सभी लोग एक ही तरीके से सोचें–विचारें। यह स्वाभाविक भी नहीं है क्योंकि सत्य इतना विविधमुखी होता है कि उसे एक रूप में पहचाना ही नहीं जा सकता। ऐसी स्थिति में आवश्यक यही है कि उसकी अनेकमुखता को पहचाना जाए तथा उस पर सापेक्ष दृष्टि से विचार किया जाए। विचार का आग्रह जहां आदमी को असत्य के द्वार पर पहुंचाता है, वहीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सापेक्षता उसे सत्य से साक्षात्कार कराती है। सापेक्षता के इस दर्शन से ही व्यक्ति में वैचारिक सहिष्णुता का उदय हो सकता है। हमें इस बात का अधिकार है कि अपने विचार को सत्य मानें पर यह अधिकार नहीं हो सकता कि दूसरे के विचार को असत्य मानकर उसका तिरस्कार करें। सहिष्णुता का यह भाव ही असली धर्म है। यह सार्वभौम स्वीकृति ही सम्प्रदायों एवं वादों में सौहार्द स्थापित कर सकती है, अनेकता में एकता की अनुभूति करा सकती है।

7.5.6.8 परम्परा और प्रबोध

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। जहां समाज होता है वहां परम्परा भी आवश्यक होती है। हर परम्परा का अपना एक उपयोगी उत्स होता है। पर ज्यों–ज्यों देश–काल की स्थितियां–परिस्थितियां बदलती हैं, बहुत सारी परम्पराएं अपनी उपयोगिता को खो देती हैं। वह न केवल स्वयं ही रूढ़, बोझिल एवं बेमानी बन जाती हैं अपितु उनसे सारी समाज व्यवस्था बीमार बन जाती है। इसीलिए अणुव्रत हर समय रूढ़ियों के परिष्कार के लिए आवाज उठाता रहा है परम्पराओं से इनकार नहीं किया जा सकता पर निरर्थक रूढ़ियों को ढोते रहना भी स्वस्थ समाज और राष्ट्र का लक्षण नहीं हो सकता। इस दृष्टि से अंध–रूढ़ियों के परिष्कार की संभावना निरन्तर बनी रहती है।

इस तरह अणुव्रत जिस समाज–व्यवस्था को रूपाकार देना चाहता है वही उसकी आचार–संहिता में अभिव्यक्त हुई है।

7.5.7 अणुव्रत का कार्य–क्षेत्र

अणुव्रत आंदोलन स्वस्थ समाज की संरचना का आंदोलन है। इसका कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण समाज है। स्वस्थ समाज के निर्माण एवं व्यक्ति में नैतिक चेतना के जागरण के लिए न्यूनतम आचार–संहिता के रूप में इसे प्रस्तुत किया गया। समाज में अनेक वर्ग हैं, अनेक व्यवसाय हैं। उनमें व्याप्त अनैतिकता व बुराइयों को दूर करने के लिए वर्गीय अणुव्रतों का विशेष रूप से सृजन किया गया। यह आंदोलन व्यक्ति–व्यक्ति के सुधार द्वारा स्वस्थ समाज की रचना करना चाहता है।

समाज में व्याप्त बुराइयों के प्रतिकार हेतु जन जागरण इसका मुख्य उद्देश्य है। तदर्थ वातावरण का निर्माण, व्यक्ति–व्यक्ति को अणुव्रत की आचार संहिता से परिचय, स्वेच्छा से बुराइयों को छोड़ने के लिए प्रेरणा एवं संकल्पबद्ध करना अणुव्रत की कार्यशैली है। इसके द्वारा मुख्य रूप से निम्नलिखित क्षेत्रों में कार्य किया जाता है।

7.5.7.1 शिक्षा क्षेत्र – शिक्षा का बहुत व्यापक क्षेत्र है। यह समस्त प्रगति का आधार है पर इस क्षेत्र में भी अनेक बुराइयां तेजी से बढ़ रही हैं। छात्रों में उच्छृंखलता, उद्दण्डता, तोड़–फोड़, नशा, परीक्षा में अवैध उपायों का प्रयोग तेजी से बढ़ता जा रहा है। शिक्षकों में भी दलगत राजनीति व मात्र बौद्धिक आस्था ने अपना विशेष स्थान बना लिया है। अभिभावकों की व्यस्तता व उदासीनता भी बच्चों के चारित्रिक व नैतिक विघटन को बढ़ा रही है।

अणुव्रत आंदोलन द्वारा विद्यार्थी, शिक्षक और अभिभावक तीनों के नैतिक उत्थान के लिए त्रिकोणात्मक अभियान चलाया जाता है। विद्यार्थियों के लिए विद्यार्थी अणुव्रत हैं। उनमें अणुव्रत परीक्षाएं भी आयोजित होती है जिसमें प्रतिवर्ष हजारों विद्यार्थी भाग लेते हैं। वे अणुव्रत की भावना, चिन्तन व दर्शन से परिचित होते हैं। शिक्षकों के नैतिक जागरण के लिए 'शिक्षक अणुव्रतों' का प्रावधान है। अब तक लाखों शिक्षक अणुव्रती बने हैं। इस कार्य को और अधिक गति देने हेतु 'अणुव्रत–शिक्षक–संसद' एवं 'अणुव्रत–छात्र–संसद' का गठन किया गया है।

7.5.7.2 आर्थिक क्षेत्र – समाज के आर्थिक ढांचे में शोषण, मिलावट, कम माप– तौल, जमाखोरी आदि अनेक बुराइयां हैं। इन्हें समाप्त करने की दृष्टि से इस आंदोलन द्वारा अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये जाते हैं। समय–समय पर मिलावट विरोधी अभियान चलाये जाते हैं। व्यापारियों की सभाओं का आयोजन किया जाता है। उसमें नैतिक चेतना को जगाया जाता है। उन्हें 'व्यापारी अणुव्रत' से परिचित करवाया जाता है। उनमें से अनेक व्यक्ति स्वेच्छा से 'व्यापारी अणुव्रतों' को स्वीकार करते हैं एवं स्वस्थ समाज की भूमिका में योगदान देते हैं।

7.5.7.3 राजनैतिक क्षेत्र – राजनीति सम्पूर्ण देश की व्यवस्था का संचालन करती है। उसके कर्णधारों में बढ़ती हुई अनैतिकता, भ्रष्टाचार, हिंसा, आतंक, प्रलोभन आज सम्पूर्ण राष्ट्र में चिंता का विषय है। अणुव्रत आंदोलन के अन्तर्गत राजनीति में नैतिक चेतना के और राष्ट्रीय–चेतना जागरण के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये जाते हैं।

राज्य कर्मचारियों में नैतिक भावनाओं का सम्प्रेषण कर उन्हें जागरूक बनाया जाता है। चुनाव लोकतंत्र की जन्म–कुण्डली है। इसमें जैसे–जैसे ग्रह–नक्षत्र घरों में बैठ जाते हैं, उनका फलादेश पूरे राष्ट्र को पांच वर्ष तक प्राप्त होता रहता है। अणुव्रत ने समस्त राजनैतिक पार्टियों से सम्पर्क स्थापित कर एक सर्वमान्य चुनाव आचार–संहिता का निर्माण किया है। चुनाव के समय प्रत्याशी अणुव्रत और मतदाता अणुव्रत से जनता को परिचित कराया जाता है। लोकतंत्र के सच्चे स्वरूप के प्रति जागरूक करने का कार्य किया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.5.7.4 मानवीय एकता – दुनिया अनेक विविधिताओं से भरी हुई है। भाषा, जाति, सम्प्रदाय, रंग एवं लिंग की विविधता के बीच अणुव्रत मानवीय एकता की आवाज को मजबूत करता है। विभेद हमारी उपयोगिता है। इस उपयोगिता को वास्तविकता मानना समस्या पैदा करता है। इन सभी भेदों से ऊपर उठकर अणुव्रती कार्यकर्त्ता एक मंच से एक साथ हिल–मिलकर नैतिक अभियान को आगे बढ़ाते हैं। मानवीय एकता की भावना को पुष्ट करते हैं।

7.5.7.5 धार्मिक क्षेत्र – अणुव्रत आंदोलन एक असाम्प्रदायिक आंदोलन है। इसके द्वारा सर्वधर्म सद्भाव की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया जाता रहा है। समय–समय पर सभी धर्म के लोग एक मंच पर उपस्थित होते हैं। विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। सर्वधर्म सद्भाव का वातावरण बनाते हैं। अणुव्रत आंदोलन ने सर्वधर्म सद्भाव की दृष्टि से एक पंच–सूत्री योजना भी प्रस्तुत की। वह इस प्रकार है–

1. मंडनात्मक नीति बरती जाए। अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया जाए। दूसरों पर मौखिक या लिखित आक्षेप न किया जाए।

2. दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णुता रखी जाए।

3. दूसरे सम्प्रदाय व अनुयायियों के प्रति घृणा और तिरस्कार की भावना का प्रचार न किया जाये।

4. कोई सम्प्रदाय–परिवर्तन करे तो उसके साथ सामाजिक बहिष्कार आदि अवांछनीय व्यवहार न किया जाये।

5. धर्म के मौलिक तत्त्वों– अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को जीवन–व्यापी बनाने के सामूहिक प्रयत्न किये जाएं।

7.5.7.6 विश्व शांति – आज विश्व शांति का प्रश्न पहले से अधिक महत्त्वपूर्ण बन गया है। अणुव्रत आंदोलन विश्व में अहिंसा द्वारा शांति स्थापित करने का एक रचनात्मक उपक्रम है। न्यूनतम मानवीय मूल्यों के प्रति वैयक्तिक संकल्प का विकास कर विश्व को हिंसा से मुक्ति दिलाने का यह अनूठा प्रयोग है। प्रत्येक व्यक्ति यदि स्वेच्छा से आक्रमण करने का परित्याग कर दे, अहिंसा–अणुव्रत को ग्रहण कर ले तो विश्वशांति की स्थापना सहज ही हो सकती है। विश्वशांति की स्थापना हेतु अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन किया जाता है। ऐसे ही 'विश्व शांति और अहिंसक उपक्रम' विषय पर कई अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम आयोजित किये गये। जिसकी अनुगूंज यू.एन.ओ. तक हुई है। अहिंसक कार्यकर्त्ताओं के लिए 'अहिंसा–प्रशिक्षण' का कार्यक्रम भी चलता है जिससे वे आगे जाकर इस दिशा में विशेष कार्य कर सकें।

7.5.7.7 पर्यावरण चेतना – असीम उपभोक्तावाद तथा सुख–सुविधावादी दृष्टिकोण ने पर्यावरण के असंतुलन को बढ़ाया है। पदार्थ सीमित है, उपभोक्ता अधिक है और इच्छा असीम है। अतः इसके स्वस्थ संतुलन के लिए अणुव्रत–आंदोलन ने इच्छा–संयम पर बल दिया है। जन–जन में पर्यावरण चेतना को जगाने के लिए अणुव्रत आंदोलन ने अणुव्रतों का निर्माण किया है। उसके अन्तर्गत व्यक्ति संकल्पबद्ध होता है कि मैं पर्यावरण की समस्या के प्रति जागरूक रहूंगा। हरे–भरे वृक्ष को नहीं काटूंगा। पानी का अपव्यय नहीं करूंगा।

7.5.7.8 समाज – समाज में क्षेत्र व समय की आवश्यकतानुसार नियम व रीति–रिवाज बनते है। कालान्तर में उनकी उपयोगिता कम हो जाती है। वे रूढ़ि बन जाते हैं। ऐसी रूढ़ियां समाज के विकास में बाधक होती हैं। समाज के ढांचे में अस्पृश्यता, बाल–विवाह, वृद्ध–विवाह, दहेज–प्रथा, मृत्यु–भोज, शोक–प्रथा, पर्दा–प्रथा, व्यसन, निरक्षरता जैसे अनेक अभिशाप हैं जो समाज को रुग्ण बना रहे हैं। अणुव्रत इसके निवारणार्थ समय–समय पर अस्पृश्यता–निवारण, रूढ़ि–मुक्ति, व्यसन–मुक्ति, दहेज–विरोधी अभियान, साक्षरता एवं महिला–जागृति जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों का संचालन करता है। इसके अतिरिक्त 'अणुव्रत–परिवार' एवं 'अणुव्रत ग्राम' की योजना को भी साकार रूप दे रहा है।

7.5.7.9 महिला जागृति – अणुव्रत आंदोलन के अन्तर्गत महिला जागृति का भी अपना एक अमूल्य पृष्ठ है। महिला जागृति के लिए महिला–अणुव्रतों का विधान किया गया जिनके माध्यम से वे बुराइयों से ऊपर उठकर स्वस्थ समाज निर्माण में सहयोगी बन सकें। इस आंदोलन के माध्यम से वे संगठित होकर अनेक सामाजिक कार्यों में भाग लेती हैं। ऐसी महिलाएं 'महिला मण्डल' के रूप में संगठित होकर रक्तदान, विकलांग सहयोग, गरीब बच्चों को गोद लेने जैसे समाज–सुधार के महत्त्वपूर्ण कार्य अपने हाथ में लेती हैं।

7.5.8 अणुव्रत आन्दोलन – भावी अभियान

सन् 1949 ई. में आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रारम्भ किया गया अणुव्रत आन्दोलन 66वां वर्ष पूर्ण कर चुका है। इन वर्षों में अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए इस आन्दोलन ने समय–समय पर अपने कार्यक्रमों में कई परिवर्तन किए हैं। 21वीं सदी में प्रवेश के साथ ही संसार के सामने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नई–पुरानी तरह–तरह की चुनौतियां खड़ी हो गई हैं। उन चुनौतियों को ध्यान में रखकर अणुव्रत महासमिति ने अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री महाप्रज्ञ के सान्निध्य में चिन्तन करके भावी लक्ष्य एवं कार्यक्रम निर्धारित किये थे। विश्व व्यवस्था को संतुलित रखने के लिए आज सभी अहिंसक संस्थाओं को मिल–जुलकर काम करना चाहिए। इस दृष्टि से उन संस्थाओं के साथ 'अहिंसा समवाय' स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

» **लक्ष्य–**

1. विश्व में शांति, 2. सामाजिक रचना में अहिंसा का महत्त्व, 3. व्यवहार–व्यापार में नैतिक आचरण, 4. शिक्षा में अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय, 5. राजनीति में सिद्धान्त और सेवा का महत्त्व, 6. सभी स्तरों पर अनेकान्त दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा एवं 7. व्यवहार में समान धर्मी संस्थाओं के साथ सहयोग।

» **कार्यक्रम–**

1. विश्व शांति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन।
2. सामाजिक रचना में अहिंसा का महत्त्व बढ़ाने के लिए 'अणुव्रत परिवार' का विस्तार।
3. व्यापार, व्यवहार में नैतिक आचरण के लिए जनसम्पर्क और संकल्प।
4. शिक्षा में अध्यात्म और विज्ञान के लिए जीवन विज्ञान को बढ़ावा।
5. राजनीति में सेवा और सिद्धान्त के लिए संसदीय मंच को सक्रिय करना।
6. अनेकान्त दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा के लिए लेखक मंच को सक्रिय करना।
7. समवैचारिक संस्थाओं के सहयोग के लिए पदाधिकारियों द्वारा अन्य संस्थाओं के साथ विचार–विमर्श।

7.5.9 अहिंसा समवाय

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री महाप्रज्ञ बहुधा यह अनुभव करते थे कि विध्वंसात्मक शक्तियों के मुकाबले अहिंसात्मक एवं रचनात्मक शक्तियां प्रभावी नहीं हो पाती। विध्वंसात्मक शक्तियों को सफलता अहिंसात्मक शक्तियों की अपेक्षा जल्दी मिलती है। इनके कारणों की खोज करते हुए वे इस लक्ष्य पर पहुंचे कि विनाश के कार्य में जुटी शक्तियों का संगठन अधिक सशक्त एवं मजबूत होता है। चोर–चोर मौसेरे भाई की कहावत भी इसी पहलू को चरितार्थ करती है। उन्हें लगा कि रचनात्मक शक्तियों में यदि इस प्रकार का प्रेम, सौहार्द, समन्वय और सहयोग व्याप्त हो जाये तो विश्व में एक नयी क्रान्ति आ सकती है।

हरियाणा के पूर्व मुख्यमंत्री बंशीलाल से एक बार एक पत्रकार ने यह प्रश्न पूछा कि आप राज्य में शराब बन्द करके एक अनूठी क्रांति किये थे और कुछ ही वर्षों में आपने शराब बन्दी उठाकर अच्छा नहीं किया। बंशीलाल के उत्तर थे कि शराब बन्दी मैंने स्वेच्छा से किया था किन्तु शराब बन्दी को उठाने के लिए मुझे मजबूर होना पड़ा था। मैं शराब बन्दी को लेकर विधानसभा में और बाहर अकेला पड़ गया था। किसी ने मेरा साथ नहीं दिया। नशामुक्ति का दम्भ भरने वाली संस्थाएं, अन्य रचनात्मक कार्य करने वाली संस्थाएं एकजुट होकर सामने नहीं आयी, इस बात का मुझे सदा अफसोस रहेगा।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने ऐसे न जाने कितने बंशीलाल की मजबूरी को समझा और आह्वान किया कि अहिंसक शक्तियों एक हो जाओ। संगठन में शक्ति होती है, यह कथन शत–प्रतिशत सही है। आचार्यश्री के इस आह्वान को जबरदस्त समर्थन मिला। सर्वोदय के बाल विजयजी तथा गांधीवादी राधाकृष्णन आदि सामने आये। इस प्रकार अधिकांश रचनात्मक शक्तियों के सहयोग से आचार्यश्री के नेतृत्व में 'अहिंसा समवाय' की स्थापना हुई। अणुव्रत भवन दिल्ली में इसका मुख्य कार्यालय स्थापित किया गया है।

सुलझे हुए विचारक, चिन्तक, पत्रकार श्री विनोद मिश्र को अहिंसा समवाय का निदेशक बनाया गया है। अहिंसा समवाय के अन्तर्गत शोध संगठन एवं प्रशिक्षण पर बल दिया गया है। अतीत से लेकर अब तक अहिंसक शक्तियां एकजुट होकर कब कितना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सफल हुई हैं, इस पर श्री विनोद मिश्र के नेतृत्व मे शोधकार्य हुआ है। अहिंसक शक्तियों को एकजुट कर इस संगठन को मजबूत बनाने के लिए अणुव्रत महासमिति प्रयासरत है। राष्ट्रीय अणुव्रत शिक्षक संसद के नेतृत्व में देश–विदेश में शिक्षकों एवं छात्रों को अहिंसा का प्रशिक्षण देने की योजना बनी। जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं भी शोध संगठन एवं प्रशिक्षण की योजना की क्रियान्विति में लगी हुई है। गांधी दर्शन स्मृति समिति, गांधी शांति प्रतिष्ठान आदि भी इस कार्य को अंजाम देने में लगे हैं।

सचमुच अहिंसा समवाय की स्थापना सही समय पर आचार्यश्री महाप्रज्ञ का सही चिन्तन है। आज युग को जरूरत भी है कि सभी बिखरी हुई अहिंसक शक्तियां एकजुट होकर प्रयास करें तो अहिंसा एवं शांति के विचार को बल मिलेगा। यह एक छोटा सा प्रयास सम्पूर्ण मानवता के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि देगा, ऐसा विश्वास है।

7.6 सारांश

1. आजादी के पश्चात् सामाजिक स्थितियां विषम हो रही थीं। नैतिक विकास की गति मंदतर होने की संभावना थी। इस संभावना को ध्यान में रखकर नैतिक विकास की एक आचार संहिता प्रस्तुत की गई। उसी का नाम अणुव्रत रखा गया। आचार्य श्री तुलसी ने 1 मार्च 1949 को सरदारशहर में अणुव्रत आन्दोलन का प्रारंभ किया। इससे जीवन विज्ञान और अहिंसा प्रशिक्षण जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण आयाम जुड़े । कुछ ही वर्षों में सभी धर्मों के लोग अणुव्रती बनने लगे। यह एक महान अनुष्ठान था। अणुव्रत अनुशास्ता के अपने साधु समाज के साथ–साथ अनेक संस्थान भी इसमें सहभागी बने। अणुव्रत महासमिति एवं उसकी देश व्यापी शाखाएं तथा अणुव्रत विश्वभारती इसके मुख्य सहयोगी संस्थान है।

2. भारतीय संस्कृति में अणुव्रत शब्द बहुत गौरवशाली शब्द है। व्रती मनुष्य का जीवन सहज, सरल, व शान्त होता है। कानून को तोड़ने में संकोच नहीं होता पर व्रत को तोड़ने में बहुत बड़ा पाप माना जाता है। अणुव्रत आन्दोलन की पृष्ठभूमि में यही व्रत का सिद्धान्त कार्य कर रहा है। व्रत की अवधारणा वैदिक, जैन और बौद्ध तीनों परम्परा में प्राप्त होती है। तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रतों का प्रावधान है।

3. समाज का आधार परस्पर सहयोग है। सहयोग ही व्यक्ति के व्यक्तित्व को सामाजिक रुप में बदल देता है। स्वार्थ संयम से ही सहयोग की भावना मूर्त रूप लेती है। अणुव्रत आन्दोलन की आधार भिति है– स्वार्थ संयम। अणुव्रत नया तत्त्व नहीं है। समस्या समाधान में नयी प्रस्तुति है। अणुव्रत सम्प्रदाय विहीन धर्म का प्रयोग है। अणुव्रत का स्वरूप और प्रकृति असाम्प्रदायिक है।

4. अणुव्रत आन्दोलन के वर्तमान स्वरूप में उसके निर्देशक तत्त्व, लक्ष्य और साधना, आचार संहिता, अणुव्रत साधना एवं व्रतों का समावेश है। इसका कार्य क्षेत्र सम्पूर्ण समाज है। शिक्षा जगत, आर्थिक जगत, मानवीय एकता, धार्मिक क्षेत्र, विश्व शान्ति पर्यावरण चेतना, महिला जागृति आदि अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों में यह आन्दोलन क्रियाशील है। अणुव्रत आन्दोलन के दौरान अनेक अनुकूल व प्रतिकूल प्रतिक्रियाएं आती रहीं, अनेक सृजनात्मक आलोचनाएं भी हुई। अणुव्रत अनुशास्ता ने भी इन सब की समीक्षा की।

7.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अणुव्रत आंदोलन कब और कहां से शुरू हुआ?
2. अणुव्रत का पहला वार्षिक अधिवेशन कब और कहां हुआ?
3. भगवान् महावीर ने व्रत चर्या का प्रतिपादन कर धर्म के कौन से दो भेद किए?
4. अणुव्रत, गुणव्रत व शिक्षा व्रत कितने हैं?
5. परिग्रह के दो प्रकार बतावें।
6. अणुव्रत आंदोलन की आचार–संहिता के कितने नियम हैं?
7. अणुव्रत का शाब्दिक अर्थ क्या है?
8. अणुव्रत का भावार्थ क्या है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9. अणुव्रत समाज रचना का दूसरा सूत्र क्या है?

10. अणुव्रत के कार्यक्षेत्र कौनसे हैं?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. व्रत के महत्त्व एवं उपयोगिता को स्पष्ट करें।

2. अणुव्रत की आचार–संहिता क्या है?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अणुव्रत के विकास व स्वरूप को दर्शाते हुए स्वस्थ समाज संरचना की दृष्टि से इसकी उपयोगिता का विश्लेषण करें।

7.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. आचार्य तुलसी; अणुव्रतः गति–प्रगति, आदर्श साहित्य संघ, चुरू (राज.)।

2. आचार्य महाप्रज्ञ; अणुव्रत की दार्शनिक पृष्ठभूमि, आदर्श साहित्य संघ, चुरू (राज.)।

3. मुनि सुखलाल; अणुव्रत की दिशाएं, आदर्श साहित्य संघ, चुरू (राज.)।

4. मुनि धर्मेश (सं.), जीवन विज्ञान की रूपरेखा, जैन विश्वभारती, लाडनूं (राज.)।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 8 : मूल्य–स्वरूप, आवश्यकता एवं महत्व, मूल्यपरक शिक्षा और जीवन विज्ञान – समन्वित शिक्षा पद्धति एवं शिक्षण प्रकियाएं

इकाई की संरचना

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 मूल्य

8.2.1 मूल्यों का स्वरूप

8.2.2 मूल्यों की आवश्यकता क्यों ?

8.2.3 मूल्यों का महत्त्व

8.2.4 मूल्यों का विकास कैसे हो ?

8.3 शिक्षा का अर्थ

8.4 शिक्षा की परिभाषाएं

8.5 मूल्यपरक शिक्षा

8.6 जीवन विज्ञान – समन्वित शिक्षा पद्धति

8.6.1 वर्तमान शिक्षा प्रणाली – असंतुलन की समस्या

8.6.2 शिक्षा की समस्याएं – जीवन विज्ञान का दृष्टिकोण

8.6.3 जीवन विज्ञान – एक समाधान

8.6.4 जीवन विज्ञान का महत्त्व

8.7 जीवन विज्ञान – शिक्षा दर्शन

8.7.1 शिक्षा शक्तियों की आकांक्षा

8.7.2 भावनात्मक विकास एवं मनोविज्ञान

8.7.3 भावनात्मक विकास एवं विज्ञान

8.7.4 सर्वांगीण विकास

8.7.5 सर्वांगीण विकास का आधार – प्रायोगिक अभ्यास

8.8 जीवन विज्ञान शिक्षा के तत्त्व

8.8.1 मुख्य उद्देश्य

8.8.1.1 विद्यालय स्तर पर उद्देश्य

8.8.1.2 स्नातक स्तर पर उद्देश्य

8.8.1.3 स्नातकोत्तर स्तर पर उद्देश्य

8.8.2 केन्द्रीय विषय वस्तु

8.8.2.1 मूल विषय वस्तु

8.8.2.2 विद्यालय के स्तर पर पाठ्यक्रम

8.8.2.3 पाठ्य पुस्तकें

8.8.2.4 पारस्परिक प्रविधियाँ

8.8.3 मूल्यांकन

8.9 सारांश

8.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.11 संदर्भ ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.0 प्रस्तावना

युवा ही राष्ट्र के आधार होते हैं। सशक्त राष्ट्र निर्माण के लिए आवश्यक है कि स्वस्थ, संतुलित एवं संस्कारवान युवा पीढी का निमार्ण किया जाये। ऐसा तभी सम्भव है जब बाल्यकाल से ही उन्हें ऐसी शिक्षा दी जाये जो उनके बौद्धिक विकास के साथ–साथ शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक विकास पर भी ध्यान दें, उनके भीतर सकारात्मक मूल्यों का सींचन करे, जिससे उनका व्यक्तित्व नैतिक एवं चारित्रिक रूप से समृद्ध हो। उसे मूल्यपरक शिक्षा के द्वारा ऐसे संस्कार मिलने चाहिये, जिनसे वह न केवल अपने जीवन के लक्ष्यों को समझ कर सफलता प्राप्त कर सके। अपितु अपने पारीवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय दायित्वों का निर्वहन पूर्ण निष्ठा के साथ कर सके।

मूल्यपरक शिक्षा का परिष्कृत है जीवन विज्ञान, जो केवल सिद्धान्त की ही बात नही करता अपितु मूल्यों के शोषण, सम्वर्द्धन एवं परित्कार की प्रायोगिक प्रविधि को भी प्रस्तुत करता है।

8.1 उद्देश्य

1. मानव जीवन में मूल्यों के प्रभाव को समझ सकेंगे।
2. मूल्यपरक शिक्षा की संकल्पना को जान पायेंगे।
3. वर्तमान शिक्षा पद्धति में जीवन विज्ञान की आवश्यकता को अनुभव कर सकेंगे।
4. जीवन विज्ञान शिक्षा दर्शन के बारे में जान सकेंगे।
5. सर्वांगीण विकास में जीवन विज्ञान की भूमिका से परिचित हो सकेंगे।
6. जीवन विज्ञान शिक्षा के मुख्य तत्वों को जान पायेंगे।

8.2 मूल्य

मूल्य क्या है? यह प्रश्न अपने आप में मूल्यवान् है, क्योंकि मूल्य का विचार मानव को स्वतः उस जीवन दृष्टि की ओर ले जाता है जो यह देखती है कि जीने के लिए किसका महत्त्व है, जो यह खोजती है कि व्यक्ति और समाज के लिए क्या कल्याणकारी है? इसलिए मूल्य को परिभाषित करना दृष्टि को परिभाषित करने के समान ही दुष्कर कार्य है।

8.2.1 मूल्यों का स्वरूप

अरबन के अनुसार "केवल वही परम रूप से और साध्य रूप से मूल्यवान है जो आत्माओं के विकास या आत्म–साक्षात्कार की ओर ले जाएं।"इस परिभाषा में मानव की जैविक से लेकर आध्यात्मिक तक सभी आवश्यकताओं का समावेश हो जाता है, जिनका मानव जीवन के लिए महत्त्व है एवं जिनको पाने के लिए व्यक्ति चेष्टा करते हैं, जिसके लिए वे जीवित रहते हैं तथा बड़े से बड़ा त्याग करते हैं। इस प्रकार मूल्य वह सत्य है जिसके लिए व्यक्ति जीता है और आवश्यकता पड़ने पर वह संघर्ष करने, दुःख सहने और मृत्यु को अंगीकार करने के लिए तैयार रहता है। जैसे सुकरात, ईसा मसीह एवं गांधी जी आदि महापुरुषों के नाम इसी संदर्भ में श्रद्धा के साथ लिए जाते हैं क्योंकि इन्होंने मूल्य के लिए ही जीवन जीया और मूल्य के लिए ही मृत्यु का वरण किया। वस्तुतः मूल्य परिवर्तनशील समाज की वह धुरी है जिसके कारण समाज का अस्तित्व है क्योंकि उपयोगिता एवं कल्याणकारिता की भावना ही समाज को स्थिर रखती है।

काने ने भी "मूल्यों को उन आदर्शों, विश्वासों या प्रतिमानों की संज्ञा दी है, जिसे एक समाज या समाज के अधिकांश सदस्यों ने अपना लिया है।"

डॉ. रामशकल पाण्डेय के अनुसार "मूल्य ऐसी आचार–संहिता या सद्गुण हैं जिनसे व्यक्ति अपने निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन पद्धति का निर्माण करता है तथा अपने व्यक्तित्व का विकास करता है।" इस प्रकार मूल्य मनुष्य के अंतर्तम में छिपी हुई वह शक्ति है, जो उसे एक विशिष्ट प्रकार से कार्य करने के लिए प्रेरित करती है और उसके आचरण को नियंत्रित करती है।

नीतिशास्त्र मूल्यों की गुणात्मक व्याख्या करता है। अर्बन के शब्दों में, "मूल्य वह है जो मानव इच्छा की पूर्ति करता है।"

प्राल की मान्यता है कि "मूल्य वह शब्द है जो सामान्य भाषा में उन वस्तुओं के लिए लागू होता है जो पसन्द कहलाने वाले सम्बन्ध के बाहरी सिरे पर स्थित हैं, जिनका कि आन्तारिक सिरा एक मानव मनस है जो कि पसन्द करता है।"

डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार – "मनुष्य को आत्मा, सत्य एवं सौजन्य के चिरन्तन मूल्यों के लिए जीवित रहना है। इस प्रकार मूल्य जीवन के चिरन्तन स्रोत होते हैं, इसलिए प्रत्येक महापुरुष, विचारक तथा शिक्षा दार्शनिक ने जीवन मूल्यों की अपनी विचारधारा के अनुरूप कल्पना की है।"

जगद्गुरु शंकराचार्य ने "सत्य, अहिंसा, दया, अपरिग्रह, एकता, प्रेम, सहानुभूति, तप एवं श्रद्धा, ब्रह्मचर्य, उपासना, त्याग, सरलता इत्यादि को जीवन का मूल्य स्वीकार किया एवं इन मूल्यों का शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में उपयोग किया।"

शांतिपर्व में वर्णित व्यक्तिनिष्ठ गुणों और उसके नैतिक दायित्वपूर्ण मूल्यों की आज भी सार्थकता है। शांतिपर्व में जिन नैतिक मूल्यों का उल्लेख हुआ है, वे मानवता के उदात्त गुण हैं और प्रत्येक युग और प्रत्येक समाज के लिए समान रूप से गाह्य हैं। धृति, क्षमा, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, ज्ञानार्जन, बौद्धिक प्रतिभा, सत्य, अक्रोध, मधुर भाषण, प्रत्येक मानव और अन्य प्राणियों के प्रति अनुकूलता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

और दया का भाव, सहनशीलता, अतिथि सत्कार आदि वे नैतिक गुण हैं जिनसे प्रत्येक नागरिक मानवता के मूल्यों को सुरक्षित रख सकता है। समाज द्वारा मान्य तप, त्याग और अध्यवसाय जैसे नैतिक मूल्य व्यक्तिगत धरातल पर आज भी सार्थक दिखायी देते हैं।

8.2.2 मूल्यों की आवश्यकता क्यों?

आज हम जिस दौर से गुजर रहे हैं वह सांस्कृतिक संघर्ष का युग है, भौतिकता तथा अध्यात्म का संघर्ष है, व्यक्ति और नीति का संघर्ष है, विवेक और अविवेक का संघर्ष है। मूल्यों, प्रतिमानों, सिद्धांतों के प्रत्ययों का संघर्ष है। संघर्षों की प्रक्रिया में मानव दिग्भ्रमित हो गया है।

"नई पीढ़ी में सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों की निर्बलता पाश्चात्य समाज में अनेक गम्भीर सामाजिक और नैतिक संघर्षों को उत्पन्न कर रही है। पाश्चात्य विचारक यह अनुभव करने लगे हैं कि ज्ञान एवं कौशल में संतुलन हो, वैज्ञानिक तथा प्राविधिक नैतिकताएं धर्म से सम्बद्ध की जाएं, स्वयं के ज्ञान में अनुसंधान हो, जीवन का अर्थ माना जाए, मानव के परस्पर संबंधों का ज्ञान हो एवं वास्तविक सत्य का उद्घाटन हो।"

शिक्षा आयोग (1964–66) ने कहा "शिक्षा पद्धति को मौलिक, सामाजिक, नैतिक, आत्मिक मूल्यों के विकास पर बल देना चाहिए।"

कोठारी शिक्षा आयोग (1964–66) की अनुशंसा के आधार पर 1975 में शालेय शिक्षा में प्रमुख परिवर्तन में कहा गया कि चरित्र–निर्माण एवं मानवीय मूल्यों को पाठ्यक्रम के माध्यम से सिखाया जा सकेगा।

8.2.3 मूल्यों का महत्त्व

डॉ. वैद्यनाथ प्रसाद वर्मा के अनुसार "बुद्धि, विवेक, सद्गुण, साहस, सद्भावना तथा सरल जीवन और उच्च विचार जैसे गुण ही आदर्श मानव के प्रबल प्रतीक हैं। इन गुणों के विकास के लिए हमें तदनुरूप शिक्षा व्यवस्था अर्थात् पाठ्यक्रम का निर्माण करना ही पड़ेगा, अन्यथा मानव–मूल्यों का कभी भी विकास नहीं होगा। मानव–मूल्यों का ह्रास एक दिन समस्त मानवता के विनाश का कारण भी हो सकता है।"

चीन के सुप्रसिद्ध दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री कन्फ्यूशियस ने शिक्षा के माध्यम से आदर्श मानव के निर्माण की कल्पना को साकार बनाने पर बल दिया था। उचित, व्यवस्थित और सच्ची शिक्षा द्वारा मानव अपने दोषों को देखने में समर्थ होता है। उसमें यह क्षमता आती है कि बुद्धि और विवेक का सहारा ले कर वह सद्गुणों को अपने चरित्र का अंग बनावे और सद्भावना पूर्वक मानव के कल्याणार्थ अपने कदम बढ़ावे। सरल जीवन एवं उच्च विचार का आदर्श, मानवता के उच्च शिखर पर पहुंचने में मानव की मदद करेंगे। यहूदी जनजाति के प्राण महात्मा मोसेज की शिक्षा का हार्द था–"सरल जीवन एवं उच्च विचार से हमारे अन्दर मानवोचित गुणों का आविर्भाव होता है, श्रेष्ठता के लक्षण आते हैं तथा वे शक्तियां प्रादुर्भूत होती हैं, जिनके सहारे हम अपना ही नहीं, अपितु अपने समाज, राष्ट्र और विश्व तक का कल्याण करने में समर्थ होते हैं।"

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना पंडित मदनमोहन मालवीय भी शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य मानव–मूल्यों का विकास ही मानते थे। सर्वोदयी दर्शन भी सबके उदय, विकास एवं हित के सिद्धांत का पोषक है। अहिंसा एवं सत्य के आधार पर स्थापित वर्गविहीन, जातिविहीन एवं शोषणविहीन समाज की स्थापना, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपनी उन्नति का पर्याप्त अवसर मिले, सर्वोदय का लक्ष्य है। ऐसा समाज सद्भावना, प्रेम और अहिंसा के आधार पर ही स्थापित हो सकता है तथा प्राणिमात्र का कल्याण और विश्वबन्धुत्व की कल्पना भी तभी साकार होगी।

आज शिक्षा आयोग ने जिस आधुनिकता को प्राप्त करने की चर्चा की है, उसके साथ–साथ आयोग ने यह भी स्वीकार किया है कि भारतीय समाज एक महान् संस्कृति का उत्तराधिकारी है। आयोग ने यह भी स्वीकार किया है– आधुनिकीकरण का यह तात्पर्य नहीं कि हमारी राष्ट्रीय परिस्थितियों में नैतिक, आध्यात्मिक एवं आत्मानुशासन के मूल्यों के निर्माण के महत्त्व को पहचानने से इन्कार किया जाए। आधुनिकीकरण यदि जीवन शक्ति है तो इसे आत्मा से शक्ति प्राप्त करनी होगी। प्रायः ऐसा कहा जाता है कि आध्यात्मिक, नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों का संबंध व्यक्तिगत विकास से है, इसीलिए सामाजिक उत्थान के लिए इसकी क्या आवश्यकता? परन्तु इस संदर्भ में आयोग के विचारों में सामुदायिक कल्याण की ध्वनि गूंज उठती है कि व्यक्ति और समुदाय एक दूसरे के पूरक हैं। आयोग ने कहा भी है–"यह स्वभावतः व्यक्ति की प्रेरणा और मूल्यों के अवबोध पर निर्भर करता है कि वह वैयक्तिक संतोष के लिए या समुदाय एवं भावी कल्याण के मूल्यों को ग्रहण करे।"

8.2.4 मूल्यों का विकास कैसे हो?

शिक्षा आयोग (1964–66) ने धार्मिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के विकास के लिए ये उपाय सुझाए थे –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा सभी शिक्षण संस्थाओं में भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मान्यताओं की शिक्षा की व्यवस्था की जाए। यह शिक्षा विश्वविद्यालय आयोग द्वारा प्रस्तुत पाठ्यक्रम के अनुसार दी जाए।
2. व्यक्तिगत प्रबंधों द्वारा संचालित शिक्षा संस्थाओं में भी इन सुझावों के अनुसार नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा दी जाए।
3. प्राथमिक स्तर पर नैतिकतापूर्ण कहानियों के माध्यम से शिक्षा दी जाए।
4. इस हेतु विद्यालय के समय विभाग चक्र (Time Table) में एक या दो कालांशों की व्यवस्था की जाए।
5. शिक्षक ऊंचे आदर्श प्रस्तुत करें।
6. विश्वविद्यालयों में तुलनात्मक धर्म नामक विभाग की स्थापना की जाए।
7. माध्यमिक स्तर पर विचार विमर्श पर बल दिया जाए।

आयोग ने प्रकाश समिति के विचारों को भी समर्थन प्रदान किया है। इस समिति ने नैतिक विकास के लिए आवश्यक सुझाव दिए थे।

8.3 शिक्षा का अर्थ

शिक्षा शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा में इस प्रकार की गई है–

शिक्षा – शिक्ष् धातु शिक्षण अर्थ में।

विद्या – विदलृ उपादाने, उपादान अर्थ में। विद् ज्ञाने, ज्ञान अर्थ में।

बुध – ज्ञाने, प्रबोध, ज्ञान अर्थ में।

शिक्षा के अंग्रेजी समानार्थक शब्द Education की उत्पत्ति लैटिन भाषा के Educatum शब्द से मानी जाती है, इस Educatum शब्द की संरचना E+CATUM द्वारा संपन्न हुई। **E** = अंत: आभ्यंतर आगे बढ़ना। लैटिन भाषा के तीन शब्द Education शब्द की उत्पत्ति के मूल कारक माने जाते हैं।

1. Educatum	–	इसका अर्थ है	– शिक्षण, प्रशिक्षण (Teaching of Training)
2. Educare	–	इसका अर्थ है	– लालन – पालन (To Educate, To bring up, To raire)
3. Educere	–	इसका अर्थ है	– प्रेरणा / पथ प्रदर्शन (To bring forth, To lead out)

उपर्युक्त आधार पर हम कह सकते हैं कि शिक्षा शब्द का अर्थ है– प्रशिक्षण, संवर्द्धन, पथ प्रदर्शन, सर्वांगीण विकास, चहुंमुखी विकास। दिवादिगणीय शक्लृ–शक्तौ और शक्रमर्षणे धातु से भी सन्नंत में शिक्षा पद को व्युत्पन्न माना गया है। भट्टोजिदीक्षित ने सिद्धांत कौमुदी' में दोनों धातुओं का निर्देश किया है– "शक्लृ शिक्षति शक मर्षण इति दिवादिः शिक्षति शिक्षते।" ये दो धातुएं शिक्षा के मूल स्वरूप को स्पष्ट कर रही हैं।

शक्लृशक्तौ का अर्थ है– शक्तिशाली होना, सामर्थ्यवान होना। जिसमें परम शक्ति, परम सामर्थ्य, परमपद की प्राप्ति कराने का सामर्थ्य हो, वह शिक्षा है।

जैन आगमों में शिक्षा के लिए प्राकृत शब्द सिक्खा मिलता है। जिसका अर्थ है ग्रहण करना, शिक्षण प्राप्त करना। इसके अतिरिक्त विज्जा, बहुस्सुय, नाण, सुय, आचार इत्यादि शब्दों का भी शिक्षा अर्थ में प्रयोग होता है।

आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण द्वारा प्रतिपादित निम्न गाथा संपूर्ण शिक्षा जगत् के लिए पथ प्रदर्शक है–

जेण सुहज्झप्पएणं अज्झप्पाणयमहियणं वा

बोहस्स संजमस्स व मोक्खस्स व जं तमज्झयणं। (विशेषावश्यक भाष्य पृ. 960)

अर्थात् जिससे शुभ चित्त का निर्माण होता है, अध्यात्म की उपलब्धि होती है जिससे, बोधि, संयम और बंधन मुक्ति के तथ्यों की प्राप्ति होती है, वह अध्ययन शिक्षा है।

विद्या वही होती है जो व्यक्ति को अंधकार के गहन कूप से निकाल कर प्रकाश के राजपथ पर प्रस्थित कर दे, बंधनों से मुक्त कर दे। विद्वत्संसार में यह सूक्ति प्रचलित है– 'सा विद्या या विमुक्तये' शिक्षा से वह चक्षु उद्घाटित हो जाता है, जिससे व्यक्ति उस पार तक झांक सकता है। सभी लोकों को देख लेता है, अतीत, अनागत, विप्रकृष्ट आदि का साक्षात्कार कर लेता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

केवल तथ्य और आंकड़ों को मस्तिष्क में भरने वाली शिक्षा सारभूत नहीं है। वह शिक्षा सार्थक है जो व्यक्ति की अंतर्दृष्टि जगाती है, उसे विनीत, प्रामाणिक, दक्ष और सदाचरण संपन्न बनाती है।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र के अनुसार भी व्युत्पत्ति की दृष्टि से शिक्षा शक् से बना हुआ शब्द है। मूल अर्थ है सकने की इच्छा अर्थात् समर्थ होने का संकल्प। इस दृष्टि से शिक्षा संपूर्ण जीवन के साथ सामजंस्य बनाने का संकल्प है और यह संकल्प दुहराया नहीं जाता तो निष्प्रभाव हो जाता है। इसलिए शिक्षा निरन्तर प्रक्रिया है, अपने को पहचानते चलने की और अपने संसार में सबको पहचानने की कला है। यह परिनिष्पन्न फल नहीं है। शिक्षा सतत् जागरूकता है और सतत् जांच भी है। शिक्षा का फल मिलता है तो पूरे समाज को परंतु मूलतः शिक्षा उस आत्मा के लिए होती है जो अपना विस्तार कर रहा है और अपने तादात्म्य घेरों को तोड़ता हुआ विपुल और विपुलतर सबल हुआ है। दूसरे शब्दों में शिक्षा आत्म–विस्तार की प्रक्रिया है और विस्तार कुछ नहीं आत्म–साक्षात्कार है।

8.4 शिक्षा की परिभाषाएं

शिक्षा की परिभाषाओं के बारे में सभी शिक्षाशास्त्री एकमत नहीं हैं। सबने अपने–अपने मंतव्यों के अनुसार अलग–अलग परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं, उनका संक्षिप्त प्रारूप निम्न हैं–

8.4.1 शिक्षा अविरल प्रक्रिया है

डॉ. रामशकल पांडेय ने अपनी पुस्तक 'शिक्षा के मूल सिद्धांत' में उल्लेख किया है कि शिक्षा एक प्रकार की प्रक्रिया है जिसके द्वारा छात्रों के व्यक्तित्व का विकास होता है। यह प्रक्रिया ऐसी नहीं है कि जो किसी समय प्रारंभ हो और फिर एक निश्चित समय पर समाप्त हो जाये। हम प्रायः कह बैठते हैं "उसने अपनी शिक्षा समाप्त कर ली" अथवा उसने अब शिक्षा प्राप्त करना प्रारंभ किया है। वस्तुतः शिक्षा तभी प्रारंभ हो जाती है जब बालक जन्म लेता है। बल्कि मनोवैज्ञानिक अब इस निष्कर्ष पर पहुंच रहे हैं कि जन्म के पूर्व से ही शिक्षा प्रारंभ हो जाती है। महाभारत के अनुसार, अभिमन्यु ने चक्रव्यूह को वेधना अपनी माता सुभद्रा के गर्भ में ही सीख लिया था। यदि हम यह न स्वीकार करें कि गर्भ में बालक की शिक्षा प्रारंभ हो जाती है तो भी इस तथ्य से तो इंकार नहीं किया जा सकता कि जन्म के समय से ही शिक्षा प्रारंभ हो जाती है। जन्म से प्रारंभ होकर शिक्षा आजीवन चलती रहती है। इस प्रक्रिया में कोई बाधा नहीं आती। यह अविरल रूप से, अविच्छिन्न रूप से एवं अबाध गति से सदा चलती रहती है। हम प्रतिवर्ष, प्रतिमास, प्रतिदिन, यहां तक कि प्रतिक्षण कुछ न कुछ सीखते ही रहते हैं। यह प्रक्रिया व्यक्ति में जीवनभर चलती रहती है। जन्म से या उससे पूर्व प्रारंभ होकर मृत्यु पर्यन्त चलती रहती है। हिन्दू दर्शन के अनुसार तो शिक्षा की प्रक्रिया मृत्यु के समय भी समाप्त नहीं हो सकती। हिन्दू आत्मा की अमरता एवं अजरता में विश्वास करते हैं। उनके अनुसार मृत्यु केवल अगले जन्म की सीढ़ी है। एक जन्म में शिक्षा प्रक्रिया द्वारा प्राप्त संस्कार स्वभावतः दूसरे जन्म में प्राप्त हो जाते हैं। इन्हें ही संस्कार कहा जाता है। हमें संस्कारों के रूप में अपने पूर्वजन्मों की कमाई प्राप्त हो जाती है। यदि हम इस प्रकार के विचार में विश्वास न करें तो भी इतना तो स्वीकार करना ही पडेगा कि शिक्षा की प्रक्रिया जीवनभर अविरल रूप से चलती रहती है और जन्म से मृत्यु के बीच की अवधि में कोई भी शक्ति उसमें बाधक नहीं हो सकती।

8.4.2 शिक्षा जन्मजात या अंतर्निहित शक्तियों के प्रगटीकरण एवं विकास के रूप में

फ्रॉबेल के अनुसार, "शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक की जन्मजात शक्तियां बाहर प्रकट होती हैं।"

पैस्टालॉजी का मानना है– "Education is a natural, harmonious and progressive development of man's innate powers." इस प्रसंग में सुकरात के विचार हैं– "शिक्षा का अर्थ संसार के उन सर्वमान्य विचारों को प्रकाश में लाना जो कि प्रत्येक मानव के मस्तिष्क में अदृश्य रूप में निहित होते हैं।"

8.4.3 शिक्षा अंतर्निहित आध्यात्मिक शक्ति के विकास की प्रक्रिया के रूप में

महर्षि अरविंद ने शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहा है कि "Building of the powers of the human mind and spirit." स्वामी विवेकानंद के शब्दों में "शिक्षा मनुष्य में निहित पूर्णता का उदय और प्राकट्य है।"

गांधीजी के अनुसार "शिक्षा से मेरा अभिप्राय है– बालक और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में पाए जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का चतुर्मुखी विकास।"

अरस्तू ने शिक्षा के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है– "There is no agreement as to what the youngman should learn, either with a view to the production of goodness or best of life, nor it is settled, we ought to keep intellect or character in view."

अरस्तू ने एक दूसरी परिभाषा भी दी है कि "Education is the creation of a sound mind in a sound body."

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हार्ने के अनुसार "Education is the superior adjustment of a physically and mentally developed conscious human being to his intellectual, emotional and volitional environments."

8.4.4 शिक्षा वैयक्तिकता के विकास की प्रक्रिया के रूप में

मारीसन की मान्यता है कि– "शिक्षा सीखने की क्रिया द्वारा व्यक्ति का विकास है, यह उसके शारीरिक विकास से भिन्न है।" रूसो के अनुसार– "शिक्षा आनन्ददायक, तर्कयुक्त, संतुलित, उपयोगी और प्राकृतिक जीवन के विकास की प्रक्रिया है।"

काण्ट के शब्दों में "शिक्षा व्यक्ति की उस पूर्णता का विकास है, जिसकी उसमें क्षमता है।"

टी. पी. नन का विचार है– "Education is the complete development of individuality of the child, so that he can make an original contribution of human life according to his best capacity.

8.4.5 शिक्षा व्यक्ति तथा समाज दोनों के विकास के रूप में

ब्राउन के अनुसार "शिक्षा चैतन्य के रूप में नियंत्रित प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन कर दिए जाते हैं और व्यक्ति के द्वारा समाज में।"

हैंडरसन की मान्यता है कि "यदि शिक्षा केवल बच्चों की अभिवृद्धि और विकास करती है तो वह सामाजिक विरासत की उपेक्षा करती है पर यदि शिक्षा अभिवृद्धि और विकास की ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें सामाजिक वातावरण के रूप में सामाजिक विरासत को उत्तम और बुद्धिमान पुरुषों एवं स्त्रियों के विकास के लिए प्रयोग किया जा सके तो यह शिक्षा की वही प्रक्रिया है जिसका समर्थन दार्शनिकों और शिक्षा–सुधारकों ने किया है और यही शिक्षा की सत्य धारणा है।"

बी.एन. झा का विचार है कि "Education is a process of social function carried on by and in society for its sake.

प्रो. जेम्स के अनुसार "Education is the organisation of acquired habit of such actions such will, fit for the individual to his physical and social environment."

शिक्षा की उपर्युक्त परिभाषाओं को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक सविचार प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति की आंतरिक शक्तियों का विकास किया जाता है। शिक्षा अपने विस्तृत अर्थ में बहुत व्यापक है और विद्यालयीय अनुभवों तक ही सीमित नहीं है किन्तु संकुचित अर्थ में शिक्षा सुनियोजित प्रक्रिया है।

8.4.6 शिक्षा–सामाजिक वातावरण के अनुकूलन की प्रक्रिया के रूप में

यदि व्यक्ति का अपने समाज से सामंजस्य नहीं है तो उसे शिक्षित नहीं कहा जा सकता। अतः व्यक्ति के सामाजिक पक्ष पर बल देने वाले शिक्षाशास्त्रियों ने इस वर्ग की परिभाषाएं इस प्रकार दी हैं–

बॉसिंग के अनुसार– "The function of Education is conceived to be the adjustment of man to his enviornment to the end that the most enduring satisfaction may accrue to the individual and to the society."

जेम्स का मानना है कि "शिक्षा कार्य संबंधी अर्जित आदतों का संगठन है जो व्यक्ति को उसके भौतिक और सामाजिक वातावरण में उचित स्थान देती है।"

8.4.7 शिक्षा–सामाजिक परिवर्तन एवं साधन के रूप में

ब्राउन के अनुसार "शिक्षा चैतन्य रूप में एक नियंत्रित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन किए जाते हैं तथा व्यक्ति के द्वारा समाज में।"

रिऑरगेनिजेशन ऑफ सेकेण्डरी स्कूल्स रिपोर्ट में कहा गया है– "शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति के लिए ज्ञान, रुचियों, आदर्शों, आदतों तथा शक्तियों का विकास करना है, जिसने उसे अपना उचित स्थान प्राप्त हो सके तथा वह स्थान का सदुपयोग कर स्वयं समाज को उच्च एवं पवित्र उद्देश्यों की ओर ले जाएं।"

8.4.8 शिक्षा–अनुभवों की रचना तथा पुनर्रचना की प्रक्रिया के रूप में

प्रकृतिवादी दार्शनिकों के अनुसार– "Moral instinct, innate conscience, other world miracles, providence, power of prayer, freedom of will are illusions."

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रविन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में सर्वोच्च शिक्षा वह होती है जो हमें केवल सूचनाएं ही नहीं देती वरन् हमारे जीवन और संपूर्ण सृष्टि में तादात्म्य स्थापित करती है।"

महात्मा गांधी कहते हैं "शिक्षा से मेरा तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जो बालक एवं मनुष्य के शरीर एवं आत्मा को प्रस्फुटित कर दे।"

पेस्तालात्सी के अनुसार "मानव की आन्तरिक शक्तियों का स्वाभाविक सामंजस्यपूर्ण एवं प्रगतिशील विकास ही शिक्षा है।"

एडम्स का विचार है कि "शिक्षा एक ऐसी सुनियोजित प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्तित्व का विकास करने के लिए उस पर दूसरे व्यक्तित्व के मन, वाणी एवं कर्म के द्वारा प्रभाव पड़ता रहता है।"

जॉन डिवी का मानना है कि "शिक्षा व्यक्ति की उन आंतरिक शक्तियों का विकास है जो उसे वातावरण के नियंत्रण में समर्थ बनाएगी तथा उसकी सभी संभावनाओं की प्राप्ति करायेगी।"

हार्ने के अनुसार "Education should be thought of as the process of man's reciprocal adjustment to nature, to his fellows and to the ultimate nature of the cosmos."

8.5 मूल्यपरक शिक्षा

हमारे दो जगत् हैं। एक है भीतर का जगत् और दूसरा है बाहर का जगत्। भीतर का जगत् बहुत सूक्ष्म है और बाहर का जगत् स्थूल है। बाहर के जगत् से व्यवहार को नापा जा सकता है, देखा जा सकता है। भाव का जगत् सूक्ष्म है। उसे पकड़ना बहुत कठिन है। जैसा स्राव होता है वैसा भाव होता है, वैसा ही व्यवहार होता है। आन्तरिक प्रेरणा है भाव और उससे निरपेक्ष होकर व्यवहार करते हैं तो भाव और व्यवहार की संवादिता नहीं होती। हमें व्यवहार को बदलना है। विद्यार्थी के व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए ही इस मूल्यपरक शिक्षा की जरूरत है। कुछ समय पूर्व यह नैतिक शिक्षा के नाम से जानी जाती थी। आज नैतिक शिक्षा मूल्यपरक शिक्षा पर विकसित और प्रतिष्ठित हो गई।

जीवन में मूल्यों का अवतरण हो, शिक्षा के साथ मूल्यों का बोध हो तथा विद्यार्थी के जीवन में मूल्यों की प्रतिष्ठा हो, यह वर्तमान की शिक्षा के साथ सुचिंतित विचार चल रहा है।

8.5.1 मूल्यपरक शिक्षा के उद्देश्य

डॉ. ए.एस. अल्तेकर ने मूल्यपरक शिक्षा के उद्देश्य को प्रकट करते हुए कहा है– "शिक्षा को प्रकाश और शक्ति का ऐसा स्रोत माना जाता है, जो हमारी शारीरिक, मानसिक, भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियों तथा क्षमताओं का निरंतर एवं सामंजस्यपूर्ण विकास करके, हमारे स्वभाव को परिवर्तित करती है और उसे उत्कृष्ट बनाती है।"

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 23 जनवरी, 1955 को प्रसिद्ध आवडी संकल्प के पहले ही वाक्य में कहा था, "स्वाधीन भारत के राष्ट्रीय लक्ष्यों तथा सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए वर्तमान शिक्षा प्रणाली में दूरगामी प्रभाव वाले परिवर्तन करने ही होंगे।"

शिक्षा के मूल उद्देश्य को रेखांकित करते हुए हमारी भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने 4 नवम्बर 1974 को केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड के सम्मुख एक भाषण में कहा था– "शिक्षा का मूल प्रयोजन है कि बौद्धिक आयामों, भावनात्मक दायित्वों और सौंदर्यात्मक संवेदनाओं को विस्तृत किया जाए, ताकि न केवल हमें अपेक्षित तथा बेहतर कार्यकर्त्ता ही, बल्कि बेहतर मानव भी मिल सकें, जो परिपक्व हों और बढ़ती हुई चुनौतियों का सामना कर सकें। आगे उन्होंने कहा– मैं तो चाहूंगी कि विश्वविद्यालय विचारधाराओं के ऐसे उद्गम स्रोत बनें, जो समाज को शुद्ध करने में सहायक हों। विश्वविद्यालयों का कार्य केवल युवावर्ग को शिक्षा देना ही नहीं है, बल्कि मूल्यों का पालन–पोषण एवं प्रचार–प्रसार करना भी है।"

27 अप्रैल 1991 को 'इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय' में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने कहा– "हमारे छात्रों के मानस में हमारे राष्ट्रीय मूल्यों को दृढ़ता से रोपा जाएं। ये मूल्य हैं– विश्वबंधुत्व, शांति, भाईचारा, सेवा, सृजनशीलता तथा व्यक्तित्व का ठोस विकास। ऐसे विकास से रहित शिक्षा मेरी दृष्टि में निरर्थक है।"

हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 'शिक्षा के विकास के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच अधिक तालमेल की आवश्यकता' नामक बुलेटिन में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा– "हमारे स्कूलों को जीवन मूल्यों पर आधारित शिक्षा भी देनी चाहिए। उन्हें ऐसा अवसर देना चाहिए जिससे हर विद्यार्थी में भारत के सभी धर्मों की समझ और उनके प्रति आदर का भाव उत्पन्न हो और वे अपनी राष्ट्रीय संस्कृति पर गौरव अनुभव करें। धर्मान्धता और असहिष्णुता का कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.5.2 मूल्यपरक शिक्षा का महत्त्व

भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने 'शिक्षा का आयाम' नामक पुस्तक में उल्लेख किया है कि– हमें स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि शिष्ट तथा नैतिक आचरण संबंधी मामलों, मूल्यों, सिद्धान्तों तथा लक्ष्यों से जूझने का कार्य भौतिक दृष्टिकोण से भी व्यावहारिक महत्त्व का है। यह न तो धुंधली, अस्पष्ट तथा अधकचरी संकल्पनाओं को टटोलने का प्रश्न है, और न ही नीरस तथा घिसी–पिटी बातों की छान–बीन करने का। यह तो सीधी, सतत् तथा व्यावहारिक उपयोगिता का सवाल है। जिस प्रकार गणित–शास्त्र के लिए संख्याओं तथा उनके परस्पर संबंध का बुनियादी महत्त्व है, जिस प्रकार भौतिकी के लिए द्रव्यमान, ऊर्जा तथा समय का बुनियादी महत्त्व है, जिस प्रकार अर्थव्यवस्था के लिए मांग तथा पूर्ति का बुनियादी महत्त्व और इतिहास के लिए विचारों तथा विशिष्ट व्यक्तियों का, उसी प्रकार मानव के लिए मूल्यों का बुनियादी महत्त्व है।

जब कोई व्यक्ति अपने लिए स्पष्टतः निर्धारित मूल्यों के आधार पर चिंतन करता है, तब वह स्वयं को बौद्धिक, नैतिक तथा संचालनात्मक दृष्टि से ऐसे कार्यों के लिए सन्नद्ध कर लेता है, जो वास्तव में उसकी सर्वोच्च प्राथमिकताओं के अनुकूल होते हैं। कार्य चाहे छोटी बातों से संबंधित हो या बड़ी से, जानी हुई से हो या अनजानी से, वह परिप्रेक्ष्य, सामंजस्य, एकाग्रता तथा संगठित पैठ की शक्ति प्राप्त कर लेता है।

8.5.3 मूल्यपरक शिक्षा और शिक्षा आयोग

"मूल्यों के निर्माण में हमें अपनी रूढ़ियों एवं प्रथाओं पर निर्भर करना चाहिए। साथ ही अन्य देशों की प्रथाओं एवं संस्कृतियों को साथ लेना चाहिए। भारतीय विचारों में भी वह प्रवाह है, जो हमें नये दृष्टिकोण की ओर ले जा सकता है और व्यक्ति को जीवन की स्वीकृति एवं हर्ष प्रदान कर सकता है।"

राधाकृष्णन् आयोग ने उच्च शिक्षा के उद्देश्यों पर विचार करते हुए ऐसे शिक्षित नागरिक तैयार करने पर बल दिया जो विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्र को नेतृत्व प्रदान कर सकें, प्रजातांत्रिक मूल्यों को स्थापित कर सकें। सांस्कृतिक धरोहर व मूल्यों को बनाए रखें। नैतिक चरित्र उच्च आदर्शों से युक्त हो, राष्ट्रीय एकता व अनुशासन में सहायक हो तथा स्वयं को अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना व भाईचारे के लिए समर्पित कर सकें।

1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर पुनर्विचार की आवश्यकता महसूस करते हुए समीक्षा समिति ने मूल्यों से संबंधित निम्न सुझाव दिए–

1. प्रजातंत्र, धर्म निरपेक्षता, समाजवाद, वैज्ञानिक स्वभाव, लिंग आधारित समानता, ईमानदारी, निष्ठा, साहस, निष्पक्षता एवं सभी प्रकार के जीवधारियों, विभिन्न संस्कृतियों व भाषाओं के प्रति सम्मान और आधारभूत मूल्यों का शिक्षा की विषयवस्तु एवं प्रक्रिया में व्यापक रूप से उल्लेख होना चाहिए।
2. मूल्य प्रधान शिक्षा को पूरी शिक्षा प्रक्रिया एवं स्कूल वातावरण का अभिन्न अंग हो जाना चाहिए।
3. छात्रों में पढ़ने की आदत तथा स्वाध्याय की क्षमता विकसित की जानी चाहिए।

प्रो. दौलत सिंह कोठारी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने कहा कि शिक्षा का विकास इस ढंग से किया जाना चाहिए जिससे राष्ट्रीय उत्पादकता में वृद्धि हो, सामाजिक व राष्ट्रीय एकता की भावना बढ़े, आधुनिकीकरण की गति में तेजी आए तथा सामाजिक, नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों का विकास हो।

भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने लिखा है– ''भविष्य में विश्वविद्यालय प्रणाली का कैसे विकास हो और उसकी क्या भूमिका हो, इसकी ओर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने ध्यान दिया है। प्रणाली को मूल मानवीय मूल्यों के संस्कारों का रोपण और संवर्धन करना ही चाहिए। यह अनिवार्य है कि वह हमारी महान् सांस्कृतिक परंपराओं का परिरक्षण और पोषण करे। उनका समन्वय अन्य संस्कृतियों तथा जातियों के मूल तत्त्वों से करे, तर्कसंगत दृष्टिकोण और वैज्ञानिक मनोवृत्ति का संवर्धन करे, भारतीय भाषाओं को समृद्ध करे तथा राष्ट्रीय विकास एवं अखंडता के लिए प्रमुख संचार–साधनों के रूप में उनके प्रयोग को भी प्रोत्साहन दे। यह भी आवश्यक है कि वह छात्रों के संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास को प्रोत्साहन दे, उनमें समाज के प्रति अपने दायित्व को पूरा करने की भावना भरें, ताकि उनमें न केवल तटस्थ भाव से समाज के प्रति अपने दायित्व को पूरा करने की भावना हो साथ ही वे न केवल तटस्थ भाव से समाज की आलोचना करें, बल्कि समूची शिक्षा–प्रणाली के सुधार में भी अपना सहयोग दे सकें।

8.6 जीवन विज्ञान – समन्वित शिक्षा पद्धति

गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी के अनुसार "बालकों के संस्कारित हुए बिना संस्कृति की सुरक्षा मात्र सपना है। संस्कार यदि ऊंचे होंगे तो संस्कृति अपने आप उन्नत, विकसित और उदित होती चली जाएगी।" किसी भी संस्कृति की सुदृढ़ता का आधार है कि वह अपने बालक–बालिकाओं तथा स्त्रियों के विकास के लिए अधिक से अधिक रचनात्मक अवसर उपलब्ध कराएं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आज यह निष्कर्ष निकाला जा रहा है कि मानवीय जीवन मूल्यों का विकास तभी संभव हो सकता है कि बचपन से ही बच्चों में उन मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न की जाएं। वे बच्चे ही आगे जाकर सुसंस्कृत और जागरूक मानव बन सकेंगे। वे ही अपने जीवन को युग–बोध और जीवन–बोध से सम्पन्न कर सकेंगे। डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा के अनुसार– "रूप–बोध, सौन्दर्य–बोध, स्नेह, सौहार्द, सर्वत्र समदर्शिता, सर्वधर्म–सम्मान, समन्वय, सहनशीलता, हृदय के स्वस्थ भाव, सजग बौद्धिकता, रुचियां, औचित्य–बोध, मानव के श्रेष्ठतम रूपों का बोध, स्वतंत्रता, समानता का संतुलन, अधिकार–बोध और कर्त्तव्य–बोध की जागरूकता, सामंजस्य आदि संस्कृति के प्रमुख तत्त्व हैं। हमारी वर्तमान शिक्षा इन मूल्यों को छात्रों को नहीं दे रही है।"

शिक्षा जगत् में भी जागृति आवश्यक है। आज शिक्षा प्राकृत शिशु को संस्कृत मानव बनाने के अपने प्रमुख दायित्व से विमुख नहीं हो सकती। शिक्षा में मूल्य सहज नहीं आते, वे सिखाए जाते हैं। मूल्य सहज नहीं अर्जित होते हैं। अतः शिक्षा का स्वरूप स्वस्थ एवं सुदृढ़ होना आवश्यक है। शिक्षा मात्र शोभा नहीं, लोक जीवन की आवश्यकता है और जीवन शक्ति का स्रोत है। गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी ने बलपूर्वक कहा कि– "शिक्षा के द्वारा केवल पुस्तकीय ज्ञान ही उपलब्ध नहीं होता, मन भी प्रशिक्षित होता है। शिक्षा समाज को संस्कारित करने का अभिकरण है। शिक्षा हो और जीवन में संस्कार का परिष्कार न आए तो मानना चाहिए कि कहीं कुछ कमी है। सूरज की रोशनी से सूरजमुखी फूल न खिले तो किससे खिलेंगे? शिक्षा संस्कार निर्माण का सर्वाधिक प्रशस्त माध्यम है। यह मनुष्य के जीवन को प्रकृति से आगे संस्कृति के साथ जोड़ती है। इसमें भी विकृति का दर्शन हो तो समाज को शिक्षा से क्या मिलेगा?
शिक्षा विकास का अपरिहार्य अंग है। अंध–विश्वासों, सामाजिक रूढ़ियों, अनुचित मान्यताओं और जीवनगत विकृतियों में परिष्कार लाने का माध्यम भी शिक्षा है। एक ओर शिक्षा जीने की कला सिखाती है तो दूसरी ओर पारंपरिकता में दक्षता लाती है। शिक्षित लोग अपने उद्देश्यों के प्रति जागरूक बनते हैं तो युगीन चुनौतियों को झेलने के लिए भी कटिबद्ध रहते हैं। परन्तु यह सब तभी संभव हो सकता है, जब जीवन–मूल्यों और सांस्कृतिक–मूल्यों की शिक्षा प्राप्त हो। अतः शिक्षा के माध्यम से ही संस्कृति को सुरक्षित रखा जा सकता है।"
अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी और आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने जीवन विज्ञान का प्रशिक्षण शिक्षा जगत् से जोड़ा है। यह शिक्षा का एक अभिनव प्रयोग है। सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित और समृद्ध बनाने का अभूतपूर्व नुस्खा है। जीवनविज्ञान शिक्षा का पूरा एक क्रम है कि पहली कक्षा के विद्यार्थी से लेकर एम. ए. तक के विद्यार्थी को कौन–कौन से प्रयोग कराने चाहिए ताकि क्रमशः उसके व्यक्तित्व का विकास हो सके एवं उसकी क्षमता भी बढ़ती चली जाये।

व्यावसायिक विकास के लिए बौद्धिक शिक्षा आवश्यक हो सकती है किंतु व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए वह पर्याप्त नहीं है। चरित्र, आत्मानुशासन, सहिष्णुता आदि जीवन मूल्यों की जो अपेक्षा की जाती है, वह वर्तमान शिक्षा से पूरी नहीं होती। मूल्यपरक शिक्षा की चर्चा बहुत हो रही है पर समाज में उन मूल्यों का विकास नहीं हो रहा है। मूल्यों के प्रति गहरी आस्था और उनके विकास के लिए अपेक्षित आंतरिक परिवर्तन किए बिना उनका विकास कैसे हो सकता है? विश्व के महान् पुरुषों की जीवनियां, नैतिकता की कहानियां और नैतिकता के सिद्धान्त प्रेरक होते हैं किंतु आंतरिक परिवर्तन के अभाव में वे प्रेरणाएं चिरस्थायी नहीं होती। इसलिए आध्यात्मिक विकास, आत्मानुशासन या चरित्र विकास के लिए ऐसी समन्वित शिक्षा पद्धति की अपेक्षा है, जो बौद्धिक शिक्षा की पूरक बने और वर्तमान की अपेक्षाओं की पूर्ति कर सकें।

8.6.1 वर्तमान शिक्षा प्रणाली – असंतुलन की समस्या

समस्याओं का समाधान व स्वस्थ समाज का निर्माण शिक्षा से होता है। शिक्षा प्रत्येक विकास का आधार है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली गलत नहीं है पर अधूरी है, संतुलित नहीं है। संतुलित शिक्षा प्रणाली वह होती है जिसमें व्यक्तित्व के चारों आयाम– शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और भावनात्मक, संतुलित रूप से विकसित हों। शरीर का विकास भी अपेक्षित है। मन का विकास भी अपेक्षित है। बुद्धि और भावना का विकास भी अपेक्षित है। आज की शिक्षा में इन चार आयामों में से दो पर ध्यान अधिक दिया जा रहा है। वे दो आयाम हैं– शारीरिक विकास और बौद्धिक विकास। शेष दो आयाम उपेक्षित पड़े हैं। आज शारीरिक विकास बहुत हुआ है और बौद्धिक विकास भी प्रतिदिन बढ़ रहा है। किंतु मानसिक और भावनात्मक विकास नहीं हो रहा है। शिक्षा प्रणाली का यह असंतुलन है।

शिक्षा तंत्र एकांगी विकास की परिक्रमा कर रहा है। वह सर्वांगीण विकास की धूरी पर नहीं चल रहा है। इसलिए वह अपना संतुलन खो बैठा है। बौद्धिक विकास से व्यक्ति इंजिनीयर, वैज्ञानिक, डॉक्टर आदि बन जाने पर भी अनुकूल–प्रतिकूल स्थिति में अपना मानसिक संतुलन नहीं रख पाता है। ईर्ष्या, निराशा या आवेश की ज्वाला में जल उठता है और कभी कभी आत्महत्या करने पर भी उतारू हो जाता है।

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी दिल्ली में थे। वहां डॉ. डी.एस. कोठारी, केन्द्रीय विज्ञान समिति के अध्यक्ष आदि पांच–सात व्यक्ति आये। चर्चा चली कि वैज्ञानिकता और बौद्धिकता का इतना विकास होने पर भी नैतिकता और चरित्र की समस्या क्यों हैं? आज का वैज्ञानिक छोटी–मोटी बात पर उलझ जाता है और आत्महत्या जैसा जघन्य कार्य कर लेता है। यह शिक्षा के सामने बहुत बड़ा प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है? आखिर शिक्षा की निष्पत्ति क्या है? निष्कर्ष यही निकलता है कि बौद्धिक विकास के साथ जब तक भावनात्मक विकास नहीं होगा तब तक समस्या का समाधान संभव नहीं हो सकता।

8.6.2 शिक्षा की समस्याएं – जीवन विज्ञान का दृष्टिकोण

जीवन विज्ञान की दृष्टि में वर्तमान की शिक्षा प्रणाली गलत नहीं है, किंतु यह अपर्याप्त है। इस अपर्याप्तता के शिक्षा के छः अंगों– उद्देश्य, विषय–वस्तु, पाठ्यक्रम, विधि, संस्थान और अनुशासन के संदर्भ में समझ सकते हैं।

1. शिक्षा का उद्देश्य – शिक्षा का उद्देश्य मानव व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास है। यह तथ्य शिक्षा जगत् में सर्वत्र सम्मत एवं मान्य रहा है किंतु इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ध्यान कम दिया जाता रहा है।

2. शिक्षा की केन्द्रीय विषय–वस्तु

• शिक्षा जगत् में विद्यार्थी को ज्ञेय के बारे में बताने वाली सामग्री का समावेश बहुत है किंतु ज्ञाता अर्थात् स्वयं के बारे में बताने वाली सामग्री नहीं के बराबर है। बाह्य जगत् की सामग्री बहुत है किंतु आंतरिक जगत् की सामग्री नगण्य है।

• स्वयं की शक्तियों से परिचय कराने वाली सामग्री का अभाव है।

• मन की समग्र शक्तियों के विकास एवं तनाव मुक्ति से संबंधित सामग्री का अभाव है।

• अपने संवेगों पर नियंत्रण, संस्कार निर्माण व चरित्र निर्माण के प्रशिक्षण की सामग्री का अभाव है।

• सहिष्णुता के विकास से संबंधित सामग्री का अभाव है।

3. शिक्षा पाठ्यक्रम – पाठ्यक्रम में सर्वांगीणता के अभाव के कारण मूल्य बोध, चरित्र निर्माण, नैतिक विकास, भावनात्मक विकास आदि के लिए समय का समुचित नियोजन नहीं है। ये सारे तत्त्व जीवन के लिए आवश्यक हैं। समयाभाव के कारण अछूते रह जाते हैं।

4. शिक्षण प्रविधि – अध्ययन, पुस्तकीय ज्ञान का बोलबाला अधिक है। जीवन विकास व निर्माण के लिए प्रायोगिक अभ्यास का अभाव है।

5. शिक्षा संस्थान – शिक्षा संस्थान मात्र शारीरिक विकास एवं बौद्धिक विकास के माध्यम बन कर रह गए हैं। मानसिक शक्तियों एवं भावनात्मक विकास के माध्यम नहीं बन पा रहे हैं।

6. अनुशासन – आज शिक्षा जगत् में उच्छृंखलता, स्वेच्छाचार व उदण्डता का भाव अधिक बढ़ रहा है। आत्मानुशासन का अभाव खटकता है।

8.6.3 जीवन विज्ञान – एक समाधान

भारत सरकार के तत्कालीन शिक्षामंत्री के. सी. पंत अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी से मिले। शिक्षा विषय पर लम्बी चर्चा चली। वे बोले शिक्षा की समस्या बहुत बड़ी समस्या है। हम शिक्षा की प्रणाली को बदलना चाहते हैं, लेकिन कोई मार्ग नहीं मिल रहा है। हमारे सामने कोई स्पष्टता नहीं है। हम अनेक कोणों से सोच रहे हैं। बातचीत लम्बी चली। आचार्य प्रवर ने उन्हें जीवन विज्ञान पद्धति से परिचित कराया। वे बोले यह तो बिल्कुल नई बात है। अभी तक हमारे सामने कोई नयी बात आयी ही नहीं। आपने जीवन विज्ञान की नयी बात सुझाई है। मैं भी विज्ञान का विद्यार्थी रहा हूं। मैं इस बात को गहराई से पकड़ रहा हूं। यह पद्धति हमारे लिए कार्यकर हो सकती है।

23 अक्टूबर, 1985 को अखिल भारतीय अणुव्रत समिति द्वारा नई शिक्षानीति और जीवन विज्ञान पर एक संगोष्ठी आयोजित की गयी। उसमें सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् ईश्वर भाई पटेल, यशवंत भाई शुक्ल, चिनु भाई नायक, डॉ. रामजी सिंह, डॉ. दयानन्द भार्गव आदि ने भाग लिया। नई शिक्षानीति के निर्धारण के समय एक अनुशंसा पत्र तैयार किया गया। जिसमें 'जीवन विज्ञान' की अपेक्षा पर बल दिया गया।

अनशंसा पत्र में उल्लेख हैं कि शिक्षा और समाज व्यवस्था के बीच गहरा संबंध है। दुर्भाग्य से हमारी शिक्षा समाज व्यवस्था से कटी हुई है। इसलिए इसकी प्रासंगिकता दिनोदिन क्षीण होती जा रही है। शिक्षा समाज व्यवस्था के अनुरूप होकर ही प्रासंगिक होती है। इसलिए न केवल व्यक्ति निर्माण के लिए बल्कि समाज व्यवस्था को गुणानुरूप और गतिशील बनाने के लिए शिक्षा अत्यंत सशक्त उपकरण है। जीर्ण–शीर्ण सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों के परिवर्तन, लोकतांत्रिक, समाजवाद, सर्वधर्म समभाव एवं अहिंसा आदि जीवन मूल्यों के प्रति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निष्ठा जागृत करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। यदि हमारी शिक्षा व्यवस्था समाज की धर्मान्धता, अंधविश्वास, आर्थिक विषमता, हिंसा और आतंकवाद की चुनौतियों का उत्तर नहीं दे सकती, तो वह अप्रासंगिक है। नैतिक और चारित्रिक शिक्षा पर विभिन्न शिक्षा आयोगों एवं विशेषज्ञ समितियों ने समय–समय पर अपनी महत्त्वपूर्ण अनुशंसाएं दी हैं। किंतु उनका ठोस कार्यान्वयन सामने नहीं आया। आज मूल्यों की इस संकटग्रस्त स्थिति को अत्यन्त खतरनाक माना जा रहा है। शिक्षा की प्रक्रिया को सुसंगत और व्यवहार्य मूल्य–प्रणाली तथा तर्कसंगत वैज्ञानिक एवं नैतिक दृष्टिकोण पर आधारित करने की आवश्यकता को महसूस किया जा रहा है। यह एक शुभ लक्षण है। मूल्यों के उत्तरोत्तर ह्रास को रोकने के लिए बौद्धिक पाठ्यक्रम में भी बच्चे से लेकर विश्वविद्यालय के स्तर तक यथायोग्य महापुरुषों की जीवनियों, महाकाव्यों की त्यागमय जीवन घटनाओं, कला–साहित्य का ज्ञान, स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास के साथ–साथ मानवीय संस्कृति के विकास की गाथा, धर्म के मूल तत्त्वों की जानकारी, विज्ञान और अध्यात्म का सामंजस्य, तुलनात्मक धर्म–दर्शन के अध्ययन आदि का समावेश अपेक्षित है किंतु केवल बौद्धिकता एवं विचारवादिता से भावना का विकास संभव नहीं। इसलिए हमें इसका अनुसंधान करना होगा कि हम किस प्रकार शिक्षार्थियों में नैतिकता एवं चरित्र विकसित कर सकते हैं। जीवन विज्ञान में अध्यात्म और विज्ञान, तत्त्वमीमांसा और योग, मानविकी और भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, मनोविज्ञान और समाजविज्ञान तथा सृष्टि संतुलन शास्त्र का समन्वय है। संक्षेप में जीवन विज्ञान यह मानता है कि मस्तिष्क में असीम शक्ति है। इस शक्ति की जागृति तनाव और थकान को आसानी से कम करके की जा सकती है।

अतः संगोष्ठी की यह सशक्त अनुशंसा है कि जीवन विज्ञान के अध्ययन और प्रयोग को नयी शिक्षानीति में प्रारम्भिक स्तर से ही यथायोग्य अनिवार्य स्थान दिया जाए। इससे परम्परागत धार्मिक शिक्षा को लागू करने के विवाद भी खड़े नहीं होंगे एवं भारतीय संविधान की धारा 28 का भी किंचित् उल्लंघन नहीं होगा। जीवन विज्ञान वास्तव में केवल नैतिक शिक्षा का ही विकल्प नहीं, यह शिक्षा को सार्थक, समयोपयुक्त एवं समग्र बनाने का एक विज्ञान है। इसमें न धर्म या अध्यात्म की एकांगिता है, न विज्ञान की। यह अन्तर्विषयानुबंधी होने के कारण इसके अन्तर्गत एक साथ सामान्यीकरण एवं विशिष्टीकरण होने का समन्वय है।''

8.6.4 जीवन विज्ञान का महत्व

जीवन विज्ञान शिक्षा की पूरक कार्य पद्धति है। यह कार्य पद्धति शिक्षा को पूरा करती है। शिक्षा में जो भावनात्मक परिवर्तन तथा चरित्र निर्माण का पक्ष गौण है, उसकी यह पूर्ति करती है।जीवन विज्ञान का आधार प्रायोगिक अभ्यास का प्रशिक्षण है। मस्तिष्क के मूल स्रोतों को प्रशिक्षित करना प्रयोगात्मक पक्ष है। जो निष्क्रिय हैं, उन्हें सक्रिय करना। जो सुप्त पड़े हैं उन्हें जागृत करना यह प्रयोग से संबंधित है। प्रायोगिक अभ्यास प्रथम कक्षा से स्नातकोत्तर अध्ययन तक चलता है। सिद्धांत केवल उतना ही है जितना कि उन प्रयोगों को समझने के लिए जरूरी है। जीवन विज्ञान के सैद्धांतिक पक्ष की व्याख्या के लिए प्राचीन एवं अर्वाचीन सभी विद्याओं का समावेश किया गया है।

पदार्थ विकास के लिए विज्ञान को अस्वीकार नहीं किया जा सकता तो मानसिक शक्ति के विकास के लिए अध्यात्म को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। हमारा जीवन न तो केवल विज्ञान के आधार पर चल सकता है और न केवल अध्यात्म के आधार पर ही चल सकता है। इसमें तो विज्ञान और अध्यात्म दोनों के लिए अवकाश है। जीवन विज्ञान के पाठ्यक्रम में इन दोनों का समावेश किया गया है– दर्शन, अध्यात्म, योग विद्या और कर्मशास्त्र के साथ–साथ शरीर रचना विज्ञान, शरीर–क्रिया विज्ञान, मनोविज्ञान आदि अर्वाचीन विद्याशाखाओं का संतुलन स्थापित किया है।

जीवन विज्ञान के पाठ्यक्रम में सैद्धांतिक और प्रायोगिक प्रक्रियाओं का समावेश है। अतः इससे नैतिक मूल्यों के विकास की संभावना की जा सकती है। प्रयोग एवं अभ्यास शून्य सिद्धांत के द्वारा मूल्यों के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। स्वभाव निर्माण और चरित्र निर्माण के लिए अभ्यास नितांत आवश्यक है। अभ्यास के अभाव में व्यक्ति जानता हुआ भी अनजान–सा बना रहता है। जीवन विज्ञान में प्रयोग की अनिवार्यता स्वीकार की गई है। इस दृष्टि से यह मूल्यपरक शिक्षा की प्रेरणा एवं विकास का महत्त्वपूर्ण उपाय हो सकता है। जीवन विज्ञान विषय मूल्यपरक शिक्षा के सैद्धांतिक और प्रायोगिक प्रक्रियाओं को पूरा करता है। जीवन विज्ञान प्रकृति के अन्धाधुन्ध अनावश्यक शोषण को रोकने पर बल देता है। जिससे पर्यावरण का संतुलन एवं संरक्षण होगा। विश्व अनेक प्रकार की समस्याओं एवं प्रलय से बच सकेगा। इस प्रकार जीवन विज्ञान संक्षेप में जीवन की महत्त्वपूर्ण निम्न आवश्यकताओं को पूरा करता है–

1. वर्तमान शिक्षा की अपूर्णता दूर करना।
2. व्यक्ति और समाज व्यवस्था में समन्वय और स्वस्थ समाज की संरचना।
3. मूल्यपरक शिक्षा द्वारा चरित्र निर्माण।
4. प्राणधारा का संतुलन।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. मस्तिष्क का जैविक संतुलन।

6. क्षमता की आस्था का जागरण।

7. दृष्टिकोण, व्यवहार और भावना का परिष्कार।

8. पर्यावरण के प्रदूषण से मुक्ति।

9. शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं भावनात्मक विकास।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने 'जीवन विज्ञान : सिद्धांत और प्रयोग' की भूमिका में लिखा है कि आचार्यश्री तुलसी ने अणुव्रत की आचार–संहिता के माध्यम से अच्छे नागरिक का प्रारूप समाज के सामने रखा था। जीवन विज्ञान उसकी क्रियान्विति का प्रयत्न है। उसका उद्देश्य है–

1. बौद्धिक और भावनात्मक विकास का संतुलन।

2. विवेक और संवेग में सामंजस्य।

3. वैयक्तिकता और सामाजिकता में सामंजस्य।

4. मानवीय संबंधों में परिवर्तन।

5. नैतिक मूल्यों का विकास।

6. आत्मानुशासन की क्षमता का विकास।

7. मानवीय समस्या के प्रति संवेदनशीलता का विकास।

8.7 जीवन विज्ञान – शिक्षा दर्शन

8.7.1 शिक्षा शास्त्रियों की आकांक्षा

शिक्षाशास्त्री चाहते हैं कि शिक्षा से अच्छी पीढ़ी का निर्माण हो, अच्छा समाज बने, बुराइयां कम हों, बच्चे सुसंस्कारित बनें, अच्छे नागरिक बनें, किंतु यह धारणा या चाह सफल नहीं हो रही है क्योंकि जो मार्ग चुना है वह पर्याप्त नहीं है, केवल बौद्धिक विकास से यह संभव नहीं।

वर्तमान युग में मनुष्य को प्रतिदिन अनेक विषमताओं का सामना करना पड़ता है। अनेक विकट परिस्थितियां आती हैं जो मनुष्य के मस्तिष्क पर निरंतर दबाव डालती रहती हैं। आदमी में इन्हें झेलने की शक्ति नहीं है। ऐसी स्थिति में क्या यह संभव है कि शिक्षा हमें सहारा दे सके? अतः आज की शिक्षा के साथ मानसिक विकास, भावनात्मक विकास के कार्यक्रम अवश्य जुड़ने चाहिए जिससे मनोबल विकसित हो, सहिष्णुता बढ़े, संतुलन बना रहे। पर प्रश्न है कि भावनात्मक विकास कैसे हो?

शिक्षा का उद्देश्य है व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास। सर्वांगीण विकास का अर्थ है– व्यक्ति का शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक एवं भावनात्मक विकास। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शारीरिक विकास पर थोड़ा एवं बौद्धिक विकास पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता है। इसी का सुफल है– डॉक्टर, इंजिनीयर, वकील, वैज्ञानिक आदि का निर्माण। पर पढ़–लिख कर अच्छा डॉक्टर, इंजिनीयर, वकील, वैज्ञानिक आदि बन जाने पर भी तनाव से ग्रस्त रहना, भावावेश में आकर गलत व्यवहार कर लेना, अन्यान्य अनेक बुराइयों में फंसने की घटना आम बात होती जा रही है। बौद्धिकता के शिखर से व्यक्ति जब ईर्ष्या, निराशा या आवेश की ज्वाला में जल उठता है और आत्महत्या कर लेता है, तब आश्चर्य होता है। क्या शिक्षा से इतना भी अनुशासन नहीं सीख सका कि अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में अपना संतुलन रख सके? यह भावनात्मक विकास की उपेक्षा का परिणाम है।

8.7.2 भावनात्मक विकास एवं मनोविज्ञान

व्यक्ति में मानवीय मूल्यों के विकास, चारित्रिक विकास एवं नैतिक विकास का मूल आधार है – भावनात्मक विकास। भावनात्मक विकास का आधार है– व्यक्ति की भावधारा। जैसी भावधारा होती है वैसा ही व्यक्ति का आचरण एवं व्यवहार होता है। निर्मल भावधारा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

और भावनात्मक संतुलन से ही श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, करुणा, मृदुता आदि अनेक मूल्यों का विकास होता है। ये भाव दो वर्गों में विभाजित किये जाते हैं – 1. विधेयात्मक (Positive), 2. निषेधात्मक (Negative)।

आधुनिक मनोविज्ञान में व्यक्ति के भाव, व्यक्तित्व एवं उसके परिणामों पर बहुत सुन्दर ढंग से विचार किया गया है–

भाव	व्यक्तित्व	परिणाम
विधेयात्मक (Positive)		
विश्वास	उत्साही	सफलता
अभय	आशावादी	समादर
धैर्य	प्रसन्नता	निश्चिन्तता
सहिष्णुता	तनाव–मुक्त	आंतरिक शांति
मृदुता	विनयशील	मैत्री
श्रद्धा	सहृदय	स्वस्थता
निष्ठा	सहानुभूतिपूर्ण	सुख
सामंजस्य	वीरतापूर्ण	विकास
पारस्परिक समझ	अनुशासनबद्ध	साहस

भाव	व्यक्तित्व	परिणाम
निषेधात्मक (Negative)		
भय	क्रूर	तनाव
घृणा	दुर्बल	कुण्ठा
ईर्ष्या	कठोर	निराशा
सन्देह	उद्दण्ड	लाचारी
लोभ	नीरस	उद्विग्नता
माया	चिड़चिड़ापन	दुःख
दीनता/हीनता	रूखा	असफलता
छिद्रान्वेषण	आलसी	रुग्णता
अहं	डांवाडोल	दरिद्रता
आग्रह	धोखेबाज	थकावट
द्वेष	स्वार्थी	ऊब, असंतोष

8.7.3 भावात्मक विकास एवं विज्ञान

विज्ञान द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि हमारी भावधाराओं का उत्पादक एवं व्यवहार का निदेशक अन्तःस्रावी ग्रन्थितंत्र है। इन ग्रन्थियों के स्राव हमारे नाड़ीतंत्र को प्रभावित करते हैं। वर्तमान युग की विकट परिस्थितियों एवं दबावों के कारण ग्रन्थितंत्र के स्राव विकृत बन जाते हैं तथा नाड़ीतंत्र के दो अंगों– अनुकम्पी और परानुकम्पी के बीच संतुलन बिगड़ जाता है, इसी का परिणाम निषेधात्मक भावों की प्रचुरता और विधेयात्मक भावों का ह्रास है। यदि हार्मोनों का संतुलित नियमन किया जाये और अनुकम्पी एवं परानुकम्पी का संतुलित संबंध स्थापित किया जाए तभी समस्या का समाधान संभव हो सकता है। शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य होना चाहिए– विधेयात्मक भावधारा एवं व्यक्तित्व का विकास तथा निषेधात्मक भावधारा एवं व्यक्तित्व से मुक्ति। इससे ही नैतिकता, चरित्र एवं मानवीय मूल्यों का विकास संभव है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.7.4 सर्वांगीण विकास

यह संतुलन शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक और भावनात्मक विकास का कारण बनता है। वर्तमान शिक्षा अधिकांश बौद्धिक और शारीरिक विकास का प्रयास है। यह मनुष्य को पूर्णता प्रदान नहीं करती। मानसिक और भावनात्मक विकास के बिना विपरीत परिस्थितियों में संतुलित व्यवहार, दायित्व बोध, नैतिक चारित्रिक गुणों का विकास और मानवीय मूल्यों की वृद्धि संभव नहीं हो सकती। जीवन विज्ञान शिक्षा को पूर्णता प्रदान कर सर्वांगीण विकास का प्रयास है।

विकास के प्रतिमान	अर्थ	वर्तमान शिक्षा का योगदान	जीवन विज्ञान का योगदान
शारीरिक विकास	स्वस्थ, बलवान, सशक्त शरीर	व्यायाम, खेलकूद आदि	आसन, प्राणायाम, यौगिक क्रियाएं, स्वास्थ्य बोध, अच्छी आदतों का निर्माण, मिताहार प्रशिक्षण
मानसिक विकास	जीवन विज्ञान की दृष्टि से मानसिक स्वास्थ्य एवं मनोबल का विकास। एकाग्रता व जागरूकता का विकास, उच्च मानसिक शक्तियों–चिंतन, तर्क, स्मृति, कल्पना एवं निर्णय शक्ति का विकास।	विभिन्न विषयों का अध्ययन एवं प्रयोग–स्मृति और तर्क के विकास के लिए। किंतु मानसिक स्वास्थ्य मनोबल, एकाग्रता व जागरूकता के उपक्रम नहीं हो।	आसन, प्राणायाम, संतुलित आहार, प्रेक्षाध्यान और मानसिक स्वास्थ्य बोध, अनेकांत का प्रशिक्षण।
सामाजिक विकास	सामाजिक समायोजन, उचित व्यवहार, आत्म–निर्भरता, सहयोग, सहानुभूति एवं नेतृत्व का विकास।	विचार–विमर्श, अध्ययन गोष्ठी, समिति कार्य, मोनीटर प्रणाली, सामूहिक प्रशिक्षण प्रणाली।	सामाजिक मूल्यों का बोध। अहिंसा, करुणा, सह–अस्तित्व, स्वावलम्बन, मानवीय एकता, संयम, कर्त्तव्यनिष्ठा आदि अनुप्रेक्षा के प्रयोग। अच्छे व्यक्ति के निर्माण द्वारा अच्छे समाज का निर्माण।
भावनात्मक विकास	दु:खद संवेगों पर नियंत्रण, अच्छे संवेगों का विकास, संवेग प्रकाशन की पद्धति पर नियंत्रण करके उसमें मोड़ या परिवर्तन लाना।	वर्तमान शिक्षा प्रणाली में कोई शिक्षण व्यवस्था नहीं। अच्छे वातावरण के निर्माण पर बल।	भावात्मक मूल्यों का विकास, संवेग नियंत्रण का सैद्धांतिक व प्रायोगिक प्रशिक्षण।

8.7.5 सर्वांगीण विकास का आधार – प्रायोगिक अभ्यास

अनेक बार शिक्षा जगत् में चरित्र विकास के लिए नैतिक शिक्षा लागू करने के सुझाव सामने आते हैं। इसके लिए महापुरुषों की जीवन घटनाएं, कथा प्रसंग आदि उपदेशात्मक प्रविधि का प्रयोग भी किया जाता है। पर प्रायः देखा जाता है कि केवल उपदेशात्मक शिक्षा का प्रभाव सीमित होता है। यह स्पष्ट है कि परिवर्तन की प्रक्रिया को घटित करने के लिए प्रायोगिक अभ्यास के प्रशिक्षण की आवश्यकता है जो हमारे भीतर भावनात्मक परिवर्तन के लिए जिम्मेदार तंत्र एवं केन्द्रों को प्रभावित कर सके। भावधारा, आचरण और व्यवहार को नियंत्रित कर सके।

शिक्षा का मूल अर्थ है– अभ्यास। अभ्यास के बिना अध्ययन अधूरा है। अभ्यास से पुष्ट ज्ञान ही भावनात्मक संतुलन में फलित होता है। कोरी बौद्धिकता व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के लिए उपयोगी नहीं होती। कई बार अनेक दुष्परिणाम भी आते हैं। इसलिए ऐसी शिक्षा होनी चाहिए जो सिद्धांत के साथ–साथ व्यावहारिक भी हो अर्थात् प्रायोगिक हो। जो व्यक्ति में दायित्व बोध, मानवीय मूल्य, नैतिकता तथा चारित्रिक गुणों का विकास कर सके। यह अभ्यास द्वारा ही संभव है। जीवन विज्ञान इस दिशा में एक सशक्त माध्यम है। उसके पाठ्यक्रम में प्रायोगिक प्रशिक्षण का प्रमुख स्थान है। इससे भावधारा शुद्ध होती है। भावनात्मक विकास होता है, सहनशीलता बढ़ती है, आन्तरिक शक्तियों का जागरण होता है।

8.8 जीवन विज्ञान – शिक्षा के तत्त्व

शिक्षा दर्शन से शिक्षा के तत्त्व उभरकर आते हैं। शिक्षा के तत्त्वों में मुख्यतया उद्देश्य, विषयवस्तु, पाठ्यक्रम, प्रविधि एवं मूल्यांकन पर विचार किया जाता है। जीवन विज्ञान के शिक्षा दर्शन के आधार पर इस शिक्षा के तत्त्वों पर विचार किया जा रहा है। इसमें इसके

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उद्देश्य, विषय–वस्तु, पाठ्यक्रम, प्रविधि एवं मूल्यांकन आदि तत्त्वों को स्पष्ट किया गया है और इसके विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय के स्तर पर चल रहे पाठ्यक्रम के संदर्भ में प्रस्तुत किया जा रहा है।

8.8.1 मुख्य उद्देश्य

विद्यालय, स्नातक, एवं स्नातकोत्तर स्तर पर पृथक–पृथक रूप से विभिन्न उद्देश्यों का निर्माण किया गया है एवं पाठ्यक्रम में उसे पुष्ट किया गया है।

8.8.1.1 विद्यालय स्तर पर उद्देश्य

1. विद्यार्थियों में मूल्य चेतना को जागृत करना।
2. शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता पैदा करना।
3. शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं सामाजिक विक स के संतुलन की स्थापना करना।
4. योग एवं प्रेक्षाध्यान पद्धति का प्रायोगिक प्रशिक्षण देना।
5. शरीर विज्ञान एवं मनोविज्ञान के ज्ञान द्वारा वैज्ञानिक तथ्यों एवं आध्यात्मिक अनुभवों के समन्वय का बोध जागृत करना।

8.8.1.2 स्नातक स्तर पर उद्देश्य

1. शिक्षा में जीवन विज्ञान के स्वरूप का ज्ञान कराना।
2. अणुव्रत, योग एवं प्रेक्षाध्यान के सिद्धांतों का ज्ञान देना।
3. प्रायोगिक अभ्यास द्वारा संतुलित व्यक्ति का निर्माण कराना।
4. जीवन के मूल तत्त्व शरीर, मन, भाव एवं चेतना का ज्ञान कराना।

8.8.1.3 स्नातकोत्तर स्तर पर उद्देश्य

1. जीवन के परिष्कार द्वारा आध्यात्मिक–वैज्ञानिक मूल्यों से परिपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करना। आध्यात्मिक व्यक्तित्व अर्थात् मैत्रीपूर्ण व्यवहार से ओत–प्रोत व्यक्तित्व और वैज्ञानिक व्यक्तित्व अर्थात् सत्य की खोज के लिए खुले दिमाग से समर्पित व्यक्तित्व।
2. जीवन की शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं चैतसिक प्रक्रियाओं पर योग एवं प्रेक्षाध्यान की प्रक्रियाओं के प्रभावों का वैज्ञानिक अध्ययन करना।
3. जीवन के उन नियमों एवं प्रभावों का अध्ययन एवं अन्वेषण करना जिनसे जीवन के ज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं क्रियात्मक पक्ष का विकास एवं परिष्कार हो।
4. स्वस्थ समाज संरचना के लिए ऐसे व्यक्तित्व (प्रशिक्षक) का निर्माण करना जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों हेतु स्वस्थ जीवन की प्रायोगिक अभ्यासात्मक प्रक्रियाओं को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत कर सके। इसके माध्यम से वह समग्र व्यक्तित्व एवं स्वस्थ समाज के निर्माण में सहभागी बन सके।

8.8.2 केन्द्रिय विषय वस्तु

जीवन मूल्यों के विकास के लिए जीवन के तत्त्वों को प्रशिक्षित करना आवश्यक है। उनके प्रशिक्षण की प्रक्रिया में है– अहिंसा, अनेकांत, अणुव्रत एवं प्रेक्षा–ध्यान। परन्तु जीवन के उन तत्त्वों को एवं उनके प्रशिक्षाण की प्रक्रिया को पूरी तरह समझने के लिए आधुनिक विज्ञान के अन्तर्गत शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान, परामनोविज्ञान, पर्यावरणविज्ञान, स्वास्थ्यविज्ञान एवं पोषाहार तथा मनश्चिकित्सा विज्ञान का समावेश किया गया है।

प्राच्य विद्या, मानविकी एवं समाज विज्ञान के अन्तर्गत दर्शन, शिक्षा, मूल्यपरक शिक्षा, तुलनात्मक धर्म, योग–सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक, शांति–शोध, अहिंसा प्रशिक्षण, समाज–शास्त्र, कर्मशास्त्र, आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा, प्राणविज्ञान, मंत्र–विज्ञान एवं अध्यात्म विज्ञान का समावेश किया गया है।

8.8.2.1 मूल विषय–वस्तु

क. अणुव्रत – जीवन में नैतिक मूल्यों के विकास के लिए नैतिक जीवन की आचार संहिता से परिचय करवाना। छोटे–छोटे संकल्प के द्वारा जीवन में नैतिकता के विकास को प्रेरित करना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ख. सप्तसूत्रीय प्रेक्षा कार्यक्रम – शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य के लिए सप्तसूत्रीय प्रेक्षा कार्यक्रम–

1. यौगिक क्रियाएं – प्रत्येक मांसपेशी, अवयव और अंग के व्यायाम के लिए।

2. योगासन – शरीर के भीतर स्थित अवयवों के व्यायाम एवं नियंत्रण के लिए।

3. प्राणायाम – श्वास पर शैक्षिक नियंत्रण, संकल्प शक्ति और इच्छा शक्ति के विकास के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। अतः इससे स्वायत्त नाड़ी संस्थान पर भी स्वेच्छिक नियंत्रण बढ़ता है।

4. कायोत्सर्ग – शरीर और मन को शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तनावों से मुक्त करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

5. प्रेक्षाध्यान – यह विवेक शक्ति को जगाने की प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति संवेगों पर अपना नियंत्रण रख सके। प्रेक्षाध्यान मुख्यतः राग–द्वेष रहित देखने की एकाग्रता है। यह आंतरिक चेतना एवं आंतरिक प्रक्रियाओं को अनुभव करने की प्रक्रिया है, अभ्यास है। इससे आंतरिक प्रक्रियाओं का नियंत्रण व रूपांतरण भी किया जाता है।

यह आत्म–निरीक्षण, प्रेक्षा का अभ्यास चेतना की गहरी परतों, अवचेतन मन के रहस्यों को उजागर करता है एवं अशुभ संस्कारों से मुक्ति दिलाता है। यह पद्धति अन्तःस्रावी ग्रन्थितंत्र के रसायनों को संतुलित व समन्वित करती है जो हमारे स्नायु तंत्र को भी नियंत्रित करते हैं। इसके प्रभावों को निम्न रूप में वर्गीकृत करके सरलता से समझा जा सकता है –

अ. शारीरिक – शारीरिक स्तर पर प्रेक्षाध्यान पद्धति प्रत्येक कोशिका को प्राणवान बनाती है। पाचन तंत्र स्वस्थ बनता है।श्वसन तंत्र की क्षमता बढ़ती है। रक्त संचार निर्बाध बनता है।

ब. मानसिक – मानसिक स्तर पर प्रेक्षाध्यान मन की एकाग्रता को बढ़ाता है। मन को तनाव मुक्त करता है। जिसके फलस्वरूप प्रायः सभी मानसिक प्रक्रियाएं या शक्तियां भलीभांति एवं सुचारु रूप से अपना योगदान दे सकती है। प्रेक्षाध्यान अनेक मनोकायिक बीमारियों का बिना दवाई समाधान प्रस्तुत करता है। आत्मानुशासन का यह सशक्त उपाय है जिससे व्यक्ति व्यसन एवं बुरी आदतों से मुक्त हो जाता है। यह चेतन मन से परे जाने का उपाय है।

स. भावनात्मक – विवेक शक्ति जागृत होती है। बाह्य वातावरण, परिस्थितियां एवं दूसरों के व्यवहार के प्रति प्रतिक्रियात्मक वृति पर नियंत्रण होता है। स्नायु तंत्र और अन्तःस्रावी ग्रन्थि तंत्र का समन्वय स्थापित होता है। अन्ततः भय, ईर्ष्या, क्रोध, वासना आदि से छुटकारा मिलता है।

द. आध्यात्मिक – विवेक शक्ति का वृत्तियों पर पूरा नियंत्रण स्थापित होता है। हमारे आन्तरिक रसायनों का नियमन व रूपान्तरण घटित होता है। जिससे समाधि, करुणा, आनन्द और समता का विकास होता है।

अनुप्रेक्षा और भावना द्वारा मूल्य प्रशिक्षण – मूल्य परक गतिविधियां या चिंतन चिकित्सा जीवन विज्ञान की रीढ़ है। विद्यार्थी में जिन नैतिक, सामाजिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास अनुप्रेक्षा और भावना के द्वारा करणीय हैं। वे निम्नलिखित हैं –

1.	कर्त्तव्यनिष्ठा	2.	स्वावलम्बन	3.	सत्य	4.	समन्वय
5.	सम्प्रदाय–निरपेक्षता	6.	मानवीय एकता	7.	सह–अस्तित्व	8.	राष्टीय दायित्व
9.	मानसिक संतुलन	10.	धैर्य	11.	प्रामाणिकता	12.	करुणा
13.	पवित्रता	14.	सहिष्णुता	15.	मृदुता	16.	ऋजुता
17.	आत्मानुशासन	18.	मैत्री	19.	अभय		
20.	अतिलोभ से मुक्ति	21.	संकल्प शक्ति	22.	अनासक्ति		

इन मूल्यों का विकास केवल पुस्तकीय ज्ञान या उपदेश से संभव नहीं है। यह प्रयोग के नियमित अभ्यास से ही हो सकता है। स्वतः सुझाव और चैतन्य केन्द्र पर रंगों के ध्यान से वांछित आंतरिक परिवर्तन घटित होते है। परिणामतः वांछित मूल्यों का विकास एवं व्यक्तित्व में रूपांतरण घटित होता है। इसी प्रकार किसी भी वांछित मूल्यों के विकास के लिए अनुप्रेक्षा एवं स्वतः सुझावों के प्रयोग का निर्धारण एवं निर्माण किया जा सकता है।

6. स्वाध्याय – महापुरुष, साधक एवं वैज्ञानिकों के जीवन साहित्य से परिचय कराना। उनके द्वारा खोजे हुए सत्य में समान तत्त्वों को रेखांकित करना एवं शाश्वत सत्य का बोध साहित्य द्वारा करवाना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7. अहिंसा प्रशिक्षण – विचार एवं व्यवहार में अहिंसा के विकास के लिए चतुःसूत्री कार्यक्रम–

1. ह्रदय परिवर्तन – मस्तिष्कीय प्रशिक्षण।

2. दृष्टिकोण परिवर्तन – अनेकांत का प्रशिक्षण।

3. जीवन शैली परिवर्तन – जीवन शैली में परिवर्तन के लिए अणुव्रत का प्रशिक्षण।

4. व्यवस्था परिवर्तन – सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक व्यवस्था परिवर्तन के लिए मानवीय संबंधों में परिष्कार, स्वस्थ आर्थिक व्यवस्था एवं शुद्ध साधनों के प्रयोग का प्रशिक्षण।

8.8.2.2 विद्यालय के स्तर पर पाठ्यक्रम – जीवन विज्ञान की मूल विषय वस्तु के आधार पर विद्यालयों के स्तर पर पाठ्यक्रम व पाठ्य पुस्तकें तैयार की गई हैं। जिसकी पृष्ठभूमि इस प्रकार है–

शिक्षाविदों के साथ किए गए विचार–विमर्श और प्रयोगों के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला गया कि वर्तमान पाठ्यक्रम के साथ जीवन विज्ञान को स्वतंत्र रूप से कक्षा में पढ़ाया जाए। इसी निर्णय को लेकर राजस्थान शिक्षा विभाग ने 'जीवन विज्ञान समिति' का गठन किया। उसने सर्व प्रथम राज्य के विभिन्न स्कूलों के अध्यापकों को प्रशिक्षित किया और कक्षाओं में विधिवत् प्रयोग करवाएं। इनके परिणामों को जानकर राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर के तत्कालीन अध्यक्ष श्री जगन्नाथसिंह मेहता ने जीवन विज्ञान को पाठ्यक्रम के रूप में अपनाने के लिए एक लेखक संगोष्ठी आयोजित की। दिनांक 22–23 मई, 1989 को लेखकों ने गहन विचार–विमर्श के पश्चात् जीवन विज्ञान पाठ्यक्रम की विषय सूची और लेखन के मानदण्ड निर्धारित किये। ये (जीवन विज्ञान भाग 1 से 10 तक) पुस्तकें मूल्य परक शिक्षा के सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गयी हैं। वे सिद्धांत इस प्रकार विकसित किए गये हैं–

1. 'सरलता से कठिनता की ओर' सिद्धांत के अनुसार भाषा के अनुसार सरलता से क्रमशः कठिनता की ओर ले जाते हुए किया गया है ताकि हर स्तर का विद्यार्थी पुस्तक का आसानी से उपयोग कर सके।

2. 'ज्ञात से अज्ञात की ओर' सिद्धांत को ध्यान में रख कर यथासंभव बच्चों की जानकारी वाले तथ्य जैसे– चित्र, रूपक, दृष्टांत, तुलनात्मक घटना या कहानी आदि को सामने रख कर गूढ़ विषय को रोचक व सहज ग्राह्य रूप में समझाने की कोशिश की गई है।

3. प्रत्येक पाठ को रोचक तथा सुपाच्य बनाने के लिए प्रश्न, कविता, इतिहास आदि का भी खुल कर प्रयोग किया गया है।

4. भाव–परिवर्तन जीवन विज्ञान का मुख्य आधार है। निषेधात्मक भावों की जगह विधेयात्मक भावों को चरित्र का अंग बनाना, बुरी आदत को मिटाकर अच्छी आदतों का निर्माण करना, शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक तनावों से मुक्त रह कर जीवन जीना, अपनी कार्य–शैली एवं कुशलता को बढ़ाना आदि ऐसे विषय हैं जिनसे आजकल विद्यार्थी अछूता रहता है। इसके लिए अनुप्रेक्षा, कायोत्सर्ग, और यौगिक क्रिया आसन, प्राणायाम के अभिनव प्रयोगों को शामिल किया गया है।

प्रस्तुत सिद्धांतों को सरल एवं रुचिकर बनाने के लिए 12 इकाइयों में बांटा गया है–

1. ध्वनि – ध्वनि संबंधी प्रयोगों और सिद्धांतों के लिए।

2. संकल्प – संकल्प शक्ति के विकास के लिए।

3. सम्यक् व्यायाम – आसन और मुद्राओं के प्रयोग के लिए।

4.श्वास – श्वास के महत्त्व और प्रयोगों के लिए।

5. कायोत्सर्ग – तनाव मुक्ति के प्रयोगों के लिए।

6. ध्यान – भावनात्मक परिवर्तन और सही दर्शन के लिए।

7. शरीर विज्ञान – शरीर विज्ञान की समुचित जानकारी हेतु।

8. शारीरिक स्वास्थ्य – शारीरिक स्वास्थ्य के लिए।

9. मानसिक स्वास्थ्य – मानसिक स्वास्थ्य के लिए।

10. भावनात्मक स्वास्थ्य – भावनात्मक स्वास्थ्य के लिए।

11. मूल्य–बोध – जीवन मूल्यों या आदर्शों को चरित्र का अंग बनाने के लिए अभिनव प्रयोग अनुप्रेक्षा के रूप में।

12. अहिंसा प्रशिक्षण – अहिंसा दर्शन और प्रशिक्षण की प्रक्रिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.8.2.3 पाठ्य पुस्तकें

विद्यालय स्तर पर – विद्यालय की अपेक्षा को ध्यान में रख कर निर्धारित विषय वस्तु व मानदंडों के आधार पर विद्यालयों के लिए ग्यारह पुस्तकें (जीवन विज्ञान भाग 1–10 एवं वर्णमाला) तैयार की गई है। इनका अंग्रेजी, तमिल आदि अन्य भाषाओं में रूपांतरण कार्य भी किया गया है और निरन्तर प्रगति पर है।

स्नातक स्तर पर – 'जैन विद्या व जीवन विज्ञान' विषय को महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, अजमेर ने 1990–91 में अपने स्नातक पाठ्यक्रम में एक विषय के रूप में मान्यता प्रदान की। वर्तमान में इस विषय का 'राजकीय महाविद्यालय' पाली, 'तेरापंथ महाविद्यालय' राणावास एवं 'आचार्य श्री तुलसी अमृत महाविद्यालय' गंगापुर महाराजा गंगा सिंह विश्वविद्यालय के महाविद्यालयों में अध्ययन–अध्यापन हो रहा है। जैन विश्व भारती संस्थान के आचार्य कालू कन्या म्हाविद्यालय के साथ ही दूरस्थ शिक्षा में भी इसका समावेश है। महाविद्यालयों में जीवन विज्ञान के उद्देश्यानुसार निम्नलिखित पाठ्यक्रम वर्तमान में चल रहा है।

(i) प्रेक्षाध्यान : सिद्धांत और प्रयोग

1. जीवन विज्ञान अर्थ एवं प्रारूप, शिक्षा का नया आयाम, स्वास्थ्य और जीवन विज्ञान की आवश्यकता, आधार और प्रक्रिया, शिक्षा और भावनात्मक परिवर्तन
2. प्रेक्षाध्यान : आधार और स्वरूप
3. लेश्याध्यान, अनुप्रेक्षा एवं आसन, प्राणायाम और मुद्रा

(ii) जैन दर्शन और संस्कृति

1. दर्शन, आत्मवाद, कर्मवाद, स्याद्वाद, इतिहास, साहित्य और संस्कृति

(iii) जीवन विज्ञान : सिद्धांत और प्रयोग

1. जीवन विज्ञान : स्वरूप और आवश्यकता
2. जीवन विज्ञान और सामाजिक जीवन
3. मूल्य परक शिक्षा : सिद्धांत और प्रयोग

(iv) अहिंसा और अणुव्रत : सिद्धांत और प्रयोग

1. अहिंसा का सिद्धांत
2. अहिंसा और नि:शस्त्रीकरण
3. अणुव्रत और उसका स्वरूप

(v) मन का प्रशिक्षण –

1. संस्कार शोधन की प्रक्रियाएं
2. आध्यात्मिक शुद्धि की प्रक्रियाएं तथा मनोविज्ञान
3. सामान्य मनोविज्ञान

(vi) जैन दर्शन और विज्ञान

1. दर्शन और विज्ञान : तुलनात्मक अध्ययन
2. अध्यात्म और विज्ञान
3. जैन दर्शन और परामनोविज्ञान
4. विज्ञान के संदर्भ में जैन जीवन शैली
5. दर्शन और विज्ञान
6. दर्शन और विज्ञान में पुद्गल, परमाणु एवं विश्व।

स्नातक स्तर पर जीवन विज्ञान के उद्देश्य एवं विषय–वस्तु को ध्यान में रख कर कुछ पाठ्य पुस्तकें तैयार की गयी–

1. प्रेक्षाध्यान : सिद्धांत और प्रयोग।
2. जीवन विज्ञान : सिद्धांत और प्रयोग।
3. अहिंसा और अणुव्रत : सिद्धांत और प्रयोग।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्नातकोत्तर स्तर पर – जीवन विज्ञान के प्रशिक्षण हेतु प्रशिक्षकों की आवश्यकता सामने आई। इस हेतु प्रशिक्षक परियोजना जैन विश्वभारती के तत्त्वावधान में 1984 में प्रारम्भ हुई। इस योजना की क्रियान्विति अध्यात्म और विज्ञान के समन्वित पाठ्यक्रम के रूप में हुई।

सन् 1970 में स्थापित 'जैन विश्व भारती' के उद्देश्यों, कार्यक्रमों एवं प्रवृत्तियों का मूल्यांकन करते हुए विश्वविद्यालय आयोग की सलाह पर भारत सरकार (मानव संसाधन मंत्रालय) ने दिनांक 20 मार्च 1991 को 'जैन विश्व भारती संस्थान' को मान्य विश्वविद्यालय के रूप में घोषित किया। इस विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर स्तर पर नियमित 'जीवन विज्ञान और प्रेक्षाध्यान' विषय का अध्ययन चलता है। इस अध्ययन का पाठ्यक्रम (1995–96) मुख्य रूप से इस प्रकार है–

8.8.2.4 पारस्परिक प्रविधियां – 1. नियमित कालांश 2. शिविर

नियमित कालांश – जीवन विज्ञान के उद्देश्य एवं मूल विषय–वस्तु को ध्यान में रखकर इसकी प्रविधि का निर्धारण किया जाता है। जीवन विज्ञान में प्रशिक्षित अध्यापकों द्वारा सभी स्तर, प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में नियमित कालांश चलाए जाते हैं।

इस प्रकार के कार्यक्रमों में अध्यापकों का दृष्टिकोण एवं व्यवहार बहुत प्रेरणादायी होता है। अच्छे परिणामों के लिए प्रशिक्षित एवं अनुभवी अध्यापकों की अपेक्षा होती है। समय–समय पर ऐसे प्रयोगों में बार–बार प्रशिक्षण (Refreshing Course) की भी आवश्यकता होती है। यह भी अत्यन्त अपेक्षित होता है कि इसका स्वयं अध्यापक अपने जीवन में अभ्यास अवश्य करे। अनुभव को परिपक्व बनाये।

जीवन विज्ञान की नियमित कलांशों के प्रभावशाली परिणामों के लिए जीवन विज्ञान की प्रयोगशालाओं की स्थापना भी अत्यन्त अपेक्षित है। इन प्रयोगशालाओं के उपकरण व्यक्तिगत अनुभूति से संबंधित आधुनिक विज्ञान के सिद्धांतों को समझने में सहायक होते हैं।

सामूहिक संगान, पोस्टर, उद्घोष आदि पारस्परिक प्रविधियों के अन्तर्गत उपयोगी होते हैं।

विद्यालय के स्तर पर कालांशों का आयोजन इस प्रकार किया जाता है–

1. प्रत्येक कक्षा में प्रतिदिन जीवन विज्ञान भाग 1–10 तक का अध्यापन एवं प्रयोग जिसमें सप्ताह में एक या दो दिन सिद्धांत व शेष दिन प्रायोगिक अभ्यास।
2. प्रारम्भ में अनेक विद्यालयों में किसी चयनित कक्षा में सप्ताह में सुविधानुसार पांच कालांश या दो कालांश का आयोजन।
3. प्रार्थना सभा में सुविधानुसार 15 मिनट का प्रायोगिक अभ्यास।
4. स्मरण शक्ति एवं एकाग्रता में वृद्धि के लिए कक्षा के प्रारम्भ में तीन मिनट का प्रायोगिक अभ्यास।

जीवन विज्ञान का सैद्धांतिक प्रशिक्षण–व्याख्यान पद्धति से कराया जाता है। इसमें प्रश्नोत्तर प्रविधि, दृश्य–श्रव्य साधन जैसे चार्ट, मॉडल, रंग और ध्वनि प्रभाव का उपयोग किया जाता है। प्रायोगिक प्रशिक्षण में प्रयोग पद्धति (Experimental method), अभ्यास पद्धति (Drill method) एवं व्यक्तिगत पद्धति का उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त पर्यवेक्षण विधि, सामूहिक विचार–विमर्श पद्धति का भी समावेश किया जाता है।

शिविर – जीवन विज्ञान को क्रियान्वित करने के लिए शिविर एक शक्तिशाली प्रक्रिया है – 10 से 15 दिवसीय आवासीय शिविर। विद्यालयों में एक दिवसीय शिविर आदि। यह पाया गया है कि इन शिविरों का साधकों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। क्योंकि इनमें उनको प्रत्यक्ष अनुभूति का अवसर एवं लाभ मिलता है। दूसरा कारण यह है कि शिविरार्थियों को अभ्यास के दौरान एकाग्रता के प्रयोग, प्रेक्षाध्यान, स्वतः सुझाव, कायोत्सर्ग एवं योगासन के प्रयोग कराये जाते हैं। इनका परिपूर्ण अभ्यास कराया जाता है। पूरा प्रशिक्षण एवं अवसर दिया जाता है, जिससे साधक उन्हें सीख सके, दक्षता प्राप्त कर सके। जब वह एक बार इनमें सफल हो जाता है, अनुभूति के स्तर पर चला जाता है तब अच्छे परिणाम के लिए प्रतिदिन मात्र आधा घंटा पर्याप्त होता है। शिविर में सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक प्रशिक्षण निम्न प्रकार से होते हो।

चार / पांच कालांश – प्रेक्षाध्यान, अनुप्रेक्षा एवं कायोत्सर्ग के प्रयोगों का अभ्यास।

एक कालांश – यौगिक क्रियाएं, योगासन एवं प्राणायाम।

एक कालांश – व्यसन मुक्ति का प्रयोग।

एक कालांश – जीवन विज्ञान का सैद्धांतिक प्रशिक्षण।

एक कालांश – अध्यात्म विज्ञान का सैद्धांतिक प्रशिक्षण।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पूरा कार्यक्रम प्रातः 5.00 से सायं 9.30 बजे तक व्यवस्थित होता है। जिसमें स्वतः स्वाध्याय एवं विश्राम का भी समय होता है।

मिताहार के साथ सम्यक् आहार का भी प्रशिक्षण दिया जाता है। उससे होने वाले मानसिक एवं शारीरिक प्रभावों से भी परिचित कराया जाता है।

श्रम, स्वावलम्बन एवं शिविर के सामूहिक जीवन की अनुभूतियां चरित्र निर्माण के लिए आवश्यक वृद्धि करते हैं।

सहायक पाठ्य सामग्री (Material ids)

पाठ प्रशिक्षण या व्याख्यान पद्धति के अतिरिक्त दृश्य–श्रव्य साधन, चार्ट, मॉडल, रंग और ध्वनि प्रभाव एवं व्यक्तिगत प्रशिक्षण पद्धति का भी उपयोग किया जाता है।

8.8.3 मूल्यांकन

जीवन विज्ञान शिक्षण–प्रशिक्षण का मूल्यांकन अनेक प्रकार से किया जाता है

1. सैद्धांतिक ज्ञान का मूल्यांकन प्रतिदिन प्रश्नोत्तर विधि से किया जाता है।
2. प्रायोगिक अभ्यास का मूल्यांकन भी प्रतिदिन निरीक्षण विधि द्वारा किया जाता है।
3. सैद्धांतिक ज्ञान, प्रायोगिक अभ्यास का मूल्यांकन त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक और वार्षिक परीक्षाओं के माध्यम से किया जाता है।
4. जीवन विज्ञान प्रशिक्षण द्वारा शरीर, मन और भावों पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन प्रशिक्षण के प्रारम्भ एवं अन्त में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों एवं वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा भी समय समय पर किया जाता है।
5. प्रश्नावली द्वारा विद्यार्थियों के व्यक्तिनिष्ठ अनुभव भी लिए जाते हो।

ध्वनि – मधुरता, अवधि, स्थिरता, ओज / तेज आदि।

मुद्रा – विधि, स्थिरता आदि।

संकल्प – स्पष्टता, विधि–बोलकर, मानसिक आदि।

सम्यक् व्यायाम – विधि, स्थिति, गति,श्वास, भावक्रिया, स्थिरता, शिथिलता आदि।

सम्यक्श्वास – श्वास की गति (प्रति मिनट), पेट की मांसपेशियों की गति (अन्दर–बाहर) आदि।

कायोत्सर्ग – मुद्रा, स्थिरता, शिथिलता, जागरूकता (श्वास मंद, पुतली स्थिर) आदि।

ध्यान – आसन, मुद्रा, स्थिरता, जागरूकता, स्पष्ट शब्दावली आदि।

अनुप्रेक्षा – आसन, मुद्रा, स्थिरता, जागरूकता, स्पष्ट शब्दावली आदि।

जीवन विज्ञान प्रशिक्षण के मूल्यांकन से प्राप्त परिणामों का सार संक्षेप इस प्रकार है–

1. जीवन के प्रति दृष्टिकोण में उल्लेखनीय एवं निश्चित परिवर्तन घटित हुए।
2. अहिंसा के प्रति दृढ़ आस्था का जागरण हुआ।
3. नैतिकता के प्रति दृढ़ आस्था निर्मित हुई।
4. विधायक भाव मृदुता एवं सहिष्णुता में दर्शनीय विकास हुआ।
5. दुर्व्यसनों से छुटकारा मिला।
6. आत्मानुशासन और अनुशासन का विकास हुआ।
7. स्मरण शक्ति का विकास हुआ।
8. मानसिक एकाग्रता में अतिशय वृद्धि हुई।
9. कार्यक्षमता में वृद्धि हुई।
10. बीमारियों में मुख्यतया मनोकायिक बीमारियों से छुटकारा मिला।

अतिरिक्त गतिविधियां

जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान, अणुव्रत एवं अहिंसा प्रशिक्षण को व्यापक बनाने के लिए भारत में एवं बाहर भी अनेक कार्यक्रम आयोजित किये गये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. 'विश्व शांति एवं अहिंसक उपक्रम' पर पांच अन्तर्राष्टीय सम्मेलनों का आयोजन किया गया– पहला लाडनूं (1988) में, दूसरा राजसमन्द (1991) में, तीसरा लाडनूं (1996) में, चौथा सरदारशहर (1998) में एवं पांचवां दिल्ली (1999) में।

2. भारत एवं विदेशों में आयोजित जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान शिविरों में जापान, इंग्लैण्ड, इटली, अमेरिका, कनाडा, पश्चिमी जर्मनी, हंगरी, रूस, हॉलैण्ड आदि देशों से अनेक लोगों ने भाग लिया। ऑक्सफोर्ड केम्ब्रीज एवं बुडापोस्ट विश्वविद्यालयों में आयोजित शिविर उल्लेखनीय रहे।

3. कुछ प्रबुद्ध एवं विश्रुत प्रोफेसर जैसे– ग्लेन. डी पेज आदि ने जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान के उपक्रम को प्रभावशाली पाया एवं उन्होंने कहा कि यह पद्धति शिक्षा जगत् के लिए उपयोगी एवं सर्वथा योग्य है।

4. अखिल भारतीय आयुर्वेद विज्ञान संस्थान (AIIMS) दिल्ली के तत्वावधान में अध्यात्म साधना केन्द्र, महरौली (दिल्ली) में प्रेक्षाध्यान पर अनुसंधान कार्य हुआ है।

5. बोकारो स्टील प्लांट ने अपने शिक्षा अधिकारी एवं अध्यापकों को जीवन विज्ञान में प्रशिक्षित किया है। उन्होंने जीवन विज्ञान के प्रशिक्षण को अपने यहां उच्च माध्यमिक विद्यालयों में प्रारम्भ कर लिया है।

6. पूरे भारत में 'अणुव्रत शिक्षक संसद' के लगभग 1,00,000 शिक्षक सदस्य हैं। जीवन विज्ञान, अणुव्रत एवं अहिंसा प्रशिक्षण के कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं जिससे जीवन विज्ञान के कार्यक्रमों को व्यापक स्तर पर लागू किया जा सके।

जीवन विज्ञान के लाभ केवल छात्रों तक ही सीमित नहीं हैं। इसके लाभ जीवन के हर क्षेत्र में स्थापित किये गए हैं। यह शिक्षकों और अभिभावकों पर समान रूप से लागू होने योग्य हैं। सरकारी कर्मचारी, व्यवसायी, प्रशासक तथा न्यायाधीश सभी जीवन विज्ञान के प्रयोग से लाभ उठा पाएंगे। संक्षेप में यह मनुष्य के सही व स्वस्थ व्यक्तित्व के निर्माण में, नया समाज रचने में और नई पीढ़ी के सृजन में सहायता करेगा।

सारांश

सशक्त राष्ट्र निर्माण के लिए आवश्यक है कि स्वस्थ, संतुलित एवं संस्कारवान युवा पीढी का निमार्ण किया जाये। ऐसा तभी सम्भव है जब बाल्यकाल से ही उन्हें ऐसी शिक्षा दी जाये जो उनके बौद्धिक विकास के साथ–साथ शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक विकास पर भी ध्यान दें, उनके भीतर सकारात्मक मूल्यों का सींचन करे, जिससे उनका व्यक्तित्व नैतिक एवं चारित्रिक रूप से समृद्ध हो। अरबन के अनुसार "केवल वही परम रूप से और साध्य रूप से मूल्यवान है जो आत्माओं के विकास या आत्म–साक्षात्कार की ओर ले जाएं। काने ने भी "मूल्यों को उन आदर्शों, विश्वासों या प्रतिमानों की संज्ञा दी है, जिसे एक समाज या समाज के अधिकांश सदस्यों ने अपना लिया है।" काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थाप्क महामना पंडित मदनमोहन मालवीय भी शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य मानव–मूल्यों का विकास ही मानते थे। जीवन में मूल्यों का अवतरण हो, शिक्षा के साथ मूल्यों का बोध हो तथा विद्यार्थी के जीवन में मूल्यों की प्रतिष्ठा हो, यह वर्तमान की शिक्षा के साथ सुचिंतित विचार चल रहा है। "बालकों के संस्कारित हुए बिना संस्कृति की सुरक्षा मात्र सपना है। संस्कार यदि ऊंचे होंगे तो संस्कृति अपने आप उन्नत, विकसित और उदित होती चली जाएगी।" मानवीय जीवन मूल्यों का विकास तभी संभव हो सकता है कि बचपन से ही बच्चों में उन मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न की जाएं। शिक्षा में मूल्य सहज नहीं आते, वे सिखाए जाते हैं। मूल्य सहज नहीं अर्जित होते हैं। अतः शिक्षा का स्वरूप स्वस्थ एवं सुदृढ़ होना आवश्यक है। अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी और आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने जीवन विज्ञान का प्रशिक्षण शिक्षा जगत् से जोड़ा है। यह शिक्षा का एक अभिनव प्रयोग है। व्यावसायिक विकास के लिए बौद्धिक शिक्षा आवश्यक हो सकती है किंतु व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए वह पर्याप्त नहीं है। मूल्यपरक शिक्षा की चर्चा बहुत हो रही है पर समाज में उन मूल्यों का विकास नहीं हो रहा है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली गलत नहीं है पर अधूरी है, संतुलित नहीं है। संतुलित शिक्षा प्रणाली वह होती है जिसमें व्यक्तित्व के चारों आयाम– शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और भावनात्मक, संतुलित रूप से विकसित हों। जीवन विज्ञान शिक्षा की पूरक कार्य पद्धति है। यह कार्य पद्धति शिक्षा को पूरा करती है। शिक्षा में जो भावनात्मक परिवर्तन तथा चरित्र निर्माण का पक्ष गौण है, उसकी यह पूर्ति करती है।जीवन विज्ञान का आधार प्रायोगिक अभ्यास का प्रशिक्षण है। जीवन विज्ञान के पाठ्यक्रम में सैद्धांतिक और प्रायोगिक प्रक्रियाओं का समावेश है। अतः इससे नैतिक मूल्यों के विकास की संभावना की जा सकती है। प्रयोग एवं अभ्यास शून्य सिद्धांत के द्वारा मूल्यों के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। जीवन विज्ञान विषय मूल्यपरक शिक्षा के सैद्धांतिक और प्रायोगिक प्रक्रियाओं को पूरा करता है। जीवन विज्ञान शिक्षा को पूर्णता प्रदान कर सर्वांगीण विकास का प्रयास है। जीवन विज्ञान इस दिशा में एक सशक्त माध्यम है। उसके पाठ्यक्रम में प्रायोगिक प्रशिक्षण का प्रमुख स्थान है। इससे भावधारा शुद्ध होती है। भावनात्मक विकास होता है, सहनशीलता बढ़ती है, आन्तरिक शक्तियों का जागरण होता है। जीवन विज्ञान के शिक्षा दर्शन के आधार पर विद्यालय, स्नातक, एवं स्नातकोत्तर स्तर पर पृथक–पृथक रूप से विभिन्न उद्देश्यों का निर्माण किया गया है एवं पाठ्यक्रम में उसे पुष्ट किया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.09 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. जीवन विज्ञान शिक्षा के तत्त्वों का विश्लेषण करें।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. जीवन विज्ञान की आवश्यकता पर प्रकाश डालें।
2. जीवन विज्ञान के महत्त्व का वर्णन करें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. जीवन विज्ञान किसका दस्तावेज है?
2. सर्वांगीण विकास का अर्थ क्या है?
3. महाकवि कालिदास ने किसके निर्णय को अंतःकरण से जोड़ा?
4. कर्म.........पुरुषार्थ की प्रतिक्रिया है।
5. संतुलित जीवन के विकास के लिए समग्र.........का विकास आवश्यक है।
6. प्रेक्षाध्यान का लक्ष्य है–भावात्मक एवं............विकास।
7. प्रेक्षाध्यान मुख्यतः राग–द्वेष रहित देखने की..........है।
8. भाव परिवर्तन................का मुख्य आधार है।
9. शिक्षा प्रत्येक विकास का .... है।
10. शिक्षा और समाज व्यवस्था के बीच गहरा .... है।
11. जीवन विज्ञान एक .... दर्शन है।
12. मूल्यपरक शिक्षा द्वारा .... निर्माण।
13. पर्यावरण के .... से मुक्ति।
14. शिक्षा का उद्देश्य क्या है?
15. जीवन विज्ञान किसकी पूरक कार्य पद्धति है?
16. प्राथमिक एवं अनौपचारिक शिक्षा पर संगोष्ठी कब हुई?

8.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. जीवन विज्ञान का हृदय (लेख)– आचार्य महाप्रज्ञ
2. जीवन विज्ञान की रूपरेखा– मुनि धर्मेश
3. जीवन विज्ञान शिक्षक निर्देशिका –मुनि किशनलाल, शुभकरण सुराणा।
4. जीवन विज्ञान : सिद्धांत और प्रयोग– मुनि धनंजयकुमार, मुनि प्रशांतकुमार, डॉ. संपत जैन।
5. जीवन विज्ञान की रूपरेखा– मुनि धर्मेश।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–3 जीवन विज्ञान का प्रायोगिक आधार — I

इकाई 9 प्रेक्षाध्यान : अर्थ, प्रयोजन, उपसम्पदा, स्वरुप एवं निष्पत्तियां

इकाई की संरचना

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रेक्षा : अर्थ व्यंजना

9.3 प्रेक्षाध्यान का प्रयोजन

- 9.3.1 चित्त की निर्मलता
- 9.3.2 सत्य की खोज
- 9.3.3 चैतन्य की स्वतन्त्र सत्ता का अनुभव
- 9.3.4 व्यक्तित्व का समग्र विकास

9.4 प्रेक्षाध्यान की उपसंपदा

- 9.4.1 उपसंपदा की चर्या

9.5 प्रेक्षाध्यान का स्वरूप

- 9.5.1 जागरूकता
- 9.5.2 एकाग्रता

9.6 प्रेक्षाध्यान का मूल आधार

- 9.6.1 द्वन्द्वात्मक अस्तित्व,
- 9.6.2 अध्यवसाय तत्रं से भाव तंत्र तक
- 9.6.3 क्रिया तंत्र

9.7 प्रेक्षाध्यान के स्त्रोत

- 9.7.1 प्रेक्षाध्यान के मूल स्त्रोत
- 9.7.2 महावीर की साधना
- 9.7.3 स्वरूप परिवर्तन
- 9.7.4 प्रेक्षाध्यान का अभ्युदय
- 9.7.5 प्रेक्षाध्यान – आगमिक और आगमेत्तर स्त्रोत
  - 9.7.5.1 प्रेक्षा के प्रयोग और उनके स्त्रोत

9.8 प्रेक्षाध्यान के अंग

- 9.8.1 मुख्य अंग
- 9.8.2 सहायक अंग
- 9.8.3 विशिष्ट अंग

9.9 प्रेक्षाध्यान की निष्पत्तियां

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.9.1 अन्तःकरण का परिवर्तन

9.9.2 मानसिक सन्तुलन

9.9.3 आध्यात्मिकता

9.10 सारांश

9.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.12 संदर्भ ग्रंथ

9.0 प्रस्तावना

जीवन विज्ञान की प्रायोगिक प्रविधि प्रेक्षाध्यान है। यह ध्यान की पद्धति है। इसकी सहायता से व्यक्ति के भावों में परिवर्तन किया जा सकता है। इसकी विस्तृत कार्य प्रणाली विभिन्न चरणों में सम्पन्न होती है। कोई भी ध्यान पद्धति हो, यदि उसमें वैज्ञानिक पद्धतियों का समावेश नहीं है तो वह अधूरी है। प्रेक्षाध्यान पद्धति में शरीर विज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान और मनोविज्ञान का भरपूर उपयोग हुआ है। प्रेक्षाध्यान में प्राचीन स्रोतों और नवीन वैज्ञानिक खोजों का सम्यक् समन्वय किया गया है। प्रेक्षाध्यान लचीली पद्धति है। जो शीघ्र ही जनमानस की समझ में आ जाती है।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान पायेंगे कि –

- प्रेक्षाध्यान का शाब्दिक अर्थ क्या है?
- प्रेक्षाध्यान का प्रयोजन क्या है?
- प्रेक्षाध्यान की उपसंपदा क्या है?
- प्रेक्षाध्यान का स्वरूप क्या है?
- प्रेक्षाध्यान का मूल आधार क्या है?
- प्रेक्षाध्यान का स्त्रोत क्या है?
- प्रेक्षाध्यान के अंग कौन–कौन से हैं?
- प्रेक्षाध्यान की निष्पत्तियां क्या हैं?

9.2 प्रेक्षा – अर्थ व्यंजना

''प्रेक्षा'' शब्द ईक्ष धातु से बना है इसका अर्थ है– देखना। प्र+ईक्षा=प्रेक्षा। इसका अर्थ है गहराई में उतरकर देखना। विपश्यना का भी यही अर्थ है जैन साहित्य में प्रेक्षा और विपश्यना ये दोनों शब्द प्रयुक्त हैं। प्रेक्षाध्यान और विपश्यना ध्यान ये दोनों शब्द इस ध्यान पद्धति के लिए प्रयुक्त किये जा सकते थे किन्तु 'विपश्यना–ध्यान' नाम से बौद्धों की ध्यान पद्धति प्रचलित थी, इसलिए 'प्रेक्षाध्यान' नाम का चुनाव किया गया। दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है– 'संपिक्खए अप्पगमप्पएणं' अर्थात् आत्मा के द्वारा आत्मा की संप्रेक्षा करो। मन के द्वारा सूक्ष्म मन को देखो, स्थूल चेतना के द्वारा सूक्ष्म चेतना को देखो। 'देखना' ध्यान का मूल तत्त्व है, इसलिए इस ध्यान पद्धति का नाम प्रेक्षाध्यान रखा गया है।

जानना और देखना चेतना का लक्षण है। आवृत चेतना में जानने और देखने की क्षमता क्षीण हो जाती है। उस क्षमता को जागृत करने का सूत्र है– जानो और देखो। भगवान् महावीर ने साधना के जो सूत्र दिए हैं, उनमें जानो और देखो ही मुख्य है। चिन्तन, विचार या पर्यायलोचन; यह बहुत गौण और प्रारम्भिक हैं। यह साधना के क्षेत्र में बहुत आगे नहीं ले जाते।

'आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो' यह अध्यात्म चेतना के जागरण का महत्त्वपूर्ण सूत्र है। इस सूत्र का अभ्यास हम श्वास से प्रारम्भ करते हैं। श्वास शरीर का ही एक अंग है। हम श्वास से जीते हैं, इसलिए सर्वप्रथम श्वास को देखें। हम शरीर से जीते हैं, आत्मा शरीर में है, इसलिए शरीर को देखें। इन्हें देखते–देखते मन पटु हो जाता है, सूक्ष्म हो जाता है फिर अनेक स्पन्दन देखने लग जाता है। वृत्तियां या संस्कार जब उभरते हैं तब उनके स्पंदन देखने लग जाता है। वृत्तियां या संस्कार जब उभरते हैं तब उनके स्पंदन स्पष्ट होने लग

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जाते हैं। पूरा का पूरा दोष—चक्र प्रत्यक्ष होने लग जाता है।

इस तथ्य को प्रकट करते हुए आयारो (आचारांग सूत्र) में बताया गया है— ''जो क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रियता और अप्रियता आदि दोषों को अपने भीतर देख लेता है; वह जन्म, मृत्यु और दुःख के समग्र चक्रव्यूह को तोड़ देता है।''

* महान साधक अकर्म (ध्यानस्थ) होकर मन, वचन और शरीर की क्रिया का निरोध कर जानता—देखता है।

* दृष्टा के लिए कोई निर्देश की अपेक्षा नहीं है, उसकी कोई उपाधि नहीं होती।''

जब हम देखते हैं तब सोचते नहीं हैं और जब सोचते हैं तब देखते नहीं हैं। विचारों का जो सिलसिला चलता है, उसे रोकने का सबसे पहला और अन्तिम साधन है— देखना। कल्पना के चक्रव्यूह को तोड़ने का सशक्त उपाय है— देखना। आप स्थिर होकर अनिमेष चक्षु से किसी वस्तु को देखें, विचार समाप्त हो जाएंगे। विकल्प—शून्य हो जायेंगे। आप स्थिर होकर अपने भीतर देखें, अपने विचारों को देखें या शरीर के प्रकंपनों को देखें तो आप पाएंगे विचार स्थगित हैं और विकल्प शून्य हैं। भीतर की गहराईयों को देखते—देखते सूक्ष्म शरीर को देखने लगेंगे। जो भीतरी सत्य को देख लेता है, उसमें बाहरी सत्य को देखने की क्षमता अपने आप आ जाती है।

देखना वह है, जहां केवल चैतन्य सक्रिय होता है। जहां प्रियता और अप्रियता का भाव आ जाये, राग—द्वेष उभर जाये, वहां देखना गौण हो जाता है। यही बात जानने पर लागू होती है।

हम पहले देखते हैं फिर जानते हैं। इसे इस भाषा में स्पष्ट किया जा सकता है कि हम जैसे—जैसे देखते जाते हैं, वैसे—वैसे जानते चले जाते हैं।

जो पश्यक है— द्रष्टा है, उसका दृश्य के प्रति दृष्टिकोण ही बदल जाता है। मध्यस्थता या तटस्थता प्रेक्षा का ही दूसरा रूप है। जो देखता है वह सम रहता है। वह प्रिय के प्रति राग—रंजित नहीं होता है और अप्रिय के प्रति द्वेषपूर्ण नहीं होता है। वह प्रिय और अप्रिय दोनों की उपेक्षा करता है, दोनों को निकटता से देखता है। इसलिए वह उनके प्रति सम, मध्यस्थ या तटस्थ रह सकता है। उपेक्षा या मध्यस्था को प्रेक्षा से पृथक् नहीं किया जा सकता।

आंखें दृश्य को देखती हैं पर उसे न निर्मित करती हैं और न उसका फलभोग करती हैं। वे अकारक और अवेदक हैं। ज्ञानी जब केवल जानता या देखता है तब वह न कर्मबन्ध करता है और न विपाक में आये हुए कर्म का वेदन करता है। जिसे केवल जानने या देखने का अभ्यास उपलब्ध हो जाता है, वह व्याधि या अन्य आगन्तुक कष्टों को देख लेता है। इस वेदना की प्रेक्षा से कष्ट की अनुभूति ही कम नहीं होती किन्तु कर्म के बन्ध, सत्ता, उदय और निर्जरा को देखने की क्षमता भी विकसित होती है।

9.3 प्रेक्षाध्यान का प्रयोजन किसी भी कार्य में प्रवृत्त होने से पहले मनुष्य उसके प्रयोजन का निर्धारण करता है। प्रेक्षाध्यान की साधना का प्रयोजन है—

9.3.1 चित्त की निर्मलता — चित्त कषायों (क्रोध आदि आत्मा के परिणामों) से मलिन रहता है। कषायों से मलिन चित्त में आत्मज्ञान की धारा नहीं बह सकती, हमारे भीतर ज्ञान होते हुए भी प्रकट नहीं होता क्योंकि बीच में मलिन चित्त का पर्दा आ जाता है। चित्त की निर्मलता होते ही आत्म—ज्ञान प्रकट होता है। उसका अवरोध समाप्त हो जाता है।

जब चित्त की निर्मलता होती है तब शांति का अनुभव स्वतः होने लगता है। मन का सन्तुलन, मन की समता और आनन्द का अनुभव होने लगता है। साधना की निष्पति है— आनन्द की अनुभूति।

हमारा प्रयोजन है— चित्त की निर्मलता। हमारा ध्येय आनंद की प्राप्ति नहीं है। आनंद प्राप्त होगा किन्तु वह ध्येय नहीं है। आनंद हमारा आलम्बन बनेगा। हमें आनन्द भी मिलेगा, शांति भी मिलेगीं किन्तु हमें इनको पार कर आगे जाना है। हमें पहुंचना है चित्त की निर्मलता तक। चित्त की निर्मलता हमारी ध्येय प्रतिमा है। यह हमारे सामने रहे।

9.3.2 सत्य की खोज — मन में यह प्रश्न सहज ही उभर सकता है कि ध्यान क्यों? प्रवृत्ति को छोड़कर निवृत्ति क्यों? स्वाभाविक है। हम यदि प्रवृत्ति और निवृत्ति को ठीक ढंग से समझ लें तो प्रश्न समाहित हो सकता है।

प्रवृत्ति जीवन की नैया को खेने के लिए है, जीवन की यात्रा को चलाने के लिए और निवृत्ति है जीवन की सच्चाई और परमसत्य को पाने के लिए। जो लोग केवल प्रवृत्ति करते हैं वे जीवन की यात्रा को चला सकते हैं किंतु जीवन की सच्चाई को प्राप्त नहीं कर सकते।

9.3.3 चैतन्य की स्वतंत्र सत्ता का अनुभव — विज्ञान का लक्ष्य भी सत्य को पाना है पर वैज्ञानिक खोजों के विषय केवल पदार्थ हैं परमाणु हैं, चेतना की स्वतंत्र सत्ता उसका विषय नहीं है। विज्ञान की खोज उपकरणों, यंत्रों और अन्य भौतिक साधनों के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

माध्यम से ही हो रही है। इसलिए वह पदार्थ तक ही पहुंच पाएगी। आत्मा तक उसकी पहुंच नहीं हो सकती। चेतन सत्ता भी उसका विषय नहीं बनता। इसलिए वैज्ञानिक जगत् ने चेतन की स्वतंत्र सत्ता को अब तक स्वीकार नहीं किया है। उस अस्वीकार के कारण आज ध्यान की उपयोगिता इतनी ही लगती है कि उससे तनाव कम होता है, शारीरिक स्वास्थ्य बना रहता है आदि–आदि। ध्यान का उद्देश्य केवल शरीर को पुष्ट और स्वस्थ करने का नहीं है यद्यपि ध्यान का एक उद्देश्य शारीरिक स्वास्थ्य भी है पर सबसे मूल्यवान् उद्देश्य है– अपने अस्तित्व का बोध। चैतन्य की स्वतंत्र सत्ता का अनुभव।

ध्यान के साधक के लिए यह इष्ट है कि वह ''स्वयं'' आत्मा को खोजे। वह केवल शास्त्रों पर या मान्यताओं पर निर्भर न रहे किन्तु स्वयं खोजे। ध्यान के द्वारा ही हम अनुभव की सच्चाई तक पहुंच सकते हैं। ध्यान के अतिरिक्त ऐसा कोई माध्यम नहीं है जो हमें शाब्दिक सच्चाई से हटाकर अनुभव की सच्चाई तक पहुंचा दे।

9.3.4 व्यक्तित्व का समग्र विकास

व्यक्तित्व के विकास के कुछ पहलू यहां प्रस्तुत हैं–

* बौद्धिक और भावात्मक विकास का संतुलन।
* आध्यात्मिक और वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण।
* भावनात्मक परिवर्तन– अपने संवेगों पर नियंत्रण करने की क्षमता का विकास।
* रासायनिक परिवर्तन– अन्तःस्रावी–ग्रंथियों के स्रावो में परिवर्तन, पीड़ा के क्षणों में एंडोर्फिन जैसे शामक रसायनों का उत्पादन।
* नाड़ी–संस्थान पर नियंत्रण करने की क्षमता का विकास।
* नशे की आदत को बदलने का विकास।
* कार्य कौशल में वृद्धि।
* मनःकायिक (Psychosomatic) रोगों से मुक्ति।
* मानसिक और भावात्मक तनाव का विसर्जन।
* आपराधिक और आक्रामक मनोवृत्ति से मुक्ति।
* अनुशासन का विकास।
* सहिष्णुता का विकास।
* एकाग्रता में वृद्धि।
* सामंजस्य करने की क्षमता का विकास।
* मैत्री का विकास।
* संकल्प शक्ति का विकास।
* आत्म–विश्वास का जागरण।
* अन्तर्दृष्टि का विकास।
* मानवीय संबंधों को उदार और उदात्त बनाने की क्षमता का विकास।

9.6 प्रेक्षाध्यान की उपसम्पदा

उपसम्पदा का तात्पर्य है– आन्तरिक सम्पदा के समीप रहने का संकल्प या प्रयोग। साधना प्रारम्भ करने से पूर्व सभी साधक सुखासन में बैठकर बद्धांजलि होकर प्रेक्षाध्यान की उपसम्पदा स्वीकार करते हैं। शरीर को शिथिल और मन को तनाव–मुक्त कर निम्न सूत्रों का उच्चार करते हैं–

''अब्भुट्ठिओमि आराहणाए।''
मैं प्रेक्षाध्यान की आराधना में उपस्थित होता हूं।
''मग्गं उवसंपज्जामि।''
मैं अध्यात्म–साधना का मार्ग स्वीकार करता हूं।
''सम्मतं उवसंपज्जामि''
मैं अन्तर्दर्शन की उपसंपदा स्वीकार करता हूं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''संजमं उवसंपज्जामि''

मैं आध्यात्मिक अनुभव की उपसम्पदा स्वीकार करता हूं।

9.4.1 उपसम्पदा की चर्या

उपसम्पदा को साकार करने के लिए एक निश्चित चर्या का सतत अभ्यास अपेक्षित है। इसके 5 सूत्र हैं– 1. भावक्रिया, 2. प्रतिक्रिया–विरति, 3. मैत्री, 4. मितभाषण और 5. मिताहार।

9.4.1.1 भावक्रिया (वर्तमान क्षण की प्रेक्षा)

भावक्रिया के तीन अर्थ हैं– 1. वर्तमान में जीना, 2. जानते हुए करना, 3. सतत् अप्रमत्त रहना।

जो वर्तमान क्षण का अनुभव करता है, वह सहज ही राग–द्वेष से बच जाता है। राग–द्वेष–शून्य वर्त्तमान क्षण को देखने वाला नए कर्म–संस्कार के बन्ध का निरोध करता है।

वर्तमान को जानना और वर्तमान में जीना ही भाव क्रिया है। यांत्रिक जीवन जीना, काल्पनिक जीवन जीना और कल्पना–लोक में उड़ान भरना द्रव्य क्रिया है।

हमारा अधिकांश समय अतीत की उधेड़बुन में या भविष्य की कल्पना में बीतता है। अतीत भी वास्तविक नहीं है और भविष्य भी वास्तविक नहीं है। वास्तविक है वर्तमान। वर्त्तमान जिसके हाथ से छूट जाता है, वह उसे पकड़ ही नहीं पाता। वास्तविकता यह है कि जो कुछ घटित होता है, वह होता है वर्तमान में किन्तु आदमी उसके प्रति जागरूक नहीं रहता। भावक्रिया का पहला अर्थ है– वर्तमान में रहना।

भावक्रिया का दूसरा अर्थ है– जानते हुए करना। हम जो भी करते हैं, वह पूरे मन से नहीं करते। मन के टुकड़े कर देते हैं। काम करते हैं पर मन कहीं भटकता रहता है। वह काम के साथ जुड़ा नहीं रहता। काम होता है अमनस्कता (absent-mindedness) से। वह सफल नहीं होता।

कार्य के प्रति सर्वात्मना समर्पित हुए बिना उसका परिणाम अच्छा नहीं आता। इसमें शक्ति अधिक क्षीण होती है, अनावश्यक व्यय होता है और काम पूरा नहीं होता। अतः हम जिस समय जो काम करें, उस समय हमारा शरीर और मन, दोनों साथ–साथ चलें।

भावक्रिया का तीसरा अर्थ है– सतत् अप्रमत्त रहना। साधक को ध्येय के प्रति सतत् अप्रमत्त और जागरूक रहना चाहिए। ध्यान का पहला ध्येय है– चित्त की निर्मलता। चित्त को हमें निर्मल बनाना है। ध्यान का दूसरा ध्येय है– सुप्त शक्तियों को जागृत करना। हमारी ध्यान–साधना के ये दो ध्येय हैं। इनके प्रति सतत् जागरूक रहना भावक्रिया है।

द्रव्यक्रिया चित्त का विक्षेप है और साधना का विघ्न है। भावक्रिया स्वयं साधना और स्वयं ध्यान है।

''हम चल रहे हैं'', इसकी स्मृति रहती है, यह गति भावक्रिया है।

साधक का ध्यान चलने में ही केन्द्रित रहे, चेतना गति को पूरा साथ दे, यह गमन योग है।

9.4.1.2 प्रतिक्रिया–विरति

दूसरा सूत्र है प्रतिक्रिया–विरति अर्थात् क्रिया करना, प्रतिक्रिया न करना। आदमी प्रतिक्रिया का जीवन जीता है। वह बाह्य वातावरण और परिस्थिति से प्रभावित होकर कार्य करता है। वह आवेग या उत्तेजना के वशीभूत होकर कार्य करता है। यह प्रतिक्रिया है, क्रिया नहीं। अध्यात्म–साधना का अर्थ है– प्रतिक्रिया से बचना। साधक क्रिया करें, प्रतिक्रिया नहीं। अन्यथा गाली के प्रति गाली, ईंट का जवाब पत्थर से, ''शठे शाठ्यं समाचरेत्'' Tit for Tat ये सब बातें चलती हैं, इन्हें रोका नहीं जा सकता। इन्हें केवल वही व्यक्ति रोक सकता है जिसने इस सच्चाई को समझ लिया है कि स्वतंत्र अस्तित्व का धनी आदमी प्रतिक्रिया का जीवन न जीए। वह क्रिया का जीवन जीए।

9.4.1.3 मैत्री

उपसंपदा की चर्या का तीसरा सूत्र है– मैत्री। साधक का पूरा व्यवहार मैत्री से ओतप्रोत हो। उसमें मैत्री की भावना का पूर्ण विकास हो। जब व्यक्ति प्रतिक्रिया से सर्वथा मुक्त हो जाता है तब मैत्री स्वयं फलित होती है।

9.4.1.4 मिताहार

उपसंपदा की चर्या का चौथा सूत्र है– मिताहार। परिमित भोजन का साधना में महत्त्वपूर्ण स्थान है। भोजन का प्रभाव केवल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्वास्थ्य पर ही नहीं होता, ध्यान और चेतना पर भी उसका प्रभाव होता है। आदमी अनावश्यक बहुत खाता है। अनावश्यक भोजन विकृति पैदा करता है। अनावश्यक खाया हुआ पच नहीं पाता क्योंकि उसको पचाने वाला रस पूरी मात्रा में नहीं मिलता। भोजन उतना ही पचता है, जितना उसे पाचन रस प्राप्त होता है। शेष व्यर्थ हो जाता है। उससे सड़ांध पैदा होती है। मल आंतों में जम जाता है, इससे सारा नाड़ी मण्डल दूषित हो जाता है। इससे मन और विचार भी दूषित होते हैं। चेतना पर आवरण आता चला जाता है। साधक को भोजन का पूरा ज्ञान होना चाहिए। कौन–सा भोजन क्या परिणाम लाता है? उसका भी ज्ञान होना चाहिए।

9.4.1.5 मौन

उपसंपदा की चर्या का पांचवां सूत्र है– मितभाषण या मौन। बोलना इसलिए जरूरी होता है कि हम जन–संपर्क में हैं। बोले बिना रहा नहीं जाता किन्तु कम बोलना साधना है। इसका अर्थ यह नहीं कि जीवनभर मौन रहें। अनावश्यक न बोलें। बोलना पड़े तो धीमे बोलें। यह मध्यम मार्ग अच्छा है। इससे व्यवहार भी नहीं टूटता और शक्ति का अनावश्यक व्यय भी नहीं होता। कम बोलना साधना का महत्वपूर्ण अंग है। इससे शक्ति संचित होती है।

9.5 प्रेक्षाध्यान का स्वरूप

9.5.1 एकाग्रता

प्रेक्षा से अप्रमाद (जागरूक भाव) आता है। जैसे–जैसे अप्रमाद बढ़ता है, वैसे–वैसे प्रेक्षा की सघनता बढ़ती है। हमारी सफलता एकाग्रता पर निर्भर है। अप्रमाद या जागरूक भाव बहुत महत्त्वपूर्ण है शुद्ध उपयोग केवल जानना और देखना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है किन्तु इनका महत्त्व तभी सिद्ध हो सकता है जब ये लम्बे समय तक निरन्तर चलें। पचास मिनट तक एक आलम्बन पर चित्त की प्रगाढ़ स्थिरता का अभ्यास होना चाहिए। यह सफलता का बहुत बड़ा रहस्य है।

साधना का अर्थ है–कर्म, मन और शरीर की एक दिशा। इसे एकाग्रता या ध्यान कुछ भी कह दीजिए। एकाग्रता में विचारों को रोकना नहीं होता अपितु अप्रयत्न का प्रयत्न होता है। प्रयत्न से मन और अधिक चंचल होता है, एकाग्रता तब होती है जब मन निर्मल होता है। बिना एकाग्रता के निर्मलता नहीं होती और बिना निर्मलता के एकाग्रता नहीं होती। तब प्रश्न आता है, क्या करना चाहिए? अपने आपको देखना चाहिए। अपना दर्शन करो और अपने आपको समझो। अधिकांश लोग अपने आपको नहीं पहचानते।

9.5.2 जागरुकता

ध्यान का स्वरूप है– अप्रमाद, चैतन्य का जागरण या सतत् जागरूकता। जो जागृत होता है वहीं अप्रमत होता है। जो अप्रमत्त होता है वहीं एकाग्र होता है। एकाग्रचित वाला व्यक्ति ही ध्यान कर सकता है। जो अपने अस्तित्व के प्रति प्रमत्त होता है, अपने चैतन्य के प्रति जागृत नहीं होता वह सब ओर से भय का अनुभव करता है। जो अपने अस्तित्व के प्रति अप्रमत्त होता है, अपने चैतन्य के प्रति जागृत होता है वह कहीं भी भय का अनुभव नहीं करता; सर्वथा अभय होता है।

अप्रमत्त व्यक्ति को कार्य के बाद उसकी स्मृति नहीं सताती। बातचीत के काल में बातचीत करता है। उसके बाद बातचीत का एक शब्द भी याद नहीं आता। यह सबसे बड़ी साधना है। आदमी जितना काम करता है उससे अधिक वह स्मृति में उलझ जाता है। भोजन करते समय भी अनेक बातें याद आती हैं। जिस समय जो काम किया जाता है, उस समय भी अनेक बातें याद आती हैं। जिस समय जो काम किया जाता है उस समय उसी में रहने वाला साधक होता है। शरीर, मन और वाणी का योग या सामंजस्य विरल व्यक्तियों में ही मिलता है। जहां शरीर और मन का सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाता वहां विक्षेप, चंचलता और तनाव होते हैं।

धनवान और गरीब, वृद्ध और युवक, पुरुष और स्त्री; सबका एक ही प्रश्न आता है कि मन की अशान्ति कैसे मिटे? मन अशान्त नहीं है, वह ज्ञान का माध्यम है। अज्ञानवश हम अशान्ति का उसमें आरोप कर देते हैं। फूल में गंध है। हवा से बहुत दूर तक फैल जाती है। क्या गंध चंचल है? नहीं, हवा के संयोग से गंध का फैलाव हो जाता है। वैसे ही मन राग के रथ पर चढ़कर फैलता है। यदि मन में राग या आसक्ति नहीं है तो मन चंचल नहीं होता।

'क्षण भर भी प्रमाद मत करो।' यह उपदेश– गाथा है पर अभ्यास की कुशलता के बिना कैसे संभव है कि व्यक्ति क्षण भर भी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अप्रमत्त रह पाए। वह अप्रमाद की साधना क्या है? अप्रमाद के आलंबन क्या हैं जिनके सहारे कोई भी व्यक्ति अप्रमत्त रह सकता है? जवाब है प्रेक्षाध्यान।

9.6 प्रेक्षाध्यान का मूल आधार

9.6.1 द्वन्द्वात्मक अस्तित्व

हमारा अस्तित्व (जीवन) दो तत्त्वों का संयोग है। एक है– चेतन, जीव। दूसरा है– अचेतन, शरीर। कुछ लोग केवल शरीर को ही मानते हैं, वे चेतन या जीव की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार नहीं करते। वे अनात्मवादी हैं। आत्मवादी दर्शन आत्मा और शरीर को भिन्न मानता है, दो मानता है और चेतन के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार करता है।

आत्मवादी दृष्टि–बिन्दु को समझने के लिए हमें स्थूल शरीर से आगे बढ़ना होगा। जहां शरीरवादी दृष्टि बिन्दु स्थूल शरीर, इन्द्रिय और मन तक रुक जाता है, वहीं आत्मवादी दृष्टि–बिन्दु उससे आगे बढ़कर सूक्ष्म शरीर, अति सूक्ष्म शरीर, चित्त, अध्यवसाय, कषाय और अन्त में चेतना तत्त्व तक पहुंच जाता है।

9.6.2 अध्यवसाय तन्त्र से भाव तंत्र तक

आत्मवादी दर्शन के अनुसार केन्द्र में है– द्रव्य आत्मा या मूल आत्मा। उस केन्द्र की परिधि में अति सूक्ष्म कर्म शरीर द्वारा निर्मित कषाय का वलय है। यद्यपि चेतन तत्त्व शासक के स्थान पर है फिर भी कषाय तन्त्र इतना शक्तिशाली है कि उसकी इच्छा के बिना साधक कुछ नहीं कर पाता। चैतन्य की प्रवृत्ति स्पन्दन के रूप में होती है। इन्हें बाहर निकलने के लिये कषाय वलय को पार करना पड़ता है। पार करने पर उनका एक स्वतन्त्र तन्त्र बन जाता है। वह है अध्यवसाय तन्त्र। यह तन्त्र दूसरे सूक्ष्म शरीर, तैजस शरीर के साथ–साथ सक्रिय होकर आगे बढ़ता है। वह बन जाता है–लेश्या तन्त्र। चेतना के स्पन्दन आगे बढ़कर स्थूल शरीर में उतरते हैं। वहां सबसे पहले मस्तिष्क के माध्यम से चित्त का निर्माण करते हैं।

9.6.3 क्रियातन्त्र (प्रवृत्ति तंत्र)

मन, शरीर और वाणी; ये तीनों क्रिया–तन्त्र के अंग हैं, क्रियान्विति के साधन हैं। ज्ञान के साधन नहीं। ज्ञान तन्त्र चित्त तन्त्र तक और भाव तन्त्र लेश्या तन्त्र तक समाप्त हो जाता है। इन दोनों के निर्देशों की क्रियान्विति के लिए क्रिया तन्त्र सक्रिय होता है, जिसके तीन कर्मचारी हैं। मन, वाणी और शरीर। मन का कार्य है– स्मृति, कल्पना और चिन्तन करना। मन का काम ज्ञान करना नहीं है। मन का काम है– चित्त तन्त्र और लेश्या तन्त्र से मिलने वाले निर्देशों का पालन करना। इस प्रकार चैतन्य के स्पन्दन कषाय के वलय को पार कर अध्यवसाय के रूप में बाहर आते हैं और वे लेश्या तन्त्र के साथ मिलकर भाव धारा बन जाते हैं। स्थूल शरीर में वह भावधारा ग्रन्थि तंत्र के माध्यम से अभिव्यक्त होती है वह भावतंत्र कहलाता है।

भावधारा वृत्ति के रूप में अभिव्यक्त होती है एवं चित्त को प्रवृत्ति / क्रिया / आचरण के लिए बाध्य करती है। चित्त की जागरूकता में, विवेक व प्रज्ञा के जागरण की अवस्था में चित्त अप्रभावित रहता है एवं वृत्ति विफल हो जाती है। चित्त की मूर्च्छावस्था में वृत्ति से प्रवृत्ति एवं प्रवृत्ति से पुनरावृत्ति का दुष्चक्र चलता रहता है। प्रेक्षाध्यान (देखने की एकाग्रता) जागरूकता, विवेक शक्ति एवं प्रज्ञा के जागरण का सशक्त साधन बनता है। वह प्रवृत्ति तंत्र, क्रिया तंत्र को नियंत्रित कर वृत्ति / भाव / कषाय को परिष्कृत करता है। यह आत्म–साक्षात्कार व आत्म–विकास के चरम शिखर पर आरोहण का आलम्बन है।

9.7 प्रेक्षाध्यान के स्रोत

9.7.1 प्रेक्षाध्यान के मूलस्रोत

शब्द शाश्वत नहीं होता अर्थ शाश्वत होता है। शब्द बदलते रहते हैं, उसके लिये समय–समय पर नये शब्दों का सृजन होता है और भाषा में परिवर्तन होता रहता है किन्तु तात्पर्य कभी नहीं बदलता।

प्रश्न है– प्रेक्षा शब्द कितना पुराना है? यह भगवान् महावीर जितना पुराना तो है ही किन्तु अर्थ की दृष्टि से विचार करें तो भगवान् ऋषभ तक पहुंच जाते हैं जिन्होंने आत्मवाद का प्रवर्तन किया, योग–साधना का मार्ग बताया। कहा गया है– 'आदिनाथ नमोस्तु तस्मै, येनोपदिष्टा हठयोगविद्या'।

इस प्रकार प्रेक्षा के मूल स्रोत आदिनाथ ऋषभ हैं। एक घटना है– ऋषभ के पुत्र भरत ने स्नान किया। स्नान कर शयनकक्ष में बैठे। वह आदर्श भवन था। पूरा शीशे का बना हुआ भवन था। आसन पर बैठ गये। सामने दर्पण था उसमें वे अपने आपको देख रहे हैं, अपनी प्रेक्षा कर रहे हैं। प्रेक्षा करते–करते, अपने आप को देखते–देखते वे सम्राट् से केवली (केवलज्ञानी यानी परमज्ञानी) बन गये। यह

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ध्यान की परम्परा का आदि स्रोत है।

भगवान् पार्श्व की ध्यान साधना विशिष्ट थी। पार्श्व की ध्यान साधना का प्रभाव बहुत व्यापक बना। पार्श्व की साधना से नाथ सम्प्रदाय प्रभावित है, बौद्ध धर्म और जैनधर्म प्रभावित है। पार्श्व का इतना व्यापक प्रभाव है कि उनकी ध्यान साधना से कई प्रभावित हुये। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नाथ सम्प्रदाय की शोध में इन तथ्यों का बहुत विस्तार से वर्णन किया है।

9.7.2 महावीर की साधना

पार्श्व के पश्चात् महावीर ने ध्यान की उत्कृष्ट साधना की सोलह–सोलह दिन और रात वे ध्यान की मुद्रा में, कायोत्सर्ग की मुद्रा में खड़े रहे। वे कभी उर्ध्वलोक को देखते तो कभी अधोलोक को देखते और कभी मध्यलोक को देखते। जब ऊर्ध्वलोक के तत्त्वों को जानना होता तो ऊर्ध्वलोक की प्रेक्षा करते। जब मध्यलोक को जानना होता तो मध्यलोक की प्रेक्षा करते और जब नीचे के तत्त्वों को जानना होता तब नीचे के लोक की प्रेक्षा करते। उनकी प्रेक्षा अनवरत चलती रहती। महावीर के निर्वाण के पश्चात् ध्यान की साधना चलती रही और लम्बे समय तक यह क्रम चला।

9.7.3 स्वरूप परिवर्तन

भगवान् महावीर के निर्वाण के हजार वर्ष बाद ऐसा लगता है कि एक मोड़ आया और जैन धर्म में ध्यान–साधना कुछ कमजोर पड़ी। वीर निर्वाण के पन्द्रह सौ वर्षों के बाद ध्यान का स्वरूप बदल गया। जो मूल ध्यान साधना की पद्धति थी, जैनधर्म की प्राचीन पद्धति थी वह छूट गई और हठयोग से प्रभावित पद्धति चल पड़ी। आचार्य हरिभद्र, हेमचन्द्र, शुभचन्द्र, पूज्यपाद आदि–आदि ने ध्यान की साधना को फिर आगे बढ़ाया किन्तु उसका स्वरूप बदल गया। इन पांच सौ वर्षों में ध्यान की साधना अत्यन्त क्षीण हो गई, जैसे बहते बहते नदी का प्रवाह क्षीण हो जाता है वैसे ही जैनधर्म में ध्यान की सरिता का प्रवाह क्षीण हो गया। स्थिति यह बन गई जैन लोग यह भी भूल गये कि हमारे यहां ध्यान की भी कोई पद्धति है।

दिल्ली की घटना है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ आदि सन्त 'अणुव्रत भवन' से प्रेक्षाध्यान शिविर के लिए 'अध्यात्म साधना केन्द्र' आ रहे थे। रास्ते में एक भाई मिला। वह रिटायर्ड इन्कमटैक्स कमिश्नर था। वन्दना की, पूछा–आप कहां जा रहे हैं? उनको बताया–'अध्यात्म साधना केन्द्र' जा रहे हैं। ध्यान का शिविर है। तत्काल उसने कहा– 'क्या जैनों में भी कोई ध्यान की विधि है?' यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। इतना पढ़ा–लिखा आदमी, इन्कमटेक्स का आफिसर और वह भी जैन, यह पूछता है कि क्या जेनों में भी कोई ध्यान की विधि है? इन शताब्दियों में वातावरण ही कुछ ऐसा बन गया था कि ऊपर की बातें, क्रियाकाण्ड अधिक प्रभावी बन गये और ध्यान छूट गया।

9.7.4 प्रेक्षाध्यान का अभ्युदय

आगम संपादन का कार्य चल रहा था। आचार्यश्री महाप्रज्ञ उत्तराध्ययन का संपादन कर रहे थे। उत्तराध्ययन के तीसवें अध्याय में ध्यान का एक लम्बा प्रकरण जोड़ा गया। उस संदर्भ में अनेक जैन ग्रन्थों का पारायण आपने किया। कई ग्रन्थ देखें। श्वेताम्बर और दिगम्बर, दोनों सम्प्रदायों के ध्यान सम्बन्धित ग्रन्थों का पारायण किया और उनका उसमें यथावकाश सन्निवेश भी किया। उदयपुर का पंचायती नोहरा। सन् 1962, रात्रि प्रतिक्रमण के पश्चात् आचार्यश्री महाप्रज्ञ गुरुदेवश्री तुलसी की सन्निधि में बैठे थे। प्रसंगवश आपसे निवेदन किया– 'ध्यान पर जैनों में तो बहुत कुछ लिखा गया है।' तत्काल गुरुदेव ने कहा– 'हां! लेकिन अब यह परम्परा छूट गई। अब क्यों न इस पर अनुसंधान किया जाये?' यह मंत्र था, प्रेक्षाध्यान के अभ्युदय का। प्रेक्षाध्यान के मंत्रदाता बने आचार्य तुलसी। वहीं से बीज की बुवाई हो गई, बीज बोया गया, अंकुरित हुआ और बड़ी तेजी से बढ़ने लगा। वह प्रेक्षाध्यान का सार्थक बीज था। भीतर ही भीतर पकता गया और एक दिन ऊपर आ गया। न कोई नाम था, न विज्ञापन और न कुछ विशेष प्रचार। शिविर होने लगे। सन् 1975 में जयपुर में चिन्तन किया जब हमारी ध्यान की पद्धति का प्रारम्भ हो गया है, शिविर भी लग रहे हैं तो क्यों न इसका नामकरण कर दिया जाये। यह चिन्तन क्रियान्वित हुआ ग्रीन हाउस के शीशमहल में।

ध्यान के लिए आगम में दो शब्द मिलते हैं– विपश्यना और प्रेक्षा। ये पुराने शब्द हैं। विपश्यना बौद्ध ध्यान पद्धति है। आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने 'प्रेक्षा' शब्द का चुनाव किया। भगवान् ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र भरत ने प्रेक्षा–प्रयोग किया था और वहां से गुजरता हुआ वह अर्थ सन् 1975 में प्रेक्षा में समाहित हो गया। अर्थ पुराना, शब्द नया। यह प्रेक्षा के प्राचीन से वर्तमान स्रोत तक की मीमांसा है।

9.7.5 प्रेक्षाध्यान : आगमिक और आगमेतर स्रोत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है– संपिक्खए अप्पगमप्पएगं अर्थात् आत्मा के द्वारा आत्मा की संप्रेक्षा करो। मन के द्वारा सूक्ष्म मन को देखो, स्थूल चेतना के द्वारा सूक्ष्म चेतना को देखो। 'देखना' ध्यान का मूल तत्त्व है, इसलिए इस ध्यान पद्धति का नाम प्रेक्षाध्यान रखा गया है।

आयारो (आचारांग सूत्र) में बताया गया है, "जो क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रियता और अप्रियता आदि दोषों को अपने भीतर देख लेता है, वह जन्म, मृत्यु और दुःख के समग्र चक्रव्यूह को तोड़ देता है।"

'महान् साधक अकर्म (ध्यानस्थ) होकर मन, वचन और शरीर की क्रिया का निरोध कर जानता-देखता है।'

'द्रष्टा के लिए कोई निर्देश की अपेक्षा नहीं है, उसके कोई उपाधि नहीं होती।'

भगवान् महावीर स्वयं आत्म साक्षात्कार कर आत्म–संस्थित हो गये। वे आत्म-द्रष्टा थे। उन्होंने आत्म-दर्शन का मार्ग प्रशस्त किया। अतः प्रेक्षाध्यान का आधार आत्मद्रष्टा का दर्शन है। इसका प्रयोजन है– सत्य की खोज। आत्मा का साक्षात्कार और अनासक्ति का विकास। प्रेक्षाध्यान का स्वरूप है– सतत् आत्मा के प्रति जागरूक रहना, अप्रमत्त रहना। भगवान् महावीर ने कहा धीर पुरुष मुहूर्त मात्र भी प्रमाद न करे क्योंकि प्रमत्त को सब ओर से भय होता है। अप्रमत्त निर्भय रहता है। अतः सतत् आत्मा की संप्रेक्षा करे। भगवान् महावीर ने भी साधना काल में सतत् इसका अभ्यास किया था। आत्मप्रेक्षी के साथ-साथ जो लोक को भी निकटता से तटस्थ होकर देखता है वह भी अप्रमत्त हो जाता है। भगवान् महावीर ने अपने शिष्यों को भी यही उपदेश दिया कि 'हे गौतम! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर।'

अप्रमाद की साधना के लिए आगमों में अनेक आलम्बनों का उल्लेख मिलता है। वे आलम्बन (प्रयोग) आगमों में यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं। उनकी विधियां नहीं मिलती हैं। आलम्बनों की विधियों का अनुसंधान व अनुभव कर आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने प्रेक्षाध्यान के अन्तर्गत उन्हें व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया। आपने प्रेक्षाध्यान में आलम्बनों या प्रयोगों को 12 भागों में विभक्त किया। कालान्तर में पुनः वर्गीकरण के दौरान उसे आठ मुख्य, चार सहायक व तीन विशिष्ट अंग के रूप में बांटा। प्रेक्षाध्यान के मुख्य अंग हैं–1. कायोत्सर्ग, 2. अन्तर्यात्रा, 3. श्वासप्रेक्षा, 4. शरीर प्रेक्षा, 5. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा, 6. लेश्याध्यान 7. अनुप्रेक्षा और 8. भावना।

सहायक अंग चार हैं– ध्वनि (जप), मुद्रा, आसन और प्राणायाम एवं विशिष्ट अंग तीन हैं– वर्तमान क्षण की प्रेक्षा, विचार–प्रेक्षा और अनिमेष–प्रेक्षा।

9.7.5.1 प्रेक्षा के प्रयोग और उनके स्रोत

श्वासप्रेक्षा और कायोत्सर्ग, ये दो प्रेक्षा ध्यान के आधारभूत तत्त्व हैं। इनका स्रोत आवश्यक निर्युक्ति और कायोत्सर्ग शतक से मिला। वहां कहा गया– श्वास को सूक्ष्म करें, कायोत्सर्ग करें। श्वास को सूक्ष्म करना, श्वास को मंद करना एक ही बात है। श्वसन को सूक्ष्म बना लें, और उसकी गति को मंद कर दें, कायोत्सर्ग में रहें। कायोत्सर्ग और दीर्घश्वास प्रेक्षा का यह महत्त्वपूर्ण स्रोत है। शरीर प्रेक्षा का सूत्र आचारांग से मिला।

एक प्रयोग है– चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा। प्रेक्षाध्यान में तेरह चैतन्य–केन्द्र (साइकिक सेन्टर) स्वीकृत हैं। हठयोग में छः चक्र माने गये हैं। कहीं–कहीं नौ चक्र माने गए हैं। नंदीसूत्र में सैकड़ों चैतन्य केन्द्रों की चर्चा है। आचारांग और षडट्खण्डागम में भी इसकी चर्चा है।

प्रज्ञापना सूत्र और उत्तराध्ययन सूत्र में लेश्या का विस्तार से वर्णन है। लेश्या हमारे भावों का प्रतिनिधित्व करने वाली, व्याख्या करने वाली एक महत्त्वपूर्ण पद्धति है। तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य जयाचार्य ने रंगों के ध्यान का अच्छा वर्णन किया है। इस विषय में उनके दो ग्रन्थ हैं– छोटा ध्यान और बड़ा ध्यान। दो छोटे ग्रन्थों में रंगों का ध्यान करने की बहुत अच्छी पद्धति मिली।

एक प्रयोग है– अनुप्रेक्षा। बारह अनुप्रेक्षा या सोलह अनुप्रेक्षा, ये बहुत प्राचीन काल से प्रचलित हैं। कुन्दकुन्द ने बारह अनुप्रेक्षा पर लिखा है, स्वामी कार्तिकेय, विनयविजयजी एवं अनेक आचार्यों ने भी इस विषय में लिखा। अनुप्रेक्षा शब्द प्राचीन है। कायोत्सर्ग शब्द भी ग्रन्थों में बार–बार मिलता है किन्तु इनकी पद्धति को विकसित करने का श्रेय आचार्यश्री महाप्रज्ञ को है। अनुप्रेक्षा की पद्धति विकसित हुई और पचीस–तीस अनुप्रेक्षा के प्रयोग विकसित हो गये। स्वभाव परिवर्तन करने के लिए अनुप्रेक्षा का प्रयोग सबसे शक्तिशाली प्रयोग है। पुरानी आदत को मिटाने और नये संस्कार निर्माण हेतु अनुप्रेक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है।

9.7.5.1.1 कायोत्सर्ग

भिक्षु के लिए दिन में अनेक बार कायोत्सर्ग करने का विधान है। यह कायोत्सर्ग सब दुःखों से मुक्त करने वाली प्रक्रिया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कायोत्सर्ग करने के अनेक प्रयोजन हैं– प्रवृत्ति–निवृत्ति का संतुलन, भय निवारण, स्व–दोष–दर्शन, कर्मक्षय, कषाय–विजय, अनिष्ट निवारण आदि।

कायोत्सर्ग दो शब्दों से बना है– काया + उत्सर्ग। अर्थात् शरीर को छोड़ना। कायोत्सर्ग के दो प्रकार बताये गये हैं– चेष्टा कायोत्सर्ग और अभिभव कायोत्सर्ग। कायोत्सर्ग की प्रक्रिया में एकाग्रतापूर्वक शरीर की चेष्टा का त्याग किया जाता है इससे शरीर की चंचलता का निरोध होता है। अतः इसे कायिक ध्यान भी कहा गया है। कायोत्सर्ग तीन प्रकार से किया जा सकता है– खड़े होकर, बैठकर एवं लेटकर। कायोत्सर्ग में स्वदोषों की यथाक्रम में आलोचना की जाती है एवं जब तक गुरु कायोत्सर्ग सम्पन्न न करे तब तक श्वास–प्रश्वास को सूक्ष्म कर धर्म्य–शुक्ल ध्यान किया जाता है। कायोत्सर्ग का परिमाण या अवधि भिन्न–भिन्न अवसरों के लिए अलग–अलग बताई गई है। उसकी अवधि या कालमान को श्वास के आधार पर श्लोक द्वारा निर्धारित किया गया है। श्वास के उच्छ्वास की लम्बाई या कालमान को श्लोक के चतुर्थांश के स्मरण से निश्चित किया गया है। अतः कायोत्सर्ग के साथ श्वास की प्रेक्षा या श्वास का उपयोग भी जुड़ा हुआ है।

कायोत्सर्ग के अभ्यास से अनेक निष्पत्तियां होती हैं– धर्म का बोध, देह के प्रति अनासक्ति, आत्म–विशुद्धि, तितिक्षा, अनुप्रेक्षा और एकाग्रता का विकास।

9.7.5.1.2 श्वास प्रेक्षा

श्वास प्रेक्षा का प्रयोजन श्वास को जीतना है। श्वास पर विजय प्राप्त करना योगी का एक लक्षण है। मुनि के लिए कहा गया है वह श्वास को शान्त और नियन्त्रित कर विहार करे। ऐसा साधक धर्म को स्वीकार कर श्रेय का साक्षात्कार कर लेता है। धर्म्य और शुक्लध्यान के प्रसंग में भी श्वास–प्रश्वास को सूक्ष्म करने की बात कही गई है। यही बात कायिक प्रवृत्तियों के निरोध के संदर्भ में भी कही गई है कि उस समय भी श्वास का निरोध नहीं किया जाता पर उसे सूक्ष्म कर दिया जाता है।

ध्यान में श्वास की प्रक्रिया के संदर्भ में कहा गया है कि उस समय मंद श्वास-प्रश्वास होता है। श्वास को हठात् न रोकना चाहिए और न ही उसे छोड़ना चाहिए पर उसे मन्द–मन्द लेना चाहिए और छोड़ना चाहिए। श्वास–प्रश्वास का कालमान (लम्बाई) श्लोक के एक चरण के समान निर्दिष्ट है। एक चरण के चिन्तन (स्मरण) में जितना समय लगता है उतना श्वास–प्रश्वास का कालमान होता है। इसका परिणाम यह होता है कि दुःख से स्पष्ट होने पर साधक व्याकुल नहीं होता।

9.7.5.1.3 शरीर प्रेक्षा

शरीर प्रेक्षा का प्रयोजन है आत्मा के प्रति जागरूकता में निरन्तरता का विकास। आचारांग सूत्र में कहा गया है कि "जे इमस्स विग्गहस्स अयं खणे त्ति मन्नेसी" अर्थात् इस शरीर का यह वर्तमान क्षण है, इस प्रकार से अन्वेषण करने वाला अप्रमत्त होता है। आत्मा के प्रति सतत् जागरूकता ही अप्रमाद है।

शरीर मोक्ष का साधन है। उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है कि शरीर नाव है, जीव नाविक है और संसार समुद्र है। मोक्ष की एषणा करने वाले इस शरीर रूपी नाव से संसार रूपी समुद्र को तैर जाते हैं। संसारी जीव के जितना शरीर का आयतन है, उतना ही आत्मा का आयतन है। जितना आत्मा का आयतन है उतना ही चेतना का आयतन है अतः प्रत्येक कण में संवेदन होता है। उस संवेदन से मनुष्य अपने स्वरूप को देखता है, अपने अस्तित्व स्वभाव को जानता है। शरीर में होने वाले संवेदनों को देखना/जानना/अनुभव करना, चैतन्य को देखना है उनके माध्यम से आत्मा को देखना है।

शरीर प्रेक्षा की प्रक्रिया भी आगमों में संकेत के रूप में मिलती है। आचारांग सूत्र में कहा गया है–'पासह एयं रूवं' तुम इस शरीर को देखो। तू देख! यह लोक (शरीर) चारों ओर प्रकम्पित हो रहा है। इस प्रकार साधक इस अशुचि शरीर के भीतर से भीतर पहुंचकर शरीर–धातुओं को देखता है और झरते हुए विविध स्रोतों को भी देखता है। साधक को सावधान किया गया है कि ऊपर स्रोत है, नीचे स्रोत है, मध्य में स्रोत है। ये स्रोत कहे गये हैं। इनके द्वारा मनुष्य आसक्त होता है, यह तुम देखो।

शरीर प्रेक्षा के तीन मुख्य फलित होते हैं– कर्म–विलय, लोक का ज्ञान, अतीत–अनागत का ज्ञान। आत्म–विस्मृति (प्रमाद) से किये हुए कर्म बन्ध का विलय अप्रमाद से होता है। संयत चक्षु पुरुष लोकदर्शी (शरीरदर्शी) होता है। वह लोक के अधोभाग को जानता है, ऊर्ध्व भाग को जानता है और तिरछे भाग को जानता है। जिस साधक ने शरीर और मन में घटित होने वाली अवस्थाओं को देखने का अभ्यास किया है, वह अपने वर्तमान भव की तरह अतीत और अनागत को भी देखने लग जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

9.7.5.1.4 चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा

चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का मुख्य प्रयोजन है– वृत्ति में परिष्कार। आचारांग सूत्र में कहा गया है कि पुरुष मरणधर्मा मनुष्य के शरीर की संधि को जानकर कामासक्ति से मुक्त हो। संधि का अर्थ है– चैतन्य केन्द्र। चैतन्य केन्द्र का अर्थ है– अतीन्द्रिय चेतना के उदय में हेतुभूत कर्म–विवर (कर्मछिद्र) और आत्मा के प्रति सतत् जागरूकता (अप्रमाद) के अध्यवसाय को जोड़ने वाला शरीरवर्ती साधन। प्राचीन ग्रन्थों में संधि, विवर, रन्ध्र, चक्र, कमल, करण आदि शब्दों का प्रयोग समान अर्थ में देखा जाता है। जो साधक आरंभ (पापकारी प्रवृत्ति) से उपरत होता है वह अनारंभ की साधना करते हुए 'संधि (चैतन्य केद्र) का दर्शन करता है'। आगमों में 'करण' शब्द भी मिलता है तथा करण के प्रसंग में कर्मकरण का विशेष उल्लेख प्राप्त होता है। षट्खण्डागम में अवधिज्ञान के प्रसंग में कहा गया है कि जिसमें जीव–शरीर का एक देश करण बनता है, वह एक क्षेत्र अवधिज्ञान है और जो प्रतिनियत क्षेत्र के माध्यम से नहीं होता किन्तु शरीर के सभी अवयवों के माध्यम से होता है, शरीर के सभी अवयव कारण बन जाते हैं, वह अनेक क्षेत्र अवधिज्ञान है। करणरूप में परिणत शरीर–प्रदेश अनेक संस्थान वाले होते हैं। जैसे श्रीवत्स, कलश, शंख, स्वस्तिक, नन्द्यावर्त आदि। चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा से चैतन्य में लीनता और ऐहिक ममत्व से मुक्ति होती है।

9.7.5.1.5 लेश्या ध्यान

लेश्याध्यान का प्रयोजन लेश्या की शुद्धि और उससे भावों की विशुद्धि है। लेश्या की मंदता से अध्यवसाय की शुद्धि होती है और अध्यवसाय की शुद्धि से लेश्या की शुद्धि होती है, भावों की शुद्धि होतो है।

भगवान् महावीर ने जिस लेश्या सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, वह दो धाराओं में चलता है– एक धारा भाव की और दूसरी धारा है रंग की। एक चैतसिक है और दूसरी पौद्गलिक है। एक भाव लेश्या है और दूसरी द्रव्य लेश्या है। पौद्गलिक लेश्या के दो प्रकार हैं– कर्म लेश्या और नो–कर्म लेश्या।

कर्मलेश्या – हमारे भीतर कार्मण शरीर में कर्म का संचय होता है। जब वे कर्म पुद्गल प्रवाहित होकर विद्युत शरीर, तैजस् शरीर में प्रकट होते हैं तब वह कर्म लेश्या कहलाती है। अतः लेश्या को कर्मों का झरना कहा गया है। कर्म लेश्या का जैसा प्रवाह भीतर से आता है, वैसी ही हमारी आत्म परिणति हो जाती है। वह आत्म–परिणति भाव लेश्या है। उन कर्म पुद्गल–परमाणुओं में वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श ये चारों होते हैं। उनमें रंग मनुष्य के शरीर और मन को अधिक प्रभावित करता है। इसलिए रंग के आधार पर लेश्याओं का नामकरण किया गया है। उत्तराध्ययन सूत्र में छह कर्म लेश्या और उससे सम्बन्धित भाव आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है।

कर्म लेश्या के छः प्रकार हैं – कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

बाह्य जगत् में सूर्य का प्रकाश, विभिन्न रंग की किरणें, रत्नों की रश्मियां, शरीर का वर्ण आदि नोकर्म लेश्या कहलाती हैं।

रंगों (नोकर्म लेश्या) के ध्यान से भावों में (भाव लेश्या) परिवर्तन हो जाता है। इसकी प्रक्रिया यह है कि उन रंगों की कल्पना कर साक्षात् करने का अभ्यास करना। गौतम ने भगवान् से पूछा– भंते! क्या कृष्ण लेश्या, नील लेश्या के पुद्गलों को प्राप्त कर तदनुरूप (नीललेश्या) में परिणत हो जाती है।

महावीर ने कहा– गौतम! ऐसा होता है। कृष्ण लेश्या केवल नील लेश्या के रूप में ही परिणत नहीं होती अपितु वह कापोत लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या के रूप में भी परिणत हो सकती है।

कृष्ण, नील और कापोत, ये तीनों अधर्म लेश्याएं हैं। इन तीनों से जीव प्रायः दुर्गति को प्राप्त होता है। इनका त्याग कर मनुष्य अनुत्तर संवेग को प्राप्त होता है। इसी प्रकार तैजस्, पद्म और शुक्ल; ये तीनों धर्म लेश्याएं हैं। इन तीनों से जीव प्रायः सुगति को प्राप्त होता है। इन्हें क्रमशः प्राप्त कर मनुष्य अनुत्तर संवेग को प्राप्त होता है। अतः मुनि के लिए कहा गया है कि वह अबहिर्लेश्य अर्थात् अप्रशस्त लेश्याओं का वर्जन कर प्रव्रजन करे।

9.7.5.1.6 भावना और अनुप्रेक्षा

भावना के अभ्यास के अनेक प्रयोजन हैं– आत्म–संस्थिति, समस्या–समाधान, शांति, वांछनीय संस्कारों का निर्माण और अवांछनीय संस्कारों का उन्मूलन। 'भावना' का एक प्रयोजन है' आत्मा में स्थित होना। समाधि तंत्र में कहा गया है कि आत्मा की भावना करने वाला आत्मा में स्थित हो जाता है। जिसकी आत्मा भावना योग से शुद्ध है, वह जल में नौका की तरह है। जिस प्रकार नौका से तट मिल जाता है वैसे ही भावना से समस्या का समाधान हो जाता है, सब दुःखों से मुक्ति हो जाती है। भावना के बिना विद्वानों के चित्त में भी शांति का अमल रस स्फुरित नहीं होता। मोह और विषाद के विष से व्याकुल इस जगत् में भावना के बिना किन्चित भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता। कहा गया है कि भावना योग से विशुद्ध ध्यान का क्रम जो विच्छिन्न होता है, वह पुनः संध जाता है और वांछनीय संस्कारों का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निर्माण होता है। जो पुरुष लोभ को प्रतिपक्ष भावना– अलोभ से पराजित कर देता है, वह प्राप्त कामों (भोगों) का सेवन नहीं करता। वह लोभ जैसे अवांछनीय संस्कार से मुक्त हो जाता है।

जिस विषय का अनुचिन्तन बार–बार किया जाता है या जिस प्रवृत्ति का बार–बार अभ्यास किया जाता है, उससे मन प्रभावित हो जाता है, इसलिए उस चिन्तन या अभ्यास को भावना कहा जाता है।

श्रद्धा के बल से पुनः चिन्तन–अनुचिन्तन द्वारा अनुभूति के स्तर पर सत्य का बोध करना अनुप्रेक्षा का मुख्य प्रयोजन है। अनुप्रेक्षा स्वाध्याय का एक प्रकार है। प्रेक्षा (ध्यान) के पश्चात् अनुप्रेक्षा का अभ्यास किया जाता है। धर्म्य ध्यान के पश्चात् चार अनुप्रेक्षाओं के अभ्यास का उल्लेख किया जाता है– एकत्व, अनित्य, अशरण एवं संसार अनुप्रेक्षा। शुक्ल ध्यान की चार अनुप्रेक्षाएं हैं– अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा, विपरिणाम अनुप्रेक्षा, अशुभ अनुप्रेक्षा और अपाय अनुप्रेक्षा।

1. अनित्य अनुप्रेक्षा – भगवान् महावीर ने साधकों को अनित्य का बोध देते हुए कहा– "तुम इस शरीर को देखो, यह पहले या पीछे एक दिन अवश्य छूट जायेगा। विनाश और विध्वंस इसका स्वभाव है। यह अध्रुव, अनित्य और अशाश्वत है। इसका उपचय और अपचय होता है। इसकी विविध अवस्थाएं होती हैं।" मृत्यु किसी भी क्षण आ सकती है। अवस्था बीत रही है और यौवन चला जा रहा है। जीवन बीत रहा है। रात्रियां दौड़ी जा रही हैं। मनुष्यों के भोग भी नित्य नहीं हैं। वे मनुष्य को प्राप्त कर उसे छोड़ देते हैं, जैसे क्षीण फलवाले वृक्ष के पक्षी।

2. अशरण अनुप्रेक्षा – सत्य का अनुचिन्तन कर साधक को अनुभव के स्तर पर ले जाना अनुप्रेक्षा का कार्य है। अशरण अनुप्रेक्षा के बारे में कहा गया है–

नालं ते तव ताणाए वा, सरणाए वा।

तुमं पि ते स नालं ताणाए वा सरणाए वाआयारो।।2/8

वे स्वजन तुम्हें त्राण या शरण देने में समर्थ नहीं हैं। तुम भी उन्हें त्राण या शरण देने में समर्थ नहीं हो। इस तरह साधक सत्य का चिन्तन करता है कि जब मैं अपने द्वारा किये गये कर्मों से छिन्न-भिन्न होता हूँ, तब माता–पिता, पुत्र-वधु, भाई, पत्नी और पुत्र; ये सभी मेरी रक्षा करने में समर्थ नहीं होते।

3. संसार अनुप्रेक्षा – जन्म–मरण दुःख का कारण है। साधक इस सत्य को गहराई से अनुभव करे। प्राणी मोह के कारण जन्म-मरण को प्राप्त होता है। मैंने सभी जन्मों में दुःखमय वेदना का अनुभव किया है। वहां एक निमेष का अन्तर पड़े उतनी भी सुखमय वेदना नहीं है।

4. एकत्व अनुप्रेक्षा – पुरुष सब प्रकार के संग का त्याग कर यह भावना करे, 'मेरा कोई नहीं है, इसलिए मैं अकेला हूं। मैं भी किसी का नहीं हूँ'। इस प्रकार भिक्षु अपनी आत्मा को एकाकी ही अनुभव करे।

5. अन्यत्व भावना – काम–भोग मुझसे भिन्न हैं और मैं उनसे भिन्न हूं। पदार्थ मुझसे भिन्न हैं और मैं उनसे भिन्न हूँ।

भावना और अनुप्रेक्षा की प्रक्रिया के अन्तर्गत साधक ध्येय के प्रति दृष्टि नियोजित करे, तन्मय बने, ध्येय को प्रमुख बनाये, उसकी स्मृति में उपस्थित रहे एवं उसमें दत्तचित्त रहे। ध्यान के पश्चात् अनित्य आदि अनुप्रेक्षाओं का अभ्यास करना चाहिए। अनुप्रेक्षा से साधक आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों की गाढ़–बन्धन से बन्धी हुई प्रकृतियों को शिथिल बन्धनवाली कर देता है। उनके तीव्र अनुभव को मन्द कर देता है। उनके बहुप्रदेशाग्र को बदल देता है। आयुष्य कर्म का बंध कदाचित् करता है, कदाचित् नहीं भी करता है। असाता वेदनीय कर्म का बार-बार उपचय नहीं करता और अनादि, अनन्त, लम्बे मार्गवाली तथा चतुर्गति-रूप चार अन्तोवाली संसार अटवी को तुरन्त ही पार कर जाता है। जो किसी भी कुशल कर्म से अपने आपको भावित करता है, उसकी भावना उसे लक्ष्य की ओर ले जाती है। जिसका मानस अनवरत भावनाओं से अनुभावित होता है, उसका ममत्व मिट जाता है और वह समत्व का अवलम्बन करता है–समत्व पा लेता है।

9.7.5.1.7 वर्तमान क्षण की प्रेक्षा

भगवान् महावीर ने कहा– हे साधक! तुम क्षण को जानो। इसी क्षण को जानो।

अतीत बीत जाता है, भविष्य अनागत होता है, जीवित क्षण वर्तमान होता है। अतीत के संस्कारों की स्मृति से भविष्य की कल्पनाएं और वासनाएं होती हैं। वर्तमान क्षण का अनुभव करने वाला स्मृति और कल्पना दोनों से बच जाता है। स्मृति और कल्पना राग–द्वेष युक्त चित्त का निर्माण करती हैं। जो वर्तमान क्षण का अनुभव करता है, वह सहज ही राग–द्वेष से बच जाता है। तथागत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अतीत और भविष्य के अर्थ को नहीं देखते। कल्पना को छोड़ने वाला महर्षि वर्तमान का अनुपश्यी (देखनेवाला) हैं, कर्म शरीर का शोषण कर उसे क्षीण कर डालता है।

द्रव्य क्रिया चित्त का विक्षेप है और साधना का विघ्न है। भाव–क्रिया स्वयं साधना और ध्यान है। हम चलते हैं और चलते समय हमारी चेतना जागृत रहती है, "हम चल रहे हैं", इसकी स्मृति रहती है, यह गति की भावक्रिया है। इसका सूत्र है कि साधक चलते समय पांचों इन्द्रियों के विषयों पर मन को केन्द्रित न करे। आंखों से कुछ दिखाई देता है, शब्द कानों से टकराते हैं, गंध के परमाणु आते हैं, ठण्डी या गरम हवा शरीर को छूती है–इन सबके साथ मन को न जोड़ें। रस की स्मृति न करें।

साधक चलते समय स्वाध्याय न करे। मन को पूरा खाली रखे। साधक चलने वाला न रहे किन्तु चलना बन जाए, तन्मूर्ति (तन्मूर्ति गति) हो जाए। उसका ध्यान चलने में ही केन्द्रित रहे, चेतना गति को पूरा साथ दे। यह गमनयोग है।

जब चित्त शरीर और वाणी की प्रत्येक क्रिया के साथ जुड़ता है, चेतना उसमें व्याप्त होती है, तब वह भावक्रिया बन जाती है। भाव–क्रिया का सूत्र है– चित्त और मन क्रियमाण क्रियामय हो जाए, इन्द्रियां उस क्रिया के प्रति समर्पित हों, हृदय उसकी भावना से प्रभावित हो, मन उसके अतिरिक्त किसी अन्य विषय में न जाए, इस स्थिति में क्रिया भावक्रिया बनती है।

9.7.5.1.8 योगासन

जैन परम्परा में मन की स्थिरता के लिए आसनों का प्रारम्भ से अभ्यास किया जाता रहा है। जिस आसन में मन स्थिर हो वही आसन विहित है। भगवान् महावीर स्वयं उकडू आदि आसनों में स्थित और स्थिर होकर ध्यान करते थे।

आसन तपस्या का एक प्रकार है। कायक्लेश के अन्तर्गत उसका समावेश किया जाता है। आत्मा के लिए सुखकर वीरासन आदि उत्कट आसनों का जो अभ्यास किया जाता है, उसे कायक्लेश कहते हैं। आसनों का दूसरा नाम स्थानयोग भी रहा है। स्थानयोग के तीन प्रकार हैं– 1. ऊर्ध्वस्थान, 2. निषीदन स्थान, 3. शयनस्थान।

ऊर्ध्व स्थान के सात प्रकार हैं – साधारण, सविचार, सनिरुद्ध, व्युत्सर्ग, समपाद, एक पाद एवं गृद्धोड्डीन।

निषीदन स्थानयोग के पांच प्रकार हैं – उत्कटुका, गोदोहिका, समपादपुता, पर्यङ्क, अर्धपर्यङ्क।

शयन स्थानयोग इस प्रकार है – लगण्डशयन, उत्तानशयन, अधोमुखशयन, एकपार्श्वशयन, मृतकशयन, ऊर्ध्वशयन।

साधक ऊर्ध्व स्थान कर कायोत्सर्ग करें। उसे कायिक दुःखों की तितिक्षा, सुखासक्ति की हानि और धर्म प्रभावना के लिए कायक्लेश में अपने आपको नियोजित करना चाहिए। अनेक साधक जैसे– इन्द्रभूति अणगार ऊर्ध्वजानु, अधःशिर और ध्यान कोष्ठ में लीन होकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते रहे हैं।

9.8. प्रेक्षाध्यान के अंग

आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी ने प्रेक्षाध्यान के अंगों को तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया है, यह हैं– मुख्य अंग, सहायक अंग एवं विशिष्ट अंग।

9.8.1 प्रेक्षाध्यान के मुख्य अंग

प्रेक्षाध्यान अप्रमाद की साधना है जिसके मुख्य अंग आठ हैं जो इस प्रकार है–

1. कायोत्सर्ग	2. अन्तर्यात्रा
3. श्वास प्रेक्षा	4. शरीर प्रेक्षा
5. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा	6. लेश्या ध्यान (रंग–ध्यान)
7. भावना	8.अनुप्रेक्षा।

9.8.1.1 कायोत्सर्ग

शरीर की चंचलता, वाणी का प्रयोग और मन की क्रिया; इन सबको एक शब्द में योग कहा जाता है। ध्यान का अर्थ है– योग का निरोध। प्रवृत्तियां तीन हैं और तीनों का निरोध करना है। फलतः ध्यान के भी तीन प्रकार हो जाते हैं– कायिक ध्यान, वाचिक ध्यान और मानसिक ध्यान। यह कायिक ध्यान ही कायोत्सर्ग है। इसे काय–गुप्ति, काय–संवर, काय–विवेक, काय–व्युत्सर्ग और काय–प्रतिसंलीनता भी कहा जाता है।

कायोत्सर्ग का अर्थ है– शरीर का व्युत्सर्ग और चैतन्य की जागृति। प्रयोग में इसका अर्थ है– शरीर की बाह्य स्थूल प्रवृत्तियों का निरोध, सभी ऐच्छिक (कंकालीय) मांसपेशियों की शिथिलता एवं चयापचय जैसी सूक्ष्म आंतरिक क्रियाओं का मंदीकरण। इस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शारीरिक स्थिति में मानसिक तनाव का विसर्जन स्वतः हो जाता है।

शरीर की स्थिरता और शिथिलता मानसिक एकाग्रता की पहली शर्त है। चित्त की स्थिरता के लिए शरीर की स्थिरता अनिवार्य है। इसलिए प्रेक्षाध्यान का पहला चरण कायोत्सर्ग है जो सभी प्रकार से किए जाने वाले प्रेक्षाध्यानों के प्रारम्भ में ही किया जाता है।

पूरे शरीर का कायोत्सर्ग करने के बाद स्वरयन्त्र का कायोत्सर्ग करना आवश्यक है। हमारी विचारधारा का उद्‌गम स्वरयंत्र की चंचलता से होता है। जितनी स्वरयंत्र की चंचलता, उतनी ही चित्त की चंचलता। स्वरयंत्र का संपूर्ण शिथिलीकरण करने से अन्तर्मौन की साधना होती है। मन की चंचलता भी अपने आप समाप्त हो जाती है।

ध्यान के पहले चरण के अतिरिक्त कायोत्सर्ग का अभ्यास स्वतंत्र रूप से भी दीर्घकाल तक किया जा सकता है। यदि कोई कायोत्सर्ग के प्रयोग की विधि को सीख कर प्रतिदिन इसका नियमित अभ्यास करता रहे तो वह किसी भी स्थिति में तनाव–मुक्त, शांत और अविचलित रह सकता है।

पूरा शिथिलीकरण सध जाने पर चेतना और शरीर की पृथक्–पृथक् अनुभूति की जाती है जिससे अनुभूति के स्तर पर ''भेद–विज्ञान'' का अभ्यास होता है। शारीरिक और मानसिक तनाव से मुक्ति पाने के लिए कायोत्सर्ग का अभ्यास बहुत उपयोगी है। दो घण्टे तक सोने से शरीर एवं मांसपेशियों को जो विश्राम नहीं मिलता, उतना विश्राम आधे घंटे तक विधिवत् कायोत्सर्ग करने से मिल जाता है बल्कि उससे अधिक विश्राम मिल जाता है। यह तनाव–जनित अनेक प्रकार की मनःकायिक बीमारियों का निर्दोष एवं सक्षम उपाय है।

9.8.1.2 अन्तर्यात्रा

यह प्रेक्षाध्यान का दूसरा चरण है। ध्यान की साधना में नाड़ी–तंत्र की प्राण शक्ति को विकसित करना आवश्यक है। हमारे केन्द्रिय नाड़ी–तन्त्र का मुख्य स्थान है– सुषुम्ना (Spinal Cord)। सुषुम्ना के नीचे का छोर– शक्ति केन्द्र, ऊर्जा या प्राणशक्ति का मुख्य केन्द्र है। अन्तर्यात्रा में चित्त को शक्ति केन्द्र से सुषुम्ना के मार्ग से ज्ञान–केन्द्र तक ले जाना होता है। चेतना की इस अन्तर्यात्रा से ऊर्जा का प्रवाह या प्राण की गति उर्ध्वगामी होती है। इस यात्रा की अनेक आवृत्तियों से नाड़ी–तन्त्र की प्राण–शक्ति विकसित होती है जो ध्यानाभ्यास के लिए आवश्यक है।

हमारे चैतन्य का, ज्ञान का केन्द्र है– नाड़ी संस्थान। यह समूचे शरीर में व्याप्त है किन्तु पृष्ठरज्जु के निचले सिर से मस्तिष्क तक का स्थान चैतन्य का मूल केन्द्र है। आत्मा की अभिव्यक्ति का यही स्थान है। यही चित्त का स्थान है। यही मन का और इन्द्रियों का स्थान है। संवेदन, प्रतिसंवेदन और ज्ञान सारे यहीं से प्रसारित होते हैं। शक्ति का भी यही स्थान है। ज्ञानवाही और क्रियावाही तंतुओं का यही केन्द्र स्थान है। केवल मनुष्य ही ऊर्जा को उर्ध्वगामी कर सकता है। केवल दिशा का ही परिवर्तन हुआ कि जो शक्ति नीचे की ओर जाती थी वह ऊपर की ओर जाने लगती है। इतना–सा ही अन्तर पड़ता है। मस्तिष्क की ऊर्जा का नीचे जाना भौतिक जगत् में प्रवेश करना है। कामकेन्द्र की ऊर्जा का ऊपर जाना अध्यात्म जगत् में प्रवेश करना है। ऊर्जा के नीचे जाने से भौतिक सुख की अनुभूति होती है। ऊर्जा के ऊपर जाने से अध्यात्म–सुख की अनुभूति होती है। यह केवल दिशा–परिवर्तन का परिणाम है।

9.8.1.3 श्वास प्रेक्षा

श्वास शरीर में चलने वाली चयापचय की क्रियाओं का अभिन्न अंग है। श्वास और प्राण, श्वास और मन अटूट कड़ी के रूप में काम करते हैं। मन को हम सीधा नहीं पकड़ सकते। प्राण की धारा को भी सीधा नहीं पकड़ा जा सकता किन्तु मन को पकड़ने के लिए प्राण को पकड़ें और प्राण को पकड़ने के लिए श्वास को पकड़ें। श्वास–परिवर्तन के द्वारा हम मानसिक विकास कर सकते हैं। चित्त को एकाग्र करने का एक सूक्ष्म एवं सक्षम उपाय है– श्वास प्रेक्षा।

मन की शांत–स्थिति या एकाग्रता के लिए श्वास का शांत होना बहुत जरूरी है। शांत श्वास के दो रूप मिलते हैं– 1. सूक्ष्म श्वास–प्रश्वास, 2. मन्द या दीर्घ श्वास–प्रश्वास।

कायोत्सर्ग में श्वास–प्रश्वास का निरोध नहीं किया जाता किन्तु उसे सूक्ष्म कर दिया जाता है। प्राणवायु को मंद–मंद लेना चाहिए और मंद–मंद छोड़ना चाहिए। इसे ही दीर्घ–श्वास या मंद श्वास–प्रश्वास कहा जाता है। श्वास–विजय या श्वास–नियंत्रण के बिना ध्यान नहीं हो सकता, यह एक सच्चाई है।

हम श्वास लेते समय 'श्वास ले रहे हैं, इसी का अनुभव करें, यही स्मृति रहे, मन किसी अन्य प्रवृत्ति में न जाए, वह श्वासमय हो जाए, उसके लिए समर्पित हो जाए। श्वास की भाव–क्रिया ही श्वास प्रेक्षा है। यह नथुनों के भीतर की जा सकती है, श्वास के पूरे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

गमनागमन पर भीतर की जा सकती है। श्वास के विभिन्न आयामों और विभिन्न रूपों को देखा जा सकता है। श्वास प्रेक्षा के निम्न दो प्रकार है–

1. दीर्घ श्वास प्रेक्षा – प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करने वाला सबसे पहले श्वास की गति को नियंत्रित करता है। वह श्वास को लम्बा और लयबद्ध बना देता है। सामान्यतः आदमी एक मिनट में 15–17 श्वास लेता है, दीर्घ श्वास प्रेक्षा के अभ्यास से यह संख्या घटाई जाती है। साधारण अभ्यास के बाद यह संख्या एक मिनट मे 20 से कम तक की जा सकती है और विशेष अभ्यास के बाद उसे और अधिक कम किया जा सकता है। श्वास को मन्द या दीर्घ करने के लिए तनुपट (Diaphragm) की मांसपेशियों का समुचित उपयोग किया जाता है। श्वास छोड़ते समय पेट की मांसपेशियां सिकुड़ती हैं और लेते समय वे फूलती हैं।

श्वास को मंद, दीर्घ या सूक्ष्म करने से मन शांत होता है। इसके साथ–साथ आवेश शांत होते हैं, कषाय शांत होते हैं, उत्तेजनाएं व वासनाएं शांत होती हैं। श्वास जब छोटा होता है तब वासनाएं उभरती हैं, उत्तेजनाएं आती हैं, कषाय जागृत होते हैं। इन सबसे श्वास प्रभावित होता है। इन सब दोषों का वाहन है– श्वास। जब कभी मालूम पड़े कि उत्तेजना आने वाली है तब तत्काल श्वास को लम्बा कर दें, दीर्घश्वास लेने लग जाएं, आने वाली उत्तेजना लौट जाएगी। इसका कारण है कि श्वास का वाहन उसे उपलब्ध नहीं हो पाता है। बिना आलम्बन के कोई उत्तेजना या वासना प्रकट हो नहीं सकती। ध्यान की साधना करने वाला साधक मन की सूक्ष्मता को पकड़ने में अभ्यस्त हो जाता है। वह जान लेता है कि मस्तिष्क के अमुक केन्द्र में कोई वृत्ति उभर रही है। वह तत्काल दीर्घ श्वास का प्रयोग प्रारम्भ कर देता है। उभरने वाली वृत्ति तत्काल शांत हो जाती है। साधक उन वृत्तियों की उत्तेजनाओं का शिकार नहीं होता।

श्वास वर्तमान की वास्तविकता है। उसे देखने का अर्थ है– समभाव में जीना, वीतरागता के क्षण में जीना, राग–द्वेष मुक्त क्षण में जीना। जो व्यक्ति श्वास को देखता है, उसका तनाव अपने आप विसर्जित हो जाता है। दीर्घश्वास प्रेक्षा चित्त को वर्तमान में चल रही क्रिया पर ही एकाग्र (Concentrate) होने के लिए प्रशिक्षित करने की सरल विधि है। इससे व्यक्ति की कार्य–क्षमता बढ़ती है।

2. समवृत्ति श्वास प्रेक्षा – जैसे दीर्घ श्वास प्रेक्षाध्यान का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है वैसे ही समवृत्ति श्वास प्रेक्षा भी उसका महत्त्वपूर्ण सूत्र है। बाएं नथुने से श्वास लेकर दाएं से निकालना और दाएं से लेकर बाएं से निकालना यह है समवृत्ति–श्वास। इसे देखना, इसकी प्रेक्षा करना, इसके साथ चित्त का योग करना महत्त्वपूर्ण बात है। प्रारम्भ में अंगुली द्वारा और बाद में संकल्प शक्ति द्वारा श्वास की दिशा में परिवर्तन किया जाता है। समवृत्ति–श्वास प्रेक्षा के माध्यम से चेतना के विशिष्ट केन्द्रों को जागृत किया जा सकता है। इसका सतत् अभ्यास अनेक उपलब्धियों में सहायक हो सकता है।

9.8.1.4 शरीर प्रेक्षा

साधना की दृष्टि से शरीर का बहुत महत्त्व है। यह आत्मा का केन्द्र है। इसी के माध्यम से चैतन्य अभिव्यक्त होता है। चैतन्य पर आए हुए आवरण को दूर करने के लिए इसे सशक्त माध्यम बनाया जा सकता है। शरीर को समग्र दृष्टि से देखने की यह साधना–पद्धति बहुत महत्त्वपूर्ण है

''साधक चक्षु को संयत कर शरीर की प्रेक्षा करे। उसकी प्रेक्षा करने वाला उसके तीन भागों– उर्ध्व, मध्य और अधो को जान लेता है।''

''जो साधक वर्तमान क्षण में शरीर में घटित होने वाली सुख–दुःख की वेदना को (द्रष्टा भाव से) देखता है, वर्तमान क्षण का अन्वेषण करता है, वह अप्रमत्त हो जाता है।'' शरीर के प्रत्येक अवयव पर क्रमशः चित्त को एकाग्र कर वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों को तटस्थ भाव से देखने का अभ्यास शरीर–प्रेक्षा है।

शरीर–प्रेक्षा की यह प्रक्रिया अन्तर्मुख होने की प्रक्रिया है। सामान्यतः बाहर की ओर प्रवाहित होने वाली चैतन्य की धारा को अन्तर् की ओर प्रवाहित करने का प्रथम साधन स्थूल शरीर है। शरीर–प्रेक्षा में पहले शरीर के बाहरी भाग को देखते है। शरीर के भीतर मन को ले जाकर भीतरी भाग को देखते हैं। शरीर के स्थूल और सूक्ष्म स्पन्दनों को देखते हैं। शरीर के भीतर जो कुछ है उसे देखने का प्रयत्न करते हैं। हमारी कोष–स्तरीय चेतना जो हर कोष के पास है, उसे हम प्रेक्षा के द्वारा जागृत करते हैं। चेतना के जो कोष सोए हुए हैं, कुण्ठित हैं, उन्हें जागृत करते हैं। शरीर का प्रत्येक कण चित्त के निर्देश को स्वीकार करने के लिए तत्पर है कि वह जाग जाए और मन के साथ उसका सम्बन्ध–सूत्र जुड़ जाए किन्तु जब जागने का प्रयत्न नहीं होता तब वे मूर्च्छा में रह जाते हैं और ऐसी स्थिति में चित्त का निर्देश उन तक पहुंच नहीं पाता। वे निष्क्रिय ही बने रह जाते हैं। स्थूल शरीर के भीतर तैजस् और कार्मण, ये दो सूक्ष्म शरीर हैं। उनके भीतर आत्मा है। स्थूल शरीर की क्रियाओं और संवेदनों को देखने का अभ्यास करने वाला क्रमशः तैजस और कार्मण शरीर को देखने लग जाता है। शरीर प्रेक्षा का दृढ़ अभ्यास और मन के सुशिक्षित होने पर शरीर में प्रवाहित होने वाली चैतन्य की धारा का साक्षात्कार होने लग जाता है। जैसे–जैसे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

साधक स्थूल से सूक्ष्म दर्शन की ओर आगे बढ़ता है वैसे–वैसे उसका अप्रमाद बढ़ता जाता है।

स्थूल शरीर के वर्तमान क्षण को देखने वाला जागरूक हो जाता है। कोई क्षण सुखरूप होता है और कोई क्षण दु:खरूप। क्षण को देखने वाला सुखात्मक क्षण के प्रति राग नहीं करता और दु:खात्मक क्षण के प्रति द्वेष नहीं करता। वह केवल देखता और जानता है।

देखने का प्रयोग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उसका महत्त्व तभी अनुभूत होता है जब मन की स्थिरता, समता, दृढ़ता और स्पष्टता से दृश्य को देखा जाए। शरीर के प्रकंपनों को देखना, उसके भीतर प्रवेश कर भीतरी प्रकम्पनों को देखना चित को बाहर से भीतर ले जाने की प्रक्रिया है।

शरीर में आत्मा और चेतना व्याप्त है, इसीलिए शरीर में संवेदन होता है। उस संवेदन से मनुष्य अपने स्वरूप को देखता है, अपने अस्तित्व को जगाता है और अपने स्वभाव का अनुभव करता है। शरीर में होने वाले संवेदन को देखना चैतन्य को देखना है, उसके माध्यम से आत्मा को देखना है।

शरीर में चैतन्य व्याप्त है, प्राण–धारा प्रवाहित है, ज्ञान–तंतु (Sensoy Nerve) और कर्म–तंतु (Motor Nerve) फैले हुए हैं; यही शरीर–प्रेक्षा का मूल आधार है। शरीर–प्रेक्षा के द्वारा शरीर में व्याप्त चैतन्य को जागृत किया जा सकता है, प्राण–प्रवाह को संतुलित किया जा सकता है, ज्ञान–तंतुओं एवं कर्म–तंतुओं की क्षमता बढ़ाई जा सकती है। परिणाम–स्वरूप जहां चेतना पर आया हुआ आवरण दूर होता है, वही साथ ही प्राण–शक्ति, ज्ञान तंतु एवं कर्म तंतु के पर्याप्त उपयोग तथा मांसपेशियों व रक्त–संचार (Blood Circulation) की क्षमता में संतुलन के माध्यम से अभीष्ट मानसिक एवं शारीरिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। शारीरिक बीमारियों को नष्ट कर स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है और रोग–प्रतिरोधक शक्ति का विकास किया जा सकता है।

9.8.1.5 चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा

प्रेक्षा ध्यान की साधना का ध्येय है– चित्त की निर्मलता। चित्त को निर्मल बनाने के लिए, हमारी वृत्तियों, भावों या आदतों को विशुद्ध करने के लिए; पहले यह समझना जरूरी है कि अशुद्धि कहां जन्म लेती हैं और कहां प्रकट होती हैं। यदि हम उस तन्त्र को ठीक से समझ लेते हैं तो उसे शुद्ध करने की बात में बड़ी सुविधा हो जाती है। हम योगशास्त्र की दृष्टि से और वर्तमान के शरीर–शास्त्र की दृष्टि; इन दोनों दृष्टियों से इस पर विचार करें।

वर्तमान विज्ञान की दृष्टि के अनुसार हमारे शरीर में दो प्रकार की ग्रंथियां हैं– वाहिनी युक्त एवं वाहिनी रहित (Ductless)। ये वाहिनी–रहित ग्रंथियां अन्तःस्रावी होती हैं। इन्हें 'एण्डोक्राइन ग्लैण्ड्स' कहा जाता है। पीनियल, पिच्यूटरी, थायरॉइड, पेराथाइरॉयड, थाइमस, एड्रीनल और गोनाड्स; ये सभी अन्तःस्रावी ग्रंथियां हैं। इसके स्राव हार्मोन कहलाते हैं। हमारी शारीरिक, मानसिक और भावात्मक प्रवृत्तियों का संचालन इन ग्रंथियों के द्वारा उत्पन्न स्रावों (हार्मोनों) के माध्यम से होता है। हमारी सभी चैतन्य क्रियाओं का संचालन इस ग्रंथि–तंत्र के द्वारा होता है। अतः इन ग्रंथियों को चैतन्य केन्द्रों की संज्ञा दी गई है।

मनुष्य की जितनी आदतें बनती हैं, उनका मूल उद्गम–स्थल है– ग्रंथि तन्त्र। हमारे शरीर के दो नियामक तन्त्र हैं– एक है नाड़ीतंत्र (Nervours System) और दूसरा है– ग्रंथि तंत्र। नाड़ी–तंत्र में हमारी सारी वृत्तियां अभिव्यक्त होती हैं, अनुभव में आती हैं और फिर व्यवहार में उतरती हैं। व्यवहार, अनुभव या अभिव्यक्तीकरण; ये सब नाड़ी तन्त्र के काम हैं किन्तु आदतों का जन्म, आदतों की उत्पत्ति ग्रंथि तंत्र में होती है। जो हमारी अन्तःस्रावी ग्रंथियां हैं, उनमें आदतें जन्म लेती हैं। वे आदतें मस्तिष्क के पास पहुंचती हैं, अभिव्यक्त होती हैं और व्यवहार में उतरती हैं, इसलिए विज्ञान में एक शब्द का प्रयोग हुआ है– न्यूरो एण्डोक्राइन सिस्टम। इसका अर्थ है ग्रंथि तंत्र और नाड़ी–तंत्र का संयुक्त कार्य तंत्र। यह संयुक्त तंत्र 'अर्धचेतन मन' का एक भाग है। यह मस्तिष्क को भी प्रभावित करता है अर्थात् मस्तिष्क से भी अधिक मूल्यवान् है। यदि इसे सही साधनों के द्वारा संतुलित करते हैं तो सभी अनिष्ट भावनाओं से मुक्ति मिलती है।

अन्तःस्रावी ग्रंथियों में नीचे की ग्रंथियां– अधिवृक्क ग्रंथियां (एड्रिनल) और जनन ग्रंथियां (गोनाड्स) वृत्तियां उत्पन्न होने का स्थान है। जनन ग्रंथियां (गोनाड्स) काम–वासना का स्थान है और भय, आवेग तथा बुरे भाव उत्पन्न होने का स्थान है– एड्रीनल ग्रंथियां। योगशास्त्र की भाषा में इन्हें मणिपूर चक्र (तैजस् केन्द्र) और स्वाधिष्ठान चक्र (स्वास्थ्य केन्द्र) कहा जाता है। क्रूरता, वैर, मूर्च्छा आदि स्वास्थ्य केन्द्र में उत्पन्न होते हैं और तृष्णा, ईर्ष्या, घृणा, भय, कषाय और विषाद तैजस् केन्द्र में जन्म लेते हैं। जब हमारा मन हमारे विचार नाभि के नीचे के भाग में शक्ति केन्द्र तक दौड़ते रहते हैं तब बुरी वृत्तियां उभरती हैं जो बाद में आदत बन जाती है।

क्रोध, कलह, ईर्ष्या, भय, द्वेष आदि के कारण ये ग्रंथियां विकृत बनती हैं। इन आवेगों से सबसे ज्यादा प्रभावित होती हैं एड्रीनल ग्रंथि। जब ये अनिष्ट भावनाएं जागती हैं तब एड्रीनल ग्रंथि को अतिरिक्त काम करना पड़ता है, इसके साथ ही अन्य ग्रंथियां भी अति श्रम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

से थक कर शिथिल हो जाती हैं। ग्रंथियों की शक्ति क्षीण हो जाती है। परिणाम–स्वरूप शारीरिक और मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम इन आवेगों और भावनाओं पर नियंत्रण करें। आवेगों को समझदारी से समेटें तथा ग्रंथियों पर अधिक भार न आने दें। इसका उपाय है– चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा।

श्वास प्रेक्षा, शरीर प्रेक्षा और चैतन्य केन्द्रों की प्रेक्षा; ये सब ग्रंथियों को सक्रिय और संतुलित करने के साधन हैं। हम चैतन्य केन्द्रों (ग्रंथियों) पर ध्यान करें, वे सक्रिय होंगे।

ज्यों–ज्यों हमारा ध्यान हृदय (आनन्द केन्द्र) के ऊपर के चैतन्य केन्द्रों पर अधिक केन्द्रित होगा त्यों–त्यों वे अधिक सक्रिय होते जाएंगे। उनकी सक्रियता से भय समाप्त होगा, आवेग समाप्त होंगे और अनिष्ट भावनाएं समाप्त हो जाएंगी। एक नया आयाम खुलेगा। नया आनन्द, नई स्फूर्ति तथा नया उल्लास प्राप्त होगा। चैतन्य केन्द्रों की प्रेक्षा महत्त्वपूर्ण ही नहीं, वास्तव में अध्यात्म विकास का सर्वोत्तम साधन है।

9.8.1.6 लेश्या ध्यान

'लेश्या' जैन दर्शन का पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ है– विशिष्ट रंग वाले पुद्गल द्रव्य (Matter) के संसर्ग से उत्पन्न होने वाला जीव का परिणाम या चेतना का स्तर। कषाय की तरंगें और कषाय की शुद्धि होने पर आने वाली चैतन्य की तरंगें; इन सब तरंगों को भाव के रूप में निर्माण करना और उन्हें विचार, कर्म और क्रिया तक पहुंचा देना यह लेश्या का काम है। लेश्या ही सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर के बीच संपर्क सूत्र है।

लेश्या एक ऐसा चैतन्य स्तर है जहां पहुंचने पर व्यक्तित्व का रूपान्तरण घटित होता है। लेश्याएं अच्छी होंगी तो व्यक्तित्व बदल जाएगा। लेश्याएं बुरी होंगी तो व्यक्तित्व बदल जाएगा। दोनों और बदलेगा, रूपान्तरण घटित होगा। प्रश्न होता कि वहां तक हम कैसे पहुंचें। हमें रंग का सहारा लेना होगा। रंग हमारे व्यक्तित्व को बहुत प्रभावित करते हैं। रंग स्थूल व्यक्तित्व, सूक्ष्म व्यक्तित्व, तैजस शरीर और लेश्या–तंत्र को भी प्रभावित करते हैं। यदि हम रंगों की क्रियाओं और उनके मनोवैज्ञानिक प्रभावों को समझ लेते हैं तो व्यक्तित्व के रूपान्तरण में हमें बड़ा सहयोग मिल सकता है।

लेश्या के दो भेद हैं– द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या, पौद्गलिक (Physical) लेश्या और आत्मिक लेश्या। वह निरन्तर बदलती रहती है। लेश्या प्राणी के आभामंडल (Aura) का नियामक तत्त्व है। ओरा में कभी काला, कभी लाल, कभी पीला, कभी नीला और कभी सफेद रंग उभर आता है। भावों के अनुरूप रंग बदलते रहते हैं।

लेश्या के छह प्रकार हैं– कृष्ण, नील, कापोत, तैजस् पद्म और शुक्ल। इनमें प्रथम तीन अशुभ हैं और अन्तिम तीन शुभ हैं।

हमारी वृत्तियां, भाव या आदतें इन सबको उत्पन्न करने वाला सशक्त तन्त्र है– लेश्या तन्त्र। बुरी आदतों को उत्पन्न करने वाली तीन लेश्याएं हैं– कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्य। क्रूरता, हिंसा, कपट, प्रवंचना, प्रमाद, आलस्य आदि जितने दोष हैं, ये सब इन तीन लेश्याओं से उत्पन्न होते हैं।

लेश्या–ध्यान के द्वारा ये तीनों लेश्याएं बदल जाती हैं। कृष्ण लेश्या शुद्ध होते–होते नील लेश्या में, नील लेश्या कापोत लेश्या में और कापोत लेश्या तेजोलेश्या मे बदल जाती है। तेजोलेश्या का रंग है– बाल सूर्य जैसा। रंग का मनोविज्ञान बताता है कि अध्यात्म की यात्रा लाल रंग से शुरू होती है। तेजोलेश्या में आते ही आदतों में अपने आप परिवर्तन होने लग जाता है। उनमें स्वभावतः रूपान्तरण शुरू हो जाता है। पद्म लेश्या में और भी अधिक बदलता है। शुक्ल लेश्या में पहुंचते ही व्यक्तित्व का पूरा रूपांतरण (Transformation) हो जाता है।

भावधारा (लेश्या) के आधार पर आभामंडल बदलता है और लेश्या ध्यान के द्वारा आभामण्डल को बदलने से भावधारा भी बदल जाती है। इस दृष्टि से लेश्या ध्यान या चमकते हुए रंगों का ध्यान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। हमारी भावधारा जैसी होती है, उसी के अनुरूप मानसिक चिंतन तथा शारीरिक मुद्राएं होती हैं। इस भूमिका में लेश्या ध्यान की उपयोगिता बहुत बढ़ जाती है।

9.8.1.7 भावना

भावना का अभ्यास करने वाले व्यक्ति में ध्यान की योग्यता आ जाती है। ध्यान की योग्यता के लिए चार भावनाओं का अभ्यास आवश्यक है–

1. ज्ञान भावना – राग–द्वेष और मोह से शून्य होकर तटस्थ भाव से जानने का अभ्यास।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. दर्शन भावना – राग–द्वेष और मोह से शून्य होकर तटस्थ भाव से देखने का अभ्यास।

3. चारित्र भावना – राग–द्वेष और मोह से शून्य, समत्वपूर्ण आचरण का अभ्यास।

4. वैराग्य भावना – अनासक्ति, अनाकांक्षा और अभय का अभ्यास।

मनुष्य जिसके लिए भावना करता है, जिस अभ्यास को दोहराता है, उसी रूप में उसका संस्कार निर्मित हो जाता है। यह आत्म–सम्मोहन की प्रक्रिया है। इसे 'जप' भी कहा जा सकता है। आत्मा की भावना करने वाला आत्मा में स्थित हो जाता है। 'सोऽहं' के जप का यही मर्म है। 'अर्हम्' की भावना करने वाले में 'अर्हत्' होने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। कोई व्यक्ति भक्ति से भावित होता है, कोई ब्रह्मचर्य से और कोई सत्संग से। अनेक व्यक्ति नाना भावनाओं से भावित होते हैं। जो किसी भी कुशल कर्म से अपने को भावित करता है उसकी भावना उसे लक्ष्य की ओर ले जाती है। भावना नौका के समान है। नौका यात्री को तट तक ले जाती है। उसी प्रकार भावना भी साधक को दुःख से पार पहुंचा देती है।

प्रतिपक्ष की भावना से स्वभाव, व्यवहार और आचरण को बदला जा सकता है। मोह–कर्म के विपाक पर प्रतिपक्ष भावना का निश्चित परिणाम होता है। उपशम की भावना से क्रोध, मृदुता की भावना से अभिमान, ऋजुता की भावना से माया और संतोष की भावना से लोभ को बदला जा सकता है। राग और द्वेष का संस्कार चेतना की मूर्च्छा से होता है और वह मूर्च्छा चेतना के प्रति जागरूकता लाकर तोड़ी जा सकती है। प्रतिपक्ष भावना चेतना की जागृति का उपक्रम है, इसलिए उसका निश्चित परिणाम होता है।

साधना–काल में ध्यान के बाद स्वाध्याय और स्वाध्याय के बाद फिर ध्यान करना चाहिए। स्वाध्याय की सीमा में जप, भावना और अनुप्रेक्षा; इन सबका समावेश होता है। यथासमय और यथाशक्ति इन सब का प्रयोग आवश्यक है।

9.8.1.8 अनुप्रेक्षा

ध्यान का अर्थ है प्रेक्षा अर्थात् देखना। उसकी समाप्ति होने के पश्चात् मन की मूर्च्छा को तोड़ने वाले विषयों का अनुचिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। जिस विषय का अनुचिन्तन बार–बार किया जाता है, उससे मन प्रभावित हो जाता है। इसलिए उस चिन्तन या अभ्यास को अनुप्रेक्षा कहते हैं।

आत्मा का मौलिक स्वरूप चेतना है। उसके दो कार्य हैं– देखना और जानना। हमारी चेतना शुद्ध स्वरूप में हमें उपलब्ध नहीं है, इसलिए हमारा दर्शन और ज्ञान निरुद्ध है, आवृत्त है। उस पर एक पर्दा पड़ा हुआ है। उसे दर्शनावरण और ज्ञानावरण कहा जाता है। वह आवरण अपने ही मोह के द्वारा डाला गया है। हम केवल जानते नहीं हैं और केवल देखते नहीं हैं। वह राग–द्वेष को उत्तेजित करता है। राग और द्वेष मोह को उत्पन्न करते हैं। मोह ज्ञान और दर्शन को निरुद्ध करता है। यह चक्र चलता रहता है। इस चक्र को तोड़ने का एक ही उपाय है और वह है– ज्ञाताभाव या द्रष्टाभाव, केवल जानना और केवल देखना। जो केवल जानता–देखता है, वह अपने अस्तित्व का उपयोग करता है। जो जानने देखने के साथ प्रियता–अप्रियता का भाव उत्पन्न करता है, वह अपने अस्तित्व से हटकर मूर्च्छा में चला जाता है। कुछ लोग मूर्च्छा को तोड़ने में स्वयं जागृत हो जाते हैं। जो स्वयं जागृत नहीं होते, उन्हें श्रद्धा के बल पर जागृत करने का प्रयत्न किया जाता है।

"हे अद्रष्टा! तुम्हारा दर्शन तुम्हारे ही मोह के द्वारा निरुद्ध है, इसलिए तुम सत्य को नहीं देख पा रहे हो। तुम सत्य को नहीं देख पा रहे हो, इसलिए तुम उस पर श्रद्धा करो जो द्रष्टा द्वारा तुम्हें बताया जा रहा है।"

अनुप्रेक्षा का आधार द्रष्टा के द्वारा प्रदत्त बोध है। उसका कार्य है अनुचिन्तन करते–करते उस बोध का प्रत्यक्षीकरण और चित्त का रूपान्तरण। ध्यान को समाप्त कर अनित्य आदि अनुप्रेक्षा का अभ्यास करना चाहिए। ध्यान में हाने वाले विविध अनुभवों में चित्त का कहीं लगाव न हो, इस दृष्टि से अनुप्रेक्षा के अभ्यास का महत्त्व है।

9.8.2 प्रेक्षाध्यान के सहायक अंग

प्रेक्षाध्यान के चार सहायक अंग हैं– 1. आसन, 2. प्राणायाम. 3. मुद्रा एवं 4. ध्वनि।

9.8.2.1 आसन

प्रेक्षाध्यान की साधना के लिए प्रतिदिन आसन करना आवश्यक है क्योंकि जब तक शरीर को नहीं साधा जाता और आसन विशेष में कम से कम एक घण्टे तक स्थिर होकर बैठने का अभ्यास नहीं होता तब तक ध्यान की गहराई में नहीं उतरा जा सकता। जैसे ही ध्यान की गहराई में जाने की कोशिश की जाएगी शरीर साथ छोड़ देगा, आसन बदलना अनिवार्य हो जाएगा। आसन सिद्ध करना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ध्यान की गहराई में जाने से पहले अनिवार्य है इसलिए प्रेक्षाध्यान पद्धति में आसन को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। आसनों का लगातार अभ्यास शरीर को जरा, व्याधि और इन्द्रिय क्षीणता से बचाए रखता है। शरीर स्वस्थ रहने पर साधना सुगम हो जाती है।

9.8.2.2 प्राणायाम

प्राणायाम का प्रेक्षाध्यान में बहुत महत्त्व है क्योंकि श्वास पर नियंत्रण किए बिना वृत्तियों का और भावों का परिष्कार नहीं हो सकता। हमारी जितनी वृत्तियां हैं, चाहे वे निषेधात्मक हों या विधेयात्मक, सबके साथ श्वास का संबंध है। पूरा और लम्बा श्वास विधेयात्मक भावों के लिए उपयुक्त है। नाड़ी–तंत्र का परिष्कार भी श्वास पर ही निर्भर है। हीन भावना (Inferiority Complex) और उच्च भावना (Superiority Complex) से ग्रसित होना निषेधात्मक भाव है। वैज्ञानिक दृष्टि से सिम्पैथेटिक और पेरासिम्पैथेटिक तथा योग की दृष्टि से इड़ा और पिंगला का संतुलन प्राणायाम के माध्यम से किया जाता है।

9.8.2.3 मुद्रा

प्रेक्षाध्यान भाव–परिवर्तन की एक प्रक्रिया है। हमारे भाव जैसे होते हैं वैसी ही हमारे शरीर की मुद्राएं बनती हैं। अगर हम आलस्य में हैं तो शरीर की वैसी ही मुद्रा बनेगी। अगर शोक में हैं तो वैसी मुद्रा ही बनेगी। इस तरह प्रसन्नता, जल्दबाजी, धैर्य, जिज्ञासा, अहंकार, क्रोध, लोभ, आसक्ति, घृणा आदि जितने भी भाव हैं, उतनी ही उनकी मुद्राएं स्पष्टतया शरीर पर दृष्टिगोचर होने लगती हैं। प्रेक्षाध्यान का एक उद्देश्य है– निषेधात्मक भावों का निरसन और विधेयात्मक भावों का विकास। अगर हम विधेयात्मक भावों की मुद्राएं ध्यान–काल में अथवा जीवन में निरन्तर काम में लें तो भीतर में हमारे भाव भी उसी अनुपात में बदलते नजर आएंगे। इसलिए प्रेक्षाध्यान साधना में जिस प्रकार आसनों का महत्त्व है उसी प्रकार मुद्राओं का भी है।

9.8.2.4 ध्वनि

1. अर्हम् ध्वनि – 'अर्हम्' जैन जगत् का एक चर्चित एवं शक्तिशाली मंत्र है। शरीर में मूल शक्ति का स्रोत है– प्राणशक्ति, ऊर्जा। अर्हम् की ध्वनि से प्राणशक्ति सक्रिय होती है, हमारे भीतर विद्यमान किन्तु सुषुप्त शक्तियां जागृत होती हैं, शक्ति–सम्पन्नता एवं अर्हता का बोध होता है।

'अर्हम्' के ही उच्चारण से निर्मित बाह्य ध्वनि तरंगों से व्यक्ति प्रभावित होता है। उससे निश्चय पर पहुंचने में सहयोग मिलता है।

नौ बार शरीर के चारों ओर इसके कवच–निर्माण का अनुभव करें। यह कवच बाहरी दुष्प्रभावों से बचाने में बहुत सक्षम है। 'अर्हं' की खोज हजारों–हजारों प्रयोक्ताओं के द्वारा ध्यान में अनुभूत की गई स्थिति है। 'ओम्' की तरह 'अर्हं' भी परम सत्ता का प्रतीक है। जैन योगियों ने अर्हं को परमेष्ठी की पांच स्थितियों का प्रतीक माना है। 'अर्हं' में पूरे नवकार मंत्र के विशाल व्यक्तित्व को स्थापित किया गया है, इसलिए 'अर्हं' बीज–मंत्र कहलाता है।

'अर्हं' के उच्चारण से चक्रों पर विशिष्ट क्रियाएं होती है। प्लुत–ध्वनि विशेष प्रकार का वातावरण निर्मित करती है जिससे व्यक्ति विचार–शून्य, शरीर–शून्य एवं मन–शून्य स्थिति को प्राप्त कर चेतना में उपस्थित हो जाता है।

2. महाप्राण ध्वनि – महाप्राण ध्वनि साधना–मार्ग में खोजी गई एक विलक्षण ध्वनि है जिसके बार–बार गुंजार से शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्तर पर लाभदायक परिणाम अनुभव किए जा सकते हैं।

महाप्राण ध्वनि की ध्वनि–तरंगें पूरे मस्तिष्क में फैल जाती हैं और मस्तिष्क को सक्रिय बनाती हैं। विचारों की चंचलता शांत होती है। ध्यान का वातावरण निर्मित होता है। मन की एकाग्रता बढ़ती है। दीर्घकाल तक अभ्यास करने से प्राण–शक्ति और स्मरण–शक्ति का विकास होता है।

आधुनिक वैज्ञानिक शोधों ने अध्यात्म / योग के इस सिद्धान्त कि 'ध्वनि का हमारे शरीर, मन एवं भावों पर गहरा प्रभाव पड़ता है' को प्रमाणित कर दिया है।

अ. ध्वनि तरंगों के शरीर शास्त्रीय प्रभाव– जब इनका उच्चारण किया जाता है तब ध्वनि–तरंगें समूचे पसलीपंजर में गूंजती हुई फुफ्फुस के वायु–प्रकोष्ठों पर पहुंचती है। इन प्रकंपनों से फुफ्फुसीय कोशिकाएं सक्रिय एवं सप्राण होकर ऑक्सीजन और कार्बनडाइ ऑक्साइड के विनिमय को पूरी क्षमता के साथ सम्पादित करती हैं। इस ध्वनि का अन्तिम गुंजन मस्तिष्क में होता हुआ कपालीय तन्त्रिकाओं को झंकृत करता है तथा उनका कायाकल्प करता है।

एक इटालियन वैज्ञानिक डॉ. लेसर लसारियो ने ''ध्वनि–जनित तरंगों के मानव शरीर पर होने वाले प्रभावों'' का 25 वर्ष तक वैज्ञानिक अध्ययन करने के बाद यह प्रमाणित किया है कि–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. उच्छ्वसन के साथ शब्द–स्वरों के उच्चारण द्वारा उत्पन्न प्रकंपनों से भीतरी अवयवों की मालिश (Massage) हो जाती है।

2. भीतर के ऊतकों और तंत्रिका–कोशिकाओं की गहराई तक प्रकंपन पहुंचते हैं।

3. अवयवों और ऊतकों में रक्त–संचार निर्बाध बनता है और उन्हें प्रचुर मात्रा में रक्त की आपूर्ति होने से प्राण–शक्ति दीप्त होती है।

ब. ध्वनि–प्रकंपनों के मानसिक प्रभाव– ध्वनि–तरंगों के भावनात्मक प्रभाव शारीरिक प्रभावों की तुलना में और अधिक महत्त्व रखते हैं। यह तो एक सर्वविदित तथ्य है कि संगीत–लहरियों का मनुष्य एवं अन्य प्राणियों के भावों पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ता है। उपयुक्त संगीत के माध्यम से इच्छित परिवर्तन भावधाराओं में लाया जा सकता है। अब प्रयोगों के द्वारा यह सिद्ध कर लिया गया है कि ध्वनि द्वारा किए जाने वाले आंतरिक प्रकंपन–मर्दन के प्रभाव से न केवल मांसपेशियों का शिथिलीकरण किया जा सकता है अपितु ग्लानि, विषाद और हीन–भावना जैसी मनोदशाओं को भी दूर किया जा सकता है।

जब हम मौन होते हैं तब भी बहुत बार हम मानसिक वाक्य रचना द्वारा अपने स्वर–यंत्र को बहुत व्यस्त रखते हैं तथा इस प्रकार अपनी स्नायुविक ऊर्जा का अधिक मात्रा में अपव्यय करते रहते हैं। अर्हं–ध्वनि के उच्चारण के समय हमारी मानसिक वाक्य–रचना की क्रिया समाप्त हो जाती है और इस प्रकार उस अपेक्षा से व्यर्थ ऊर्जा–व्यय से हम अपने आपको बचा लेते हैं।

अर्हं–ध्वनि की तरंगों के द्वारा हम शामक विद्युत्–चुम्बकीय तरंगों को उत्पन्न करते हैं जो लगातार उसी आवृत्ति वाले अनुवादी स्पन्दनों को शरीर में उत्पन्न करती रहती हैं। नवीनतम शरीर–शास्त्रीय अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि इन स्पंदनों का हमारी अन्तःस्रावी ग्रंथियों पर गहरा प्रभाव पड़ता है जिनके द्वारा हमारी भावधारा, चिंतन एवं आचरण को प्रभावित किया जा सकता है।

ध्वनि–प्रकंपनों के प्रभाव से हमारी अनैच्छिक तंत्रिका–संस्थान की दो धाराओं— अनुकम्पी एवं परानुकम्पी तंत्रिकाओं के बीच अधिक अच्छा संतुलन स्थापित होता है।

9.8.3 प्रेक्षाध्यान के विशिष्ट अंग

प्रेक्षाध्यान के तीन विशिष्ट अंग हैं– 1. वर्तमान क्षण की प्रेक्षा, 2. विचार–प्रेक्षा, 3. अनिमेष–प्रेक्षा।

आत्मा सूक्ष्म है, अतीन्द्रिय है। इसलिए वह परोक्ष है। चैतन्य उसका गुण है। उसका कार्य है– जानना और देखना। चित्त और शरीर के माध्यम से जानने और देखने की क्रिया होती है, इसलिए चैतन्य हमारे प्रत्यक्ष है। हम जानते हैं, देखते हैं, तब चैतन्य की क्रिया होती है। समग्र साधना का यही उद्देश्य है कि हम चैतन्य की स्वाभाविक क्रिया करें। केवल जाने और केवल देखें। इस स्थिति में अबाध आनन्द और अप्रतिहत शक्ति की धारा प्रवाहित रहती है किन्तु मोह द्वारा हमारा दर्शन निरुद्ध और ज्ञान आवृत्त रहता है। इसलिए हम केवल जानने और केवल देखने की स्थिति में नहीं रहते। हम प्रायः संवेदना की स्थिति में होते हैं। केवल जानना ज्ञान है। प्रियता और अप्रियता के भाव से जानना संवेदना है। हम पदार्थ को या तो प्रियता की दृष्टि से देखते हैं या अप्रियता की दृष्टि से। पदार्थ को केवल पदार्थ की दृष्टि से नहीं देख पाते। पदार्थ को केवल पदार्थ की दृष्टि से देखना ही समता है। वह केवल जानने और देखने से सिद्ध होता है। यह भी कहा जा सकता है कि केवल जानना और देखना ही समता है। जिसे समता प्राप्त होती है, वही ज्ञानी होता है। जो ज्ञानी होता है, उसी को समता प्राप्त होती है। ज्ञानी और साम्ययोगी दोनों एकार्थक होते हैं।

हम इन्द्रियों के द्वारा देखते हैं, सुनते हैं, सूंघते हैं, चखते हैं, स्पर्श का अनुभव करते हैं तथा मन के द्वारा संकल्प–विकल्प या विचार करते हैं। प्रिय लगने वाले इंद्रिय–विषय और मनोभाव 'राग' उत्पन्न करते हैं और अप्रिय लगने वाले इंद्रिय–विषय और मनोभाव द्वेष उत्पन्न करते हैं। जो प्रिय और अप्रिय लगने वाले विषयों और मनोभावों के प्रति सम होता है, उसके अनतःकरण में वे प्रियता और अप्रियता का भाव उत्पन्न नहीं करते। प्रिय और अप्रिय तथा राग और द्वेष से परे वही हो सकता है जो केवल ज्ञाता और द्रष्टा होता है। जो केवल ज्ञाता और द्रष्टा होता है, वही वीत–राग होता है।

जैसे–जैसे हमारा जानने और देखने का अभ्यास बढ़ता जाता है, वैसे–वैसे इन्द्रिय–विषय और मनोभाव प्रियता और अप्रियता उत्पन्न करना बन्द कर देते हैं। फलतः राग और द्वेष शांत और क्षीण होने लगते हैं। हमारी जानने और देखने की शक्ति अधिक प्रस्फुटित हो जाती है। मन में कोई विकल्प उठे, उसे हम देखें, विचार का प्रवाह चल रहा हो, उसे हम देखें। इसे देखने का अर्थ होता है कि हम अपने अस्तित्व को विकल्प से भिन्न देख लेते हैं। 'विकल्प दृश्य है' और 'मैं द्रष्टा हूं'– इस भेद का स्पष्ट अनुभव हो जाता है। जब विचार के प्रवाह को देखते जाते हैं। तब धीमे–धीमे उसका प्रवाह रुक जाता है। विचार के प्रवाह को देखते–देखते हमारी दर्शन की शक्ति इतनी पटु हो जाती है कि हम दूसरों के विचार–प्रवाह को भी देखने लग जाते हैं। अपने भीतर के इस विचार–प्रवाह को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

देखना–विचार प्रेक्षा है।

9.9 प्रेक्षाध्यान की निष्पत्तियां

समझदार व्यक्ति परिणाम या निष्पत्ति का चिन्तन किये बिना कोई भी कार्य प्रारंभ नहीं करता। साधक भी पहले सोचता है कि प्रेक्षाध्यान की निष्पत्ति क्या होगी। निष्पत्ति की बात बहुत आवश्यक है। प्रेक्षाध्यान की साधना की अनेक निष्पत्तियां होती हैं। प्रस्तुत प्रकरण में हम शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक आदि दृष्टि से होने वाली निष्पत्तियों की चर्चा करेंगे जिसमें तनावमुक्ति, चित्त की निर्मलता व एकाग्रता, ज्ञाता–दृष्टाभाव का विकास, धार्मिकता के लक्षणों का प्रकटीकरण, प्रज्ञा और चैतन्य का जागरण, कर्मतन्त्र और भावतन्त्र का शोधन, पदार्थ–प्रतिबद्धता से मुक्ति, चैतन्य का (आत्मा) साक्षात्कार आदि उल्लेखनीय हैं।

9.9.1 अन्तःकरण का परिवर्तन

प्रेक्षाध्यान की साधना परिवर्तन की साधना है। यह केवल कपड़े बदलने या शरीर बदलने की साधना मात्र नहीं है। यह अन्तःकरण को बदलने की साधना है।

शरीर में भी परिवर्तन आना चाहिए, रसायन बदलने चाहिये। रसायन संतुलन के दो मुख्य स्रोत हैं– एक पिच्यूटरी दूसरा एड्रीनल। यह ग्रंथियां शारीरिक रासायनिक संतुलन के लिए उत्तरदायी हैं। साधना के द्वारा इन ग्रंथियों के स्रावों (हार्मोनों) में यदि परिवर्तन नहीं हुआ, रसायन नहीं बदले तो मानना चाहिये साधना टीक नहीं सध रही है।

9.9.2 मानसिक संतुलन

सामान्यतः तो थोड़ा–सा उत्तेजना का वातावरण होता है, दिमाग गरम हो जाता है। थोड़ी–सी प्रशंसा का, लाभ का, सम्मान का वातावरण होता है, मन प्रफुल्लित हो जाता है। मन संतुलित नहीं होता तो एक राई जितनी घटना पहाड़ जितनी बन जाती है। साधना जैसे–जैसे आगे बढ़ती है, मन का संतुलन बढ़ता जाता है। जिसका मन संतुलित रहता है वह बहुत बड़ी बात को एक मिनट में समाप्त कर देता है। चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा की निष्पत्ति है– मन का सुंतलन।

9.9.3 आध्यात्मिकता

आध्यात्मिक निष्पत्ति का प्रथम सूत्र है आदतों का बदलना। साधना करें, आराधना करें, ध्यान करें और आदतें न बदलें, उतना ही गुस्सा, उतना ही अहंकार, उतना ही कपट, उतना ही लालच, उतनी ही घृणा, ईर्ष्या, द्वेष बराबर चलता रहे, यह नहीं हो सकता।

आदतों को बदलने का उपाय है– चित्त की यात्रा का परिवर्तन और ग्रंथि तन्त्र का परिष्कार। जब चित्त की यात्रा नाभि, पेडू और नीचे की ओर न होकर हृदय, कण्ठ, नासाग्र, भृकुटि और सिर की ओर होती है तब हमारी ग्रंथियां शुद्ध होने लगती हैं; आदतों में अपने–आप परिवर्तन होने लग जाता है। उनमें स्वभावतः रूपान्तरण शुरू हो जाता है। तब आदतों को पोषण देने वाले स्रावों में रासायनिक रूपान्तरण शुरू हो जाता है और आदतों को पोषण देने वाला कोई नहीं रहता।

प्रेक्षाध्यान से आदतें बदलती हैं, इसका अर्थ यह नहीं कि जिस दिन ध्यान शुरू किया उसी दिन व्यक्ति बिलकुल बदल जायेगा किन्तु परिवर्तन का क्रम शुरू हो जायेगा।

9.10 सारांश

1. प्रेक्षाध्यान का अर्थ है– तटस्थ होकर जानना और देखना, स्थूल से सूक्ष्म की ओर क्रमशः जानना और देखना, आत्मा से आत्मा को देखना।

2. प्रेक्षाध्यान का प्रमुख ध्येय है, व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व का विकास। इसके लिये सर्वप्रथम चित्त की निर्मलता अनिवार्य है।

3. प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करने से पूर्व व्यक्ति को संकल्प लेना पड़ता है। यही प्रेक्षाध्यान की उपसंपदा है। इसकी अपनी एक विशिष्ट चर्या है। इसके पांच बिन्दु क्रमशः भाव क्रिया, प्रतिक्रिया विरति, मैत्री भाव, मिताहार और मितभाषण हैं।

4. प्रेक्षाध्यान का आधार अप्रमाद है। इससे एकाग्रता फलित होती है। एकाग्रता अर्थात् मन को एक दिशा में लगाना। एकाग्रता में विचारों को रोका नहीं जाता अपितु अप्रयत्न का प्रयत्न होता है। चैतन्य का जागरण या सतत जागरूकता ही प्रमाण है। अप्रमत ही एकाग्र हो सकता है।

5. प्रेक्षाध्यान के आठ मुख्य, चार सहायक व तीन विशिष्ट अंग हैं। शरीर की शिथिलता तथा जागरूकता की स्थिति का नाम कायोत्सर्ग है। प्रेक्षाध्यान में शक्ति को ऊर्ध्वगामी बनाने की प्रक्रिया को अन्तर्यात्रा कहा गया है। श्वास की गति का निरीक्षण करना श्वास प्रेक्षा है। शरीर प्रेक्षा में शरीर के प्रत्येक घटक पर क्रमशः चित्त को एकाग्र कर वहां होने वाले प्राणधारा के प्रकम्पनों को तटस्थ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भाव से देखने का अभ्यास किया जाता है। मानव शरीर के कुछ ऐसे संवेदनशील प्रदेश या केन्द्र है जो नाड़ी और ग्रंथि के सम्मिलित सहयोग से बने हैं। चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा के द्वारा उन्हें जाग्रत किया जा सकता है। चेतना की सूक्ष्म भावधारा को लेश्या कहते हैं। यह प्राणी के आभामण्डल का नियामक तत्त्व है। प्रेक्षाध्यान में मन की मूर्च्छा तोड़ने वाले विषयों का अनुचिन्तन करना ही अनुप्रेक्षा है। प्रियता और अप्रियता से मुक्त होकर विचार प्रवाह को देखना विचार प्रेक्षा है।

6. प्रेक्षाध्यान की साधना से अनेक निष्पत्तियां प्राप्त होती हैं। इसमें विशेषरूप से अन्तःकरण का परिवर्तन, मानसिक सन्तुलन, आत्म साक्षात्कार, स्वभाव परिवर्तन, आदि मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त तनाव–मुक्ति, चित्त की निर्मलता, एकाग्रता, प्रज्ञा का जागरण आदि उल्लेखनीय उपलब्धियां भी प्राप्त होती हैं।

9.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. प्रेक्षाध्यान का प्रयोग क्यों करते हैं?
2. उपसंपदा के एक संकल्प सूत्र को लिखें।
3. उपसंपदा की चर्या के कितने सूत्र हैं।
4. भावक्रिया के दो अर्थ बतावें।
5. प्रेक्षाध्यान के एक विशिष्ट अंग को लिखें।
6. आनन्द केन्द्र पर ध्यान से .... ग्रंथि प्रभावित होती है।
7. चेतना की भावधारा को .... कहते हैं।
8. शक्ति को उर्ध्वगामी बनाने की प्रक्रिया को .... कहते हैं।
9. श्वास–प्रेक्षा से श्वास ....और .... होता है।
10. प्रेक्षा का शब्दार्थ क्या है?

लघुत्तरीय प्रश्न

1. प्रेक्षाध्यान के सहायक अंगों को स्पष्ट करें।
2. प्रेक्षाध्यान के मुख्य अंग कौन–से हैं। प्रेक्षाध्यान की निष्पत्ति पर प्रकाश डालें।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रेक्षाध्यान क्या है? उपसंपदा की चर्या के सूत्रों को समझावें।

9.12 संदर्भ–पुस्तकें

1. प्रेक्षा–अनुप्रेक्षा – आचार्य तुलसी।
2. प्रेक्षाध्यान : सिद्धांत और प्रयोग, आचार्य महाप्रज्ञ।
3. जीवन विज्ञान की रूपरेखा, मुनि धर्मेश।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई—10 कायोत्सर्ग : प्रयोजन, आध्यात्मिक—वैज्ञानिक दृष्टिकोण, निष्पत्तियां एवं प्रक्रिया

इकाई की संरचना

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 कायोत्सर्ग का प्रयोजन

- 10.2.1 मनःकायिक प्रयोजन
- 10.2.2 आध्यात्मिक प्रयोजन
- 10.2.3 स्वभाव परिवर्तन
- 10.2.4 चित्त शुद्धि

10.3 कायोत्सर्ग का आध्यात्मिक दृष्टिकोण

- 10.3.1 तनाव के तीन प्रकार
- 10.3.2 कायोत्सर्ग – कायिक ध्यान
- 10.3.3 क्या प्रकम्पनों को रोका जा सकता है?
- 10.3.4 कायोत्सर्ग – मृत्यु की प्रक्रिया
- 10.3.5 कायोत्सर्ग – भेद विज्ञान की साधना
- 10.3.6 कायोत्सर्ग – आत्मदर्शन की प्रक्रिया
- 10.3.7 दुःख के मूल कारण की खोज
- 10.3.8 चंचलता का चक्रव्यूह कैसे तोड़ें
- 10.3.9 सहिष्णुता
- 10.3.10 अभय

10.4 कायोत्सर्ग का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

- 10.4.1 दबाव की कार्य पद्धति
- 10.4.2 शारीरिक स्थितियां
- 10.4.3 अनुकंपी और परानुकम्पी संस्थान
- 10.4.4 तनाव से गड़बड़ी
- 10.4.5 तनाव के कारण
- 10.4.6 क्या बचने का उपाय है?
- 10.4.7 तनाव मुक्ति क्या है?
- 10.4.8 कायोत्सर्ग से तनाव मुक्ति
- 10.4.9 स्वयं—सूचन की विलक्षण चिकित्सा पद्धति
- 10.4.10 कायोत्सर्ग के सहायक तत्त्व
- 10.4.11 स्वर यन्त्र का कायोत्सर्ग व मौन

10.5 कायोत्सर्ग की निष्पत्तियां

- 10.5.1 चार अवस्थाएं
- 10.5.2 तनाव मुक्ति
- 10.5.3 चंचलता की निवृत्ति
- 10.5.4 शरीर पर प्रभाव
- 10.5.5 सूक्ष्म शरीर की घटनाओं का ज्ञान
- 10.5.6 ज्ञाता दृष्टा भाव का जागरण
- 10.5.7 विवेक चेतना का जागरण
- 10.5.8 व्युत्सर्ग चेतना
- 10.5.9 प्रज्ञा का जागरण एवं समता का विकास

10.6 कायोत्सर्ग की प्रक्रिया

10.7 सारांश

10.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.9 संदर्भ ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.0 प्रस्तावना

यह आप जानते हैं कि भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति बहुत प्राचीन है। इसकी परंपरा हजारों वर्ष पुरानी है। भारतीय साहित्य में ऐसी अनेक विधाएं हैं जो समस्त मानव जाति को अपनी शक्तियों से परिचित कराती रही हैं। शांति व सौहार्द पूर्ण सह अस्तित्व की प्रेरणा देती रही हैं। उनमें से एक विधा है– अध्यात्म योग की।

आधुनिक विज्ञान का इतिहास लगभग पांच सौ वर्षों से अधिक नहीं है। इस छोटे से काल में विज्ञान ने मानव जाति को अभूतपूर्व उपलब्धियां प्रदान की हैं। मानव को अनेक सुख–सुविधाओं के साधनों से संपन्न बनाने का प्रयास किया है। चिकित्सा के क्षेत्र में भी अनेक आश्चर्यजनक कीर्तिमान हासिल किये हैं। इतना होने के बावजूद भी अनेक बीमारियां काबू के बाहर हैं। अनिंद्रा, तनाव, माइग्रेन आदि रोजमर्रा के अंग बन गये हैं। इनका उपचार प्रशामक औषधियों (ट्रेंक्वीलाइजर्स) में खोजा जा रहा है। इससे एक बार बीमारी उपशांत होती हुई लगती है किंतु कालांतर में अनेक दुष्परिणाम भी सामने आते हैं।

इन सब हालातों को देखते हुए वैज्ञानिक, डॉक्टर, अनुसंधानकर्त्ता आदि मनीषी पुनः अध्यात्म्–योग की तरफ आकृष्ट हुए हैं। इन विधाओं में अनेक बीमारियों का उपचार ही नहीं किंतु सफल एवं स्वस्थ जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र उपलब्ध हैं। विस्तृत जांच के बाद कायोत्सर्ग की प्रक्रिया को अनेक वैज्ञानिकों एवं डॉक्टरों ने शिथिलीकरण, तनाव दूर करने की निर्दोष प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है। आइये इस प्रकरण में कायोत्सर्ग के विभिन्न पक्षों पर विस्तार से विचार करें।

10.1 उद्देश्य

भारतीय साहित्य में ऐसी अनेक विद्याएं हैं जो मानव जाति को अपनी शक्तियों से परिचित करवाती रही हैं। ध्यान साधना के मार्ग में एकाग्रता और स्थिरता पहली शर्त है। जैन साधना पद्धति में प्रेक्षाध्यान के अंगों में प्रमुख और महत्त्पूर्ण है कायोत्सर्ग। इसकी साधना द्वारा मनुष्य लक्ष्य तक पहुंच सकता है। कायोत्सर्ग वैज्ञानिक शोधों से परिपूर्ण शरीर को शिथिल करने की निर्दोष प्रणाली है। इस पाठ के माध्यम से आप जान पायेंगे कि–

- कायोत्सर्ग का प्रयोजन क्या है?
- कायोत्सर्ग का आध्यात्मिक दृष्टिकोण क्या है?
- कायोत्सर्ग का वैज्ञानिक दृष्टिकोण क्या है?
- कायोत्सर्ग की निष्पत्तियां क्या हैं?
- कायोत्सर्ग को करने की प्रक्रिया क्या है?

10.2 प्रयोजन

कायोत्सर्ग करने का मुख्य उद्देश्य है– आध्यात्मिक उपलब्धि एवं मनोकायिक बीमारियों से मुक्ति पाना। मनोकायिक बीमारियाँ भावनात्मक असंतुलन एवं दुर्व्यसनों से व्यक्ति को मुक्त कराना कायोत्सर्ग का मनःकायिक प्रयोजन है। यदि सरल भाषा में कहें तो मनोकायिक बीमारियां वे हैं जो शरीर में दिखाई देती हैं किंतु जिनका कारण शरीर में नहीं होकर मन में होता है। ऐसी बीमारियों से व्यक्ति को मुक्त करना कायोत्सर्ग का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन है।

10.2.1 मनः कायिक (Psychosomatic) प्रयोजन

उच्च रक्तचाप की बीमारी होने पर भी बहुत वर्षों तक उसके लक्षण सामान्यतः सामने नहीं आते हैं क्योंकि इस बीमारी का मायावी स्वभाव अपना खतरनाक प्रभाव छिपाकर अपने आप को निर्दोष प्रतीत कराता है किंतु अंततोगत्वा यह बीमारी हृदय या मस्तिष्क को क्षतिग्रस्त कर देती है अथवा व्यक्ति को एकाएक मृत्यु के मुंह में ढकेल देती है। यह बीमारी प्रत्यक्ष रूप में अथवा धमनियों के कड़ेपन के बढ़ जाने से परोक्ष रूप में हृदय और मस्तिष्क के ऊतकों के विनाश का कारण बन जाती है। जब धमनी का कड़ापन बढ़ जाता है, तब सामान्य रूप से उसका निशाना हमारे तीन प्राणाधार (Vital) अवयवों में से किसी एक को बनाया जाता है– हृदय, मस्तिष्क या गुर्दे।

उच्च रक्तचाप या हाइपरटेंशन हृदय को उंचे दबाव पर रक्त पम्प करने के लिए बाध्य कर देता है। इससे हृदय को अधिक कठोर श्रम करना पड़ता है तथा इस पर क्षतिकारक दबाव पड़ता है। उच्च रक्तचाप की यह बीमारी इसीलिए ज्यादा खतरनाक है कि इससे धमनियों के कड़े बनने की गति तेज हो जाती है। धमनियों के कड़ेपन का मुख्य कारण है– धमनियों के अंदर की दीवारों पर रक्त के थक्के, वसा (या चर्बी) और कैल्सियम आदि की परत जमना जिससे सामान्य रूप से उनकी नरमी और लचीलापन नष्ट हो जाता है तथा वे आंशिक रूप से अथवा पूर्ण रूप से अवरुद्ध हो जाती हैं। इस अवरोध या रूकावट के घोर परिणाम आ सकते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

धमनियों के कड़ेपन की बीमारी (Etheros-clerosis) होने का खतरा रक्तचाप बढ़ने के साथ बढ़ता जाता है अर्थात् जितना-जितना रक्तचाप बढ़ता है, उतना–उतना खतरा बढ़ता है। यदि हृदय-धमनियां (Coronaries) जो बहुत पतली होती हैं अवरुद्ध हो जाएं तो हृदय की कोशिकाओं की मृत्यु हो जाती है तथा दिल का दौरा पड जाता है। यदि मस्तिष्क की धमनियो में अवरोध पैदा हो जाए तो मूर्च्छा, मस्तिष्क की नस का फटना (Brain Haemorrhage) या पक्षाघात के दौरे पड़ना आदि घटित हो सकता है। इस प्रकार सतत् बने रहने वाला उच्च रक्तचाप या हाइपरटेंशन हार्ट–अटैक का एक अप्रत्यक्ष कारण है।

हाइपरटेंशन का एक प्रमुख प्रकार है अव्याख्येय उच्चरक्तचाप (Essential Hypertension) जिसका अनुपात 90 से 95 प्रतिशत है। इनके कारणों का अब तक पता नहीं चला है। सामान्य रूप से मानसिक दबाव (या तनाव) को इसका कारण माना जाता है। क्रोध, भय, चिंता जैसे भावात्मक आवेश, आवेग इसके होने में मुख्यरूप से कारणभूत होते हैं। यद्यपि यह बात सामान्य रूप से मानी जाती है, फिर भी चिकित्सा–शास्त्रियों ने इस ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। दबावपूर्ण स्थितियों और इनसे उत्पन्न होने वाले तनाव बहुधा इस प्रकार के अव्याख्येय उच्चरक्तचाप के प्रत्यक्ष या परोक्ष निमित्त बन सकते हैं।

यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि क्या हम हाइपरटेंशन के अपरिहार्य खतरनाक परिणामों से बच सकते हैं? क्या हमारे शरीर के भीतर ऐसी कोई प्रणाली है जो दबाव की प्रणाली से नितांत विलोम रूप में कार्य कर सके?

इसका उत्तर है– हां, है। सौभाग्य से हमारे शरीर में दबावपूर्ण स्थितियों का प्रतिकार करने के लिए एक आंतरिक प्रणाली है जिसे कायोत्सर्ग द्वारा सक्रिय करने से निश्चित रूप से रक्तचाप को घटाया जा सकता है। हाइपरटेंशन के मरीजों को इस प्रतिरक्षात्मक प्रणाली से कायोत्सर्ग द्वारा प्रवर्तित करना सिखाया जा सकता है जिससे वह अपने रक्तचाप को कम कर सकता है। अतः कायोत्सर्ग का प्रयोग रक्तचाप को कम करने का एक उपचार है। युगों–युगों से यह प्रयोग मानवीय परम्पराओं में प्रचलित रहा है। चूंकि निरंतर बने रहने वाला उच्च रक्तचाप धमनी–काठिन्य जैसी खतरनाक बीमारी पैदा करने में निमित्तभूत होता है, आनुषंगिक दुष्परिणाम न हो इसलिए ऐसे किसी भी उपाय से रक्तचाप को कम करना श्रेयस्कर होगा। हाइपरटेंशन का प्रतिकार करने वाली औषधियाँ हमारे अनुकंपी नाड़ी–संस्थान की प्रवृत्ति को निरुद्ध कर रक्तचाप को कम कर देती है किंतु ऐसी औषधियां खतरनाक आनुषंगिक दुष्परिणाम लाती हैं और उनसे अधिक गंभीर समस्याएं पैदा हो सकती हैं। उपर्युक्त औषधियों की तरह कायोत्सर्ग के प्रयोग से उच्च रक्तचाप को बिना किसी आनुषंगिक दुष्परिणाम के कम किया जा सकता है। यह एक निरापद मार्ग है। कायोत्सर्ग के नियमित अभ्यास का मूल्य इसलिए बढ़ जाता है कि औषधियों के साथ उत्पन्न होने वाले आनुषंगिक दुष्परिणामों का कायोत्सर्ग के प्रयोग में सर्वथा अभाव होता है।

कायोत्सर्ग करने का एक अन्य मुख्य कारण है उसकी भावनात्मक रोगों को रोकने की शक्ति। अनुकंपी नाड़ी संस्थान की अत्यधिक सक्रियता के दुष्परिणामों से बचने का यह एक सहज और निरापद मार्ग है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह प्रयोग उन भावनात्मक बीमारियों को भी शांत करने का बहुत उपयोगी उपाय है जिनकी उत्पत्ति अनुकंपी– नाड़ी–संस्थान की बढ़ी हुई सक्रियता पर आधारित है।

कायोत्सर्ग का एक उपचारात्मक प्रयोग के रूप में दूसरा महत्वपूर्ण उपयोग है–धूम्रपान, मद्यपान जैसे मादक पदार्थों के व्यसन से पीड़ित व्यक्ति को व्यसन–मुक्त करना। भांग, चरस, गांजा, अफीम एवं उससे निकाले गए हेरोइन, कोकीन तथा एल. एस. डी. आदि खतरनाक नशीले या घातक पदार्थ हैं जो सेवन करने वाले व्यक्ति के स्वास्थ्य को बुरी तरह से बिगाड़ देते हैं तथा बहुधा उसे अकाल मृत्यु के मुंह में धकेल देते हैं। प्रेक्षाध्यान पद्धति के विभिन्न ध्यान–प्रयोगों के साथ कायोत्सर्ग के नियमित अभ्यास द्वारा कोई भी व्यक्ति सर्वथा व्यसन–मुक्त हो सकता है। इतना ही नहीं, वस्तुतः कायोत्सर्ग का प्रभाव व्यक्ति की उन मौलिक प्रवृत्तियों पर पड़ता है जो उसे नशे का सेवन करने के लिए बाध्य कर देती हैं। इस प्रकार कायोत्सर्ग नशीले पदार्थों का एक अरासायनिक विकल्प है जो सर्वथा निर्दोष या निरापद ही नहीं अपितु स्वास्थ्य वर्धक है। नशीले पदार्थों के सेवन से जो मस्ती आती है उसकी अपेक्षा ध्यान द्वारा होने वाली आनंदानुभूति अधिक गहरी और निर्दोष होती है।

10.2.2 आध्यात्मिक प्रयोजन

यदि हमें अपनी स्थूल चेतना की बात को भीतर में सूक्ष्म तक पहुंचाना है तो कायोत्सर्ग करना आवश्यक है। यदि शरीर की प्रवृत्तियों का और स्नायविक प्रवृत्तियों का शिथिलीकरण नहीं है तो बात भीतर तक नहीं पहुंच सकती। कायोत्सर्ग दोनों ओर से किया जा सकता है– बाहर से भीतर की ओर अथवा भीतर से बाहर की ओर। बाहर से चलेंगे तब सबसे पहले हाथों, पैरों, वाणी और इन्द्रियों का संयम करना होगा। जब हम भीतर से चलेंगे तब उस मुद्रा में बैठना होगा जिससे मन की दिशा और प्राण की धारा बदल जाए– मन और प्राण की सारी ऊर्जा, भीतर की ओर बहने लग जाए। यदि मन भीतर की ओर रम गया, यदि अस्तित्व और चैतन्य की कोई झलक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मिल गई तो शरीर के समस्त अवयव अपने आप शांत हो जाऐंगे। प्रयत्न करने की कोई आवश्यकता या अपेक्षा न होगी। जब हाथ, पैर और वाणी का संयम एवं शिथिलीकरण घटित होता है, तब इंद्रियों के तनाव कम हो जाते हैं। उनमें उठने वाली आकांक्षाओं की तरंग कम हो जाती है। तब अध्यात्म की यात्रा शुरू होती है। अध्यात्म की यात्रा शुरू करने के लिए सबसे पहली शर्त है— कायोत्सर्ग।

शक्ति की सुरक्षा एवं साधना में कायोत्सर्ग का महत्त्वपूर्ण स्थ न है। कायोत्सर्ग करने का उद्देश्य क्या है? इसका एक उद्देश्य है कि शक्ति का जो व्यर्थ ही व्यय हो रहा है, उसे रोका जाए। शरीर के द्वारा जो शक्ति खर्च हो रही है, उसे बचाया जा सके। दूसरे शब्दों में कायोत्सर्ग की सारी प्रक्रिया इसीलिए है कि शक्ति को बचाया जा सके और शक्ति का सही अर्थ में उपयोग किया जा सके। हम कायोत्सर्ग करें, शिथिलता का अनुभव करें जिससे कि हमारे शरीर की कोशिकाएं, हमारे शरीर का कण—कण विश्राम ले सके और इतनी शक्ति खर्च न हो, संचित रहे। श्वास को शांत करें, श्वास लंबा लें, श्वास को मंद करें, जब श्वास मंद होता है, तब शरीर शिथिल होता है, कायगुप्ति और कायोत्सर्ग सधता है। ऑक्सीजन की खपत कम हो जाती है, प्राण शक्ति का व्यय कम हो जाता है।

10.2.3 स्वभाव परिवर्तन

अध्यात्म ने मनुष्य को बदलने की एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया दी। उस प्रक्रिया के अनेक चरण हैं। उसका पहला चरण है— कायोत्सर्ग। इससे मन का शोधन होता है तथा पुरानी आदतों में परिवर्तन आता है। कायोत्सर्ग बुरे स्वभावों को बदलने वाला है। जो कायोत्सर्ग की प्रक्रिया को नहीं जानता, वह स्वभाव—परिवर्तन नहीं कर सकता। 'सेल्फ—हिप्नोटिज्म' के विशेषज्ञों ने उसके लिए सबसे पहला जो सूत्र दिया है वह है— 'ओटो—रिलेक्सेशन' (स्व—शिथिलीकरण)। यह कायोत्सर्ग की प्रक्रिया है। चाहे स्वभाव को बदलना हो, चाहे किसी बीमारी की चिकित्सा करनी हो तो सबसे पहले कायोत्सर्ग करना होगा।

10.2.4 चित्त शुद्धि

मानसिक शांति का सबसे बड़ा उपाय है— चित्त—समाधि। चित्त—समाधि के लिए आवश्यक है— चित्त की शुद्धि। चित्त की शुद्धि का सबसे बड़ा सूत्र है— शरीर की स्थिरता। शरीर जितना स्थिर होता है, उतना ही चित्त शुद्ध होता है। चित्त की अशुद्धि का सबसे बड़ा कारण है— चित्त की चंचलता। शरीर की स्थिरता हुए बिना चित्त की स्थिरता नहीं होती, शरीर की स्थिरता हुए बिना श्वास शांत नहीं होता, मौन नहीं होता। मौन नहीं होता, मन शांत नहीं होता, स्मृतियां शांत नहीं होती, कल्पनाएं समाप्त नहीं होती, विचार का चक्र रूकता नहीं, इसलिए सबसे पहले आवश्यक है— कायोत्सर्ग। कायोत्सर्ग होता है तो अनायास सारी बातें हो जाती हैं, साधना के लिए अगले चरण अपने आप आगे बढ़ जाते हैं।

हमारा यह शरीर जिस दिन हिमालय की भांति निष्प्रकम्प, अडोल और अचंचल बन जाएगा तो फिर साधना के लिए और कुछ जानने की और कुछ समझने की और कुछ करने की जरूरत नहीं होगी। साधना की सारी घटनाएं अपने आप घटित होने लग जाएंगी और साधना स्वयं साकार होकर हमारे सामने मूर्तिमती बन जाएगी।

जब कोई समस्या सामने आती है, आप सोचते हैं कि समस्या का समाधान कैसे मिले? एकांत में जाकर बैठते हैं, शांत होकर बैठते हैं, शरीर शिथिल एवं चित्त एकाग्र होता है। समस्या का समाधान मिल जाता है। जीवन की यात्रा चलाने वाला, व्यवहार की भूमिका पर जीने वाला हर व्यक्ति समय—समय पर कायोत्सर्ग करता है। अध्यात्म की यात्रा करने वाले व्यक्ति के लिए तो इसके सिवाय और कोई विकल्प ही नहीं है। जो कायोत्सर्ग की सम्यक् आराधना नहीं करता, कायोत्सर्ग को ठीक से नहीं साधता, वह अध्यात्म के क्षेत्र में कोई प्रगति नहीं कर सकता।

10.3 कायोत्सर्ग का आध्यात्मिक दृष्टिकोण

इस प्रकरण में हम कायोत्सर्ग की चर्चा आध्यात्मिक दृष्टि से करेंगे। वैज्ञानिक जगत् में कायोत्सर्ग की प्रक्रिया तनाव मुक्ति / शिथिलीकरण की अचूक प्रक्रिया के रूप में सम्मानित हो चुकी है किंतु कायोत्सर्ग मात्र शिथिलीकरण ही नहीं है अध्यात्मवेत्ताओं ने कायोत्सर्ग को साधना का प्रारंभिक व अंतिम सोपान माना है। कायोत्सर्ग स्थिरता से प्रारंभ होता है तथा देह—मुक्त विदेह अवस्था में पूर्ण हो जाता है। कायोत्सर्ग मात्र शिथिलीकरण की प्रक्रिया नहीं है किंतु यह देह से भिन्न अपने आपको अनुभव करने की प्रक्रिया है। आत्म—साक्षात्कार करने की प्रक्रिया है। दु:ख के मूल कारण कार्मण शरीर तक पहुंचने की प्रक्रिया है। दु:ख का मूल है— कार्मण शरीर। यह चंचलता द्वारा अपनी सुरक्षा करता है। चंचलता होने से आत्मा के बारे में पता नहीं चलता। अपने दु:ख का पता नहीं चलता। चंचलता को रोकने का अर्थ है— कार्मण शरीर, दु:ख के मूल कारण पर प्रहार। इसका सशक्त उपाय है— कायोत्सर्ग। कायोत्सर्ग के तीन तत्त्व हैं— स्थिरता / शिथिलीकरण, सहिष्णुता एवं अभय।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रत्येक विवेकशील, समझदार व्यक्ति कार्य करने के पहले सोचता है कि वह क्यों कर रहा है? व्यक्ति जिस प्रमुख और वांछित परिणामों को पाने के लिए कार्य करता है। वह उद्देश्य या प्रयोजन कहलाता है। कार्य करने के पश्चात् अनेक आनुसंगिक परिणाम भी प्राप्त होते हैं। उन्हें निष्पति या सामान्यतया परिणाम ही कहा जाता है। कायोत्सर्ग के अपने विशिष्ट प्रयोजन हैं। इस प्रक्रिया से गुजरने पर अनेक लाभदायक व महत्त्वपूर्ण निष्पत्तियां प्राप्त होती हैं।

10.3.1 तनाव के तीन प्रकार

आज का आदमी तनाव का शिकार है। उसे शांति का अनुभव नहीं होता है। वह निरंतर बेचैन रहता है। तनाव को दूर करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि यह क्यों पैदा होता है? इसके कितने प्रकार हैं? अध्यात्म की दृष्टि से तनाव को तीन भागों मे बांटा गया है– शारीरिक तनाव, मानसिक तनाव और भावात्मक तनाव, प्रत्येक व्यक्ति इन तीनों प्रकार के तनावों से घिरा हुआ है। तनाव से मुक्ति पाने के लिए कायोत्सर्ग का अभ्यास बहुत उपयोगी है।

10.3.1.1 शारीरिक तनाव – जब व्यक्ति अत्यधिक शारीरिक श्रम करता है तो थक जाता है, तब उसके शरीर में तनाव निर्मित हो जाता है। मांसपेशियों में तात्कालिक खिंचाव व कड़ापन आ जाता है जो बाद में विश्राम करने पर दूर हो जाता है पर दो घंटे सोने से जितना विश्राम मांसपेशियों को नहीं मिलता उतना विश्राम आधे घंटे तक विधिवत् कायोत्सर्ग करने से मिल जाता है।

10.3.1.2 मानसिक तनाव – हम शरीर के श्रम को भी जानते हैं और थकान को मिटाने के उपाय विश्राम को भी जानते हैं। हम मन का श्रम तो करते हैं किंतु उसको विश्राम देना नहीं जानते हैं। हम चिंतन करना जानते हैं किंतु अचिंतन की बात नहीं जानते, चिंतन से मुक्त होना नहीं जानते हैं। कठिन इसलिए है कि हम अचिंतन की बात नहीं जानते।

मानसिक तनाव का मुख्य कारण है– अधिक सोचना। सोचने की भी एक बीमारी है। कुछ लोग इस बीमारी से इतने ग्रस्त हैं कि प्रयोजन हो या न हो, वे निरंतर कुछ न कुछ सोचते ही रहते हैं। इसी में अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं। मन को विश्राम देना तभी संभव है जब हम वर्तमान में रहना सीख जाएं। मनुष्य अतीत या भविष्य में अधिक रहता है, वर्तमान में बहुत ही कम रहता है। वह स्मृतियों की उधेड़बुन में या कल्पनाओं के ताने–बाने बुनने में व्यस्त रहता है। वह अनावश्यक स्मृतियों और कल्पनाओं के जाल में फंसा रहता है। अतः वर्तमान में रहने के लिए उसे बहुत कम समय मिलता है या समय मिलता ही नहीं। वर्तमान में जीने का अर्थ है– मन को विश्राम देना, भार से मुक्त होना, मानसिक तनाव से छुटकारा पाना।

10.3.1.3 भावनात्मक तनाव – तनाव का तीसरा रूप है भावनात्मक तनाव। यह एक बहुत बड़ी समस्या है। आर्त और रौद्र ध्यान इसके मूल कारण हैं। आर्त– ध्यान का अर्थ है प्रिय की प्राप्ति एवं अप्रिय से मुक्ति के लिए निरंतर चिंतन करना।

प्रियाप्रिय संयोग वियोगे चिंतनमार्त्तम्। जो प्रिय वस्तु प्राप्त नहीं है, उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करना, उसी में लगे रहना आर्तध्यान है। प्रिय वस्तु की प्राप्ति तथा मनोज्ञ और मनोनुकूल पदार्थ की उपलब्धि के लिए प्रयत्नशील रहना, डूबे रहना आर्त– ध्यान है। इसी प्रकार अप्रिय, अमनोज्ञ, मन के विपरीत वस्तु से छुटकारा पाने का प्रयत्न करना भी आर्तध्यान है। यह भावनात्मक तनाव पैदा करता है।

रौद्र ध्यान भी भावनात्मक तनाव का कारण बनता है। रौद्र ध्यान का अर्थ है– हिंसा अनृतस्तेय विषय संरक्षणार्थ रौद्रम्। हिंसा, झूठ, चोरी आदि विषयों की सुरक्षा के लिए किया गया एकाग्र चिंतन रौद्र ध्यान है। मन में संकल्प विकल्प चलता रहता है। रौद्र ध्यान में कभी हिंसा का भाव पैदा होता है तो कभी प्रतिशोध का भाव आता है। मूल घटना कुछ क्षणों में होती है किंतु प्रतिशोध की भावना वर्षों तक चलती रहती है। मन में निरंतर बदला लेने की भावना बनी रहती है, उसी में सारी शक्ति का व्यय होता है, यही तनाव का कारण है।

आज के युग में शारीरिक तनाव एक समस्या है। मानसिक तनाव उससे उग्र समस्या है और भावनात्मक तनाव सबसे विकट समस्या है, भयंकर समस्या है। मानसिक तनाव से भी भावनात्मक तनाव के परिणाम भयंकर होते हैं। इस समस्या से निपटने के लिए प्रेक्षाध्यान का सहारा लिया जाता है। कायोत्सर्ग का द्वार खोला जाता है। प्रेक्षाध्यान के अभ्यास से आर्त्त–रौद्र ध्यान टूट जाता है। उससे उत्पन्न होने वाला तनाव घट जाता है। प्रेक्षाध्यान के प्रयोग अपने आप में जीने के साधन हैं, अपने भाव (स्वभाव) में रहने के उपाय हैं।

10.3.2 कायोत्सर्ग – कायिक ध्यान

अध्यात्म शास्त्रों में शरीर की स्थिरता को बहुत महत्त्व दिया गया है। इस प्रक्रिया का उल्लेख अनेक नामों से है। कायोत्सर्ग, कायिक ध्यान, कायगुप्ति, कायसंवर, काय प्रतिसंलीनता। कायोत्सर्ग का शब्दिक अर्थ है– काया का उत्सर्ग / काया को छोड़ना / विसर्जन अथार्त् शरीर की प्रवृत्ति / चंचलता / क्रिया / अस्थिरता को छोड़ना। हम मनुष्य हैं, हमारे पास चार गतिशील तत्त्व हैं– शरीर, श्वास, वाणी और मन। प्रतिक्षण ये प्रकम्पित हैं, चंचल है। ये नई ऊर्मियों को लेते हैं और पुरानी ऊर्मियों को छोड़ते हैं। हमारा आकाश–मण्डल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इन ऊर्मियों से ऊर्मिल है, इनके प्रकम्पनों से प्रकम्पित है। ये प्रकम्पन हमारे जीवन का संचालन करते हैं। हमारे द्वारा छोड़े हुए प्रकम्पन दूसरों को प्रभावित करते हैं। दूसरों द्वारा छोड़े हुए प्रकम्पन हमें प्रभावित करते हैं। अप्रभावित कोई नहीं है, पूर्णतः स्वतंत्र कोई नहीं है। अप्रभावित स्थिति और स्वतंत्रता अप्रकम्पन की दशा में ही प्राप्त हो सकती है। ध्यान उसका मुख्य साधन है। प्रकम्पन से अप्रकम्पन की ओर जाना ही ध्यान है। शरीर का अप्रकम्पन अर्थात् स्थिरता या कायिक ध्यान अर्थात् साधना के दौरान आसक्ति, ममत्व को छोड़ते हुए अंत में, साधना की चरम अवस्था में काया को, शरीर को ही छोड़ देना। अतः साधना का प्रारंभिक बिंदु है कायोत्सर्ग और अंतिम बिंदु भी कायोत्सर्ग ही है। श्वास का अप्रकम्पन श्वास–संयम है। वाणी का अप्रकम्पन वाचिक ध्यान है। मन का अप्रकम्पन मानसिक ध्यान है।

10.3.3 क्या प्रकम्पनों को रोका जा सकता है?

कोई भी शरीरधारी प्राणी प्रकम्पनों को सर्वथा नहीं रोक सकता। अपने आपको पूर्णतया स्थिर नहीं कर सकता। हमारी शारीरिक चेष्टाओं का आधार मांसपेशियां हैं। दो प्रकार की मांसपेशियां होती हैं– ऐच्छिक और अनैच्छिक। ऐच्छिक मांसपेशियों को हम अपनी इच्छानुसार गति दे सकते हैं। अनैच्छिक मांसपेशियों पर हमारी इच्छा का अधिकार नहीं होता। वे अपनी चेष्टा करने में स्वायत्त होती हैं। हम जब शरीर को स्थिर करने का प्रयत्न करते हैं तब हमारा प्रयत्न ऐच्छिक पेशियों की चेष्टाओं को रोकने का ही होता है। हाथ, पैर आदि को गति देना हमारी इच्छा के अधीन है। इसलिए जब हम ध्यान करना चाहते हैं, तब सबसे पहले हाथ, पैर आदि को किसी विशेष मुद्रा में स्थापित कर उनकी गति को स्थगित कर देते हैं। यह कायिक ध्यान मानसिक ध्यान की मुद्रा हो जाती है। हृदय, फुफ्फुसों, आमाशय, यकृत और आंतों की चेष्टा हमारी इच्छा के अधीन नहीं है। इसलिए हम ध्यान की स्थिर मुद्रा में बैठे होते हैं तब भी इनका प्रकम्पन चालू रहता है। मस्तिष्क और स्व–संचालित स्नायु–मंडल की क्रिया भी चालू रहती है इसलिए शरीर को स्थिर और मन को एक ध्येय पर केन्द्रित करने पर भी इंद्रियों के अनुभव, सुख–दुःख, सर्दी–गर्मी आदि की संवेदना होती रहती है। यह ध्यान की पूर्व अवस्था है।

10.3.4 कायोत्सर्ग – मृत्यु की प्रक्रिया

कायोत्सर्ग मृत्यु की प्रक्रिया है। इसमें दो बातें घटित होती हैं– शरीर इतना शिथिल हो जाता है कि उसमें कोई ऐच्छिक (Voluntary) प्रवृत्ति नहीं होती। श्वास इतना मंद की उसके स्पंदन अत्यन्त हल्के हो जाते हैं। लगता है श्वास बंद हो गया है। जब किसी व्यक्ति को जीवित होते हुए भी मृत होने की अनुभूति होती है तब कायोत्सर्ग घटित होता है। जीते जी मृत होने की, निश्चेष्ट होने की अनुभूति करना कायोत्सर्ग है।

10.3.5 कायोत्सर्ग – भेद विज्ञान की साधना

कायोत्सर्ग भेद विज्ञान की साधना है। शरीर और चैतन्य का भेद, आकांक्षा और चैतन्य का भेद, प्रमाद और चैतन्य का भेद, उत्तेजना और चैतन्य का भेद, शरीर, इच्छा, नींद, प्रमाद और आवेग से भिन्न जो है वह चैतन्य है। इस प्रकार निश्चेष्ट अवस्था में भेद का अनुभव करना कायोत्सर्ग है।

कायोत्सर्ग में सबसे पहले ऐच्छिक संचलनों (Voluntary Movement) यथा– हाथों का संयम, पैरों का संयम, वाणी का संयम और इंद्रियों का संयम होता है जब तक ऐच्छिक संचलनों को संपूर्ण रूप से सुसंयमित नहीं किया जाएगा तब तक कायोत्सर्ग प्रारंभ नहीं हो सकता। शरीर की स्थूल (ऐच्छिक संचलनों) चंचलता को समाप्त करने के बाद सूक्ष्म क्रियाओं की चंचलता को मिटाना होगा। शरीर की सारी चंचलता प्राण–ऊर्जा और मन की चंचलता है। यदि प्राण की धारा और मन की धारा चैतन्य की ओर प्रवाहित होने लग जाती है तो शरीर शांत हो जाता है क्योंकि चंचलता पैदा करने वाली प्राणी की ऊर्जा और मन की गति उसे प्राप्त नहीं हो रही है। जब शरीर शांत और स्थिर हो जाता है तब उसका उत्सर्ग हो जाता है और पूरा कायोत्सर्ग सधता है।

10.3.6 कायोत्सर्ग– आत्म-दर्शन की प्रक्रिया

शरीर का शिथिलीकरण या उसकी स्थिरता ही विसर्जन नहीं है। विसर्जन का अर्थ है– शरीर और चैतन्य के पृथकत्व का स्पष्ट अनुभव। यह लगने लगता है कि शरीर भिन्न है और चैतन्य भिन्न है। पिंजड़ा भिन्न है और पंछी पिंजड़े से भिन्न हैं, मुक्त हैं।

जब कायोत्सर्ग की यह स्थिति प्राप्त होती है तब जानने की स्थिति प्राप्त होती है। कायोत्सर्ग आत्मा तक पहुंचने का द्वार है, आत्मा की झलक मिलती है तो कायोत्सर्ग अपने आप सध जाता है। अध्यात्म का अर्थ है– अपने अस्तित्व की उपलब्धि, ज्ञाता-द्रष्टाभाव की उपलब्धि।

10.3.7 दुःख के मूल कारण की खोज

कायोत्सर्ग से हम दुःख के उपादान तक पहुंच जाते हैं। यह स्थूल शरीर दुःख को प्रकट करने का हेतु है किंतु दुःख का उपादान नहीं है। उपादान (मूलकारण) है– कार्मण शरीर। कायोत्सर्ग की स्थिति में हमें दुःख के उपादान का दर्शन होता है। हमारा विरोध है उस कार्मण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शरीर से जो हमें सता रहा है। एक सत्य स्थिर होता है कि कार्मण शरीर को क्षीण करना है, इस स्थूल शरीर का सहयोग लेना है। स्थूल शरीर के सहयोग का मतलब है उसे स्थिर करना। कार्मण शरीर ने अपने अस्तित्व की सुरक्षा की व्यवस्था कर रखी है। हमारा अतिसूक्ष्म शरीर– कार्मण शरीर हमारे समूचे तंत्र को संचालित कर रहा है। उसकी व्यवस्था का सबसे बड़ा सूत्र; सबसे बड़ा रहस्य है– चंचलता।

चंचलता इसलिए कि अज्ञान बना रहे जिससे चेतन को अपने अस्तित्व का पता न चले। यह एक ऐसा जाल है जिसमें सब कुछ छिप जाता है। इतनी चंचलता, इतनी तरंगें, इतनी उर्मियां आ जाती हैं कि कुछ पता ही नहीं चलता। इसमें कोई संदेह नहीं कि चंचलता नहीं होती तो आत्मा अपने स्वरूप में कभी कि अवस्थित हो जाती। केवल एक चंचलता के कारण आत्मा अपने स्वरूप से भटक रही है। आत्मा के बारे में संदेह, स्वतंत्र चैतन्य के बारे में संदेह, त्रैकालिक अस्तित्व के बारे में संदेह, इसीलिए है कि चंचलता विद्यमान है। उन विकल्पों के अंधकार में, उन तर्कों के आवरण में, अस्तित्व का प्रश्न धुंधला हो जाता है और व्यक्ति के मन में संदेह पैदा हो जाते हैं। यदि यह बुद्धि का व्यायाम नहीं होता, यदि यह तर्क नहीं होता और इन सबको संचालित करने वाली यह चंचलता नहीं होती तो अस्तित्व के बारे में कभी संदेह पैदा नहीं होता। तर्क वास्तविकता पर पर्दा डाल देता है। सच्चाई को अनावृत कर देता है। मनुष्य के मन में ऐसा विकल्प उठता है कि सत्य तिरोहित हो जाता है, पर्दे के पीछे चला जाता है। इस चंचलता के कारण यह घटना घटित होती है। अपने अस्तित्व का व्यक्ति को पता नहीं चलता। चंचलता का काम है– आदमी को अपने अस्तित्व का पता न चले और अज्ञान बना रहे।

चंचलता का दूसरा काम है– अपने दुःख का पता न चले। दु ख है पर पता नहीं चलता। व्यक्ति जानता नहीं कि दुःख है। 'दुःख है' यह कहता है, दुःख भोगता है, पाता है, अनुभव करता है, फिर भी इतनी जल्दी भूल जाता है कि मानो दुःख हुआ ही न हो। यह चंचलता नहीं होती तो ऐसा नहीं होता। चंचलता के कारण व्यक्ति को अपने दुःख का, कमजोरी का, शक्तिहीनता का, अज्ञान का पता नहीं चलता।

10.3.8 चंचलता का चक्रव्यूह कैसे तोड़ें?

ये हमने जाना कि चंचलता के दो कार्य हैं– आत्मा के प्रति संदेह बनाए रखना और अपने दुःख का पता न चलने देना। इस प्रकार चंचलता कर्म-शरीर की सुरक्षा–व्यवस्था का ही नहीं अपितु उसकी आक्रामक नीति का भी मुख्य आधार है। सर्वप्रथम चंचलता को समाप्त करना होगा। चंचलता की दिशा में सबसे पहला चरण है– कायोत्सर्ग। जब शरीर की प्रवृत्ति का निरोध होता है, स्थिरता सधती है तब सूक्ष्म शरीर–कार्मण शरीर को एक धक्का सा लगता है। उसके चक्रव्यूह में एक गहरी दरार पड़ जाती है। कायोत्सर्ग में हम तो निश्चल होकर बैठ जाते हैं। स्थूल शरीर का स्थिर होना सूक्ष्म शरीर के लिए विस्फोट होना है। बेचारा इतना कांप उठता है कि उसे अनंत-अनंत परमाणुओं को उसी समय छोड़ देना पड़ता है। अनंत-अनंत परमाणु बिखरने लग जाते हैं। अपने अवयवों को तोड़कर गिरा देना होता है। वे टूटकर गिरने लग जाते हैं। कार्मण शरीर की पराजय प्रारंभ हो जाती है।

अतः साधना का सबसे पहला चरण है– कायोत्सर्ग अर्थात् शरीर को स्थिर करना। इसका अर्थ है– शरीर की चंचलता को समाप्त करना। साधना का प्रारंभ कायोत्सर्ग से होता है। कायोत्सर्ग का एक चरण है– शरीर भी बिलकुल स्थिर, निश्चल और शांतकर बैठ जाना और कुछ भी नहीं करना।

10.3.9 सहिष्णुता

लोगों ने कायोत्सर्ग को बहुत ही सीमित अर्थ में समझा है। कायोत्सर्ग अर्थात् शरीर का शिथिलीकरण, शरीर को पूरा शिथिल कर दो, कायोत्सर्ग हो गया। यह अर्थ पूरा नहीं है। यह केवल पच्चीस प्रतिशत अर्थ है कायोत्सर्ग का पच्चीस प्रतिशत अर्थ है– सहिष्णुता और पचास प्रतिशत अर्थ है– अभय। कायोत्सर्ग त्रिमूर्ति है। यह तीन मूर्तियों से बना है। अतः कायोत्सर्ग के तीन तत्त्व हैं– शिथिलीकरण/स्थिरता, सहिष्णुता और अभय।

कायोत्सर्ग का एक तत्त्व है– सहिष्णुता। साधक कायोत्सर्ग की मुद्रा में खड़ा है। जो कुछ हो रहा है, होने दें। पैर दर्द कर रहे हैं करें। शरीर दुःख रहा है, दुःखे। पानी बरस रहा है, बरसे। आंधी और तुफान आ रहे हैं, आए। सहिष्णुता–सहन करना और सहन करते रहना है। जो होता है, होने दें, कोई चिंता नहीं। इस चिंता से मुक्त हो जाना ही कायोत्सर्ग है। जिसमें सहिष्णुता का भाव विकसित नहीं है, वह कभी कायोत्सर्ग नहीं कर सकता। शरीर दर्द होते ही स्थिरता टूट जाती है, आसन बदल दिया जाता है। मक्खी या मच्छर का स्पर्श होते ही हाथ उठ जाता है। सारा शरीर अस्थिर हो जाता है। चंचल हो जाता है, कायोत्सर्ग नहीं सधता।

10.3.10. अभय

जब सहिष्णुता सधती है, व्यक्ति चिंता से मुक्त हो जाता है, तब अभय घटित होता है। समूचे धर्म का रहस्य है– अभय। धर्म की यात्रा का आदि बिंदु है– अभय और अंतिम बिंदु भी अभय ही है। धर्म का इति अभय है, धर्म अभय से प्रारंभ होता है और अभय को निष्पन्न कर, कृतकृत्य हो जाता है। वीतरागता का आरंभ अभय से होता है और वीतरागता की पूर्णता भी अभय में होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जो व्यक्ति भय–मुक्त नहीं होता, वह कभी धार्मिक नहीं बन सकता, कायोत्सर्ग नहीं कर सकता। कायोत्सर्ग का अर्थ है– अभय। कायोत्सर्ग का अर्थ है– शरीर की चिंता से मुक्त हो जाना। शरीर की चिंता से मुक्त हो जाना, सरल–सी बात लगती है परंतु यह इतनी सरल बात नहीं है। शरीर के प्रति बने हुए भय से छुटकारा पा लेना सरल बात नहीं है। 'ममेदं शरीरम्' अर्थात् यह शरीर मेरा है। जिस क्षण में यह स्वीकृति होती है, उसी क्षण में भय पैदा हो जाता है। यह भय की उत्पति का मूल कारण है। शरीर का ममत्व भय उत्पन्न करता है। ममत्व और भय दो नहीं हैं। जहां ममत्व है वहां भय है और जहां भय है वहां ममत्व है। ममत्व का छोड़ना भयमुक्त / अभय होना है और भय–मुक्त / अभय होने का अर्थ है– ममत्वहीन होना।

10.4 कायोत्सर्ग का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

कायोत्सर्ग के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को निम्न सम्प्रत्ययों के आधार पर आसानी से समझा जा सकता है–

10.4.1 दबाव की कार्य पद्धति

कायोत्सर्ग तनाव–विसर्जन की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को सीखना स्वस्थ रहने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बोध–पाठ है। कायोत्सर्ग का अभ्यास दबाव द्वारा उत्पन्न हानिकारक प्रभावों को निष्फल करने के लिए किया जाता है। कायोत्सर्ग क्या है? इसे समझने के लिए यह समझना आवश्यक है कि दबाव क्या है?

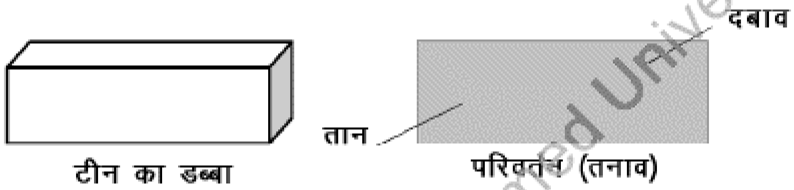

''दबाव'' शब्द भौतिक शास्त्र का शब्द है जो पदार्थ के किसी भाग पर पड़ने वाले चाप या दाब का द्योतक है। जब किसी भी पदार्थ पर पड़ने वाले दाब से पदार्थ के आकार या तान में परिवर्तन हो जाता है तो उसे तनाव कहा जाता है।

इस प्रकार प्रस्तुत संदर्भ में तनाव का अर्थ होगा– व्यक्ति के सामान्य सुख–चैन पूर्ण जीवन में पैदा होने वाली गड़बड़ी, परिवर्तन या बेचैनी। जो भी परिस्थिति हमारी सामान्य जीवन धारा को अस्त–व्यस्त कर दे उसे तनाव पैदा करने वाली परिस्थिति या दबाव कहा जाता है। दबाव या तनाव पैदा करने वाली स्थितियां आंतरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार की होती हैं। ''दबाव'' विषयक अंतर्राष्ट्रीय अधिकृत विद्वान डॉ. हान्स सेल्ये के अनुसार सर्दी–गर्मी, गुस्सा, मादक वस्तुओं का सेवन, उत्तेजना, दर्द, शोक और हर्ष ये सारे ''दबाव–तंत्र'' को समान रूप से सक्रिय बनाते हैं। आधुनिक मनुष्य के मानस में पैदा होने वाली ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा, घृणा या भय के भाव सत्ता और संपत्ति के लिए संघर्ष, लालसाएं और वहम भी ''दबावतंत्र'' को प्रवर्तित कर देते हैं।

10.4.2 शारीरिक स्थितियां

जब तनावोत्पादक परिस्थिति का दबाव व्यक्ति के सामने उपस्थित होता है तुरंत ही एक आंतरिक तंत्र स्वतः ही सक्रिय हो उठता है जो दबाव तंत्र कहलाता है। इस तंत्र में शरीर के निम्नलिखित हिस्से सक्रिय रूप से भाग लेते हैं–

(क) हाइपोथेलेमस (अवचेतक) – यह नाड़ी–तंत्र का संधि–स्थल है। यह हमारे मस्तिष्क का अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाग है। यह उन सभी क्रियाओं का संयोजन करता है जो सामान्य रूप से चेतन मन द्वारा नियंत्रित नहीं होती हैं।

(ख) पिच्यूटरी ग्रंथि – यह अंतःस्रावी ग्रंथि–तंत्र की प्रधान ग्रंथि है। इससे अन्य ग्रंथियों का नियमन (रेगुलेशन) होता है।

(ग) एड्रीनल ग्रंथियां – ये एड्रीनलीन एवं अन्य हार्मोनों का स्राव करती हैं जिनसे व्यक्ति तनावयुक्त एवं सावधान होता है।

(घ) स्वायत नाड़ी संस्थान का अनुकंपी विभाग – यह विपत्ति की स्थिति में व्यक्ति को आक्रमण के लिए या भागने के लिए अंतिम रूप से तैयार करता है।

उपरोक्त दबाव तंत्र के संयुक्त क्रिया कलाप से शरीर के भीतर घटित होने वाली शारीरिक स्थिति का क्रम इस प्रकार होगा–

1. पाचन क्रिया मंद या बिल्कुल स्थगित हो जाती है।

2. लार–ग्रंथियों का कार्य स्थगित हो जाता जिससे मुख सूख जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. चयापचय की क्रिया में तेजी आ जाती है।

4. श्वास तेजी से चलने लगता है तथा व्यक्ति हाफने लगता है।

5. यकृत द्वारा संग्रहित शर्करा को अतिरिक्त रूप से रक्त–प्रवाह में छोड़ा जाता है जिसके माध्यम से उसे हाथ–पैर की मांसपेशियों को पहुंचाया जाता है।

6. शरीर के जिन भागों को अधिक रक्त की जरूरत हो वहां तक उसे पहुंचाने के लिए हृदय की धड़कन बढ़ जाती है।

7. रक्तचाप बढ़ जाता है।

इन सारे परिवर्तनों के अलावा और भी अनेक जटिल परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों के द्वारा शरीर में विद्युत एवं रासायनिक स्रावों (हार्मोनों) की ऊर्जा अत्यधिक मात्रा में पैदा होती है ताकि हम अपनी क्रियाओं को तेज कर सकें। यदि कुछ करने की आवश्यकता न हो तो यह अतिरिक्त ऊर्जा मांसपेशियों में ''तनाव'' के रूप में प्रतिबद्ध हो ठहर जाती है।

10.4.3 अनुकंपी और परानुकंपी संस्थान

संकट की स्थिति समाप्त होने पर तनी हुई मांसपेशियां शिथिल हो जाती हैं। सामान्य प्रवृत्तियां पुनः चालू हो जाती हैं। इस शांतिपूर्ण स्थिति को पुनः स्थापित करने का दायित्व स्वतः चालित नाड़ी तंत्र के दूसरे विभाग– परानुकंपी संस्थान पर होता है।

यद्यपि अनुकंपी और परानुकंपी संस्थान का कार्य एक–दूसरे से विपरीत जैसा दिखाई देता है फिर भी ये एक दूसरे के साथ तालमेल बिठाकर कार्य करते हैं। परानुकंपी संस्थान का उद्देश्य है– अनुकंपी संस्थान के कार्य को संतुलित करना। तदनुसार संकट की स्थिति समाप्त होने पर परानुकंपी संस्थान का सक्रिय होना स्वाभाविक है। उसकी सक्रियता अनुकंपी संस्थान से निष्पादित उत्तेजना को समाप्त कर मांसपेशियों की रासायनिक स्थिति को पुनः सामान्य बनाकर उन्हें शिथिल करती है। जहां अनुकंपी संस्थान आक्रमणशील और उत्तेजनावर्धक है वहीं परानुकंपी संस्थान मरम्मत करने वाला और शांतिवर्धक है। जब दोनों संस्थानों का कार्य सामान्य स्थिति में होता है अर्थात् दोनों में संतुलन बना रहता है तब शरीर में सक्रियता और विश्राम / शांति का आवर्तन लयबद्ध गति से ठीक उसी प्रकार चलता है जैसा झूमा–झूमी में होता है किंतु जब संतुलन बिगड़ता है तब तनाव की खतरनाक स्थिति पैदा हो जाती है। वर्तमान युगीन जीवन शैली व्यक्ति को निरंतर उत्तेजित और सक्रिय बनाए रखती है। ऐसे अवसर पर मरम्मत करने वाले उपकरण अर्थात् परानुकंपी संस्थान को अपना कार्य करने का मौका ही नहीं मिलता। फलतः शरीर की मांसपेशियां और स्नायु अपनी सहज शिथिल और शांत अवस्था कदाचित् ही प्राप्त कर पाते हैं।

10.4.4 तनाव से गड़बड़ी

मनुष्य सहित सभी प्राणियों में यह दबाव–तंत्र विद्यमान होता है। यह दबाव तंत्र प्राणी को संकट की स्थिति का मुकाबला करने या उससे भागने के लिए तैयार करता है। यह तंत्र परिस्थिति उपस्थित होने पर अनैच्छिक रूप से (स्वतः) घटित होता रहता है। जब संकट की स्थितियां बार–बार आती हैं तब यह ''दबाव तंत्र'' बार–बार सक्रिय होता है। यदि ऊपर वर्णित शारीरिक स्थितियां लम्बे समय तक बनी रहें या बार–बार उनका पुनरावर्तन होता रहे तो गंभीर गड़बड़ी पैदा हो सकती है। यदि इस प्रकार रक्तचाप लगातार ऊंचा बना रहे और रक्तवाहिनियों की संकुचित स्थिति लगातार बनी रहे तो उसका परिणाम हो सकता है– दिल का दौरा, रक्ताघात (हेमरेज–मस्तिष्क की रक्तवाहिनी का फट जाना) आदि। यदि आमाशय आदि पाचन अवयवों को मिलनेवाली रक्त की मात्रा लम्बे समय तक क्षीण रहे तो पाचन क्रिया में गड़बड़ी हो सकती है। यदि श्वास की गति लम्बे समय तक लगातार तेज बनी रहे तो उसका परिणाम दमा आदि श्वास की बिमारियों के रूप में हो सकता है। मांसपेशियों में लम्बे समय तक लगातार तनाव से सिर, पीठ, गर्दन और कंधो में दर्द और पीड़ा पैदा हो सकती है। इन गड़बड़ियों के अलावा निरंतर तनाव से मानसिक आतंक की भावना पैदा हो सकती है जो निरंतर अकारण भय के रूप में पीछा कर सकती है। यह न केवल भयावह स्थिति होगी अपितु मनुष्य को बिल्कुल निवीर्य और हताश बनाने वाली सिद्ध हो सकती है। इसका कारण है कि लगातार दबाव की स्थिति रहने पर ग्रंथि तंत्र पहले गड़बड़ा जाता है और बाद में समूचा कार्य करना ही बंद कर देता है। एड्रीनलीन का स्राव बंद हो जाए तो हृदय की गति मंद हो जायेगी, रक्तवाहिनियां शिथिल हो जायेंगी तथा मस्तिष्क को पहुंचने वाला रक्त बंद हो जाएगा जिससे बेहोशी आ सकती है। इस प्रकार अनेक रोगों को पैदा करने में तनाव का बहुत बड़ा हाथ साबित हो रहा है। यदि हम तनाव के दुष्परिणामों से बचना चाहते हैं तो हमें ऐसा उपाय ढूंढना होगा जिससे परानुकंपी संस्थान अपना कर्त्तव्य क्षमतापूर्वक निभा सके। बिगड़े संतुलन को बना सके। सामंजस्य को पुनः स्थापित कर सकें।

10.4.5 तनाव के कारण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ऊपर की चर्चा से ऐसा निष्कर्ष निकालना ठीक नहीं होगा कि तनाव एकांततः हानिकारक ही है। कुछ होने के लिए या उपलब्धि के लिए कुछ मात्रा में तनाव आवश्यक भी है किंतु तनाव से जो हानि होती है, कार्य में बाधा आती है, थकावट पैदा होती है, बिमारियां आती हैं उसके मुख्य दो कारण हैं। एक कारण है तनाव की निरंतरता। दूसरा कारण है उसकी अत्यधिक मात्रा। इसके होने का एक प्रमुख कारण है– व्यक्ति के जीवन में अचानक घटित होने वाले परिवर्तन। डॉ. होम्स और डॉ. आर. राहे ने जीवन शैली में होने वाले परिवर्तनों को अंक लगाकर मापने का प्रयास किया है। उनका अंकीकरण किया है। उनके द्वारा बनाई गई सूची में दिए गए कुछ एक परिवर्तन एवं उनके अंक इस प्रकार हैं–

क्र.सं.	घटना	अंक
1.	दंपति में से किसी एक की मृत्यु	100
2.	तलाक	73
3.	चोट या बीमारी	53
4.	विवाह	50
5.	कार्य से निष्कासन	47
6.	सेवा निवृत्ति	45
7.	लैंगिक समस्याएं	39
8.	कार्य (व्यवसाय) में परिवर्तन	29
9.	जीवन की स्थितियों में परिवर्तन	25
10.	सोने या आहार संबंधी आदतों में परिवर्तन	16

यह सूची अपने आप में पूर्ण नहीं है और भी अनेक घटनाएं हैं। इनमें दी गई घटनाएं और उनके अंक भी सभी पर समान रूप से लागू नहीं होते हैं। फिर भी यदि किसी व्यक्ति पर एक साथ अनेक घटनाओं का दबाव पड़े एवं कुल मिलकार उनका प्रभाव अंक 300 तक चला जाए तो भयंकर बीमारी की संभावना हो जाती है। यदि उसके अंक 100 के उपर भी चले जाएं तब भी उसके सुरक्षा के उपायों को काम में लेना जरूरी हो जाता है। यह स्पष्ट है कि एक समय में एक ही परिवर्तन घटना को झेलना सरल होता है किंतु जीवन इतना सरल नही है कि एक समय में एक ही घटना का सामना करना पड़े। व्यक्ति को अनेक परिवर्तनों का युगपत् (एक साथ) सामना करना पड़ता है वैसी स्थिति में तनाव की अत्यधिकता से बचने के लिए कायोत्सर्ग आदि उपचारात्मक या सुरक्षात्मक उपायों का प्रयोग जरूरी हो जाता है।

10.4.6 क्या बचने का उपाय है?

अनेक बार परिस्थितियां हमारे नियंत्रण के बाहर होती हैं। परिस्थिति अनुसार घटनाएं होती चली जाती हैं। व्यक्ति उनके दबाव से ग्रसित होता चला जाता है। वह तनाव से टूटने लगता है। नींद कोसों दूर हो जाती है। क्या ऐसी स्थिति से बचने का भी कोई उपाय है? इस समस्या का समाधान अनेक दिशाओं में खोजा गया। आधुनिक औषध विज्ञान ने इसका समाधान प्रशामक गोलियों में खोजने का प्रयत्न किया है। इनके द्वारा प्रदत्त प्रशामक गोलियां (ट्रेंक्वीलाइजर्स) केवल अस्थायी आराम का आभास कराती हैं किंतु लम्बे काल में गोलियां स्वयं बीमारी से भी अधिक खतरनाक बन जाती हैं। तब प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या हमारी वर्तमान युगीन परिस्थितियां और वातावरण के कारण विनाश तक पहुंचना ही हमारे भाग्य में लिखा है या ऐसा कोई रास्ता भी है जिसके माध्यम से हम अपने आपको परिस्थिति के अनुकूल बना सकें? दैनिक दबाव के हानिकारक प्रभावों से अपने आपको बचा सकें?

डॉ. वाल्टर के अनुसार ''सौभाग्य से हमारे भीतर एक ऐसी सुरक्षात्मक प्रणाली भी है जिसे सक्रिय बनाने पर तनाव मुक्त स्थिति का निर्माण किया जा सकता है। ''लड़ो या भागो'' वाली प्रतिक्रिया का निर्माण मुख्यतः अनुकंपी नाड़ी तंत्र के द्वारा किया जाता है किंतु सुरक्षात्मक प्रणाली के द्वारा इससे नितांत उल्टी स्थिति का सृजन संभव है। नोबल पुरस्कार विजेता स्विट्जरलैंड के सुप्रसिद्ध शरीर वैज्ञानिक डॉ. वाल्टर ने इस प्रणाली को ''ट्रोपोट्रोफिक प्रतिक्रिया'' की प्रणाली कहा है। उन्होंने बताया कि इस प्रणाली द्वारा अधिक दबाव द्वारा उत्पादित प्रतिक्रियात्मक प्रक्रिया की प्रतिरोधी क्रिया की जा सकती है।

डॉ. हर्बर्ट बेन्शन, एम.डी. ने इसे ''तनाव–मुक्ति प्रक्रिया'' कहा है। हम अपने आप को इस प्रक्रिया का प्रशिक्षण दे सकते हैं और स्वयं–सूचन (auto-suggestion) की तकनीक द्वारा अपनी आंतरिक सुरक्षात्मक प्रणाली को सक्रिय कर सकते हैं तथा तनाव द्वारा निष्पन्न स्थिति को दूर करने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं, एड्रीनल ग्रन्थि के अतिरिक्त स्रावों के उत्पादन में कमी कर सकते हैं और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनुकंपी संस्थान के दुष्प्रभाव को परानुकंपी की सक्रियता द्वारा समाप्त कर सकते हैं, अंततोगत्वा मांसपेशियां शिथिल और तानवमुक्त बनेंगी और उदरीय कड़ापन समाप्त हो जाएगा। शिथिलीकरण (कायोत्सर्ग) का नियमित अभ्यास वर्तमान युगीन अनेक कष्टदायक बीमारियों से बचने के लिए रामबाण उपाय है।

10.4.7 तनाव–मुक्ति क्या है?

तनाव–मुक्ति की साधना (कायोत्सर्ग का प्रयोग) तनाव को समाप्त करने का एकदम सीधा और निर्दोष तरीका है। तनाव–मुक्ति के बिना व्यक्ति न तो शांति प्राप्त कर सकता है, न स्वास्थ्य और न सुख, फिर चाहे व्यक्ति के पास सुखी होने के कितने ही साधन क्यों न हो? यदि कोई भी व्यक्ति इस साधना को सीख लेता है और प्रतिदिन आधा या पौन घंटा नियमित इसका अभ्यास करता है तो किसी भी परिस्थिति में न केवल तनावमुक्त और अनुद्विग्न रह सकता है अपितु अपनी कार्यक्षमता और गुणवत्ता को बढ़ा सकता है।

कायोत्सर्ग की साधना का सही मूल्यांकन करने के लिए हमें मांसपेशियों की कार्य–पद्धति की जानकारी होनी चाहिए। संबंधित स्नायु द्वारा उत्तेजना मिलते ही हमारी मांसपेशियां विद्युत् वेग से संकुचित होती हैं। हमारी कंकाली मांसपेशियों को हम विद्युत–चुम्बक (Electro magnet) के साथ उपमित कर सकते हैं और जो स्नायु (या नाड़ी) उसे उत्तेजित करता है, वह उस विद्युत के तार के समान है जो उसको मस्तिष्क से जोड़ता है। नींद के दौरान स्नायुओं में सामान्य रूप से विद्युत प्रवाह मंद हो जाता है। केवल कुछ सुरक्षा और जीवन टिकाने वाली क्रियाओं में प्रवृत मांसपेशियों को छोड़ शेष सारी मांसपेशियां नींद में शिथिल हो जाती हैं। जब कोई व्यक्ति विश्राम की मुद्रा में होता है तब भी स्नायुओं में प्रवाहित होने वाला विद्युत्–प्रवाह बहुत मंद सा होता है। इससे मांसपेशियों का चुंबकीकरण भी मंद होता है और इसलिए वे शांत–शिथिल पड़ी रहती है। जब-जब व्यक्ति किसी भी शारीरिक (मानसिक या वाचिक) क्रिया में प्रवृत्त होता है, तब-तब मस्तिष्क के आदेशानुसार नाड़ियों में विद्युत-प्रवाह को तीव्र कर दिया जाता है जो विद्युत-चुम्बकों (मांसपेशियों) को सक्रिय बना देता है जिससे मांसपेशियां संकुचित की जा सकती हैं। कितने सूक्ष्म क्रियात्मक स्नायुओं (मोटर-नर्व्ज) को गति देना है, इसका आधार किए जाने वाले प्रयत्न की तीव्रता पर है।

नींद, विश्राम और क्रिया इन तीनों स्थितियों में से व्यक्ति दिन भर में कितनी ही बार गुजरता है पर इन तीन के अतिरिक्त एक चौथी स्थिति और है जो असामान्य होने पर भी कुछ व्यक्तियों के दैनिक जीवन में बार-बार घटित होती है और वह स्थिति है– अतितनाव की। निरंतर कसे हुए जबड़े, तनी हुई भृकुटियां और आमाशय की मांसपेशियों का कड़ापन; ये इस प्रकार की स्थिति के कुछ प्रत्यक्ष चिह्न हैं। इस स्थिति में हमारे शरीरस्थ विद्युत-चुम्बकों का तीव्र विद्युत–प्रवाह के कारण अति चुम्बकीकरण (Over-magnetization) हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप हमारी मांसपेशियों के दल एक स्थायी संकुचन की स्थिति में बने रहते हैं जो कि बहुत बार अनावश्यक होता है। इसके कारण हमारी स्नायुविक और मांसपेशीय ऊर्जा का एक बहुत बड़ा हिस्सा व्यर्थ चला जाता है क्योंकि इस स्थिति में विद्युत का निरंतर व्यय होता है। ऊर्जा का व्यय कितनी मात्रा में होगा, इस बात का आधार क्रियावाही मांसपेशियों की संख्या पर है न कि उनकी लंबाई-चौड़ाई पर य उनकी शक्ति पर। जैसे– चेहरे की एक छोटी-सी मांसपेशी को संकुचित करने में उतनी ही स्नायुविक ऊर्जा का व्यय होता है जितनी की पैर कि एक बड़ी मांसपेशी को सक्रिय करने में होती है। इस प्रकार ऊर्जा का होनेवाला समग्र व्यय क्रियावाही तंतुओं की संख्या और विद्युत-वाहकों के भीतर चलने वाले विद्युत–प्रवाह के सामर्थ्य इन दोनों पर निर्भर है। दूसरी विशेष बात यह है कि जहां हमारे अन्य ऊतकों में प्रतिदिन लाखों और करोड़ों की संख्या में निकम्मी और मृत कोशिकाओं का स्थान नई और स्वस्थ कोशिकाएं ले लेती हैं, वहां स्नायुविक कोशिकाओं को उनके पुरानी या मृत होने पर भी बदला नहीं जा सकता। ज्यों-ज्यों व्यक्ति की आयु बढ़ती है, स्नायुविक कोशिकाओं की संख्या निरंतर घटती जाती है। यदि किसी भी कारण से हम उन्हें आहत कर देते हैं (उदाहरणार्थ– मानसिक दबाव के रूप में उनसे अधिक काम लेने पर ऐसा घटित होता है), तब हम सदा-सदा के लिए उन्हें आहत कर देते हैं जो अपने पीछे अपूरणीय क्षति छोड़ जाती हैं।

संकल्पपूर्वक यदि संपूर्ण शिथिलीकरण को जागरूकता के साथ–साथ किया जाता है जिसे कायोत्सर्ग कहा जाता है तो हम उपरोक्त प्रकार की थकान, क्षति से बच सकते हैं। कायोत्सर्ग के द्वारा मांसपेशी रूप विद्युत–चुम्बकों को विद्युत पहुंचाने वाले तारों (स्नायुओं) का संबंध नींद की अपेक्षा और अधिक क्षमतापूर्वक स्थगित किया जा सकता है। इसके विद्युत के प्रवाह को करीब–करीब शून्य तक पहुंचाकर ऊर्जा के व्यय को न्यूनतम बनाया जा सकता है।

10.4.8 कायोत्सर्ग से तनाव-मुक्ति

अनेक घंटों की अव्यस्थित निंद्रा की अपेक्षा आधा घंटा के सधे हुए कायोत्सर्ग से व्यक्ति के तनाव और थकान को अधिक भली–भांति दूर किया जा सकता है। कायोत्सर्ग की साधना हमारी सचेतन इच्छा–शक्ति के शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव को व्यक्त करने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वाली एक साधना है। हमारी यह इच्छा शक्ति किसी आततायी तानाशाह की तरह हाथ में चाबुक लेकर अपनी शक्ति के बल पर दूसरों को चलाने वाली नहीं अपितु उस स्नेहमयी माता की तरह है जो ममता और धैर्य के द्वारा अपने जिद्दी बच्चे को ठीक करती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कायोत्सर्ग कभी भी बल-प्रयोग, तनातनी या हिंसक भावों से नहीं अपितु केवल विनम्र निवेदन–मूलक स्वतः सुझावों से ही सधता है।

10.4.9 स्वयं–सूचना की विलक्षण चिकित्सा–पद्धति

प्राचीन युग में मनुष्य और पशु दोनों को ऐसी आंतरिक संज्ञाएं उपलब्ध थीं जो अपने आप को स्वस्थ रखने के लिए उन्हें क्या करना है, उस दिशा में मार्ग–दर्शन करती रहती थीं। कालांतर में पशुओं में ये संज्ञाएं बनी रही पर मनुष्य ज्यों–ज्यों सभ्यता के क्षेत्र में आगे गया, त्यों–त्यों अपनी इन नैसर्गिक उपलब्धियों से वंचित होता गया। फिर भी किसी तरह लगभग प्रत्येक गांव या समाज में इक्के–दुक्के ऐसे व्यक्ति अवश्य मिलते हैं जो अपनी ऊपरी उल्लिखित संज्ञाजन्य उपलब्धियों को पर्याप्त मात्रा में बचा कर रखते हैं। ऐसे व्यक्तियों को सामान्यतः उपचारकर्ता (हीलर) की संज्ञा दी जाती है। छोटे गांवों में ''सयाना'', ''ओझा'', ''झाड़ा–झपटा करने वाला'' आदि व्यक्तियों के रूप में हम आज भी ऐसे ''उपचार–कर्त्ताओं'' को देख सकते हैं। ऐसे ''महाशयों'' को प्राकृतिक उपचार, पथ–परहेज, जड़ी–बूटी, हड्डी–बैठाना (पहलवानों द्वारा हड्डी की मरम्मत), साधारण शल्य–क्रिया आदि उपचारों के अलावा आस्था–उपचार (फेथ–हीलिंग) की पद्धति का ज्ञान भी था जिसके द्वारा वे रोगी को शिथिलीकरण करवाकर या सम्मोहित कर सुझाव/निर्देश देते थे। इस प्रकार सुझाव–चिकित्सा अथवा स्वयं– सूचन– चिकित्सा; मनोरोग–चिकित्सा प्रणालियों (साइकोथेरेपी) में सर्वाधिक प्राचीन पद्धति है, ऐसा कहा जा सकता है।

प्राचीन काल से अब तक प्रायः सभी संस्कृतियों ने चैतन्य की गहराई के स्तरों की छानबीन करने का प्रयत्न किया है। इस गवेषणा के दौरान जाने–अनजाने शिथिलीकरण/सुझाव चिकित्सा की यह प्रक्रिया हस्तगत होती रही है। प्रत्येक संस्कृति ने अपनी–अपनी मान्यता के अनुसार चैतन्य की इन शक्तियों की व्याख्या करने की कोशिश की है। इस विषय में शोधकर्त्ताओं ने बताया है कि सभी आदि संस्कृतियां अपनी धार्मिक प्रवृत्ति के रूप में उपर्युक्त प्रक्रिया को नाना रूपों में प्रयुक्त करती थीं। अब तक के समग्र इतिहास के दौरान यह बात पाई गई कि इन विविध रूपों में एक प्रबल एकरूपता विद्यमान थी तथा उसका बुनियादी तत्त्व था– शिथिलीकरण और सुझाव (या सूचना)। इसी तत्त्व को रोगी के उपचार में काम में लिया जाता था। मिश्र (देश) में तीन हजार वर्ष पूर्व ऐसी प्रक्रिया के प्रमाण उपलब्ध होते हैं जिसका अत्यन्त आधुनिक प्रक्रियाओं के साथ अदभूत सादृश्य सामने आता है।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ 'आस्था-उपचार' में लोगों का विश्वास क्रमशः क्षीण होता गया और अंत में लगभग नष्ट हो गया। आस्था-उपचार की वह पद्धति भी जादू-टोना करने वालों या नीम हकीमों के हाथों में चली गई। मध्य युग में 'आस्था-उपचार' की पद्धति पंडा-पुरोहितों के हाथों चली गई जो हस्त–स्पर्श, प्रार्थना आदि के माध्यम से श्रद्धालुओं का उपचार करते थे।

आधुनिक युग में फ्रांज मेस्मर नामक ऑस्ट्रियन डॉक्टर, प्रथम व्यक्ति था जिसने व्यवस्थित 'सूचन' के महत्त्व को मान्यता दी और सामूहिक उपचार के लिए उसका प्रयोग किया। इस पद्धति को 'मेस्मरिजम' की संज्ञा दी गई जो विश्व भर में व्याप्त हो गई और आज तक भी एक या दूसरे रूप में प्रचलित ही हैं। ग्रीक भाषा में नींद के लिए हिप्नोसिस शब्द का उपयोग होता है जिसका अर्थ सम्मोहन भी होता है। सम्मोहन-विधि के अनेक उपयोग आधुनिक मनःचिकित्सा के कुछ आधारभूत तत्त्व बन गए हैं। इसका एक महत्त्वपूर्ण सैद्धांतिक परिणाम यह है कि 'प्रस्ताव्यता' (सजेस्टिबिलिटी) हमारे प्रतिदिन के व्यवहार का एक प्राकृतिक स्वस्थ और सामान्य अंग है, यह बात स्पष्ट हुई। आजकल अधिकाधिक संख्या में सामान्य डॉक्टर एवं मनःचिकित्सक सुझाव–चिकित्सा को काम में लेते हैं।

स्वयं सूचन या स्व–सम्मोहन को हम एक विशेष प्रकार की सुझाव–चिकित्सा कह सकते हैं जिसमें व्यक्ति स्वयं अपने सुझावों के द्वारा अपनी चिकित्सा करता है। कुछ शोधकर्त्ताओं ने सिद्ध कर दिया है कि सभी प्रकार की 'सुझाव–चिकित्सा' मूलतः स्वयं–सूचन (या स्व–सम्मोहन) पर ही आधारित है। इसमें व्यक्ति अपनी क्षमता का विकास कर अपने आप गहरी शिथिलावस्था जैसी स्थिति में जा सकता है और उसके माध्यम से अपनी थकान, तनाव और सिरदर्द आदि को कम कर सकता है। स्वयं–सूचना के प्रयोगों को आम जनता तक पहुंचाने का कार्य बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में एमिल कोवे (Emile Coue) नामक फ्रेंच डॉक्टर ने किया उसके द्वारा प्रदत्त नारे– ''दिन दूना और रात चौगुना बनता मेरा स्वास्थ्य सौ गुना'' ने ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त कर लिया।

शिथिलीकरण के प्रयोग के दौरान जो परिवर्तन शरीर में घटित होते हैं, उन्हें मापा जा सकता है। हाल ही में किए गए अनुशीलनों से यह पता चला है कि इन प्रयोगों के परिणाम–स्वरूप निम्नलिखित शारीरिक घटकों में हितकर परिवर्तन होते हैं–

(1) रक्त का शर्करा–स्तर।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(2) रक्त में श्वेत कणों की संख्या (जो रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति के उत्पादक हैं)।

(3) विद्युत मस्तिष्कीय लेखांकन (ई.ई.जी.)।

स्वयं–सूचन के प्रयोग की सफलता का आधार है– शरीर की शिथिल या तनावमुक्त और स्थिर–अवस्था। जितनी अधिक शिथिलता और स्थिरता, उतनी अधिक सफलता। कायोत्सर्ग के प्रयोग का आधार है– स्वयं सूचन। इस प्रयोग में शरीर के प्रत्येक अवयव को स्नेहमय स्वतः सुझावों द्वारा क्रमशः शिथिल और तनाव नुक्त बनाया जाता है।

10.4.10 कायोत्सर्ग के सहायक तत्त्व

स्वस्थ जीवन के लिए कायोत्सर्ग के अतिरिक्त शारीरिक प्रवृत्ति और व्यायाम भी नितान्त आवश्यक हैं। इससे मांसपेशियों में रक्त–संचार सुचारू रूप से होने में सहायता मिलती है। हमारी लगभग सभी मांसपेशियों के समूह के अपने–अपने प्रतिद्वन्द्वी होते हैं– एक समूह जब शिथिल होता है तब दूसरा समूह तन जाता है। यदि एक प्रकार के मांसपेशी–समूह को लम्बे समय तक स्थिर–संकुचित (तनी हुई) अवस्था में रखें तो रक्त–संचार अवरुद्ध होता है जिससे थकान के कारण शरीर में पैदा होने वाले रसायन– मुख्यतः दुग्धाम्ल (लेक्टिक एसिड) जमा हो जाता है (जो सामान्य स्थिति में रक्त संचार के सुचारू रूप से होने पर वहां से हटा दिया जाता है) और इन्हीं जमा होने वाले रसायन के कारण ही व्यक्ति को पीड़ा, कड़ापन या थकान की अनुभूति होती है। अतः मांसपेशियों में दुग्धाम्ल आदि रसायनों के जमाव को रोकने के लिए उनमें रक्त का सुचारू प्रवाह होना अत्यन्त आवश्यक है।

मांसपेशियों के क्रमिक संकोच–विकोच द्वारा किये गये लयबद्ध आसन आदि व्यायाम से रक्त का संचार सुचारू बनता है तथा पीड़ा, थकान आदि में कमी होती है। बैठने, खड़े रहने आदि की सही मुद्रा और आसन को, मांसपेशियों को तनाव–मुक्त रखने की कुंजी कहा जा सकता है। हमारे शरीर को प्रतिक्षण गुरुत्वाकर्षण का प्रतिकार करना पड़ता है। बैठने, खड़े रहने आदि की गलत मुद्रा से मांसपेशियों में सतत खिंचाव पैदा हो सकता है या उनकी संरचना में बिगाड़ हो सकता है।

सही ढंग से खड़े रहने की विधि है– गर्दन और रीढ़ की हड्डी दोनों सीधी रेखा में रहनी चाहिए तथा सिर को संतुलित अवस्था में गर्दन पर टिकाए रखना चाहिए। सिर न तो एक ओर झुका रहे और न आगे की ओर बाहर निकला हुआ हो। उदर का भाग झुके नहीं तथा हाथ दोनों ओर मुक्त रूप से लटकते रहें। स्मरण रहे कि सही आसन (या मुद्रा) फौजी ढ़ंग से अकड़कर सावधान की स्थिति में स्थित होना नहीं है अपितु मांसपेशियों को शिथिल अवस्था में रखते हुए खड़े रहना है। इसी प्रकार सही ढंग से बैठने में भी गर्दन या रीढ की हड्डी सीधी रहेगी, बिना अकड़ने के तनाव–रहित और शिथिल रहेगी। इससे भिन्न प्रकार से बैठने या खड़े रहने की आदत से पीठ में दर्द या शरीर के आकार में विरूपता आने की संभावना है।

बैठते समय कभी भी धंसकर नहीं बैठना चाहिए या पीठ को वक्रता युक्त न रखें। टेबल पर कार्य करते समय आगे अधिक झुकने से कूबड़ निकालकर बैठने की आदत न डालें।

10.4.11 स्वर–यंत्र का कायोत्सर्ग–मौन

क्या आप यह मान सकते हैं कि एक सार्वजनिक भाषणकर्त्ता को अपनी मांसपेशियों से बड़ी मेहनत करने वाले एक श्रमिक की अपेक्षा अधिक नाड़ी–तंत्र ऊर्जा का व्यय करना पड़ता है पर वस्तुतः ऐसा होता है। उसका कारण यह है कि नाड़ी–तंत्रीय ऊर्जा का व्यय कार्य करने के लिए प्रयुक्त मांसपेशियों के परिणाम पर आधारित न होकर क्रिया–इकाई (मोटर–यूनिट) की संख्या के अनुपात में होता है। जितना स्नायुविक बल एक बड़ी मांसपेशी वाले अवयव (जैसे पैर) को संचालित करने में लगता है। उतना या उससे भी अधिक बल एक छोटी मांसपेशी वाले अवयव (जैसे चेहरे) को संकुचित– विकुचित करने के लिए लग सकता है। इस प्रकार एक वक्ता जो अपने स्वर–यंत्र की अनेक छोटी–छोटी मांसपेशियों का उपयोग करता है, वह एक श्रमिक की तुलना में बहुत अधिक ऊर्जा व्यय करता है या एक स्टेनोटाइपिस्ट, लुहार की अपेक्षा अधिक ऊर्जा खर्च करता है। इस दृष्टि से ऊर्जा के अपव्यय को रोकने तथा उसे संगृहीत करने में मौन एक बहुत ही मूल्यवान् माध्यम है।

जब आप बोलते है तो क्या होता है? आपके मस्तिष्क में जो चिंतन निर्मित होता है, उसे वाणी द्वारा व्यक्त करने के लिए पहले उसे व्याकरण और भाषा के नियमानुसार वाक्य में परिवर्तित किया जाता है। उसके बाद उसे स्वर–यंत्र की मांसपेशियों की सक्रियता द्वारा ध्वनि के रूप में परिणत किया जाता है। इस कार्य के लिए स्वर–यंत्र की मांसपेशियों को आवश्यकतानुसार संकुचन–विकुचन करने में सही–सही निर्देश दिए जाते हैं और ध्वनि तरंगों को प्रसारित करने के लिए आवश्यक हवा की मात्रा का नियंत्रण किया जाता है। इसके अतिरिक्त जिह्वा, पीठ और चेहरे की मांसपेशियों को भी समान निर्देश दिए जाते हैं। इन सब क्रियाओं के लिए अनेक छोटी–छोटी मांसपेशियों को काम में लिया जाता है और इन मांसपेशियों को सक्रिय करने के लिए हजारों की संख्या में क्रियावाही

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

नाड़ियों के माध्यम से विद्युत आवेग का उपयोग होता है जिसके लिए एक निश्चित मात्रा में ऊर्जा का प्रयोग आवश्यक है। स्थिति तो यह है कि यदि एक व्यक्ति को कुछ घंटों तक भाषण देना पड़े तो संभवतः उसे इतनी अधिक ऊर्जा व्यय करनी पड़ेगी कि व्यक्ति अत्यधिक थक जायेगा। इस प्रकार मौन की साधना से व्यक्ति बहुत बड़े ऊर्जा व्यय से बच सकता है।

केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है कि हम व्यक्त रूप में बोलना बंद करें। वास्तविक मौन का अर्थ तो यह है कि हम मानसिक रूप से भी बोलने की प्रक्रिया को बंद करें क्योंकि जहां तक स्नायुविक ऊर्जा–व्यय का संबंध है, इसमें और व्यक्त वाणी में समान व्यय ही होता है। ऐसा इसलिए होता है कि मानसिक रूप से बोलने में केवल स्वर–यंत्र को छोड़कर उन सभी क्रियावाही मोटर–यूनिटों का उपयोग होता है जिनका उपयोग व्यक्त वाणी में होता है। इसलिए व्यक्त वाणी के संयम के साथ मानसिक वाणी के संयम का प्रयोग भी आवश्यक है जो स्वर–यंत्र के शिथिलीकरण (कायोत्सर्ग) से घटित होता है।

10.5 कायोत्सर्ग की निष्पत्तियां

अब हम शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक आदि दृष्टियों से होने वाली निष्पत्तियों (परिणामों) की चर्चा करेंगे, जिनमें तनाव मुक्ति, चित्त की एकाग्रता, ज्ञाता–द्रष्टा भाव का विकास, चैतन्य का साक्षात्कार, प्रज्ञा का जागरण आदि उल्लेखनीय है।

10.5.1 चार अवस्थाएं

कायोत्सर्ग की प्रथम अवस्था में स्थिरता प्राप्त होती है। शारीरिक स्तर पर तनाव–मुक्ति का अनुभव होने लगता है तथा कुछ मनःकायिक रोगों में प्रत्यक्ष सुधार का अनुभव भी होने लगता है।

कायोत्सर्ग की दूसरी अवस्था में कुछ विशिष्ट परिवर्तन घटित होते हैं, यथा–

(i) स्नायु–तंत्र प्रभावित होता है। (ii) मस्तिष्क की तरंगों और मस्तिष्कीय विद्युत में परिवर्तन आ जाता है। (iii) ऑक्सीजन की खपत कम हो जाती है। (iv) अनैच्छिक मांसपेशियों पर नियंत्रण स्थापित होने लगता है और स्वायत्त स्नायुतंत्र का उत्तेजना–स्तर गिर जाता है। उनमें स्थिरता आती है। (v) शारीरिक कार्य–क्षमता बढ़ जाती है। (vi) श्लेष्म आदि दोषों के क्षीण होने से देह की जड़ता नष्ट होती है। (vii) जागरूकता के कारण बुद्धि की जड़ता नष्ट होती है। (viii) सर्दी–गरमी आदि द्वन्द्वों को सहने की क्षमता बढ़ती है। (ix) चित्त की एकाग्रता सुलभ हो जाती है।

इसकी तीसरी अवस्था में स्थूल शरीर का बोध क्षीण हो जाता है। सूक्ष्म शरीर की सक्रियता बढ़ जाती है और वह कभी–कभी स्थूल शरीर को छोड़कर बाहर चला जाता है। इस स्थिति में सूक्ष्म प्दार्थ दृष्टिगत होने लग जाते हैं।

इसकी चतुर्थ अवस्था में आत्मा के चैतन्यमय स्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है।

10.5.2. तनाव–मुक्ति

कायोत्सर्ग की पहली और प्रत्यक्ष निष्पत्ति है– तनाव–मुक्ति। जो भी साधक यह साधना करेगा, उसमें तनाव धीरे–धीरे विसर्जित हो जाएंगे। कोई कायोत्सर्ग करे और तनाव न मिटे, यह कभी हो नहीं सकता। कायोत्सर्ग तनाव–मुक्ति का अचूक उपाय है। जिन्होंने कायोत्सर्ग का अभ्यास किया है, शरीर में शिथिलीकरण का प्रयत्न किया है। ममत्व के विसर्जन का अभ्यास किया है, उन्होंने यह अनुभव किया है कि शरीर सर्वथा तनाव–मुक्त हो गया है। कायोत्सर्ग करने वाला मन के बोझ से ऊपर उठ जाता है। यह कायोत्सर्ग का प्रत्यक्ष लाभ है।

10.5.3. चंचलता की निवृत्ति

शिथिलीकरण का अर्थ है– चंचलता की निवृत्ति। शरीर पूरा स्थिर हो जाए, कोई भी अंग न हिले। शरीर की सारी प्रवृत्तियों का विसर्जन करना ही शिथिलीकरण है।

कायोत्सर्ग में पहले हम इच्छा चालित नाड़ी–संस्थान को स्थिर करते हैं। जैसे–जैसे अभ्यास बढ़ता है, स्थिरता फलित होती जाती है। जब इच्छा चालित नाड़ी संस्थान पर नियंत्रण स्थापित हो जाता है, तब स्वतः चालित नाड़ी–संस्थान भी अपने आप स्थिर होने लग जाता है, हृदय की धड़कन भी कम होने लग जाती है, श्वास मंद हो जाता है, उसकी संख्या घट जाती है, प्राणवायु या ऑक्सीजन की खपत कम हो जाती है, सारी अपेक्षाएं कम हो जाती हैं और अकल्पित शांति का वातावरण भीतर में निर्मित हो जाता है। इन्द्रियों एवं मन की चंचलता कम होने लगती है।

10.5.4. शरीर पर प्रभाव

शरीर पर कायोत्सर्ग के प्रभाव की चर्चा करें तो कहा जा सकता है कि कायोत्सर्ग के द्वारा लगभग सभी नाड़ी–तंत्रीय कोशिकाएं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्राण शक्ति से अनुप्राणित हो जाती है। इस प्रकार से उन्हें ऐसा अवकाश प्राप्त होता है, जिसके दौरान वे निरंतर उन पर पड़ने वाले बोझ से मुक्त रहती हैं। रात–दिन मस्तिष्क तक संवेदनों को पहुंचाने तथा प्रवृत्ति–बहुल गतिविधियों को चलाने से थका देने वाले कार्य से विश्रान्ति का अनुभव कर सकती है। इसलिए यह आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि दीर्घकालीन अशांत निंद्रा की अपेक्षा स्वल्पकालीन कायोत्सर्ग व्यक्ति को अधिक स्फूर्ति और शक्ति प्रदान करता है। कायोत्सर्ग का प्रयोग करते समय नींद लेना प्रयोग के लक्ष्य के विपरीत है पर नींद में जाने से पूर्व कायोत्सर्ग का प्रयोग करने का परिणाम होता है– स्वस्थ शांतिपूर्ण नींद। कायोत्सर्ग के अभ्यास का पहला फलित है तनाव मुक्ति। तनाव मुक्ति से शरीर में तनाव से होने वाली अन्य विकृतियाँ स्वतः दूर होने लगती हैं। समस्त अंगों की कार्य कुशलता में सामान्य रूप से गुणात्मक सुधार आता है।

10.5.5 सूक्ष्म शरीर की घटनाओं का ज्ञान

अध्यात्म की साधना करने वाले व्यक्ति को अध्यात्म के नियमों से परिचित होना जरूरी है। सबसे पहला और सबसे बड़ा नियम है– शरीर की स्थिरता अर्थात् कायोत्सर्ग। कायोत्सर्ग होता है तो श्वास-दर्शन होता है। कायोत्सर्ग होता है तो शरीर-प्रेक्षा भी अपने आप हो जाती है। शरीर में होने वाले कम्पन अपने आप प्रकट होने लगते हैं। कायोत्सर्ग होता है, विचार–दर्शन होता है। शरीर में हर अवयव की स्थिरता जब सधती है तब प्रत्येक कोशिका की स्थिरता का अभ्यास हो जाता है तो फिर किस कोशिका में कहां क्या हो रहा है, इस घटना का पता लगने लग जाता है। नाड़ी-संस्थान में, ग्रंथि-संस्थान में जो कुछ हो रहा है, विद्युत-प्रवाह की जो गति हो रही है, रसायन किस प्रकार अपने विविध परिणमन कर रहे हैं और किस प्रकार के रसायन बन रहे हैं, उन सब घटनाओं का कायोत्सर्ग में पता लग जाता है। कायोत्सर्ग जैसे-जैसे विकसित होता है, जैसे-जैसे शरीर की स्थिरता सधती है, वैसे-वैसे जागरूकता बढ़ती जाती है। चेतना निर्मल हो जाती है और इस स्थूल शरीर का अतिक्रमण कर सूक्ष्म शरीर की घटनाओं का भी पता लगने लग जाता है।

कायोत्सर्ग की प्रगाढ़ अवस्था में आभामंडल का दर्शन भी होने लगता है। जब कायोत्सर्ग सघन होता है तब परमाणुओं का भीतर आना बंद हो जाता है। उस स्थिति में स्थूल शरीर को पार करने के पश्चात् अतिसूक्ष्म शरीर के स्पंदन दीखने लग जाते हैं। उसका साक्षात्कार होते ही हमारी सारी दृष्टि बदल जाती है।

10.5.6 ज्ञाता-द्रष्टा भाव का जागरण

जब कायोत्सर्ग घटित होगा तब शरीर की सारी चंचलता समाप्त हो जाएगी। इतना ही नहीं अपितु साधक 'सुसमाहितात्मा' बन जाएगा। आत्मा का वह स्वरूप प्रकट होगा जो पहले कभी नहीं हुआ था। इस स्वरूप को आज तक या तो इन्कार करते रहे थे या केवल मानते रहे थे किंतु अब जानने लग जाएंगे। जानने की बात तब आती है जब कायोत्सर्ग की स्थिति प्राप्त होती है। कायोत्सर्ग आत्मा तक पहुंचने का द्वार है। इसकी निष्पत्ति है– अध्यात्म की उपलब्धि, अपने अस्तित्व की उपलब्धि, अपने स्वरूप की उपलब्धि, ज्ञाता-द्रष्टा भाव की उपलब्धि।

10.5.7 विवेक चेतना का जागरण

जब कायोत्सर्ग सधता है तब विवेक–चेतना जाग जाती है, चेतना और शरीर की भिन्नता स्पष्ट हो जाती है। साक्षात्कार हो जाता है– यह रहा शरीर और यह रहा चैतन्य; यह रहा शरीर और यह रही आत्मा। जैसे बिलौना करने पर एक बिंदु आता है– यह रही छाछ और यह रहा मक्खन। तिल घाणी में पिला जाता है, एक बिंदु आता है– यह रही खली और यह रहा तेल। सोना तपाया जाता है, एक बिंदु आता है– यह रही मिट्टी और यह रहा शुद्ध सोना। विवेक हो जाता है, पृथक्करण हो जाता है।

यह शरीर है और यह आत्मा। यह अचेतन है और यह चेतन। यह अशाश्वत है और यह शाश्वत। आत्मा और पुद्गल का स्पष्ट भेद उसे साक्षात् हो जाता है। यह विवेक–चेतना बहुत बड़ी उपलब्धि है। वास्तव में शरीर का मूल्यांकन वही व्यक्ति कर सकता है जिसने कायोत्सर्ग का अभ्यास किया है। वास्तव में शरीर का सार वही निकाल सकता है जिसने कायोत्सर्ग को साधा है।

कायोत्सर्ग की अनुभूति के पीछे शरीर–विज्ञान की दृष्टि से कौन-सी क्रिया कार्य करती है? जैसे हम पहले बता चुके हैं जिस समय मांसपेशियों को शिथिल किया जा रहा है, उस समय उनसे सम्बद्ध क्रियावाही नाड़ियों में धीरे-धीरे विद्युत का प्रवाह मंद होता जाता है तथा इस प्रकार उन्हें विश्राम का अवसर मिल जाता है। अंततोगत्वा सम्पूर्ण क्रियावाही प्रणाली को निष्क्रिय बनाकर उसे विश्राम की अवस्था में स्थापित किया जाता है और फिर उसी का अनुकरण उसकी ही पूरक प्रणाली–संवेदी (ज्ञानवाही) प्रणाली द्वारा किया जाता है जो मस्तिष्क (यानि केन्द्रीय नाड़ी-संस्थान) तक संवेदनों को पहुंचाने का कार्य करती है। इस प्रकार सारी प्रक्रिया के दौरान जहां एक ओर चेतन मन पूर्णतः जागृत और सजग रहता है, वहीं दूसरी ओर हमारा भौतिक शरीर धीरे-धीरे चेतना रहित-सा हो जाता है। इससे चैतन्य को उसके प्रतिपक्षी भौतिक हिस्से से मुक्त अनुभव करने का अवसर मिलता है। इस प्रकार के कायोत्सर्ग में स्वयं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के शरीर से बाहर अपने आप को तैरते हुए अनुभव किया जा सकता है जो निश्चित रूप से न तो स्वतः सूचन का रूप है और न ही सम्मोहन है अपितु एक वास्तविक तथ्य की सही-सही अनुभूति है।

10.5.8 व्युत्सर्ग-चेतना

जब विवेक-चेतना पुष्ट होती है, तब व्युत्सर्ग (त्याग की क्षमता) का विकास होता है। फिर छोड़ने में संकोच नहीं होता, चाहे शरीर को छोड़ना पड़े, इंद्रिय-विषयों को छोड़ना पड़े, परिवार या धन को छोड़ना पड़े। उसमें छोड़ने की इतनी क्षमता बढ़ जाती है कि जब चाहे तब किसी को भी छोड़ सकता है, कोई मोह नहीं रहता। व्युत्सर्ग की चेतना जगाने पर साधक को स्पष्ट अनुभव हो जाता है कि मैं चैतन्यमय हूं, यही मेरा अस्तित्व है। चैतन्य के अतिरिक्त जितना भी जुड़ाव हुआ है, वह विजातीय है, मेरा नहीं है।

10.5.9 प्रज्ञा का जागरण एवं समता का विकास

कायोत्सर्ग की एक और महत्त्वपूर्ण निष्पत्ति है– प्रज्ञा का जागरण। जब कायोत्सर्ग के द्वारा प्रज्ञा जागती है तब जीवन में समता स्वतः अवतरित होती है। लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, निंदा-प्रशंसा, जीवन-मरण आदि द्वंद्वों में सम रहने की क्षमता उसी व्यक्ति में विकसित होती है जो कायोत्सर्ग को साध लेता है फिर उसके लिए प्रिय और अप्रिय में कोई भेद नहीं होता। दोनों आयाम समाप्त हो जाते हैं। तीसरा आयाम उद्घाटित होता है। वह आयाम है– समता।

बुद्धि और प्रज्ञा में इतना ही अंतर होता है कि बुद्धि चुनाव करती है– यह प्रिय है, यह अप्रिय है। प्रज्ञा में चुनाव समाप्त हो जाता है। उसके सामने प्रियता और अप्रियता का प्रश्न ही नहीं उठता। उसके समक्ष समता ही प्रतिष्ठित होती है। कायोत्सर्ग के अभ्यास से बुद्धि का पलड़ा हलका होता जाएगा और प्रज्ञा का पलड़ा भारी होता चला जाएगा। जीवन में जिस दिन प्रज्ञा की किरण फूटेगी, उस दिन अपने आप समता का दर्शन होगा।

10.6 सम्पूर्ण कायोत्सर्ग की प्रक्रिया

सम्पूर्ण कायोत्सर्ग– खड़े रहकर, बैठकर और लेटकर तीनों मुद्राओं में किया जाता है। खड़े रहकर करना उत्तम कायोत्सर्ग, बैठकर करना मध्यम कायोत्सर्ग, लेटकर करना सामान्य कायोत्सर्ग है।

1. **खड़े रहकर कायोत्सर्ग करने की मुद्रा** – सीधे खड़े रहें। दोनों हाथ साथल से सटे रहें। दोनों पैरों के मध्य आधा फुट का फासला रहे। मेरुदण्ड और गर्दन सीधी रहे। सिर थोड़ा झुका हुआ। ठुड्डी छाती से चार अंगुल ऊपर हो।
2. **बैठकर कायोत्सर्ग करने की मुद्रा** – सुखासन में बैठें। मेरुदण्ड और गर्दन को सीधा रखें। ठुड्डी छाती से चार अंगुल ऊपर हो। ब्रह्म मुद्रा–बाईं हथेली नाभि के नीचे और दाहिनी हथेली बाईं हथेली के ऊपर स्थापित करें। अंगूठे एक–दूसरे से सटे रहेंगे।
3. **लेटकर कायोत्सर्ग करने की मुद्रा** – पीठ के बल लेटें। दोनों पैरों के मध्य एक फुट का फासला रहे। दोनों हाथ शरीर के सामानान्तर आधा फुट की दूरी पर रहे। हथेलियां आकाश की तरफ खुली रखें। गर्दन और सिर शिथिल रहे। आंखें कोमलता से बन्द रहे। शरीर स्थिर एवं शिथिल रहे।

पहला चरण

कायोत्सर्ग के लिए तैयार हो जाएं। कायोत्सर्ग का प्रारम्भ खड़े–खड़े होगा। लेटने जितने स्थान की व्यवस्था कर, खड़े–खड़े कायोत्सर्ग का संकल्प करें–**'तस्स उत्तरीकरणेणं पायच्छित्तकरणेणं, विसोहीकरणेणं, विसल्लीकरणेणं, पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं।'**

"मैं शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तनावों से मुक्त होने के लिए कायोत्सर्ग का संकल्प करता हूं।" (कायोत्सर्ग की अवधि निश्चित करने का निर्देश दें।

दूसरा चरण

सीधे खड़े रहें। दोनों हाथ साथल से सटे रहें। एड़ियां मिली हुई, पंजे खुले रहें। श्वास भरते हुए हाथों को ऊपर की ओर ले जाएं। पंजों पर खड़े होकर पूरे शरीर को तनाव दें। श्वास छोड़ते हुए हाथों को साथल के पास ले आएं और शिथिलता का अनुभव करें। इस प्रकार तीन आवृत्तियों द्वारा क्रमशः तनाव और शिथिलता की स्थिति का अनुभव करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तीसरा चरण

पीठ के बल लेटें। दोनों पैर मिले हुए हों। दोनों हाथों को सिर की ओर फैलाएं। जितना तनाव दे सकें तनाव दें, साथ में मूलबन्ध का प्रयोग करें। फिर शरीर को शिथिल छोड़ दें। (इस प्रकार तीन आवृत्तियों द्वारा क्रमशः तनाव और शिथिलता की स्थिति का अनुभव करें।)

दोनों पैरों के मध्य एक फुट का फासला रहे। हाथों को शरीर के समानान्तर आधा फुट की दूरी पर फैलाएं। कायोत्सर्ग की मुद्रा में आ जाएं, आंखें बन्द, श्वास मन्द। शरीर को स्थिर रखें।शरीर को प्रतिमा की भांति अडोल रखें। पूरे कायोत्सर्ग काल तक पूरी स्थिरता।

प्रत्येक अवयव में सीसे की भांति भारीपन का अनुभव करें। (एक मिनिट)

प्रत्येक अवयव में रुई की भांति हल्केपन का अनुभव करें। (दो मिनिट)

चतुर्थ चरण

श्वास मन्द और शांत। चित्त को दाएं पैर के अंगूठे पर केन्द्रित करें। शिथिलता का सुझाव दें– अंगूठे का पूरा भाग शिथिल हो जाए अनुभव करे अंगूठा शिथिल हो रहा है। (अल्प विराम) अनुभव करें अंगूठा शिथिल हो गया है। इसी प्रकार प्रत्येक अंगुली, पंजा, तलवा, एड़ी, टखना, पिण्डली, घुटना, साथल तथा कटिभाग को क्रमशः शिथिलता का सुझाव दें और उसका अनुभव करें। इसी प्रकार बाएं पैर के अंगूठे से कटिभाग तक प्रत्येक अवयव पर चित्त को केन्द्रित करें, शिथिलता का सुझाव दें और उसका अनुभव करें।

पेडू का पूरा भाग, पेट के भीतरी अवयव– दोनों गुर्दे, बड़ी आंत, छोटी आंत, अग्न्याशय, पक्वाशय, आमाशय, तिल्ली, यकृत और तनुपट।

छाती का पूरा भाग– हृदय, दायां फेफड़ा, बायां फेफड़ा, पंसलियां, पीठ का पूरा भाग– मेरुदण्ड, सुषुम्ना, सुषुम्ना शीर्ष और गर्दन। दाएं हाथ का अंगूठा, अंगुलियां, हथेली, मणिबंध, मणिबन्ध से कोहनी और कोहनी से कन्धे तक का भाग। इसी प्रकार बाएं हाथ के प्रत्येक अवयव पर चित्त को केन्द्रित करें। शिथिलता का सुझाव दे और उसका अनुभव करे।

इसी प्रकार कंठ, स्वर–यंत्र, ठुड्डी, होठ, मसूढ़े, दांत, जीभ, तालु, दायां कपोल, बायां कपोल, नाक, दायीं कनपटी, दायां कान, बायीं कनपटी, बायां कान, दायीं आंख, बायीं आंख, ललाट और सिर के प्रत्येक अवयव पर चित को केन्द्रित करें। प्रत्येक अवयव को शिथिलता का सुझाप दें और उसका अनुभप करें। (पांच मिनिट)

शरीर के चारों ओर श्वेत रंग के प्रवाह का अनुभव करें। आभामंडल की निर्मलता का अनुभव करें। कण–कण में शांति का अनुभव करें। (दस मिनिट)

भेद विज्ञान

अब भेद–विज्ञान का अनुभव करें। जैसे मथानी से छाछ और मक्खन को पृथक् किया जा सकता है वैसे ही शिथिलता के द्वारा शरीर और आत्मा को पृथक् किया जा सकता है।

1. शरीर अचेतन है, आत्मा चेतन है।

2. मैं शरीर नहीं हूं, आत्मा हूं।

3. शरीर दृश्य है, मैं द्रष्टा हूं।

4. अपने ज्ञाता–द्रष्टा स्वरूप का अनुभव करें। (दस मिनिट)

पांचवां चरण

पैर के अंगूठे से सिर तक चित्त और प्राण की यात्रा करें। (तीन बार सुझाव दें।)

अनुभव करें– पैर से सिर तक चैतन्य पूरी तरह से जागृत हो गया है।......................प्रत्येक अवयव में प्राण का अनुभव करें।

तीन दीर्घश्वास के साथ कायोत्सर्ग संपन्न करें। दीर्घश्व स के साथ प्रत्येक अवयव में सक्रियता का अनुभव करें। बैठने की मुद्रा में आएं।

शरण सूत्र का उच्चारण करें।

अरहंते सरणं पवज्जामि,

सिद्धे सरणं पवज्जामि,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

साहू सरणं पवज्जामि,

केवलि–पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि। (तीन बार)

वन्दे सच्चं (तीन बार) के उच्चारण के साथ कायोत्सर्ग सपन्न करें।

(कोई व्यक्ति अगर कायोत्सर्ग संपन्न होने पर न लौटे तो उसका स्पर्श न करें, जगाएं भी नहीं। प्रशिक्षक स्वयं निरीक्षण करें।)

10.7 सारांश

कायोत्सर्ग तनाव विसर्जन की प्रक्रिया है। जो परिस्थितियां सामान्य जीवन धारा को अस्त व्यस्त कर दे वही तनाव है। तनाव की स्थिति में हाईपोथेलेमस, पिट्यूटरी ग्रंथि, एड्रिनल ग्रंथि, स्वायत्त नाड़ी संस्थान का अनुकंपी भाग सक्रिय रहते हैं। तनाव में शरीर की पाचन क्रिया मंद, लार ग्रंथियों का सूखना, चयापचय की क्रिया में तेजी, श्वास गति का तेज होना, रक्त चाप बढ़ना जैसे लक्षण देखे जा सकते हैं। अनुकम्पी व परानुकम्पी का कार्य एक दूसरे के कार्य में पूर्ण मदद करना है। लम्बे समय तक तनाव बने रहने से घातक बीमारियां होने की संभावना रहती है। तनाव में सुखद नींद लेने के लिए औषध विज्ञान में गोलियों को लेने का प्रावधान है, यह स्थायी इलाज नहीं है। अगर लम्बे समय तक इनका सेवन किया जाये तो अन्य अनेक जटिल रोग उभर सकते हैं। अतः तनावमुक्ति का सरल व सहज तरीका कायोत्सर्ग है।

10.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्नः–

1. शारीरिक तनाव का कारण क्या है?
2. मानसिक तनाव का कारण क्या है?
3. स्वतः सुझाव क्या है?
4. संवेग का उत्पत्ति स्थान कौन–सा है?
5. वैज्ञानिक दृष्टि से कायोत्सर्ग क्या है?
6. तनाव कब पैदा होता है?
7. आंतरिक–दबाव कौन–कौन से हैं?
8. बाह्य–दबाव कौन–कौन से हैं?
9. आवेश और आवेग में कौन–सी ग्रंथियां स्राव करती हैं?
10. कायोत्सर्ग के तीन तत्त्व कौन–से हैं?

लघुत्तरीय प्रश्नः–

1. कायोत्सर्ग की आध्यात्मिक दृष्टि से उपयोगिता दर्शावें।
2. कायोत्सर्ग की निष्पत्तियां क्या–क्या हैं?

निबन्धात्मक प्रश्नः–

1. कायोत्सर्ग का वैज्ञानिक दृष्टिकोण समझावें।

10.9 संदर्भ–ग्रंथ

1. प्रेक्षाध्यान : सिद्धांत और प्रयोग – आचार्य श्री महाप्रज्ञ।
2. प्रेक्षाध्यान : कायोत्सर्ग (पुष्प) – आचार्य श्री महाप्रज्ञ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–11 अन्तर्यात्रा : प्रयोजन, आध्यात्मिक–वैज्ञानिक दृष्टिकोण, निष्पत्तियाँ एवं प्रक्रिया

इकाई की संरचना

11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 प्राण – आध्यात्मिक दृष्टिकोण

11.2.1 प्राण का स्वरूप

11.3 प्राण – वैज्ञानिक दृष्टिकोण

11.3.1 वायु में स्थित प्राण

11.3.2 प्राण – विद्युत आवेशित कण

11.2.3 प्राण का संचार

11.4 प्राण – जैन दृष्टिकोण

11.4.1 प्राण और तैजस् शरीर

11.4.2 प्राण के प्रकार

11.4.3 प्राण और पर्याप्ति

11.5 अन्तर्यात्रा

11.6 अन्तर्यात्रा का प्रयोजन

11.7 अन्तर्यात्रा का आध्यात्मिक दृष्टिकोण

11.8 अन्तर्यात्रा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

11.9 अन्तर्यात्रा की निष्पतियाँ

11.10 अन्तर्यात्रा की प्रक्रिया

11.11 सारांश

11.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.13 संदर्भ ग्रन्थ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.0 प्रस्तावना

भारतीय योग विद्या की परम्परा के अनेक ऋषियों, मुनियों एवं योगियों ने प्राण के बारे में अपने – अपने अनुभव और चिन्तन की अलग – अलग व्याख्यायें की है। सम्पूर्ण आकाश मण्डल प्राण की शक्ति से परिपूर्ण है। जैन दर्शन की परम्परा में प्राण को जीव के काम आने वाली पौद्‌गलिक वर्गणाएं कहा गया है जो सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं। योगियों के अनुसार प्राण सम्पूर्ण वायु मण्डल में है जो न तो आक्सीजन है और न ही नाईट्रोजन है। सम्पूर्ण जीव जगत–प्राण पर निर्भर है।

हमारे शरीर में शक्ति प्राण के रूप में रहती है। वह शक्ति शरीर के मुख्य भागों पर अपने ढ़ंग से गति करती है किन्तु जब तक प्राण शक्ति की गति पर हमारा नियंत्रण नहीं हो जाता तब तक वह न शुद्ध हो सकती है न स्वेच्छा से संचालित। अन्तर्यात्रा के माध्यम से प्राण शक्ति को शक्ति केन्द्र से ज्ञान केन्द्र में ले जाना, यही हमारी प्राण साधना या प्राण–प्रशिक्षण का अर्थ है। यह हमारे व्यक्तित्व विकास का प्रबल आधार है।

प्रेक्षाध्यान में श्वास प्रेक्षा, शरीर प्रेक्षा, चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा मुख्य रूप से प्राण शक्ति के सम्वर्द्धन के प्रयोग हैं, किन्तु अन्तर्यात्रा मुख्य रूप से प्राण शक्ति के ऊर्ध्वारोहण का प्रयोग है। इन सभी का अध्ययन करने से पूर्व प्राण / प्राण शक्ति के बारे में जानना नितांत आवश्यक है।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप जान पायेंगे कि –

1. प्राण का आध्यात्मिक दृष्टिकोण क्या है?
2. प्राण का वैज्ञानिक दृष्टिकोण क्या है?
3. प्राण के बारे में जैन दृष्टिकोण क्या है?
4. अन्तर्यात्रा का सिद्धान्त क्या है?
5. अन्तर्यात्रा का प्रयोजन, निष्पतियाँ एवं प्रक्रिया क्या है?

11.3. प्राण – वैज्ञानिक दृष्टिकोण

योगशास्त्रों के अनुसार सम्पूर्ण आकाश मण्डल प्राण से, शक्ति से परिपूर्ण है। जैन दर्शन के अनुसार जीव के काम आने वाले पौद्गलिक स्कंध (वर्गणाएं) सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं। विश्व में प्रत्येक पदार्थ इसी प्राण से अभिव्यक्त हुआ है। यह विचार आधुनिक न्यूक्लीयर भौतिक शास्त्र (Nuclear Physics) का संवादी विचार है, जिसके अनुसार संसार का प्रत्येक पदार्थ ऊर्जा का ही संगठित रूप है। आइंस्टीन के विख्यात सूत्र– $E=mc^2$ के अनुसार पदार्थ ऊर्जा में रूपांतरित हो सकता है और ऊर्जा पदार्थ में। मूलतः विद्युत–चुम्बकीय–ऊर्जा (Electro Magnetic Energy) ही प्रकाश, विद्युत चुम्बकीय आदि ऊर्जा के रूप में अभिव्यक्त होती है। प्राण के दो रूप सामने आते हैं। एक वह प्राण है जो अभिव्यक्त रूप से सम्पूर्ण आकाश मण्डल में व्याप्त है। दूसरा वह प्राण है जो ऊर्जा के सभी संभावित रूपों में विभक्त एवं अभिव्यक्त हुआ है। चुम्बकीय शक्ति, विद्युत शक्ति, गुरुत्वाकर्षण शक्ति सभी प्रकार की शक्तियां प्राण की ही अभिव्यक्तियां हैं। हम प्राण के समुद्र में रह रहे हैं। योगशास्त्रों के अनुसार जीवन का लक्ष्य है– बाह्य प्राण को ग्रहण करने की क्षमता, संग्रहित रखने की क्षमता तथा आन्तरिक व बाह्य जगत् के कार्य के लिए आंतरिक प्राण के रूपान्तरण की क्षमता का सम्वर्द्धन एवं आनात्मोत्थान हेतु समुचित उपयोग करना।

प्रश्न हो सकता है कि प्राण को ऊर्जा या शक्ति ही क्यों नहीं कहा गया? शक्ति या ऊर्जा शब्द बहुत विस्तृत है। यह पदार्थोन्मुखी तथा भौतिकता का प्रतीक अधिक बनता है। योगशास्त्रों के अनुसार विचारभी प्राण का ही एक सूक्ष्म रूप है जबकि ऊर्जा शब्द अपने आप में भिन्न अभिव्यक्ति देता है। योगशास्त्रों के अनुसार प्राण हवा में है किन्तु यह ऑक्सीजन, नाइट्रोजन या अन्य कोई रासायनिक गैस नहीं है। प्राण भोजन में है किन्तु यह कोई विटामिन्स नहीं है। प्राण सूर्य किरणों में है किन्तु यह कोई पराबैंगनी या अन्य प्रकार की कोई किरणें नहीं हैं। भोजन, पानी, सूर्य किरणें, हवा; ये सभी बाह्य प्राण के संवाहक हैं जिन पर समपूर्ण जीव जगत् आधारित है। बाह्य प्राण सम्पूर्ण शरीर में गतिशील होता है। हमारे जीवन का वास्तविक पोषक है। प्राण के बिना जीवन संभव नहीं। हमारी क्षमताएं भी प्राण का ही सूक्ष्म व विशिष्ट रूप हैं। जीव प्राण के माध्यम से शरीर को जीवन्त बनाता है।

योगशास्त्र इस बाह्य प्राण के अस्तित्व को ही नहीं प्रस्तुत करते किन्तु इसके अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों को भी उजागर करते हैं। उनके अनुसार इस बाह्य प्राण का संग्रह मुख्यतः तंत्रिका–तंत्र मे, प्रमुख रूप से मणिपुर चक्र में, प्रेक्षाध्यान की भाषा में तैजस् केन्द्र में होता है इस प्राण को स्वेच्छा से संचालित किया जा सकता है। यह तथ्य योग साधना का एक मौलिक आधार बनता है। योगशास्त्र इसकी प्रक्रिया को भी प्रस्तुत करता है।

11.3.1 वायु में स्थित प्राण

वायु हमारे आंतरिक प्राण का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। हजारें वर्ष पूर्व प्राचीन योग के आचार्यो ने इस बात को प्रकट कर दिया था कि सम्पूर्ण लोक सूक्ष्म ऊर्जा से स्पंदित है। 'लोयं च पास विप्फंदमाणं' अर्थात् देखो! लोक स्पन्दित हो रहा है और यही अन्य सभी ऊर्जाओं का मूल स्रोत है और यह ऊर्जा हमारे शरीर में भी विद्यमान है।

इस प्रस्तुत प्राण तत्त्व की तुलना आज के वैज्ञानिक अन्वेषणों से प्राप्त सिद्धांतों से की जा सकती है। एण्डर वान लिसबेथ ने अपनी पुस्तक 'प्राणायाम' में हवा में स्थित प्राण की तुलना विद्युत आवेशित कणों (Electically Charged Particles) विशेष रूप से ऋण आवेशित कणों (Negative Ions) से की है। इन्हें हवा के साथ शरीर में ग्रहण करने पर विद्युतीय चयापचय की प्रक्रियाएं शरीर में घटित होती हैं। प्रोफेसर ब्लेस ने अपनी पुस्तक 'Biological-coditions created by the Electrical Properties of the Atmosphere' में इस पर विस्तार से विवेचन किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.3.2 प्राण विद्युत आवेशित कण

यह देखें कि कण विद्युत आवेशित कैसे होते हैं? इसका स्पष्ट उदाहरण आकाश में बिजली की चमक है। आकाश में धन एवं ऋण आवेश बनने से बिजली चमकती है।

विद्युत आवेशित कण 'आयन' (Ions) एक परमाणु या खंड है जो विद्युत से आवेशित होता है। ये कण (Ions) जीवंत कोशिकाओं के सक्रिय कार्यकर्त्ता हैं। वायुमंडल में दो प्रकार के कण होते हैं–

(क) लघु ऋणात्मक कण (Small Negative Ions)

(ख) वृहत् कण (Large Ions)

(क) लघु ऋणात्मक कण या सामान्य कण – ये कण विद्युत की दृष्टि से अत्यधिक सक्रिय होते हैं। ये कण अपनी शुद्ध दशा में भरपूर शक्ति के संवाहक होते हैं। श्वास वायु में यह कण एक या अनेक ऑक्सीजन या नाइट्रोजन के कणों से निर्मित होते हैं। अपने साथ ये कण विद्युत आवेश (Electric Charge) को लाते हैं जो कि एक इलेक्ट्रान के बराबर होता है। ये ऋणात्मक विद्युत कण ही जीव में शक्ति का संचार करते हैं। वस्तुतः ये ऋणात्मक विद्युत कण ही वायुमंडलीय प्राण का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(ख) वृहत् कण – ये कण वृहत् एवं मंद गति के होते हैं। ये अनेक अणुओं से बने होते हैं। अतः ये छोटे कणों से आकार में बड़े होते हैं। ये कण एक प्रकार से छोटे कणों का भक्षण करते रहते हैं।

छोटे कण बहुत तीव्र एवं अत्यन्त गतिशील होते हैं। वायु में बड़े कणों की अधिकता एवं छोटे कणों की कमी से वायु की प्राणवत्ता कम हो जाती है। प्रदूषण, धूंध, कोहरा, मिट्टी की हवा में अधिकतर ऐसी स्थिति बनती है। उस समय बड़े कणों की अधिकता होती है और छोटे कणों की न्यूनता हो जाती है; इसलिए शहरों के प्रदूषित वातावरण में बड़े कणों की आनुपातिक मात्रा अधिक हो जाती है। गांवों में जहां हवा शुद्ध है वहां प्रति एक बड़े कण (Large Ions) के अनुपात में दो या तीन छोटे कण होते हैं। छोटे शहरों में यह प्रति 275 बड़े कणों को अनुपात में एक छोटा कण हो जाता है। जहां बड़े शहरों में प्रदूषण बहुत अधिक है वहां यह 730 बड़े कणों के अनुपात में एक छोटा कण तक हो जाता है। हम इन छोटे कणों के महत्त्व को समझें। ये शरीर की कोशिकाओं के जीवंत एवं सक्रिय कार्यकर्त्ता हैं। इससे यह सहज समझ में आ जाता है कि शहरों की हवा में प्राणशक्ति का कितना अभाव है।

ये तथ्य अध्यात्म के सिद्धांतों की व्याख्या एवं पुष्टि करते हैं कि प्राण न तो ऑक्सीजन है, न ही नाइट्रोजन या अन्य कोई रासायनिक घटक जो वायुमण्डल का निर्माण करते हैं क्योंकि सामान्यतया वायुमंडल के ऑक्सीजन के अनुपात में बहुत अधिक अन्तर नहीं आता है। वह तो लगभग एक जैसा ही रहता है। शहरों की वायु की प्राणवत्ता में कमी तो वहां की बड़े कणों (large Ions) की अत्यधिकता है। इस अत्यधिकता के कारण हवा में ताजगी व शक्तिदायक क्षमता कम हो जाती है। शहरों में वाहनों एवं फैक्टरियों का धुंआ व विषैली गैसें इन छोटे कणों का भक्षण कर लेती हैं। इससे हवा में जो प्राणशक्ति है वह कम होती चली जाती है।

11.3.3 प्राण का संचार

ये कण पुनः ऋण आवेशित व शक्तिशाली कैसे होते हैं? इनको भी जानना आवश्यक है। जब ऑक्सीजन परमाणु में पुनः विद्युत ऊर्जा का संचार होता है तो वे शक्तिसम्पन्न बन जाते हैं। यह प्रक्रिया प्राकृतिक ऊर्जा स्रोतों के प्रभाव से घटित होती रहती है। कुछ वैज्ञानिक प्राण की परिभाषा में कहते हैं, नलिकाविहीन ग्रंथियों से जो जीवन रस तैयार होता है वही हमारा प्राण तत्त्व है।

कुछ लोगों का कहना है, वायु में व्याप्त रासायनिक परमाणु विशेष का रूपान्तरण प्राण है।

ज्योतिषी लोगों का अभिमत है, आइनोस्वगेटिक प्लाज्मा, जो हमारे चारों ओर आकाश गंगा के घर्षण से उत्पन्न होकर छाया रहता है, वहीं प्राण तत्त्व है। गुरूत्वाकर्षण के साथ यही शक्ति होती है।

साधकों का अपना अनुभव है कि प्राण वह ऊर्जा–विद्युत है जिसे चित्र से दिखाया नहीं जा सकता और शब्दों में बताया नहीं जा सकता। उनके अनुभव में यह प्राण प्रकाशात्मक है।

स्वामी विवेकानंद 'साइकिक फोर्स' के नाम से इस ऊर्जा की व्याख्या करते थे।

प्राण क्या है? योगी लोगों का कहना है कि प्राण तैजस और वायु इन दो तत्त्वों के मिश्रण से बनता है। तैजस के बिना शक्ति का जन्म नहीं होता और वायु के बिना उस शक्ति का संचार, सम्प्रेषण नहीं होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्राण–शक्ति एक है, उसे विभाजित नहीं किया जा सकता, संचालन की दृष्टि से सम्पूर्ण शरीर में परिभ्रमण करती हुई यह शक्ति अलग–अलग स्थानों पर भिन्न–भिन्न कार्य करती है। अतः योग के आचार्यों ने शरीर में स्थित प्राण को परम्परानुसार पांच विभागों में विभाजित किया है।

सामूहिक रूप में इन्हें 'पंच प्राण' कहा जाता है। शरीर में इन पांच प्राणों का प्रवाह जिनके द्वारा होता है, उन्हें प्राचीन भारतीय विज्ञान में नाड़ी कहा गया है। ये नाड़ियां तंत्रिकाओं से भिन्न हैं। एक्यूपंक्चर एवं एक्यूप्रेयर पद्धति में इन प्राण–प्रवाहों की चिकित्सा द्वारा रोगों का उपचार किया जाता है। पंच प्राणों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है –

1. प्राण – यह सम्पूर्ण शरीर में नहीं वरन् अंग विशेष में स्थित प्राण है। कंठनली तथा श्वास पटल (**Diaphragm**) के मध्य इसकी स्थिति है। श्वसन अंग, वाणी सम्बन्धी अंग, निगल या अन्न नलिका (**Gullet**) आदि से इसका सम्बन्ध है। साथ ही इन्हें क्रियाशील बनाने वाली मांसपेशियों से भी यह सम्बन्धित है। यह वह शक्ति है कि जिसके द्वारा श्वास नीचे की ओर खींची जाती है।

2. अपान – यह नाभि प्रदेश के नीचे स्थित है। यह शक्ति बड़ी आंत को बल प्रदान करती है। वृक्क, गुदा–द्वार तथा मूत्रेन्द्रियों को भी शक्ति देती है। अतः प्राथमिक रूप से इसका सम्बन्ध प्राणवायु के गुदा–द्वार तथा साथ ही नासिका एवं मुख के द्वारा निष्कासन से है।

3. समान – इसका सम्बन्ध छाती एवं नाभि के मध्यवर्ती क्षेत्र से है। यह प्राण पांच संस्थानों यथा यकृत, आंत, क्लोम एवं जठर तथा उनके रस या स्राव को प्रेरित तथा नियंत्रित करता है। दिल तथा रक्त–परिसंचरण को भी क्रियाशील बनाता है। भोज्य पदार्थों के पाचन में अनुकूलता लाता है।

4. उदान – इस प्राण–शक्ति द्वारा कंठ नली से ऊपर के भागों का नियंत्रण होता है। नेत्र, नासिका, कान आदि सम्पूर्ण शरीर की इन्द्रियां तथा मस्तिष्क इस शक्ति द्वारा कार्य करते हैं। इसकी अनुपस्थिति में हममें सोच विचार की शक्ति नहीं रह जाएगी।

5. व्यान – यह जीवनी शक्ति सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। यह अन्य शक्तियों के मध्य सहयोग स्थापित करती है। समस्त शरीर की गतिविधियों को नियमित व नियंत्रित करती है। सभी शारीरिक अंगों तथा उनसे सम्बन्धित मांसपेशियों, पेशीय तंतुओं, नाड़ियों एवं सन्धियों में समरूपता लाती है तथा उन्हें क्रियाशील बनाती है। यह शरीर की लम्बरूप स्थिति के लिए भी जिम्मेदार है।

महर्षि अरविंद ने प्राण को चार भागों में विभाजित किया है – निम्न प्राण, निम्नतर प्राण, उच्च प्राण एवं उच्चतर प्राण। कुछ योगाचार्यों ने मंद, मध्यम और गहन ये तीन भेद बताये हैं। मंद प्राण वाले व्यक्ति के विचार बिखरे और उलझे होते हैं। वह किसी को प्रभावित नहीं कर पाता। मध्यम प्राण वाला कुछ अधिक स्पष्ट और शिष्ट व्यवहार वाला होता है। वह प्राणायाम द्वारा एकाग्रता में अपूर्व विकास कर सकता है। गहन प्राण के लोग सूक्ष्म विचारक, स्थिर मति तथा प्रभावी होते हैं। ऐसे लोगों का परिवार, समाज तथा देश में बहुसंख्यक होना संपूर्ण विश्व के लिए कल्याणकारी होता है।

11.4 प्राण – जैन दृष्टिकोण

जैन दर्शन के अनुसार हमारा शरीर तीन शरीरों को समाहित किये हुए है–

औदारिक, तैजस् एवं कार्मण। कार्मण शरीर संस्कारों का आवास है।

तैजस् शरीर औदारिक शरीर को शक्ति प्रदान करता है। यह शक्ति

प्राण के रूप में औदारिक शरीर में पहुंचती है।

11.4.1 प्राण और तैजस् शरीर

स्थूल शरीर (औदारिक शरीर) में चैतन्य की अभिव्यक्ति प्राण द्वारा होती है। यह तैजस् शरीर से स्थूल शरीर में आता है। तैजस् के परमाणु (तैजस् वर्गणाएं) आकाश मंडल में व्याप्त हैं। उन परमाणुओं का स्थूल शरीर से आकर्षण एवं ग्रहण होता रहता है तथा उनका तैजस् शरीर में परिणमन होता है। जब वह अधिक मात्रा में होता है, तब तैजस् शरीर पुष्ट हो जाता है और जब कम मात्रा में होता है, तब तैजस् शरीर क्षीण हो जाता है। तैजस् शरीर से स्थूल शरीर में एक ही प्रकार की प्राण शक्ति का विकिरण होता है। वह प्राण शक्ति स्थूल शरीर से जुड़कर अनेक प्रकार के कार्य करती है एवं पुनः आकाश–मण्डल में विसर्जित हो जाती है। कार्य–भेद के आधार पर वह स्थूल शरीर में दस भागों में विभक्त हो जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.4.2 प्राण के प्रकार

कार्यभेद के आधार पर प्राण के दस विभाग इस प्रकार हैं–

1. श्रोत्रेन्द्रिय प्राण
2. चक्षुरिन्द्रिय प्राण
3. घ्राणेन्द्रिय प्राण
4. रसनेन्द्रिय प्राण
5. स्पर्शनेन्द्रिय प्राण
6. मनोबल प्राण
7. वचनबल प्राण
8. कायबल प्राण
9. श्वासोच्छ्वास प्राण
10. आयुष्य प्राण

पांच इन्द्रियों को सक्रिय रखने वाले प्रथम पांच प्राण हैं। मन, वचन और काया को सक्रिय रखने वाले मन, वचन और काया प्राण हैं। श्वासोच्छ्वास प्राण रक्त शोधन क्रिया के माध्यम से सम्पूर्ण शरीर को सक्रिय रखता है। आयुष्य प्राण जीवन की अवधि के अस्तित्व का आधार है।

11.4.3 प्राण और पर्याप्ति

मन, वचन व शरीर की क्रियाओं का सम्पादन करने वाली शक्ति प्राण है। इन क्रियाओं के सम्पादन में जिन पौद्गलिक संस्थानों की सहायता मिलती है उन्हें पर्याप्ति कहते हैं। हमारे स्थूल शरीर में ऐसे छह संस्थान (पर्याप्तियां) हैं। वे सब तैजस शरीर के संवादी केन्द्र हैं। उनके माध्यम से बाह्य प्राण (तैजस् वर्गणाएं) के परमाणुओं का आकर्षण, परिणमन और उत्सर्जन होता रहता है।

पर्याप्ति का शाब्दिक अर्थ है– पूर्णता। तात्पर्य यह है कि जन्म के प्रारम्भ में जीवनोपयोगी आधारभूत पौद्गलिक शक्ति (संस्थान) के निर्माण की पूर्णता। जब जीव एक स्थूल शरीर को छोड़कर दूसरा स्थूल शरीर धारण करता है तब भावी जीवन यात्रा के निर्वाह के लिए अपने नवीन जन्म क्षेत्र में एक साथ आधारभूत पौद्गलिक सामग्री क निर्माण करता है। इसे या इससे उत्पन्न होने वाले केन्द्र एवं संस्थान को पर्याप्ति कहते हैं।

पर्याप्तियां शक्ति–संस्थान हैं और प्राण शक्ति उससे अभिव्यक्त होती है। इनमें परस्पर कार्य–कारण का भाव प्रतीत होता है। शक्ति–संस्थान कारण है, जिनसे बाह्य प्राण जो आकाश–मण्डल में व्याप्त है, वह भीतर पहुंचता है और शक्ति की अभिव्यक्ति उनके कार्य हैं। संख्या–विस्तार को संक्षेप में लाने पर दोनों की संख्या समान हो जाती है।

स्थूल शरीर में जितनी सक्रियता और गतिशीलता है उसक कारण प्राण शक्ति है।

शक्ति–संस्थान	**शक्ति प्रवाह**
आहार पर्याप्ति	आयुष्य प्राण
शरीर पर्याप्ति	कायबल प्राण
इन्द्रिय पर्याप्ति	इन्द्रिय प्राण
श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति	श्वासोच्छ्वास प्राण
भाषा पर्याप्ति	वचनबल प्राण
मनःपर्याप्ति	मनोबल प्राण

ये शक्ति संस्थान और शक्ति प्रवाह न तो चेतन की विशुद्ध अवस्था में होते हैं और न अचेतन, जड़ अवस्था में होते हैं। ये चेतन और अचेतन (जड़) के संयोग से उत्पन्न होते हैं। हम जितने प्राणी हैं, वे सब चेतन और अचेतन (जड़) के संयोग की अवस्था में हैं। हमारे विशुद्ध चैतन्य का उदय नहीं हुआ है, इसलिए हम केवल चैतन्य की भूमिका में अवस्थित नहीं हैं। हम अनुभव शक्ति व ज्ञान शक्ति से सम्पन्न हैं। इसलिए हम केवल अचेतन की भूमिका में भी नहीं है बल्कि चैतन्य और अचैतन्य की संयुक्त भूमिका में हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ये शक्ति संस्थान और शक्ति–प्रवाह जीव तथा निर्जीव तत्त्व के बीच व्यावर्तक (भेद डालने वाले) हैं। जिनमें श्वास लेने की शक्ति है, वह जीव है और जिनमें आहार करने, शरीर रचना करने, इन्द्रिय रचना करने की शक्तियां नहीं हैं वे निर्जीव हैं। भाषा शक्ति और चिंतन शक्ति जीव के लक्षण नहीं हैं किंतु वे विकास के अग्रिम सोपान हैं।

11.5 अन्तर्यात्रा

प्राण के सारे केन्द्र मस्तिष्क में हैं। प्राण–धारा के दो मार्ग हैं, उसका एक बाह्य मार्ग है और एक भीतरी। बाह्य मार्ग से प्राण–शक्ति जाती है तो प्रत्येक कोशिका को सक्रिय करती है, हमारे शरीर–तंत्रों को सक्रिय बनाती है। जो सामान्य शक्ति है, वह उसी से उत्पन्न होती है, वह अतिरिक्तता या विशिष्टता उत्पन्न नहीं करती। यह हमारे दस प्राणकेन्द्रों को सक्रिय करती है जो जीवन यात्रा को सही ढ़ंग से चलाते हैं। जब हम प्राण–शक्ति के प्रवाहित होने वाले मार्ग को बदल देते हैं, तब वहां विशिष्ट शक्तियां जागृत हो जाती हैं। सुषुम्ना या मेरुरज्जु (Spinal Cord) के मार्ग से प्राण–शक्ति को ज्ञान केन्द्र में ले जाने का प्रयोग है– अन्तर्यात्रा। यह हमारे भीतर विशिष्ट शक्तियों को जागृत करता है। व्यक्तित्व-विकास की प्रबल संभावनाओं को उजागर करता है।

11.6 अन्तर्यात्रा का प्रयोजन

11.6.1 शक्ति का उर्ध्वारोहण

साधना में अन्तर्यात्रा का मुख्य प्रयोजन या उद्देश्य है– शक्ति का उर्ध्वारोहण व विशिष्ट क्षमताओं का जागरण। शक्ति का भण्डार हमारे नीचे के केन्द्र शक्ति-केन्द्र के पास है। शक्ति केन्द्र में पड़ी हुई शक्ति काम नहीं आती। शक्ति वही काम आती है जो ज्ञान केन्द्र के पास उपलब्ध होती है। जैसे कुएं में पानी बहुत है पर दैनिक जीवन के कार्य-कलापों के लिए बार-बार कुएं पर नहीं जाया जा सकता। कुएं से पानी का भण्डारण घर पर कर लिया जाता है। वही बाद में आवश्यकतानुसार काम में आता है। इसी प्रकार साधना में शक्ति का ऊर्ध्वारोहण ज्ञान-केन्द्र में करना आवश्यक है उसी का उपयोग चित्त-विशुद्धि, विशिष्ट ज्ञान व क्षमताओं के जागरण में होता है।

11.6.2 शक्ति का संतुलन

प्राण–शक्ति की धाराएं हमारी रीढ़ के भीतर प्रवाहित होती हैं। योग–शास्त्र की भाषा में प्राण की मुख्य तीन धाराएं हैं– ईड़ा, पिंगला, सुषुम्ना। इसमें ईड़ा की धारा जब अति सक्रिय होती है तो व्यक्ति निष्क्रिय, दब्बू एवं उदासीन हो जाता है। दूसरी ओर जब पिंगला की धारा अति सक्रिय होती है तो व्यक्ति आक्रामक, उत्तेजित व उदण्ड हो जाता है। इन दोनों ही नाड़ियों का संतुलन स्वस्थ व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक है। अन्तर्यात्रा का दूसरा उद्देश्य है– शक्ति का संतुलन स्थापित करना।

11.6.3 अन्तर्मुखता का विकास

चेतना की यात्रा कहां हो रही है? यदि चेतना की यात्रा नीचे के केन्द्रों की तरफ अधिक होगी तो व्यक्ति सुख के लिए अपने से दूर (इन्द्रिय–जगत्) बाहर की दुनिया में भटकता है। वह अपनी (इन्द्रियातीत) शक्तियों से अपरिचित रह जाता है। जब चित्त की यात्रा ऊपर के केन्द्रों की तरफ अधिक होती है तो व्यक्ति अपने आपसे परिचित होता है एवं अन्तमुर्खता बढ़ती है। सहज आन्तरिक आनन्द जागृत होता है।

11.7 अन्तर्यात्रा का आध्यात्मिक दृष्टिकोण

इस शरीर में जो ऊर्जा के स्थान हैं, केन्द्र हैं, उन्हीं के पास वृत्ति और वासना के केन्द्र भी हैं। शक्ति-केन्द्र के पास ही वासना का केन्द्र 'स्वास्थ्य केन्द्र' है और वृत्तियों का केन्द्र 'तेजस् केन्द्र' है। यदि वासनाएं और वृत्तियां प्रबल हैं तो शक्ति का उपयोग उनको पुष्ट करने में होता है। जब तक शक्ति नीचे के केन्द्रों में रहेगी वह उनका पोषण करती रहेगी। यदि इस शक्ति का ऊर्ध्वारोहण, मार्गान्तरीकरण, रूपान्तरण ज्ञान केन्द्र की ओर कर लेंगे तो ज्ञान का पौधा लहलहा उठेगा। जब जिसको शक्ति का सिंचन मिलेगा वही पल्लवित होगा, वह चाहे ज्ञान हो या वासना। शक्ति का उर्ध्वारोहण ज्ञान-केन्द्र में करने की एक सशक्त प्रक्रिया है– अन्तर्यात्रा।

11.7.1 प्राण, चित्त का अनुचर

प्राण, चित्त का अनुचर है। जहां–जहां चित्त की यात्रा होती है वहां–वहां प्राण भी उसका अनुगमन करता है। अन्तर्यात्रा में चित्त की यात्रा नीचे शक्ति–केन्द्र से ज्ञान–केन्द्र की ओर होती है। जहां–जहां चित्त उपस्थित होता है, वहां–वहां की अनुभूति, बोध एवं ज्ञान होता है। वहीं पर प्राण भी उपस्थित होता है। चित्त की यात्रा, सुषुम्ना के मार्ग के अनुभव के साथ आगे बढ़ती है। इसी के साथ प्राण की यात्रा भी ऊर्ध्वमुखी होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.7.2 महापथ के प्रति समर्पण

अध्यात्म के प्रति समर्पित वीर पुरुष वासना और वृत्तियों के चंगुल से शक्ति को मुक्त कर लेते हैं। वे इस महापथ अर्थात् सुषुम्ना पथ, या कुण्डलिनी पथ के प्रति समर्पित रहते हैं।

जैन आगम, आयारो में भगवान महावीर ने कहा है –

''पणया वीरा महावीहिं''। आयारो 1/37

वीर पुरुष महापथ के प्रति प्रणत (समर्पित) होते हैं। महापथ का अर्थ कुण्डलिनी–प्राणधारा भी है। पराक्रमी साधक ऊर्ध्वगमन के लिए इस प्राणधारा के प्रति समर्पित हो जाता है। पृष्ठरज्जु के माध्यम से प्राणधारा को मस्तिष्क की ओर प्रवाहित कर देता है। उसमें हिंसा के संस्कार समाप्त हो जाते हैं।''

'सूयगडो' में भी इसी प्रकार का संकेत मिलता है–

पणए वीरे महाविंहि, सिद्धिपहं णेयाउयं धुवं। सूयगडो 1/2/12

धीर पुरुष लक्ष्य तक ले जानेवाले उस शाश्वत महापथ के प्रति प्रणत होते हैं जो सिद्धि का पथ है।

शिव संहिता आदि में 'संधि' शब्द का अर्थ सुषुम्ना आया है। 'संधि' शब्द का प्रयोग आगमों में अनेक स्थलों पर प्रयुक्त है। इसका तुलनात्मक अन्वेषण अनेक नये तथ्यों को उद्घाटित कर सकता है।

आत्मा का गुण है– चैतन्य। चैतन्य का कार्य है– जानना और देखना। जानने और देखने की प्रक्रिया हमारे शरीर में न मांसपेशियां करती हैं न हड्डियां करती हैं। यह प्रक्रिया होती है नाड़ी तन्त्र के माध्यम से। नाड़ी तंत्र का केन्द्रीय आधार है– मस्तिष्क और सुषुम्ना। सुषुम्ना और मस्तिष्क के भीतर चित्त की यात्रा चैतन्य को जागृत करती है। अन्तरजगत् में प्रवेश कराती है।

11.8 अन्तर्यात्रा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

स्वायत्त तंत्रिका-तंत्र के दो भाग होते हैं– अनुकम्पी तथा परानुकंपी तंत्र। अनुकम्पी तंत्र में अनेक गैंग्लियान की बनी दोहरी श्रृंखला (जंजीर) होती है जो मेरुरज्जु के दांये-बांये एक-एक पड़ी हुई होती है। ये गैंग्लिया तंत्रिका तंतुओं के द्वारा केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र से तथा आंतरांगों (Visceral Organs) से जुड़े रहते हैं। परानुकम्पी तंत्र के गैंग्लिया भी युग्मित होते हैं लेकिन ये आंतरांगों के अधिक निकट होते हैं। इस परानुकंपी तंत्र का उद्भव मस्तिष्क और मेरु–रज्जु के पश्च भाग में होता है।

यह तंत्र शरीर के तमाम भीतरी अंगों के कार्यों का नियमन करते हैं। इन अंगों में परानुकम्पी और अनुकम्पी दोनों तंत्रों से आयी हुई तंत्रिकाएं पहुंचती हैं। ये दोनों तंत्र संबद्ध अंगों पर परस्पर विरोधी प्रभाव डालते हैं। अनुकम्पी तंत्र उस विशिष्ट अंग की क्रिया को प्रायः तीव्रतर अथवा उत्तेजित करता है किंतु परानुकंपी इस क्रिया को धीमा करता है अथवा उसी अंग पर संदमनी (Inhibitory) प्रभाव डालता है।

योग शास्त्र की भाषा में इड़ा की अतिसक्रियता के जो परिणाम परिलक्षित हैं, विज्ञान की भाषा में वही परिणाम परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र की अतिसक्रियता से आते हैं। इड़ा या परानुकंपी की अतिसक्रियता से व्यक्ति दब्बू, डरपोक, उदासीन व निराश हो जाता है। दूसरी ओर पिंगला या अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र की अतिसक्रियता से व्यक्ति आक्रामक, उद्दण्ड व उच्छृंखल हो जाता है।

मेरु-रज्जु में चित्त की यात्रा दोनों तंत्रों में संतुलन स्थापित करती है। व्यक्ति इससे संतुलित व स्वस्थ व्यवहार करता है। दीर्घ अभ्यास से व्यक्ति के जागृत मन या चित्त का नियंत्रण केन्द्रीय नाड़ी तंत्र पर होता है।

11.9 अन्तर्यात्रा की निष्पतियाँ

11.9.1 उच्च मानसिक शक्तियों का विकास – मानसिक शक्तियों का विकास जीवन की सफलता का एक प्रमुख घटक है। इस शक्ति के सभी केन्द्र मस्तिष्क में स्थित हैं। हमारी स्मरण शक्ति, चिंतन शक्ति, तर्क शक्ति, निर्णय शक्ति, कल्पना शक्ति, समझ शक्ति, अभिव्यक्ति शक्ति आदि अनेक शक्तियों का केन्द्र मस्तिष्क है। मस्तिष्क का वजन शरीर के अनुपात का 2 प्रतिशत है पर इसको लगभग 20 प्रतिशत पोषण की जरूरत होती है। सामान्यतया यह ऊर्जा, ईंधन या शक्ति हमें आहार एवं श्वास से मिलती है। ये हमारी सामान्य शक्ति को ही जागृत करते हैं। मस्तिष्क की अतिरिक्त एवं विशिष्ट शक्तियों को जागृत करने के लिए अतिरिक्त शक्ति की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आवश्यकता होती है वह शक्ति हमें शक्ति-केन्द्र से मिल सकती है। इसकी प्रक्रिया हमें ध्यान–ग्रंथों से उपलब्ध होती है। शक्ति-केन्द्र से ज्ञान-केन्द्र की ओर शक्ति की यात्रा इन उच्च मानसिक शक्तियों को जागृत करती है।

11.9.2 भावनात्मक रूप से संतुलित व्यक्तित्व का निमार्ण – व्यक्ति के व्यवहार का निमार्ण उसके भावों के अनुरूप होता है और व्यक्ति के भाव उसकी अंतः स्त्रावी ग्रन्थियों के स्त्रावों के साथ ही लिम्बिक सिस्टम पर निर्भर करते है। मस्तिष्क का विशेष क्षेत्र लिम्बिक सिस्टम व्यक्ति के भावों का उद्‌गम स्थल होता है।

अन्तर्यात्रा के द्वारा ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण होता है, जिससे मस्तिष्क में प्राण प्रवाह संतुलित एवं सम्बद्धित होता है, परिणामतः व्यक्ति का लिम्बिक सिस्टम सकारात्मक रूप से प्रभावित होता है तथा व्यक्ति में भावों के ऊपर नियंत्रण की क्षमता विकसित होती है फलतः भावनात्मक रूप से स्थिर एवं संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

11.10 अन्तर्यात्रा की प्रक्रिया

(1) चित्त को शक्ति केन्द्र पर ले जाएं।

(2) ऊपर उठाएं, सुषम्ना के मार्ग से ज्ञान केन्द्र तक लाएं।

(3) फिर उसी मार्ग से शक्ति केन्द्र तक नीचे लाएं।

(4) नीचे से ऊपर, ऊपर से नीचे, सुषुम्ना में चित्त की यात्रा करें।

(5) वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

(6) पूरी चेतना को सुषुम्ना में समेट लें।

(एक दो मिनट बाद)– चित्त की गति को श्वास की गति के साथ जोड़ें। श्वास छोड़ते समय चित्त को नीचे से ऊपर ले जाएं और श्वास लेते समय चित्त को ऊपर से नीचे लाएं।

नोटः– प्रारम्भ में ब्लडप्रेशर मापने के यन्त्र के उदाहरण से पारे की तरह चित्त को ऊपर–नीचे घुमाने की बात समझा दें।

11.11 सारांश

आइंस्टाइन के अनुसार ऊर्जा पदार्थ में व पदार्थ ऊर्जा में रूपान्तरित हो सकता है। चुम्बकीय, विद्युत व गुरुत्वाकर्षण तीनों ही शक्तियां प्राण की ही अभिव्यक्तियां है। ऊर्जा और प्राण दोनों भिन्न है। योगियों के अनुसार बाह्य प्राण का संग्रह मणीपुर चक्र में रहता है। हवा में स्थित प्राण की तुलना विद्युत आवेशित कणों, विशेषकर ऋण आवेशित कणों से की गई है। वायु मण्डल में दो प्रकार के कण लघु ऋणात्मक एवं वृहत कण होते हैं। गांवों में एक बड़े कण के अनुपात में 2 छोटे कण होते हैं वही शहरों में इसका अनुपात 275 बड़े कणों की तुलना में 1 छोटा कण होता है। जहाँ छोटे कण कम होते हैं वहां प्रदूषण अधिक होता है। वाहनों, फैक्ट्रियों एवं विषैली गैसें इन छोटे कणों का भक्षण करती हैं जिससे हवा में प्राण वायु की कमी होती है।

अध्यात्म साधना में आगे बढ़ने के लिये यह जानना जरूरी है कि प्राण को कैसे संग्रहित करते हैं तथा कैसे संचालित करते हैं? आचार्य तुलसी के अनुसार प्राण जीवनी शक्ति है। प्राण के पांच विभाग हैं – प्राण, अपान, समान, उदान,और व्यान।

हमारे शरीर में औदारिक, तैजस व कार्मण शरीर समाहित है। प्राण शक्ति शरीर से जुड़कर अनेक कार्य करती है और फिर आकाश मण्डल में विसर्जित हो जाती है। स्थूल शरीर में यह दस भागों में विभक्त है। शरीर में छह संस्थान (पर्याप्तियां) हैं। पर्याप्ति का अर्थ है पूर्णता। स्थूल शरीर की सक्रियता और गतिशीलता का कारण प्राण शक्ति ही है।

अन्तर्यात्रा के द्वारा शक्ति का ऊर्ध्वारोहण व क्षमता का जागरण किया जा सकता है। इड़ा–पिंगला को संतुलन रखा जा सकता है। जहां चित्त यात्रा करता है प्राण भी उसके साथ रहता है। शक्ति केन्द्र से ज्ञान केन्द्र की ओर शक्ति की यात्रा उच्च मानसिक शक्तियों को जागृत करती है।

11.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वायुमण्डल में ....प्रकार के कण होते हैं।
2. योग के अनुसार प्राण के ....भाग किए गए हैं।
3. प्राण को अनुशासित करने की प्रक्रिया .... है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. किसकी अतिसक्रियता से व्यक्ति डरपोक व निराशा हो जाता है।
5. नाड़ी तंत्र का केन्द्रीय आधार बतावें।
6. प्राण–धारा के मुख्य कितने मार्ग हैं?
7. कार्य–भेद के आधार पर प्राण के कितने भाग हैं?
8. अन्तर्यात्रा क्यों करते हैं?

लघुत्तरीय प्रश्न

1. वैज्ञानिक दृष्टि से प्राण क्या है?
2. प्राण के बारे में जैन दृष्टिकोण क्या है?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अन्तर्यात्रा पर निबन्ध लिखियें।

11.13 संदर्भ ग्रन्थ

1. प्राण–विज्ञान – गणाधिपति श्री तुलसी।
2. प्राण–चिकित्सा – साध्वी राजीमती।
3. प्राण–विज्ञान – स्वामी शिवानन्द
4. प्रेक्षाध्यान : सिद्धांत और प्रयोग – आचार्य महाप्रज्ञ।
5. जीवन विज्ञान की रूपरेखा – मुनि धर्मेश।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–12: श्वास प्रेक्षा – प्रयोजन, आध्यात्मिक–वैज्ञानिक दृष्टिकोण, प्रकार, निष्पत्तियां एवं प्रक्रिया

इकाई की संरचना

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 श्वास प्रेक्षा

12.3 श्वास प्रेक्षा का प्रयोजन

12.3.1 ज्ञाता द्रष्टा भाव का विकास

12.4 श्वास प्रेक्षा का आध्यात्मिक दृष्टिकोण

12.4.1 प्राण का आहरण

12.4.2 श्वास और प्राण

12.4.3 ध्यान का आलम्बन – श्वास

12.4.4 शुद्ध, सहज और आंतरिक आलम्बन

12.4.5 दीर्घ श्वास

12.4.6 श्वास और संवेग

12.5 श्वास प्रेक्षा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

12.5.1 श्वसन प्रक्रिया

12.5.2 वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण श्वास

12.5.3 सम्यक् श्वसन के लाभ

12.6 श्वास प्रेक्षा के प्रकार

12.6.1 दीर्घ श्वास प्रेक्षा

12.6.2 समवृत्ति श्वास प्रेक्षा

12.7 श्वास प्रेक्षा की निष्पत्तियां

12.7.1 चित की निर्मलता

12.7.2 मानसिक एकाग्रता

12.7.3 जागरुकता

12.7.4 समभाव

12.7.5 शक्ति का जागरण

12.8 श्वास प्रेक्षा की प्रक्रिया

12.9 सारांश

12.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.11 संदर्भ ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.0 प्रस्तावना

भारतीय अध्यात्म साधना में श्वास का बड़ा महत्व है। सम्यक् श्वास से रक्त परिसंवरण की क्रिया व्यवस्थित होती है तथा कोशिकाओं को पूरी मात्रा में आक्सीजन मिलती है तथा रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है। जैन परम्परा में श्वास प्रेक्षा के द्वारा प्राण की साधना की जाती है। श्वास स्वचलित व इच्छा चलित दोनों ही है।

12.1 उद्देश्य

इस पाठ के माध्यम से आप जान पायेंगे कि –

- श्वास प्रेक्षा का प्रयोजन क्या है?
- श्वास प्रेक्षा का आध्यात्मिक दृष्टिकोण क्या है?
- श्वास प्रेक्षा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण क्या है?
- श्वास प्रेक्षा के कितने प्रकार हैं?
- श्वास प्रेक्षा की निष्पत्तियां क्या हैं?
- श्वास प्रेक्षा का प्रयोग किस प्रकार किया जाता है?

12.2 श्वास प्रेक्षा (Perception of Breathing)

'संपिक्खए अप्पगमप्पएणं' आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो; स्वयं स्वयं को देखो यह प्रेक्षाध्यान का मूल सूत्र है। हमारी आत्मा और शरीर तत्वतः भिन्न होते हुए भी व्यवहार के धरातल पर भिन्न नहीं हैं। श्वास और जीवन दोनों एकार्थक जैसे हैं। जब तक जीवन तब तक श्वास, जब तक श्वास तब तक जीवन। श्वास का शरीर और मन के साथ गहरा संबंध है। यह एक ऐसा सेतु है जिसके द्वारा नाड़ी संस्थान, मन और प्राण-शक्ति तक पहुंचा जा सकता है। श्वास, शरीर और मन; ये सब प्राण-शक्ति द्वारा संचालित होते हैं। प्राण-शक्ति सूक्ष्म शरीर (तैजस् शरीर) द्वारा और सूक्ष्म शरीर अतिसूक्ष्म शरीर (कर्म शरीर) द्वारा संचालित होता है। अति सूक्ष्म शरीर आत्मा द्वारा संचालित होता है। इसलिए श्वास, शरीर, प्राण और कर्म के स्पंदनों को देखना आत्मा को देखना है। उस चैतन्य शक्ति को देखना है जिसके द्वारा प्राण-शक्ति स्पंदित होती है।

चेतना को शरीर में अभिव्यक्त करने का माध्यम है– श्वास। चित्त की व्यग्रता में श्वास चंचल और एकाग्रता में शांत होने लगता है। श्वास और मन का भावात्मक ऐक्य है जिससे दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। योग के ग्रंथों में योगी का पहला विश्लेषण श्वास विजेता ही बताया गया है। श्वास प्रेक्षा में श्वास का नियमन, मंदीकरण तथा सूक्ष्मता का अभ्यास किया जाता है जिससे साधना की उच्च भूमिकाओं में जाने का प्रवेश द्वार उद्घाटित हो जाती है। श्वास प्रेक्षा का तात्पर्य है– चित्त श्वास को ही देखता रहे अथवा चित्त और श्वास दोनों साथ–साथ चलें।

12.3 श्वास प्रेक्षा का प्रयोजन

12.3.1 ज्ञाता–द्रष्टा भाव का विकास

श्वास प्रेक्षा ज्ञाता–द्रष्टा भाव को विकसित करने का सक्षम उपाय है। हमारी चेतना का मूल धर्म है– जानना और देखना, ज्ञाता-भाव और द्रष्टा-भाव। हम जब अपने अस्तित्व में होते हैं, आत्मा की सन्निधि में होते हैं तब केवल जानना और देखना ये दो ही बातें घटित होती हैं किन्तु जब बाहर आते हैं, अपने केन्द्र से हटकर परिधि में आते हैं तब साथ में और कुछ जुड़ जाता है, मिश्रण हो जाता है। मिश्रण होते ही जानना-देखना छूट जाता है और सोचना–विचारना, चिन्तन करना, मनन करना रह जाता है। चिन्तन-मनन सत्य की खोज के साधन नहीं हैं। सत्य की खोज के लिए अध्यात्म की चेतना को जगाना होगा। यह द्रष्टाभाव से ही सम्भव होता है। श्वास को देखना चेतना-जागरण की दिशा में पहला कदम है। सही दिशा में उठाया गया कदम मंजिल तक पहुंचाने वाले अगले कदमों की शृंखला का आदि बिन्दु होता है। श्वास को देखना आत्म-साक्षात्कार की मंजिल तक पहुंचने का पहला कदम है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

श्वास को देखने का अर्थ है– दर्शन की बात पर आ जाना। यहां सोचना छूट जाता है, केवल देखना रह जाता है। देखना शुरू करते ही विचारों और विकल्पों पर प्रहार होने लग जाता है। विकल्पों से हटकर अविकल्प और चिन्तन से हटकर अचिन्तन पर कदम बढ़ने लगते हैं। श्वास-प्रेक्षा के द्वारा हम जानने और देखने की मूल प्रवृत्ति का प्रारंभ करते हैं, ज्ञाता भाव, दृष्टा भाव को विकसित करते हैं। जब हम श्वास-प्रेक्षा का अभ्यास करते हैं, तब श्वास के साथ चित्त को जोड़ते हैं या चित्त से श्वास को देखते हैं। श्वास को देखते हैं किन्तु सोचते नहीं। मूलतः 'केवल देखने' का यह प्रयत्न है। साथ–साथ एकाग्रता भी सधती है किन्तु हम श्वास प्रेक्षा केवल एकाग्रता के लिए नहीं करते, ज्ञाता-द्रष्टा भाव को विकसित करने के लिए करते हैं।

12.4 श्वास प्रेक्षा का आध्यात्मिक दृष्टिकोण

12.4.1 प्राण का आहरण

श्वास का सम्बन्ध है प्राण से, प्राण का सम्बन्ध है पर्याप्ति से। यह जीवन के पहले ही क्षण में निर्मित हो जाता है। प्राण को भी प्राण चाहिए। वह प्राण आकाश–मंडल से प्राप्त होता है। सारे आकाश–मंडल में प्राण–चक्र फैला हुआ है। आहार पर्याप्ति के योग्य वर्गणाएं सारे आकाश में फैली हुई हैं। ऊर्जा की या प्राण–शक्ति की वर्गणाएं फैली हुई हैं। वे प्राप्त होती हैं– श्वास के माध्यम से। हम केवल श्वास ही नहीं लेते, उसके साथ प्राण भी लेते हैं। शरीर–शास्त्र के अनुसार जब–जब हम श्वास लेते हैं, बाहर की हवा भीतर जाती है जिसमें ऑक्सीजन होता है। कर्मशास्त्र की भाषा में हम प्राण लेते हैं। श्वास के साथ जाने वाला प्राण उस प्राण को संवर्द्धित करता है, पोषण देता है।

जैन आगम भगवती और प्रज्ञापना में यह प्रश्न उपस्थिति किया गया है कि जीव कब आहार लेता है और कितनी दिशाओं से आहार लेता है? प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि जीव पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, उर्ध्वदिशा और अधोदिशा, इन छहों दिशाओं से आहार लेता है। केवल आहार (मुंह से ग्रहण किया जाने वाला भोजन आदि) का प्रसंग ही नहीं है, रोम–आहार (रूंओं से ग्रहण किए जाने वाले सूक्ष्म पोषक तत्त्व) भी अल्प मात्रा में होता है। यहां आहार का अर्थ है– प्राण–तत्त्व का आहार। जीव जीवित रहने के लिए निरन्तर बाहर से आहरण करता है, वह निरन्तर प्राण–ऊर्जा लेता है। यह आहरण कभी नहीं रुकता।

ऊर्जा या प्राण के आहरण का सशक्त माध्यम है– श्वास। वह निरंतर चलता है तो आहरण भी निरन्तर चलता है। श्वास का संबंध है प्राण से, प्राण का संबंध है सूक्ष्म प्राण से और सूक्ष्म प्राण का संबंध है सूक्ष्मतम शरीर से अर्थात् कार्मण शरीर से।

12.4.2 श्वास और प्राण

श्वास भीतर जाता है, उसके साथ प्राणवायु भीतर जाती है। प्राण तत्त्व भी भीतर जाता है और प्राण–तत्त्व का ऊर्जा के रूप में परिणमन होता है। हमारे जीवन का समूचा क्रम, हमारी सारी प्रवृत्तियां प्राणशक्ति या प्राण ऊर्जा के द्वारा संचालित होती हैं। यदि प्राण की ऊर्जा नहीं है तो चेतना टिक नहीं सकेगी। बोलना, चलना, देखना, इन्द्रिय, मन और बुद्धि का क्रियाशील होना ये सब प्राण–ऊर्जा के कार्य हैं। इनकी सक्रियता की पृष्ठभूमि में प्राण का प्रवाह कार्य करता है। शरीर, मन और इंद्रियां अचेतन हैं, प्राण–ऊर्जा का योग पाकर वे सभी सचेतन हो जाते हैं।

हम जितना गहरा श्वास लेते हैं, उतनी ही अधिक प्राण–शक्ति प्राप्त होती है। जब हम श्वास–प्रेक्षा द्वारा श्वास–दर्शन करते हैं, तब प्राण–शक्ति और बढ़ जाती है। जो यौगिक प्रदर्शन आज देखने में आते हैं, वे सारे श्वास के स्तर पर घटित होने वाले प्राणशक्ति के प्रदर्शन हैं। इसके आधार पर मोटर या ट्रक को छाती पर से निकाला जा सकता है। आत्मा में अनंत शक्ति है, अनन्त वीर्य है। श्वास उस अनंत शक्ति का अंश है, इसलिए श्वास के प्रयोग से चमत्कार किये जा सकते हैं।

12.4.3 ध्यान का आलम्बन – श्वास

हम अपनी चेतना को जागृत करना चाहते हैं। अपनी शक्ति के स्रोतों को उद्‌घाटित करना चाहते हैं। सूक्ष्म से परिचित होना चाहते हैं। यदि हमें सूक्ष्म से परिचित होना है तो सबसे पहले हम स्थूल को सम्यक् प्रकार से जानें। बाहर का दरवाजा खोले बिना भीतर के दरवाजे तक नहीं पहुंचा जा सकता। हमें स्थूल से सूक्ष्म की ओर गति करनी होगी। ध्यान में श्वास का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आलम्बन लेते हैं। इससे स्थूल से सूक्ष्म की ओर गति प्रारम्भ हो जाती है। श्वास ही एक ऐसा तत्त्व है जो बाहर भी आता है और भीतर भी जाता है। दूसरा ऐसा कोई भी साधन नहीं है जो बाहर भी रहे और भीतर भी रहे। मन है पर मन बेढंगा है। वह स्वयं इतना चंचल है कि उसे आलंबन नहीं बनाया जा सकता। उसको तो आलम्बन देना पड़ेगा।

योग के आचार्यों ने मन को वश में करने का एक उपाय बताया है। वह उपाय है– श्वास को पकड़ते ही मन पकड़ में आ जाता है। तब मन इतना सरल, सीधा हो जाता है कि उसकी चंचलता मिट जाती है। श्वास की क्रिया स्वतः संचालित तो होती है। साथ ही यह एक ऐच्छिक क्रिया (इच्छानुसार नियंत्रित की जा सकने वाली) भी है। इसलिए हमने ध्यान की प्रक्रिया में श्वास को आलंबन बनाया है। यह श्वास वह यात्री है जो बाहर की यात्रा भी करता और भीतर की यात्रा भी करता है। यह वह दीप है जो भीतर को भी प्रकाशित करता है और बाहर को भी प्रकाशित करता है। जो भीतर की भी यात्रा करना चाहें तो हमारे पास एक मात्र उपाय है कि हम मन को श्वास के रथ पर चढ़ा दें और उसके साथ–साथ भीतर चले जाएं। हमारी अन्तर्यात्रा प्रारम्भ हो जाएगी, हम अन्तर्मुखी हो जाएंगे, हम आध्यात्मिक बन जाएंगे। आध्यात्मिक बनने का सरल उपाय है– श्वास के साथ मन को जोड़ देना, दोनों का योग कर देना।

12.4.4 शुद्ध, सहज और आन्तरिक आलम्बन

जब हम श्वास पर ऐच्छिक नियंत्रण की बात करते हैं तो उसका तात्पर्य होता है– चित्त को श्वसन-क्रिया के साथ जोड़ना। जब चित्त श्वसन-क्रिया के साथ जुड़ जाता है तब वह श्वास को पकड़ने में यानी उसकी अनुभूति करने में सक्षम बनता है। यही प्रक्रिया है मन को एकाग्र या स्थिर करने की, उसकी चचलता को मिटाने की। इस क्रम से प्रशिक्षित किए जाने पर मन स्थूल से सूक्ष्म को पकड़ने में भी सक्षम हो जाता है।

हम इस बात को न सोचें कि हम मन को मिटा दें। मन को मिटाना असम्भव तो नहीं पर बहुत मुश्किल है; किन्तु नाना प्रकार के आलम्बनों में भटकने वाले मन के उस भटकाव को मिटा दें, एक ही आलम्बन में लम्बे समय तक वह स्थिर रह सके ऐसा प्रयत्न करें, इसीलिए श्वास को हमने चुना है। वह एक ऐसा आलम्बन है जो सहज है, इसे बाहर से लाना नहीं पड़ता। जब चाहें तब उसे आलम्बन बना सकते हैं। वह न भूतकाल की स्मृति है, न भविष्य की कल्पना है अपितु वर्तमान की वास्तविकता है। जब चित्त श्वास पर केन्द्रित होता है तो हमें वर्तमान में जीने का अवसर प्राप्त होता है। वह एक शुद्ध और पवित्र आलम्बन है। उसके प्रति हमारा कोई राग–द्वेष हो ही नहीं सकता।

12.4.5. दीर्घ श्वास

श्वास दो प्रकार का होता है– सहज और प्रयत्न–जनित। प्रयत्न के द्वारा श्वास में परिवर्तन किया जा सकता है, छोटे श्वास को दीर्घ बनाया जा सकता है। साधना को विकसित करने के लिए प्राण–शक्ति की प्रचुरता अपेक्षित होती है। प्राण-शक्ति के लिए श्वास का ईंधन चाहिए। श्वास का ईंधन जितना सशक्त होगा, प्राण-शक्ति उतनी ही सशक्त होगी और प्राण-शक्ति जितनी सशक्त होगी, हमारी साधना उतनी ही सफल होगी। श्वास को सशक्त बनाने के लिए ही हमे उसे 'दीर्घ' बनाना चाहिये।

सामान्यतः आदमी एक मिनट में 15-17 श्वास लेता है। इसके आस–पास दो स्थितियां बनती हैं। एक स्थिति है– श्वास की संख्या को बढ़ाने की और दूसरी स्थिति है श्वास की संख्या को घटाने की। दूसरे शब्दों में एक स्थिति है श्वास को छोटा करने की और दूसरी स्थिति है श्वास को लम्बा करने की। ये दो स्थितियां बनती हैं। जो व्यक्ति साधनारत नहीं हैं जो बहुत आवेगशील हैं, वे व्यक्ति उस दिशा में प्रस्थान करते हैं कि श्वास छोटा हो जाता है और उनकी संख्या बढ़ जाती है। 15–17 की संख्या 30–40, 50–60 तक बढ़ जाती है। आवेश में, कषाय में, वासना–तृप्ति में श्वास की संख्या बढ़ जाती है। श्वास की संख्या बढ़ती है, श्वास छोटा होता है और साथ–साथ प्राण–शक्ति पर उसका प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर भी उसका असर होता है किन्तु प्रेक्षा–ध्यान की साधना करने वाला व्यक्ति श्वास की गति व्यवस्थित करता है। वह श्वास की लम्बाई को बढ़ाता है। श्वास मंद हो, श्वास दीर्घ हो, श्वास लम्बा हो; यह साधक का प्रथम प्रयास होता है। फलस्वरूप श्वास की संख्या घटती है, लम्बाई बढ़ती है, मन शान्त होता है। इनके साथ–साथ आवेश शांत होते हैं तथा उत्तेजनाएं और वासनाएं शांत होती हैं। विभिन्न स्थितियों में श्वास की स्थिति कैसी होती है, इसे तालिका के माध्यम से सरलता से समझा जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तालिका

क्र.सं.	तथ्य	एक मिनट में औसतन श्वासों की संख्या
1.	वासना के आवेग में या सम्भोग में	60—70
2.	क्रोध, भय आदि उत्तेजना	40—60
3.	नींद में	25—30
4.	बोलते समय	20—25
5.	चलते समय	18—20
6.	बैठे—बैठे	15—17
7.	सामान्य दीर्घश्वास	8—10
8.	दीर्घश्वास—पर्याप्त अभ्यास के बाद	4—6
9.	लम्बे नियमित अभ्यास	1—3

12.4.6 श्वास और संवेग

श्वास जब छोटा होता है तब वासनाएं उभरती हैं, उत्तेजनाएं आती हैं, कषाय जागृत होते हैं या दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि जब ये उभरते हैं, तब श्वास छोटा हो जाता है। इन सबसे श्वास प्रभावित होता है। इन सब दोषों का वाहन है— श्वास। ये श्वास पर आरोहण करके आते हैं। जब कभी मालूम पड़े कि उत्तेजना आने वाली है तब तत्काल श्वास को लम्बा कर दें, दीर्घ श्वास लेने लग जाएं, आने वाली उत्तेजना लौट जाएगी। इसका कारण है कि श्वास का वाहन उसे उपलब्ध नहीं हो पाया। बिना आलम्बन के उत्तेजना या वासना प्रकट नहीं हो सकती। ध्यान की साधना करने वाला साधक मन की सूक्ष्मता को पकड़ने में अभ्यस्त हो जाता है। वह जान लेता है कि मस्तिष्क के अमुक केन्द्र में कोई वृत्ति उभर रही है। वह तत्काल दीर्घ—श्वास का प्रयोग प्रारम्भ कर देता है। उभरने वाली वृत्ति तत्काल शांत हो जाती है। साधक उन वृत्तियों का, उत्तेजना का शिकार नहीं होता।

साधक को सबसे पहला परिवर्तन जो करना होता है, वह है श्वास की गति का परिवर्तन। जो इसके मूल्य को नहीं जानता वह सच्चाई को नहीं पकड़ सकता। जो साधक दीर्घश्वास को केवल प्राणायाम के रूप में ही स्वीकार करता है, वह अपने स्वास्थ्य तक सीमित लाभ तो उठा सकता है किन्तु वह दीर्घश्वास—प्रेक्षा से होने वाले आंतरिक परिवर्तनों के लाभ से वंचित रह जाता है। हम यह स्पष्ट मानें कि दीर्घ—श्वास केवल प्राणायाम ही नहीं है, वह उससे आगे भी है। हम दीर्घश्वास को प्राणायाम की दृष्टि से नहीं ले रहे हैं। उसका मूल उपयोग है— वृत्तियों का शमन, उत्तेजनाओं का शमन और वासनाओं का शमन। इसके साथ—साथ शारीरिक और मानसिक लाभ भी होते है।

जब गति में मंदता लाने का अभ्यास और आगे बढ़ता है तो साधक को अनुभव होता है कि बहुत लंबे समय तक श्वास लिए बिना रहा जा सकता है, श्वास की तरंग का निरोध किया जा सकता है। श्वास बहुत ही मूल्यवान् है, इसे छोटा न समझा जाए। यदि यह छोटी—सी बात भी समझ में आ जाती है तो साधना की बड़ी—बड़ी बातें स्वतः समझ में आ जाएंगी। मनुष्य की कठिनाई यह है कि वह सदा ध्वजा को देखता है, नींव को नहीं देखता। अध्यात्म की साधना में श्वास को देखना नींव को देखना है। श्वास—प्रेक्षा नींव का पत्थर है क्योंकि इसी पर साधना का महल खड़ा किया जा सकता है। श्वास के द्वार को खोले बिना अगले द्वारों का उद्घाटन हो नहीं सकता।

12.5 श्वास प्रेक्षा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

भोजन पानी की तुलना में श्वास अधिक मूल्यवान् ऊर्जा-स्रोत है। वस्तुतः श्वास ही जीवन है। हमारे जीवन की प्रत्येक क्रिया श्वसन के साथ गाढ़ रूप से जुड़ी हुई है। कोशिकाओं में ऊर्जा के लिए ऑक्सीजन की निरन्तर आवश्यकता होती है तथा ऊर्जा उत्पादन की क्रिया के साथ-साथ कार्बन-डाइ-ऑक्साइड पैदा हो जाता है जिसको यदि शरीर के भीतर एकत्रित होने दिया जाए तो उससे कोशिकाएं विषाक्त हो जाएँगी। अतः श्वसन क्रिया का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है— शरीर की कोशिकाओं से निःसृत कार्बन-डाइ-ऑक्साइड को शरीर से बाहर निकाल देना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सम्यक् श्वास के सर्वोपरि महत्त्व को किसी भी प्रकार उपेक्षित नहीं किया जा सकता पर दुर्भाग्य से बहुत थोड़े ही लोग सही और पूरा श्वास लेते हैं। दुर्बल स्वास्थ्य के अनेक लक्षण रक्त की अपर्याप्त ऑक्सीजन-आपूर्ति तथा मंद परिसंचार के परिणाम हैं। हम न केवल गलत ढंग से श्वास लेते हैं अपितु बहुत बार जो श्वास लिया जाता है, वह भी अशुद्ध एवं दूषित होता है। परिणामस्वरूप हमारी स्नायुविक दुर्बलता और उत्तेजना बढ़ती है और रोगों का प्रतिकार करने की हमारी शक्ति में भारी कमी हो जाती है।

12.5.1 श्वसन-प्रक्रिया

फुफ्फुस अपने आप में मांसपेशी रहित होते हैं। अतः श्वसन-प्रक्रिया की आवश्यक क्रिया में उनका सीधा योगदान नहीं मिलता। श्वसन क्रिया हेतु यांत्रिक बल तीन प्रकार से उपलब्ध हो सकता है–

1. तनुपट (डायाफ्राम) को ऊपर–नीचे खिसका कर।
2. अन्तरपर्शुकीय मांसपेशियों के संकुचन-विस्तरण के द्वारा।
3. हंसली के हिस्से को ऊपर-नीचे खिसका कर।

कोशिकाओं तक ऑक्सीजन को पहुंचाने का दायित्व हृदय का होता है जो पम्पिंग के द्वारा ऑक्सीजन युक्त हिमोग्लोबिन वाले रक्त को शरीर के समस्त भागों तक पहुंचा देता है। आंतरिक श्वसन-क्रिया शरीर के विभिन्न भागों में क्रियाशील ऊतकों के भीतर घटित होती है। इस क्रिया के दौरान हेमोग्लोबिन से मुक्त होकर ऑक्सीजन-स्कंध ऊतकों को उपलब्ध कराए जाते है तथा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड-स्कंध रक्त में मिलाकर वापस फुफ्फुस की ओर भेज दिए जाते हैं।

जहां शरीर की अधिकांश महत्त्वपूर्ण प्रणालियों का नियमन स्वतः (अनैच्छिक) नियंत्रण से किया जाता है, वहीं श्वसन-क्रिया का नियमन ऐच्छिक और अनैच्छिक दोनों प्रकार से होता है। सामान्य रूप से चलने वाली लयबद्ध श्वास-प्रक्रिया को श्वसन-मांसपेशियों एवं फुफ्फुस-तंत्रिकाओं के माध्यम से श्वसन-केन्द्र को फीडबैक-पद्धति द्वारा सूचना भेजकर चालू रखा जाता है। इसके अतिरिक्त ऐच्छिक क्रिया के द्वारा भी इसे (श्वसन-केन्द्र को) प्रभावित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, कोई व्यक्ति अपने श्वास को कुछ देर के लिए ऐच्छिक रूप से रोक भी सकता है।

तालिका 1 – श्वास प्रेक्षा : सिद्धान्त और मूल स्रोत

बिन्दु	तथ्य	प्रमाण
प्रयोजन	1. ज्ञाता–द्रष्टा भाव का विकास, प्राणजयी बनाना	वृहद्नय चक्र, श्लोक 388
आध्यात्मिक स्वरुप	1. श्वास की भाव क्रिया, प्राण का सिद्धांत, मानसिक एकाग्रता की प्रक्रिया प्रकार–दीर्घ श्वास, समवृत्ति श्वास।	सूयगडो 1 / 2 / 52 देखें– टिप्पण आयारो 3 / 67
	2. श्वास क्या है : प्राण ग्रहण का सशक्त उपाय। अनेक विशिष्टताओं से युक्त	कायोत्सर्ग शतक 1514
	3. श्वास का आलम्बन के रूप में चयन क्यों ? अनेक विशिष्टिताऐं– 1. सुप्त चेतना–शक्ति को जागृत करने का सशक्त माध्यम, 2. यह भीतर तथा बाहर दोनों का यात्री, 3. एक ऐच्छिक एवं स्वतः चालित, 4. प्राण–शक्ति का संवाहक है, 5. आवेग नियंत्रत करने का उपाय श्वास और मन का परस्पर गहरा संबंध 7. श्वास–शुद्ध, सहज, आतरिक, वर्तमान कालिक प्रक्रिया 8. श्वास की गति परिवर्तनशील	व्यवहार भाष्य पीठिका, गाथा 123
वैज्ञानिक स्वरुप	1. सम्यक् व सम्पूर्ण श्वास की प्रक्रिया, 2. अधिकतम श्वास प्रकोष्ठों का उपयोग 3. प्राणवायु का अधिकतम विनिमय	
प्रक्रिया	1. श्वास की प्रेक्षा। जागरूकता–नाभि पर, दोनों नथुनों पर तथा उनके मध्य स्थान पर। समवृति श्वास में–चित्त की यात्रा श्वास के साथ।	पा. च. पृष्ठ 304, य, कल्प39, श्लोक 716 व्य. पा. गा. 122 म. वृ. 41 / 42
परिणाम	1. शारीरिक–दोष या मल शुद्धि, स्वस्थ एवं पूर्ण आयू, 2. मानसिक–एकाग्रता, प्राण शक्ति, स्नायु तंत्र सशक्त, जागरुकता, 3. भावनात्मक–आवेग या नियंत्रण की क्षमता का विकास, समता का विकास, 4. व्यावहारिक–एकाग्रता से कार्य क्षमता का विकास	आयारो 3 / 69

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नासिकाओं के भीतर रही हुई श्लेष्मा–झिल्ली की स्निग्धता के कारण तथा नाक में स्थित बालों के कारण वहां रोक दिए जाते हैं। श्वसन में दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि श्वास को भीतर लेते समय पेट को भीतर डालने की बजाए बाहर फुलाना चाहिए। सामान्य रूप से लोग श्वास लेते समय पेट को सिकोड़ते हैं जो ठीक नहीं है। उसी प्रकार श्वास छोड़ते समय पेट को सिकोड़ना चाहिए।

सामान्य रूप से व्यक्ति एक श्वास के दौरान आधा से 1 लीटर हवा लेता है किंतु सही अभ्यास के द्वारा इस मात्रा को चार–पांच लीटर तक बढ़ाया जा सकता है। हममें से अधिकांश व्यक्ति छोटे टुकड़ों में छिछला श्वास लेते हैं जिसकी संख्या 15 से 16 प्रति मिनट होती है। प्रशिक्षण के द्वारा हम मंद एवं लम्बा श्वास लेने का अभ्यास बढ़ा सकते हैं। श्वास की गति को मंद करने से एक मिनट में चार या पांच श्वास तक आसानी से पहुंचा जा सकता है। मंद श्वास के द्वारा हमें अनेक लाभ होते हैं, जैसे–

1. सारे शरीर में होने वाली टूट–फूट की गति में मंदता,
2. हृदय के कार्य–भार में कमी,
3. रक्त–चाप में अनावश्यक वृद्धि को रोकना,
4. स्नायुविक शांति में वृद्धि।

12.5.2 वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण श्वास

वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण श्वसन का प्रारम्भ मंद, शांत एवं पूरे उच्छ्वसन के साथ होता है। अन्तःश्वसन समाप्त होने पर जब उसके लिए प्रयुक्त मांसपेशियां शिथिल हो जाती हैं तब विकसित छाती का हिस्सा अपने भार से ही सिकुड़ जाता है और भीतर की हवा बाहर निकलनी शुरू हो जाती है। उसके बाद पेट की मांसपेशियों को संकुचित करने से तनुपट ऊपर की ओर खिसकता है जिससे फुफ्फुस में से और अधिक हवा निष्कासन करने में सहायता होती है। फुफ्फुसीय ऊतकों की स्पंजी रचना के कारण हवा का अंश भीतर रह जाता है। यह अवशिष्ट हवा अन्तःश्वसन के द्वारा ताजी प्रविष्ट हवा के साथ मिलकर आगे की प्रक्रिया के लिए प्राप्त हवा के रूप में काम आती है। फुफ्फुसों को जितना अधिक खाली किया जाएगा, उतना ही उनमें ताजी हवा का प्रवेश अधिक मात्रा में हो सकेगा और श्वास–प्रकोष्ठों में उपयोगार्थ हवा उतनी ही अधिक विशुद्ध या अमिश्रित रह सकेगी। अतः जब तक पूरी तरह उच्छ्वसन नहीं करते, तब तक अन्तर्श्वसन पूरा और सम्यग् नहीं हो सकता।

फुफ्फुसों को खाली करने के बाद दूसरा कदम उन्हें अधिक से अधिक भरने का है। फुफ्फुसों में समाने वाली हवा की मात्रा को फुफ्फुसीय क्षमता अथवा प्राण–क्षमता कहते हैं। औसतन रूप में यह लगभग 6 लीटर है। इस क्षमता को बढ़ाने की बात करने से पहले क्षमता का पूरा उपयोग हो सकता है, यह चिंतन आवश्यक है।

फुफ्फुस के इर्द–गिर्द श्वसन–क्रिया में उपयोगी तीन प्रकार की मांसपेशियों का उल्लेख किया जा चुका है। ये तीन प्रकार की मांसपेशियां हैं–

1. अन्तरापर्शुक मांसपेशियां – ये पसलियों के ऊपर के और नीचे के छोर से संलग्न होती हैं। इन मांसपेशियों के संकुचित होने पर पसलियों का समूचा ढांचा ऊपर की ओर तथा बाहर की ओर फैलता है और इनके शिथिल होने पर वह उससे विपरीत दिशा में गति करता है अर्थात् संकुचित होता है।

2. तनुपट (डायाफ्राम) – श्वसन–क्रिया में उपयोगी मांसपेशियों में यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसका आकार गुम्बज जैसा होता है। यह मांसपेशी वक्षीय गुहा के फर्श या तल के रूप में तथा उदरीय गुहा की छत के रूप में होती है। जब इसे संकुचित किया जाता है, यह उदरीय अंगों को नीचे की ओर दबाती है तथा वक्षीय गुहा के परिमाण को बढ़ाती है।

3. हंसली की मांसपेशियां – हंसली को ऊपर की ओर उठा कर इन मांसपेशियों का संचालन किया जा सकता है। इस क्रिया के द्वारा फुफ्फुस के ऊपर के हिस्से में हवा का प्रवेश होता है।

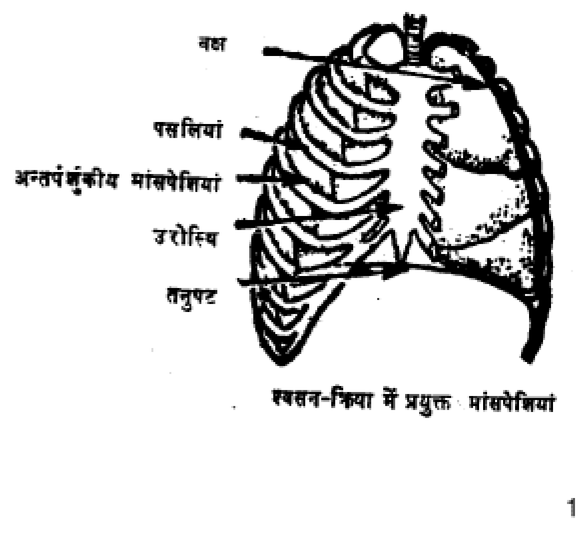

श्वसन-क्रिया में प्रयुक्त मांसपेशियां

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पूरे लम्बे अन्तर्श्वसन के लिए उक्त तीनों प्रकार की मांसपेशी समूहों का संयुक्त उपयोग किया जाता है। यह क्रिया एक ही बार में एवं लयबद्ध रूप से की जानी चाहिए। हवा का भीतर प्रवेश निरन्तर होना चाहिए, बीच–बीच में हांफना (श्वास तोड़ना) नहीं चाहिए।

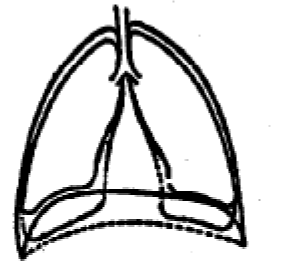

जब तनुपट नीचे की ओर सिकुड़ता है तब वक्ष की गहराई बढ़ती है।

3. हंसली की मांसपेशियां—हंसली को ऊपर की ओर उठा कर इन मांसपेशियों का संचालन किया जा सकता है। इस क्रिया के द्वारा फुफ्फुस के ऊपर के हिस्से में हवा का प्रवेश होता है।

अन्तर्पर्शुकीय मांसपेशियां पसली को ऊपर उठाती हैं तथा वक्ष के आगे-पीछे का व्यास बढ़ाती हैं। इस प्रकार पसली-पिञ्जर की चौड़ाई बढ़ जाती है।

12.5.3 सम्यक् श्वसन के लाभ

कोशिकाओं के सुचारू रूप से संचालन तथा क्षमता–वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन उपलब्ध हो, इसलिए सही रूप में श्वास लेना बहुत जरूरी और महत्वपूर्ण है; जिससे कि शरीर की प्रत्येक कोशिका को पर्याप्त ऑक्सीजन मिल सके। फुफ्फुसों में वायुओं का आदान–प्रदान भली–भांति तभी हो सकता है, जब कि श्वसन–क्रिया पूरी और मंद हो। फुफ्फुस की औसत क्षमता 5 से 6 लीटर तक है पर सामान्यतः मनुष्य इस क्षमता का 10% या 20% ही उपयोग कर पाता है। शरीर–वैज्ञानिकों के अनुसार यह आवश्यक है कि संगृहीत हवा श्वासकोषों में 10–12 सैकिण्ड तक रहे जिससे ऑक्सीजन और कार्बन–डाई–ऑक्साइड का अधिकतम विनिमय हो सके। इस प्राथमिक आवश्यकता के अतिरिक्त यह भी जरूरी है कि सम्यक् श्वसन के द्वारा हवा के आवागमन से संपूर्ण फुफ्फुसों की सफाई पूरी तरह हो। अन्धकार, उष्मा एवं आर्द्रता–युक्त फेफड़ों की सफाई ठीक न होने पर वे सूक्ष्म किंतु खतरनाक कीटाणुओं के प्रजनन के उपयुक्त स्थान बन जाते हैं।

यदि श्वसन–क्रिया पूर्णतः वैज्ञानिक रूप से की जाए तो इसके परिणाम स्वरूप फुफ्फुसों में अत्यधिक शक्तिशाली चूषण–क्षमता उत्पन्न की जा सकती है। लम्बे और मंद श्वास के द्वारा फुफ्फुसों में यकृत जैसे अवयवों में एकत्रित रक्त को खींचने के लिए एक प्रकार की चूषण–शक्ति पैदा होती है। तनुपट और पसली के सम्यक् लयबद्ध स्पंदन पूरे शरीर में होने वाले शिरीय रक्त–संचार को बेहतर और सक्रिय बनाने में योगदान देते हैं। इस प्रकार हृदय और फेफड़ों के संचालन–बलों का सम्यक् संयोजन रक्त के परिसंचरण को श्रेष्ठ बना सकता है। ऐच्छिक और सुनियोजित दीर्घश्वास के द्वारा प्राणधारा को प्रभावित किया जा सकता है जिससे शरीर के किसी भी प्रकार के अवयव–संबंधी या क्रिया–संबंधी विकार या गड़बड़ी को पूर्णतः ठीक नहीं तो कम–से–कम अंशतः प्रभावित तो किया ही जा सकता है। यद्यपि यह प्राणधारा तीव्र आगन्तुक औपसर्गिक विकारों को पूर्णतः ठीक करने में समर्थ न भी हो तो भी शरीर की प्रतिकार–शक्ति को बलवती बनाने में एवं शरीर को विकारों से मुक्त रखने में निश्चित ही महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करती है।

12.6 श्वास प्रेक्षा के प्रकार

श्वास प्रेक्षा के दो प्रकार हैं–

1. दीर्घश्वास प्रेक्षा।
2. समवृत्ति श्वास प्रेक्षा।

12.6.1 दीर्घश्वास प्रेक्षा

दीर्घश्वास में जब तनुपट का संकोच–विस्तार होता है तो नाभि के आस–पास का उदर का भाग प्रकम्पित होता है यह प्रकम्पन एक वास्तविक वर्तमान कालिक घटना है जिसे अनुभव किया जा सकता है। देखा जा सकता है। जानना और देखना चेतना का लक्षण है और यही भगवान् महावीर की साधना का मुख्य सूत्र है। ''आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो'' यह अध्यात्म चेतना के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जागरण का महत्वपूर्ण सूत्र है। इस सूत्र के अभ्यास का प्रारंभ हम शरीर से कर सकते हैं। श्वास शरीर का ही एक अंग है, इसलिए सर्वप्रथम श्वास को देखें। शरीर के भीतर होने वाले स्पंदनों, कम्पनों या घटनाओं को देखें। इन्हें देखने के अनवरत अभ्यास से मन पटु हो जाता है, फिर अनेक सूक्ष्म स्पन्दन दीखने लग जाते हैं।

चित्त की दो धाराएं हैं– विचार और दर्शन या देखना और सोचना किंतु ये दोनों धाराएं एक साथ नहीं चलतीं। अर्थात् जब हम देखते हैं तो सोचते नहीं और जब हम सोचते हैं तो देखते नहीं। इस प्रकार देखना– स्मृति, चिंतन और कल्पना के चक्रव्यूह को तोड़ने का एक सशक्त साधन बन जाता है। स्थिर होकर श्वास को देखें तो विचार को स्थगित और विकल्प को शून्य बना सकते हैं। जब हम चित्त को बाह्य संवेदनों या घटनाओं से हटाकर इस आंतरिक घटना पर एकाग्र करते हैं तो यह 'ध्यान' हो जाता है जिसे दीर्घश्वास प्रेक्षा कहते हैं। इसमें श्वास की गति मंद या शांत होती है और शरीर तनाव रहित होता है।

दीर्घश्वास प्रेक्षा में श्वास की समस्त पर्यायों को देखने का प्रयत्न किया जाता है। दोनों नथूनों के संधि–स्थान में चित्त को स्थापित कर आते–जाते श्वास का अनुभव किया जाता है, दोनों नथूने श्वास के भीतर प्रवेश करने और बाहर जाने के द्वार हैं वहां श्वास का स्पर्श अनुभव किया जाता है। इससे आगे चित्त के द्वारा श्वास के पथ को देखा जाता है; उसकी मात्रा और गति को जाना जाता है। यह सारी वर्तमान की वास्तविक घटना है। जिस पर चित्त एकाग्र किया जा सकता है प्रायः बाहर की हवा ठंडी और उच्छ्वास की हवा गर्म होती है। अतः प्रवेश करते समय ठंडा स्पर्श और बाहर निकलते समय गर्म स्पर्श का अनुभव होता है।

12.6.2 समवृत्ति श्वास प्रेक्षा

जैसे दीर्घश्वास में श्वास की गति को परिवर्तित किया जाता है, वैसे ही समवृत्ति श्वास में उसकी दिशा को बदला जाता है। एक नथुने से श्वास भीतर लेकर दूसरे नथुने से बाहर निकाला जाता है तथा फिर उसी से भीतर लेकर पहले नथुने से बाहर निकाला जाता है। यह परिवर्तन संकल्प–शक्ति के द्वारा निष्पन्न हो सकता है। इस दौरान लगातार चित्त–श्वास के साथ–साथ चलता है; उसकी प्रेक्षा करता है। यही समवृत्ति श्वास प्रेक्षा है।

दाएं नथुने से श्वास लेने से सूर्यस्वर सक्रिय होता है। इसका संबंध पिंगला नाड़ी के साथ है। बाएं नथुने से चंद्रस्वर चलता है जो ईडा नाड़ी की सक्रियता से संबंधित है। समवृत्ति श्वास प्रेक्षा में नाड़ी-संस्थान का शोधन होता है, ज्ञान शक्ति विकसित होती है और अतीन्द्रिय–ज्ञान की संभावनाओं का द्वार खुलता है। समवृत्ति श्वास प्रेक्षा मैत्री का प्रयोग है। हम इस बात का प्रयोग कर रहे हैं कि जो ठंडा है वह भी आवश्यक है और जो गर्म है वह भी आवश्यक है। दोनों परस्पर विरोधी होते हुए भी शत्रु नहीं हैं। दोनों हमारे जीवन के लिए अत्यंत उपयोगी हैं।

दीर्घ श्वास प्रेक्षा और समवृत्ति श्वास प्रेक्षा के समय श्वास को लय–बद्ध या ताल–बद्ध बनाया जाता है। इसके साथ श्वास को भीतर लेकर भीतर रोकना तथा बाह्य रोकना कुम्भक कहलाता है। इस प्रकार का प्रयोग केवल उतने समय तक किया जाना चाहिए जिससे कि वैसा करने में कठिनाई न हो। आसानी से करते हुए श्वास–संयम को क्रमशः साधा जा सकता है।

12.7 श्वास प्रेक्षा की निष्पत्तियां

12.7.1 चित्त की निर्मलता

प्रेक्षाध्यान-साधना की अनेक प्रकार की निष्पत्तियां हैं, वे निष्पत्तियां मानसिक भी हैं और शारीरिक भी। ध्यान सिद्ध होने का सबसे पहला प्रमाण है– चित्त की प्रसन्नता। जैसे-जैसे ध्यान सिद्ध होने लगता है, प्रसन्नता बढ़ती जाती है। हर्ष और शोक एक द्वन्द्व है। ध्यान की आराधना के द्वारा जो प्राप्त होता है, वह है– चित्त की प्रसन्नता अर्थात् न हर्ष, न शोक।

12.7.2 मानसिक एकाग्रता

श्वास-प्रेक्षा मानसिक एकाग्रता का महत्वपूर्ण आलम्बन है। उससे रक्त को बल मिलता है, शक्ति के केन्द्र जागृत होते हैं, तैजस् शक्ति जागृत होती है, सुषुम्ना और नाड़ी-संस्थान प्रभावित होते हैं। हमारे क्रियात्मक और व्यावसायिक क्षेत्र में मानसिक एकाग्रता बहुत मूल्यवान् है। किसी भी कार्यक्षमता का आधार मानसिक एकाग्रता है। डॉक्टर, वकील, प्रोफेसर, कर्मचारी हो या किसी बड़े संस्थान का प्रबंध-निदेशक (मैनेजिंग डाइरेक्टर) हो या सामान्य गृह-कार्य में रत गृहिणी हो; सबको अपने-अपने कार्य करने में मानसिक एकाग्रता अत्यन्त अपेक्षित है। किसी भी कार्य में जब तक चित्त एकाग्र या तन्मय नहीं होगा तब तक उत्पादन-क्षमता (Operational Efficiency)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का स्तर अत्यंत निम्न होगा– क्षमता का उपयोग 20% और शक्ति का अनावश्यक व्यय 80% होगा किन्तु जब किसी भी कार्य में चित्त की तन्मयता होगी तब क्षमता 80% व अनावश्यक व्यय 20% हो जाएगा अर्थात् ठीक पहले के विपरीत।

श्वास-प्रेक्षा का प्रयोग चित्त की एकाग्रता को, तन्मयता को बढ़ाने का सरल किन्तु सक्षम उपाय है। जैसे श्वास केवल वर्तमान की क्रिया है; न अतीत की स्मृति, न भविष्य की कल्पना और साधक उसी को देखने में तन्मय हो जाता है, वैसे ही व्यावसायिक क्षेत्र में भी दूसरे अनेक कार्यों को छोड़कर केवल वर्तमान के काम पर पूरा ध्यान देना और वैसा करने की आदत डालना, यह मानसिक एकाग्रता का प्रशिक्षण है।

औद्योगिक, वाणिज्यिक और व्यापारिक क्षेत्र के बड़े संस्थान अपने वरिष्ठ प्रबंधकों की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए, उनके प्रशिक्षण में प्रतिवर्ष लाखों रुपये खर्च करते हैं। प्रशिक्षण दने वाले संस्थान बहुधा सेमीनार के रूप में यह कार्यक्रम चलाते हैं किन्तु वस्तुतः कार्यक्षमता का विकास करने का मूल है मानसिक एकाग्रता का प्रयोग और उसे प्राप्त करने का साधन है– श्वास-प्रेक्षा।

12.7.3 जागरूकता

श्वास–प्रेक्षा जागरूकता का अचूक उपाय है। इसमें हम भीतर जाने वाले और बाहर निकलने वाले श्वास को देखते हैं। दरवाजे पर खड़ा प्रहरी (चित्त) यदि जागरूक न हो तो कोई भी भीतर जा सकता है, कोई भी बाहर आ सकता है। फिर प्रहरी होने का कोई अर्थ ही नहीं है। आते–जाते श्वास को देखते–देखते चित्त जागरूक हो जाता है फिर एक भी श्वास उससे बचकर निकल नहीं पाता, प्रत्येक श्वास को वह देख ही लेता है। श्वास और चित्त साथ–साथ चलें, सहयात्री रहें। दो साथी साथ में चलें और एक ऊंघता चले यह हो नहीं सकता। नींद आते ही साथ छूट जायेगा। श्वास का क्षेत्र सीमित है, चित्त का क्षेत्र असीम। चित्त का काम यह नहीं कि वह श्वास की सीमा में चले, श्वास के साथ ही रहे। श्वास की यात्रा छोटी है, उसका यात्रापथ नथुने से फेफड़े तक बहुत संकीर्ण और छोटा है किन्तु चित्त का मार्ग बहुत लम्बा–चौड़ा है, बहुत दीर्घ है। वह एक क्षण में सारी दुनिया का चक्कर लगा सकता है। इतनी विशाल यात्रा करने वाले और इतनी तीव्र गति से चलने वाले चित्त को श्वास जैसे छोटे यात्री के साथ जोड़े रखना कठिन काम है किन्तु यह किया जा सकता है। ऐसा करने पर ही चित्त जागरूक हो जाता है फिर वह कभी नहीं सोता; वह श्वास का साथी बन जाता है।

12.7.4 समभाव

श्वास वास्तविक है, इसलिए वह सत्य है, वर्तमान की घटना है। श्वास-प्रेक्षा करने का अर्थ है– सत्य को देखना, वर्तमान में जीने का अभ्यास करना। श्वास एक घटना है। यह वर्तमान की घटना है, अतीत या भविष्य की नहीं। जिस क्षण में हम श्वास लेते हैं, उसी क्षण में हम उसे देख रहे हैं। यह वर्तमान का क्षण है। यह है– वर्तमान में जीने का अभ्यास, वर्तमान में रहने का अभ्यास। जब हम वर्तमान में हैं, उसे देख रहे हैं। उस समय न कोई राग है, न कोई द्वेष है क्योंकि जब स्मृति या कल्पना नहीं है तो राग भी नहीं है और द्वेष भी नहीं है। हम स्मृति और कल्पना से मुक्त तथा राग–द्वेष से मुक्त क्षण में जी रहे हैं। यह है शुद्ध चेतना का क्षण, यहां न प्रियता है और न अप्रियता, न कोइ अतीत का अनुभव है और न कोई भविष्य की चिंता।

श्वास को देखने का अर्थ है– समभाव में जीना। वर्तमान में जीना। वर्तमान में जीने का अर्थ है– मन को विश्राम देना, भार से मुक्त होना, मानसिक तनाव से छुटकारा पाना, वीतरागता के क्षण में जीना, राग-द्वेष मुक्त क्षण में जीना। जो व्यक्ति श्वास को देखता है उसका तनाव अपने आप विसर्जित हो जाता है।

12.7.5 शक्ति-जागरण

हम दीर्घ–श्वास लेते हैं, दीर्घ-श्वास की प्रेक्षा करते हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि हम शक्ति के मूल स्रोतों को जागृत करने का प्रयत्न करते हैं। दीर्घ श्वास को देखने की बात बहुत छोटी–सी लगती है किन्तु यह बहुत गहरी बात है। एक अंगुली को पकड़ कर समूचे घर के मालिक बन जाने की बात है। हम इस प्रक्रिया में केवल प्राण को नहीं पकड़ रहे हैं वरन् समूची प्राण–शक्ति को जागृत करने का प्रयत्न कर रहे हैं। जैसे–जैसे हम श्वास को दीर्घ करते हैं, हम पूरी ऊर्जा को खींचते हैं और उसे देखते हैं तो शक्ति के मूल स्रोत को जागृत कर लेते हैं जिसके विस्फोट के द्वारा हमें नई–नई शक्तियां उपलब्ध होती हैं। नई दिशाओं के उद्‌घाटन के लिए श्वास–प्रेक्षा बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

12.8 श्वास प्रेक्षा की प्रक्रिया

श्वास की गति को मन्द करें। धीरे–धीरे लम्बा श्वास छोड़ें धीरे–धीरे लम्बा श्वास लें। श्वास लयबद्ध और समताल करें। पहली बार श्वास को छोड़ने और लेने में जितना समय लगे, उतना ही समय प्रत्येक आवृति में लगे (इस सुझाव को प्रारम्भ में एक दो बार दें)।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

श्वास के कम्पन नाभि तक पहुंचें। श्वास लेते समय पेट की मांसपेशियां फैलती हैं, छोड़ते समय सिकुड़ती हैं। चित्त को नाभि पर केन्द्रित करें और पेट की मांसपेशियों के फैलने और सिकुड़ने का अनुभव करें तथा उसके द्वारा आते–जाते श्वास का अनुभव करें। प्रत्येक श्वास की जानकारी बनी रहे।

गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ दीर्घश्वास प्रेक्षा का अभ्यास करें। अभ्यास की निरन्तरता को बनाए रखें।

(कुछ समय बाद) चित्त को नाभि से हटाकर दोनों नथुनों के भीतर संधि–स्थल पर केन्द्रित करें। लयबद्ध लम्बा श्वास चालू रखें और आते–जाते प्रत्येक श्वास का अनुभव करें।

लयबद्ध, लम्बा श्वास चालू रखें। प्रत्येक श्वास को जानते हुए लें और जानते हुए छोड़ें। चित्त की सारी शक्ति श्वास को देखने में लगा दें। केवल श्वास का अनुभव करें।

यदि विकल्प (विचार आदि) आते हैं तो उन्हें रोकने का प्रयत्न न करें। केवल द्रष्टाभाव से देखें और बीच–बीच में श्वास संयम का प्रयोग करें या जीभ को उलट कर तालू से लगा दें। श्वास के प्रति जागरूक रहें। केवल श्वास का अनुभव करें।

12.9 सारांश

उक्त अध्ययन के उपरान्त सारांशतः कहा जा सकता है कि –

कोशिकाओं के संचालन व क्षमता वृद्धि के लिये पर्याप्त ऑक्सीजन जरुरी है। श्वास द्वारा कोशिकाओं से निःसृत कार्बनडाइऑक्साइड को शरीर से बाहर निकालना स्वास्थ्य हेतु अत्यन्त अपेक्षित है। दुर्बल स्वास्थ्य का कारण रक्त को अपर्याप्त ऑक्सीजन तथा उसका मंद परिसंचार है। सम्यक् श्वास इन दोनों कारणों के दूर करने का तरीका है। हसली, पसली व तनुपट की मांस पेशियों का उपयोग श्वसन के समय करना चाहिए तथा स्वस्थ शरीर के लिये लम्बा और मन्द गति से श्वास लेना चाहिए। जितना मंद श्वास, उतना ही अधिक लाभ।

श्वास, प्राण और पर्याप्ति का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। सम्पूर्ण आकाश मण्डल में प्राण चक्र फैला हुआ है। शरीर और इन्द्रियों की सक्रियता के लिये प्राण ऊर्जा की सक्रियता आवश्यक है। यौगिक प्रदर्शन भी प्राण शक्ति के प्रदर्शन हैं। प्राण शक्ति के जागरण के लिये स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना होता है। श्वास ही एक मात्र तत्त्व है जो शरीर के बाहर भी जाता है और भीतर भी जाता है। मन को पकड़ने के लिये श्वास को पकड़ना पड़ेगा। मन को श्वास के साथ जोड़कर भीतर जाना ही अन्तर्यात्रा का प्रारम्भ है। साधनाकाल में श्वास की साधना में श्वास प्रेक्षा नींव का पत्थर है।

महावीर की साधना में 'जानो और देखो' यह मुख्य सूत्र है। अध्यात्म चेतना के जागरण का भी यही सूत्र है। देखना या सोचना दोनों साथ–साथ नहीं चलते, हम देखते हैं तो सोचते नहीं और सोचते हैं तो देखते नहीं हैं। समवृति श्वास प्रेक्षा में एक नथुने से श्वास भरकर दूसरे नथुने से निकालते हैं, पुनः दूसरे नथुने से भरकर पहले नथुने से श्वास निकालते हैं। इस क्रिया में श्वास को लय बद्ध बनाया जाता है।

ज्ञाता दृष्टा भाव जागृत करने का सक्षम उपाय श्वास प्रेक्षा है। आत्मा के सान्निध्य में रहने पर केवल जानना और देखना दो ही बातें घटित होती हैं। सान्निध्य छूटते ही अन्य क्रिया कलापों में मन रमने लगता है। दर्शन की बात पर आते ही सोचना छूट जाता है।

श्वास प्रेक्षा की निष्पत्तियां मानसिक व शारीरिक दोनों हैं। चित्त की प्रसन्नता ध्यान सिद्धि का प्रमाण है। इसमें न हर्ष न शोक होता है। मानसिक एकाग्रता श्वास प्रेक्षा की दूसरी निष्पत्ति है। श्वास प्रेक्षा से शक्ति केन्द्र व सुषुम्ना नाड़ी संस्थान प्रभावित होते हैं। एकाग्रता की स्थिति में कार्य करने पर 80 प्रतिशत आवश्यक व 20 प्रतिशत अनावश्यक शक्ति का व्यय होता है। इसके अभाव में 20 प्रतिशत आवश्यक कार्यों में शक्ति का उपयोग व 80 प्रतिशत अनावश्यक शक्ति का व्यय होता है। श्वास को वर्तमान में देखते रहना समभाव में जीना है। दीर्घ श्वास प्रेक्षा में शक्ति का जागरण होता है नयी दिशाओं में गमन के लिये श्वास प्रेक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. जीवन किससे चलता है?
2. हमारे फेफड़ों की प्राणक्षमता .... है।
3. श्वसनतंत्र के मुख्य अवयव कौन–से हैं?
4. दीर्घ श्वास प्रेक्षा से प्राण क्षमता का उपयोग .... से .... तक बढ़ाया जा सकता है।
5. श्वास नाक से लेना चाहिए या मुंह से?
6. श्वास लेते समय पेट को फूलाना चाहिए/सिकोड़ना चाहिए?
7. क्रोध या भय की स्थिति में प्रति मिनट श्वांसों की संख्या .... होती है।
8. शरीर के भीतर चलने वाले तंत्रों और क्रियाओं का नियंत्रण कितने प्रकार से होता है।
9. चित्त की व्यग्रता में श्वास .... और एकाग्रता में .... होने लगता है।
10. जब चित्त श्वास पर केन्द्रित होता है तो हमें .... का अवसर प्राप्त होता है।

लघुत्तरीय प्रश्न :

1. श्वास-प्रेक्षा की निष्पत्तियों पर प्रकाश डालें।
2. श्वास-प्रेक्षा का आध्यात्मिक दृष्टि से महत्त्व समझाएं।

निबन्धात्मक प्रश्न :

1. श्वास की प्रक्रिया को वैज्ञानिक दृष्टि से स्पष्ट करें।

12.11 संदर्भ ग्रंथ

1. प्रेक्षाध्यान : श्वास-प्रेक्षा – आचार्य श्री महाप्रज्ञ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–3 जीवन विज्ञान का प्रायोगिक आधार — II

इकाई–13 शरीर प्रेक्षा : प्रयोजन, आध्यात्मिक–वैज्ञानिक दृष्टिकोण, निष्पत्तियां एवं प्रक्रिया

इकाई की संरचना

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 शरीर प्रेक्षा का प्रयोजन

13.2.1 आत्मदर्शन की प्रक्रिया

13.3 शरीर प्रेक्षा का आध्यात्मिक दृष्टिकोण

13.3.1 प्राण

13.3.2 औदारिक शरीर

13.3.3 तैजस शरीर

13.3.4 कार्मण शरीर

13.4 शरीर प्रेक्षा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

13.4.1 नाड़ी तन्त्र

13.4.2 रक्त परिसंचरण तन्त्र

13.4.3 श्वसन तन्त्र

13.4.4 पाचन तन्त्र

13.4.5 अन्तःस्रावी ग्रंथि तन्त्र

13.4.6 विसर्जन तन्त्र

13.5 शरीर प्रेक्षा की निष्पत्तियां

13.5.1 प्राण का सन्तुलन

13.5.2 रोग प्रतिरोधक शक्ति का विकास

13.6 शरीर प्रेक्षा की प्रक्रिया

13.7 सारांश

13.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.9 संदर्भ ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.0 प्रस्तावना

भारतवर्ष में प्रचलित प्राचीन व आधुनिक सभी साधना पद्धतियों का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है। मोक्ष प्राप्ति का साधन शरीर है। प्रेक्षाध्यान पद्धति में चित को सूक्ष्म एवं पटु बनाना शरीर प्रेक्षा का मुख्य प्रयोजन है। शरीर के तन्त्रों की व्यवस्थित प्रक्रिया में शरीर प्रेक्षा सहायक है। शरीर का सम्यक् प्रशिक्षण शरीर की स्वस्थता एवं सफलता की दिशा में ले जाता हैं।

13.1 उद्देश्य

इस पाठ के माध्यम से आप जान पायेंगे कि–

- शरीर प्रेक्षा का प्रयोजन क्या है?
- शरीर प्रेक्षा का आध्यात्मिक दृष्टिकोण क्या है?
- शरीर प्रेक्षा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण क्या है?
- शरीर प्रेक्षा की निष्पत्तियां क्या हैं?
- शरीर प्रेक्षा किस प्रकार की जाती है।

13.2. शरीर प्रेक्षा का प्रयोजन

13.2.1. आत्म–दर्शन की प्रक्रिया

शरीर हमारी आत्मा है। जब तक उसमें प्राण–शक्ति का संचार है तब तक शरीर को सर्वथा अनात्मा नहीं कह सकते। अंगुली इसलिए हिलती है कि वह आत्मा है, शरीर में आत्मा के असंख्यात प्रदेश फैले हुए हैं। आत्म–दर्शन का पहला प्रयोग है– शरीर को देखना। शरीर को तब देख सकते हैं, जब शरीर–प्रेक्षा का अभ्यास करें, बाहर और भीतर चित्त को टिकाएं, एकाग्र करें। शरीर के भीतर जो प्राण के प्रकम्पन हो रहे हैं, जो रसायन काम कर रहे हैं, विद्युत काम कर रही है, उसे देखें। हमारे शरीर की ''कैमेस्ट्री'' अलग है, अलग ही काम कर रही है। उन सारे परिवर्तनों को जब तक हम नही देख पाते, तब तक आत्म–दर्शन की बात नहीं होती।

आत्मा के शुद्ध स्वरूप की यात्रा का प्रस्थान है– शरीर–दर्शन अर्थात् शरीर–प्रेक्षा। शरीर–प्रेक्षा की यह प्रक्रिया अन्तर्मुख होने की प्रक्रिया है। सामान्यतः बाहर की ओर प्रवाहित होने वाली चैतन्य की धारा को अन्तर की ओर प्रवाहित करने का प्रथम साधन स्थूल शरीर है। स्थूल शरीर के भीतर तैजस और कार्मण, ये दो सूक्ष्म शरीर हैं। उनके भीतर आत्मा है। शरीर की क्रियाओं और संवेदनों को देखने का अभ्यास करने वाला क्रमशः तैजस और कार्मण शरीर को देखने लग जाता है। शरीर–प्रेक्षा के दृढ़ अभ्यास और मन के सुशिक्षित होने पर शरीर में प्रवाहित होने वाली चैतन्य की धारा का साक्षात्कार होने लग जाता है।

13.3. शरीर प्रेक्षा का आध्यात्मिक दृष्टिकोण

हमारा अस्तित्व चेतन और अचेतन का जटिलतम संयोग है। चेतन है हमारी आत्मा और अचेतन है शरीर। आत्मा अरूप है, अरस है, अगंध है और अस्पर्श है, इसलिए वह अदृश्य है। वह शरीर से बंधी हुई है, इस दृष्टि से दृश्य भी है। संसारी आत्मा शरीर–मुक्त नहीं रह सकती। वह स्थूल अथवा सूक्ष्म किसी–न–किसी शरीर के आश्रित रहती है। चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम शरीर है। आत्मा और शरीर का संबंध चिर–पुरातन है। जैन सिद्धांत की भाषा में अनादि है।

''सुख–दुःखानुभवसाधनम् शरीरम्''। जिस के द्वारा पौद्गलिक सुख–दुःख का अनुभव किया जाता है, वह शरीर है। जीव की जितनी प्रवृत्तियां होती हैं, वे सब शरीर के माध्यम से ही होती हैं। शरीर से सामान्यतः हमारा तात्पर्य इस अस्थि–मांस–युक्त स्थूल शरीर से ही समझा जाता है जिसे ''फिजिकल बाडी'' कहा जाता है पर फिजिकल बाडी के सिवाय भी कुछ ऐसे शरीर होते हैं जिनसे हम परिचित नहीं हैं। यहां हम अपने अभिन्न मित्र शरीर से परिचित होने का प्रयास करेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैन तत्त्व–विद्या के अनुसार शरीर के पांच प्रकार हैं–

1. औदारिक– हाड मांस आदि सप्त धातुओं द्वारा निर्मित शरीर।

2. वैक्रिय– नाना रूप बनाने में समर्थ शरीर।

3. आहारक– विचार–संवाहक शरीर।

4. तैजस्– तापमय या विद्युत् शरीर।

5. कार्मण– कर्ममय शरीर।

इन पांचों को तीन वर्गों में भी बांटा जा सकता है – स्थूल, सूक्ष्म एवं सूक्ष्मतम् शरीर।

इस वर्गीकरण से स्पष्ट हो जाता है कि औदारिक शरीर सबसे अधिक स्थूल होता है। वैक्रिय शरीर उससे अपेक्षाकृत सूक्ष्म होता है उससे सूक्ष्म आहारक शरीर होता है। आहारक से भी सूक्ष्म होते हैं तैजस् और कार्मण शरीर।

हमारा शरीर बहुत मूल्यवान् है। इसमें जितने रहस्य भरे पड़े हैं, वे रहस्य एक साधक ही जान सकता है, एक डॉक्टर नहीं जान सकता। एक कुशल शल्य–चिकित्सक भी उन रहस्यों को नहीं जानता जो अध्यात्म के आचार्यों ने खोजे हैं। यद्यपि आध्यात्मिक दृष्टि से शरीर का मूल्य चिकित्सक नहीं कर सकता, फिर भी यह तो मानना पड़ेगा कि नाड़ी–तंत्र के बारे में आज का चिकित्सक अच्छी तरह से जानता है, उसका फंक्शन क्या है, उसकी सारी नाड़ियां किस प्रकार क्रिया करती हैं। इन सब को एक कुशल चिकित्सक अच्छी तरह जानता है; किन्तु इन नाड़ियों से किस प्रकार प्राण की धरा प्रवाहित की जा सकती है और कहां ले जाई जा सकती है, चित्त–वृत्तियों को कहां–कहां ले जाया जा सकता है, यह बात चिकित्साशास्त्र का विषय नहीं है।

13.3.1. प्राण

हृदय में प्राण का एक प्रकार का प्रवाह है, नासाग्र में प्राण का एक प्रकार का प्रवाह है, नाभि में प्राण का एक प्रकार का प्रवाह है, गुदामूल में प्राण का एक प्रकार का प्रवाह है और हमारी समूची त्वचा में प्राण का एक प्रकार का प्रवाह है। प्राण के कई प्रवाह हैं। केवल सप्त धातुमय शरीर को जानने मात्र से भीतर की यात्रा नहीं हो सकती, भीतर के दरवाजे नहीं खुल सकते। भीतरी दरवाजों को खोलने के लिए, भीतर की यात्रा करने के लिए इन सारे रहस्यों को अनावृत्त करना, उद्घाटित करना परम आवश्यक होता है।

जैन दर्शन के अनुसार जीवन–शक्ति के मूल स्रोत मस्तिष्क, हृदय या फुफ्फुस नहीं अपितु दस प्रकार के प्राण हैं–पांच प्राण पांच इन्द्रियों को बल प्रदान करते हैं, तीन प्राण मन, वाणी और शरीर को बल प्रदान करते हैं। श्वासोच्छ्वास के रूप में ऑक्सीजन और कार्बनडायोक्साइड को ग्रहण करने और छोड़ने की शक्ति श्वोच्छ्वास–प्राण है तथा जीवित रखने की शक्ति आयुष्य–प्राण है। इन दसों में जब तक आयुष्य–प्राण क्रियाशील है, तब तक किसी एक शक्ति का काम बंद हो जाने पर भी प्राणी जीवित रह सकता है।

13.3.2. औदारिक शरीर

यह शरीर रसादि धातुमय है। स्थूल पुद्गलों से निष्पन्न है। यह मृत्यु के बाद भी टिका रह सकता है। इसका छेदन–भेदन हो सकता है। यह अस्थि, मज्जा, मांस, रुधिर आदि से निर्मित है, इसलिए विशरण धर्मा है। यानी इसका स्वभाव है गलना–मिलना और विनष्ट होना। इस शरीर का चयापचय होता रहता है। इस शरीर की सबसे छोटी इकाई है कोशिका। प्रतिक्षण लाखों करोड़ों कोशिकाएं नष्ट होती हैं और नई कोशिकाएं उत्पन्न होती रहती हैं। औदारिक शरीर में हमारा अस्थि–पंजर, हमारी मांसपेशियां तथा शरीर–विज्ञान द्वारा व्याख्यायित सभी तंत्र जैसे पाचन–तंत्र, श्वसन–तंत्र, परिसंचरण–तंत्र आदि तथा पांचों इन्द्रियां–श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय एवं मन आ जाते हैं। पांचों इन्द्रियां और मन को भोगोन्मुख या योगोन्मुख करना, यह स्वयं व्यक्ति पर निर्भर है। शरीर–प्रेक्षा का एक कार्य इन्द्रिय–संयम का विकास भी है।

अध्यात्म में इन्द्रिय–संयम एवं मनः–संयम पर बल दिया गया है। चेतना इन्द्रियों और मन के मनोज्ञ और अमनोज्ञ विषयों के प्रति क्रमशः आसक्ति और घृणा अभिव्यक्त करती है। ये दोनों ही बंधन के हेतु हैं। वास्तव में इन्द्रियों एवं मन का काम आसक्ति और घृणा नहीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है। बल्कि केवल जानना है आसक्ति और घृणा किए बिना जानना है। यही शरीर–प्रेक्षा का लक्ष्य है। प्रमाद से मुक्त होना और जागरूक होकर शरीर का उपयोग करना शरीर–प्रेक्षा का आध्यात्मिक पक्ष है।

''जो मनोज्ञ रूपों, शब्दों, गन्धों, रसों, स्पर्शों और भावों में तीव्र आसक्ति करता है, वह वैसे ही अकाल में ही विनाश को प्राप्त होता है जैसे प्रकाश–लोलुप पतंग रूप में आसक्त होकर, अतृप्त बना हुआ रागातुर हरिन शब्द में मुग्ध होकर, बिल से निकला हुआ सर्प–नाग–दमनी आदि औषधियों के गन्ध में गृद्ध होकर, मांस के रसास्वाद में आसक्त बना रागातुर मत्स्य कांटे से बींधकर, घड़ियाल के द्वारा पकड़ा हुआ भैंसा अरण्य–जलाशय के शीतल जल के स्पर्श में मग्न होकर तथा हथिनी के प्रति आकृष्ट हाथी कामगुणों (भावों) में आसक्त होकर विनाश को प्राप्त होते हैं।

''जो अमनोज्ञ रूपों, शब्दों, गन्धों, रसों, स्पर्शों और भावों में तीव्र द्वेष करता है, वह अपने दुर्दम द्वेष से उसी क्षण दुःख को प्राप्त करता है। वे रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श और भाव उसका कोई अपराध नहीं करते।''

जैन आगम उत्तराध्ययन में विभिन्न उपमाओं के द्वारा इन्द्रिय–विषयों और भावों में अत्यन्त आसक्त या गृद्ध होने वाले व्यक्ति की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया गया है।

शरीर भौतिक है। आत्म–स्वरूप की उपलब्धि में या मुक्ति में बाधक है। अवतार वे ही आत्माएं लेती हैं जो सशरीरी हैं। सिद्धात्माएं शरीर–मुक्त होती हैं। वे पुनः जन्म नहीं लेतीं। औदारिक शरीर मुक्ति का साधन भी है। वह इसलिए कि मोक्ष की साधना और प्राप्ति केवल औदारिक शरीर से ही संभव है।

यह औदारिक शरीर एकेन्द्रिय जीवों से लेकर मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय तक सब जीवों को प्राप्त होता है।

13.3.3. तैजस शरीर

तैजस शरीर वह सूक्ष्म शरीर है जो पूरे स्थूल शरीर में फैला हुआ होता है और पूरे शरीर को ऊर्जा देता है। शरीर–विज्ञान के अनुसार हर कोशिका में ऊर्जा का निर्माण होता है और अध्यात्म के अनुसार चेतना के असंख्य प्रदेशों में प्राण व्याप्त है। तेजोमय परमाणुओं से निष्पन्न शरीर तैजस् शरीर है। यह तेजो–लब्धि, दीप्ति और पाचन का हेतु है। यह तापमय शरीर है। हमारी उष्मा, सक्रियता और शक्ति का सचालक है। इसके बिना उष्मा उत्पन्न नहीं हो सकती, पाचन नहीं हो सकता, रक्त–सचार आदि क्रियाएं नहीं हो सकतीं। हमारे स्थूल शरीर की सारी क्रियाओं का संचालन इसी शरीर द्वारा होता है।

तैजस की मंदता अग्नि–मंदता का हेतु है। अग्नि की मंदता से प्रत्येक प्रवृत्ति बलहीन हो जाती। तैजस शरीर के मुख्यतया दो कार्य हैं–

1. शरीर–तंत्र का संचालन।

2. अनुग्रह–निग्रह की क्षमता।

हमारी जीवनी–शक्ति का आधार प्राण तत्त्व तैजस शरीर से ही प्रवाहित होता है।

यह ऊर्जामय शरीर है। इसे योग के आचार्य प्राणयम कोष तथा वैज्ञानिक ''वाइटल बॉडी'' या बायो इलेक्ट्रिकल प्लाज्मा कहते हैं। सीधी भाषा में कहें तो यह विद्युतीय शरीर है। ऊर्जा का अपार भंडार है।

वैज्ञानिक आंकड़े बताते हैं कि मनुष्य–जीवन को संचालित करने के लिए जितनी प्रवृत्तियां होती हैं। उन प्रवृत्तियों में जितनी विद्युत् या ऊर्जा खपती है, उससे एक बड़ी कपड़े की मील चलाई जा सकती है।

एक बच्चे की शारीरिक क्रियाओं में जितनी विद्युत खपती है उससे रेल का एक इंजन चलाया जा सकता है।

मनुष्य–शरीर की प्रत्येक कोशिका में अपना स्वतंत्र ''पावर–हाऊस'' है जहां विद्युत्–ऊर्जा उत्पन्न होती है, उसी से पूरा शरीर–तंत्र सक्रिय रहता है।

सूरज, वायु तथा अनंत आकाश में व्याप्त सूक्ष्म तरंगों से भी निरन्तर ऊर्जा मिलती रहती है। उससे भी तैजस शरीर पुष्ट होता रहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्राण–वायु ऑक्सीजन शरीर के भीतर जाकर कोशिकाओं को ऊर्जा प्रदान करती है। इससे तैजस शरीर भी प्रभावित होता है। प्राणयम कोष को निर्मल और पारदर्शी बनाने के लिए प्राण को साधना आवश्यक है। ऐसा योग के आचार्यों का अभिमत है।

मंत्र–जप, प्राणायाम और दीर्घ श्वास के अभ्यास से तैजस शरीर को प्रभावित कर उसमें छिपी अनन्त शक्ति को उजागर किया जा सकता है। विचार–तंत्र और आभामण्डल को भी प्रभावित किया जा सकता है।

13.3.4. कार्मण शरीर

ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों के पुद्गल–समूह से निर्नित शरीर कार्मण शरीर या कर्म–शरीर है। यह पूर्ववर्ती औदारिक आदि चारों शरीरों का कारण है, इस दृष्टि से इसे ''कारण शरीर'' भी कहा जाता है। यह सूक्ष्मतम शरीर है। इसके बिना स्थूल शरीर का निर्माण संभव नहीं। कार्मण शरीर के माध्यम से ही आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करती है या दूसरे शरीर का निर्माण करती है।

औदारिक शरीर जन्म संबंधी है। वैक्रिय शरीर जन्म–संबंधी भी है (देवों और नारकों के) और लब्धिजन्य भी। आहारक शरीर योग–शक्ति–जनित ही होता है। ये तीनों शरीर स्थूल हैं, अवयवी हैं। तैजस और कार्मण सूक्ष्म शरीर हैं। मृत्यु के बाद भी जीव के साथ रहते हैं।

संसारी आत्माओं के दो या तीन शरीर सदा रहते हैं। कुछ आत्माओं में पांचों शरीरों के निर्माण की क्षमता रहती है। कम से कम दो शरीर–तैजस और कार्मण तो प्रत्येक संसारी आत्मा के साथ रहते ही हैं। इनका आत्मा के साथ अनादि सम्बन्ध है। इन दोनों शरीरों के छूटते ही आत्मा मुक्त हो जाती है। फिर उसे संसार में परिभ्रमण करना नहीं पड़ता।

जैसा कि हमने जाना तैजस और कार्मण–ये दो सूक्ष्म शरीर प्रत्येक संसारी प्राणी के होते हैं। पर इसके साथ ही ज्ञातव्य है कि केवल इन दो शरीरों में आत्मा अधिक समय तक नहीं रह सकती। वह केवल अन्तराल गति (एक जन्म से दूसरे जन्म–स्थान में जाने के मध्य का समय) में होते हैं। नया जन्म लेते ही उसे तीसरा शरीर धारण करना होता है। कार्मण शरीर सूक्ष्मतम माना गया है। अध्यात्म के अनुसार ज्ञान, दृष्टि, संवेदनशीलता, आसक्ति, शरीर–सौष्ठव, बाह्य–परिवेश, विघ्न–बाधाएं और जीवन की अवधि आदि सभी का निर्धारण कार्मण शरीर में होता है। कार्मण शरीर का शरीर–विज्ञान में संवादी–तंत्र है अन्तःस्रावी ग्रंथि–तंत्र। इस प्रकार प्रतीत होता है कि ग्रंथि–तंत्र के स्रावों और कर्मस्रावों में समानता है। हमारी कोशिकाओं में स्थित गुण–सूत्र (chromosomes) और जीन्स (genes) ग्रंथियों को प्रभावित करने वाले हैं। कर्म–शास्त्रीय दृष्टि से नाम–कर्म और गुण–सूत्र व जीन्स में बहुत ही साम्य नजर आता है।

कर्म शरीर संस्कारों का वाहक है। जन्म–जन्मान्तरों की संस्कार–परम्परा इसके साथ जुड़ी हुई होती है। व्यक्ति का चरित्र, ज्ञान, व्यवहार, व्यक्तित्व, कर्तव्य–इन सबके बीज कर्म शरीर में ही सन्निहित हैं। जीनेटिक साइंस के अनुसार व्यक्ति के आकार, प्रकार, संस्कार का मूल्य आधार 'जीन' है। मानव शरीर में लगभग एक लाख तीस हजार किस्म के 'जीन्स' हैं। प्रत्येक जीन–शृंखला में ढ़ाई अरब ''बेस'' अथवा आधार–कण के जोड़े होते हैं। इन्हीं के आधार पर व्यक्ति का व्यक्तित्व बनता है। कर्म शास्त्रीय दृष्टि से व्यक्तित्व की विचित्रता का मूल कर्म शरीर है।

कर्म शरीर चेतना के सर्वाधिक निकट है। चैतन्य की रश्मियों को रोकने वाली सदृढ़ दीवार है। चैतन्य को प्रकट करने के लिए उसका हटना आवश्यक है। भगवान महावीर ने कहा–''धुणेहि कम्म सरीरगं–कर्म–शरीर को परकम्पित करो। दुर्बल करो। इसके समाप्त होते ही जन्म–परंपरा समाप्त हो जाएगी। चेतना की समस्त शक्तियां जागृत हो जाएगी। इसका प्रारम्भ औदारिक शरीर की सिद्धि और शुद्धि से होता है। इसके लिए शरीर के क्रिया–तंत्र, विचार–तंत्र और नाड़ी–तंत्र का शोधन और संयम कर ग्रंथि–तंत्र के स्रावों को बदला जा सकता है। उसका फलित है भाव–शुद्धि। भाव–शुद्धि से लेश्या पवित्र होता है। लेश्या अध्यवसाय को प्रभावित करती है। पवित्र अध्यवसाय से कार्मण–शरीर प्रकम्पित होता है। जन्म–जन्मान्तरों के संस्कार क्षीण होते हैं। मूर्च्छा टूटती है और चेतना का सूर्य समग्रता से प्रकाशित हो उठता है।

शरीर–प्रेक्षा द्वारा प्रत्येक कोशिका की प्रेक्षा करके हम न सिर्फ हमारी ऊर्जा के व्यय को रोकते हैं बल्कि कार्मण शरीर को प्रभावित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

करते हैं। पहले हम गहराई तक भीतर चित्त को ले जाकर औदारिक शरीर को देखते हैं। हमें जिन स्पन्दनों का अनुभव होता है, वे होते हैं परिवहन—तन्त्र के और रासायनिक परिवर्तनो के। जब और गहराई में जाते हैं तब हम कोशिकाओं के भीतर ऊर्जा का अनुभव करते हैं। गुण—सूत्र और जीन्स के कार्यों के प्रभाव हमारे अनुभव में आते हैं।

शरीर—प्रेक्षा में हमारा ज्ञान और दृष्टि का आवरण हटता है। हम अपने आपको और शरीर को नये—नये पहलुओं से जानते और देखते हैं। संवेदनशीलता नई दृष्टि के साथ विकसित होती है।

13.4. शरीर प्रेक्षा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

शरीर प्रेक्षा का अर्थ है शरीर को देखना, प्रत्येक अवयव पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करना। इन प्रकम्पनों की सम्यक् अनुभूति के लिए शरीर को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जानना नितान्त आवश्यक है। हम जीवन में प्रतिक्षण अपने शरीर के साथ रहते हैं किन्तु उसके प्रमुख अवयवों के विषयों में हमारी जानकारी अल्प एवं इन अवयवों के क्रिया कलापों के विषय में अल्पतर होती है। सर्वप्रथम हमें शरीर के विभिन्न तंत्रों की प्रक्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करना होगा तभी हम अपने हृदय, फेफड़े और यकृत जैसे महत्त्वपूर्ण अंगों का सम्यक् परिचय कर सकेंगे उनका गलत ढंग से उपयोग करना छोड़ सकेंगे और उनकी भली—भांति देख—रेख कर सकेंगे।

मानव—शरीर और अंगोपांग खरबों की संख्या में सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणिकाओं जिन्हें कोशिका कहते हैं, उनके द्वारा उत्पादित द्रव्य एवं शरीर के तरल पदार्थों से निर्मित है। यदि शरीर को हम इमारत कहें तो कोशिका उसकी ईंट है। यानि कोशिकाएं हमारे शरीर की इकाइयां हैं। हमारे शरीर में खरबों कोशिकाएं होती हैं। प्रायः सभी कोशिकाएं इतनी सूक्ष्म होती हैं कि उन्हें देखने के लिए सूक्ष्मतम—वीक्षण यंत्र (microscope) की अपेक्षा होती है तथा उनके भीतर झांकने के लिए उससे भी अधिक शक्तिशाली सूक्ष्मतम—वीक्षण यंत्र की अपेक्षा होती है।

कोशिकाओं को अपना कार्य करने के लिए शक्ति या ऊर्जा (एनर्जी) की आवश्यकता होती है। इसका उत्पादन कोशिकाओं के भीतर रहे हुए सूक्ष्मातिसूक्ष्म ऊर्जा—उत्पादन केन्द्रों (Power-house) में किया जाता है। लगभग सभी ऊतकों में कोशिकाएं जीर्ण होती रहती हैं और उनके स्थान पर नई कोशिकाएं बनती रहती हैं। नई कोशिकाओं का निर्माण जीर्ण कोशिकाओं के विभाजन से होता है। प्रत्येक जीवित कोशिका में सहस्रों की संख्या में विभिन्न प्रकार के रसायन विद्यमान होते हैं। ये रसायन केवल निष्क्रिय पदार्थों का मिश्रण न होकर निरन्तर सक्रिय रूप से एक दूसरे के साथ क्रिया में प्रवृत्त रहते हैं। आनुवंशिकता की सम्पूर्ण जानकारी का संकेत भी उनमें रासायनिक रूप में होता है। शरीर के विभिन्न अंगों की संरचना भी विभिन्न रासायनिक उत्पादनों से की जाती है। भिन्न-भिन्न अंशो में विद्यमान विभिन्नता का कारण भी रासायनिक पदार्थों की रचना की विभिन्नता ही है।

समान संरचना वाली कोशिकाओं के समूह एवं उनके बीच रहे हुए निर्जीव पदार्थ मिलकर ऊतक की रचना करते हैं। जैसे—

1. त्वचा या आच्छादन करने वाले ऊतक।
2. अस्थि और उपास्थि।
3. मांसपेशियों के ऊतक।
4. तंत्रिकाओं के ऊतक आदि।

एक ही प्रकार के कार्यों में संलग्न अनेक ऊतकों के समूह से अवयव बनते हैं, उदाहरणार्थ— हृदय जो कि शरीर का एक मात्र प्राण-आधार (Vital) अवयव है। जीवित शरीर को टिकाए रखने के लिए "संघ—कार्य" एक आवश्यक स्थिति है; अर्थात् सभी अवयवों द्वारा एक दूसरे को परस्पर सहयोग करना अत्यन्त अपेक्षित है। एक ही प्रकार के कार्यों की श्रृंखला को निष्पादित करने वाले अनेक अवयवों के समूह को "तन्त्र" कहा जाता है। जैसे—श्वसन-तन्त्र। शरीर के जिन तन्त्रों के विषय में यहां संक्षिप्त जानकारी अपेक्षित है, वे हैं—

1. नाड़ी तन्त्र / तंत्रिका तंत्र।
2. रक्त-परिसंचरण तन्त्र।
3. श्वसन तन्त्र।
4. पाचन तन्त्र।
5. अन्तःस्रावी ग्रंथि तन्त्र।
6. विसर्जन तन्त्र।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.4.1 नाड़ी–तन्त्र (तंत्रिका–तन्त्र)

नाड़ी संस्थान (Nervous System) मानव शरीर का एक जटिलतम तन्त्र है। यह शरीर के अन्य सभी तन्त्रों का नियन्त्रण व संयोजन करता है तथा उनके माध्यम से समग्र शरीर के क्रियाकलापों को संचालित करता है। इसलिए इसे शरीर का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तन्त्र माना जाता है। यदि नाड़ी–तन्त्र किसी भी कारण से विफल हो जाए तो सारे शरीर की प्रवृत्तियां ठप्प हो जाएंगी, सारे अवयव स्तम्भित हो जाएंगे और अन्ततोगत्वा सूक्ष्म प्राणाधार क्रियाएं बन्द हो जाएंगी। ऐसी स्थिति में न हाथ–पैर हिल सकेंगे, न बैठना–उठना होगा, न मांसपेशियों का संचालन हो सकेगा, न आंखों का उन्मेष–निमेष होगा और यहां तक की श्वासोच्छ्वास भी बन्द हो जाएगा।

हमारे केन्द्रीय नाड़ी संस्थान के मुख्य दो अंग हैं–

1. मस्तिष्क (Brain), 2. सुषुम्ना या मेरु–रज्जु (Spinal Cord)।

नाड़ी–तंत्र के मुख्य दो कार्य इस प्रकार हैं–

1. शरीर के भीतर और बाहर से प्राप्त होने वाली सूचनाओं की जांच–पड़ताल कर उन्हें संशोधित करना।

2. पेशी–तंत्र की सक्रियता के द्वारा शारीरिक संचालन का उत्पादन एवं नियमन करना। मस्तिष्क के कुछ हिस्से संवेगों के नियंत्रण और सूचनाओं के संग्रह के लिए जिम्मेदार होते हैं तथा व्यक्तित्व एवं बौद्धिकता के साथ भी उनका सम्बन्ध होता है।

नाड़ी–संस्थान या तंत्रिका–तंत्र की कुछ प्रवृत्तियां ऐसी हैं जो स्वतः संचालित होती हैं और कुछ प्रवृत्तियां मेरुदण्ड और मस्तिष्क के माध्यम से इच्छा द्वारा संचालित होती हैं। हाथ उठाना, आदमी की इच्छा होगी तो हाथ उठेगा, अन्यथा नहीं। आन्तरिक अवयवों के कार्य; ग्रंथियों का स्राव आदि सारे कार्य स्वायत्त तंत्रिका–तंत्र से निष्पादित होते हैं।

स्वायत्त नाड़ी–तंत्र के दो पृथक् विभाग होते हैं जिनमें प्रत्येक विभाग एक विशेष प्रकार के कार्य को सम्पादित करता है–

1. परानुकंपी (Parasympathetic)
2. अनुकंपी (Sympathetic)

इन दोनों की क्रिया परस्पर विपरीत है। जहां एक विभाग अंग या अवयव की क्रिया को उत्तेजित करता है, वहां दूसरा उसे शांत करता है। उदाहरणार्थ– अनुकंपी विभाग हृदय की गति एवं उसकी संकुचन–शक्ति तथा रक्त–चाप को बढ़ाता है तो परानुकंपी व्यवस्था इन्हें कम करती है।

13.4.2 रक्त–परिसंचरचण तन्त्र

मानव–शरीर की प्रत्येक कोशिका को ग्लूकोज आदि पोषक तत्वों तथा प्राणवायु (ऑक्सीजन) की आपूर्ति की निरन्तर आवश्यकता रहती है। इसके अतिरिक्त कार्बन–डाई–ऑक्साइड, यूरिया आदि अनावश्यक तत्वों को कोशिकाओं से हटाकर फेफड़ों, गुर्दों या यकृत में

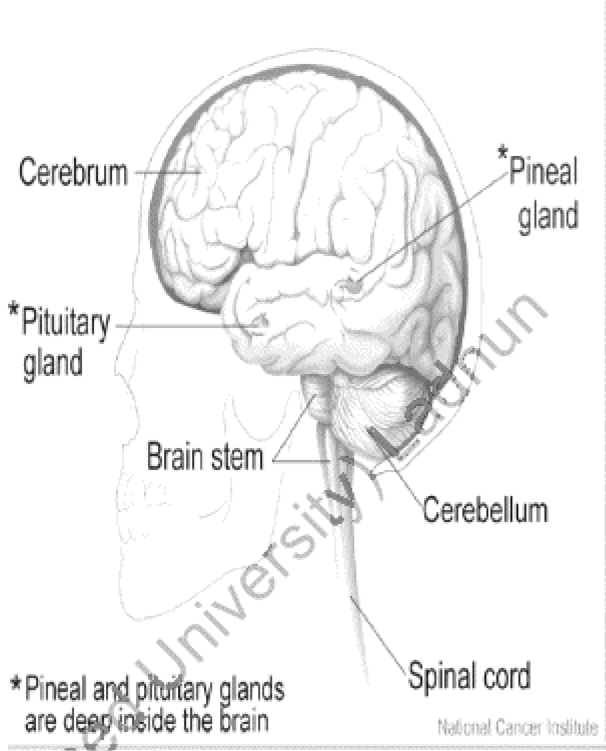

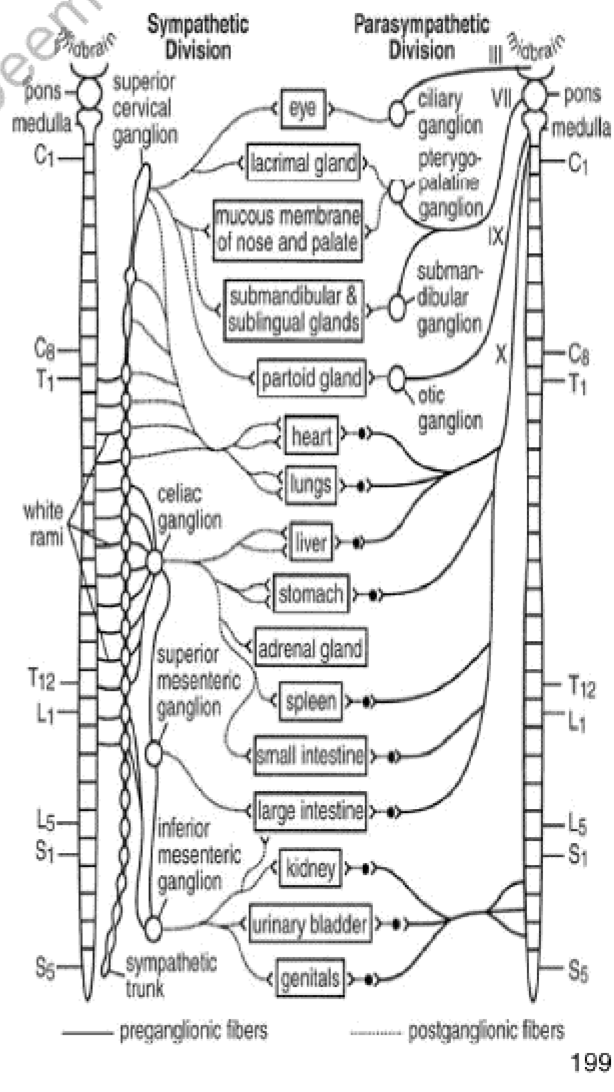

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पहुंचाने की आवश्यकता रहती है जहां से उनका विसर्जन या आवश्यक शोधन किया जा सके।

रक्त–परिसंचरण–तन्त्र अपनी फैली हुई शाखा–प्रशाखाओं की जटिल संरचना एवं अन्तः–सम्बन्ध–युक्त नलिकाओं के माध्यम से रक्त को शरीर में पहुंचाकर शरीर को यह सेवा प्रदान करता है। इस तन्त्र के प्रमुख अवयव हैं– हृदय, फेफड़े, महाधमनी, धमनियां, महाशिरा, शिराएं और कोशिकाएं। रक्त को सतत् प्रवहमान रखने के लिए जिस प्रेरक बल की आवश्यकता है, वह है हृदय नामक शक्तिशाली पम्प की नियमित होने वाली धड़कन। परिसंचरण का सामान्य क्रम इस प्रकार है– हृदय → महाधमनी → धमनियां → लघुधमनियां → कोशिकाएं → लघुशिराएं → शिराएं → महाशिरा →हृदय।

13.4.3 श्वसन तन्त्र

जीवित रहने के लिए प्रत्येक जीव को ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। शरीर में चयापचय आदि अन्यान्य क्रियाओं के सम्पादन के लिए ऑक्सीजन की आपूर्ति होना अनिवार्य है। प्रत्येक जीव इनकी पूर्ति वातावरण से करता है। सामान्य शब्दों में वातावरण में स्थित वायु में स्थित ऑक्सीजन (O_2) को शरीर की समस्त कोशिकाओं तक पहुँचाना तथा चयापचय के उपरान्त वहां तैयार कार्बन डाई ऑक्साइड (CO_2) का शरीर से निष्कासन करना ही श्वसन क्रिया है। यह अत्यन्त जटिल क्रिया है तथा मुख्यतः दो स्तरों पर सम्पादित की जाती है।

इस श्वसन क्रिया का सम्पादन कई अंग मिलकर करते हैं, जिन्हें सम्मिलित रूप से श्वसन तंत्र कहते हैं। मुख्य अंग जो श्वसन क्रिया में योगदान देते हैं, इस प्रकार हैं– नासा गुहाएँ (Nasal Cavities), ग्रसनी (Phyrypx), स्वर यंत्र (Lagrynx), श्वासनली (Tracher), श्वसनी (Bronchi), श्वसनिकाएँ (Bronchioler) तथा फेफड़े (Lungs)।

13.4.4. पाचन तन्त्र

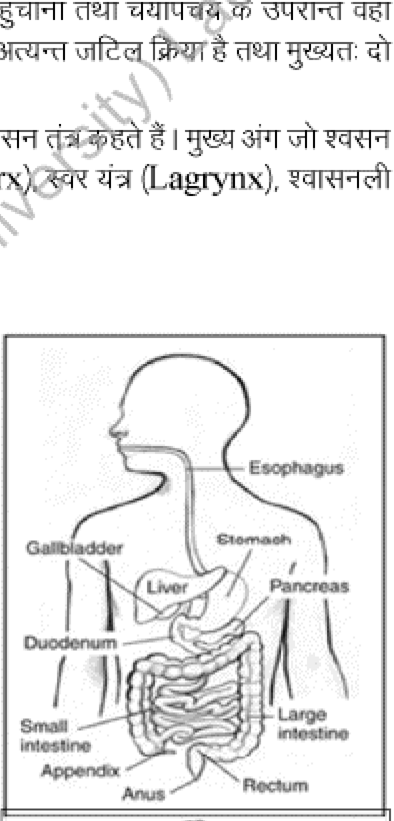

जीवन की अनिवार्य क्रियाओं के संपादन हेतु निरन्तर ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ऊर्जा का उत्पादन करने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। पाचन–क्रिया जिस अवयव के द्वारा होती है, उसे भोजन–प्रणाली अथवा अन्नमार्ग कहते हैं। भोजन–प्रणाली (alimentary canal) तथा कुछ अन्यान्य ग्रंथियां जो अपना रस इस प्रणाली को प्रेषित करती हैं, मिलकर ''पाचन–संस्थान'' बनाती हैं। भोजन–प्रणाली का प्रारम्भ मुख से होता है और अन्त मल–द्वार में। यह सारा मार्ग नौ मीटर लम्बा होता है।

इस तंत्र के अवयव हैं– मुख और लार–ग्रंथि, अन्ननली, आमाशय, पक्वाशय, बड़ी आंत आदि। पाचन तन्त्र के सहायक अवयव हैं– यकृत, क्लोम–ग्रंथि (अग्न्याशय या चुस्त) (Pancreas)।

13.4.5. अन्तःस्रावी ग्रंथि तन्त्र

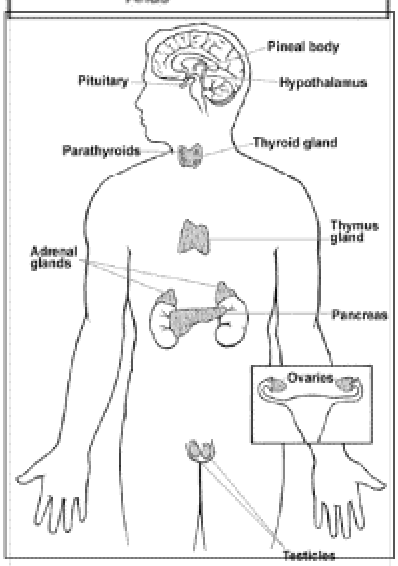

अन्तःस्रावी ग्रंथियां (endocrine glands) नलिकाविहीन होती हैं। उनके स्राव सीधे ही रक्त–प्रवाह में छोड़े जाते हैं। वे पूरे शरीर में प्रवाहित होते हैं और उत्पादन–स्थान से सुदूर स्थानों तक अपना कार्य कर सकते हैं। अन्तःस्रावी ग्रंथियां शरीर में बिखरी हुई पाई जाती हैं। इसके बावजूद इन सबका एक सक्षम तन्त्र बनता है जो शरीर की अन्यान्य क्रियाओं में संपूर्ण संगति बिठाकर उनका सुचारु रूप से नियंत्रण करता है।

मुख्य अन्तःस्रावी ग्रंथियां ये हैं– पीनियल, पिच्यूटरी (पीयूष) थाइरॉइड, पेरा–थाइरॉइड, एड्रीनल (अधिवृक्क), अग्न्याशय (लेंगरहांस के द्वीप) तथा गोनाड्स् (काम– ग्रंथियां)। ये सब ग्रंथियां अपेक्षाकृत काफी छोटी होती हैं। रक्त द्वारा इन्हें विपुल मात्रा में पोषक सामग्री उपलब्ध होती है। इन ग्रंथियों के उत्पाद जैव–रासायनिक–यौगिक (Organic Chemical Compounds) के रूप में होते हैं। वे स्वल्प मात्रा में भी बहुत अधिक प्रभावशील होते हैं।

13.4.6. विसर्जन तन्त्र

शरीर में उत्पन्न नाईट्रोजनीय अपशिष्ट पदार्थों का विसर्जन करने के लिए मुख्य अवयव के रूप में गुर्दे कार्य करते हैं। प्रत्येक गुर्दे में मूत्र का उत्पादन सतत् चौबीस घंटे चालू रहता है। वह बूंद–बूंद कर मूत्र–वाहिनी के माध्यम से मूत्राशय (ब्लैडर) में टपकता रहता है

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

और संगृहीत होता है। मूत्राशय से मूत्र को बाहर निकालने के लिए एक नलिका होती है जो शरीर के बाहर एक छिद्र के द्वारा खुलती है।

रक्त की सफाई के अतिरिक्त गुर्दे रक्त की लाल कोशिकाओं के उत्पादन को बढ़ावा देते हैं। इसके अतिरिक्त वे रक्त में सोडियम व पोटेशियम, लवण, जल एवं अन्य तत्वों की मात्रा का नियमन करते हैं। गुर्दों के द्वारा जैविक जल–संतुलन को नियंत्रित किया जाता है। गुर्दे हमारे रक्त को अधिक अम्लीय या अत्यधिक प्रत्यम्लीय होने से बचाते हैं।

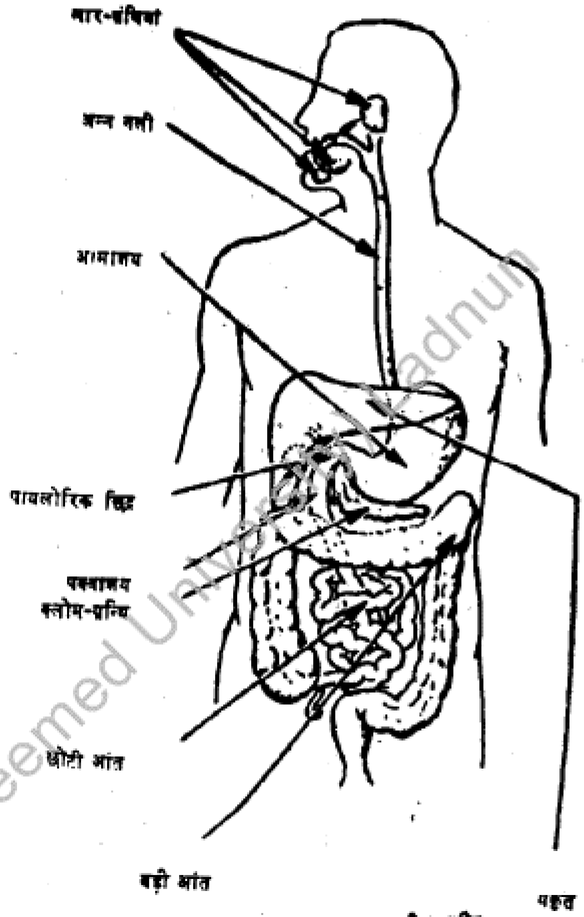

13.5. शरीर प्रेक्षा की निष्पत्तियां

13.5.1. प्राण का संतुलन

शरीर-प्रेक्षा का महत्त्वपूर्ण परिणाम है– प्राण–प्रवाह का संतुलन। शरीर-प्रेक्षा आध्यात्मिक प्रक्रिया है। साथ-साथ यह मानसिक और शारीरिक प्रक्रिया भी है। स्वास्थ्य के लिए भी बहुत बड़ी चिकित्सा है– प्राण-चिकित्सा। शरीर-प्रेक्षा करने वाला केवल आध्यात्मिक प्रयोग ही नहीं कर रहा है, साथ-साथ में प्राण–चिकित्सा का प्रयोग कर रहा है, बीमारियों की चिकित्सा भी कर रहा है।

यदि प्राण–शक्ति का संतुलन बना रहे तो कोई बीमारी नहीं हो सकती। असंतुलन ही मनुष्य को बीमार बना रहा है। कहीं प्राण ज्यादा हो गया और कहीं कम हो गया, संतुलन बिगड़ गया। पूरे शरीर में प्राण-धारा का एक संतुलन होना चाहिए। शरीर में विद्युत का प्रवाह संतुलित रहना चाहिए। वह संतुलन बिगड़ा और आदमी बीमार बन गया। प्रेक्षा करने वाला पूरे शरीर को देखता है– सिर से पैर तक देखता है। देखने का मतलब है, जहां चित्त जाता है, वहां प्राण जाता है। चित्त और प्राण दोनों साथ–साथ जाते हैं। चित्त केन्द्रित हुआ, प्राण को उसके साथ जाना ही होगा। प्राण चित्त का अनुचारी है, अनुगामी है। पूरे शरीर में प्राण की यात्रा होती है। जो संतुलन बिगड़ा हुआ होता है, वह संतुलन फिर ठीक हो जाता है। परिणाम-स्वरूप जहां चेतना पर आया हुआ आवरण दूर होता है, वही साथ ही प्राण-शक्ति, ज्ञानतंतुओं एवं कर्म-तंतुओं के पर्याप्त उपयोग तथा मांसपेशियों व रक्तसंचार (blood circulations) क्षमता में संतुलन के माध्यम से अभीष्ट मानसिक एवं शारीरिक लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं।

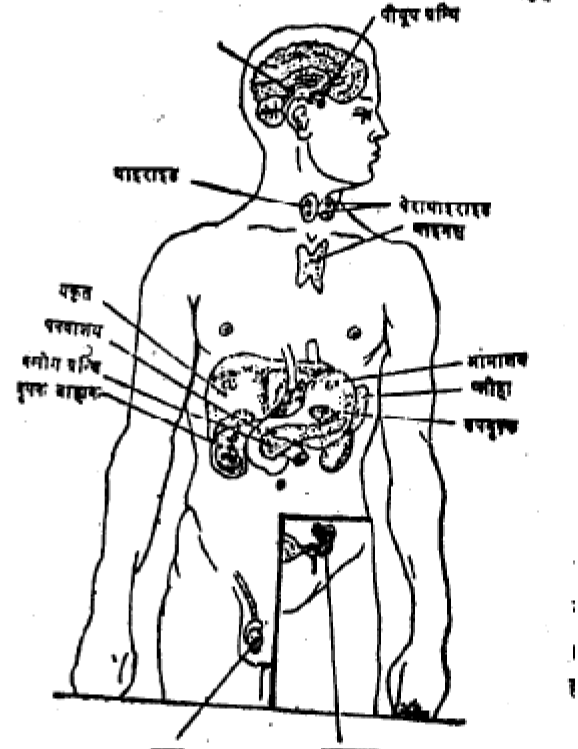

13.5.2 रोग–प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास

शरीर में रोग न होने का दूसरा उपाय है– रोग– प्रतिरोधक शक्ति का विकास। जब रोग–प्रतिरोधक शक्ति प्रबल होती है, तब किसी भी प्रकार के रोग के कीटाणु आक्रमण नहीं कर सकते। वे आते हैं और पराजित होकर भाग जाते हैं। जिस व्यक्ति की प्रतिरोधात्मक शक्ति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मजबूत है, उसे कीटाणु सताने का प्रयत्न तो करते हैं पर सता नहीं पाते। हम शरीर–प्रेक्षा के द्वारा रोग–प्रतिरोधक शक्ति को सक्षम बनाते हैं, उसकी एक मजबूत दीवार खड़ी करते हैं जिससे कि कोई आक्रमण न कर सके।

शरीर–प्रेक्षा की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण निष्पत्ति है– चेतना के साथ जुड़ी हुई आस्था का निर्माण। उस आस्था के आधार पर संचालित होने वाली नई आदतों का निर्माण। शरीर–प्रेक्षा उत्सर्जन–तंत्र को सक्रिय एवं सक्षम बनाए रखने में सहायक होती है जिससे शरीर का विष सहजता से विसर्जित हो जाए।

शरीर–प्रेक्षा के द्वारा रक्त–संचार तंत्र ठीक काम करने लग जाता है, रक्त–संचार में होने वाले अवरोध दूर हो जाते हैं, धमनियों के अवरोध दूर होते हैं। रक्त–चाप संतुलित होता है। हृदय को अतिरिक्त श्रम नहीं करना पड़ता और वह लम्बे समय तक कार्यक्षम हो सकता है। शरीर–प्रेक्षा का प्रभाव पाचन–तंत्र पर पड़ने से आमाशय, यकृत, आंत आदि सभी अवयवों की कार्य–प्रणाली ठीक चलने लगती है। इससे प्रत्येक कोशिका को पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्त्व मिल सकते हैं। प्रत्येक मांसपेशी अपना कार्य सुचारू रूप से संचालित करने के लिए उद्यत रह सकती है। सभी उदर–संबंधी रोगों का स्वतः निवारण हो जाता है। शरीर–प्रेक्षा का सीधा प्रभाव नाड़ी–तंत्र पर पड़ता है। हमारे मस्तिष्क और मन से संबंधित सारी गड़बड़ियां नाड़ी–तंत्र के अवरोधों और विकृतियों के कारण पैदा होती हैं। जब नाड़ी–तंत्र शुद्ध होता है तो सारी मानसिक बीमारियां (आधियाँ) स्वतः समाहित हो जाती हैं।

13.6 शरीर प्रेक्षा की प्रक्रिया

शरीरप्रेक्षा में हमें शरीर को देखना है। शरीर को खुली आंखों से नहीं, चित्त की आंखों से देखना है। आंखें बन्द रहेगी। चित्त को शरीर के प्रत्येक अवयव पर ले जाकर वहां पर होने वाले परिणमन, स्पंदन, प्रकम्पन या संवेदन आदि को द्रष्टाभाव से देखना है। कपड़े का स्पर्श, पसीना, खुजली, दर्द आदि जो कुछ अनुभव हो, उसे देखना है, केवल देखना है, उसका अनुभव करना है (यह सुझाव प्रयोग करने से पहले दे दें)।

चित्त को दाएं पैर के अंगूठे पर केन्द्रित करें। पूरे भाग में चित्त की यात्रा करें। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। केवल अनुभव करें, प्रेक्षा करें। प्रियता और अप्रियता से मुक्त रहकर केवल द्रष्टाभाव से देखें और जानें।

इसी प्रकार प्रत्येक अंगुली......पंजा.....तलवा......एड़ी......टखना......पिण्डली......घुटना......साथल......तथा कटिभाग पर चित्त को केन्द्रित कर वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। केवल अनुभव करें, प्रेक्षा करें, द्रष्टाभाव से देखें और जानें।

इसी प्रकार बाएं पैर के अंगूठे से कटिभाग तक प्रत्येक अवयव पर चित्त को केन्द्रित कर वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। केवल अनुभव करें, प्रेक्षा करें, द्रष्टाभाव से देखें और जानें। (प्रत्येक अवयव पर आधा से एक मिनट तक प्रेक्षा कराएं।) अधोलोक की यात्रा सम्पन्न।

अब मध्य लोक की यात्रा प्रारम्भ करें। पेडू के पूरे भाग में चित्त की यात्रा करें–दाएं–बाएं, आगे–पिछे, बाहर और भीतर–प्रत्येक भाग में चित्त को केन्द्रित करें और वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। केवल द्रष्टाभाव से देखें।................(दो मिनट बाद) इसी तरह पेट के पूरे भाग की यात्रा करें, प्रेक्षा करें।

अब पेट के भीतरी अवयवों की प्रेक्षा करें–दोनों गुर्दे.....बड़ी आंत......छोटी आंत......अग्न्याशय......पक्वाशय......आमाशय......तिल्ली......यकृत......तनुपट......प्रत्येक अवयव पर 20 से 30 सैकण्ड रूकें।

अब छाती के पूरे भाग की यात्रा करें–दाएं–बाएं, आगे–पिछे, बाहर और भीतर–प्रत्येक भाग में चित्त केन्द्रित करें और वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। केवल द्रष्टाभाव से देखें। अब वक्ष स्थल के प्रत्येक अवयव की प्रेक्षा करें–हृदय......दायां फेफड़ा.....बायां फेफड़ा......दाई पंसलियां......बाई पसलियां......।

पीठ का पूरा भाग–मेरुदण्ड......सुषुम्ना......सुषुम्ना शीर्ष.....गर्दन......।

अब दोनों हाथों की प्रेक्षा करें। दाएं हाथ का अंगूठा......अंगुलियां......हथेली......मणिबंध......मणिबन्ध से कोहनी और कोहनी से कन्धे तक के भाग की प्रेक्षा करें।

इसी प्रकार बाएं हाथ के अंगुठे से कंधे तक एक–एक भाग की प्रेक्षा करें।

कंठ......स्वर–यंत्र......प्रत्येक भाग पर क्रमशः चित्त की यात्रा करें और प्रेक्षा करें। मध्य लोक की यात्रा सम्पन्न।

अब ऊर्ध्व लोक की यात्रा प्रारम्भ करें......ठुड्डी......होठ......मुंह......मुंह के भीतर मसूड़े......दांत......जीभ......तालु......दायां कपोल......बायां कपोल......नाक......दायीं कनपटी......दायां कान......बायीं कनपटी......बायां कान......दायीं आंख......बायीं आंख......ललाट और सिर। प्रत्येक भाग

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

की प्रेक्षा करें और वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। केवल अनुभव करें, प्रेक्षा करें, द्रष्टाभाव से देखें और जानें। ऊर्ध्व लोक की यात्रा सम्पन्न।

अब एक साथ पूरे शरीर की प्रेक्षा करें। जो आसानी से खड़े–खड़े कर सकते हैं, वे खड़े–खड़े करें।

चित्त में यह क्षमता है कि वह एक बिन्दु पर केन्द्रित हो सकता है और एक साथ पूरे शरीर में फैल सकता है। चित्त को पैर के दोनों अंगुठों पर केन्द्रित करें। पूरे शरीर के आकार में फैलाते हुए पैर से सिार तक शीघ्रता से ले जाएं। उसी गति से सिर से पैर तक लाएं। बीच–बीच में श्वास संयम के साथ शरीर प्रेक्षा का प्रयोग करें। शरीर के कण–कण का स्पर्श करें। शरीर का कण–कण चेतना और प्राण के स्पर्श से झंत हो उठे। अनुभव करें, जैसे पूरे शरीर में बिजली की धारा दौड़ रही है। कपड़े का स्पर्श, पसीना, खुजली, दर्द, स्पंदन जो कुछ हो रहा है, उसका तटस्थ भाव से अनुभव करें। अब धीमी गति से चित्त की यात्रा चले। कहीं पीड़ा, अवरोध हो उस पर कुछ क्षणों के लिए रूकें। केवल जानें, पूर्ण समभाव रहे।

13.7 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के उपरान्त सारांशतः कहा जा सकता है कि –

1. हमारे शरीर में अनेक तन्त्र व अनेक अवयव हैं जिनकी जानकारी नहीं होने से हम उनकी भलीभांति देख–रेख नहीं कर सकते। हमारे शरीर की प्रथम इकाई कोशिका है जिन्हें 'जीव अणु' की संज्ञा दी जा सकती है। कोशिकाओं में रसायनिक पदार्थों की क्रिया होती रहती है। एक ही प्रकार के कार्यों की श्रृंखला को निष्पादित करने वाले अनेक अवयवों के समूह को तन्त्र कहते हैं। श्वसन तन्त्र, नाड़ी तन्त्र, रक्त परिसंचरण तन्त्र, पाचन तन्त्र, अन्तःस्रावी ग्रंथि तन्त्र, विसर्जन तन्त्र प्रमुख हैं।

2. हमारा शरीर चेतन अचेतन का संयोग है। आत्मा अरूप है जो शरीर के साथ बन्धी हुई है। आत्मा और शरीर का सम्बन्ध पुरातन है। जिसके द्वारा पौद्गलिक सुख दुख का अनुभव किया जाता है वह शरीर है। औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण ये शरीर के पांच प्रकार हैं। मानव शरीर में एक लाख बीस हजार किस्म के जीन्स है। प्रत्येक जीन श्रृंखला में ढाई अरब 'बेस' अथवा आधार कण के जोड़े होते हैं। कर्म शरीर के समाप्त होते ही जन्म परम्परा से मुक्ति मिल जाती है।

3. मानव शरीर रहस्यों से भरा है जिसे डाक्टर नहीं जान सकता। इन रहस्यों को साधक जान लेता है। प्राणधारा व चित्तवृत्तियों का विषय चिकित्साशास्त्र का नहीं है। प्राण का प्रवाह सम्पूर्ण शरीर में है तथा भीतरी यात्रा से ही भीतरी द्वार खुलते हैं जैन दर्शनानुसार जीवन शक्ति के स्रोत दस प्रकार के प्राण हैं। जैन आगमों में इन्द्रिय संयम, मन संयम और अध्यात्म पर बल दिया गया है। इन्द्रिय रसों के वशीभूत व्यक्ति दुर्दशा को प्राप्त होता है। तैजस शरीर पूरे शरीर में फैला हुआ है और सम्पूर्ण शरीर को ऊर्जा देता है। कार्मण शरीर शरीर विज्ञान की भाषा में संवादी नाड़ी तन्त्र एवं अन्तःस्रावी ग्रंथी तन्त्र है । शरीर प्रेक्षा द्वारा कोशिकाओं की प्रेक्षा करके ऊर्जा के अपव्यय को रोका जा सकता है और इसके द्वारा कार्मण शरीर को भी प्रभावित किया जा सकता है।

4. सम्पूर्ण शरीर में आत्मा के असंख्य प्रदेश फैले हुए है। आत्म दर्शन का पहला प्रयोग शरीर को देखना है। शरीर में होने वाले प्राण व रसायनों की क्रिया को देखना। शरीर प्रेक्षा अन्तर्मुखी होने की प्रक्रिया है।

5. शरीर प्रेक्षा का परिणाम है– प्राण प्रवाह का सन्तुलन। प्राण शक्ति का सन्तुलन रहने पर कोई बीमारी नहीं हो सकती। शरीर प्रेक्षा में चित्त और प्राण दोनों साथ–साथ उस स्थान पर जाने से प्राण का संतुलन बना रहता है। शरीर प्रेक्षा से रोग प्रतिरोधक शक्ति की क्षमता बढ़ती है। चेतना की आस्था का निर्माण होता है। रक्त संचार का व्यवस्थित रहना, पाचन तन्त्र का व्यवस्थित काम करना, नाड़ी तन्त्र के अवरोधों की गड़बड़ीयों को दूर करना शरीर प्रेक्षा की विशेष निष्पत्तियां हैं।

13.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. शरीर की मूल इकाई क्या है?
2. केन्द्रीय नाड़ी संस्थान के मुख्य अंगों को बतावें।
3. स्वायत-नाड़ी-तंत्र के कौन–से दो विभाग हैं?
4. ग्लुकोज तथा शुद्धवायु के संयोग से क्या होता है?
5. सारे शरीर की प्रवृत्तियों का नियंत्रण व संयोजन .... द्वारा होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6. किस शरीर के माध्यम से आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करती है।

7. स्थूल शरीर की सारी क्रियाओं का संचालन .... द्वारा होता है।

8. स्नायु तंत्र एवं ग्रंथि तंत्र का मुख्य कार्य क्या है?

9. तनाव कब पैदा होता है?

10. रक्त-परिसंचरण तंत्र का मुख्य कार्य क्या है?

लघुत्तरीय प्रश्न :

1. आध्यात्मिक दृष्टि से मानव शरीर के कितने प्रकार हैं, विवेचन करें।

2. नलिकाविहीन ग्रंथियों के नाम लिखते हुए किसी एक ग्रंथि का वर्णन करें।

निबन्धात्मक प्रश्न :

1. वैज्ञानिक दृष्टि से मानव शरीर के तंत्रों का विवेचन करते हुए, रक्त–परिसंचरण तंत्र को सचित्र समझावें।

अथवा

शरीर–प्रेक्षा के मानसिक एवं शारीरिक चिकित्सा नें जो लाभ होते हैं, उन्हें स्पष्टतया समझाएं।

13.9 संदर्भ ग्रंथ

1. प्रेक्षाध्यान : शरीर-प्रेक्षा – आचार्य श्रीमहाप्रज्ञ।

2. प्रेक्षाध्यान : सिद्धान्त एवं प्रयोग – आचार्यश्री महाप्रज्ञ।

3. जीवन विज्ञान की रूपरेखा – मुनि धर्मेश।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–14 चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा : प्रयोजन, आध्यात्मिक–वैज्ञानिक दृष्टिकोण, निष्पत्तियाँ एवं प्रक्रिया

इकाई की संरचना

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्देश्य

14.2 चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का प्रयोजन

14.2.1 विवेक चेतना का विकास

14.2.2 अन्तःस्रावी ग्रंथि तंत्र का संतुलन

14.2.3 अवचेतन मन से सम्पर्क एवं व्यक्तित्व का रूपान्तरण

14.3 चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का आध्यात्मिक दृष्टिकोण

14.3.1 हमारा द्वैतात्मक अस्तित्व

14.3.2 आयुर्वेद और एक्यूपंक्चर

14.3.3 ज्ञान केन्द्र और काम केन्द्र

14.3.4 चरित्र का विकास

14.3.5 कर्मशास्त्रीय व्याख्या

14.3.6 योगशास्त्र और शरीरशास्त्र

14.4 चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

14.4.1 अन्तः स्त्रावी ग्रन्थि तंत्र

14.4.1.1 अंतःस्रावी ग्रंथियों के स्थान एवं कार्य

14.4.2 आदतों का जन्म

14.5 चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा के प्रकार

14.6 चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा की निष्पत्ति

14.6.1 चैतन्य केन्द्रों की निर्मलता

14.6.2 शक्ति का जागरण

14.6.3 आनन्द का जागरण

14.7 चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा की प्रक्रिया

14.8 सारांश

14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.10 संदर्भ ग्रन्थ

14.0 प्रस्तावना

भगवान महावीर ने आचारांग में कहा है—— 'अणेगचित्तं खलु अयं पुरिसे' । अर्थात् पुरुष अनेक चित्त वाला है या फिर यों कहें कि चित्त की वृत्तियां अनेक होने के कारण चित्त भी अनेक होते हो। ये वृत्तियां हमारे व्यक्तित्व का निर्धारण करती हैं। हमारे व्यक्तित्व के दो प्रकार हैं—— स्थूल एवं सूक्ष्म या बाह्य और आंतरिक। इन दोनों को संचालित करने का कार्य चैतन्य के द्वारा होता है। जो चेतना स्थूल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्यक्तित्व का संचालन करती है, उसको स्थूल चित्त कहा जाता है। स्थूल व्यक्तित्व के अतिरिक्त हमारा आंतरिक व्यक्तित्व भी महत्त्वपूर्ण है। यह हमारे बाह्य व्यक्तित्व से भिन्न है। इसकी हर प्रवृत्ति सूक्ष्म होती है, जिसका भी संचालन चेतना के द्वारा होता है। इसे अध्यवसाय भी कहा जाता है। इस तरह आंतरिक एवं बाह्य व्यक्तित्व इन दोनों के बीच एक सेतु है, उसे लेश्याभाव कहते हो, जो आंतरिक व्यक्तित्व में घटित होने वाले प्रकंपनों को उसी रूप में स्थूल शरीर तक पहुंचाता है।

इस प्रकार एक ही चेतना क्षेत्र–भेद और कार्य–भेद के कारण तीन भागों में विभक्त हो जाती है— अध्यवसाय, लेश्या एवं चित्त। ये सब एक चेतना के विभाग हो। इनमें चेतना अलग नहीं है। वैसे तो हमारे शरीर में चेतना सर्वत्र व्यापक है किन्तु सघन रूप से चेतना कुछ विशिष्ट स्थानों पर रहती है जिनको शरीर विज्ञान की भाषा में ग्रंथियां एवं अध्यात्म विज्ञान की भाषा में चैतन्य केन्द्र कहा जाता है। ये केन्द्र अपने आप में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन केन्द्रों की प्रेक्षा द्वारा अनेक परिवर्तनों को घटित किया जा सकता है।

14.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के द्वारा निम्न उद्देश्यों को पूरा किया जा सकता है—

1. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा के प्रयोजन को समझा जा सकेगा।
2. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा के वैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक पक्ष को समझा जा सकेगा।
3. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा की निष्पत्तियों को समझा जा सकेगा।
4. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा की प्रायोगिक प्रविधि को जाना जा सकेगा।

14.2 चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का प्रयोजन

चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा के अनेक प्रयोजन हैं लेकिन प्रस्तुत पाठ में कुछ मुख्य प्रयोजनों पर चर्चा की गई है, जो इस प्रकार हैं—

14.2.1 विवेक चेतना का विकास

प्रत्येक मनुष्य में विवेक चेतना अन्तर्निहित होती है। इसका जागरण तब तक नहीं होता, जब तक मनुष्य अपने चेतन मन के द्वारा केवल बुद्धि और तर्क के आधार पर ही अपनी वृत्तियों की मांग पर विमर्श करता है। वस्तुतः उसकी बौद्धिक और तार्किक–शक्ति पर वृत्तियां इतनी अधिक हावी हो जाती हैं कि वह उनकी मांग के औचित्य–अनौचित्य का सही निर्णय करने में सक्षम नहीं होता। ऐसी स्थिति में उसका चेतन मन वृत्तियों की मांग को उचित ठहराने हेतु कोई–न–कोई तर्क या युक्ति ढूंढ निकालता है। इसलिए अपनी मौलिक मनोवृत्तियों के प्रेरक बलों पर प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य के उस विलक्षण वैशिष्ट्य को उजागर किया जाए जिसे ''विवेचन चेतना'' और ''विवेकपूर्ण तर्क'' कहा जाता है और अन्त में शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक सभी प्रवृत्तियों पर विवेक चेतना का पूर्ण नियंत्रण स्थापित किया जाए।

14.2.2 अन्तःस्रावी ग्रंथि तंत्र का संतुलन

वृत्तियों के आवेगात्मक बलों के उद्दीपन या शमन करने की मूलभूत चाबी है— अन्तःस्रावी ग्रंथियां। इसलिए ये ही चैतन्य केन्द्रों के संवादी केन्द्र हो। अन्तःस्रावी तंत्र का असंतुलन मस्तिष्क को प्रभावित करता है और चिन्तनधारा को दूषित या विकृत बनाता है। उदाहरणतः गोनाड्स की अधिक सक्रियता मन को विषय वासना या भय के चिंतन में लगाए रखेगी। चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का अभ्यास अन्तःस्रावी तंत्र के संतुलन को पुनः स्थापित कर, व्यक्ति की विवेक चेतना के विकास द्वारा चेतन मन की सम्यक् चिंतन शक्ति को प्रबल बना सकता है और मौलिक मनोवृत्तियों के आवेगों को क्षीण कर सकता है।

14.2.3 अवचेतन मन से सम्पर्क एवं व्यक्तित्व का रूपान्तरण

हमारे शरीर में जितनी भी ग्रंथियां हैं, वे सब अवचेतन मन हैं। ये मस्तिष्क को भी प्रभावित करती हैं इसलिए मस्तिष्क से भी अधिक मूल्यवान हैं। इन्हें हमें जागृत करना है। यदि इन्हें सही साधनों के द्वारा जागृत करते हैं तो भय से मुक्ति मिलती है। भय से मुक्ति होने का अर्थ है— सारी बाधाओं से मुक्त होना। हम चैतन्य केन्द्रों पर ध्यान करें। वे संतुलित होंगे। ज्यों–ज्यों हम उन केन्द्रों पर अधिक केन्द्रित होंगे, वे और संतुलित होते जाएंगे। उनके संतुलन से भय समाप्त होगा, आवेग समाप्त होंगे, सारी बाधाएँ समाप्त होंगी, एक नया आयाम खुलेगा, नया आनन्द, नई स्फूर्ति, नया उल्लास प्राप्त होगा।

मनोविज्ञान मानता है कि जो बात हमारे स्थूल मन तक पहुंचती है, वह कारगर नहीं होती। उससे व्यक्ति का परिवर्तन नहीं हो सकता, तरंगातीत अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती। जब हम दर्शन केन्द्र पर ध्यान करते हो तब हमारा विचार, हमारा संकल्प अन्तर्मन तक पहुंच जाता है। वह संकल्प लेश्या तंत्र और अध्यावसाय तंत्र तक पहुंच जाता है। तरंगातीत अवस्था प्राप्त होती है, परिवर्तन घटित होने लगता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.3 चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का आध्यात्मिक दृष्टिकोण

चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा के आध्यात्मिक दृष्टिकोण को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है——

14.3.1 हमारा द्वैतात्मक अस्तित्व

आत्मवादी दर्शन हमें इस सत्य की अनुभूति कराता है कि हमारा अस्तित्व द्वैतात्मक है—— दो तत्त्वों का संयोग है। एक है—— चेतन तत्त्व अर्थात् जीव, दूसरा है—— अचेतन तत्त्व अथवा शरीर। द्वैत तब तक बना रहता है, जब तक चेतना का विशुद्धतम स्वरूप उपलब्ध नहीं हो जाता है। द्वैतात्मक स्थिति में हमारे अभौतिक चैतन्यमय तत्त्व (आत्मा) को अपने सुख–दु:ख के संवेदन के लिए तथा क्रियात्मक प्रवृत्ति के लिए एक स्थूल शरीर से ही काम नहीं चलता अपितु सूक्ष्म शरीरों की अपेक्षा भी बनी रहती है। हमारे व्यक्तित्व की व्यूहरचना बहुत जटिल है। रचनाक्रम इस प्रकार बनता है—— सम्पूर्ण व्यक्तित्व के केन्द्र में है—— चैतन्य तत्त्व अर्थात् द्रव्य आत्मा या मूल आत्मा। उस केन्द्र से बाहर परिधि में अतिसूक्ष्म शरीर यानी कार्मण शरीर है जो कषाय के वलय को पैदा करता है। केन्द्र से चैतन्य तत्त्व के जो स्पन्दन निकलते हो, वे कषायतंत्र को पार कर बाहर आते हो। वह है—— अध्यवसाय का तंत्र। यह स्थूल शरीर तथा सूक्ष्म शरीर (तैजस् शरीर) के साथ सक्रिय होकर काम करता है।

इस प्रकार हमारे मौलिक मनोवेगों, पाशवी आवेगों एवं कामुकता पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए जो हमारे विवेक और प्रज्ञा को जगाता है और हमें उन पर प्रभुत्व प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करता है, वह हमारी सूक्ष्म चैतन्यशील आत्मा ही है।

14.3.2 आयुर्वेद और एक्यूपंक्चर

'भगवती सूत्र' में बतलाया गया है—— 'सव्वेणं सव्वे' अर्थात् हमारी चेतना के असंख्य प्रदेश हो। वे सब चैतन्य केन्द्र हो किन्तु कुछ स्थान ऐसे हो, जहां चैतन्य दूसरे स्थानों की अपेक्षा अधिक सघन होता है। विज्ञान की भाषा में हमारा पूरा शरीर विद्युत–चुम्बकीय क्षेत्र है किन्तु कुछ विशेष स्थानों में विद्युत्–चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता अन्य स्थानों की तुलना में अनेक गुनी अधिक होती है। हमारा मस्तिष्क, इन्द्रियां, अन्तःस्रावी ग्रंथियां ऐसे केन्द्र हो। आयुर्वेद की भाषा में इन चैतन्य केन्द्रों को 'मर्मस्थान' कहा गया है। आयुर्वेदाचार्यों ने 105 से 107 मर्मस्थान बताए हैं। इन मर्मस्थानों में प्राणों का केन्द्रीकरण होता है। ये रहस्य के स्थान हो। यहां चेतना विशेष प्रकार से अभिव्यक्त होती है। प्रेक्षाध्यान के चैतन्य केन्द्र और आयुर्वेद के मर्मस्थानों में स्थान की दृष्टि से और महत्त्व की दृष्टि से अद्भुत समानता है।

एक्युपंक्चर के चिकित्सकों ने हमारे शरीर में ऐसे 700 से अधिक केन्द्र खोज निकाले हो जिन्हें सूई द्वारा उत्तेजित करने पर अनेक प्रकार के रोगों की चिकित्सा की जा सकती है। अनेक असाध्य रोगों का उपचार किया जा सकता है। एक्यूपंक्चर और एक्यूप्रेशर में माना गया है—— जो केन्द्र हमारे मस्तिष्क में हैं, वे हमारे अंगूठे में भी हैं। ये केन्द्र एक–दूसरे से सम्बद्ध हैं। इस प्रकार मर्मस्थान, एक्यूपंक्चर के पोइंट्स, अन्तःस्रावी ग्रंथियां, ये सब चैतन्य केन्द्र से सम्बद्ध और प्रभावित है।

चैतन्य केन्द्र सब अवयवों में सक्रियता पैदा करने वाले हो। ये इन्द्रियों को भी संचालित करते हो और मन को भी संचालित करते हो। उनकी क्रियाओं को संतुलित करना साधना का मुख्य अंग है। यह कार्य चैतन्य केन्द्र की प्रेक्षा द्वारा किया जा सकता है।

14.3.3 ज्ञान केन्द्र और काम केन्द्र

हम इस दृश्य शरीर को दो मुख्य केन्द्रों में विभाजित कर सकते हैं—— ज्ञानकेन्द्र और कामकेन्द्र। नाभि से ऊपर मस्तिष्क तक का स्थान ज्ञानकेन्द्र है और नाभि से नीचे का स्थान कामकेन्द्र है। हमारी चेतना इन दो वृत्तियों के आसपास उलझी रहती है। जहां चेतना ज्यादा उलझी रहती है, वहां चेतना का प्रवाह भी अधिक हो जाता है। ऊर्जा का मुख्य केन्द्र कामकेन्द्र है। सारी चेतना इसी के आसपास बिखरी हुई है। नाभि और जननेन्द्रिय के आस–पास मनुष्य की चेतना और ऊर्जा बिखरी पड़ी है। ज्ञानकेन्द्र में ऊर्जा बहुत कम है क्योंकि आज के मनुष्य की मौलिक वृत्ति है—— 'काम' और इसलिए उसकी सारी चेतना, सारी ऊर्जा वहीं सिमटी पड़ी है। उसका ध्यान उधर ही ज्यादा जाता है। मानसशास्त्री कहते हैं—— ''मनुष्य में काम का जितना तनाव होता है, उतना और किसी वृत्ति का नहीं होता। भय का तनाव कभी–कभी होता है, क्रोध का तनाव कभी–कभी होता है। ईर्ष्या और मान का तनाव कभी–कभी होता है। इसी प्रकार अन्य आवेगों का तनाव भी कभी–कभी होता है किन्तु काम का तनाव सबसे ज्यादा होता है, सघन होता है। उसकी जड़ें बहुत गहरे में है।'' हमारी प्रत्येक वृत्ति और उसकी अभिव्यक्ति का केन्द्र इसी स्थूल शरीर में है। जब चेतना काम–केन्द्र पर रहती है, तब इष्ट का वियोग होने पर व्याकुलता उत्पन्न होती है। अनिष्ट का संयोग होने पर क्षोभ पैदा होता है, प्रियता, अप्रियता की अनुभूतियां उत्पन्न होती हैं। वेदना के अनेक रूप व्याकुलता, वेदना, कष्ट, क्लेश, चिंता, क्रूरता, ईर्ष्या, घृणा आदि के स्पन्दन कामकेन्द्र के आस–पास अनुभूत होते हैं। वे यहीं उभरते हैं। हमारे कामकेन्द्र की चेतना के आस–पास ही वे स्पन्दन क्रियान्वित होते हैं।

14.3.4 चरित्र का विकास

मन चेतना का आंतरिक स्तर नहीं है। चेतना का आंतरिक स्तर है—— आवेग, क्रोध, मान, ईर्ष्या, लालच आदि। हमारी वृत्तियां

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चेतना का आंतरिक स्तर है। बीमारियां वहां आती हैं। चरित्र भी वहीं से आता है। मस्तिष्क से चरित्र नहीं आता। चरित्र आता है—— वृत्तियों से और वे आती हैं, ग्रंथि तंत्र से। ग्रंथियों का स्थान मस्तिष्क नहीं है। आज तक यही माना जाता था कि मस्तिष्क हमारे शरीर का मुख्य अवयव है। इसी प्रकार हृदय और गुर्दे भी महत्त्वपूर्ण अवयव माने जाते थे। किन्तु अब शरीर–शास्त्रीय नए आविष्कारों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि शरीर का सबसे महत्त्वपूर्ण अवयव है, हमारा ग्रंथितंत्र—— डक्ट्लेस ग्लैण्ड्स (अन्तः स्त्रावी ग्रंथियाँ)। आवेग, आवेश और भ्रष्ट आचरण इन सबका निमित्त है, ग्रंथि तंत्र। ग्रंथि तंत्र को प्रभावित किये बिना आदमी को सच्चरित्र एवं प्रामाणिक नहीं बनाया जा सकता। भ्रष्टाचार को समाप्त करने और जीवन में सच्चई लाने के लिए ग्रंथितंत्र को प्रभावित करना होगा। आदमी उपदेशों से सच्चरित्र नहीं होता, जितना वह ग्रंथि तंत्र के स्रावों के बदलने से होता है। यह तथ्य आज अनुभव–सिद्ध हो चुका है। कुछेक व्यक्ति, जिनकी चेतना अत्यन्त प्रबुद्ध होती है, वे इसके अपवाद हो सकते हो। सामान्य रूप से तो यही नियम है कि ग्रंथितंत्र को बदले बिना आदमी को नहीं बदला जा सकता।

14.3.5 कर्मशास्त्रीय व्याख्या

कर्म का प्रेरणास्रोत है—— वृत्ति। वृत्ति से प्रेरित होकर ही मनुष्य और पशु कर्म करते हैं। वृत्तियां अनेक हैं—— आहार की वृत्ति, भय की वृत्ति, काम और परिग्रह की वृत्ति, क्रोध और मान की वृत्ति, माया और लोभ की वृत्ति। इन वृत्तियों से प्रेरित होकर ही प्राणी कर्म करता है। प्रत्येक कर्म के पीछे इनमें से किसी एक या अधिक वृत्तियों को प्रेरणा मिलेगी। वृत्ति से प्रवृत्ति और प्रवृत्ति से पुनरावृत्ति, यह चक्र निरन्तर चलता रहता है। वृत्ति जागी, प्रवृत्ति हुई। हाथ से चांटा मारने के पीछे जो हमारी क्रोध की वृत्ति है, उसका शोधन करना है, हाथ का क्या शोधन होता है? हाथ चलता ही रहेगा। चांटे मारने में हाथ नहीं चलेगा तो वह प्रणाम करने में चलेगा, भोजन करने में चलेगा। हाथ का शोधन नहीं करना है। कर्म अकर्म तब बनता है जब वृत्ति का शोधन हो। कर्म के साधनों का शोधन नहीं होता, कर्म की प्रेरणा का शोधन हो सकता है पर कर्म की प्रेरणा का शोधन केवल मनुष्य ही कर सकता है, पशु नहीं कर सकता। यही मनुष्य और पशु के बीच की भेद–रेखा है। आदमी और पशु की परिभाषा हम इन शब्दों में कर सकते हो कि जो वृत्ति का शोधन नहीं कर सकता, वह होता है पशु। पशु की पशुता चलती रहेगी। इसलिए कि उसमें वृत्ति–परिष्कार की कोई संभावना नहीं है। मनुष्य पशुता से ऊपर उठ सकता है क्योंकि उसमें वृत्ति–परिष्कार की क्षमता है आज के शरीर शास्त्रियों ने अवस्थित ग्रंथियों के विषय में बहुत सूक्ष्म विश्लेषण किया है। बौना होना, लम्बा होना, सुन्दर या असुन्दर होना, स्वस्थ या बीमार होना, बुद्धिमान या बुद्धिशून्य होना, सब इन ग्रंथियों के स्राव पर निर्भर करता है। स्राव इन सबको नियंत्रित करते हो। इस तथ्य को हम कर्मशास्त्रीय भाषा में समझें।

आठ कर्मों में एक कर्म है—— नाम कर्म। उसके अनेक विभाग हो। 'संस्थान नाम कर्म' के कारण मनुष्य लम्बा या बौना होता है। इसी प्रकार सुन्दर–असुन्दर, सुस्वर वाला या दुःस्वर वाला आदि नाम कर्म की विभिन्न प्रकृतियों के कारण होते हो। नाम कर्म का सूक्ष्म अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि हमारे शरीर का सारा निर्माण नाम कर्म के आधार पर होता है। उपरोक्त कर्मशास्त्रीय विश्लेषण और शरीरशास्त्रीय विश्लेषण को मिलाकर देखें। दोनों में भाषा का अन्तर है, तथ्य का नहीं। शरीरशास्त्री 'हार्मोन्स', 'सिक्रिशन्स ऑफ ग्लैण्ड्स', 'ग्रंथियों का स्राव' कहते हो। कर्मशास्त्री 'कर्मों का रसविपाक', 'अनुभाग बन्ध' कहते हो।

14.3.6 योगशास्त्र और शरीरशास्त्र

हमारे शरीर में ग्रंथियां हो, चक्र हो, कमल हो। कमल जैसी चीज नहीं मिली तो डॉक्टरों ने कहा—— हमने सारे शरीर को चीरफाड़ कर देख डाला, अणु–अणु का विश्लेषण कर दिया, पर कहीं भी कमल नहीं मिला, कहीं चक्र दिखाई नहीं दिए। हाँ, डॉक्टरों को कुछ भी नहीं मिला। नाभि कमल हो या न हो, आज्ञा चक्र हो या न हो, विशुद्धि केन्द्र हो या न हो किन्तु जो पिनियल, पिच्यूटरी, थायरॉयड आदि ग्रंथियां हैं, ग्लैण्ड्स हैं, उनको यदि हम तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो योगशास्त्र और शरीरशास्त्र के प्रतिपादन में कोई विशेष भेद प्रतीत नहीं होगा।

14.4 चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

14.4.1 अन्तः स्त्रावी ग्रन्थि तंत्र

प्रकृति में अस्तित्व रखने वाले हर प्राणी का जीवन शरीर की सत्ता से है। शरीर की क्रियाओं का संचालन जीवन को जीवन्त बना देता है। अब प्रश्न उठता है कि शरीर की क्रियाओं का संचालन कहां से होता है? तब हमारा ध्यान मात्र शरीर तक ही सीमित रह जाता है क्योंकि शरीर बिना किसी बाह्य माध्यम का सहारा लिए भी गतिशील रहता है। शरीर के अंदर ही कुछ ऐसा है जो इसे गतिशील रखता है वह है हमारे शरीर की तंत्र व्यवस्था। शरीर में विद्यमान अनेक तंत्र विविध कार्यकलापों को निष्पादित करते हैं। एक ही प्रकार के कार्यों की श्रृंखला को निष्पादित करने वाले अनेक अवयवों के समूह को तंत्र कहा जाता है। हमारे शरीर में अनेक तंत्र पाए जाते है, जिनमें नाड़ी तंत्र और अंतःस्रावी ग्रंथि तंत्र शरीर के प्रमुख नियंत्रण एवं संयोजक तंत्र हैं। ये शरीर के शेष तंत्रों का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नियोजन एवं संयोजन करते हैं। इन दोनों तंत्रों का पारस्परिक संबंध भी अनेकों क्रियाकलापों को संपादित करता है। इन दोनों का पारस्परिक अनुबंध इतना विलक्षण है कि नाड़ी तंत्र और ग्रंथि तंत्र के अवयवों को अखण्ड तंत्र के ही अंगरूप माना जाने लगा है जिसे नाड़ी–ग्रंथि तंत्र की संज्ञा दी गई है। अन्तःस्रावी ग्रंथि तंत्र अपने प्रभावों का निष्पादन रासायनिक नियंत्रकों /स्रावों (हार्मोनों) के माध्यम से करता है। प्राणी की वृद्धि और विकास, काम–प्रवृत्तियां, गर्भाधान और जनन, चयापचय आदि महत्त्वपूर्ण कार्यों का नियमन करने का दायित्व इन स्रावों पर होता है। ये हार्मोन न केवल प्रत्येक शारीरिक क्रिया में भाग लेते हैं अपितु व्यक्ति की मानसिक दशाओं, स्वभाव और व्यवहार पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं। ये हार्मोन मनुष्य के भीतरी आवेशों और आवेगों तथा वृत्तियों और वासनाओं के अत्यन्त शक्तिशाली व प्रेरक बलों को उत्पन्न करने वाले प्रमुख स्रोत हैं। वृत्तियां आदि न केवल कामनाओं को उत्पन्न करती हैं अपितु उनकी पूर्ति के अनुरूप प्रवृत्ति के लिए व्यक्ति को बाध्य करती हैं। प्रेम, घृणा, भय आदि भाव अन्तःस्रावी स्रोतों द्वारा जनित आवेग हैं।

वर्तमान विज्ञान की दृष्टि के अनुसार हमारे शरीर में दो प्रकार की ग्रंथियां हैं—— वाहिनीयुक्त एवं वाहिनीरहित। ये वाहिनीरहित ग्रंथियाँ अन्तःस्रावी होती हैं। इन्हें 'एण्डोक्राइन ग्लैण्ड्स' कहा जाता है। पिनियल, पिच्युटरी, थायरॉयड, पैराथायरॉयड, थायमस, एड्रीनल और गोनाड्स; ये सभी अन्तःस्रावी ग्रंथियां हैं। इनके स्राव हार्मोन कहलाते हैं। हमारी शारीरिक, मानसिक और भावात्मक प्रवृत्तियों का संचालन इन ग्रंथियों के द्वारा उत्पन्न स्रावों (हार्मोनों) के माध्यम से होता है। हमारी सभी चैतन्य क्रियाओं का संचालन इस ग्रंथि तंत्र के द्वारा होता है। अतः इन ग्रंथियों को चैतन्य केन्द्र की संज्ञा दी गई है।

14.4.1.1 अंतःस्रावी ग्रंथियों के स्थान एवं कार्य

अंतःस्रावी ग्रन्थि तंत्र की प्रत्येक ग्रंथि का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है——

1. पीनियल ग्रंथि

यह ग्रंथि मस्तिष्क के मध्य में स्थित होती है। इस ग्रंथि का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है गोनाड्स के स्रावों को रोकना। इस प्रकार यह ग्रंथि शैशवावस्था में व्यक्ति की कामवृत्ति का नियमन कर उसे यौवन प्राप्ति तक मुक्त बनाए रखती है। यौवन प्राप्ति के बाद यह ग्रंथि यौवनोचित वयस्कता लाने में सहायक बनती है। प्रयोगों के आधार पर इस ग्रंथि के स्राव पिट्यूटरी के ए.सी.टी.एच. नामक स्राव का निरोध कर अप्रत्यक्ष रूप से एड्रीनल के स्रावों का नियमन करने में सहायक होते हैं।

2. पिट्यूटरी ग्रंथि

यह ग्रंथि मस्तिष्क के लगभग मध्य में स्थित होती है। यह ग्रंथि अनेक प्रकार के हार्मोन्स का स्राव करके जीवन के अनेक महत्त्वपूर्ण क्रिया–कलापों पर अपना प्रभाव डालती है। इसके प्रभाव से शरीर का कोई भी भाग अछूता नहीं है।

3. थाइराइड ग्रंथि

यह ग्रंथि स्वर यंत्र के समीप तथा श्वास नली के ऊपरी छोर पर आसीन है। इस ग्रंथि के हार्मोन को थाइराक्सीन कहा जाता है। विपुल मात्रा में आयोडीन के अतिरिक्त लोहा, आर्सेनिक व फास्फोरस की कुछ मात्रा इसमें होती है। यह नाड़ियों तथा मस्तिष्क ऊतकों के निर्माण में काम आता है। यह ग्रंथि मूलतः शरीर में ऊर्जा का उत्पादन अवयव है। चयापचय की मात्रा तथा व्यक्ति में सक्रियता की तीव्रता का निर्धारण करने का मुख्य दायित्व इस ग्रंथि पर है। पाचन क्रिया में भी यह सहायक होती है। अनेक क्रिया–कलापों के अतिरिक्त यह ग्रंथि गलगंड नामक बीमारी की रोकथाम में सहायक होती है।

4. पैराथाइराइड ग्रंथि

यह ग्रंथि थाइराइड ग्रंथि के पास स्थित होती है। इसके हार्मोन को पैराथार्मोन कहा जाता है। यह ग्रंथि शरीर में कैल्शियम की मात्रा को निश्चित करती है। इनकी संख्या 4 होती है।

5. थाइमस ग्रंथि

यह ग्रंथि दोनों फेफड़ों के बीच में थोड़ा से ऊपर नीचे की ओर स्थित होती है। यह ग्रंथि शैशवावस्था में बच्चे के शारीरिक विकास का नियमन करती है 14 वर्ष की आयु तक इस विकास का अधिकतर क्रम समाप्त हो जाता है। यह ग्रंथि मस्तिष्क के सम्यक् विकास में सहायक होती है तथा रोग प्रतिरोधक कार्यवाही में सहायक होतो है।

6. एड्रीनल ग्रंथि

इस ग्रंथि के दो भाग हैं– कार्टेक्स एवं मेडुला। इनके स्राव शरीर की स्नायुविक एवं मांसपेशीय संरचना में सहायक होते हैं साथ ही अनुकंपी तंत्र से भी गहरा संबंध रखते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. गोनाड्स

गोनाड्स उन हार्मोन्स का स्राव करती है जिनके द्वारा स्त्री स्त्रीत्व को प्राप्त करती है तथा पुरुष पुरुषत्व प्राप्त करता है। स्त्रियों में पाए जाने वाले हार्मोन्स हो एस्ट्रोजन और प्रोजेस्टेरोन तथा पुरुषों में पाए जाने वाले हारमोन्स एंड्रोजन हैं।

14.4.2 आदतों का जन्म

मनुष्य की जितनी आदतें बनती हो, उनका मूल उद्गम स्थल है—— ग्रंथि तंत्र। हमारे शरीर के दो नियंत्रण तंत्र हैं—— ग्रंथि तंत्र एवं तंत्रिका तंत्र। तंत्रिका तंत्र में हमारी सारी वृत्तियां अभिव्यक्त होती हैं, अनुभव में आती हो और फिर व्यवहार में उतरती हैं किंतु आदतों का जन्म, आदतों की उत्पत्ति ग्रंथितंत्र में होती है, जो हमारी अन्तःस्रावी ग्रंथियां हैं, उनमें आदतें जन्म लेती हैं, वे आदतें मस्तिष्क के पास पहुंचती हैं, फिर कहीं उसका प्रकटीकरण होता है। इसीलिए इन प्रक्रियाओं के तंत्र को न्यूरोएंडोक्राइन सिस्टम से जाना गया अर्थात् नाड़ी तंत्र एवं ग्रंथि तंत्र का संयुक्त कार्य–क्षेत्र। यह संयुक्त तंत्र अवचेतन मन का एक भाग है। यह मस्तिष्क को भी प्रभावित करता है, अर्थात् मस्तिष्क से भी अधिक मूल्यवान है। यदि इसे सही साधनों के द्वारा संतुलित करते है तो सभी अनिष्ट भावनाओं से मुक्ति मिलती है।

अन्तःस्रावी ग्रंथियों में नीचे की ग्रंथियां यथा अधिवृक्क ग्रंथियां (एड्रीनल) और जनन ग्रंथियां (गोनाड्स) ये वृत्तियों के उत्पन्न होने का स्थान है। काम वासना का स्थान है—— जनन ग्रंथियां (गोनाड्स) और भय, आवेश तथा बुरे भाव उत्पन्न होने का स्थान है—— एड्रीनल ग्रंथियां। योगशास्त्र की भाषा में इन्हें मणिपुर चक्र (तेजस् केन्द्र) और स्वाधिष्ठान चक्र (स्वास्थ्य केन्द्र) कहा जाता है। क्रूरता, वैर, मूर्च्छा आदि स्वास्थ्य केन्द्र में उत्पन्न उत्पन्न होते हैं और तृष्णा, ईर्ष्या, घृणा, भय, कषाय और विषाद तैजस–केन्द्र में जन्म लेते हैं। जब हमारा मन, हमारे विचार, नाभि के नीचे के भाग में शक्तिकेन्द्र तक दौड़ते रहते हैं तब बुरी वृत्तियां उभरती हैं, बाद में आदत बन जाती हैं।

दार्शनिक, वैज्ञानिक और चिकित्सक सभी एकमत से यह बात कहते हैं कि व्यक्ति की भावधाराओं और मनोदशाओं के साथ अंतःस्रावी ग्रंथियों का गहरा संबंध है। डॉ. एम. डब्ल्यू. काप लिखते हैं कि हमारे भीतर जो ग्रंथियां हैं, वे क्रोध, कलह, ईर्ष्या, भय, द्वेष आदि से विकृत बन जाती हैं। जब ये अनिष्ट भावनाएँ जागती हैं तब एड्रिनल ग्लैण्ड्स को अतिरिक्त काम करना पड़ता है। वह थक जाती है। और–और ग्रंथियां भी अतिश्रम से थक कर श्लथ हो जाती हैं''। परिणाम–स्वरूप शारीरिक और मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है इसलिए यह आवश्यक है कि हम इन आवेगों और भावनाओं पर नियंत्रण करें। आवेगों को समझदारी से समेटें तथा ग्रंथियों पर अधिक भार न आने दें। इसका उपाय है—— चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा।

श्वास प्रेक्षा, शरीर प्रेक्षा और चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा ये सभी ग्रंथियों को सक्रिय और संतुलित करने के साधन हैं। हम चैतन्य केन्द्रों (ग्रंथियों) पर ध्यान करें, वे सक्रिय होंगे। ज्यों–ज्यों हमारा ध्यान हृदय (आनन्द केन्द्र) के ऊपर के चैतन्य केन्द्रों पर अधिक केन्द्रित होगा, त्यों–त्यों वे अधिक सक्रिय होते जायेंगे। उनकी सक्रियता से भय समाप्त होगा। आवेग समाप्त होंगे और अनिष्ट भावनाएं समाप्त हो जाएंगी। एक नया आयाम खुलेगा। अतः चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा महत्त्वपूर्ण ही नहीं वास्तव में अध्यात्म–विकास का सर्वोत्तम साधन है।

14.5 चैतन्य केन्द्रों के प्रकार

चैतन्य केन्द्रों के निम्न प्रकार है –

1. **शक्ति केन्द्र** – पृष्ठरज्जु के निचले सिरे पर।
2. **स्वास्थ्य केन्द्र** – पेडू के मध्य भाग पर।
3. **तैजस केन्द्र** – नाभि का स्थान।
4. **आनन्द केन्द्र** – हृदय के पास (दोनों फेफड़ों के मध्य)।
5. **विशुद्धि केन्द्र** – कंठ का मध्य भाग।
6. **ब्रह्म केन्द्र** – जीभ का अग्र भाग।
7. **प्राण केन्द्र** – नाक का अग्र भाग (नासाग्र)।
8. **अप्रमाद केन्द्र** – दोनों कानों पर।
9. **चाक्षुष केन्द्र** – दोनों आंखों के भीतर।
10. **दर्शन केन्द्र** – दोनों भृकुटियों का मध्य भाग।
11. **ज्योति केन्द्र** – ललाट का मध्य भाग।
12. **शांति केन्द्र** – सिर का अग्र भाग।
13. **ज्ञान केन्द्र** – सिर के ऊपर का भाग।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.6 चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा की निष्पत्तियाँ

चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा की निम्नलिखित निष्पत्तियां हैं——

14.6.1 चैतन्य केन्द्रों की निर्मलता

जब हम चैतन्य केन्द्रों की प्रेक्षा करते हैं, तब विद्युत् की धारा, प्राण की धारा, वहां इतनी तेज हो जाती है कि जमा हुआ मैल साफ हो जाता है और वह विद्युत–चुम्बकीय क्षेत्र शुद्ध बन जाता है। निर्मलता आ जाती है और उस निर्मलता में से चैतन्य अभिव्यक्त हो सकता है, बाहर प्रकट हो सकता है। चैतन्य केन्द्रों की प्रेक्षा से और अधिक प्राणधारा वहां इकट्ठी होती है और वे अधिक निर्मल बन जाते हैं। चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का महत्त्वपूर्ण परिणाम है—— चैतन्य केन्द्रों की निर्मलता।

14.6.2 शक्ति का जागरण

हमारे शरीर में जो शक्ति के केन्द्र हैं, उन्हें चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा द्वारा जागृत करते हैं। हम चेतना केन्द्रों की प्रेक्षा करें। हम इस सच्चाई को जान लें कि चित्त को अधिक–से–अधिक हृदय से ऊपर, कंठ से ऊपर, सिर तक रखना लाभदायक होता है। बार–बार ऐसा करें तो हमारी वृत्तियां समाप्त हो सकती है, स्वभाव बदल सकता है, व्यवहार बदल सकता है और चरित्र बदल सकता है। यह बहुत बड़ा रहस्य है, व्यवहार और आचरण को बदलने का, स्वभाव और आदतों को बदलने का। चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा एक प्रयोग है। प्रेक्षाध्यान में तेरह चैतन्य केन्द्र बताए गये हैं। मूलतः हमारे शरीर में नंदीसूत्र के अनुसार सैकड़ों चैतन्य केन्द्र हैं। जैसे एक दीपक का प्रकाश इस पर ढक्कन लगा देने से अवरुद्ध हो जाता है और अगर ढक्कन को जालीनुमा बना दिया जाये तो प्रकश की रश्मियां उसमें से बाहर निकलने लगेंगी। हमारी चेतना पर भी एक आवरण है ज्ञानावरण कर्म का। इस आवरण को जालीदार बनाना है, अगर ऐसा हो जाए तो फिर उसमें से हमारी ज्ञान की रश्मियां बाहर निकलने लग जाएंगी। हमारे शरीर के जितने रोम छिद्र हैं, उतने ही हमारे चैतन्य केन्द्र हो सकते हैं। शरीर का जहां भी भेदन किया जाए हमें चेतना की प्राप्ति होगी। आज विज्ञान ने यह माना है कि जिस प्रकार आंख से हम देखते हैं, वैसे ही शरीर के किसी भी भाग से देखा जा सकता है किन्तु आवश्यकता है शरीर के उस भाग पर क्रिस्टेलाइजेशन की। अगर क्रिस्टेलाइजेशन अंगुली पर किया है तो हम अंगुली से देखने लग जायेंगे। जैन आगमों में एक लब्धि है—— संभिन्नस्रोतोपलब्धि। इसका अर्थ है—— शरीर के हर किसी भाग से देख सकना, सुन सकना, चख सकना। व्यक्ति पांचों इन्द्रियों का काम एक अंगुली से कर सकता है, शरीर के किसी भी छोटे से अंश से कर सकता है, यदि उसका क्रिस्टेलाइजेशन हो जाये। चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का अर्थ है—— शरीर के किसी भी भाग को हम सक्रिय कर सकते हो। प्राणियों के शरीर में नाभि के ऊपर के भाग के केन्द्रों के आकार प्रशस्त अर्थात् अच्छे बतलाए गये हैं और नाभि से नीचे के केन्द्रों के आकार अप्रशस्त बतलाये गए हो। सामान्यतः हमारे नीचे के केन्द्र जागृत रहते हैं। यदि मनुष्य साधना करे तो ऊपर के केन्द्रों को जागृत किया जा सकता है। विशिष्ट शक्तियों को प्राप्त किया जा सकता है।

14.6.3 आनन्द का जागरण

वास्तविक आनन्द की अनुभूति के लिए मूर्च्छा को तोडना होगा और मूर्च्छा को तोड़ने के लिए चेतना को जगाना होगा। चेतना को व्यापक बनाने का अर्थ है—— चेतना की पदार्थ–प्रतिबद्धता को तोड़ देना। पदार्थ का उपयोग होगा किन्तु चेतना पदार्थ से प्रतिबद्ध नहीं होगी। उपयोग करना और प्रतिबद्ध होना दोनों अलग–अलग बातें हो। रोटी खाना पदार्थ की उपयोगिता है। रोटी से बंध जाना यह उसकी प्रतिबद्धता है। जिसकी चेतना जाग जाती है, वह भी रोटी खाता है। ध्यान करने वाला साधक भी रोटी खाता है, पानी पीता है, पैसा रखता है। ये जीवन के आवश्यक उपकरण हैं। सबके लिए जरूरी हैं। ध्यान करने का अर्थ यह नहीं है कि भौतिक पदार्थ छूट जाए। पदार्थ का उपयोग नहीं छूटता, केवल पदार्थ की प्रतिबद्धता छूट जाती है। वह साधक पदार्थ से बंधा नहीं रहता, पदार्थ के चंगुल में फंसा नहीं रहता। चेतना के जागरण का यह मुख्य परिणाम है। उसमें पदार्थ की उपयोगिता शेष रहती है। प्रतिबद्धता समाप्त हो जाती है। समस्या का मूल प्रतिबद्धता है, उपयोगिता नहीं।

जब तैजस् लेश्या के स्पन्दन जागते हैं, तब व्यक्ति को अनिर्वचनीय आनन्दानुभूति होती है। उस आनन्द का प्रत्यक्ष अनुभव करने वाला ही उसे जान सकता है, वह उसे बता नहीं सकता। जिस व्यक्ति ने तैजस् लेश्या का कभी प्रयोग नहीं किया, ध्यान नहीं किया, वह व्यक्ति इस स्थूल शरीर से परे भी कोई आनन्द होता है। इन विषयों से परे भी कोई सुखानुभूति है, नहीं समझ पाता, कल्पना भी नहीं कर पाता। जब तक प्रयोग से नहीं गुजरता है, तब तक उसे ज्ञात ही नहीं होता कि ऐसा अनिर्वचनीय सुख भी हो सकता है, जिस सुख का अनुभव होता है, वह अपूर्व होता है। व्यक्ति सोचता है—— मैंने मान रखा था कि सुख तो पदार्थ से ही मिलता है किन्तु आज यह स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि जैसा सुख तैजस् लेश्या के स्पन्दनों के जागने पर होता है, वैसा सुख जीवन में किसी भी पदार्थ से नहीं मिल सकता। भ्रांति टूट जाती है, धारणाएँ बदल जाती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

14.7 चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा की प्रक्रिया

"चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा जागरण की प्रक्रिया है। सुप्त चैतन्य केन्द्रों को प्रेक्षा के द्वारा जागृत करना है। चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा में प्रत्येक केन्द्र पर चित्त केन्द्रित करें। और वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता, पूरी जागरूकता बनी रहे। केवल देखें, जानें। अनुभव करें, द्रष्टाभाव से प्रेक्षा करें। आगे से पीछे सुषुम्ना तक मस्तिष्क के पीछे की दीवार तक पूरे भाग में चित्त के प्रकाश को फैलाएं। सुप्त चैतन्य केन्द्रों को प्रेक्षा के द्वारा जागृत करें। प्रत्येक केन्द्र पर ध्यान केन्द्रित करें और वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें (यह सुझाव प्रारम्भ में एक दो बार दें)।"

1. **शक्ति केन्द्र**– चित्त को शक्ति केन्द्र–पृष्ठरज्जु के निचले सिरे पर केन्द्रित करें। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। केवल शक्ति केन्द्र के प्रति गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ शक्ति केन्द्र की प्रेक्षा करें। पूरी एकाग्रता बनी रहे।

2. **स्वास्थ्य केन्द्र**– चित्त को स्वास्थ्य केन्द्र–पेडू के मध्य भाग पर केन्द्रित करें। आगे से पीछे सुषुम्ना तक पूरे भाग में चित्त के प्रकाश को फैलाएं। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

3. **तैजस केन्द्र**– चित्त को तैजस केन्द्र नाभि के स्थान पर केन्द्रित करें। आगे से पीछे सुषुम्ना तक पूरे भाग में चित्त के प्रकाश को फैलाएं। जैसे टॉर्च का प्रकाश सीधी रेखा में फैलता है, वैसे ही चित्त के प्रकाश को सीधी रेखा में फैलाएं। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ प्रेक्षा करें। जिससे स्वतः ही श्वास संयम हो जाए।

4. **आनन्द केन्द्र**– चित्त को आनन्द केन्द हृदय के पास (दोनों फेफड़ों के मध्य) जो गषा है, वहां पर केन्द्रित करें। आगे से पीछे सुषुम्ना तक पूरे भाग में चित्त के प्रकाश को फैलाएं। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। बीच–बीच में श्वास संयम का प्रयोग करें।

5. **विशुद्धि केन्द्र**– चित्त को विशुद्धि केन्द्र कंठ के मध्य भाग पर केन्द्रित करें। आगे से पीछे सुषुम्ना तक पूरे भाग में चित्त के प्रकाश को पृष्ठ भाग में फैलाएं। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। बीच–बीच में श्वास संयम का प्रयोग करें।

6. **ब्रह्म केन्द्र**– चित्त को ब्रह्म केन्द्र जीभ के अग्र भाग पर केन्द्रित करें। जीभ अधर में रहे। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

7. **प्राण केन्द्र**– चित्त को प्राण केन्द्र नाक के अग्र भाग (नासाग्र) पर केन्द्रित करें। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

8. **अप्रमाद केन्द्र**– चित्त को अप्रमाद केन्द्र दोनों कानों पर–भीतरी, मध्य और बाहरी भाग पर तथा आसपास के भाग पर केन्द्रित करें। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

9. **चाक्षुष केन्द्र**– चित्त को चाक्षुष केन्द्र दोनों आंखों के भीतर केन्द्रित करें। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

10. **दर्शन केन्द्र**– चित्त को दर्शन केन्द्र दोनों भृकुटियों के मध्य भाग पर केन्द्रित करें। भीतर गहराई तक चित्त को ले जाएं। आगे से पीछे मस्तिष्क के पिछे की दीवार तक चित्त के प्रकाश को फैला दें। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ केवल अनुभव करें, प्रेक्षा करें। बीच–बीच में श्वास संयम का प्रयोग करें।

11. **ज्योति केन्द्र**– चित्त को ज्योति केन्द्र ललाट के मध्य भाग पर केन्द्रित करें। भीतर गहराई तक चित्त को ले जाएं। आगे से पीछे मस्तिष्क के पीछे की दीवार तक चित्त के प्रकाश को फैला दें। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। बीच–बीच में श्वास संयम का प्रयोग करें।

12. **शांति केन्द्र**– चित्त को शांति केन्द्र सिर के अग्र भाग पर केन्द्रित करें। जैसे दीये का प्रकाश चारों दिशाओं में फैलता है वैसे ही चित्त के प्रकाश को चारों दिशाओं में फैलाएं। भीतर गहराई तक चित्त को ले जाएं। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13. ज्ञान केन्द्र– चित्त को ज्ञान केन्द्र सिर के ऊपर के भाग, चोटी के स्थान पर केन्द्रित करें। दीये के प्रकाश की भांति पूरे भाग में चित्त के प्रकाश को फैलाएं। भीतर गहराई तक चित्त को ले जाएं। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

अब एक साथ सभी चैतन्य केन्द्रों की प्रेक्षा करें। जो खड़े–खड़े कर सकते है, वे खड़े–खड़े करें।

चित्त को शक्ति केन्द्र पर ले जाएं, फिर क्रमशः स्वास्थ्य केन्द्र, तैजस केन्द्र, आनन्द केन्द्र..........आदि प्रत्येक चैतन्य केन्द्र की यात्रा करते हुए पुनः शक्ति केन्द्र पर ले आएं।

वृत्ताकार में सभी चैतन्य केन्द्रों पर चित्त की यात्रा चले।

तेजी के साथ चित्त को सभी चैतन्य केन्द्रों पर घुमाएं। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

14.8 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के उपरान्त सारांशतः कहा जा सकता है कि : अपनी मौलिक मनोवृत्तियों के प्रेरक बलों पर प्रमुत्व प्राप्त करने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य को ''विवेचन चेतना'' और ''विवेकपूर्ण तर्क'' उजागर करना चाहिये। चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का अभ्यास अन्तःस्रावी तंत्र के संतुलन को पुनः स्थापित कर, व्यक्ति की विवेक चेतना के विकास द्वारा चेतन मन की सम्यक् चिंतन शक्ति को प्रबल बना सकता है और मौलिक मनोवृत्तियों के आवेगों को क्षीण कर सकता है।

14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वस्तुनिष्ठ प्रश्न——

1. व्यतित्व के कितने प्रकार है?
2. शरीर में कितने नियंत्रण तंत्र है?
3. ऊर्जा का मुख्य केन्द्र कौन–सा है?
4. पिट्युटरी ग्रंथि कहां स्थित है?
5. एड्रिनल ग्रंथि के कितने भाग है?
6. प्रत्येक व्यक्ति में कौन–सी चेतना होती है?
7. आयुर्वेदाचार्यों ने कितने मर्म–स्थान बताये है?
8. कर्म का प्रेरणास्रोत क्या है?
9. पैराथाइराइड ग्रंथि के हार्मोन को क्या कहते है?
10. विज्ञान की दृष्टि से शरीर में कितने प्रकार की ग्रंथियां होती है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न——

1. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का प्रयोजन क्या है?
2. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा की निष्पत्तियां क्या है?

निबंधात्मक प्रश्न——

1. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का आध्यात्मिक–वैज्ञानिक दृष्टिकोण बताइये।

14.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. प्रेक्षाध्यान : चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा – आचार्य श्रीमहाप्रज्ञ।
2. प्रेक्षाध्यान : सिद्धान्त एवं प्रयोग – आचार्यश्री महाप्रज्ञ।
3. जीवन विज्ञान की रूपरेखा – मुनि धर्मेश।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–15 लेश्याध्यान : प्रयोजन, आध्यात्मिक–वैज्ञानिक दृष्टिकोण, निष्पत्तियाँ एवं प्रक्रिया

इकाई की संरचना

15.0 प्रस्तावना

15.1 उद्देश्य

15.2 लेश्या – एक परिचय

15.2.1 लेश्या – शब्द मीमांसा

15.2.2 लेश्या की परिभाषा

15.3 लेश्याध्यान का प्रयोजन

15.3.1 सत्य की खोज

15.3.2 चैतन्य की स्वतन्त्र सत्ता का अनुमान

15.3.3 अन्तर्दृष्टि की जागृति

15.3.4 व्यक्तित्व का रूपान्तरण

15.4 लेश्याध्यान का आध्यात्मिक दृष्टिकोण

15.4.1 लेश्या के क्रियाकलाप

15.4.2 लेश्या – रंग का संस्थान

15.4.3 द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या

15.4.4 वृत्तियों का उद्भव स्थान

15.4.5 भावधारा, लेश्या और आभामंडल

15.5 लेश्याध्यान का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

15.5.1 विश्व–विज्ञान और रंग

15.5.2 पारदर्शक और अपारदर्शक वस्तुएँ

15.5.3 रंग और मनोविज्ञान

15.6 लेश्याध्यान की निष्पत्तियाँ

15.6.1 आदतों में परिवर्तन

15.6.2 अपूर्व आनन्द

15.6.3 जितेन्द्रियता

15.6.4 आत्म–साक्षात्कार

15.7 प्रेक्षाध्यान की प्रक्रिया

15.8 सारांश

15.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.10 संदर्भ ग्रन्थ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

15.0 प्रस्तावना

लेश्या का संबंध भावों से होता है। भाव अच्छे और बुरे दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। अच्छे भावों के आधार पर अच्छी लेश्या और बुरे भावों के आधार पर बुरी लेश्या का निर्माण होता है। भावों के आधार पर ही व्यक्ति का व्यवहार बनता है। अतः भाव परिष्कार लेश्याध्यान का प्रमुख कार्य है। लेश्याध्यान रंगों का ध्यान है। रंग हमारे व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। रंगों के द्वारा भावों को बदला जा सकता है तो भाव परिष्कार के द्वारा आभामंडल के रंगों को बदला जा सकता है। आभामंडल शरीर के चारों ओर एक वलय होता है जो साधारण आंखों से नहीं देखा जा सकता है। साधना के द्वारा इसे देखा जा सकता है। इस आभामंडल की विशुद्धि ही वास्तव में आंतरिक पवित्रता का द्योतक है। इसलिए लेश्याध्यान यानि रंगों के ध्यान द्वारा भाव शुद्धि और भाव शुद्धि द्वारा आभामंडल की शुद्धि का कार्य सरल हो जाता है।

15.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के द्वारा निम्न उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है——

1. लेश्या किसी कहते हैं ?
2. लेश्याध्यान के प्रयोजन को समझा जा सकेगा।
3. लेश्याध्यान के आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक पक्ष को समझा जा सकेगा।
4. लेश्याध्यान की निष्पत्तियों को समझा जा सकेगा।
5. लेश्याध्यान किस प्रकार किया जाना चाहिये, इसकी जानकारी भी प्रस्तुत इकाई से मिलेगी।

15.2 लेश्या – एक परिचय

लेश्या का सिद्धांत पहले दार्शनिक जगत में चर्चित था और आज वह ओरा (Aura), आभामण्डल के नाम से वैज्ञानिक चर्चा का विषय बन चुका है। नाम बदल सकता है पर सिद्धांत नहीं। आज विज्ञान के क्षेत्र में 'ओरा' पर काफी चर्चा हो रही है। दो शब्द हैं—— ओरा और हेलो। पूरे शरीर के चारों ओर जो वलय होता है, वह ओरा है, आभामण्डल है। जो सिर के चारों ओर मंडलाकार में होता है, वह हेलो है, भामण्डल है। महापुरुषों के सिर के पीछे जो एक ज्योतिर्मय चक्राकार मण्डल दिखाया जाता है, उसका नाम है भामण्डल। आभामण्डल और भामण्डल, ये दोनों बहुत चर्चित हो गये हो। इनके फोटो भी लिए गए हो। किर्लियन फोटोग्राफी इस विषय में काफी प्रसिद्ध हो चुकी है। इस क्षेत्र में और भी अनेक लोग काम कर रहे हैं।

लेश्या का सिद्धांत आज वैज्ञानिक सिद्धांत बन चुका है। कम से कम ढाई हजार वर्ष की यात्रा इस सिद्धांत ने की है। यह सिद्धांत भगवान महावीर के समय था और इसका सबसे बड़ा प्रमाण है जैन आगम 'आचारांग' सूत्र का शब्द 'अबहिलेस्से'। आचारांग सबसे प्राचीन आगम माना जाता है। उसमें लेश्या शब्द का प्रयोग प्राप्त है। महावीर से लेकर आज तक यह लेश्या का सिद्धांत बराबर चल रहा है।

भगवान महावीर ने जिस लेश्या सिद्धांत का प्रतिपादन किया। वह दो धाराओं में चलता है एक धारा है भाव की और दूसरी धारा है रंग की। भाव और रंग इन दोनों का योग है लेश्या का सिद्धांत। यह अध्यात्म का महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है। लेश्या को छोड़कर अध्यात्म की बात नहीं कही जा सकती। लेश्या–आभामण्डल हमारा एक दर्पण है जिसमें व्यक्ति अपने आप को देख सकता है, अपने विचारों और भावनाओं को देख सकता है, अपने आचार और व्यवहार को देख सकता है।

लेश्या का यह सिद्धांत भगवान महावीर की दार्शनिक जगत को बहुत बड़ी देन है। दर्शन और अध्यात्म जगत में इसका मूल्य सदा रहा है। आज लेश्या का सिद्धांत वैज्ञानिक जगत में प्रतिष्ठित होता जा रहा है। वह समय आने वाला है, जहां निदान करने के बहुत सारे यंत्र नाकामयाब होंगे, वहीं यह आभामण्डल का सिद्धान्त और निदान का दर्पण अपनी शक्तिशाली भूमिका निभाने के लिए प्रस्तुत रहेगा। तीन महीने या छह महीने पहले यह घोषणा की जा सकेगी कि व्यक्ति को क्या बीमारी होने वाली है? यह भी बताया जा सकेगा कि कब मौत होने वाली है? यह विषय आज विकास की दिशा में गतिशील बना हुआ है और इससे कुछ नई संभावनाएँ जन्म लेने वाली हो। ऐसा विषय ऐतिहासिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक सब दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण और माननीय है।

15.2.1 लेश्या – शब्द मीमांसा

लेश्या हमारी चेतना की एक रश्मि है। शब्द भी बड़ा जटिल खोजा गया लेश्या। इस शब्द पर भी बहुत उलझनें पैदा हुई हैं। लेश्या का अर्थ किया गया है—— ज्योति रश्मि। जैसे सूरज की रश्मियां होती हैं, वैसे ही हमारी चेतना की रश्मियां होती हैं। चेतना हमारे भीतर है किंतु उसकी किरणें बाहर तक फैल जाती है। जैन आगम शास्त्र 'नन्दी सूत्र' की चूर्णि में इस शब्द पर बहुत ध्यान दिया गया। यह

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्द है—— रस्सी (रश्मि)। रस्सी से बना लस्सी और उससे बन गया—— लेस्सा–लेश्या। एक समीकरण बन गया—— रस्सी——लस्सी——लेस्सा = लेश्या।

3.2 लेश्या की परिभाषा

लेश्या एक प्रकार का पौद्गलिक पर्यावरण है। जीव के चारों ओर रश्मियों का आवरण है। इसकी खोज जीव और पुद्गल के सम्बन्धों का अध्ययन करते समय हुई। जीव से पुद्गल (Matter) प्रभावित होते हैं और पुद्गल से जीव प्रभावित होता है। जीव को प्रभावित करने वाले पुद्गलों के अनेक वर्ग है। उनमें से एक वर्ग का नाम लेश्या है। उस पुद्गल वर्ग से प्रभावित होने वाले आत्म–परिणामों को भी लेश्या कहा गया है। प्राचीन शास्त्रों में लेश्या की अनेक परिभाषाएँ मिलती है, जैसे ——

1. योग परिणाम—— योग अर्थात् मन, वचन व काया को प्रवृत्ति के साथ संयुक्त परिणाम अर्थात् भाव।

2. कषायोदय रंजित योग प्रवृत्ति—— कषाय अर्थात् भाव या संवेग के आने पर उससे रंजित योग—— मन, वचन व काया की प्रवृत्ति।

3. कर्म–निष्यन्दन—— कर्म की एक प्रकृति है—— कषाय। कर्म–निष्पन्दन अर्थात् कर्मों का प्रवाह।

आचार्यश्री तुलसी के अनुसार लेश्या की परिभाषा इस प्रकार है——

''योगवर्गणान्तर्गतद्रव्यसाचिव्यात् आत्मपरिणामो लेश्या।''

अर्थात् 'योगवर्गणा के अन्तर्गत पुद्गलों की सहायता से होने वाले आत्म–परिणाम (भाव) को लेश्या कहते हैं।'

15.3 लेश्या ध्यान का प्रयोजन

लेश्याध्यान के प्रयोजनों को निम्न बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है——

15.3.1 सत्य की खोज

साधक के मन में यह प्रश्न सहज उभर सकता है कि ध्यान क्यों? प्रवृत्ति को छोड़कर निवृत्ति क्यों? प्रश्न स्वाभाविक है। हम यदि प्रवृत्ति और निवृत्ति को ठीक से समझ लें तो प्रश्न समाहित हो सकता है। यदि तनिक भी भ्रांति हुई तो ध्यान के प्रति भी हम भ्रांत हो जाएंगे।

प्रवृत्ति है जीवन की नैया को खेने के लिए, जीवन की यात्रा को चलाने के लिए और निवृत्ति है जीवन की सच्चाई और सत्य को पाने के लिए। जो लोग केवल प्रवृत्ति करते हैं वे जीवन की यात्रा को तो चला सकते हैं। किन्तु जीवन की सच्चाई को प्राप्त नहीं कर सकते। प्रवृत्ति हमारी जीवन–यात्रा का साधन है साध्य नहीं। यदि जीवन में प्रवृत्ति और निवृत्ति का सम्यक् संतुलन नहीं होता है तो व्यक्ति प्रवृत्ति को साध्य मानने लग जाता है और जीवन में एक बहुत बड़ी भ्रांति आ जाती है। इस भ्रांति को मिटाने के लिए, सच्चाई को पाने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति ध्यान का अभ्यास करे।

15.3.2 चैतन्य की स्वतंत्र सत्ता का अनुभव

विज्ञान का लक्ष्य भी सत्य को पाना है जिसके लिए वह निरन्तर प्रयत्नशील है पर वैज्ञानिक खोजों के विषय केवल पदार्थ हैं, परमाणु हैं, चेतना की स्वतंत्र सत्ता उसका विषय नहीं है। विज्ञान ने पदार्थ पर बहुत खोजें की हैं और आज भी उसकी खोज चालू है। पदार्थ के अस्तित्व के कण–कण को छाना जा रहा है। विज्ञान की खोज उपकरणों, यंत्रों और अन्य भौतिक साधनों के माध्यम से हो रही है इसलिए पदार्थ तक ही पहुंच पाएगी। आत्मा तक उसकी पहुंच नहीं हो सकती। चेतन सत्ता उसका विषय भी नहीं बनता। इसलिए वैज्ञानिक जगत ने चेतन की स्वतंत्र सत्ता को अब तक स्वीकार नहीं किया है। उस अस्वीकार के कारण आज हमें ध्यान की उपयोगिता इतनी ही लगती है कि उससे तनाव कम होता है, शारीरिक स्वास्थ्य बना रहता है आदि। बस, ध्यान की उपयोगिता समाप्त! यह सच है कि ध्यान से स्नायुविक, मानसिक और भावनात्मक तनाव कम होते हैं, स्वास्थ्य सुधरता है, रक्तचाप संतुलित होता है, किन्तु ध्यान का उद्देश्य केवल शरीर को पुष्ट और स्वस्थ करने का नहीं है। यद्यपि शारीरिक स्वास्थ्य भी कम मूल्यवान नहीं है और ध्यान का एक उद्देश्य शारीरिक स्वास्थ्य भी है, पर सबसे मूल्यवान उद्देश्य है—— अपने अस्तित्त्व का बोध। जब तक व्यक्ति अपने अस्तित्व का बोध नहीं कर लेता, तब तक दुःख को समाप्त नहीं कर सकता। दुःखों को समाप्त करने का एकमात्र साधन है—— सत्य की उपलब्धि, अस्तित्व की उपलब्धि।

15.3.3 अन्तर्दृष्टि की जागृति

अन्तर्दृष्टि का अर्थ है—— प्रियता और अप्रियता की अनुभूति से मुक्ति। जब तक हम प्रियता–अप्रियता से मुक्त नहीं होते, तब तक हमें सत्य उपलब्ध नहीं होता। हम बड़े–बड़े शास्त्रों को रट लें, तत्त्वों का पारायण कर लें, फिर भी हमें अन्तर्दृष्टि प्राप्त नहीं हो सकती। अन्तर्दृष्टि, सम्यग्दृष्टि, सम्यक्त्व, सत्य, सब एक ही हैं। ध्यान हम इसलिए कर रहे हैं कि हम अपने अस्तित्त्व को जानें,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ज्ञाता को जानें, द्रष्टा को जानें, ज्ञाता–द्रष्टा, जो पर्दे के पीछे चला गया, हम उसका अनुभव करें। एक वैज्ञानिक उसे नहीं जान सकता, एक ध्यान साधक उसे जान सकता है। ध्यान के सारे नियम ज्ञाता तक पहुंचाने के लिए हैं। साधक अपने संवेदनों को शुद्ध करता चलता है, भोक्ता–स्वरूप को छोड़ता है और ज्ञाता–स्वरूप को प्राप्त करता है, जहां केवल जानने की बात आती है, वहां संवेदन शुद्ध हो जाता है, दृष्टि शुद्ध हो जाती है और ज्ञान शुद्ध हो जाता है।

15.3.4 व्यक्तित्व का रूपांतरण

अध्यात्म के आचार्यों ने आत्म–शोधन की प्रक्रिया को इतने सुन्दर ढंग से प्ररूपित किया है कि उसे ठीक से समझकर यदि हम उसका प्रयोग करें तो व्यक्तित्व के रूपान्तरण में कोई कठिनाई नहीं होगी। लेश्या के शोधन के द्वारा जीवन में धर्म सिद्ध हो सकता है। जब कृष्ण, नील और कापोत ये तीन लेश्याएं बदल जाती हैं और तैजस्, पद्म और शुक्ल ये तीन लेश्याएं अवतरित होती हैं तब परिवर्तन घटित होता है।

15.4 लेश्याध्यान का आध्यात्मिक दृष्टिकोण

लेश्या शब्द का अर्थ आणविक आभा, कांति, प्रभा या छाया है। छाया–पुद्गलों से प्रभावित होने वाले जीव परिणामों को भी लेश्या कहा गया है। प्राचीन साहित्य में शरीर के वर्ण, आणविक आभा, उससे प्रभावित होने वाले आत्म–परिणाम; इन तीनों अर्थों में लेश्या का उल्लेख मिलता है। शरीर–वर्ण और आणविक आभा को 'द्रव्य लेश्या' और आत्म–परिणाम को 'भाव लेश्या' कहा गया है।

आणविक आभा कर्मलेश्या का ही नामांतर है और कर्मों में छठा कर्म नाम कर्म है। उसका सम्बन्ध शरीर रचना संबंधी पुद्गलों से है। उसकी एक प्रकृति 'शरीर–नामकर्म' है। 'शरीर–नामकर्म' के पुद्गलों का ही एक वर्ग कर्मलेश्या कहलाता है।

लेश्या की अनेक परिभाषाएँ मिलती हैं, जैसे— 1. योग–परिणाम, 2. कषायोदय रंजित योग–प्रवृत्ति, 3. कर्म–निष्यन्द, 4. कार्मण शरीर की भांति कार्मण वर्गणा–निष्पन्न कर्म–द्रव्य।

इन शास्त्रीय परिभाषाओं के अनुसार लेश्या से जीव और कर्म पुद्गलों का संबंध होता है, कर्म की स्थिति निष्पन्न होती है और कर्म का उदय होता है। इस प्रकार आत्मा की शुद्धि और अशुद्धि के साथ लेश्या जुड़ी हुई है।

प्रभाववाद की दृष्टि से दोनों परम्पराएँ प्राप्त होती हैं—

1. पौद्गलिक लेश्या का आत्मिक परिणामों पर प्रभाव।
2. आत्म–परिणाम का लेश्या पर प्रभाव।

कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात्, परिणामोऽयमात्मनः।
स्फटिकस्यैव तंत्रायं लेश्या–शब्दः प्रवर्तते।।

इस प्रसिद्ध श्लोक की ध्वनि यही है— कृष्ण आदि लेश्या पुद्गल जैसे होते हैं, वैसी ही मानसिक परिणति होती है। आत्मिक परिणति होती है।

दूसरी धारा यह है— कषाय की मंदता से अध्यवसाय की शुद्धि होती है और अध्यवसाय की शुद्धि से लेश्या की शुद्धि होती है।

पांच आस्रवों में प्रवृत्त मनुष्य कृष्ण लेश्या में परिणत होता है। अर्थात् उसकी आणविक आभा (पर्यावरण) कृष्ण होती है। 'मनुस्मृति' में सत्त्व, रजस् और तमस् के जो लक्षण और कार्य बतलाए गए हैं, वे लेश्या के लक्षण से तुलनीय हैं।

15.4.1 लेश्या के क्रियाकलाप

यह लेश्या एक बहुत बड़ा कारखाना है। कषाय की तरंगें और कषाय की शुद्धि होने पर आने वाली चैतन्य तरंगों को भाव के सांचे में ढालना, भाव के रूप में इनका निर्माण करना और उन्हें विचार तक, वाणी तक, क्रिया तक पहुंचा देना, यह इसका काम है। सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर के बीच में सम्पर्क–सूत्र का कार्य लेश्या करती है। मन, वचन और काया की प्रवृत्ति के द्वारा, जो कुछ बाहर से आता है, वह कच्चा माल होता है। लेश्या उसे लेती है और उसे कषाय तक पहुंचा देती है, फिर भीतर से वह कच्चा माल पक्का बनकर आता है। जो कर्म भीतर जाता है, वह फिर विपाक होकर आता है। भीतरी स्राव, जो रसायन बनकर आता है, उसे लेश्या फिर अध्यवसाय से लेकर हमारे सारे स्थूल तंत्र तक अन्तःस्रावी ग्रंथियों और मस्तिष्क तक पहुंचा देती है इसलिए यदि हमारे स्थूल शरीर में लेश्या के प्रतिनिधि संस्थानों को खोजें, उनके बिक्री–संस्थानों को खोजें तो जितनी अंतःस्रावी ग्रंथियां हों, ये सारी लेश्या की प्रतिनिधि संस्थाएँ हैं, बिक्री–संस्थान हैं। उनके सेल्स–मैनेजर वहां बैठे हैं। अच्छे ढंग से उनके माल की सप्लाई कर रहे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हैं। अंतःस्रावी ग्रंथियों के जो स्राव हैं, वे कर्मों के स्राव से प्रभावित होकर निकलते हैं। कर्मों के स्राव भीतर से आते हैं और लेश्या के द्वारा ग्रंथियों में आकर, वे सारे व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। सारा व्यक्तित्व उनसे निर्मित होता है।

15.4.2 लेश्या – रंग का संस्थान

भीतर कषाय का तंत्र है। वहां जो कुछ भी जाता है, वह रंगीन हो जाता है। जो भी माल बाहर आता है, वह रंगीन आता है। हिंसा, असत्य, क्रोध, अहंकार, कपट आदि का आचरण करने वाला व्यक्ति बाहर से काले, नीले आदि मलिन रंगों के परमाणु आकर्षित करता है। लेश्यातंत्र उन्हें कषाय तक पहुंचाता है। जब विपाक होता है, तब कषाय से रंगीन होकर लेश्या के माध्यम से वे बाहर आते हों और भिन्न–भिन्न अंतःस्रावी ग्रंथियों में आकर भिन्न–भिन्न प्रकार की वृत्तियों और वासनाओं को प्रकट करते हों। इस प्रकार सम्पर्क–सूत्र का सारा कार्य लेश्यातंत्र के हाथ में है।

जैसे रंग हम ग्रहण करते हैं, वैसे ही हमारे भाव, आचार और व्यवहार बन जाते हैं। स्फटिक के सामने जैसा रंग आता है, वह वैसा ही दिखने लग जाता है। स्फटिक का अपना कोई रंग नहीं होता। आत्मा के परिणामों का भी अपना कोई रंग नहीं होता। सामने जिस रंग के परमाणु आते हैं, परिणाम भी वैसे ही हो जाते हैं। ये परिणाम ही हमारी भाव लेश्या हैं।

15.4.3 द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या

लेश्या दो प्रकार की है—— द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या। द्रव्य लेश्या भौतिक (पौद्‌गलिक) है और भाव लेश्या चैतन्य का एक स्तर है। पुद्‌गल का लक्षण है—— वर्ण, गंध, रस और स्पर्शयुक्त होना। द्रव्य लेश्या में भी ये चारों गुण पाए जाते हैं। भाव लेश्या अपौद्‌गलिक है इसलिए उसमें कोई वर्ण, रस, गंध, स्पर्श नहीं होते। कृष्ण लेश्या का वर्ण काला, नील लेश्या का नीला और कापोत लेश्या का वर्ण कबूतर या राख जैसा होता है। ये तीन अप्रशस्त लेश्याएं हैं। तेजोलेश्या का वर्ण लाल, पद्‌म लेश्या का पीला और शुक्ल लेश्या का सफेद होता है। ये तीन प्रशस्त लेश्याएँ हैं। तीनों अप्रशस्त लेश्याओं के गंध, रस और स्पर्श भी अमनोज्ञ तथा प्रशस्त लेश्याओं के गंध, रस और स्पर्श मनोज्ञ होते हैं।

इन चार गुणों में से रंग चित्त को सबसे अधिक प्रभावित करता है। हमारा सारा जीवनतंत्र रंगों के आधार पर चलता है। आज मनोवैज्ञानिकों और वैज्ञानिकों ने यह खोज की है कि व्यक्ति के अन्तर्मन को, अवचेतन मन को और मस्तिष्क को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला है—— रंग। हमारे जीवन का ही नहीं, मृत्यु का सम्बन्ध भी रंग से है। हमारे पुनर्जन्म का संबंध भी रंग से है।

तीन अप्रशस्त लेश्याएं रूखी और ठंडी होती हैं। तीन प्रशस्त लेश्याएं चिकनी और गरम होती हैं। यह प्रशस्तता और अप्रशस्तता की व्याख्या संक्लेश और असंक्लेश के आधारपर की गई है, इसलिए सापेक्ष है। असंक्लेश का अर्थ है—— विशुद्धि। संक्लेश का अर्थ है—— अविशुद्धि। कृष्ण लेश्या की अपेक्षा नील लेश्या विशुद्ध होती है और नील लेश्या की अपेक्षा कापोत लेश्या विशुद्ध होती है। कृष्ण लेश्या संक्लेश का चरम बिन्दु है, नील लेश्या मध्य है और कापोत लेश्या न्यूनतम है। दूसरी ओर असंक्लेश की न्यूनतम अवस्था है तैजस् लेश्या, मध्य है पद्‌म लेश्या और उत्कृष्ट है शुक्ल लेश्या।

अप्रशस्त लेश्याओं से जिस व्यक्तित्व का निर्माण होता है, उसे विघटित करने के लिए प्रशस्त लेश्याएं सक्षम होती हैं। वे नया व्यक्तित्व उभार देती हैं।

15.4.4 वृत्तियों का उद्‌भव–स्थान

हमारी वृत्तियां, भाव या आदतें; इन सबको उत्पन्न करने वाला सशक्त तंत्र है—— लेश्या–तंत्र। जब तक लेश्या तंत्र शुद्ध नहीं होता, तब तक आदतों में परिवर्तन नहीं हो सकता। लेश्या तंत्र को शुद्ध करना आवश्यक है। उसके शुद्ध करने की प्रक्रिया को समझने से पहले यह समझना जरूरी है कि अशुद्धि कहां जन्म लेती है और कहां प्रकट होती है? यदि हम उस तंत्र को ठीक ढंग से समझ लेते हैं तो उसे शुद्ध करने की बात को समझने में बड़ी सुविधा हो जाती है।

बुरी आदतों को उत्पन्न करने वाली तीन लेश्याएँ होती हैं—— कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या। क्रूरता, हत्या की भावना, कपट, असत्य बोलने की भावना, प्रवंचन धोखधड़ी, विषय की लोलुपता, प्रमाद, आलस्य आदि जितने दोष हैं, ये सब इन तीन लेश्याओं से उत्पन्न होते हैं। हमारे पास स्थूल शरीर में इन लेश्याओं के संवादी स्थान हैं जिनमें ये वृत्तियां उत्पन्न होती हैं। अधिवृक्क ग्रंथियां (एड्रीनल ग्लैण्ड्स) और काम–ग्रंथियां (गोनाड्स), ये दो ग्रंथियां इन लेश्याओं के प्रतिनिधि या संवादी स्थान हैं। इन तीनों लेश्याओं के भाव यहां जन्म लेते हैं।

हम वर्तमान विज्ञान की दृष्टि, योगशास्त्र की दृष्टि और लेश्या के सिद्धांत की दृष्टि से इन पर विचार करें और इनकी तुलना करें। वर्तमान विज्ञान की दृष्टि के अनुसार काम–वासना का स्थान है—— जनन–ग्रंथियां (गोनाड्स), वहां काम–वासना उत्पन्न होती है। अन्य वृत्तियों का स्थान है—— अधिवृक्क ग्रंथियां (एड्रीनल ग्लैण्ड्स), वहां भय, आवेग, बुरे भाव जन्म लेते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

योगशास्त्र की भाषा में तीन चक्र हैं—— स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपुर चक्र और अनाहत चक्र, जहां हमारी वृत्तियां जन्म लेती हैं। 'एड्रीनल और गोनाड्स' को स्वाधिष्ठान चक्र और मणिपुर चक्र से सम्बन्धित माना जाता है।

लेश्या सिद्धांत की दृष्टि से अविरति, क्षुद्रता, निर्दयता, नृशंसता, माया, निर्लज्जता, विषय–वासना, क्लेश, रस–लोलुपता, ये नील लेश्या के परिणमन हैं। वक्रता–वक्र आचरण, अपने दोषों को ढांकने की मनोवृत्ति, परिग्रह का भाव, मिथ्या दृष्टिकोण, दूसरे के मर्म को भेदने की वृत्ति, अप्रिय कथन; ये कापोत लेश्या के परिणमन हों।

विज्ञान की दृष्टि, योगशास्त्रीय दृष्टिकोण, लेश्या सिद्धांत की दृष्टि तथा इन तीनों की तुलनात्मक दृष्टि से लेश्या के सिद्धांत में जो तीन अप्रशस्त लेश्याएँ हैं, योगशास्त्र की दृष्टि में जो तीन चक्र हैं और विज्ञान की दृष्टि में जो एड्रीनल और गोनाड्स ग्रंथियाँ है, इन सबका काम समान–सा है। लेश्या का सिद्धांत मानता है कि सारी आदतें तीन लेश्याओं में जन्म लेती हैं। योगशास्त्र मानता है कि सारी आदतें तीन चक्रों में जन्म लेती हैं और विज्ञान के अनुसार ये सारी आदतें दो ग्रंथियों में जन्म लेती हैं, अद्‌भुत समानता है तीनों प्रतिपादनों में। यह सत्य स्पष्ट हो गया है कि सारी बुरी वृत्तियां पेडू के पास वाले स्थान से लेकर नाभि के स्थान तक या हृदय के स्थान तक जन्म लेती हैं। इतना ही स्थान है इनका। इस सत्य को समझ लेने पर बदलने की भावना को समझने में बहुत सरलता हो जाती है।

15.4.5 भावधारा, लेश्या और आभामंडल

प्राणी न शुद्ध अर्थ में आत्मा है और न शुद्ध अर्थ में जड़ पदार्थ है। वह एक यौगिक पदार्थ है। चैतन्य और पदार्थ का योग है। आत्मा का लक्षण है—— चैतन्य। पदार्थ का लक्षण है—— वर्ण, गंध, रस और स्पर्श। प्राणी का आभामण्डल दो प्रकार की ऊर्जाओं के संयुक्त विकिरण से बनता है। एक चैतन्य द्वारा प्राण–ऊर्जा का विकिरण और दूसरा भौतिक शरीर द्वारा विद्युत्–चुम्बकीय ऊर्जा का विकिरण। प्राण–ऊर्जा के विकिरण का आधार है, व्यक्ति की भावधारा। भाव चैतसिक है और आभामण्डल पौद्गलिक (भौतिक) है, फिर भी भाव और आभामण्डल दोनों परस्पर प्रगाढ़ संबंध रखते हैं। आभामण्डल हमारी भावना का प्रतिनिधित्व करता है। इस दृष्टि से भाव के द्वारा आभामण्डल की और आभामण्डल के द्वारा भाव की व्याख्या की जा सकती है। आभामंडल किसी एक रंग का नहीं होता। उसमें अनेक रंगों का मिश्रण होता है क्योंकि उसका निर्माण लेश्याओं के आधार पर होता है। लेश्या के रंग व्यक्ति के भाव पर निर्भर रहते हैं। जिस व्यक्ति में जिन भावों की प्रधानता होती है, वैसे ही लेश्या के रंग हो जाते हैं। लेश्या में जितने रंग होते हैं, उतने ही रंग आभामण्डल में बिम्बित हो जाते हैं। अच्छे भाव दीप्तिमय होते हैं और बुरे भाव मलिन। आभामण्डल के चित्र लिए जाते हैं, उनमें जो रंग प्रतिबिम्बित होते हैं, उनके आधार पर क्षण–क्षण में बदलते हुए भाव भी पकड़ में आ सकते हैं। आभामण्डल के माध्यम से चेतना के परितर्वन जाने जा सकते हैं, शरीर और मन के स्तर पर घटित होने वाली घटनाएँ जानी जा सकती हैं। स्थूल शरीर की घटनाएँ पहले सूक्ष्म शरीर में घटित होती हैं, उनका प्रतिबिम्ब आभामण्डल पर अंकित होता है। इसके अध्ययन से भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का भी पता लगाया जा सकता है।

हमारा चित्त नाड़ी संस्थान में क्रियाशील रहता है और उसका सूक्ष्म केन्द्र है—— मस्तिष्क। वह अन्तर्जगत में सूक्ष्म चेतना से जुड़ा हुआ है। वहीं से उसे गतिशीलता के आदेश–निर्देश प्राप्त होते रहते हैं और बाह्य–जगत में वह अपने प्रतिबिम्बभूत आभामण्डल से जुड़ा हुआ होता है। जैसा चित्त होता है वैसा आभामण्डल होता है और जैसा आभामण्डल होता है वैसा चित्त होता है। चित्त को देखकर आभामण्डल को जाना जा सकता है और आभामण्डल को देखकर चित्त को जाना जा सकता है। चित्त निर्मल तो आभामण्डल निर्मल और चित्त मलिन, तो आभामण्डल मलिन।

हमारी भावधारा जैसी होती है उसी के अनुरूप मानसिक चिन्तन तथा शारीरिक मुद्राएं और इंगित तथा अंग–संचालन होता है। क्रोध की मुद्रा में रहने वाले व्यक्ति में क्रोध के अवतरण की संभावना बढ़ जाती है। क्षमा की मुद्रा में रहने वाले व्यक्ति के लिए क्षमा की चेतना में जाना सहज हो जाता है।सामान्य और स्वस्थ मनुष्यों के आभामण्डलों में आयु, लिंग या जाति की भिन्नता का कोई प्रभाव नहीं देखा जाता किन्तु योगियों–उच्च चरित्र वाले व्यक्तियों के आभामण्डल सामान्य व्यक्तियों से बिलकुल भिन्न पाए जाते हो। उनमें दीप्ति अधिक होती है। आभामण्डल को देखकर व्यक्ति के चरित्र को जाना जा सकता है।

15.5 लेश्याध्यान का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

लेश्याध्यान का संबंध रंगों से है अतः लेश्याध्यान के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को समझने के लिए रंगों को भी समझना होगा।

15.5.1 विश्व–विज्ञान और रंग

प्रकाश 'तरंग' के रूप में होता है और प्रकाश का रंग उस्के तरंग–दैर्ध्य (Wave Length) पर आधारित है। तरंग–दैर्ध्य और कंपन की आवृत्ति (Frequency) परस्पर में व्यस्त प्रमाण (Inverse Proportion) से संबंधित है अर्थात् तरंग–दैर्ध्य के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बढ़ने के साथ कम्पन की आवृत्ति कम होती है और उसके घटने के साथ बढ़ती है। सूर्य का प्रकाश त्रिपार्श्व कांच (Prism) में में गुजरने पर प्रकाश–विक्षेपण के कारण सात रंगों में विभक्त होता दिखाई देता है। उस रंग–पंक्ति को वर्णपट (Spectrum) कहते हो। उनमें से लाल रंग का तरंग–दैर्ध्य सबसे अधिक और बोगनी रंग का तरंग दैर्ध्य सबसे कम होता है किन्तु कम्पन–आवृत्ति लाल प्रकाश की सबसे कम और बोगनी प्रकाश की सबसे अधिक होती है। दृश्य–प्रकाश में जो विभिन्न रंग दृष्टिगोचर होते हैं, वे विभिन्न प्रकम्पनों की आवृत्ति या तरंग–दैर्ध्य के आधार पर होते हैं।

रंग	तरंग दैर्ध्य	कम्पन-आवृत्ति (प्रति सैकण्ड)
VIBGYOR	$\frac{1}{1A^0=1000000\text{ से.मी.}}$ -	
लाल	7400–6200	4000–5000 खरब
नारंगी	6200–4850	5000–5400 खरब
पीला	5850–5750	5400–5500 खरब
हरा	5750–5000	5500–6000 खरब
नीला	5000–4450	6000–6600 खरब
जामुनी	4450–4350	6600–6750 खरब
बैंगनी	4350–3900	6750–7600 खरब

सूर्य से प्रसारित होने वाली प्रकाश–तरंगें जब पदार्थ में से होकर गुजरती हैं, तब उस पदार्थ की स्वयं की विशिष्टता के कारण एक विशेष तरंग–दैर्ध्य को छोड़कर शेष सभी उस पदार्थ के द्वारा शोषित हो जाती हैं। उदाहरणार्थ जब दूब में से प्रकाश की तरंगें गुजरती हैं, तब दूब की विशिष्टता के कारण ही हरे रंग को सूचित करने वाली तरंग–दैर्ध्य को छोड़कर शेष तरंग–दैर्ध्य वाली सभी तरंगें दूब के द्वारा शोषित (Absorbed) हो जाती हैं। हमारी आंख तक केवल वे ही तरंगें पहुंचती हैं जिनका तरंग–दैर्ध्य हरे रंग को सूचित करता है और इसीलिए हमें दूब हरी दिखाई देती है।

सुप्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक और नोबल पुरस्कार विजेता प्रो. सी.वी. रमण ने रंग की प्रक्रिया पर गहन शोध कार्य किया है। उपरोक्त कथन की पुष्टि प्रो. रमण के इस कथन से होती है कि ''सूर्य के प्रकाश में पदार्थ का जो रंग हमें दिखाई देता है, वह पदार्थ के ऊपर पड़ने वाली सूर्य–रश्मियों में विद्यमान समस्त प्रकाश–तरंगों में से जिस द्रव्य का पदार्थ बना हुआ है, उस द्रव्य द्वारा विसरण (Diffusion) और छितराव (Scattering) के पश्चात्, जो तरंगें आंख तक पहुंचती हैं तथा आंख द्वारा उनका संश्लेषण होता है, उनसे उत्पन्न होता है।''

किसी भी पदार्थ का रंग तीन बातों पर निर्भर होता है—— आपतित प्रकाश की प्रकृति, पदार्थ द्वारा शोषित प्रकाश और विभिन्न रंगों की अनावशोषित प्रकाश किरणें। इन तीनों के कारण आंख पर उत्पन्न अनुभूति ही पदार्थ का रंग है।

15.5.2 पारदर्शक और अपारदर्शक वस्तुएँ

जब सफेद प्रकाश किसी पारदर्शी वस्तु पर आपतित होता है तो उसका कुछ भाग वस्तु द्वारा अवशोषित हो जाता है, थोड़ी मात्रा में परावर्तित होता है पर अधिकांश संचरित (पार) हो जाता है। अपारदर्शक वस्तु पर आपतित प्रकाश का कुछ हिस्सा परावर्तित हो जाता है, कुछ उसमें प्रवेश करता है जिसका कुछ भाग वापस लौटता है और शेष भाग अवशोषित हो जाता है। अपारदर्शक वस्तु का रंग आपतित प्रकाश की प्रकृति और अवशोषित प्रकाश पर निर्भर करता है क्योंकि सभी वस्तुएँ अपने रंग के प्रकाश को छोड़कर, शेष सब रंगों की प्रकाश–किरणों को अवशोषित कर लेती हैं। नीला, पीला और लाल ये तीनों प्राथमिक रंग कहलाते हैं। इन रंगों को उचित अनुपात में मिलाने पर दूसरे रंग प्राप्त किये जा सकते हैं जबकि अन्य रंगों को मिलाने से, ये प्राथमिक रंग प्राप्त नहीं हो सकते। जब दो रंगों को मिलाने से तीसरा रंग प्राप्त होता है, तो उन दो रंगों को एक–दूसरे का 'पूरक' रंग कहते हैं।

प्रकृति के रहस्य अधिकांशतः प्रकाश की भाषा में अंकित हैं। उनका उद्घाटन प्रकाश की सांकेतिक भाषा को समझने से हो सकता है। अणु–सिद्धांत और प्रकाश के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान के आधार पर अब यह बात सिद्ध हो चुकी है कि प्रत्येक द्रव्य या प्रत्येक प्रकार का अणु अपनी आणविक संरचना के आधार पर एक विशेष तरंग–दैर्ध्य को ही ऊर्जा के रूप में उत्सर्जित या गृहीत करता है। इसी के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आधार पर प्रत्येक द्रव्य का वर्णपट में एक निश्चित स्थान होता है जो दूसरे किसी द्रव्य का नहीं होता। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्येक प्रकार का अणु अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व को अपने विशिष्ट हस्ताक्षर द्वारा अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता है और यह हस्ताक्षर उसके अपने अनन्य वर्ण के रूप में होता है। दूसरे शब्दों में, यह अभिव्यक्ति उस द्रव्यविशेष या अणुविशेष की 'अंगुलियों की छाप' बन जाती है जो केवल उसके अपने व्यक्तित्व (संरचना–विशेष) को ही व्यक्त करती है। इसके आधार पर ज्योतिर्वैज्ञानिक अन्तरिक्ष में सुदूर आकाश–पिण्डों तक विद्यमान द्रव्यों की पहचान करते हैं। लाखों प्रकाश–वर्ष दूर रही हुई नीहारिकाओं तथा तारों का अध्ययन करने में इससे बड़ी सहायता मिलती है। वर्णक्रम विज्ञान (स्पेक्ट्रोस्कोपी) के द्वारा प्राप्त तथ्यों के आधार पर समग्र विश्व के निर्माण एवं संरचना के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों की स्थापना हुई है। सर जोसेफ नोर्मल लोक्यर नामक वैज्ञानिक ने सूर्य–रश्मियों के वर्णक्रम के अध्ययन से ही इस बात की खोज की थी कि सूर्य में 'हिलियम' नामक द्रव्य विद्यमान है।

15.5.3 रंग और मनोविज्ञान

वैज्ञानिकों के अनुसार हमारा सारा जीवन तंत्र रंगों के आधार पर चलता है। आज के मनोवैज्ञानिकों और वैज्ञानिकों ने यह खोज की है कि व्यक्ति के अन्तर्मन को, अवचेतन मन को और मस्तिष्क को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला है— रंग। रंग हमारे समूचे व्यक्तित्व को प्रभावित करता है।

सभी प्राणियों के स्वास्थ्य और व्यवहार पर प्रकाश और रंगों का गहरा प्रभाव है। वनस्पति–जगत के लिए सूर्य का प्रकाश जीवनदाता है। मनुष्य एवं अन्य प्राणियों की शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक दशाओं तथा आचार–व्यवहार पर विभिन्न रंगों का क्या–क्या प्रभाव पड़ता है, इस विषय में प्राचीन एवं आधुनिक दोनों विज्ञानों में काफी गवेषणा की गई है। उन्नीसवीं शताब्दी के रंग–चिकित्सकों का यह दावा था कि विभिन्न रंगों के कांच या बोतलों के माध्यम से तैयार की गई औषधियों द्वारा वे सामान्य कब्जी से लेकर तंत्रिकाशोध (नाड़ी तंत्र) की कोशिकाओं पर आई हुई सोजिश (Meanningitis) जैसी घातक बीमारियों तक को ठीक कर सकते हैं। उस युग में इस प्रकार के दावे चिरकाल तक प्रतिष्ठित नहीं हो सके और अन्त में बदनाम भी हुए किन्तु आधुनिक युग में इन्हें रंग–चिकित्सा या 'प्रकाश–जैविकी' (फोटोबायोलॉजी) के नाम से पुनरुजीवित किया गया है। अमरीका की 'मासाच्यूचेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी' के सुप्रसिद्ध पोषण वैज्ञानिक डॉ. रेचर्ज जे. वुर्टमैन के अनुसार, 'शारीरिक क्रियाकलापों पर सबसे अधिक प्रभाव डालने वाले तत्त्वों में आहार के अतिरिक्त, यदि किसी का हाथ है, तो वह है प्रकाश का।'

अनेक प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात किया जा चुका है कि विभिन्न रंगों का व्यक्ति के रक्तचाप, नाड़ी और श्वसन की गति एवं मस्तिष्क के क्रियाकलापों पर तथा अन्य जैविक क्रियाओं पर विभिन्न प्रकार का प्रभाव पड़ता है। इसी परिणामस्वरूप आज अनेक प्रकार की बीमारियों की चिकित्सा में विभिन्न रंगों का उपयोग किया जाने लगा है।

15.5.3.1 नीला और पराबैंगनी रंग

प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में बच्चों का निर्धारित समय से पहले जन्म हो जाता है। ऐसे बालक प्रायः घातक पीलिया बीमारी के शिकार हो जाते हैं। ऐसे बालकों का उपचार पहले प्रायः बाहर से रक्त चढ़ाकर किया जाता था। अब उनका उपचार रक्त–आधान के बदले नीले प्रकाश की किरणों के स्नान से किया जाने लगा है।

रूस को प्रकाश–जैविकी के क्षेत्र में अग्रगण्य माना जाता है। वहां के वैज्ञानिकों के अनुसार कोयले की खानों के मजदूर को यदि पराबैंगनी किरणों का स्नान कराया जाता है तो वे 'श्याम फुफ्फुस' (Black Lungs) नामक बीमारी से बच सकते हैं। श्री फाबेर बिरेन एक रंग–विशेषज्ञ हैं, जिन्होंने रंग के विषय में सैकड़ों लेख एवं अनेक पुस्तकें लिखी हैं तथा जो इस विषय के अधिकृत व्यक्ति माने जाते हैं। श्री बिरेन के मतानुसार स्कूल के कमरों मे बत्तियों के साथ पराबैंगनी प्रकाश वाली बत्तियों को लगाने पर विद्यार्थियों का विकास तेजी के साथ होता है, उनकी कार्यक्षमता और प्राप्तांकों में वृद्धि होती है तथा जुकाम, नजले आदि बीमारियों की घटनाओं में कमी होती है।

15.5.3.2 शांतिदायक गुलाबी रंग

केलिफोर्निया (अमरीका) के सानबरमार्डिनो काउण्टी के 'प्रोबेशन विभाग' (अपराध सुधार विभाग) की स्वास्थ्य सेवा के निर्देशक श्री पौल ई. बोकुनिनी कहते है हमारे यहां कैद बाल–अपराधी, जब कभी उन्मत होकर हिंसा पर उतारू हो जाते थे तब पहले हम यातनाओं द्वारा उन पर नियंत्रण प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे। अब हम उन्हें ऐसे कमरे में रखते हैं, जिसकी दीवारें एक विशेष गुलाबी रंग से रंगी हुई होती हैं। हमने पाया कि वे उद्दंड बच्चे चिल्लाना छोड़कर शिथिल और शांत होकर केवल 10 मिनट में ही निद्राधीन हो जाते हैं। 'समूचे अमरीका में लगभग 1500 से अधिक अस्पतालों एवं सुधारग्रहों में कम से कम एक कमरा गुलाबी रंग की दीवारों वाला हाता ही है। यह गुलाबी रंग 'शांतिदायक गुलाबी रंग' के नाम से प्रसिद्ध है। यह मनुष्य की भावनाओं पर होने वाले रंग के प्रभाव का ज्वलंत उदाहरण है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

15.5.3.3 मनःकायिक बीमारियों पर रंगों का प्रभाव

रंग व्यक्ति की बीमारियों को कैसे और क्यों प्रभावित करते हैं? इस विषय में सभी चिकित्सक एकमत नहीं हैं। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि रंगों का प्रभाव सीधे शरीर पर न होकर मानस पर होता है। उनके मतानुसार रंगों द्वारा ऐसी मनोदशाओं का निर्माण होता है जो शरीर को स्वस्थ कर देती हैं किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि आधे से अधिक बीमारियां मनःकायिक ही होती हैं।

इस बात को तो सभी चिकित्सक और शोधकर्त्ता स्वीकार करते हैं कि विद्युत्–चुम्बकीय तरंग–क्रम का अमुक हिस्सा, जैसे कि 'एक्स' किरणें, सूक्ष्म तरंगें एवं पराबैंगनी किरणें, व्यक्ति के स्वास्थ्य पर उल्लेखनीय प्रभाव डालती हैं, किन्तु पूरे दृश्य प्रकाश के प्रभाव के विषय में उनमें मतभेद हैं। फिर भी अनेक प्रयोगों द्वारा यह स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध हुए हैं कि प्रकाश हमारे अंतःस्रावी ग्रंथितंत्र एवं नाड़ीतंत्र को निश्चित रूप से प्रभावित करता है।

15.3.4 नाड़ी ग्रंथि तंत्र पर रंगों का प्रभाव

अमरीकन 'इन्स्टीट्यूट ऑफ बायो–सोशल रिसर्च' के निदेशक प्रो. एलेक्जांडर सोस की मान्यता है कि रंग की विद्युत–चुम्बकीय ऊर्जा किसी अज्ञात रूप में हमारी पिच्यूटरी और पिनियल ग्रंथियों एवं मस्तिष्क की गहराई में विद्यमान हाइपोथेलेमस को प्रभावित करती है। वैज्ञानिकों के अनुसार हमारे शरीर के ये अवयव अन्तःस्रावी ग्रंथि तंत्र का नियमन करते हैं, जो स्वयं शरीर के अनेक मूलभूत क्रियाकलापों और आक्रमण, भय आदि भावनात्मक प्रतिक्रियाओं का नियंत्रण करता है।

हेरोल्ड वोह्लफार्थ नामक प्रकाश–जीव–विज्ञान–शास्त्री (फोटोबायोलॉजिस्ट) और 'जर्मनी अकादमी ऑफ कलर साइन्स' के अध्यक्ष ने एक विद्यालय के बच्चों पर कुछ प्रयोग करने के पश्चात्, यह रिपोर्ट दी है कि दो अंधे बच्चों के रक्तचाप, नाड़ी की गति और श्वास की गति पर प्रकाश का वही प्रभाव देखा गया, जो कि अन्य सात सामान्य दृष्टि वाले बच्चों पर देखा गया था। 'बायो–सोशल रिसर्च' की एक पत्रिका में उपर्युक्त प्रयोग की जो 'रिपोर्ट छपी है, उसमें बताया गया कि जब विद्यालय के कमरों की दीवारों के रंगों को नारंगी और सफेद से बदलकर रोयल ब्लू और हल्का ब्लू कर दिया गया, सामान्य बत्तियों के स्थान पर इन्द्रधनुषी बत्तियों को लगा दिया तो बच्चों का प्रकुंचन (ऊपर का) रक्तचाप 120 से घटकर 100 तक आ गया। उनका व्यवहार पहले से अधिक अच्छा और अनुशासनबद्ध हुआ तथा उसकी एकाग्रता बढ़ गई। आगे श्री बोह्लफार्थ कहते हैं कि प्रकाश से प्राप्त विद्युत्–चुम्बकीय ऊर्जा की अल्पमात्राएं हमारे एक या एक से अधिक तंत्रिका संचारी (Neuro-Transmitter) को, जो एक तंत्रिका से दूसरी तंत्रिका तक या तंत्रिका से मांसपेशी तक संदेश पहुंचाने वाले रासायनिक संदेशवाहक हैं, प्रभावित करती हैं। प्रयोग के द्वारा ऐसे प्रमाण भी उपलब्ध हुए हैं कि जो प्रकाश हमारी आंखों के दृष्टिपटल पर टकराता है, वह हमारी पीनियल ग्रंथि से निकलने वाले मेलाटोनिन नामक महत्त्वपूर्ण स्राव के संश्लेषण को प्रभावित करता है। यह मेलाटोनिन नामक हार्मोन एक अन्य

सेरोटोनिन नामक तंत्रिका–संचारी के उत्पादन–मात्रा का निर्णय करने में सहायक होता है।

15.6 लेश्याध्यान की निष्पत्तियाँ

लेश्याध्यान की निष्पत्तियों को निम्न बिन्दुओं के द्वारा समझा जा सकता है——

15.6.1 आदतों में परिवर्तन

लेश्याध्यान के प्रयोग से आदतों में परिवर्तन होने लगता है। ऐसा रंगों के प्रभाव से होता है। तैजस् लेश्या का बाल–सूर्य जैसा लाल रंग है। लाल रंग निर्माण का रंग है। लाल रंग का तत्त्व है—— अग्नि। हमारी सक्रियता, शक्ति, तेजस्विता, दीप्ति, प्रवृत्ति सबका स्रोत है—— लाल रंग। लाल रंग में यह क्षमता है कि वह व्यक्ति को बाह्य जगत् से अन्तर्जगत् में ले जा सकता है। जब हम दर्शन केन्द्र पर बाल–सूर्य के अरुण रंग का ध्यान करते हैं और जब वह ध्यान सधता है, अरुण रंग प्रकट होता है, दीखने लग जाता है, तब इस लाल रंग के अनुभव से, तैजस् लेश्या के स्पन्दनों की अनुभूति से अन्तर्जगत की यात्रा प्रारम्भ होती है, आदतों में परिवर्तन आना प्रारम्भ हो जाता है।

15.6.2 अपूर्व आनन्द

जब तैजस् लेश्या के स्पंदन जागते हैं तब व्यक्ति को अनिर्वचनीय आनन्दानुभूति होती है। उस आनन्द का प्रत्यक्ष अनुभव करने वाला ही उसे जान सकता है, वह उसे बता नहीं सकता। जिस व्यक्ति ने तेजोलेश्या का कभी प्रयोग नहीं किया, ध्यान नहीं किया, वह व्यक्ति इस स्थूल शरीर से परे भी कोई आनन्द होता है, इन विषयों से परे भी कोई सुखानुभूति होती है, नहीं समझ पाता, कल्पना भी नहीं कर पाता। जब तक वह प्रयोग से नहीं गुजरता, तब तक उसे ज्ञात ही नहीं होता कि ऐसा अनिर्वचनीय सुख भी हो सकता है। जो सुख का अनुभव होता है, वह अपूर्व होता है। व्यक्ति सोचता है—— मैंने मान रखा था कि सुख तो पदार्थ से मिलता है किन्तु आज यह स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि जैसा सुख तैजस् लेश्या के स्पन्दनों के जागने पर होता है, वैसा सुख जीवन में किसी भी पदार्थ से नहीं मिल सकता। भ्रांति टूट जाती है, धारणाएँ बदल जाती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वास्तविकता यह है कि पदार्थों में सुख है ही नहीं। हमारे भीतर एक विद्युत्धारा है। वह सुख का निमित्त बनती है। वैज्ञानिक प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि विद्युत् के प्रकम्पनों के बिना कोई सुख का संवेदन नहीं हो सकता। जो सुख इन्द्रिय–विषयों के उपभोग से उपलब्ध किया जाता है, वही सुख इन्द्रिय–विषयों के बिना कल्पना से भी किया जा सकता है। कान के बिन्दु पर या स्वाद के बिन्दु पर इलेक्ट्रोड लगाकर प्रकंपन पैदा किया जाए तो पदार्थ के बिना भी उनके उपभोग की–सी सुख–संवेदना का अनुभव होता है। वस्तु के संयोग से जो प्रतिक्रियाएं पैदा होती हैं, वे प्रतिक्रियाएं वस्तु के बिना भी विद्युत् के प्रकम्पनों से पैदा की जा सकती हैं इसलिए यह तथ्य प्रमाणित हो गया है कि सुख का संवेदन विद्युत–प्रकंपन सापेक्ष है। जब तैजस् लेश्या जागती है तब विद्युत् के प्रकम्पन बहुत बढ़ जाते हैं, तीव्रतम हो जाते हैं। प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करने वाले को अनुभव होता है। पीत–लेश्या से चित्त प्रशांत होता है, शांति बढ़ती है और आनन्द बढ़ता है। दर्शन की शक्ति पीले रंग से विकसित होती है। दर्शन का अर्थ है—— साक्षात्कार, अनुभव। इससे तर्क की शक्ति नहीं बढ़ती, साक्षात्कार की शक्ति बढ़ती है, अनुभव की शक्ति का विकास होता है। पीले रंग की क्षमता है—— मन को प्रसन्न करना, बुद्धि का विकास करना, दर्शन की शक्ति को बढ़ाना, मस्तिष्क और नाड़ी संस्था को सुदृढ़ करना, सक्रिय बनाना। यदि हम मस्तिष्क तथा चाक्षुष केन्द्र पर पीले रंग का ध्यान करते हैं तो ज्ञान तन्तु विकसित होते हैं।

15.6.3 जितेन्द्रियता

जब हम चमकते हुए पीले रंग के परमाणुओं को आकर्षित करते हैं तो जितेन्द्रिय होने की स्थिति निर्मित हो जाती है। हम जितेन्द्रिय हो सकते हैं। पद्म लेश्या का अभ्यास करने वाला व्यक्ति जितेन्द्रिय हो जाता है। कृष्ण और नील लेश्या में रहने वाला व्यक्ति अजितेन्द्रिय होता है। ये दोनों प्रकार के परमाणु एक–दूसरे के विरोधी होते हैं। जब तक काले रंग के परमाणुओं का प्रभाव बना रहता है, तब तक हम जितेन्द्रिय नहीं हो सकते। जब पीले रंग के परमाणुओं से हमारा लेश्या तंत्र और आभामण्डल सक्रिय होता है, तब हमें जितेन्द्रिय होने की सुविधा मिल जाती है।

15.6.4 आत्म–साक्षात्कार

इन्द्रिय चेतना, मनः चेतना और चित्त की चेतना वाले शरीर में एक ऐसा तत्त्व भी है जो इन चेतनाओं से परे है। उसका साक्षात्कार हमें इष्ट है। आत्मसाक्षात्कार ही लेश्या ध्यान का लक्ष्य है जो शुक्ल लेश्या के ध्यान से प्राप्त होता है। इस बिन्दु पर पहुंचकर ही हम भौतिक और आध्यात्मिक जगत् के अन्तर को समझ सकते हो। आत्म–साक्षात्कार की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है—— निर्विकल्प चेतना का निर्माण। निर्विकल्प चेतना में जीने वाला व्यक्ति निव्यर्थ जीवन जीता है। उसकी चेतना में व्यथा नहीं होती। उसके सामने कितना ही प्रतिकूल वातावरण उपस्थित हो, भंयकर परिस्थितियां और समस्याएं हों, वह कभी व्यथित नहीं होता। वह घटना को जान लेता है, भोगता नहीं। वह केवल ज्ञाता रहता है, भोक्ता नहीं।

इस प्रकार लेश्याध्यान के प्रयोग से अनेक प्रकार के परिणामों को प्राप्त किया जा सकता है।

15.7 लेश्या ध्यान की प्रक्रिया

प्रत्येक मनुष्य के शरीर के चारों ओर एक आभामण्डल होता है। उसके रंग भाव परिवर्तन के साथ बदलते रहते हैं। हम भाव शुद्धि के द्वारा आभामंडल को विशुद्ध बना सकते हैं और आभामंडल की विशुद्धि से भावों की विशुद्धि को जाना जा सकता है।

आनन्द केन्द्र पर हरे रंग का ध्यान

अनुभव करें अपने चारों ओर पन्ने की भांति चमकते हुए हरे रंग का प्रकाश फैल रहा है, हरे रंग के परमाणु फैल रहे हैं। अब इस हरे रंग का श्वास लें। अनुभव करें प्रत्येक श्वास के साथ हरे रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। चित्त को आनन्द केन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां पर चमकते हुए हरे रंग का ध्यान करें।

(कुछ समय बाद) अनुभव करें आनन्द केन्द्र से हरे रंग के परमाण निकलकर शरीर के चारों ओर फैल रहे हैं। पूरा आभामंडल हरे रंग के परमाणुओं से भर रहा है। उन्हें देखें अनुभव करें। अनुभव करें भावधारा निर्मल हो रही है, भावधारा निर्मल हो रही है, भावधारा निर्मल हो रही है।

विशुद्धि केन्द्र पर नीले रंग का ध्यान

अनुभव करें अपने चारों ओर मयूर की गर्दन की भांति चमकते हुए नीले रंग का प्रकाश फैल रहा है, नीले रंग के परमाणु फैल रहे हैं। अब इस नीले रंग का श्वास लें। अनुभव करें प्रत्येक श्वास के साथ नीले रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। चित्त को विशुद्धि केन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां पर चमकते हुए नीले रंग का ध्यान करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(कुछ समय बाद) अनुभव करें विशुद्धि केन्द्र से नीले रंग के परमाणु निकलकर शरीर के चारों ओर फैल रहे हैं। पूरा आभामंडल नीले रंग के परमाणुओं से भर रहा है। उन्हें देखें, अनुभव करें। अनुभव करें वासनाएं अनुशासित हो रही हैं, वासनाएं अनुशासित हो रही हैं, वासनाएं अनुशासित हो रही हैं।

दर्शन केन्द्र पर अरूण रंग का ध्यान

अनुभव करें अपने चारों ओर बाल सूर्य (उगते हुए सूर्य) की भांति चमकते हुए अरूण रंग का प्रकाश फैल रहा है, अरूण रंग के परमाणु फैल रहे हैं। अब इस अरूण रंग का श्वास लें। अनुभव करें प्रत्येक श्वास के साथ अरूण रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। चित्त को दर्शन केन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां पर चमकते हुए अरूण रंग का ध्यान करें।

(कुछ समय बाद) अनुभव करें दर्शन केन्द्र से अरूण रंग के परमाणु निकलकर शरीर के चारों ओर फैल रहे हैं। पूरा आभामंडल अरूण रंग के परमाणुओं से भर रहा है। उन्हें देखें, अनुभव करें। अनुभव करें अन्तर्दृष्टि जागृत हो रही हैं, अन्तर्दृष्टि जागृत हो रही हैं, अन्तर्दृष्टि जागृत हो रही हैं। आनन्द का अनुभव हो रहा है, आनन्द का अनुभव हो रहा है, आनन्द का अनुभव हो रहा है।

ज्ञान केन्द्र पर पीले रंग का ध्यान

अनुभव करें अपने चारों ओर सूरजमुखी के फूल या स्वर्ण की भांति चमकते हुए पीले रंग का प्रकाश फैल रहा है, पीले रंग के परमाणु फैल रहे हैं। अब इस पीले रंग का श्वास लें। अनुभव करें प्रत्येक श्वास के साथ पीले रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। चित्त को ज्ञान केन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां पर चमकते हुए पीले रंग का ध्यान करें।

(कुछ समय बाद) अनुभव करें ज्ञान केन्द्र से पीले रंग के परमाणु निकलकर शरीर के चारों ओर फैल रहे हैं। पूरा आभामंडल पीले रंग के परमाणुओं से भर रहा है। उन्हें देखें, अनुभव करें। अनुभव करें ज्ञान तंतु विकसित हो रहे हैं, ज्ञान तंतु विकसित हो रहे हैं, ज्ञान तंतु विकसित हो रहे हैं।

ज्योति केन्द्र पर श्वेत रंग का ध्यान

अनुभव करें अपने चारों ओर पूर्णिमा के चन्द्रमा की भांति चमकते हुए श्वेत रंग का प्रकाश फैल रहा है, श्वेत रंग के परमाणु फैल रहे हैं। अब इस श्वेत रंग का श्वास लें। अनुभव करें प्रत्येक श्वास के साथ श्वेत रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। चित्त को ज्योति केन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां पर चमकते हुए श्वेत रंग का ध्यान करें।

(कुछ समय बाद) अनुभव करें ज्योति केन्द्र से श्वेत रंग के परमाणु निकलकर शरीर के चारों ओर फैल रहे हैं। पूरा आभामंडल श्वेत रंग के परमाणुओं से भर रहा है। उन्हें देखें, अनुभव करें। अनुभव करें आवेग और आवेश शांत हो रहे हैं, वासनाएं शांत हो रही है, क्रोध शांत हो रहा है, पूर्ण शांति मिल रही है। अनुभव करें पूर्ण शांति मिल रही है, पूर्ण शांति मिल रही है, पूर्ण शांति मिल रही है।

शांति एवं आनन्द का अनुभव करें।

दो तीन लम्बे दीर्घ श्वास के साथ अभ्यास सम्पन्न करें। आंखों को बिना खोले धीमे से आसन बदलें।

ध्यान का समापन – ध्यान की समापन विधि के अनुसार।

(ध्यान के चार चरण में लेश्याध्यान में ज्योति केन्द्र पर श्वेत रंग के ध्यान को चतुर्थ चरण में शामिल कर लिया जाता है)

15.8 सारांश

लेश्या का सिद्धांत आज वैज्ञानिक सिद्धांत बन चुका है। जब तक व्यक्ति अपने अस्तित्व का बोध नहीं कर लेता, तब तक दुःख को समाप्त नहीं कर सकता। दुःखों को समाप्त करने का एकमात्र साधन है– सत्य की उपलब्धि, अस्तित्व की उपलब्धि। विभिन्न रंगों का व्यक्ति के रक्तचाप, नाड़ी और श्वसन की गति एवं मस्तिष्क के क्रियाकलापों पर तथा अन्य जैविक क्रियाओं पर विभिन्न प्रकार का प्रभाव पड़ता है। हमारी भावधारा जैसी होती है उसी के अनुरूप मानसिक चिन्तन तथा शारीरिक मुद्राएं और इंगित तथा अंग–संचालन होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

15.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. व्यक्तित्व को कौन प्रभावित करता है?
2. लेश्या सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया है?
3. आचार्य तुलसी के अनुसार लेश्या क्या है?
4. प्रकृति के रहस्य अधिकांशतः किस भाषा में अंकित हैं ?
5. वृत्तियां, भाव और आदतों को उत्पन्न करने वाला सशक्त तंत्र कौन–सा है ?
6. लेश्या का संबंध किससे है?
7. अन्तर्दृष्टि का अर्थ क्या है?
8. लेश्या के कितने प्रकार हैं?
9. दर्शन का क्या अर्थ है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. लेश्याध्यान के प्रयोजन को स्पष्ट कीजिए।
2. लेश्याध्यान की निष्पत्तियाँ को बताइये।

निबंधात्मक प्रश्न–

1. लेश्याध्यान के आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक स्वरूप को बताइये।

15.10 संदर्भ ग्रंथ।

1. प्रेक्षाध्यान : लेश्याध्यान – आचार्यश्री महाप्रज्ञ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ईकाई 16 अनुप्रेक्षा : प्रयोजन, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं निष्पतियां

इकाई की संरचना

16.0 प्रस्तावना

16.1 उद्देश्य

16.2 अनुप्रेक्षा का अर्थ

16.3 अनुप्रेक्षा का प्रयोजन

16.3.1 सत्य की सतत् स्मृति करना

16.3.2 शक्ति का उपयोग

16.3.3 वैचारिक पवित्रता

16.3.4 वृत्तियों से सुरक्षा

16.3.5 समस्या समाधान

16.3.6 लक्ष्य प्राप्ति

16.4 अनुप्रेक्षा का आध्यात्मिक आधार

16.4.1 सत्य के खोज की प्रक्रिया

16.4.2 मूर्च्छा निवारण की प्रक्रिया

16.4.3 स्वाध्याय की प्रक्रिया

16.4.4 ध्यान की योग्यता बढ़ाने की प्रक्रिया

16.5 अनुप्रेक्षा का वैज्ञानिक आधार

16.5.1 चिकित्सा पद्धति

16.5.2 सुझाव चिकित्सा

16.5.3 आस्था–चिकित्सा

16.6 अनुप्रेक्षा की निष्पत्तियां

16.6.1 चित्त शुद्धि

16.6.2 समाधि की उपलब्धि

16.6.3 समस्या–समाधान

16.6.4 संस्कार निर्माण

16.7 सारांश

16.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.0 प्रस्तावना

व्यक्ति के व्यक्तित्व का दर्पण होता है उसका व्यवहार। उनके व्यवहार के माध्यम से उसके व्यक्तित्व की पहचान होती है। व्यवहार में मधुरता, निश्छलता, मैत्री, करुणा जैसे आवश्यक गुणों का होना अच्छे व्यक्तित्व का परिचय होता है। गुण भीतर में होते हैं और प्रकटीकरण बाहर होता है। अतः आवश्यक है भीतर में गुणों का होना, मूल्यों का होना। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हमारे व्यवहार का नियामक होता है हमारा अचेतन मन। इसमें अच्छे तथा बुरे दोनों ही प्रकार के संस्कार व आदतें अवस्थित रहते है। साथ ही यह भी माना जाता है कि व्यक्ति अपनी इच्छानुसार अपने संस्कारों का निर्माण कर सकता है। जटिल आदतों के स्थान पर अच्छी आदतों को, मूल्यों को रोपा जा सकता है। मनोवैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति में ऐसे अनेक प्रयोग हुए हो जिनके माध्यम से अचेतन की जटिल समस्याओं का समाधान किया गया है। ध्यान–योग के सन्दर्भ में ऐसी ही अनेक समस्याओं का समाधान संभव है। ध्यान–योग में एक प्रयोग है अनुप्रेक्षा का। इसके माध्यम से संकल्प तथा सुझाव के द्वारा अचेतन को प्रशिक्षित किया जाता है तथा जटिल आदतों के स्थान पर अच्छी आदतों को रोपा जाता है। बार–बार अचेतन में इस प्रकार की सूचना एक स्थाई प्रभाव छोड़ती है और उससे व्यवहार प्रभावित होता है। वैज्ञानिक दृष्टि से एक ही उद्दीपन की पुनरावृत्ति से मस्तिष्कीय कोशिकाएँ तो प्रशिक्षित होती ही हैं, साथ ही नाड़ी ग्रंथि तंत्र को समुन्नत तथा संतुलित बनाया जा सकता है। अतः अनुप्रेक्षा में सुझावों अथवा भावना द्वारा रासायनिक परिवर्तन के माध्यम से मूल्यों का निर्माण कर व्यक्तित्व को विकसित किया जा सकता है–

16.1 उद्देश्य

इस इकाई के द्वारा निम्न उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है–

1. अनुप्रेक्षा का अर्थ जाना जा सकता है।
2. अनुप्रेक्षा के प्रयोजन को समझा जा सकता है।
3. अनुप्रेक्षा के आध्यात्मिक आधार को समझा जा सकता है।
4. अनुप्रेक्षा के वैज्ञानिक आधार को समझा जा सकता है।
5. अनुप्रेक्षा की निष्पत्तियों को समझा जा सकता है।

16.2 अनुप्रेक्षा का अर्थ

अनुप्रेक्षा शब्द दो शब्दों अनु+प्रेक्षा से मिलकर बना है। अनु का अर्थ है 'बाद में' तथा प्रेक्षा का अर्थ है 'गहराई से देखना', चिंतन करना। अतः अनुप्रेक्षा का अर्थ है ध्यान में जो सत्य खोजा, उसके परिणामों पर विचार करना। अर्थात् मन की मूर्च्छा को तोड़ने वाले विषयों पर अनुचिंतन करना अनुप्रेक्षा है। उदाहरणार्थ जब व्यक्ति ध्यान की अवस्था में अथवा शांत अवस्था में अपने भीतर चल रहे भावों का निरीक्षण करता है तो उसे उन भावों का ज्ञान होने लगता है जो बार–बार उठ रहे हों। इससे यह ज्ञात होता है कि व्यक्ति के भीतर में वास्तव में क्या समस्या है जो उसके व्यवहार को प्रभावित कर रही है। जब व्यक्ति को सत्य का ज्ञान हो जाता है तो वह समस्या के परिणामों पर विचार करता है। तत्पश्चात् समस्या को छोड़ने के लिए सकारात्मक भावों से स्वयं को भावित करता है। इससे व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन होने लगते हैं। अतः अनुप्रेक्षा व्यवहार परिवर्तन की प्रक्रिया है।

16.3 अनुप्रेक्षा का प्रयोजन

अनुप्रेक्षा के निम्न प्रयोजन हो–

16.3.1 सत्य की सतत् स्मृति करना

सत्य तो सत्य ही रहता है भले ही व्यक्ति उसे कितना ही नकारने की कोशिश करें। यही बात व्यवहार के सन्दर्भ में भी लागू होती है। व्यक्ति के भीतर न जाने क्या–क्या छिपा है, न जाने कितने ही संस्कार छिपे हो जिनसे उसका व्यवहार प्रभावित होता रहता है। विडम्बना यह है कि व्यक्ति उसे स्वीकार नहीं करता है। इसी का परिणाम है कि व्यक्ति अपनी समस्या की तह तक नहीं पहुंच पाता है और न ही उसका सही समाधान ढूंढ पाता है। अनुप्रेक्षा एक ऐसा प्रयोग है जिसके माध्यम से व्यक्ति सत्य की सतत् स्मृति कर सकता है। ध्यान की अवस्था में अपने भीतर झांककर अथवा जागरूक होकर अपने भीतरी वातावरण के प्रति सचेत रहकर अपने आपको पहचान सकता है। भले ही व्यक्ति दूसरे के व्यवहार का यथावत अध्ययन नहीं कर सकता है किन्तु अपने भीतरी वातावरण को वही समझ सकता है। अतः इससे यह स्पष्ट है कि व्यक्ति अपने भावों के प्रति अनजान नहीं रहता है। उसके भीतर के क्रोध, ईर्ष्या, लोभ, मैत्री, करुणा, अहिंसा आदि भावों से अनजान नहीं रहता है। भले ही वह उसे व्यक्त न करे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनुप्रेक्षा में व्यक्ति वास्तव में सत्य खोजता है और इसी सत्य के आधार पर आगे बढ़ता है। अतः व्यक्ति को सतत सत्य की स्मृति रहती है। सत्य को झुठलाकर सत्य को नहीं खोजा जा सकता है। सत्य का सहारा लेकर ही मूल तक पहुंचा जाता है। इसलिए अनुप्रेक्षा सतत सत्य की स्मृति कराने का प्रयोग है।

16.3.2 शक्ति का उपयोग

अनुप्रेक्षा में शक्ति का सही उपयोग किया जा सकता है। यों तो व्यक्ति निरर्थक चिंतन–मंथन में, कोरी कल्पनाओं में तथा निषेधात्मक भावों द्वारा न जाने कितनी ही शक्ति का व्यय करता है। यदि इस शक्ति को सकारात्मक तथा सार्थक कार्यों की ओर मोड़ दिया जाए तो इससे व्यक्ति के जीवन में सुखों का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। अतः अनुप्रेक्षा में व्यक्ति सकारात्मक भावों से स्वयं को भावित करता है जिससे शक्ति का सही उपयोग तो होता ही है, साथ ही मनोबल तथा दृढ़ इच्छा–शक्ति का विकास भी होने लगता है। निषेधात्मक भावों से घिरा व्यक्ति अपने जीवन में सुख का अनुभव नहीं कर सकता है। सुख ही मानव जीवन का प्रयोजन होता है। अतः अनुप्रेक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी शक्ति को सही दिशा देकर जीवन में सफलता का वरण कर सकता है। शक्ति के निरर्थक व्यय को रोककर उसका उचित उपयोग कर व्यक्ति कम समय तथा कम शक्ति में अधिकाधिक सुख एवं आनन्द का अनुभव कर सकता है।

16.3.3 वैचारिक पवित्रता

व्यवहार शुद्धि के लिए आवश्यक है वैचारिक पवित्रता इसके अभाव में व्यक्ति भले ही स्वयं को कितना ढ़कने की कोशिश करे पर सफल नहीं हो पाता है। अर्थात् विचारों की पवित्रता के द्वारा ही आत्मिक तथा व्यावहारिक शुद्धि बनी रहती है। भीतर की पवित्रता ही बाहर को पवित्र बनाती है। अतः अनुप्रेक्षा के द्वारा वैचारिक पवित्रता को प्राप्त किया जा सकता है।

16.3.4 वृत्तियों से सुरक्षा

व्यक्ति वृत्ति, प्रवृत्ति और पुनरावृत्ति के चक्र में ही घूमता रहता है। भीतर में पहले वृत्ति उत्पन्न होती है। तत्पश्चात् ही व्यक्ति उसे व्यवहार में उतारता है और फिर बार–बार उसकी पुनरावृत्ति होती रहती है। मस्तिष्क में विचार तरंग ही वृत्ति है। ये वृत्तियां मन–मस्तिष्क को स्थिर नहीं रहने देती हों। अर्थात् मानसिक एकाग्रता को भंग करती है। जिस प्रकार शांत पानी गें एक कंकर डाल देने रो उरागें कई तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं, ठीक उरी प्रकार रो गन गरितष्क गें भी कोई गाव, कोई विचार बार–बार उठता रहे तो वह मानसिक एकाग्रता में बाधक होता है। मानसिक एकाग्रता के अभाव में व्यक्ति शांत एवं स्थिर नहीं रह सकता है। यह अवस्था अन्ततः विक्षेप का रूप धारण कर लेती है। मन की अवस्था चंचल होती है। यह चंचलता सत्य की खोज में बाधक बनती है। इसी चंचलता से अनेक वृत्तियां उभरती हो जिससे शक्ति का व्यय तो होता ही है साथ ही व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त भी नहीं कर सकता है। अतः इन वृत्तियों पर अंकुश अथवा नियंत्रण के द्वारा कम किया जा सकता है। अनुप्रेक्षा का प्रयोग सत्य को खोजने का प्रयोग है। अतः इन बार–बार उठने वाली वृत्तियों पर अनुप्रेक्षा के द्वारा नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। साथ ही अचेतन को प्रशिक्षित कर भीतर में जमी हुई अथवा दबी हुई वृत्तियों का शमन किया जा सकता है और नई उठने वाली वृत्तियों को रोका जा सकता है। इस प्रकार अनुप्रेक्षा वृत्तियों से सुरक्षा करने का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

16.3.5 समस्या–समाधान

व्यक्ति के जीवन में न जाने कितनी ही समस्याएँ होती हो। यदि व्यक्ति इनका समाधान करना जानता है तो वह सुख का जीवन जी सकता है। कहा जाता है कि कोई भी परिस्थिति स्वतः में न तो अच्छी होती है और न ही बुरी। उसके दृष्टिकोण के कारण ही कोई परिस्थिति समस्या बनती है। फिर भी व्यक्ति के जीवन में समस्याओं से इन्कार भी नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए क्रोध समस्या है, लोभ समस्या है, भय समस्या है और न जाने इसी प्रकार की कितनी ही समस्याएँ हों। स्थूल समस्याओं के साथ–साथ सूक्ष्म समस्याएँ भी हों। समस्या के निमित्त कई हो सकते हो लेकिन उसका उपादान कारण भीतर में होता है। अतः मानसिक अथवा भावनात्मक समस्याओं का समाधान अनुप्रेक्षा के द्वारा सरलता से किया जा सकता है। आन्तरिक वातावरण को सुदृढ़ बनाए बिना बाह्य वातावरण को नियंत्रित नहीं किया जा सकता है। अर्थात् आन्तरिक वातावरण को सशक्त कर बाह्य परिस्थितियों अथवा समस्याओं को सुलझाया जा सकता है। अतः अनुप्रेक्षा के द्वारा व्यक्ति अपनी मानसिक एवं संवेगात्मक समस्याओं का समाधान कर सकता है। समस्या को दूर करने तथा समस्या के विपरीत भावना करने से अचेतन को प्रशिक्षित किया जा सकता है। इससे समस्याओं से छुटकारा पाया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

16.3.6 लक्ष्य प्राप्ति

सफल जीवन जीने के लिए जीवन में लक्ष्य का निर्माण आवश्यक माना जाता है। जब इच्छित लक्ष्य प्राप्त होता है तो सुख एवं सन्तोष की अनुभूति होती है साथ ही और आगे बढ़ने का प्रोत्साहन भी मिलता है। अनुप्रेक्षा का प्रयोग भी लक्ष्य प्राप्ति में सहायक बनता है। अनुप्रेक्षा के द्वारा बार–बार भावना कर लक्ष्य को अचेतन तक पहुंचाया जा सकता है। प्रयोग की निरन्तरता से अचेतन में भेजी गई भावना साकार रूप लेने लगती है और समय आने पर व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। लक्ष्य चाहे मूल्य निर्माण का हो अथवा समस्या–समाधान का अथवा आध्यात्मिक विकास का। अतः अनुप्रेक्षा के द्वारा व्यक्ति अपने लक्ष्य प्राप्ति के प्रयोजन को भी पूरा कर सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि अनुप्रेक्षा के एक नहीं अनेक प्रयोजन हो जिनके द्वारा व्यक्ति अपने जीवन को सुखी एवं आनन्दमय बना सकता है। कहा जाता है कि जैसी दृष्टि होती है वैसी ही सृष्टि भी होती है। अतः अनुप्रेक्षा में सकारात्मक भावों, सकारात्मक चिन्तन एवं कल्पनाओं के माध्यम से व्यक्ति का तादात्म्य भी उन्हीं के साथ होने लग जाता है और व्यक्ति वही बन जाता है जैसा वह चाहता है।

16.4 अनुप्रेक्षा का आध्यात्मिक दृष्टिकोण

अनुप्रेक्षा के आध्यात्मिक आधार को निम्न प्रकार समझा जा सकता है–

16.4.1 सत्य के खोज की प्रक्रिया

अनुप्रेक्षा सत्य के खोज की प्रक्रिया है। इसमें उस सत्य की खोज की जाती है। जो वास्तव में अचेतन की गहराइयों में दबा रहता है। सत्य व्यापक है। व्यक्ति उसका बिन्दु मात्र ही जानता है। कभी–कभी तो ऐसा भी होता है कि व्यक्ति अविद्या अथवा मिथ्या–दृष्टिकोण के कारण सत्य को भी नहीं जान पाता है। ऐसी स्थिति से आगे बढ़ने का मार्ग ही अवरुद्ध हो जाता है। अनुप्रेक्षा एक ऐसा प्रयोग है जिसमें व्यक्ति अपने भीतर की सच्चाई को जानने का प्रयास करता है। वह सच्चाई है उसके अनुभव के द्वारा प्राप्त हुई सच्चाई। अनुप्रेक्षा में सत्य के परिणाम पर ही विचार किया जाता है और एक सकारात्मक भावना से स्वतः को भावित किया जाता है। ध्यान की अवस्था में सत्य पर विचार करते–करते व्यक्ति उस बिन्दु पर पहुँच जाता है जहाँ समस्या का मूल छिपा हुआ है। केवल ऊपरी तौर पर बिन्दु को खोज लेना ही पर्याप्त नहीं होता है। उसके लिए आवश्यक है गहराई का अनुभव। अतः अनुप्रेक्षा के द्वारा सत्य को पकड़कर अचेतन की अतल गहराइयों को स्पर्श किया जा सकता है। वहीं से उद्घाटित होता है–सत्य। सत्य का साक्षात्कार असत्य का समाधान है, समस्याओं का समाधान है।

16.4.2 मूर्च्छा निवारण की प्रक्रिया

व्यक्ति अपने जीवन काल में मूर्च्छा से भी ग्रस्त होता है। मूर्च्छा मूर्खता से भी अधिक जटिल समस्या है। आचार्य महाप्रज्ञजी कहते हो मूर्खता तो ज्ञान का, समझ का अभाव है लेकिन मूर्च्छा जान–बूझकर गलती करना है। यह स्पष्ट भी है कि नासमझ को तो समझाया जा सकता है लेकिन जानबूझकर गलती करने वाले समझदार व्यक्ति को समझाना कठिन है। नासमझ तो मान भी जाएगा लेकिन जान–बूझकर गलती करने वाला इतनी आसानी से मान जाए, आवश्यक नहीं है। अतः मूर्खता से अधिक भयानक है मूर्च्छा। मूर्च्छा व्यक्ति को अपने पाश में बांधे रखती है तो व्यक्ति जानते हुए शुभ कर्म नहीं कर पाता है क्योंकि उसके संस्कार इतने परिपक्व हो जाते हों कि वह असहाय की तरह ही बना रहता है। इसका समाधान तब हो सकता है जब व्यक्ति अपने संस्कार परिवर्तन अथवा भाव शुद्धि पर विशेष ध्यान दे। अनुप्रेक्षा एक ऐसा प्रयोग है जो इस मूर्च्छा को तोड़ने का प्रयास करता है। भीतर में जो ग्रंथि विद्यमान है, उसे खोलने का प्रयास करता है। कहा भी गया है कि अनुप्रेक्षा मन की मूर्च्छा को तोड़ने वाले विषयों का अनुचिंतन है। भावनात्मक रूप से असंतुलित व्यक्ति न जाने कितनी ही ग्रथियों का शिकार हो जाता है। ये ग्रंथियां ही उसे मूर्च्छित कर देती हैं, बेहोश कर देती हों। ऐसी अवस्था में व्यक्ति इनके ही हाथों की कठपुतली बनकर रह जाता है। अतः अनुप्रेक्षा इन ग्रंथियों का विघटन करती है, मूर्च्छा को तोड़ती है और व्यक्ति को शांत एवं प्रसन्नचित्त जीवन जीने में मदद करती है।

16.4.3 स्वाध्याय की प्रक्रिया

अनुप्रेक्षा स्वाध्याय की प्रक्रिया है। इसमें एक ही भावना को बार–बार जपा जाता है। अनुचिंतन पर बार–बार विचार किया जाता है। अतः स्वाध्याय अर्थात् स्व का अध्ययन, अपने अच्छे–बुरे भावों का अवलोकन तथा नकारात्मक भावों को खत्म करने का प्रयास करना है। स्वाध्याय में व्यक्ति स्वयं का अवलोकन करता है। बिना स्व के अवलोकन के सच्चाई हाथ नहीं लगती है। स्व का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अवलोकन मानसिक एवं भावनात्मक समस्याओं के समाधान के लिए जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है आध्यात्मिक विकास के लिए। अतः उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए स्वाध्याय को नकारा ही नहीं जा सकता है। कई बार व्यक्ति को अपने बारे में जानकारी ही नहीं होती है। स्वाध्याय एक प्रक्रिया है भीतर झांकने की, स्वयं का अवलोकन करने की। अतः अनुप्रेक्षा इसमें सहायक बनती है, जिसमें व्यक्ति स्वाध्याय के द्वारा अपनी शक्तियों को बढ़ा सकता है तथा निषेधात्मक वृत्तियों से छुटकारा पा सकता है।

4.4 ध्यान की योग्यता बढ़ाने की प्रक्रिया

भावना का अभ्यास करते–करते व्यक्ति में ध्यान की योग्यता का विकास हो जाता है। अभ्यास से मानसिक एकाग्रता का विकास होता है। मानसिक एकाग्रता से व्यक्ति गूढ़ रहस्यों का ज्ञाता भी हो जाता है। अनुप्रेक्षा में भी ध्यान की योग्यता को बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार की भावनाओं का अभ्यास किया जाता है। वे भावनाएँ हो– ज्ञान भावना, दर्शन भावना, चरित्र भावना तथा वैराग्य भावना।

1. ज्ञान भावना में राग–द्वेष और मोह से शून्य होकर तटस्थ भाव से जानने का अभ्यास किया जाता है।
2. दर्शन भावना में राग–द्वेष और मोह से तटस्थ होकर देखने का अभ्यास किया जाता है।
3. चरित्र भावना में राग–द्वेष और मोह से शून्य होकर तटस्थ भाव से आचरण का अभ्यास किया जाता है।
4. वैराग्य भावना में अनासक्ति, अनाकांक्षा और अपव्यय का अभ्यास किया जाता है।

अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चरित्र और वैराग्य भावना के द्वारा व्यक्ति ध्यान में अपने आप को समाहित कर सकता है। इससे ध्यान करने की शक्ति का विकास हो सकेगा और आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति होगी। संस्कार कहीं चित्त में न रह जाएँ, ध्यान में होने वाले विविध अनुभवों में कहीं लगाव न हो जाए इसके लिए एकत्व, अनित्य, अशरण तथा संसार अनुप्रेक्षाओं का प्रयोग भी बताया गया है। ये अनुप्रेक्षाएँ व्यक्ति को सतत् सत्य का भान कराने में सहायक होंगी और ध्यान करने वाला बीच में न अटक कर आगे की यात्रा की ओर गति कर सकेगा।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि अनुप्रेक्षा आध्यात्मिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। इसके द्वारा संचित कर्म संस्कारों का विलय कर नए संस्कारों को रोपने में सहायता मिलती है। आधि, व्याधि और उपाधि को भावनात्मक प्रक्रिया से समाहित किया जा सकता है। ध्यान में एक–एक क्षण के प्रति जागरूक रहकर, प्रत्येक परिवर्तन का साक्षी रहकर ही भीतरी अनुभवों का ज्ञान होता है। अतः अनुप्रेक्षा आध्यात्मिक दृष्टि से कई सन्दर्भों में उपयोगी सिद्ध होती है।

16.5 अनुप्रेक्षा का वैज्ञानिक आधार

अनुप्रेक्षा के वैज्ञानिक आधार को निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

16.5.1 चिकित्सा पद्धति

अनेक इच्छाएँ ऐसी भी होती हैं जो पूरी नहीं हो पाती हों। उनका दमन करने पर वे अचेतन में पहुंचकर अनेक बार पुनः विकृत रूप में प्रकट होती हों जिससे व्यक्तित्व विघटित हो जाता है। ऐसा भी होता है कि जो इच्छाएँ अचेतन में दब जाती हो वे सपने के माध्यम से प्रकट होती हों। सपने में व्यक्ति उस इच्छा की पूर्ति कर लेता है। इस प्रकार अचेतन मन में दबी हुई इच्छा अथवा संस्कार व्यवहार को प्रभावित करते हों। अनेक मानसिक समस्याओं का कारण यहीं अचेतन में दबी इच्छाएँ ही हों। मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार यह माना जाता है कि बार–बार प्रकट होने वाले संवेग स्थाई बन जाते हो और वे चरित्र का हिस्सा बन जाते हों। अतः इससे व्यवहार भी प्रभावित होता है। अनुप्रेक्षा के द्वारा इन संवेगों को स्थाई रूप से खत्म किया जा सकता है।

16.5.2 सूझाव चिकित्सा

मनोविज्ञान के क्षेत्र में फ्राइड नामक मनोवैज्ञानिक ने सम्मोहन के माध्यम से इन मानसिक समस्याओं का समाधान ढूंढ निकाला। उन्होंने मानसिक रोगी को सम्मोहन की अवस्था में ले जाकर उसके अचेतन में सुझाव के द्वारा बीमारी को बाहर कर दिया। सम्मोहन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें रोगी को कृत्रिम निद्रा की अवस्था में ले जाया जाता है। तत्पश्चात् संबंधित बीमारी को अथवा समस्या को खत्म होने तथा स्वस्थ होने का सुझाव दिया जाता है। यह कार्य सम्मोहन करने वाला व्यक्ति करता है। सुझावों के द्वारा व्यक्ति को सम्मोहित किया जाता है। कृत्रिम निद्रा की अवस्था में अचेतन मन से सम्पर्क साधकर मनोचिकित्सक समस्याओं का समाधान करता है। अतः फ्राइड ने सुझावों के द्वारा अचेतन की समस्याओं का समाधान किया। युंग नामक मनोचिकित्सक ने स्वतः सुझाव चिकित्सा पद्धति के द्वारा मरीज को स्वस्थ करने की नई पद्धति स्थापित की जिसमें रोगी स्वयं अपने आप को सुझाव देता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनुप्रेक्षा का प्रयोग भी एक प्रकार का सुझाव अथवा स्वतः सुझाव पद्धति है। अनुप्रेक्षा के प्रयोग में बार–बार एक ही भावना के द्वारा अचेतन को प्रशिक्षित किया जाता है। अर्थात् ध्यान की अवस्था में बार–बार एक ही प्रकार की भावना करने से मन उससे भावित होने लगता है। उससे स्वभाव–परिवर्तन अथवा समस्या–समाधान में सहायता मिलती है। अनुप्रेक्षा में दूसरों से प्रयोग करवाया जाता है तथा व्यक्ति स्वयं भी प्रयोग करता है। चाहे दूसरा व्यक्ति प्रयोग करवाए अथवा व्यक्ति स्वयं प्रयोग करे लेकिन दोनों ही अवस्थाओं में सुझाव ग्रहण करने वाला व्यक्ति ही भावना के प्रति जागरूक रहता है। अर्थात् वह उसे ग्रहण करता है। यदि वह भावना अथवा सुझाव को ग्रहण न करे तो सुझाव देने का औचित्य नहीं रह जाता है। जब तक व्यक्ति सुझाव को मनोयोग से ग्रहण नहीं करता तब तक भले ही कई प्रयास किये जाएँ, सफलता नहीं मिल सकती है। ध्यान–योग के प्रयोग कोई जादू या चमत्कार के प्रयोग नहीं हो जो बिना प्रयास के ही परिणाम दिखा दें। उसके लिए व्यक्ति को आस्था पूर्वक ग्रहण करना होता है और अभ्यास आवश्यक होता है। अतः अनुप्रेक्षा का प्रयोग सुझाव अथवा स्वतः सुझाव चिकित्सा का उपयोगी प्रयोग है। व्यक्ति सकारात्मक भावों से स्वयं को बार–बार सुझाव देकर स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त बन सकता है। व्यवहार में यह देखा जाता है कि जिस कार्य को व्यक्ति दोहराता रहता है वह आदत का हिस्सा बन जाता है। हमारी प्रत्येक कोशिका जीवित इकाई है। अतः इसे जैसा आदेश दिया जाता है अथवा जैसा कार्य करवाया जाता है, वह वैसा ही अनुकरण करती है। अतः वैज्ञानिक दृष्टि से भी सुझाव चिकित्सा से उन कोशिकाओं को प्रशिक्षित किया जा सकता है जो हमारे व्यवहार के लिए उत्तरदायी हों। अतः अनुप्रेक्षा का प्रयोग वैज्ञानिक अथवा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सकारात्मक परिवर्तन के लिए उपयोगी प्रयोग है।

16.5.3 आस्था चिकित्सा

सुझाव चिकित्सा के अतिरिक्त आस्था चिकित्सा का प्रयोग भी प्रचलित रहा है। भारत ही नहीं वरन् पाश्चात्य देशों में भी यह प्रयोग प्रचलन में रहा है। इस प्रयोग में व्यक्ति की आस्था ही सबसे महत्त्वपूर्ण है। जब व्यक्ति में इस आस्था का निर्माण हो जाता है कि बीमारियां मात्र एक संयोग है और जो संयोग होता है उसका निश्चित वियोग होता है। तब वह बाहरी साधनों का सहारा हलए बिना रोग और दुःख से मुक्त हो जाता है। उसके दुःख का संवेदन समाप्त हो जाता है। यह 'आस्था द्वारा रोग चिकित्सा' स्वयं सूचना या आत्म–सम्मोहन के द्वारा भावना का पुष्टीकरण है। व्यक्ति यदि सुझाव के द्वारा स्वयं को भावित करे तो परिवर्तन होने से आस्था भी घनीभूत होने लगती है। अतः चिकित्सा पद्धति भले ही कोई भी हो, व्यक्ति दृढ़ इच्छा–शक्ति से उसका प्रयोग करे तो सफलता मिलेगी ही। इन सबमें मुख्यतया एक ही बात स्पष्ट होती है कि व्यक्ति की भावना ही उसे स्वस्थ बनाती है। भावना केवल कुछ सोचना मात्र ही नहीं है वरन् कोशिकाओं को अपने वश में करना है। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है कि कोशिकाएँ सुझाव के अनुसार अनुकरण करती हों। अतः भावना के द्वारा न्यूरोन्स (मस्तिष्क कोशिकाएँ) को प्रशिक्षित कर मनचाहा कार्य करवाया जा सकता है। मस्तिष्कीय धुलाई के लिए भावना का प्रयोग वास्तव में उपयोगी है। इससे पुराने संस्कार छूटकर नए संस्कारों का संचय होता है। बार–बार एक प्रकार की भावना से ध्वनि प्रकंपनों को पैदा किया जा सकता है। ये ध्वनि प्रकंपन ब्रह्मांड में अपनी जैसी ध्वनि तरंगों से मिलकर अधिक शक्ति के साथ वापस आती हों। अतः प्रयोग करने वाले व्यक्ति पर इसका प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुप्रेक्षा केवल ध्यान करना ही नहीं, केवल शारीरिक दृष्टि से निष्क्रिय रहना ही नहीं है वरन् सुझावों के द्वारा भीतर को बदलने की प्रक्रिया है। प्रत्येक संबंधित कोशिका को प्रशिक्षित करने की प्रक्रिया है। हमारे सारे क्रियाकलापों को संपादित करने वाला महत्त्वपूर्ण उपकरण है मस्तिष्क। मस्तिष्क में सकारात्मक सुझावों से मनचाहा परिवर्तन लाया जा सकता है। एक ही उद्दीपन बार–बार मिलने से शरीर में रासायनिक परिवर्तन होने लगता है। अतः अच्छे सुझावों द्वारा भीतरी स्रावों को प्रभावित किया जा सकता है। स्राव के अनुसार भाव और भाव के अनुसार स्राव बनते हों। यदि अच्छे भाव अथवा सकारात्मक सुझाव का प्रयोग किया जाए तो तत्संबंधी सुखों को पैदा किया जा सकता है और प्रयोग की निरन्तरता से यह परिवर्तन स्थाई हो सकता है।

16.6 अनुप्रेक्षा की निष्पत्तियाँ

अनुप्रेक्षा की निम्न निष्पत्तियां हो–

16.6.1 चित्त शुद्धि

अनुप्रेक्षा का प्रयोग चित्त शुद्धि का प्रयोग है। इस प्रयोग के करने से चित्त में किसी भी प्रकार की मूर्च्छा नहीं जगती है अथवा किसी भी प्रकार का मैल नहीं जमता है। प्रेक्षाध्यान का मूल हार्द चित्त शुद्धि अथवा भाव शुद्धि है। अनुप्रेक्षा प्रेक्षाध्यान का ही एक प्रयोग है। अतः यह भी चित्त–शुद्धि में सहायक बनता है। चित्त अशुद्ध तब होता है जब उसमें विकार जमते हों। विकार तब जमते हो जब भाव अशुद्ध होते हों। भाव की अशुद्धि पूरे व्यवहार को, पूरे व्यक्तित्व को विघटित कर देती है। व्यवहार का मूल भाव ही है। भाव शुद्धि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के अभाव में न तो समस्याओं का समाधान हो पाता है और न ही आध्यात्मिक विकास हो पाता है। अतः चित्त को विकार रहित बनाकर व्यक्तित्व का विकास किया जा सकता है। अनुप्रेक्षा में अनेक भावनाएँ हो जो चित्त को निर्मल बनाने में सहायक हैं, साथ ही व्यक्ति अपनी समस्या के विपरीत भावना के द्वारा स्वयं को विकार रहित बना सकता है। क्रूरता की भावना होने पर करुणा की भावना का विकास करना और आसक्ति होने पर अनासक्ति की भावना करना तथा अनित्य, अशरण आदि भावनाओं से खुद को भावित करके चित्त को शुद्ध बनाया जा सकता है, निर्मल बनाया जा सकता है। अतः अनुप्रेक्षा के प्रयोगों से चित्त शुद्धि का लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

16.6.2 समाधि की उपलब्धि

आध्यात्मिक जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलबिध है– समाधि की प्राप्ति। इस उपलब्धि के मिलने पर और उपलब्धियां गौण हो जाती हों। अनेक विशेषताओं तथा उपलब्धियों से सम्पन्न व्यक्ति भी दीन, हीन, दुःखी तथा असहाय देखे जा सकते हों। मानसिक रूप से कई समस्याओं से ग्रसित देखे जा सकते हो लेकिन समाधि सम्पन्न व्यक्ति जीवन में प्रसन्नचित्त तथा आनन्द सम्पन्न रहता है। समाधि सम्पन्न व्यक्ति शरीर एवं मन से भी स्वस्थ रहता है। उसे कोई समस्या सताती ही नहीं है क्योंकि उसके भीतर इनकी चाह ही नहीं रहती है। जिस व्यक्ति के मन में इच्छाएँ हैं, चाह हैं, वह व्यक्ति उन्हीं के लिए प्रयास करता है। जिसमें चाह ही नहीं है, उसका प्रयास उस ओर नहीं होता है। जैसे क्रोधी व्यक्ति यदि न चाहे कि वह क्रोध करे तो वह क्रोधी नहीं हो सकता है, चोर न चाहे चोर बनना तो वह चोर नहीं बन सकता है। इसी प्रकार जितने भी निषेधात्मक भाव हैं, व्यवहार हैं, इन्हें बाहर निकालने के लिए व्यक्ति की इच्छा हो, चाह हो तो वह आसानी से निकाल सकता है। इसी प्रकार समाधि की चाह रखने वाला व्यक्ति अनुप्रेक्षा के माध्यम से अनेक समस्याओं का समाधान पा सकता है।

16.6.3 समस्या–समाधान

जीवन में एक नहीं अनेक समस्याएँ हों। व्यक्ति इन्हें दूर करने का यथा संभव प्रयास करता है। कुछ समस्याएँ इतनी जटिल होती हो कि व्यक्ति उन्हें छोड़ ही नहीं पाता है। अनुप्रेक्षा के प्रयोगों से व्यक्ति उन जटिल आदतों को छोड़ने में सफल हो जाता है जो उसके दुःख का कारण हैं, समस्या का कारण हों। क्रोध न करना एक बात है और न चाहते हुए क्रोध करना दूसरी बात है। लोभ की चाह न रखना भिन्न बात है और लोभ को चाहते हुए न छोड़ पाना भिन्न बात है। अनुप्रेक्षा के द्वारा उस समस्या का समाधान भी संभव है जिसे व्यक्ति चाहकर भी नहीं छोड़ पाता है। अर्थात् उन कार्यों को करने के लिए वह विवश होता है जिन्हें वह नहीं करना चाहता है। जैसे व्यक्ति नशे को चाहकर भी नहीं छोड़ पाता है। इसका यही कारण है कि नशा शारीरिक और मानसिक आवश्यकता बन जाता है। शरीर के तंत्र उस नशे पर ही अधीन हो जाते हों। अर्थात् नशे की पूर्ति न होने पर शरीर, मन बेचैन होने लगता है। वह बेचैनी तभी शांत होती है जब नशे की पूर्ति हो जाए। इसी प्रकार व्यक्ति के जीवन में न जाने कितनी ही जटिल आदतें हो जो व्यक्ति को नचाती रहती हो और व्यक्ति नाचता रहता है। अनुप्रेक्षा इन जटिल समस्याओं का समाधान करने में मददगार बनती है।

बार–बार भावना अथवा सुझावों द्वारा अचेतन को प्रशिक्षित कर उन न्यूरोन्स को प्रशिक्षित कर जो जटिल आदतों को बदलने के लिए जिम्मेदार हैं, समस्या का समाधान किया जा सकता है। कहा जाता है कि भावना के अनुरूप ही शरीर में रासायनिक परिवर्तन होने लगते हों। वैज्ञानिक दृष्टि से बार–बार एक ही उद्दीपन मिलने पर नाड़ी–तंत्र और ग्रंथि–तंत्र प्रभावित होते हों। मुख्यतया ग्रंथितंत्र के स्राव (हार्मोन) स्रावित होते हों। बार–बार क्रोध का उद्दीपन मिलने पर उसी के अनुरूप हार्मोन स्रावित होते हो और तत्संबंधी ग्रंथि पर निरन्तर इस प्रकार के उद्दीपन का प्रभाव पड़ने पर वह असंतुलित हो जाती है। तब व्यक्ति की स्थिति यह बन जाती है कि थोड़ी–सी भी प्रतिकूल परिस्थिति होने पर व्यक्ति क्रोधी हो जाता है। इसके विपरीत सकारात्मक उद्दीपन के द्वारा मस्तिष्कीय तरंगों को संतुलित कर ग्रंथि–तंत्र तथा नाड़ी–तंत्र को भी संतुलित रखा जा सकता है। व्यवहार को प्रभावित करने में इनकी सक्रिय भूमिका होती है। अतः अनुप्रेक्षा के प्रयोग से व्यक्ति अपनी जटिल आदतों, जटिल समस्याओं का स्थाई समाधान पा सकता है।

16.6.4 संस्कार निर्माण

अनुप्रेक्षा के प्रयोग से व्यक्ति अपने एवं दूसरों के भीतर शुभ संस्कारों का निर्माण कर सकता है। संस्कार गहराई में छिपे प्रभावों को कहा जाता है। अर्थात् जो प्रभाव पुष्ट हो जाता है, वह संस्कार का रूप धारण कर लेता है। अनुप्रेक्षा गहराई में जाकर उस संस्कार को तोड़ने की प्रक्रिया है जो व्यक्ति को निषेधात्मक रूप से प्रभावित करती है। अनुप्रेक्षा के द्वारा प्रामाणिकता, मैत्री, करुणा, त्याग, परोपकार आदि मूल्यों को रोपित कर उन संस्कारों को पुष्ट किया जा सकता है। संस्कार पुष्ट हो जाने से ही व्यवहार को प्रभावित करते हों। अतः अनुप्रेक्षा में संस्कार निर्माण की सामर्थ्य भी है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.7 सारांश

व्यक्ति के व्यवहार का दर्पण उसका व्यवहार होता है। जिस व्यवहार में जितनी मधुरता, सरलता, मैत्री, करुणा आदि भाव प्रकट होते हैं, वह व्यवहार उतना ही अधिक प्रभावकारी होता है। अतः व्यवहार का परिष्कार आवश्यक समझा जाता है। व्यवहार में मूल्यों को प्रतिष्ठित करने के लिए जीवन विज्ञान की शिक्षा प्रयासरत है। इसी प्रयास में अनुप्रेक्षाओं का भी विशेष महत्त्व है। अनुप्रेक्षा में सुझावों के माध्यम से स्वयं को भावित कर मूल्यों को प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

अनुप्रेक्षा का अर्थ है ध्यान में जो सत्य देखा, उसके परिणामों पर विचार करना। अनुप्रेक्षा के अनेक प्रयोजन हो– सत्य की सतत स्मृति, सत्य का उपयोग, वैचारिक पवित्रता, वैचारिक शुद्धता, वृत्तियों से सुरक्षा, समस्या–समाधान एवं लक्ष्य–प्राप्ति आदि। अनुप्रेक्षा सुझाव चिकित्सा है। इसके द्वारा अचेतन को परिष्कृत किया जा सकता है, साथ ही कोशिकाओं को प्रशिक्षित किया जा सकता है। उन केन्द्रों को प्रशिक्षित किया जा सकता है, जो व्यवहार परिवर्तन हेतु जिम्मेदार हों। अनुप्रेक्षा सत्य के खोज की, मूर्च्छा निवारण की, ध्यान की योग्यता बढ़ाने आदि की प्रक्रिया है। चित्त शुद्धि, समाधि की उपलब्धि, समस्या– समाधान, संस्कार–निर्माण आदि अनुप्रेक्षा की निम्न निषपत्तियाँ हैं।

16.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. स्वाध्याय की प्रक्रिया क्या है?
2. समाधि की प्राप्ति किसकी उपलबिध है?
3. स्वावलंबन का क्या अर्थ है?
4. सुखी एवं सफल जीवन के लिए क्या आवश्यक है?
5. संस्कार क्या है?
6. अनुप्रेक्षा का क्या अर्थ है?
7. व्यवहार शुद्धि के लिए क्या आवश्यक है?
8. सम्मोहन क्या है?
9. मस्तिष्कीय धुलाई के लिए क्या आवश्यक है?
10. हमारे सारे क्रिया कलापों को संपादित करने वाला उपकरण कया है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अनुप्रेक्षा का प्रयोजन बताइए।
2. अनुप्रेक्षा की निषपत्तियां बताइए।

निबंधात्मक प्रश्न

1. अनुप्रेक्षा का वैज्ञानिक और आध्यात्मिक आधार स्पष्ट कीजिए।

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अमूर्त्त चिन्तन – आचार्य महाप्रज्ञ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–5 जीवन विज्ञान – मूल्यपरक शिक्षा

इकाई–17 अनुप्रेक्षा द्वारा नैतिक मूल्यों का विकास : प्रामाणिकता, करुणा, आत्मानुशासन, आत्म संयम, अहिंसा, सत्य एवं अपरिग्रह

इकाई की संरचना

17.0 प्रस्तावना

17.1 उद्देश्य

17.2 प्रामाणिकता

17.2.1 प्रामाणिकता का स्वरूप
17.2.2 प्रामाणिकता के प्रकार
17.2.3 प्रामाणिकता का महत्त्व
17.2.4 प्रामाणिकता की अनुप्रेक्षा

17.3 करुणा

17.3.1 करुणा का स्वरूप
17.3.2 करुणा का अधिकारी
17.3.3 करुणा का महत्त्व
17.3.4 नैतिकता का आधार करुणा
17.3.5 करुणा की अनुप्रेक्षा

17.4 आत्मानुशासन

17.4.1 आत्मानुशासन का स्वरूप
17.4.2 आत्मानुशासी कौन हो सकता है?
17.4.3 स्वतंत्रता और आत्मानुशासन
17.4.4 आत्मानुशासन का महत्त्व
17.4.6 आत्मानुशासन की अनुप्रेक्षा

17.5 आत्म–संयम

17.5.1 आत्म–संयम का स्वरूप
17.5.2 संयमी कौन?
17.5.3 आत्म–संयम का महत्त्व
17.5.4 शक्ति की अनुप्रेक्षा

17.6 अहिंसा

17.6.1 अहिंसा का स्वरूप
17.6.2 अहिंसक कौन?
17.6.3 अहिंसा का महत्त्व
17.6.4 अहिंसा की अनुप्रेक्षा

17.7 सत्य

17.7.1 सत्य का स्वरूप
17.7.2 सत्य का महत्त्व
17.7.3 सत्य की अनुप्रेक्षा

17.8 अपरिग्रह

17.8.1 अपरिग्रह का स्वरूप
17.8.2 अपरिग्रही कौन?
17.8.3 अपरिग्रह का महत्त्व
17.8.4 अपरिग्रह की अनुप्रेक्षा

17.9 सारांश

17.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

17.11 संदर्भ ग्रन्थ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

17.0 प्रस्तावना

मूल्यों का मानवीय जीवन में अत्यन्त महत्त्व है। मूल्य एक न होकर अनेक होते हैं जैसे नैतिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, मानसिक मूल्य, वैयक्तिक मूल्य आदि। किंतु ये सभी प्रकार के मूल्य निजी पहचान बनाए रखते हुए भी, एक दूसरे से परिपूरित होते रहते हैं। मूल्यों के बारे में कुछ चिंतक यह सोचते हैं कि मानो वे एक–दूसरे से पूर्णतः स्वतंत्र हों। लेकिन मूल्यों की तथाकथित स्वतंत्रता निरपेक्ष न होकर सापेक्ष है। मूल्यों की स्वतंत्र पहचान का अर्थ यह नही है कि मूल्य परस्पर असंबंधित होते हैं। उदाहरण के लिए 'सुन्दर' निःसंदेह 'शुभ' और 'सत्य' से भिन्न है लेकिन इन तीनों के बीच संबंध न केवल स्वाभाविक है, वरन् आवश्यक भी है। वे एक दूसरे को प्रभावित कर, एक दूसरे में प्रवेश तक भी कर जाते हैं। कभी–कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानों वे एक ही मूल्य के तीन आयाम हों। अतः आवश्यकता है हम जीवन एवं मूल्यों की जटिलता को जानते हुए भी उसकी मूल्यगत एकता को भी स्वीकार करें। यदि कोई व्यक्ति अपने जीवन में एक से अधिक मूल्यों को चरितार्थ करता है तो उसका जीवन नैतिकता से परिपूर्ण होगा। मूल्यों की यह बहुविध दृष्टि जो किसी भी व्यक्ति के समग्र जीवन को अधिक संपन्न बनाती है तभी मूल्यवान् मानी जा सकती है।

मूल्य सामाजिक संबंधों को संतुलित करने तथा सामाजिक व्यवहारों में एकरूपता उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध होते हैं। मूल्य समाज के सदस्यों की आंतरिक भावनाओं पर आधारित होते हैं। इस कारण ये मूल्य सामाजिक जीवन को वह मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं जो कि समाज व्यवस्था व संगठन के लिए आवश्यक होता है। कुछ मूल्य शाश्वत हैं, कुछ युग और काल सापेक्ष हैं तथा अपने आप में परिवर्तनशील हैं। नैतिक मूल्य तीन प्रकार के हैं– व्यक्तिनिष्ठ, समाजनिष्ठ तथा राष्ट्रनिष्ठ। व्यक्तिनिष्ठ नैतिक मूल्य मानवता के उदात्त गुणों के प्रतीक हैं। तप, अहिंसा, सदाचार, क्षमा, धृति, करुणा, प्रामाणिकता, आत्मानुशासन, जितेन्द्रियता आदि युग और काल निरपेक्ष शाश्वत नैतिक मूल्य हैं, जिनके अनुपालन से उत्तम व्यक्तित्व, स्वस्थ समाज एवं अच्छे राष्ट्र का निर्माण संभव है। राष्ट्रनिष्ठ नैतिक मूल्य समस्त देश, काल के शासकवर्ग पर लागू होते हैं। वर्जनाओं एवं प्रायश्चित्तों का विधान मानव को सुधार के अवसर प्रदान करने के लिए है।

आधुनिक परिवेश में व्यक्तिनिष्ठ नैतिक मूल्य और भी महत्त्वपूर्ण हो उठे हैं। वे आज मानवता के लिए ग्राह्य और अनुसरणीय हैं। उत्तम मानव का निर्माण और मानवता की सुरक्षा प्रत्येक युग और प्रत्येक काल के लिए समान रूप से आवश्यक है। अतः इन नैतिक मूल्यों का महत्त्व आधुनिक परिवेश में भी दिखायी पड़ता है और मानवता का वास्तविक रूप इन नैतिक मूल्यों के अनुपालन में ही अधिक दिव्य बनकर आलोक प्रदान कर सकेगा।

17.1 उद्देश्य

1. प्रामाणिकता के स्वरूप को समझ सकेंगे।
2. प्रामाणिकता के महत्त्व और प्रकार को जान सकेंगे।
3. करुणा का अधिकारी कौन हो सकता है, को समझ सकेंगे।
4. स्वतंत्रता और आत्मानुशासन के बारे में जान सकेंगे।
5. आत्म संयम क्या है और इसके विकास की प्रविधि को जानना।
6. अहिंसा के स्वरूप एवं महत्त्व की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
7. सत्य एवं अपरिग्रह की अनुपालना के क्या फलित होते हैं।
8. विभिन्न प्रकार के नैतिक मूल्यों के विकास हेतु सम्बन्धित अनुप्रेक्षा की प्रायोगिक प्रविधि का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

17.2 प्रामाणिकता

प्रामाणिकता का अर्थ है अपने प्रति सच्चा रहना। जो दूसरों का बुरा करने में अपना बुरा देखता है वह बुराई से बच सकता है, पर–निरपेक्ष दृष्टि से प्रामाणिक रह सकता है। जिसकी सच्चाई का आधार व्यवहार की पृष्ठभूमि होता है वह सच्चा तब रहता है, जब कोई दूसरा देखता है। अकेले में और अंधेरे में जो सच्चाई प्राप्त होती है वह अपने पर ही आधारित हो सकती है। जो अपने प्रति प्रामाणिक नहीं होता वह समाज एवं राष्ट्र के प्रति कभी भी प्रामाणिक नहीं हो सकता। यद्यपि प्रामाणिकता का बीज हर मनुष्य में छिपा रहता है। कुछ मनुष्यों में निमित्त पाकर वह अंकुरित हो जाता है और कुछ व्यक्तियों में आन्तरिक प्रेरणा से प्रामाणिकता का भाव अंकुरित हो जाता है। जिसमें प्रामाणिकता की भावना स्वतः जागृत होती है वह परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होता।

17.2.1 प्रामाणिकता का स्वरूप

नैतिकता का एक अर्थ है– प्रामाणिकता। प्रामाणिकता का अर्थ है– अधिकृत का ग्रहण और अनधिकृत का प्रत्याख्यान। प्रामाणिकता का अर्थ है– किसी को धोखा नहीं देना। प्रामाणिकता एक ऐसा तत्त्व है जो अर्थनीति, राजनीति और धर्मनीति, तीनों को मान्य है। अर्थशास्त्र

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

में प्रामाणिकता का उद्देश्य है– व्यवसाय का विकास। व्यापारी यदि प्रामाणिकता रखता है तो ग्राहकों में उसका विश्वास जम जाता है। व्यवसाय जगत् में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ जाती है। राजनीति की प्रामाणिकता जनता और नेताओं के बीच पनपने वाली विश्वासघात की प्रवृत्ति पर नियंत्रण स्थापित करती है। परिणामस्वरूप उनके पारस्परिक संबंध मधुर रहते हो। प्रजा सुखी एवं सरकार नि श्चत रहती है।

धर्मशास्त्रीय प्रामाणिकता आत्म–विकास के मार्ग को प्रशस्त करती है। प्रामाणिकता से व्यक्ति को भीतर में आत्म–संतोष का अनुभव होता है। आत्मा की विशुद्धि होती है। व्यवहार में भी उसकी साख बढ़ती है।

17.2.2 प्रामाणिकता के प्रकार

प्रामाणिकता तीन प्रकार की होती है– वचन की प्रामाणिकता, अर्थ की प्रामाणिकता और व्यवहार की प्रामाणिकता।

17.2.2.1 वचन की प्रामाणिकता– वचन की प्रामाणिकता भारतीय संस्कृति का प्राण रहा है। प्राण जाये पर प्रण न जाये, यह हमारी संस्कृति का आदर्श रहा है। राजा दशरथ ने केवल रानी कैकेयी को दिए हुए वचन की रक्षा के लिए अपने प्रिय पुत्र राम को भी चौदह वर्षों के लिए वनवास भेज दिया। प्राचीन काल में जो बात मुंह से निकल गयी वह लौहे की लकीर होती थी।

17.2.2.2 आर्थिक प्रामाणिकता– प्राचीन काल में अर्थ के क्षेत्र में भी प्रामाणिकता का उच्च स्तर पर विकास था। जो व्यक्ति अर्थ के मामले में पवित्र होता था वही वास्तव में पवित्र माना जाता था। इसके लिए परिभाषा प्राप्त होती है– अर्थशुचिः शुचिः। प्रामाणिकता की दृष्टि से भारतीय इतिहास में उल्लेख मिलता है– आचार्य नरेन्द्रदेव का। आचार्य नरेन्द्रदेव बहुत बड़े विद्वान और राजनीतिज्ञ भी थे। जब वे वायस चांसलर बने तो एक बार तांगे में जा रहे थे। ऐसा देख कर लोगों ने उनसे पूछा– आपके पास तो कार है, फिर आप तांगे में कैसे जा रहे हो?

नरेन्द्रदेव ने कहा कि कार विश्वविद्यालय की है। अभी मो अपने व्यक्तिगत कार्य के लिए जा रहा हूं, इसलिए मो कार का प्रयोग कैसे कर सकता हूं? यह है आर्थिक प्रामाणिकता का उदाहरण।

17.2.2.3 व्यवहार की प्रामाणिकता– व्यवहार की प्रामाणिकता एक–दूसरे के प्रति विश्वास की भावना को उत्पन्न करती है। व्यवहार की प्रामाणिकता से ही पारिवारिक रिश्तों में मधुरता आ सकती है। हर व्यक्ति प्रामाणिकता से व्यवहार करने वालों से व्यवहार करना पसंद करता है लेकिन प्रामाणिक व्यक्ति को प्रारंभ में ही कठिन इयां उठानी पड़ती है क्योंकि सभी अपने आप को प्रामाणिक ही बताते है, पर जब व्यवहार में इसकी परीक्षा होने लगती है तभी सच्ची प्रामाणिकता का पता चलता है। यद्यपि परीक्षा के दौरान व्यक्ति को कठिनाइयां भुगतनी पड़ती हैं पर जब वह परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है तो उसकी शाख बन जाती है। उस व्यक्ति पर लोग विश्वास करने लग जाते हैं। इस प्रकार प्रामाणिक व्यवहार से व्यक्ति लोकप्रिय बन जाता है।

17.2.3 प्रामाणिकता का महत्त्व

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने कहा है– "आप्त वह है जो राग–द्वेष से ग्रस्त नहीं है। आप्त वह है जो प्रामाणिक है। दुनिया में सबसे बड़ी चीज होती है प्रामाणिकता।"

स्वामी विवेकानन्द जब अमेरिका गए तब किसी व्यक्ति ने उनसे प्रश्न किया कि महात्मा गांधी की क्या विशेषता है?
विवेकानन्द ने समाधान देते हुए कहा– महात्मा गांधी में तीन विशेषताएं है, जिनके कारण वे जन–जन के प्रिय हैं। वे विशेषताएं निम्न हैं–
1. प्रामाणिकता 2. सत्याग्रह 3. सादगी।

उपर्युक्त तीनों विशेषताओं में प्रथम है प्रामाणिकता। प्रत्येक व्यक्ति, समाज या देश के चरित्र की ऊंचाई का मूल्यांकन उसकी प्रामाणिकता से होता है। प्रामाणिकता में समाज कल्याण के साथ–साथ स्व–कल्याण भी सन्निहित है। जैसे सैनिक देश की रक्षा के लिए प्राणों की परवाह न करके भी अपने कर्त्तव्य का पालन करता है, वैसे ही इंसान की इंसानियत इसी में है कि वह प्राण की बाजी लगाकर के भी प्रामाणिकता को सुरक्षित रखें।

जॉर्ज वाशिंगटन ने कहा, "मैं उम्मीद करता हूं कि मुझमें हमेशा इतनी दृढ़ता और गुण हैं कि मैं एक ईमानदार आदमी के रूप में जाना जा सकूं, जो मेरे लिए दुनिया के किसी भी महत्त्वपूर्ण ओहदे से बढ़कर है।"

17.2.4 प्रामाणिकता की अनुप्रेक्षा

प्रामाणिकता की अनुप्रेक्षा के द्वारा हम अपने जीवन में प्रामागिकता का विकास कर सकते हैं। प्रामाणिकता एक ऐसा जीवन मूल्य है जो हमें सदैव सत्यवादी रहने की प्रेरणा देता है। प्रामाणिकता की अनुप्रेक्षा की प्रायोगिक प्रविधि इस प्रकार है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. महाप्राण ध्वनि 2 मिनिट

2. कायोत्सर्ग 5 मिनिट

3. सफेद रंग का श्वास लें, अनुभव करें– श्वास के साथ सफेद रंग के परमाणु भीतर प्रवेश कर रहे हैं। 3 मिनिट

4. ज्योतिकेन्द्र पर सफेद रंग का ध्यान करें। 3 मिनिट

5. ज्योतिकेन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें– 'मेरी संकल्प शक्ति का विकास हो रहा है। प्रामाणिकता का भाव पुष्ट हो रहा है।' इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें। फिर इसका नौ बार मानसिक जप करें। 5 मिनिट

अनुचिंतन करें–

अप्रामाणिकता एक असाधारण आवेग है। यह बहुत बड़ी बुराई है। जो भावना से अपरिपक्व होता है वही अप्रामाणिक व्यवहार करता है। मैं अप्रामाणिकता की वृत्ति पर विजय पा सकता हूं। जिस क्षण अप्रामाणिक व्यवहार करने की बात मन में आएगी, उसी समय बदल दूंगा। मैं अपने आप को भावित करता रहूंगा। कोई भी परिस्थिति मुझे अप्रामाणिक नही बना सकती। मैं अपने विवेक को काम में लूंगा। आवेगों के आधार पर काम नहीं करूंगा। मेरा दृढ़ न्श्चिय है कि मैं निरन्तर प्रामाणिकता का विकास करूंगा। 10 मिनिट

6. महाप्राण ध्वनि के साथ ध्यान संपन्न करें। 2 मिनिट

17.3 करुणा

करुणा मानवीय संवेदना का मूर्त रूप है। करुणा के अभाव में व्यक्ति सामाजिक नहीं बन सकता। करुणा एक ऐसा जीवन मूल्य है जो कि व्यक्ति को सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और नैतिक आधार प्रदान करता है। अहिंसक व्यक्ति ही करुणाशील हो सकता है। अहिंसा और करुणा अन्योन्याश्रित है अर्थात् करुणा के बिना अहिंसा नहीं सध सकती और अहिंसा के बिना करुणा फलिभूत नहीं हो सकती। जब जीवन में अहिंसा चरितार्थ होती है तभी विश्वमैत्री का भाव पुष्ट होता है और उसकी निष्पत्ति करुणा के रूप में साकार हो जाती है।

17.3.1 करुणा का स्वरूप

सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ के अनुसार– 'दीनानुग्रहभावः कारुण्यम्' अर्थात् दीनों पर दयाभाव रखना कारुण्य है। भगवती आराधना विजयोदयाटीका में करुणा को परिभाषित करते हुए कहा गया है– शारीरिक, मानसिक और स्वाभाविक ऐसी असह्य दुःखराशि प्राणियों को सता रही है, यह देखकर अहो इन दीन प्राणियों ने मिथ्यादर्शन, अविरति, कषाय और अशुभ योग से जो उत्पन्न किया था; वह कर्म उदय में आकर इन जीवों को दुःख दे रहा है। ये कर्मवश होकर दुःख भोग रहे है। इनके दुःख से दुःखित होना करुणा है। ज्ञानार्णव में करुणा को परिभाषित करते हुए शुभचन्द्राचार्य ने कहा है–

दैन्यशोकसमुत्त्रासरोगपीडार्दितात्मसु। वधबन्धनरुद्धेषु याचमानेषु जीवितम्।।
क्षुत्तृट्श्रमाभिभूतेषु शीताद्यैर्व्यथितेषु च। अवरुद्धेषु निस्त्रिंशैर्घात्यमानेषु निर्दयैः।।
मरणार्तेषु भूतेषु यत्प्रतीकार–वा छया। अनुग्रहमतिः सेयं करुणेति प्रकीर्तिता।।

अर्थात् दीनता, शोक, त्रास व रोग की वेदना से पीड़ित, वध व बन्धन से रोके गए, जीवन की याचना करने वाले, भूख, प्यास व परिश्रम से पराजित, शीत आदि की बाधा से व्यथित, दुष्ट जीवें के द्वारा रोक कर निर्दयता से पीड़ित किये जाने वाले तथा मरण की वेदना से आर्त्त प्राणियों के विषय में उनकी पीड़ा के प्रतिकार की इच्छा से जो अनुग्रह रूप बुद्धि हुआ करती है, वह करुणा कही जाती है।

भगवती आराधना विजयोदयाटीका नामक ग्रंथ में कहा गया है– दया सर्व प्राणिविषया अर्थात् सर्व प्राणियों के ऊपर उनका दुःख देखकर अंतःकरण आर्द्र होना दया का लक्षण है। करुणा जीव का स्वभाव है। जैनेन्द्र सिद्धांत कोश में बताया गया है कि जिन भगवान के उपदेश से दयालुता रूप अमृत से परिपूर्ण जिन श्रावकों के हृदय में प्राणिदया आविर्भूत नहीं होती है उनके धर्म कहां से हो सकता है? प्राणिदया धर्म रूपी वृक्ष की जड़ है, व्रतों में मुख्य है, संपतियों का स्थान है और गुणों का भंडार है। इसलिए उसे विवेकी जनों को अवश्य करना चाहिए। निश्चयनय से करुणा और वैराग्य अलग–अलग नहीं हैं। दोनों एक ही हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

17.3.2 करुणा का अधिकारी

करुणा मैत्री का प्रयोग है। जिसका सब जगत् मित्र है, उसकी करुणा भी जागतिक हो जाती है। उस करुणा का संबंध पर–सापेक्ष नहीं होता। वह भीतर एक बहाव है जो प्रतिपल सरिता की धारा के समान प्रवाहित रहता है। जीसस, बुद्ध, महावीर आदि महान आत्माएं इसके अनन्यतम उदाहरण हैं। महायान बौद्ध कहते हैं– बुद्ध का निर्वाण हुआ, वे निर्वाण के द्वार पर रुक गए। बुद्ध से कहा गया– आप भीतर प्रवेश करें। बुद्ध ने कहा– जब तक समस्त प्राणी दुःख से मुक्त नहीं हो जाते तब तक मैं भीतर कैसे आ सकता हूं? आचार्य श्री महाप्रज्ञ के अनुसार– "प्रेम का हृदय सागर जब छलछला जाता है तब करुणा की ऊर्मियां तट पर टकराने लगती हैं। जितने भी संत बोले हैं, वे सब प्रेम–मैत्री के मूर्त रूप थे और वह प्रेम करुणा के माध्यम से वाणी के द्वारा बाहर बहा है।"

अमेरिकन विचारक हेनरी थारो से एक व्यक्ति मिलने के लिए आया। उसने हेनरी से हाथ मिलाया, उसी क्षण हेनरी ने हाथ छोड़ दिया। हेनरी ने कहा– यह हाथ जीवंत नहीं है, मृत है। क्योंकि इसमें प्रेम, करुणा, सौहार्द नहीं है। हेनरी थारो का यह अनुभव उदात्त करुणा का परिचायक है। वास्तव में करुणा, प्रेम, सौहार्द आदि गुण मनुष्य की आंतरिक चेतना की शुद्धि का प्रतिनिधित्व करते हैं। भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने 'शिक्षा के आयाम' नामक पुस्तक में लिखा है– "महान आध्यात्मिक संत नरसी मेहता की अलौकिक कविता में झंकृत विचारों की अनुगूंज सदैव हमारे मानस में भी उसी प्रकार गूंजनी चाहिए, जिस प्रकार वह बापू के हृदय में गूंजती थी–

वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीड़ पराई जाणे रे।
परदुःख उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे।।

माननीय शर्माजी का विचार है कि सद्भाव, मानवीयता, करुणा और सेवा का यह दर्शन आधुनिक भारत के नागरिकों को प्रेरणा देगा, आने वाले वर्षों तथा दशकों में यह आपके पथ को आलोकित करेगा।

17.3.3 करुणा का महत्त्व

जैसे एक मां अपना जीवन खतरे में डालकर, भी अपने एक मात्र पुत्र का, रक्षण करती है, उसी प्रकार मनुष्य को समस्त चेतन प्राणियों के लिए असीमित रूप में करुणा से अपने हृदय को विकसित करना चाहिए। आत्म त्याग ही सच्चा त्याग है। करुणा को सभी धर्मों ने एक स्वर से स्वीकार किया है। करुणा हमें जीने की अर्थवत्ता प्रदान करती है, कर्म में पथ–दर्शन करती है, साहस के प्रदर्शन का कारण बनती है तथा मानवीय दुःख दूर करने में हमारी सहायता करती है। हिलेल कहता है– 'जो तेरे लिए घृणाजनक है उसे अपने साथियों के लिए मत कर।'

17.3.4 नैतिकता का आधार करुणा

नैतिकता का आधार है– करुणा। हमारी दो वृत्तियां हैं– एक है क्रूरता की वृत्ति और दूसरी है करुणा की वृत्ति। करुणा का संबंध है संवेदनशीलता से। व्यक्ति जितना संवेदनशील होता है उतनी ही उसमें करुणा की भावना जागती है। व्यक्ति जितना असंवेदनशील होता है उतना ही क्रूरता का भाव बढ़ता जाता है। क्रूरता का एक और महत्त्वपूर्ण कारण है– लोभ, संग्रह वृत्ति। आदमी आदमी के प्रति क्रूर व्यवहार करता है। मिल मालिक मजदूर के प्रति, सेठ कर्मचारी के प्रति, अफसर अधीनस्थ व्यक्तियों के प्रति क्रूर व्यवहार करता है। प्रश्न है क्या उस क्रूरता को मिटाया जा सकता है? नैतिक मूल्यों के संदर्भ में इसका समाधान होगा कि मनुष्य में प्राणी मात्र के प्रति संवेदना के भाव जागें, करुणा का विकास हो तो क्रूरता को समाप्त किया जा सकता है।

13.3.5 करुणा की अनुप्रेक्षा

जीवन विज्ञान की शिक्षा में करुणा की अनुप्रेक्षा का प्रयोग कराया जाता है। करुणा की अनुप्रेक्षा से क्रूरता का मूलोच्छेद कर करुणा की अविरल धारा को प्रवाहित किया जा सकता है। करूणा की अनुप्रेक्षा की प्रायोगिक प्रविधि इस प्रकार है –

1. महाप्राण ध्वनि	2 मिनिट
2. कायोत्सर्ग	5 मिनिट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. गुलाबी रंग का श्वास लें। अनुभव करें– श्वास के साथ गुलाबी रंग के परमाणु भीतर प्रवेश कर रहे हैं। 3 मिनिट

4. आनन्दकेन्द्र पर गुलाबी रंग का ध्यान करें। 3 मिनिट

5. आनन्दकेन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें– 'सम्यग् दृष्टिकोण का विकास हो रहा है। करुणा का भाव पुष्ट हो रहा है।' इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें। फिर इसका नौ बार मानसिक जप करें। 5 मिनिट

अनुचिंतन करें–

क्रोध, अहंकार और लोभ के आवेग मनुष्य को क्रूर बनाते हैं। क्रूर मनुष्य दूसरों को सताता है, ठगता है, अप्रिय व्यवहार करता है। कोई नहीं चाहता मेरे साथ अप्रिय व्यवहार हो तो फिर मुझे दूसरों के प्रति अप्रिय व्यवहार क्यों करना चाहिए? मुझे अच्छा जीवन जीने के लिए, सामुदायिक जीवन को शांतिमय बनाने के लिए, करुणा का विकास करना है। मैं संकल्प करता हूं कि मेरे में करुणा का भाव पुष्ट होगा। 10 मिनिट

6. महाप्राण ध्वनि के साथ ध्यान संपन्न करें। 2 मिनिट

17.4 आत्मानुशासन

नये सृजन की प्रतीक्षा का प्रथम द्वार है– आत्मानुशासन। आत्मानुशासन की उज्जवल आभा से दीपित चित्त ही धर्म का आधार है। युग की सब वर्जनाओं के टूट जाने पर भी जो बची रहती है, वह आत्म–मर्यादा है।

17.4.1 आत्मानुशासन का स्वरूप

अनुशासन की सतह पर तैरने वाला बंधता है, किंतु उसकी अतल गहराई तक पहुंचने वाला मुक्त हो जाता है। जो स्व–तंत्र में रहना नहीं जानता, वह कभी स्वतंत्र नहीं हो सकता। अनुशासन का अस्वीकार जीवन की पहली हार है। अपने लिए, अपने द्वारा, अपना नियंत्रण यही है– अध्यात्म। कहा भी गया है–

मन के पागलपन ने जब–जब ज्वालामुखी उभारा।
तब–तब अनुशासन ने ही इस नर को सदा उबारा।।

भगवान महावीर ने कहा– 'गौतम तू! आत्मानुशासन में आ, अपने आपको जीत। यही दुःख मुक्ति का मार्ग है। कामनाओं, इच्छाओं, वासनाओं को जीत, यही दुःख मुक्ति का मार्ग है।' लोक का सिद्धांत देख– 'कोई जीव दुःख नहीं चाहता। तू भेद में अभेद देख। सब जीवों में समता देख, शस्त्र प्रयोग मत कर। दुःख मुक्ति का मार्ग यही है।'

आत्मानुशासन वह अमृत है जो व्यक्ति, समाज और देश को सदा जीवित रखता है। आत्मानुशासन के मनोभाव को विकसित करना आवश्यक है। आज सभी जगह ईर्ष्या है' स्पर्द्धा है। एक–दूसरे को नीचे गिराने का भाव है और असहनशीलता है। समाज में जहां सापेक्षता है, वहां ऐसा क्यों होता है? यह आज भी एक प्रश्नचिह्न बना हुआ है। जो शासनमुक्त समाज की कल्पना लेकर चलते हैं, वहां क्या होता है? अपनी सुरक्षा और अपने प्रतिस्पर्धी का पतन? एक ओर शासनमुक्ति की कल्पना, दूसरी ओर इतना स्वार्थ–संघर्ष। यह दर्शन की दूरी नहीं तो और क्या है?

व्यक्ति सोचता है मेरा ही उत्कर्ष हो। मैं ही शक्तिशाली बनूं। यह व्यक्तिवादी मनोवृत्ति ही सामाजिकता को वास्तविकता के धरातल पर प्रतिष्ठित होने में बाधक है। किंतु आत्मानुशासन का विकास होने पर व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता। कोई भी शासन प्रणाली हो, आज सत्ता कुछेक व्यक्तियों में केंद्रित हो गयी है। जनता अपने को असहाय–सी अनुभव करती है। अपना व्रत लेकर चलने वाले कभी अत्राण नहीं होते। शस्त्र शब्द में त्राण–शक्ति की कल्पना है पर वह वास्तविक नहीं है। भीषण आयुध रखने वाले भी भय से संत्रस्त हैं।

17.4.2 आत्मानुशासी कौन हो सकता है?

आत्मानुशासी व्यक्ति वही हो सकता है जिसके भीतर आत्म–साक्षात्कार की तड़प हो। ऐसे आत्मानुशासी व्यक्ति में आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने निम्न गुणों का होना आवश्यक बताया है–

1. लक्ष्य में दृढ़ आस्था।

2. लक्ष्य के प्रति पूर्ण समर्पण।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. लक्ष्य प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्न और दीर्घकालीन अभ्यास।

4. आसन का अभ्यास, शरीर स्थैर्य।

5. वाक्–संयम।

6. सत्संकल्पों से मन को भावित करना।

7. चित्त–निरोध।

दशार्णभद्र राजा अपना ठाठ–बाट लेकर भगवान महावीर के दर्शन करने के लिए गया। इन्द्र ने सेना की रचना की। राजा पराजित हो गया। त्राण–अत्राण की अनुभूति करने लगा, क्योंकि वह पर की सीमा में चला गया था। अंत में वह भगवान की शरण में आया और विजयी बन गया। अब इन्द्र पैरों में नत–मस्तक हो गया। जो पर–शासन में पराजित हो गया, वह स्व–शासन में आ विजयी बन गया।

समाज में रहने वाले स्व की सीमा में चलें। स्व–शासन का विकास होने पर समाज में अव्यवस्था नहीं अपितु एक विशेष अवस्था का निर्माण होगा। नियम कृत्रिम नहीं किंतु सहज होंगे। प्रेरणा का मूल भय नहीं अपितु कर्तव्यनिष्ठा होगी। जो प्रभु के अनुशासन में चलता है, आज्ञा का पालन करता है, आज्ञा के अनुसार चलता है, वही वास्तव में प्रभु की प्रार्थना करने का अधिकारी हो सकता है।

17.4.3 स्वतंत्रता और आत्मानुशासन

जनतंत्र का मूल आधार है– स्वतंत्रता और उसका आधार है– व्यक्ति का आत्मानुशासन। जब कोई व्यक्ति अपने आप पर नियंत्रण रख सकता है तभी वह स्वतंत्रता की लौ प्रज्वलित कर सकता है। अधिनायक के युग में भय और आतंक का साम्राज्य होता था, इसलिए व्यक्ति के आत्मानुशासन का विशेष मूल्य नहीं था। जनतंत्र के युग में अभय का साम्राज्य होता है, इसलिए उसमें आत्मानुशासन का मूल्य बढ़ जाता है। भारत दुनिया का सबसे बड़ा जनतंत्रात्मक देश है, इसलिए यहां के नागरिकों में आत्मानुशासन की अधिक आवश्यकता है।

आज हम देखते हो कि चाहे राजनीति का क्षेत्र हैं, चाहे धर्मनीति का क्षेत्र हो, चाहे शिक्षानीति का क्षेत्र हो स्वार्थवृत्ति बढ़ती जा रही है और आत्मानुशासन समाप्त होता जा रहा है। अतः आवश्यकता है कि हम आत्मानुशासन के मूल्य को समझें, उसे आत्मसात करें और जन–जन को समझाएं कि स्वतंत्रता का अर्थ है– आत्मानुशासन।

17.4.4 आत्मानुशासन का महत्त्व

आत्मानुशासन का महत्त्व सदैव रहा है। जिसने आत्मा को वश में करना सीख लिया वही आत्मानुशासन के महत्त्व को समझ सकता है। जैसा कि कहा गया है–

आत्मा वशीकृतो येन, तेनात्मा विदितो ध्रुवम्।
अजितात्मा विदन् सर्वमपि नात्मानमृच्छति।।

अर्थात् जिसने आत्मा को वश में कर लिया, उसने वास्तव में आत्मा को जान लिया। जिसने आत्मा को नहीं जीता, वह सब कुछ जानता हुआ भी आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। इसी भाव की पुष्टि करते हुए कहा गया है–

येनात्मा साधितस्तेन, विश्वमेतत् प्रसाधितम्।
येनात्मा नाशितस्तेन सर्वमेव विनाशितम्।।

अर्थात् जिसने आत्मा को साध लिया उसने विश्व को साध लिया। जिसने आत्मा को गंवा दिया, उसने सब कुछ गंवा दिया।

टॉलस्टॉय से पूछा गया कि जीवन का अच्छा निर्माण कैसे हो सकता है? टॉलस्टॉय ने कहा– 'अच्छे जीवन की पहली शर्त है– आत्म–नियंत्रण। आत्म–नियंत्रण की पहली शर्त है– उपवास।'

भगवान महावीर ने भी कहा– आत्म–नियंत्रण का प्रारम्भ अनशन से करो। भगवान महावीर ने निर्जरा के बारह प्रकार बताएं, उनमें पहला है– अनशन अर्थात् उपवास।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस प्रकार प्राचीन और आधुनिक दोनों चिंतकों का एक ही विचार रहा है कि आत्म–नियंत्रण के लिए उपवास जरूरी है। उपवास के साथ–साथ शरीर को साधना जरूरी है। शरीर की स्थिरता सधने पर ही स्वभाव परिवर्तन संभव बनता है। स्वभाव परिष्कार से आत्म–नियंत्रण सधता है और आत्म–नियंत्रण से आत्मानुशासन पुष्ट बनता है।

17.4.5 आत्मानुशासन की अनुप्रेक्षा

अध्यात्म के क्षेत्र में आत्मानुशासन की अनुप्रेक्षा के द्वारा हम आत्मानुशासन शीघ्रता से साध सकते हैं। इसकी प्रायोगिक प्रविधि इस प्रकार है –

1. महाप्राण ध्वनि — 2 मिनिट
2. कायोत्सर्ग — 5 मिनिट
3. पीले रंग का श्वास लें। अनुभव करें– श्वास के साथ पीले रंग के परमाणु भीतर प्रवेश कर रहे हैं। — 3 मिनिट
4. शांतिकेन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर पीले रंग का ध्यान करें। — 3 मिनिट
5. शांतिकेन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें– 'नियंत्रण की क्षमता बढ़ रही है। मन की चंचलता कम हो रही है' इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें, फिर नौ बार मानसिक जप करें। — 5 मिनिट

अनुचिंतन करें–

अनुशासन या नियंत्रण के बिना समाज नहीं चल सकता। जब आत्म–नियंत्रण सशक्त होता है तब बाहरी नियंत्रण की अपेक्षा कम होती है। आत्म–नियंत्रण की शिथिलता होने पर बाहरी नियंत्रण की मात्रा बढ़ जाती है। मैं नहीं चाहता कि बाहरी नियंत्रण के द्वारा मेरी स्वतंत्रता पर अंकुश लगे।

'अपने पर अपना अनुशासन अणुव्रत की परिभाषा' इस सत्य को मैंने समझा है। इसलिए मैं संकल्प करता हूं कि मैं आत्मानुशासन का विकास करूंगा। — 10 मिनिट

6. महाप्राण ध्वनि के साथ ध्यान संपन्न करें। — 2 मिनिट

17.5 आत्म–संयम

भारतीय शिक्षण परंपरा में विद्यार्थियों से आत्म–संयम के लिए अपेक्षा की जाती है। आत्म–संयम का तात्पर्य आत्म नियंत्रण से है। अपने कर्त्तव्यों का पालन करने की दृष्टि से इंद्रियों और मन की उच्छृंखल प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रखना आत्म–संयम है। इससे व्यक्तित्व का विकास सहज एवं सरल हो जाता है। श्रीमद्भगवतगीता में कहा गया है कि संयमयुक्त योग उस व्यक्ति के ही दुःखों को दूर करता है जो यथायोग्य आहार–विहार करने वाला, कर्मों में यथायोग्य रत रहने वाला तथा यथायोग्य सोने वाला और जानने वाला होता है। अतः व्यक्तित्व के उत्थान में इन सभी तत्वों का सक्रिय योग रहता है।

17.5.1 आत्म–संयम का स्वरूप

संयम का सामान्य अर्थ रोकथाम, प्रतिबंध एवं नियंत्रण है। आध्यात्मिक दृष्टि से संयम आत्मा का गुण है। इसलिए आत्मानुशासन संयम है। आत्मा में एकाग्र होना संयम है। धवला में संयम को परिभाषित करते हुए कहा गया है– 'संयमनं संयमः। अथवा व्रतसमितिकषाया–दण्डेन्द्रियाणां धारणानुपालननिग्रहत्यागजयाः संयमः।' संयमन को संयम कहते हैं। संयमन अर्थात् उपयोग को पर–पदार्थ से समेट कर आत्मसम्मुख करना। उपयोग की स्वसम्मुखता, स्वलीनता ही निश्चय संयम है। अर्थात् पांच व्रतों का धारण करना, पांच समितियों का पालन करना, क्रोधादि कषायों का निग्रह करना, मन, वचन, काय रूप तीन दण्डों का त्याग करना और पांच इन्द्रियों के विषयों को जीतना संयम है। आत्म–संयम का अर्थ है आत्मा में निवास करना। इसके लिए संयम का अभ्यास आवश्यक है। खाद्य संयम, दृष्टि संयम, विचार संयम, श्वास संयम आदि अनेक रूप हैं संयम के। संयम का स्वाद भी अद्भुत होता है जब तक इसमें रस नहीं आता है, संयम की साधना बहुत कष्टपूर्ण प्रतीत होती है। इस साधना में रस आ जाए तो अन्य सभी रस फीके हो जाते हैं।

सत्य सुख और शांति के लिए उर्वर भूमि तैयार करता है। इस उर्वर भूमि में संयम का बीज बोना होता है। आसक्ति और विषय वासना को छोड़ना होता है। वहां से जीवन में जितेन्द्रियता आती है। जितेन्द्रियता तेजस्विता का मूल है। संयम निम्न मार्गों की ओर ले जाने वाली अपनी शक्ति को संयत करके उन्नतिशील एवं विकासकारी सत्पथ की ओर प्रवृत्त करता है। यहीं से मानव का अभ्युदय प्रारम्भ होता है। सत्य के साथ संयम को जोड़ना सुख–शांति की कुंजी को पाना है। संयम का अर्थ है विवेकपूर्वक अपनी इच्छाओं का नियमन। संयम अहिंसा है। संयम की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

साधना स्वीकार करने के लिए संकल्प करना होता है– 'असंजमं परियाणामि संजमं उवसंपज्जामि।' मो असंयम को छोड़ता हूंऔर संयम को स्वीकार करता हूं, क्योंकि 'संयमः खलु जीवनम्' अर्थात् संयम ही जीवन है।

17.2.2 संयमी कौन?

आत्मा का शुद्धावस्था में स्थिर रहना, संयम या चारित्र है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने संबोधि में कहा है विद्वान् को चाहिए कि वह जैसे सारथि घोड़ों को संयम में रखता है, ऐसे ही आकर्षण करने वाले विषयों में जाने वाली इन्द्रियों को संयम में रखने का यत्न करें। साधक इन्द्रिय संयम से लक्ष्यरूपी सिद्धि को प्राप्त करता है। बुद्ध ने भी ऐसा ही कहा है कि आखों को नीचे कर, इन्द्रियों को काबू में रख, मन को संयत कर, तृष्णा तथा कामदाह से रहित हो अकेला विचरे, खड्ग विषाण की तरह। गीता में कहा गया है– मनुष्य को चाहिए कि उन सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके समाहित–चित्त अर्थात् मेरे (आत्मा) में स्थित होवे, क्योंकि जिस पुरुष के इन्द्रियां वश में होती हैं, उसकी ही बुद्धि स्थिर होती है। सेनेका का मत है जो आत्म–संयमी है, वही सर्वशक्तिमान है। पाइथागोरस ने कहा है, जो आत्म–संयमी नहीं है, वह स्वतंत्र नहीं है।

17.5.3 आत्म–संयम का महत्त्व

आत्म–संयम के बिना जीवन का सर्वांगीण विकास नहीं हो सकता। गौतम ने भगवान महावीर से पूछा– संजमेण भंते! जीवे किं जणयइ? भंते! संयम से जीव क्या प्राप्त करता है? समाधान देते हुए भगवान महावीर ने कहा– संयम से वह आस्रव का निरोध करता है।

गौतमस्वामी ने पुनः प्रश्न किया– भंते! विनिवर्तना (इन्द्रिय और मन को विषयों से दूर रखने) से जीव क्या प्राप्त करता है? भगवान महावीर ने कहा– विनिवर्तना से वह नए सिरे से पापकर्मों को नहीं करने के लिए तत्पर रहता है और पूर्व–बद्ध कर्म का निर्जरा के द्वारा निवर्तन कर देता है। इस प्रकार वह पाप–कर्म का विनाश कर देता है। उसके पश्चात् चार गति रूप, चार अन्तों वाली संसार अटवी को पार कर जाता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चेतन मन के धरातल पर प्रवृत्तियों के आत्म–नियंत्रण से व्यक्तित्व का विकास होता है। आध्यात्मिक दृष्टि से इन्द्रियों के विषय विकारों पर आत्म–नियंत्रण करना संयम से ही संभव है। संयम मुक्ति का साक्षात् कारण है। दुःखों से छूटने का एक मात्र उपाय सम्यग्दर्शन सहित संयम अर्थात् उत्तम संयम ही है।

आध्यात्मिक दर्शन की सभी धाराओं ने संयम के महत्त्व को एक स्वर से स्वीकार किया है। भगवान महावीर ने 'अहिंसा संजमो तवो' कहकर अहिंसा, संयम और तप को धर्म का मूल आधार माना है। बुद्ध ने संयम के लिए अप्रमाद शब्द का प्रयोग किया है। उन्होंने कहा– भिक्षुओं। प्रमाद अधःगतन का कारण है, इसलिए संयम करना चाहिए।

17.5.4 शक्ति की अनुप्रेक्षा

आत्म संयम के विकास के लिए शक्ति की अनुप्रेक्षा का अभ्यास किया जाता है, जिसकी प्रायोगिक प्रविधि इस प्रकार है–

1. महाप्राण ध्वनि	2 मिनट
2. कायोत्सर्ग	5 मिनट
3. अरुण रंग का श्वास लें। अनुभव करें– श्वास के साथ अरुण रंग के परमाणु भीतर प्रवेश कर रहे हैं।	3 मिनट
4. आनन्द केन्द्र पर अरुण रंग का ध्यान करें।	3 मिनट

5. दोनों फुफ्फुसों पर ध्यान केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें– 'मेरी प्राण शक्ति बढ़ रही है, कमजोरी क्षीण हो रही है'– इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें फिर इसका नौ बार मानसिक जप करें। 5 मिनट

अनुचिंतन करें–

विषय वासनाएं मन को कमजोर बनाती हैं। प्राणशक्ति कम्जोर मन में नहीं बढ़ती। इसलिए मैं विषय वासनाओं के जाल में नहीं फंसूगा। मैं अनिच्छा गुण का विकास करूंगा। जब मानसिक शक्ति बढ़ेगी तब प्राण शक्ति का विकास होगा। 10 मिनट

6. महाप्राण ध्वनि के साथ प्रयोग सम्पन्न करें। 2 मिनट

17.6 अहिंसा

हिंसा से थके हुए, हारे हुए और टूटे हुए लोगों को भगवान महावीर का दर्शन आह्वान करता है कि उनकी थकान, पराजय और टूटन को दूर करने वाला कोई आश्वासन है तो वह है अहिंसा। अहिंस कोई नारा नहीं, वह जीवन का दर्शन है। जिस दिन मनुष्य की जीवन शैली का आधार बनेगा और उसका आस्था सूत्र 'आयतुले पयासु' जन्–जन की आस्था का आधार बनेगा, उसी दिन विश्व शांति के प्रासाद की बुनियाद रखी जा सकेगी। पात जल योग दर्शन में 'तत्र अहिंसा सर्वदा सर्वभूतेष्वनभिद्रोहः' अभिद्रोह नहीं करना अहिंसा है। ऐसा कथन करके अहिंसा का आधार आत्मौपम्य भाव स्वीकार किया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'आयओ बहिया पास' की भावना के आधार पर चैतन्य का विकास होने पर परपीड़ा में तुल्यता का आत्मसंवेदन ही अहिंसा का आधार बनता है। जो अहिंसा का आश्रय लेता है, उसके भय दूर हो जाते हैं। मनोविज्ञान के अनुसार जिजीविषा प्रत्येक प्राणी की मौलिक मनोवृत्ति है। जीवित रहने की प्रबल इच्छा अहिंसा का आधार बनती है। जिसमें चेतना का किञ्चित् भी विकास है वह जीना चाहता है, मरना कोई नहीं चाहता। जीवित रहने की अदम्य आकांक्षा ही व्यक्ति में आत्मौपम्य की भावना का विस्तार करती है। वास्तव में अहिंसा संबंधी ये विचार अहिंसा के व्यावहारिक पक्ष को उजागर करते हैं।

17.6.1 अहिंसा का स्वरूप

अहिंसा भारतीय संस्कृति का आधार है। अहिंसा श्रमण संस्कृति का प्राण है। वैदिक धर्म में अहिंसा को सबसे उत्तम, सबसे पावन धर्म माना गया है। कहा भी गया है– 'अहिंसा परमो धर्मः'। महाभारत में अहिंसा को समस्त धर्मों का मूल कहा गया है– 'अहिंसा सकलो धर्मः'। आचारांग में उल्लेख है सबको जीवन प्रिय है मृत्यु नहीं, मरना कोई नहीं चाहता। दशवैकालिक में भी उल्लेख है– सब जीव जीना चाहते हैं मरना कोई नहीं चाहता इसलिए निर्ग्रन्थ प्राणी वध का वर्जन करते हैं। स्वरूप की दृष्टि से सब चैतन्य एक समान हैं। यह अद्वैत भावना ही अहिंसा का मूल आधार है। कोई भी साधक अहिंसा के बिना साधना में उत्कर्ष को प्राप्त नहीं हो सकता।

इसलिए जीवों का हनन नहीं करना चाहिए, न उन्हें किंचित् भी पीड़ित करना चाहिए, न उपद्रव करना चाहिए, न बल पूर्वक उन पर शासन करना चाहिए और न दास बनाने के लिए उन्हें अपने अधीन रखना चाहिए। यह धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है और वीतराग के द्वारा निरूपित है।

आचारांग सूत्र में अहिंसा को महापथ कहा गया है– पणया वीरा महावी हिं। महापथ की व्याख्या से अहिंसा की महानता स्वतः प्रकट होती है। अहिंसा को महापथ क्यों कहा गया? अहिंसा मोक्ष का पथ है इसलिए इसे महापथ कहा गया है। अहिंसा आत्मा का दर्शन है यह पथ सर्वत्र, सर्वदा, सबके लिए समान रूप से आसेवनीय है। इसे देश, काल की सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता। जो इसके लिए समर्पित है, समर्पित हो रहे हैं और समर्पित होंगे उन सबको निश्चित एक दिन अनन्त आनन्द, अनन्त शक्ति और अनन्त सुख की प्राप्ति होगी। महापथ–सुषुम्ना की साधना (अंतर्यात्रा) करने से हिंसा के संस्कार स्वतः नष्ट हो जाते हैं।

17.6.2 अहिंसक कौन?

अहिंसक वही हो सकता है जिसके मन में अहिंसक बनने का दृढ़ संकल्प जाग जाता है। इसलिए सूत्रकार ने निर्देश दिया है कि अहिंसाव्रती संकल्प करे– मैं अहिंसा धर्म में दीक्षित होकर हिंसा नहीं करुंगा। शक्ति के अभाव में कोई भी व्यक्ति प्रतिस्रोत में नहीं चल सकता। अहिंसा का पालन प्रतिस्रोत की ओर प्रस्थान है। वीर पुरुष अहिंसा कर्म में लिप्त नहीं होता क्योंकि जो बंधन से मुक्त होने की खोज करता है, वह मेधावी अहिंसा के मर्म को जान लेता है।

इन्द्रिय और मन पर विजय करने वाला अहिंसा के मर्म को जानता है। अहिंसक वही हो सकता है, जो संयमी जीवन जीने का इच्छुक होता है। आचारांग भाष्य में भी अहिंसा के मूल संयम को स्वीकार किया गया है। जो अप्रमादी, अनासक्त और अभय होता है, वही अहिंसा का पालन कर सकता है।

अहिंसा का आधार तितिक्षा और अभय है। जो कष्टों को सहन करने से कतराता है, वह अहिंसक नहीं हो सकता। भगवान महावीर ने कहा– 'कसेहि अप्पाणं' आत्मा को तपाओ, अहिंसा तपने से सधती है। ताप तितिक्षा की कसौटी है। जो तपना जानता है, वह उज्ज्वलतम रेखाओं को अपने में प्रतिबिम्बित कर सकता है। यह तितिक्षा का परिणाम है। अन्यत्र भगवान ने कहा है– 'जरेहि अप्पाणं' अर्थात् आत्मा को खपा। साध्य खपने से सधता है। अहिंसक 'अकुतोभय' होता है। उसमें प्रतिकार और प्रतिरोध का सामर्थ्य होता है। वह हिंसा को परास्त कर विजयी बनता है, परन्तु उसकी विजय का मार्ग निराला है।

'का अरई के आणंदे' यह अहिंसा की चरम परिणति है। अहिंसक के लिए क्या अरति और क्या आनन्द? वह इन सब से परे है। निष्कर्ष की भाषा में कहा जा सकता है–

1. अहिंसा स्वतंत्र चेतना का अनावृत्तिकरण है।
2. अहिंसा का आधार तितिक्षा और अभय है।
3. अहिंसक वह है जो पराभूत नहीं होता।
4. अहिंसक वह है जो परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होता हुआ, अपने बंधनों को काट डालता है।
5. अहिंसा से तितिक्षा, तितिक्षा से अपराभव, अपराभव से स्पष्टता और स्पष्टता से अभय का विकास होता है।

17.6.3 अहिंसा का महत्त्व

अहिंसा जीवन का परम आदर्श है। विधायक भावों से अनुप्राणित अहिंसा का पथ सदैव प्रशस्य रहा है। प्रश्नव्याकरण में अहिंसा को अनेक उपमाओं से उपमित करते हुए सूत्रकार ने कहा है– अहिंसा भयभीत प्राणियों के लिए शरण, पक्षियों के लिए गगन,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तृषितों के लिए जल, भूखों के लिए भोजन, समुद्र के मध्य जहाज, रोगियों के लिए औषध व वन में सार्थवाह के सार्थ की तरह प्राणियों का आधारभूत है। अहिंसा की अनुपालना करके ही आत्मा के आवृत स्वरूप को अनावृत किया जा सकता है।

धर्म के समस्त अंगों में अहिंसा ही प्रधान है। अहिंसक परिणाम वाला व्यक्ति तप, नियम करता है। वे अधिक फलदायी होते हैं क्योंकि अहिंसा की उर्वर भूमि में ही विधायक गुणों की पौध विकसित होती है। क्रूरता और रागद्वेष से असंक्लिष्ट चित्त में अहिंसा का वास होता है। संक्लिष्ट चित्त वाला व्यक्ति तप आदि अनुष्ठान करने पर भी अधिक लाभ नहीं उठा सकता। लाख प्रयत्न करने पर भी जैसे चक्के के आरे तुम्बी के बिना नहीं ठहरते और आरों के बिना नेमि नहीं ठहरती वैसे ही अहिंसा के बिना शील आदि गुण नहीं ठहरते। जैसे तीन लोकों का आधार आकाश, द्वीप–समुद्रों का आधार पृथ्वी है वैसे ही व्रत, गुण और शील का आधार अहिंसा है। अहिंसा को जगत् की माता कहा गया है। अहिंसा समस्त प्राणियों की रक्षा करने वाली है। सुख कल्याण व अभ्युदय का निमित्त बनती है।

मातेव सर्वभूतानामहिंसा हितकारिणी। अहिंसैव हि संसारमरावमृतसारणि।।

अहिंसा दुःखदावाग्निप्रावृषेयघनावली। भवभ्रमिवार्त्तानामहिंसा परमौषधम्।।

शास्त्रकारों ने अहिंसा को माता से उपमित किया है। यह उपमा एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक तथ्य को प्रकट करती है। अहिंसा माता की तरह षड्जीवनिकाय की संरक्षिका है। इस जगत् में माता से अधिक हितकारी कोई नहीं होता। कहा जाता है कि पुत्र लक्ष्य सिद्धि के लिए माता का कलेजा निकाल कर गन्तव्य की ओर प्रस्थान करता है अप्रशस्त पथ के कारण पैर की गति स्खलित हो जाती है। स्खलना का अनुभव करते हुए कलेजे में से आवाज आती है पुत्र! तुम्हारे कहीं चोट तो नहीं आई? कैसी महानता है मां के उस ममत्व की जो ऐसे कृतघ्न पुत्र के प्रति भी हित चिंतन करती है। अहिंसा सर्वदा सबके लिए हितकारी है।

पातञ्जल योगदर्शन में अहिंसा के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है– अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।अहिंसा की प्रतिष्ठा होने पर वैर का त्याग स्वतः हो जाता है। प्रस्तुत सूत्र में प्रतिष्ठा का अर्थ है– वितर्क समूह की अप्रसवधर्मता अनुत्पत्ति। जब हिंसादि वितर्क चित्त में स्वभावतः या किसी उद्‌बोधन हेतु से पुनः नहीं उठते, तब मानना चाहिए कि जीवन में अहिंसा की प्रतिष्ठा हुई है।

17.6.4 अहिंसा की अनुप्रेक्षा

अहिंसा आध्यात्मिक विकास का मूल मंत्र है। अहिंसा सार्वभौम शांति का सृजन करने वाली है और विश्व के लिए वरदान है। अतः आवश्यकता है कि अहिंसा की अनुप्रेक्षा के द्वारा अहिंसा के भावों को परिस्त किया जाए तथा अहिंसा के भावों को पुष्ट किया जाए तो जन–जन में अहिंसा का साकार रूप देखा जा सकता है। अहिंसा की अनुप्रेक्षा की प्रायोगिक प्रविधि इस प्रकार है –

1. महाप्राण ध्वनि — 2 मिनिट
2. कायोत्सर्ग — 5 मिनिट
3. दर्शन केन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर अहिंसा की अनुप्रेक्षा करें–

   मैं किसी भी निरपराध प्राणी की हत्या नहीं करूंगा।

   मैं किसी पर आक्रमण नहीं करूंगा।

   मैं हिंसात्मक उपद्रवों में भाग नहीं लूंगा।

   इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें। फिर इसका नौ बार मानसिक जप करें। — 10 मिनिट
4. अनुचिंतन करें–

नैतिकता सामाजिक जीवन का अनिवार्य तत्त्व है। नैतिकता का विकास करने के लिए व्रत अथवा नियंत्रण की क्षमता का विकास आवश्यक है।

नियंत्रण के अभाव में अनावश्यक हिंसा से बचा नहीं जा सकता।

जिसकी नियंत्रण की क्षमता मजबूत होती है, वह व्यक्ति और समाज शक्तिशाली बनता है।

जिसकी नियंत्रण की क्षमता कमजोर होती है, वह व्यक्ति और समाज कमजोर बनता है।

मैं नियंत्रण की क्षमता का विकास करूंगा, जिससे मैं अनावश्यक हिंसा से बच सकता हूँ। — 10 मिनिट

4.महाप्राण ध्वनि के साथ प्रयोग संपन्न करें। — 02 मिनिट

17.7 सत्य

सर्वोदय नामक पुस्तक के अन्त में गांधीजी लिखते हैं– "भारत–भूमि एक दिन स्वर्ण–भूमि कहलाती थी, इसलिए कि भारतवासी स्वर्णरूप से थे। भूमि तो वही है, पर आदमी बदल गए हैं, इसलिए यह भूमि उजाड़–सी हो गई है। इसे पुनः स्वर्ण बनाने के लिए हमें सद्‌गुणों द्वारा स्वर्णरूप बनना है। हमें स्वर्ण बनाने वाली पारसमणि दो अक्षरों में अन्तर्निहित है और वह है सत्य।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

17.7.1 सत्य का स्वरूप

अहिंसा की भांति सत्य भी एक महत्त्वपूर्ण जीवन मूल्य है, जिसे वैदिक और श्रमण दोनों ही परम्परओं में प्रतिष्ठा प्राप्त है। वेदामृतम के मंत्र में बताया गया है कि अनृत के मार्ग को छोड़ कर ऋत या सत्य का मार्ग अपनाना चाहिए। सत्य के मार्ग को अपनाने से जीवन सुखमय होता है, कष्ट दूर होते हैं और आनन्द की प्राप्ति होती है। जीवनरूपी नौका इसी प्रकार संसार सागर को पार कर जाती है, जैसे नाव से किसी नदी को पार करते हैं। परमात्मा सत्य व्यवहार करने वाले का मित्र है। आगमो में सत्य को भगवान कहा है– 'सच्चं लोयम्मि सारभूयं' क्योंकि सत्यभाषी स्वयं भगवान बन जाता है अतः कार्य में कारण का उपचार कर सूत्रकार ने सत्य को ही भगवान माना है।

जैनाचार्यों ने सत्य के संबंध में गहराई से चिंतन किया है। महाव्रतों में उसे द्वितीय महाव्रत बताया गया है एवं समिति और गुप्ति में भी उसका क्रम द्वितीय है। सर्वप्रथम बोलने का ही निषेध है जिसे वचन गुप्ति कहा गया है। यदि बोलना ही है तो जो 'सत्यं शिवं सुन्दरं' हो ऐसा ही वचन बोलना चाहिए। जिस शब्द के प्रयोग से जन–जन का हित होता है, कल्याण होता है, आध्यात्मिक अभ्युदय होता है, वह सत्य है। सत्य का महाव्रती दूसरे को वही बात कहता है, जो यथार्थ होती है और यथार्थ ही अहिंसा धर्म के अनुकूल होती है।

सत्य का ऋजुता के साथ गहरा संबंध है। जो व्यक्ति ऋजु नहीं होता वह सत्य का पालन नहीं कर सकता। इस संदर्भ में सत्य का संदर्भ केवल वाणी से ही नहीं होता किंतु अपना अभिप्राय जताने की हर चेष्टा से हो जाता है। इस आधार पर सत्य की परिभाषा निम्न हो सकती है– 1. काया की ऋजुता सत्य है, 2. भावों की ऋजुता सत्य है, 3. भाषा का शुद्ध और संयत प्रयोग सत्य है, 4. कथनी–करनी का अविसंवाद सत्य है।

सत्य विराट है। इसे शब्दों में नहीं बांधा जा सकता। ये सब सत्य के स्थूल रूप हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से वही सत्य है जो आत्मा को शुद्ध और समुन्नत बनाए। स्व की खोज का मार्ग है– सत्य। अपने आप को पाने का मार्ग है– सत्य। सत्य का तात्पर्य है– यथार्थ का प्रतिपादन। महावीर ने सत्य का द्वार हमेशा खुला रखा।

सच्चं लोयम्मि सारभूयं।

सच्चंसि धितिं कुव्वह।

पुरिसा! सच्चमेव समभिजाणाहि।

जो सत्य की आज्ञा में उपस्थित है वह मेधावी मृत्यु अथवा कामनाओं पर विजय प्राप्त कर लेता है। वास्तव में सत्य का अर्थ है– यथार्थ का प्रतिपादन। अन्य सब इसका फलित रूप है। सूत्रकार ने कहा है–

सच्चस्स आणाए उवट्ठिए से मेहावी मारं तरति।

जब तक वस्तु का यथार्थ स्वरूप सम्यक् प्रकार से ज्ञात नहीं होता, तब तक वस्तु के प्रति होने वाला प्रियाप्रिय संवेदन रुक नहीं सकता। कथनी–करनी की भिन्नता, भाव, भाषा की कुटिलता का मुख्य कारण प्रियाप्रिय संवेदन ही बनते हैं। जो इससे उपरत हो जाता है, वह स्वतः स्थूल सत्य का पालन कर लेता है। वास्तव में वस्तु के स्वरूप को यथार्थ रूप में जानना ही सत्य है। अर्थात् मृषावाद वर्जन रूप सत्य अहिंसा से पृथक् नहीं है। जिस प्रकार शुक्र का तारा चाहे कोई भी ऋतु हो अपने गमन मार्ग को छोड़कर दूसरे मार्ग से नहीं जाता, अपने मार्ग से ही जाता है। इसी प्रकार सत्य व्रत का पालन करने वाला बुद्धत्व को प्राप्त होगा।

17.7.2 सत्य का महत्त्व

सत्य जीवन की आधार–शिला है। सत्य ही मानवीय विश्वास का आधार है। जहां सत्य है वहां प्रकाश है, वहां उन्नति है, वहां जीवन–ज्योति है और शांति है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है– 'सत्यमेव देवा' सत्य ही देवत्व है। 'यो वै धर्मः सत्यं वै तत्' अर्थात् सत्य ही धर्म है। मानव जीवन को सुखमय बनाने के लिए सत्य का व्रत लेना आवश्यक है। यह व्रत ही उसे घोर विपत्तियों के बाद सत्यरूपी ब्रह्म का दर्शन कराता है। एतरेय ब्राह्मण में बताया गया है– 'श्रद्धा पत्नी सत्यं यजमानः' अर्थात् श्रद्धा पत्नी है और सत्य यजमान है। सत्य के साथ श्रद्धा के समन्वय से ज्ञान और विवेक की उत्पत्ति होती है। दोनों का समन्वय ज्ञान–ज्योति को प्रज्वलित करता है।

सत्य कल्पवृक्ष है, जिससे मानव की सारी कामनाएं पूर्ण होती हैं। सत्य मनुष्य की वाणी में माधुर्य और शक्ति प्रदान करता है। जो व्यक्ति सत्य बोलता है, उसका प्रतिदिन तेज बढ़ता जाता है और प्रतिदिन श्री–वृद्धि होती जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

17.7.3 सत्य की अनुप्रेक्षा

सत्य की अनुप्रेक्षा के द्वारा हम सत्य को अपने जीवन में प्रतिष्ठित कर सकते हैं। सत्य की अनुप्रेक्षा का प्रयोग इस प्रकार है–

1. महाप्राण ध्वनि	2 मिनिट
2. लयबद्ध दीर्घश्वास	5 मिनिट
3. भस्त्रिका	5 मिनिट
4. कायोत्सर्ग	5 मिनिट

5. संकल्प– 'मो सत्य के प्रति आस्थावान रहूंगा। मैं असत्य नहीं बोलूंगा, पूर्वाग्रह से बचूंगा।'

अभ्यास पद्धति– शांतिकेन्द्र पर चित्त को केन्द्रित करें। फिर इस संकल्प की 15 मिनिट तक पुनरावृत्ति की जाए (5 मिनिट उच्चारण पूर्वक, 5 मिनिट मंद उच्चारण पूर्वक, 5 मिनिट मानसिक अनुचिंतन के रूप में)।

6. महाप्राण ध्वनि के साथ प्रयोग संपन्न करें। 2 मिनिट

17.8 अपरिग्रह

भारतीय मूल्य मीमांसा में 'अपरिग्रह' को एक सद्गुण के रूप में ग्रहण किया गया है। योग दर्शन में पांच यमों में से यह एक है। जिसे योगियों के लिए ग्रहणीय एवं आचरणीय बताया गया है। गीता में भी योगी को निराशीः (बिना किसी इच्छा के) और अपरिग्रही होना जरूरी बताया गया है। हिंदू दर्शन के अतिरिक्त जैन और बौद्ध आचारशास्त्रों में भी अपरिग्रह को विशेष महत्त्व दिया गया है। हिंदू मूल्यमीमांसा में अर्थ को अपने स्वाभाविक रूप में विकसित होने का कभी समर्थन नहीं मिला। अर्थ को मूल्यवान तभी समझा गया जब वह धर्म द्वारा नियमित और मर्यादित हो। अर्थ एक साधन मूल्य है वह साध्य कभी नहीं हो सकता। अतः अर्थ की मूल्यवत्ता तभी हो सकती है जब वह साधन के रूप में उपयागी हो। अर्थ का संग्रह सभी धर्मों में वर्जित है। अर्थ का संग्रह केवल उतना ही मान्य है जितना कि मनुष्य को अपने जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक हो।

17.8.1 अपरिग्रह का स्वरूप

भगवान् महावीर ने लोकमांगलिक चेतना से अनुप्राणित होकर समाज को नया चिन्तन दिया। अहिंसा धर्म का सैद्धांतिक रूप है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने सिद्धांत को जीवन में प्रतिष्ठित करने के लिए अपरिग्रह परमो धर्मः का सूत्र दिया। यह धर्म का व्यावहारिक और प्रायोगिक स्वरूप है। अपरिग्रह अहिंसा का पूरक है। अहिंसा की प्रतिष्ठा अपरिग्रह पर निर्भर है। अपरिग्रह से तात्पर्य है– चेतन–अचेतन पदार्थों में मूर्च्छा का अभाव। आयारो में उल्लेख आया है– इस जगत् में जितने भी अपरिग्रही मनुष्य हैं, वे इन वस्तुओं में मूर्च्छा न रखने के कारण ही अपरिग्रही हैं।

किसी भी वस्तु, रस व व्यक्ति के साथ अपना संबंध न रखना तथा सबसे निर्लिप्त रह कर जीवन व्यतीत करना 'अपरिग्रह महाव्रत' का पालन कहलाता है। जैन मुनियों के लिए 'अपरिग्रह व्रत' का अभिप्राय बहुत विस्तृत तथा गम्भीर है। संपत्ति का संचयन करना तो साधारण बात है, पर किसी भी वस्तु के साथ किसी भी प्रकार का ममत्व न रखना जैन मुनियों के लिए परम आवश्यक है। मनुष्य इन्द्रियों द्वारा शब्द, रूप, गन्ध, रस एवं स्पर्श का जो अनुभव प्राप्त करता है, उससे विरत हो जाना अपरिग्रह व्रत के पालन के लिए जरूरी है। इस व्रत के सम्यक् प्रकार से पालन करने पर मनुष्य अपने परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

योगशास्त्र में भी मूर्च्छा को परिग्रह व मूर्च्छा के त्याग को अपरिग्रह कहा है–

सर्वभावेषु मूर्च्छायास्त्यागः स्यादपरिग्रहः।
यदसत्स्वपि जायेत मूर्च्छया चित्तविप्लवः।।

अमूर्च्छा का तात्पर्य है– चित्तविप्लव का अभाव या रागद्वेष रहित आत्मपरिणाम। जैन दर्शन के अतिरिक्त अन्य भारतीय दर्शनों में भी– 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः एवं मा कस्यस्विद धनम्' ईशावास्योपनिषद् के ये सूक्त अपरिग्रह की पुष्टि करने वाले हैं। भागवत 7/14/8 में यहां तक कहा गया है–

यावद् भ्रियत जठरं, तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योभिमन्येत, स स्तेनो दंडमर्हति।।

अर्थात् जितने से पेट भरे उतना ही मनुष्य के लिए अधिकृत है। उतना ही उसका स्वत्व है। शेष उसका नहीं है, दूसरों का है। जो व्यक्ति उससे अधिक अपने अधिकार में लेना चाहता है वह चोर है और दण्ड पाने का अधिकारी है। क्योंकि हम अपनी आवश्यकता के अतिरिक्त जितना ही अधिक परिग्रह करते हैं उतना ही हम दूसरों की आवश्यकताओं से उसे वंचित करते हैं। इसलिए अपरिग्रही व्यक्ति अपनी आवश्यक इच्छाओं पर भी नियंत्रण रखता है। तभी अपरिग्रह की साधना में निखार आता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

17.8.2 अपरिग्रही कौन ?

अपरिग्रह शब्द दो शब्दों के योग से बना है। अ+परिग्रह। अ का तात्पर्य है– निषेध। परिग्रह का अर्थ है– पदार्थ प्रतिबद्ध चेतना का विकास, वैभाविक चेतना का विकास। द्रव्य परिग्रह का संबंध पदार्थ प्रतिबद्ध चेतना से है। इन दोनों अवस्थाओं का अभाव ही अपरिग्रह है। द्रव्य और भाव परिग्रह से मुक्त व्यक्ति ही अपरिग्रही हो सकता है।

1. जो काम–भोगों के प्रति अनासक्त हो।

2. जो प्राणियों के प्राणों का अतिपात–हनन नहीं करता।

3. जो धन, धान्यादि परिग्रह व कषाय परिग्रह से मुक्त है।

आयारो में इसी संदर्भ में अहिंसक को भी अपरिग्रही कहा गया है। जो प्राणियों के प्रति अहिंसक है और पापकर्म नहीं करता वह महान अग्रंथ–परिग्रह मुक्त कहलाता है। अर्थात् अपरिग्रही होता है। परिग्रह बुद्धि का त्याग करने वाला परिग्रह का त्याग कर सकता है। ममत्व का अर्थ है– मेरा, मेरापन की भावना। मूर्च्छा का परिष्कार करने वाला ममत्व बुद्धि का त्याग कर अपरिग्रही हो सकता है। अस्तु जो पदार्थ का संग्रह नहीं करता, उनके प्रति मूर्च्छा नहीं करता और मेरेपन की भावना नहीं रखता, वही अपरिग्रही हो सकता है।

17.8.3 अपरिग्रह का महत्त्व

वीतराग और संयम का मर्मज्ञ मुनि जन्म और मृत्यु को जानकर अहिंसा और अपरिग्रह में प्रवृत्त होता है। विवेक संपन्न प्रज्ञावान पुरुष जानता है कि महाआरंभ और महापरिग्रह करने वाला जीव अधोगति में जाता है। इसलिए वह ज्ञ परिज्ञा से परिग्रह के परिणामों को जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से उसका परित्याग करता है। अपरिग्रह की साधना का प्रयोजन है– गतिचक्र, जन्म–मरण की परंपरा का अंत कर स्वरूप में प्रतिष्ठित होना।

अपरिग्रह की पुष्टि के लिए अपरिग्रही बनने का संकल्प करना भी आवश्यक है। जब तक मन में होउकामेणं और अपरिग्गहा भविस्सामो। हम अपरिग्रही होंगे, यह भावना जागृत नहीं होती तब तक अपरिग्रह की दिशा में गति नहीं हो सकती। संकल्प का जागरण मूर्च्छा पर चोट करता है। मूर्च्छा टूटने से अपरिग्रह की स्थिति स्वतः घटित हो जाती है।

17.8.3.1 गांधीजी की दृष्टि में अर्थशास्त्र – गांधीजी के दर्शन में जीवन के सर्वांगीण विकास की इच्छा निहित है। उन्होने इसके लिए अपने आदर्शों को व्यवहार के धरातल पर प्रतिपादित किया। गांधीजी को ऐसे आदर्श और सिद्धान्त स्वीकार नही थे जिनमें भौतिकता आध्यात्मिकता पर अपना प्रभुत्व जमा ले।

गांधीजी के अहिंसात्मक समाज में ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का बड़ा महत्त्व है। वे पूँजी के विरोधी थे, किन्तु वे इस व्यवहारिकता को भी समझते थे कि कितना भी मनुष्य में परिवर्तन क्यों न आ जाए, कुछ न कुछ धन पर आधारित असमानता का शेष रह जाना सम्भव है। इसलिए यह आवश्यक है कि पूँजी पति के पास जो पूँजी है वह वास्तव में जनता की एक धरोहर है और जनता के विश्वास का एक प्रतिक है। ऐसा उन लोगों को समझना चाहिए जिनके पास अधिक पूँजी है और उस पूँजी को लोक कल्याण के लिए लगाना चाहिए। गांधीजी ने पूँजीपतियों और मजदूरों के बीच की समस्या का समाधान हिंसात्मक संघर्ष में नहीं देखा बल्कि, पूँजीपति और मजदूर संबन्धों में प्रेम और ह्रदय परिवर्तन के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। सर्वोदय की आर्थिक व्यवस्था में असमानता को कोई स्थान नहीं है, न पूँजी के संचय को ही कोई स्थान है।

गांधीजी के अर्थशास्त्र में श्रम–प्रधान है और पूँजी गौण। उनके अनुसार श्रम के लिए पूँजी का प्रयोग होना चाहिए, न कि पूँजी के लिए श्रम का। उन्होंने श्रम को एक महान सम्पति माना और श्रमिक को भी एक ट्रस्टी माना। गांधीजी अतिरिक्त लाभ को मूल रूप से पूँजीवाद का प्रतिफल मानते हैं। वह ऐसी अर्थव्यवस्था के प्रबन्धन की बात करते हैं जिसमें आर्थिक समानता के पर्याप्त अवसर सुलभ हों। व्यवहार रूप में पूँजीवादी प्रणाली संसार के लिए आज एक अभिशाप बन गई है। इसमें समाज का धन मुट्ठी भर व्यक्तियों के हाथ में एकत्र हो जाता है जिनका उत्पादन के साधनों पर एकाधिकार रहता है। मजदूर के लिए पूँजीपति के साथ ठहराव करने की स्वतंत्रता का अर्थ पूँजीपति की बात को मानना है। आर्थिक अवस्था में कोई संतुलन नहीं है। तेजी मंदी के दौर आते रहते हैं। बेकारों की फौज बढती ही जाती है। पूँजीपतियों और मजदूरों के झगड़े विकराल रूप धारण करते जाते हैं। पिछड़े देशों को उपनिवेश बनाने की चेष्टा होती है औद्योगिक देशों की व्यापारिक प्रतिस्पर्धा बढकर युद्ध का रूप धारण करती है।

1937 में 'हरिजन' में महात्मा गांधी ने कहा था– "सच्ची अर्थव्यवस्था कभी भी उच्चतम नैतिक स्तर के विरुद्ध मोरचा खड़ा नहीं करती, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार संपूर्ण नीतिशास्त्र को अपने नाम की सार्थकता के अनुरूप उत्तम अर्थव्यवस्था होना ही चाहिए।" सोलह वर्ष बाद 1953 में इसी नगर में संयुक्त वाणिज्य मंडल के समक्ष बोलते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, "मैं यह मानने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के लिए तैयार नहीं कि उद्योग को समृद्ध करने का एक ही रास्ता है– संग्रह की वृत्ति को बढ़ावा देने का यह विश्वास करना कि प्राणिमात्र ऐसे होते ही हैं कि इस परिग्रह वृत्ति के बिना वे समुचित रूप से काम नहीं कर सकते, मानव जाति के साथ घोर अन्याय करना होगा। दुनिया के महान् कार्य संचय की प्रवृत्ति से नहीं, बल्कि त्याग की प्रवृत्ति से किए गए हैं।''

अपरिग्रह से संबंधित गांधी जी के विचार 31 जुलाई 1937 के 'हरिजन' में प्रकाशित हुए थे, ''मैं कॉलेज शिक्षा में क्रांति ला दूंगा और उसे राष्टीय जरूरतों से जोड़ दूंगा। उसके अधीन यांत्रिक तथा अन्य इंजीनियरों को उपाधियां दी जाएंगी। उन्हें विभिन्न उद्योगों के साथ जोड़ा जाएगा और वे उद्योग अपनी जरूरत के स्नातकों की टेनिंग के लिए पैसा देंगे। मेडिकल कालिजों को प्रमाणित अस्पतालों में संबद्ध कर दिया जाएगा। क्योंकि अस्पताल धनवानों में लोकप्रिय हैं, अतः धनवानों से आशा की जाती है कि वे मेडिकल कॉलिजों को सहारा देने के लिए स्वेच्छा से योगदान करेंगे।'' इस प्रकार अर्जन के साथ विसर्जन के महत्त्व को समझने वाला ही अपरिग्रह की ओर चरणन्यास कर सकता है।

17.8.3.2 आचार्य महाप्रज्ञ की दृष्टि में अर्थशास्त्र – आज समाज की जो दयनीय स्थिति है उसका मूल है आवश्यकता से अधिक संग्रह; जिससे मानव समाज में जीवनोपयोगी सामग्री का व्यवस्थित रूप से वितरण नहीं हो पा रहा है। एक तरफ धनाढ्य वर्ग के पास धन का अम्बार लगा है तो दूसरी ओर गरीबी की चरम सीमा भी परिलक्षित होती है। ऐसी विषम परिस्थितियों में भगवान महावीर का अपरिग्रहवाद जन–जन के लिए उपयोगी साबित हो सकता है। भगवान महावीर ने गृहस्थों के लिए मर्यादित परिग्रह रखने का विधान किया और श्रमणों के लिए पूर्ण अपरिग्रह महाव्रत का विधान किया।

वर्तमान अर्थशास्त्र और भगवान महावीर के युग के अर्थशास्त्र के कुछ कोणों पर विचार करें तो आधुनिक अर्थशास्त्र के तीन मुख्य आधार हैं– अ. इच्छा, ब. आवश्यकता, स. मांग।

महावीर के अर्थशास्त्र के तत्त्वों पर विचार करें तो आधुनिक अर्थशास्त्र में चार बातें और जोड़ देनी चहिए–

अ. सुविधा, ब. वासना, आसक्ति या मूर्छा, स. विलासिता, द. प्रतिष्ठा

इन सूत्रों के आधार पर अर्थनीति का निर्धारण होता है और आदमी अर्थार्जन की वृत्ति में संलग्न होता है। प्रश्न है– महावीर ने इस विषय में क्या नया सूत्र दिया? क्या इच्छा को अस्वीकार किया? महावीर ने इच्छा को अस्वीकार नहीं किया। उन्होंने स्वयं कहा– इच्छा हु आगाससमा अणंतया अर्थात् इच्छा आकाश के समान अनन्त है। क्या आवश्यकता की बात को रोकने की बात कही? उन्होंने यह भी नहीं कहा कि आवश्यकताओं को समाप्त कर दो, उनका प्रयोग मत करो। उन्होंने इनके साथ संयम शब्द का प्रयोग किया और कहा इच्छा का संयम करो, आवश्यकता का संयम या सीमाकरण करो।

महावीर ने कहा– अर्थार्जन में मूल्यों का ह्रास न हो। महावीर की अवधारणा और आधुनिक अर्थशास्त्र की अवधारणा में इस दृष्टि से हम बहुत अन्तर देखते हैं। आर्थिक विकास में मूल्यों का ह्रास न हो, यह अनिवार्य शर्त रही। आज स्थिति दूसरी हो गयी है। केनिज ने स्पष्ट कह दिया– अभी यह समय नहीं आया है कि हम मूल्यों पर विचार करें या नैतिकता पर विचार करें। जब सभी धनवान बन जायेंगे, तब इस पर विचार करने की जरूरत पड़ेगी। यह बहुत बड़ा अन्तर है, महावीर की अर्थशास्त्रीय अवधारणा और आज की अर्थशास्त्रीय अवधारणा में।

आचार्यश्री कहते हैं कि नैतिकता शुद्ध आध्यात्मिक प्रश्न है फिर भी इसे सामाजिक परिस्थितियों, आर्थिक व्यवस्थाओं से कभी अलग नहीं किया जा सकता। जहां आर्थिक विकास होता है, वहां अनैतिकता नहीं होती ऐसा नहीं है, फिर भी आर्थिक अभाव की स्थिति में अनैतिकता पनपने का अधिक अवकाश रहता है, अधिक संभावनाएं रहती हैं।

17.8.4 अपरिग्रह की अनुप्रेक्षा

अपरिग्रह की अनुप्रेक्षा का प्रयोग नियमित करने से अपरिग्रह की भावना पुष्ट बनती है और परिग्रह के प्रति होने वाली आसक्ति धीरे–धीरे कम हो जाती है।इसकी प्रयोग विधि इस प्रकार है –

1. महाप्राण ध्वनि 2 मिनिट
2. कायोत्सर्ग 5 मिनिट
3. विशुद्धि केन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर अपरिग्रह की अनुप्रेक्षा करें– "मैं व्यक्तिगत संग्रह और भोगोपभोग की सीमा करूंगा।" इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें। फिर इसका नौ बार मानसिक जप करें। 10 मिनिट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. अनुचिंतन करें– "नैतिकता के विकास के लिए इच्छाओं का अल्पीकरण आवश्यक है। असीमित इच्छाएं ही अतृप्ति एवं अशांति का मूल कारण हैं। मुझे इच्छाओं के अल्पीकरण की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए, जिससे मैं जीवन में आंतरिक शांति और सुख का अनुभव कर सकूं।"

"असीमित अर्थ–संग्रह और भोगोपभोग अनेक समस्याओं को जन्म देते हो। इससे समाज में विषमता पैदा होती है। व्यक्ति क्रूर आचरण और पाशवीय व्यवहार करने पर उतारू हो जाता है। मैं अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति में संतुष्ट रहकर अपना जीवन बीताने का प्रयत्न करूंगा।"

"मुझे नैतिकता का जीवन जीना है, इसलिए यह आवश्यक है कि मैं परिग्रह–वृत्ति का नियंत्रण करूं।" 10 मिनिट

5. महाप्राण–ध्वनि के साथ प्रयोग सम्पन्न करें। 2 मिनिट

17.9 सारांश

मूल्य सामाजिक संबंधों को संतुलित करने तथा सामाजिक व्यवहारों में एकरूपता उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध होते हैं। मूल्य समाज के सदस्यों की आंतरिक भावनाओं पर आधारित होते हैं। इस कारण ये मूल्य सामाजिक जीवन को वह मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं जो कि समाज व्यवस्था व संगठन के लिए आवश्यक होता है। कुछ मूल्य शाश्वत हैं, कुछ युग और काल सापेक्ष हैं तथा अपने आप में परिवर्तनशील हैं। नैतिक मूल्य तीन प्रकार के हैं – व्यक्तिनिष्ठ, समाजनिष्ठ तथा राष्ट्रनिष्ठ। प्रामाणिकता का अर्थ है अपने प्रति सच्चा रहना। यद्यपि प्रामाणिकता का बीज हर मनुष्य में छिपा रहता है। कुछ मनुष्यों में निमित्त पाकर वह अंकुरित हो जाता है और कुछ व्यक्तियों में आन्तरिक प्रेरणा से प्रामाणिकता का भाव अंकुरित हो जाता है। जिसमें प्रामाणिकता की भावना स्वतः जागृत होती है वह परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होता।

17.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारतीय जीवन का आदर्श मूल्य क्या है?
2. संयम से जीव क्या प्राप्त करता है?
3. भारतीय संस्कृति का आधार क्या है?
4. स्व की खोज का मार्ग क्या है?
5. अहिंसा का पूरक क्या है?
6. द्रव्य और भाव परिग्रह से मुक्त व्यक्ति ही................हो सकता है।
7. संकल्प का जागरण..................पर चोट करता है।
8. सत्य......................की आधार–शिला है।
9. अहिंसक वह है जो......................नहीं होता।
10. संयम का अर्थ है.................अपनी इच्छाओं का नियमन।
11. दुनिया का सबसे बड़ा जनतंत्रात्मक देश कौन–सा है?
12. आत्मानुशासी व्यक्ति कौन हो सकता है?
13. आत्म–नियंत्रण की पहली शर्त क्या है?
14. भगवान महावीर ने निर्जरा के कितने प्रकार बताए हैं?
15. उपवास के साथ–साथ................को साधना जरूरी है।
16. भीषण...............रखने वाले भी भय से संत्रस्त है।
17. नये सृजन की प्रतीक्षा का प्रथम द्वार है–................।
18. नैतिकता का आधार है–.................।
19. आप्त वह है जो....................है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. करुणा के स्वरूप का वर्णन करें।
2. आत्मानुशासन के महत्त्व पर प्रकाश डालें।
3. अपरिग्रह के स्वरूप को लिखें।
4. सत्य के महत्त्व पर प्रकाश डालें।

निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रामाणिकता के स्वरूप एवं महत्त्व को बताते हुए उसके प्रकारों का विश्लेषण करें।
2. अहिंसा के स्वरूप एवं महत्त्व को बताते हुए स्पष्ट करें कि अहिंसक कौन हो सकता है?

17.11 संदर्भ ग्रंथ

1. जैनेन्द्र सिद्धांत कोश भाग–2 – क्षु. जिनेन्द्र वर्णी।
2. शिक्षा के आयाम – डॉ. शंकरदयाल शर्मा।
3. अमूर्त चिंतन – आचार्य महाप्रज्ञ।
4. ज्ञानार्णव – आचार्य शुभचन्द्र।
5. सर्वार्थसिद्धि – आचार्य पूज्यपाद।
6. भगवती आराधना – आचार्य शिवार्य।
7. बीती ताहि विसारि दे – आचार्य तुलसी।
8. भारतीय जीवनमूल्य – सुरेन्द्र कुमार वर्मा।
9. शांतिपर्व में नैतिक मूल्य – डॉ. हरिवंश अनेजा।
10 जैनभारती, 3 जुलाई, 1966।
11. समाजशास्त्र के सिद्धांत – श्यामधर सिंह।
12. हरिजन, 31 जुलाई, 1937।
13. उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धांत – रवीन्द्रनाथ मुकर्जी।
14. अहिंसा और अणुव्रत – समाकलन मुनि सुखलाल, डॉ. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी 'रत्नेश'।
15. मानवता के रजत कण – यशपाल जैन।
16. भारतीय संस्कृति का विकास – सत्यकेतु विद्यालंकार।
17. भारतीय जीवन मूल्य – सुरेन्द्रकुमार वर्मा।
18. जैन भारती, 11 सितम्बर, 1966।
19. वेदामृतम् : सुखी जीवन – डॉ. कपिलदेव द्विवेदी।
20. आचारांगभाष्य – भाष्यकार आचार्य महाप्रज्ञ।
21. प्रश्नव्याकरणसूत्र – वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, संपादक आचार्य महाप्रज्ञ।
22. आयारो का आचारमीमांसात्मक विश्लेषण – डॉ. साध्वी शुभ्रयशा।
23. संबोधि का समीक्षात्मक अनुशीलन – डॉ. समणी स्थितप्रज्ञा।
24. धर्म के दशलक्षण – डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल।
25. विश्वचेतना तथा सर्वधर्म समभाव – डॉ. महावीर सरन जैन।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–18 : अनुप्रेक्षा द्वारा मानसिक मूल्यों का विकास– चित्त की एकाग्रता, मानसिक संतुलन, मनोबल / संकल्पशक्ति, धैर्य एवं शिथिलिकरण

इकाई की रूपरेखा

18.0 प्रस्तावना

18.1 उद्देश्य

18.2 चित्त की एकाग्रता

18.2.1 चित्त की एकाग्रता का स्वरूप

18.2.2 चित्त की एकाग्रता का महत्त्व

18.2.3 चित्त की एकाग्रता के प्रयोग

18.3 मानसिक संतुलन

18.3.1 मानसिक असंतुलन के कारण

18.3.2 मानसिक संतुलन के उपाय

18.3.3 मानसिक संतुलन की अनुप्रेक्षा

18.4 मनोबल / संकल्प शक्ति

18.4.1 संकल्प शक्ति का स्वरूप

18.4.2 संकल्प शक्ति का महत्त्व

18.4.3 मनोबल बढाने के उपाय

18.4.4 संकल्प शक्ति के प्रयोग

18.5 धैर्य का स्वरूप

18.5.1 धृति बल भावना

18.5.2 धीर कौन?

18.5.3 साधना का सूत्र–प्रतिक्षा

18.5.4 धैर्य की निष्पत्ति–विधायक चिन्तन

18.5.5 धैर्य की अनुप्रेक्षा

18.6 शिथिलीकरण (तनाव मुक्ति)

18.6.1 तनाव के हेतु

18.6.2 शिथिलीकरण का अर्थ

18.6.3 शक्ति सुरक्षा का उपाय

18.6.4 मनोविज्ञान और तनावमुक्ति

18.6.5 क्रोध और मनोविज्ञान

18.6.6 तनाव विसर्जन का सूत्र

18.6.7 अध्यात्म की प्रक्रिया

18.6.8 कायोत्सर्ग का महत्त्व

18.6.9 कायोत्सर्ग की पांच भूमिकाएं

18.6.10 कायोत्सर्ग की प्रक्रिया

18.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

18.8 सारांश

18.9 संदर्भ ग्रन्थ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

18.0 प्रस्तावना

आधुनिक मनोविज्ञान के दृष्टिकोण में लक्ष्य–प्राप्ति ही मूल्य है। इससे स्पष्ट है कि व्यक्ति लक्ष्य–प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयास करता है। क्योंकि यह उसके लिए एक मूल्य है। मासलो मूल्य को एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया मानता है। एच. मारगेनो मूल्य की परिभाषा मानवीय आवश्यकताओं के संतोष के अर्थ में करते हैं।

मूल्य व्यवहार के कांक्रीट गोल्स नहीं हैं बल्कि इन लक्ष्यों के पक्ष में हैं। मूल्य वे मापदंड हैं जिनके द्वारा ध्येय चुने जाते हैं। जो ध्येय किसी व्यक्ति के लिए सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, वह उसके लिए सर्वाधिक मूल्यवान् है। जो लोग अपने मूल्यों के अनुसार व्यवहार करते हैं, वे वैसी ही प्राथमिकता अपने ध्येय को देते हैं। मूल्य वांछनीय एवं संभव को व्यक्त करता है। मूल्यों का निर्धारण समाज विशेष का दर्शन करता है। जिस समाज का जैसा दर्शन होता है, वैसे ही उस समाज के मूल्य होते हैं।

18.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप जान पायेंगे कि –

1. चित्त की एकाग्रता क्या होती है।
2. मानसिक असंतुलन के कारणों को समझ पायेंगे।
3. मानसिक संतुलन के उपायों को पढ सकेंगे।
4. संकल्प शक्ति के महत्त्व को समझ सकेंगे।
5. धैर्य के स्वरूप एवं निष्पत्ति को जान पायेंगे।
6. तनाव के कारणों को समझ सकेंगे।
7. तनाव विसर्जन के सूत्रों का परिचय भी प्रस्तुत इकाई के माध्यम से प्राप्त कर पायेंगे।

18.2 चित्त की एकाग्रता

निष्ठा का अर्थ है चित्त की स्थिरता, मन को केन्द्रित करने का अभ्यास। यह शिक्षा का अनिवार्य अंग होना चाहिए। पुराने जमाने में माना जाता था कि ध्यान करना, मन को एकाग्र करने का अभ्यास करना योगियों का काम है। आज इस विचार में बहुत परिवर्तन हो चुका है। अब इस विचार की प्रस्थापना हो चुकी है कि योग हर सामाजिक व्यक्ति के लिए आवश्यक है और इसलिए आवश्यक है कि उसकी साधना से व्यक्ति सफल जीवन जी सकता है।

18.2.1 चित्त की एकाग्रता का स्वरूप

चित्त की एकाग्रता का अर्थ है– चिंतन प्रवाह को एक ही दिशा में प्रवाहित करना। अनेक मार्गों में जाते हुए प्रवाह को एक मार्ग में नियोजित कर देना। आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार– एकाग्रता प्रारम्भिक ध्यान साधना के लिए बहुत जरूरी है। उसकी साधना के लिए कुछ विषयों पर ध्यान केन्द्रित करना जरूरी है।

1. मन में उत्पन्न होने वाले विकल्पों का उत्तर मत दो, उनकी उपेक्षा करो।
2. ध्येय की एक आकृति पर ही मन केन्द्रित हो। मन की शक्ति को एक ही मार्ग से बहने दो।
3. इष्ट वस्तु पर शीघ्र मन एकाग्र होता है।
4. अनेक विचारों का क्रम भी यदि तद्रूप हो तो यह एकाग्रता का साधन बन सकता है।

एकाग्रता सविकल्प ध्यान है। वह जैसे–जैसे सघन बनती है, विकल्प और विचार निःशेष होते चले जाते है। एकाग्रता की प्रथमावस्था में शब्दबोध और अर्थबोध दोनों होते है। एकाग्रता को सघन करने के लिए सूक्ष्म आलम्बन आवश्यक है। प्रथम अवस्था में श्वास के साथ अर्हं का जप किया जाता है। ध्यान करने वाला बाहर के शब्द को सुनता है और उसके अर्थ पर भी ध्यान देता है। एकाग्रता की दूसरी अवस्था में शब्द सुनाई देता है, अर्थ पर ध्यान नहीं जाता है। श्वास लेने और छोड़ने के क्षण में भी ध्वनि होती है। उस ध्वनि को सुनने का अभ्यास एकाग्रता को सघन बनाता है। एकाग्रता की तीसरी अवस्था में शब्द भी सुनाई नहीं देता। शब्दातीत चेतना के क्षण में सूक्ष्म सत्य को पकड़ने की शक्ति पैदा होती है। एकाग्रता आवेग और मानसिक अनियमितता पर विजय पाने का एक मार्ग है। एकाग्रता की कला हस्तगत होने पर शेष कलाएं अपने आप प्राप्त हो जाती हैं। निर्विचार अवस्था अतीन्द्रिय चेतना के जागरण के लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। कोई भी साधक प्रथम चरण में निर्विचार नहीं होता। जैसे–जैसे एकाग्रता सघन होती है, निर्विचार अवस्था आ जाती है। ऐसी अवस्था में मस्तिष्क में अल्फा तरंगे पैदा होती हैं जो कि व्यक्ति को अपूर्व आनन्द से सराबोर कर देती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

18.2.2 चित्त की एकाग्रता का महत्त्व

मन को प्रशिक्षित करने का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है– एकाग्रता का विकास। वृत्तियों के कारण मन स्वभावतः चंचल होता है। जब उसे चंचल बनाने के अनेक साधन उपलब्ध हो जाते हैं तब उसकी च्चलता और अधिक वृद्धिंगत हो जाती है। आज मन को चंचल बनाने के जितने साधन सुलभ हो उतने अतीत में नहीं थे। अतीत में साधन ही बहुत कम थे। पदार्थ विकास के साथ–साथ भौतिक साधन बढ़ रहे हैं। भौतिक साधनों के द्वारा मन की चंचलता और अधिक बढ़ जाती है। रेडियो, टेलीविजन, समाचार–पत्र, पत्रिकाएं आदि उपकरण जानकारी के अच्छे साधन माने जाते हैं। किंतु वे चंचलता को बढ़ावा देने वाले भी हैं। सिनेमा मनोरंजन का अच्छा साधन माना जाता है, पर वह मन को चंचल बनाने का अनुत्तर उपाय है। जितने दृश्य और श्रव्य साधन हैं, वे सब चंचलता को बढ़ाने में निमित्त बनते हैं। जो व्यक्ति समाचार–पत्रों को पढ़ता है, वह हत्या, मारकूट, लूटखसोट, बलात्कार, अपहरण आदि की घटनाओं को पढ़कर अनेक संवेदनों से भर जाता है। इन्टरनेट एवं मोबाइल क्रांति के दुरूपयोग ने आग में घी डालने का कार्य किया है। कोई भी व्यक्ति साधारण दशा में अपराध नहीं कर सकता है, पर जब उसमें अपने विचारों के कारण प्रदूषण हो जाता है तो वह अपराध कर डालता है। इसलिए मन को प्रशिक्षित करने के लिए एकाग्रता जरूरी है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने एकाग्रता की महत्ता को स्वीकारते हुए कहा है–

जो खविदमोहकलुसो विसयविरत्तो मणो–णिरुंभित्ता।
समवट्ठिदो सहावे सो अप्पाणं हवदि झादा।

अर्थात् जो पुरुष मोह रूपी मैल को क्षय करता हुआ विषयों से विरक्त होकर चित्त को बाह्य विषयों से रोककर अपने स्वरूप में एकाग्र–निश्चल भाव से ठहरता है, वह पुरुष आत्मा का ध्यान करने वाला होता है।

एकाग्रता की साधना से सहिष्णुता, तितिक्षा, आत्मानुशासन सधता है। इसलिए इसका जीवनव्यापी महत्त्व है।

18.2.3 चित्त की एकाग्रता के प्रयोग

समय का प्रयोग – आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने एकाग्रता के कुछ प्रयोग हमारे सामने प्रस्तुत किए हैं, जो इस प्रकार हैं।

1. घड़ी के सामने बैठकर मन को किसी एक शब्द, विचार या एक वस्तु पर टिका दीजिए। आप जितने क्षणों तक एकाग्र रहें उसे अंकित करते चले जाइए। साप्ताहिक प्रगति का लेखा–जोखा करते रहें। अभ्यास करते–करते आप दस–पंद्रह मिनट तक एकाग्रता की स्थिति में पंहुच जाएंगे। फिर आगे का मार्ग स्वयं स्पष्ट हो जाएगा। इस एकाग्रता का प्रभाव हमारे व्यक्तित्व पर ही नह , जीवन के प्रत्येक पहलू पर होगा।

2. द्रष्टा की स्थिति – मन की चंचलता को रोकने का यत्न मत कीजिए। वह जहां जैसे जाता है, उसे देखते रहिए। उस समय दृश्य या ज्ञेय मन को ही बना लीजिए। उस समय तटस्थ द्रष्टा के रूप में जागरूक रहकर मन का अध्ययन ही नहीं कर पाएंगे, किंतु उस पर अपना प्रभुत्व भी स्थापित कर लेंगे।

3. विकल्पों की उपेक्षा – आपके मन में जो विकल्प उठते हैं, उनकी उपेक्षा कीजिए। जो प्रश्न उठते हैं, उनके उत्तर मत दीजिए। जैसे प्रश्न करने वाला व्यक्ति उपेक्षा पाकर मौन हो जाता है, वैसे ही मन भी शांत हो जाता है।

4. अप्रयत्न – मन को स्थिर करने का बलात् प्रयत्न मत कीजिए। अप्रयत्न से मन सहज ही शांत हो जाता है। शरीर को स्थिर और श्वास को मन्द कीजिए। जैसे–जैसे शरीर और श्वास मन्द होगा, वैसे–वैसे मन अपने आप शांत हो जाएगा।

5. श्वास–योग – मन का श्वास की गति के साथ योग कीजिए। श्वास के आने जाने के क्रम पर ध्यान लगाइए, श्वास की गिनती कीजिए, मन अपने आप श्वास में लीन हो जाएगा।

6. आकृति आलम्बन – अपने आराध्य की आकृति का मानसिक चित्र बनाइए। पहले देश, काल और बाह्य वातावरण के साथ उस आराध्य की आकृति की कल्पना कीजिए, फिर उसे मानसिक चित्र के रूप में बदल दीजिए। उस चित्र को बहुत स्पष्ट और प्राणवान् जैसा कीजिए। यदि प्रारम्भ में ऐसा करना कठिन लगे तो दृश्य आकृतियों पर मन को स्थापित कीजिए और साथ–साथ मानसिक चित्र बनाने का भी अभ्यास कीजिए।

7. शब्द आलम्बन – इष्ट मंत्रों में मन को लगाइए। मन का प्रवाह शब्द की दिशा में प्रवाहित होकर अन्य विकल्पों से शून्य हो जाता है।

8. दृढ़ इच्छाशक्ति – इच्छा–शक्ति भावों से उत्पन्न होती है। भावों की प्रबलता का नाम ही इच्छा–शक्ति है। भावों को इच्छा–शक्ति के रूप में बदलने का साधन है, स्वतः सूचन (Auto Suggestion)। मन को सूचना देने से भावों में उत्तेजना प्रारम्भ होती है और वही इच्छा–शक्ति के रूप में परिणत हो जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9. आकाश दर्शन।

10. रात्री में भीतर चन्द्र दर्शन।

11. अंधकार में ज्योति दर्शन।

12. दीर्घ श्वास प्रेक्षा का अभ्यास।

13. अनिमेष प्रेक्षा का अभ्यास।

14. मौन का अभ्यास।

15. आहार संयम का अभ्यास।

इच्छा–शक्ति के विकास का निरंतर अभ्यास करने से वह दृढ़ हो जाती है। दृढ़ इच्छा–शक्ति से मन की एकाग्रता सहज ही सध जाती है।

18.3 मानसिक संतुलन

एक बार किसी ने अब्राहम लिंकन से प्रश्न किया कि आपकी सफलता का रहस्य क्या है? अब्राहम लिंकन ने जवाब दिया कि 'मैं अपने व्यक्तित्व को सदैव प्रफुल्ल बनाये रखता हूं। इसका आधार है, मानसिक संतुलन। मैंने अपने मन को नियंत्रण में कर रखा है। मैं कभी भयानक विचारों को अपने पास फटकने नहीं देता। मैं हमेश आशा, उत्साह और प्रगति के स्वप्न देखता हूं। जब कभी दुश्चिंताएं घेरने लगती हैं, तो मैं सुखद कल्पनाएं करने लगता हूं। ऐसी कल्पन एं करता हूं कि मन में स्फूर्ति का संचार हो। मेरी सफलता का रहस्य मेरा मानसिक नियंत्रण है।'

लिंकन का जवाब न केवल लिंकन की सफलता का रहस्य है, वरन् इस सूत्र को अपना कर मानव मात्र अपने जीवन में सफलता को प्राप्त कर सकता है। वह अपने व्यक्तित्व को निखार सकता है।

18.3.1 मानसिक असंतुलन के कारण

मानसिक असंतुलन के अनेक कारण हैं, उनमें से प्रमुख कारण निम्न हैं –

18.3.1.1 आवेश – आवेश मानसिक असंतुलन का एक बहुत बड़ा कारण है। आवेश का प्रभाव सबसे पहले हमारे नाड़ी संस्थान पर पड़ता है, जिससे अनुकंपी नाड़ी–संस्थान (सिम्पेथेटिक नर्वस सिस्टम) अत्यधिक सक्रिय हो जाता है। मांसपेशियों में तनाप पैदा हो जाता है। इस असंतुलन का सीधा प्रभाव हमारे मन पर पड़ता है। आवेश में आकर के ही व्यक्ति आत्महत्या करता है। आत्महत्या के आंकड़े प्रतिवर्ष बढ़ते चले जा रहे हैं जो विश्वभर में चिंता का विषय है।

आवेश के कारण ही व्यक्ति हिंसा में लिप्त होता है। आतंकवाद जैसे दहशत फैलाने वाले कार्यों में प्रवृत्त होता है। आवेश में व्यक्ति अपना भान भूल जाता है कि वह क्या कर रहा है और उसकी निष्पत्ति क्या होगी? पाश्चात्य् देशों में आऐ दिन आवेश ग्रस्त व्यक्तियों द्वारा गोलीबारी के द्वारा आम जनता की हत्या सुर्खियों में रहती है।

18.3.1.2 आग्रह – मानसिक असंतुलन का दूसरा कारण है आग्रह। पारिवारिक संघर्ष का मूल कारण भी आग्रह है। आग्रह के कारण व्यक्ति परिवार में समायोजन नहीं कर पाता है। आग्रह के कारण ही परिवार में धीरे–धीरे कलह का वातावरण हो जाता है। एक ही घर में दीवारें खिंच जाती हैं। अलग–अलग चूल्हे जलाए जाते हैं। पुत्र पिता की बात मानने को तैयार नहीं होता और पिता पुत्र की बात स्वीकार नहीं करता। वह अपने आप के आग्रह पर डटा रहता है। ऐसी स्थिति में मानसिक संतुलन चरमरा जाता है। आग्रह के कारण व्यक्ति रागाज गें भी राबको राथ लेकर नहीं चल राकता है और वह रागाज रो भी कट जाता है।

18.1.1.3 पक्षपात – मानसिक असंतुलन का तीसरा कारण है पक्षपात। परिवार का मुख्य व्यक्ति यदि पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाता है तो उससे परिवार में विघटन होना प्रारंभ हो जाता है। वैसे ही व्यक्ति समाज में किसी संस्था के पद पर है और वह सबको साथ लेकर नहीं चलता है, पक्षपातपूर्ण व्यवहार करता है तो समाज में राजनीति की दरार पड़ जाती है। अतः पक्षपात मानसिक असंतुलन का एक बहुत बड़ा कारण है।

18.3.1.4 असंतुलित आहार – असंतुलित आहार के कारण भी मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। व्यक्ति संतुलित भोजन नहीं करता है तो पोषक तत्त्वों के अभाव में दिमाग का संतुलन बिगड़ जाता है। संतुलित भोजन से मतलब है– कार्बोहाइड्रेट, श्वेतसार, वसा, प्रोट्रीन, लवण आदि तत्त्वों से युक्त भोजन करना। इस प्रकार संतुलित आहार से व्यक्ति का स्वभाव, व्यवहार और आचरण भी संतुलित रहता है और भोजन यदि असंतुलित हो तो व्यक्ति का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

18.3.1.5 नाड़ी संस्थान की दुर्बलता – नाड़ी संस्थान की दुर्बलता के कारण व्यक्ति का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। अनुकंपी और परानुकंपी नाड़ी संस्थान में असंतुलन होता है तो नाड़ी दौर्बल्य बढ़ जाता है। जिस व्यक्ति का पृष्ठरज्जु अच्छी तरह से काम नहीं करता है या व्यक्ति अत्यधिक झुक करके बैठता है उसके कारण भी असंतुलन पैदा हो जाता है।

18.3.2 मानसिक संतुलन के उपाय

उपर्युक्त मानसिक असंतुलन के जो उपरोक्त पांच कारण बताए गए हैं – यदि इन पांचों के ऊपर प्रेक्षाध्यान के द्वारा विजय प्राप्त कर ली जाती है, अनुकंपी और परानुकंपी नाड़ी–संस्थान को संतुलित कर लेते हो तो हमारे संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण होगा। इस हेतु महत्त्वपूर्ण प्रयोग है– श्वास प्रेक्षा और शरीर प्रेक्षा का। श्वस प्रेक्षा और शरीर प्रेक्षा के द्वारा हमारा नाड़ी–संस्थान सुदृढ़ होता है और कुछ रसायनों की भी पूर्ति होती है जिससे मानसिक संतुलन बढ़ता है।

शिव खेड़ा ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'जीत आपकी' में मानसिक संतुलन के कुछ उपाय निर्दिष्ट किए हो, जो निम्न हैं –

1. हर व्यक्ति और हर हालात में अच्छाई ढूंढे।
2. खुश रहने का फैसला करें।
3. अपने मापदंड समझदारी से तय करें।
4. गलत आलोचना से परेशान न होने की शक्ति बढ़ाएं।
5. हर छोटी से छोटी चीज में भी खुशी तलाशना सीखें।
6. याद रखें कि समय कभी एक जैसा नहीं रहता है। उतार–चढ़ाव तो जीवन का हिस्सा है।
7. हर परिस्थिति का भरपूर आनंद लें।
8. रचनात्मक कार्यों में खुद को लगाए रखें।
9. खुद से कम भाग्यशाली लोगों की मदद करें।
10. चीजों पर काबू पाना सीखें। चिंतामग्न न रहें।
11. खुद को और दूसरों को माफ करना सीखें। अपने और दूसरों के प्रति द्वेष–भाव न रखें।

18.3.3 मानसिक संतुलन की अनुप्रेक्षा

प्रेक्षाध्यान में मानसिक संतुलन की अनुप्रेक्षा के द्वारा विधायक चिन्तन का निर्माण करके मानसिक संतुलन को बढ़ाया जा सकता है। इसकी प्रयोग विधि इस प्रकार है –

1. महाप्राण ध्वनि — 2 मिनिट

2. कायोत्सर्ग — 5 मिनिट

3. हरे रंग का श्वास लें। अनुभव करें– श्वास के साथ हरे रंग के परमाणु भीतर प्रवेश कर रहे हैं। — 3 मिनिट

4. दर्शनकेन्द्र पर हरे रंग का ध्यान करें। — 3 मिनिट

5. दर्शनकेन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर अनुभव करें– 'आवेश अनुशासित हो रहे हैं। मानसिक संतुलन बढ़ रहा है'– (इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें, फिर इसका नौ बार मानसिक जप करें)। — 5 मिनिट

अनुचिंतन करें–

अस्वस्थ मन शरीर को अस्वस्थ बनाता है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए मानसिक स्वास्थ्य बहुत जरूरी है। अस्वाभाविक आकांक्षा, असहिष्णुता, अवांछनीय घटना मन को असंतुलित बना देती है। मानसिक असंतुलन सफलता की बहुत बड़ी बाधा है। समस्या का सामना करना और मानसिक संतुलन खोना एक बात नहीं है। मैं समस्या से जूझते हुए भी अपना मानसिक संतुलन बनाए रखूंगा। मेरा विश्वास है कि प्रेक्षाध्यान के अभ्यास द्वारा मै अपने मन को इतना साध लूंगा कि वह प्रतिकूल परिस्थितियों में भी संतुलित रह सके। 10 मिनिट

6. महाप्राण ध्वनि के साथ ध्यान संपन्न करें। — 2 मिनिट

18.4 मनोबल / संकल्पशक्ति

प्रत्येक व्यक्ति के भीतर अनंत शक्ति का खजाना विद्यमान है। लेकिन यह व्यक्ति के अपने पुरुषार्थ पर निर्भर करता है कि वह अपनी सुषुप्त शक्ति कितनी जागृत कर पाता है। जिस व्यक्ति की संकल्प शक्ति जितनी सुदृढ़ होगी, आस्था घनीभूत होगी वह व्यक्ति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अपने पुरुषार्थ के द्वारा अपने भाग्य को भी बदल सकता है। इसलिए आवश्यकता है कि हम मनोबल रूपी कुंजी को समृद्ध बनाएं तो सफलता हमारे चरण चूमेगी। अपने आत्मविश्वास के कारण ही नेपोलियन बोनापार्ट इतिहास पुरुष बन गया। प्रकृति की महान शक्तियां भी मानवीय इच्छाशक्ति के सामने पराभूत हो जाती हैं। जगत में परिदृश्यमान सभी क्रिया–कलाप, मानव की समस्त गतिविधियां और उपलब्धियां, मानवीय इच्छा की ही अभिव्यक्तियां हैं।

18.4.1 संकल्प शक्ति का स्वरूप

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार– "मनुष्य की यह इच्छाशक्ति चरित्र से उत्पन्न होती है और वह चरित्र कर्मों से गठित होता है, अतएव जैसा कर्म होता है, इच्छाशक्ति की अभिव्यक्ति भी वैसी ही होती है।"

संकल्प एक महान शक्ति है। ऋषियों एवं महापुरुषों ने संकल्प के आधार पर ही साधना में सिद्धि को प्राप्त किया। विज्ञान की अप्रत्याशित सफलता भी संकल्प शक्ति का ही चमत्कार है। जीवन विकास के लिए अटूट श्रद्धा, विश्वास, धैर्य, साहस, दृढ़ संकल्प और इच्छाशक्ति का होना बहुत जरूरी है।

संकल्प द्वारा मानव की इच्छित शक्तियाँ जागृत हो जाती हैं जिस प्रकार किसी कठिन कार्य को पूरा करने के लिए मानव अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देता है, उसी प्रकार वह अपने संकल्प को पूरा करने के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति को एकत्रित करके एक स्थान पर लगा देता है। जिस प्रकार सूर्य की बिखरी हुई किरणों से कागज या कपड़ों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता परन्तु जब उन्हें आतसी शीशे द्वारा एकत्रित कर लिया जाता है तो वे कागज एवं कपड़ों को जला डालती है। उसी प्रकार जब मनुष्य अपने मन को चारों ओर से हटाकर केवल एक कार्य की पूर्ति में लगा देता है तो उसे निश्चित सफलता मिलती है। संकल्प सुप्त शक्तियों को जगाने का माध्यम है। जिस प्रकार विस्फोटक पदार्थ स्वयं नहीं फटते, अग्नि के सहयोग से ही उनकी शक्ति विकसित होती है, उसी प्रकार मनुष्य के पास अनेक शक्तियां हैं परन्तु वह उनका उपयोग करना नहीं जानता। संकल्प एक विद्युत है जो सुप्त शक्तियों के अणु–अणु में गति का संचार करती है। दृढ़ इच्छा–शक्ति मानसिक क्षेत्र का वह दुर्ग है, जिसमें किसी ब्राह्य परिस्थिति, अनावश्यक कल्पना, बुरे विचारों का प्रवेश नहीं हो सकता। दृढ़ इच्छा–शक्ति, संपन्न व्यक्ति जीवन के भयंकर झंझावातों में भी अजेय चट्टान की तरह अडोल और स्थिर रहता है।

18.4.2 संकल्पशक्ति का महत्त्व

स्वेट मार्डन ने आत्मविश्वास की महत्ता को उजागर करते हुए कहा है– उत्तरी ध्रुव की खोज करने वाले पियरे की आत्मविश्वास की भावना का दूसरा उदाहरण खोजने पर भी नहीं मिल सकता। उसके कष्टों की केवल कल्पना की जा सकती है। न जाने कितनी बार उसके प्राण संकट में फंसे। उसका जलयान टूट गया। सारे साथी बिछुड़ गए। फिर भी वह अविचलित रहा। वह किसी भी कीमत पर उत्तरी ध्रुव देखे बिना वापस लौटना नहीं चाहता था। अन्ततः एक दिन उसने उत्तरी ध्रुव को प्राप्त कर ही लिया। बड़े–बड़े पहाड़ों को भी हिला देने वाली शक्ति का नाम है आत्मविश्वास। जिसके मन में आत्मविश्वास आ गया, उसके सारे सपने, सारी इच्छाएं अपने आप पूरी हो जाती हैं। छोटे–छोटे पदों पर काम करने वाले सैंकडों–हजारों लोग हैं। कुछ ही ऐसे लोग होते हैं जो उच्च पदों पर पहुंच पाते हैं। इसका एकमात्र कारण है उनका आत्मविश्वास। अधिकांश लोग आत्मविश्वास के अभाव में छोटे से दायरे में सीमित रह जाते हैं।

मूल बात है कि जैसा हमारा मनोबल होगा, वैसा ही हमारा जीवन बनेगा। यदि हम अपने जीवन को आशा से भरपूर, स्फूर्तिमय और उल्लास से परिपूर्ण रखते हैं, तो दुनिया की कोई भी ताकत नहीं है कि वह हमारे कार्य में बाधक बन सके। जो व्यक्ति आत्मविश्वास के साथ कार्य करता है उसे निश्चित रूप से सफलता मिलती है।

एक व्यक्ति ने एक दार्शनिक से प्रश्न किया कि जीवन का विघ्न क्या है? दार्शनिक ने तपाक से जवाब दिया कि डर, निराशा और संदेह। पुनः उस व्यक्ति ने प्रश्न किया कि जीवन का रहस्य क्या है? दार्शनिक ने जवाब देते हुए कहा कि 'आत्मविश्वास, उत्साह और शक्ति।' अतएव मनोबल, संकल्पबल और आत्मबल के आधार पर व्यक्ति अपनी शक्ति का सदुपयोग करता है, गंगा के प्रवाह की भांति अपने पुरुषार्थ की गति को निरंतर प्रवाहमान रखता है तो वह अपने अभूतपूर्व व्यक्तित्व का निर्माण कर सकता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है हमारे सामने आचार्यश्री महाप्रज्ञ का। मंद बुद्धि वाला एक साधारण बालक अपने दृढ़ संकल्प, गुरुकृपा एवं प्रबल पुरुषार्थ से केवल दार्शनिक जगत में ही नहीं अपितु अध्यात्म जगत में भी एक महान विभूति के रूप में प्रतिष्ठित हो गए।

18.4.3 मनोबल बढ़ाने के उपाय

मनोबल को बढ़ाने से पूर्व हमें समझना होगा कि वस्तुतः मनोबल है क्या? यह मन की सकारात्मक और क्रियात्मक क्रिया है जो हमें अभीष्ट कार्यों को निश्चितरूप से करने और अनिष्ट कार्यों से वैसे ही निश्चितरूप से बचने को प्रेरित, प्रवृत्त और सक्षम बनाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. मनोबल हमें अनुकूल और प्रतिकूल दोनों स्थितियों में दृढ़ संकल्पी बन आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है– "उठो साहसी बनो, वीर्य सम्पन्न बनो। याद रखो कि तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो। तुम जो कुछ बल या सहायता चाहो, सब तुम्हारे भीतर ही विद्यमान है।' आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने अपनी पुस्तक का नाम ही दिया है– 'मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता'; इस मूलभूत तथ्य पर हमारी दृढ़ निष्ठा और अटल श्रद्धा होनी चाहिए।
2. मनोबल के विकास के लिए दृढ़ इच्छाशक्ति का होना बहुत जरूरी है। जब हमारी इच्छाशक्ति विकसित होगी तभी मनोबल मजबूत हो सकता है।
3. जब हमारा दृढ़ निश्चय परिपक्व हो जाता है तब हमारी संपूर्ण इच्छाशक्ति एक दिशागामी हो जाती है। फिर बाहरी बाधाएं अपने आप निरस्त हो जाती हैं।
4. मनोबल के विकास के लिए हमारे मार्ग में अवरोधक तत्त्व भी दस्तक दे सकते हैं लेकिन हमारी संकल्पशक्ति केवल अपने लक्ष्य के अनुरूप सृजनधर्मिता का अनुसरण करती है।
5. मनोबल के विकास के लिए भावक्रिया पूर्वक इच्छाशक्ति को विकसित किया जाए तो हमें निश्चित रूप से अपने साध्य में सफलता प्राप्त होगी।
6. मनोबल के विकास के लिए एकाग्रता का विकास पहली शर्त है। एकाग्रता के द्वारा ही हमारी इच्छाशक्ति सुदृढ़ बनेगी।

18.4.4 संकल्पशक्ति के प्रयोग

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने 'भीतर की ओर' नामक पुस्तक में संकल्प सिद्धि के निम्न प्रयोग बताए हैं–

1. संकल्प की भाषा का निर्धारण करें, कायोत्सर्ग की मुद्रा में बैठे। तीन बार बोलकर संकल्प दोहराएं। फिर मानसिक रूप में तीन बार दोहराएं। उसके बाद श्वास का संयम करें। तीन बार पूरक व तीन बार श्वास का संयम। दस मिनिट तक यह प्रयोग चलता रहे। श्वास संयम के समय शब्द छूट जाते हैं। उस क्षण में संकल्प आत्मगत होकर पुष्ट बन जाता है।

2. दृढ़ निश्चय से अनुकूल प्रतिकूल परिस्थिति को झेलने की क्षमता पैदा होती है और उस क्षमता से संकल्पशक्ति मजबूत बनती है। संकल्प के निम्न प्रयोग हो सकते है–

1. एक घंटा सर्दी सहूंगा, कष्ट से विचलित नहीं होऊंगा।
2. एक घंटा गर्मी सहूंगा, कष्ट से विचलित नहीं होऊंगा।
3. एक घंटा भूख सहूंगा, कष्ट से विचलित नहीं होऊंगा।
4. एक घंटा दंश सहूंगा, कष्ट से विचलित नहीं होऊंगा।
5. एक घंटा आक्रोश सहूंगा, कष्ट से विचलित नहीं होऊंगा।
6. एक घंटा वध सहूंगा, कष्ट से विचलित नहीं होऊंगा।
7. एक घंटा रोग सहूंगा, कष्ट से विचलित नहीं होऊंगा।
8. गर्मी में ठंड का प्रयोग, बर्फ का अनुभव करें।
9. ठंड में गर्मी का प्रयोग, उष्णता का अनुभव करें।

नियमित अभ्यास से संकल्प–शक्ति और अधिक मजबूत हो जाती है।

3. हम जिस कार्य के लिए संकल्प का प्रयोग करते हो, उस कार्य में हमारा परिणमन शुरु हो जाता है और वह निश्चित अवधि के बाद एक आकार ले लेता है। उसका अभ्यास निम्नलिखित विधि से किया जा सकता है– वज्रासन की मुद्रा में बैठे। पृष्ठरज्जु सीधा रहे। दीर्घ श्वासपूर्वक पूरक करें। श्वास संयम के समय स्वतः सूचना का प्रयोग करें– प्राण का प्रवाह दर्शनकेन्द्र की ओर जा रहा है। वैसा ही मानसिक चित्र बनाएं। तीन मिनिट तक इसका प्रयोग करें। फिर पांच मिनिट तक केवल दीर्घ श्वास का प्रयोग करें। भावना करें– मेरा आत्मबल बढ़ रहा है। मेरी संकल्पशक्ति का विकास हो रहा है। रेचन के साथ भावना करें– मानसिक दुर्बलता निःश्वास के साथ बाहर निकल रही है।

4. संकल्प की धारणा करो। दृढ़ निश्चय की भाषा में बोलकर दोहराओ। दृढ़ निश्चय की भाषा में उपांशु जप करो। दृढ़ निश्चय की भाषा में मानसिक जप करो। त्रिबंध करके कुंभक के समय तीन बार संकल्प दोहराओ। फिर धारणा करो– मस्तक के पिछले भाग से रश्मियां निकल रही हैं और कार्यक्षेत्र में पहुंचकर अपना कार्य कर रही हो। पहले अपने ज्ञानतंतुओं को कृत्य का निर्देश दें। फिर कर्मतन्तुओं को अपनी इच्छानुसार कार्य करने का निर्देश दें। संकल्प के अनुसार चित्र का निर्माण करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

18.5 धैर्य

चरक संहिता में धृति का अर्थ है मनोनियामिका धृतिः मन का नियमन करने वाली शक्ति है धृति। मंगल भावना का चौथा संकल्प है– 'धृति संपन्नोऽहम् स्याम्'। मैं धृति संपन्न बनूं। आचार्य श्री महाप्रज्ञ के अनुसार धृति वह तत्त्व है जो व्यक्ति के मन में सदाचार के प्रति आस्था को दृढ़ करती है। सामान्यतः व्यक्ति कोई भी अच्छा काम करता है और उसे शीघ्र ही उसका सुफल नहीं मिलता है तो वह दुराचार की ओर प्रवृत्त हो जाता है। किंतु जिस व्यक्ति में धैर्य होता है वह परिणाम के प्रति अनातुर रहता हुआ सत्क्रिया करता रहता है। वर्तमान की परिस्थिति में व्यक्ति अधीर बन गया। धैर्य की चेतना लुप्त सी हो रही है। आज का व्यक्ति प्रतीक्षा करना नहीं जानता। वह तत्काल समस्या का समाधान चाहता है। तत्काल बीमारी का इलाज चाहता है। बुखार हो गया, तुरन्त डॉक्टर को बुलाते हैं। तेरापंथ धर्मसंघ के अष्टम आचार्य श्री कालूगणि कहा करते थे कि यदि ज्वर सामान्य होता है तो लंघन करने से तीन दिन के बाद ज्वर स्वतः समाप्त हो जाता है। ज्वरादौ लंघनं श्रेयः अर्थात् ज्वर की आधि में लंघन श्रेय है। आयुर्वेद का भी यही सूत्र है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति के अनुसार डॉक्टर एण्टीबायोटिक देकर बुखार उतारते हैं। आयुर्वेदीय पद्धति से ज्वर समाप्त करने की धृति नहीं रही है। धृति के बिना सारी व्यवस्था गड़बड़ा जाती है। टॉलस्टॉय से एक युवक ने पूछा– सफलता का सूत्र क्या है? टॉलस्टॉय ने कहा– सफलता का सूत्र है– धैर्य। युवक ने फिर पूछा– कब तक रखूं? क्या धैर्य रखने से चलनी में पानी टिक जाएगा? टॉलस्टॉय पानी बर्फ न बन जाए, तब तक धैर्य रखो। पानी चलनी में टिक जाएगा।

18.5.1 धृति बल भावना

भगवती आराधना विजयोदया टीका में परीषहों को सहने के लिए धृति बल भावना का उल्लेख मिलता है। उसका अर्थ है दुःख आने पर कातर नहीं होना। धैर्य ही बल है ऐसी भावना का निरंतर अभ्यास करने से साधक बावीस परीषहों के ऊपर विजय प्राप्त कर लेता है।

धैर्य बहुत सारी समस्याओं का समाधान करता है। तात्कालिकता, आकस्मिकता और उतावलेपन में कई बातें बिगड़ जाती हैं। जर्मनी में हत्या आदि में जितने भी मामले होते हैं, उन्हें तत्काल नहीं लिया जाता है। परिणाम यह होता है कि 75 प्रतिशत व्यक्ति मामला दर्ज ही नहीं कराते हैं। गुर्जिएफ रूस के बहुत बड़े साधक थे। उन्होंने अपने पिता के जीवन के अंतिम क्षणों में अंतिम शिक्षा देने को कहा। पिता ने कहा– मेरी यही शिक्षा है कि क्रोध आए तो चौबीस घंटों तक क्रोध मत करो। क्या चौबीस घंटे के बाद क्रोध आएगा? नहीं, ऐसा नहीं होगा। चौबीस घंटा शांत रहने के बाद क्रोध आ ही नहीं पाएगा। आवश्यकता है सोचने–समझने और मनन करने की। कम से कम एक घंटा प्रतीक्षा की जाए धैर्य रखा जाए, तो कई समस्याओं से बचा जा सकता है।

18.5.2 धीर कौन?

धीर कौन हो सकता है? इसको परिभाषित करते हुए श्रीसूत्रकृतांगचूर्णि में कहा गया है– 'धीरो इति बुद्ध्यादीन् गुणान् दधाती धीरः' अर्थात् जो बुद्धि आदि गुणों को धारण करता है वह धीर होता है। भर्तृहरि ने नीतिशतकम् में कहा है–

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

अर्थात् कोई निंदा करे या कोई स्तुति करे, लक्ष्मी अपनी इच्छानुसार आए अथवा जाए, मृत्यु उसका वरण आज करे या युग बीत जाने पर करे लेकिन धीर पुरुष न्यायपथ से अंश मात्र भी विचलित नहीं होते हैं, ऐसा नीतिनिपुणों का कहना है। आचारांगभाष्य में कहा गया है– 'अग्गं च मूलं च विगिंच धीरे' अर्थात् हे धीर! तू अग्र और मूल का विवेक कर। महावीर की दृष्टि न केवल अग्र का स्पर्श करती है और न केवल मूल का स्पर्श करती है, किंतु वह दोनों का स्पर्श करती है। प्रस्तुत सूत्र में अग्र क्या है और मूल क्या है, इसका स्पष्ट निर्देश नहीं है। उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है– राग और द्वेष ये कर्म के बीज हैं। इससे ज्ञात होता है कि राग और द्वेष मूल हैं और इन दोनों के हेतुभूत कर्म अग्र हैं। दशाश्रुतस्कन्ध आगम में कहा गया है– मूल मोहनीय कर्म और शेष कर्म अग्र हैं। राग–द्वेष को भी पहचानना है और साथ–साथ अन्य कर्मों को भी पहचानना है। केवल मोहनीय कर्म को ही नहीं पहचानना है, किंतु शेष सभी कर्मों की पहचान करनी है। यही है उभय दृष्टि का संस्पर्श। धीर पुरुष संयम और तप के द्वारा राग–द्वेष को छिन्न कर आत्मदर्शी हो जाता है।

18.5.3 साधना का सूत्र – प्रतीक्षा

आज के युग की सबसे बड़ी कठिनाई है कि आदमी प्रतीक्षा करना नहीं चाहता, वह तत्काल फल चाहता है। आज ही बीज बोया और आज ही उसका फल मिल जाए, यह उसका प्रयत्न रहता है। यह अधैर्य, प्रतीक्षा न करने की वृत्ति साधना का विघ्न है।

साधना के मार्ग में जल्दबाजी खतरनाक होती है। धीमे–धीमे अभ्यास को बढ़ाना चाहिए, अन्यथा शरीर का संतुलन बिगड़ जाता है। उसे संभाल पाना कठिन हो जाता है। धैर्य के साथ चलें, पूर्ण जागरूक रहें ताकि अधैर्य की स्थिति पैदा ही न हो। अमन की भूमिका

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

को प्राप्त करने के लिए उतावलापन न हो। मन की भूमिका जब समुचित ढ़ंग से चलती रहेगी, आलम्बन शुद्ध और मन की एक दिशागामिता बनी रहेगी तो लक्ष्य एक दिन अपने आप प्राप्त हो जाएगा। अमन की अवस्था प्राप्त हो जाएगी। सत्य खोज की दिशा में प्रस्थान प्रारम्भ हो जाएगा।

18.5.4 धैर्य की निष्पत्ति – विधायक चिंतन

भक्त ने कहा– भगवन्! दूसरे लोग उपकार करने वाले का ध्यान नहीं रखते जितना कि आप अपना अपकार करने वाले का रखते हैं। उपकारी का ध्यान रखना स्वाभाविक है। आप अपकारी पर जितना ध्यान देते हैं, उतना लोग उपकार करने वाले का भी नहीं रखते। यह आप की अलौकिकता है।

संगम देव ने भगवान महावीर को बहुत कष्ट दिये। साधारण आदमी के जीवन में यदि इस प्रकार की स्थिति आती है तो वह सोचता है, कितना नीच है, तुच्छ है, मुझे अनावश्यक सता रहा है। उसका धैर्य टूट जाता है और वह वापस बदला लेने की भी ठान लेता है। धैर्य के सुमेरु भगवान महावीर ने सोचा– मेरे निमित्त से संसार का उद्धार हो रहा है, पर यह संगम देव मेरे निमित्त से डूब रहा है। आप ने उसके उत्थान की चिंता की।

मार्क्स ने सबसे पहले साम्यवाद के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इसके लिए उसे बहुत भटकना पड़ा। लोग उसे पागल समझ कर मकान से निकाल देते थे, इतना ही नहीं उसे देश से भी निष्कासित कर देते थे। जिन्होंने संसार को कुछ नया अवदान दिया है, उनको उनके ही भक्तों द्वारा अपमान सहना पड़ा है।

सुकरात महान् तत्त्ववेत्ता था। आज भी पश्चिमी देशों में वह प्रथम कोटि का तत्त्वज्ञ माना जाता है। उसने रूढ़िगत धारणा के विरुद्ध सत्य की घोषणा की थी, इसीलिए उसे जहर का प्याला पीना पड़ा। ईशु को फांसी पर चढ़ना पड़ा, क्योंकि उन्होंने तत्कालीन धर्म के विरुद्ध बातें कही थीं। आचार्य भिक्षु को अनगिनत कष्टों का सामना करना पड़ा, क्योंकि उन्होंने आचार शैथिल्य के विरुद्ध सत्य की क्रांति की थी। धीर पुरुष के सोचने का क्रम है– कभी कोई उसे गाली देता है तो वह सोचता है, गाली ही दी पीटा तो नहीं।

देवास में आचार्य श्री तुलसी ने ज्योंहि व्याख्यान देना प्रारम्भ किया, अचानक शोरगुल सुनाई दिया। लोगों ने गुरुदेव से प्रार्थना की कि आप ऊपर पधार जाएं, क्योंकि पत्थर आने की संभावना है। तत्काल पत्थर आने लगे, निशाना बनाया गया आचार्य श्री के सिर को परन्तु पत्थर लगा आचार्य श्री की पीठ पर। ऐसी स्थिति में भी आचार्य श्री ने कोई प्रतिक्रिया नहीं की थी। उन्होंने कहा था इतने से ही काम टल गया। हो सकता है कोई पत्थर की जगह गोली भी मार दे। प्राण लूटने पर धार्मिक व्यक्ति या साधक सोचेगा, प्राण ही लूटा, पर धर्म तो नहीं लूटा। जो धीर पुरुष होता है, वह खैर मना लेता है। यह जो विधायक चिंतन की मनोवृत्ति है, वह साधनाशील या तत्त्ववेत्ताओं में प्राप्त होती है।

18.5.5 धैर्य की अनुप्रेक्षा

जिन व्यक्तियों में सहनशीलता, एकाग्रता, दृढ इच्छाशक्ति के गुण होतें हैं, उनमें धैर्य का गुण भी सहज ही पाया जाता है। धैर्य के गुण के विकास के लिए उपरोक्त गुणों के विकास के साथ–साथ धैर्य की अनुप्रेक्षा को अभ्यास भी करना चाहिये। धैर्य की अनुप्रेक्षा की प्रायोगिक प्रविधि इस प्रकार है –

1. महाप्राण ध्वनि — 2 मिनिट
2. कायोत्सर्ग — 5 मिनिट
3. पीले रंग का श्वास लें। अनुभव करें श्वास के साथ पीले रंग के परमाणु भीतर प्रवेश कर रहे हो। — 3 मिनिट
4. प्राणकेन्द्र पर पीले रंग का ध्यान करें। — 3 मिनिट
5. प्राणकेन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें–"मैं परिस्थिति को झेलने की क्षमता को विकसित करूंगा, उससे पराजित नहीं होऊंगा"– (इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें फिर इसका नौ बार मानसिक जप करें)। — 5 मिनिट

अनुचिंतन करें–

जिसमें उतावलापन होता है, जो उचित समय की प्रतीक्षा करना नहीं जानता उसका मन अधिक चंचल हो जाता है। अधिक चंचलता मन को अस्त–व्यस्त बना देती है। इससे स्मृति और एकाग्रता की शक्ति कम होती है। इसलिए धैर्य रखना बहुत जरूरी है। मै धैर्य रखने का अभ्यास करूंगा। — 10 मिनिट

6. महाप्राण ध्वनि के साथ ध्यान सम्पन्न करें। — 2 मिनिट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

18.6 शिथिलीकरण (तनाव मुक्ति)

शिथिलीकरण को समझने से पूर्व हमें तनाव क्या है यह समझना जरूरी है। जब किसी पदार्थ पर पड़ने वाले दबाव से पदार्थ के आकार में परिवर्तन हो जाता है तो उसे तनाव या तान कहा जाता है। इस प्रकार प्रस्तुत संदर्भ में तनाव का अर्थ होगा व्यक्ति के सुख–चैनपूर्ण जीवन में पैदा होने वाली गड़बड़ी यानी बेचैनी। जो परिस्थिति हमारी सामान्य जीवन–धारा को अस्त–व्यस्त कर दे, उसे तनाव पैदा करने वाली परिस्थिति कहा जाता है। जब किसी व्यक्ति के सामने ऐसी तनावोत्पादक स्थिति उत्पन्न होती है तो तत्काल हमारा आंतरिक तंत्र सक्रिय हो जाता है।

18.6.1 तनाव के हेतु

तनाव का मुख्य हेतु है भावानात्मक आवेश। इसका दूसरा कारण है शरीर और मन की अधिक चंचलता। प्राचीन साहित्य में संताप का उल्लेख मिलता है। वर्तमान में उसे तनाव कहा जाता है। तनाव तीन प्रकार का होता है– 1. शारीरिक तनाव, 2. मानसिक तनाव, 3. भावात्मक तनाव।

प्रतिकूल परिस्थिति भी तनाव पैदा करती है–

1. भौतिक समस्या से उत्पन्न तनाव।
2. आर्थिक समस्या से उत्पन्न तनाव।
3. पारस्परिक व्यवहार से उत्पन्न तनाव।
4. संवेग की अधिकता से उत्पन्न तनाव।
5. संवेदनशीलता की अधिकता से उत्पन्न तनाव।
6. चंचलता की अधिकता से उत्पन्न तनाव।
7. प्रवृत्ति की अधिकता से उत्पन्न तनाव।

तनाव के विषय में वर्तमान विज्ञान का चिंतन भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। शरीर विज्ञान में तनाव के अनेक कारण बतलाए गए हैं–

1. जब श्वास में ऑक्सीजन कम होता है तब मस्तिष्क में तनाव हो जाता है।

2. अनुकम्पी नाड़ी तंत्र की अधिक सक्रियता, एड्रिनेलिन का स्राव और थायरॉक्सिन का अधिक स्राव भी तनाव के कारण बनते हो।

18.6.2 शिथिलीकरण का अर्थ

शिथिलीकरण का अर्थ है– चंचलता की निवृत्ति, शरीर का पूरा स्थिरीकरण अर्थात् शरीर की सारी प्रवृत्तियों का विसर्जन करना ही शिथिलीकरण है।

हमारे शरीर में दो प्रकार के नाड़ी संस्थान हैं– स्वतः चालित नाड़ी संस्थान और इच्छाचालित नाड़ी संस्थान। कायोत्सर्ग के द्वारा इच्छाचालित नाड़ी संस्थान को स्थिर किया जाता है। कायोत्सर्ग का अभ्यास परिपक्व होने पर इच्छाचालित नाड़ी–संस्थान पर नियंत्रण सध जाता है तो स्वतः चालित नाड़ी–संस्थान अपने आप संतुलित हो जाता है। हृदय की धड़कन कम हो जाती है। श्वास की दर कम हो जाती है। रक्त–संचालन क्रिया भी मंद पड़ जाती है। ऑक्सीजन की खपत कम हो जाती है। परिणाम स्वरूप भीतर में असीम शांति का अनुभव होता है।

18.6.3 शक्ति सुरक्षा का उपाय

शक्ति का संचय और शक्ति की सुरक्षा का एक उपाय है तनाव से बचना। जो तनाव से बचना नहीं जानता, वह मानसिक दृष्टि से शक्तिशाली नहीं हो सकता और शारीरिक दृष्टि से भी उसे काफी कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं। शरीर का तनाव शरीर की शक्ति को कम करता है। मानसिक तनाव मन की शक्ति को और भावनात्मक तनाव आत्मा की शक्ति को क्षीण करता है। जब तक शक्ति को क्षीण करने वाले तत्त्वों का हमें ज्ञान नहीं होगा तब तक हम उन तत्त्वों से निपट नहीं पाएंगे और उनसे निपटे बिना शक्ति का संचय नहीं हो सकेगा। शक्ति जागरण का पहला उपाय है– शिथिलीकरण। शिथिलीकरण अर्थात् प्रवृत्ति का विसर्जन। जब प्रवृत्ति का विसर्जन होता है तब भीतरी शक्तियों को जागने का अवसर मिलता है। जो व्यक्ति कायोत्सर्ग साध लेता है, वह शक्ति जागरण का बीजमंत्र प्राप्त कर लेता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

18.6.4 मनोविज्ञान और तनावमुक्ति

मनोवैज्ञानिक मानसिक समस्याओं के समाधान के लिए बहुत प्रयत्नशील हैं। डॉ. जॉर्ज स्टीवन्सन और डॉ. टील ने एक पुस्तक लिखी है– 'लाइफ टेन्सन एण्ड रिलेक्सेशन'। इस पुस्तक में तनावमुक्ति के कुछ उपाय निर्दिष्ट हैं। उनका कथन है कि जब क्रोध आए या क्रोध का तनाव बढ़े तब किसी न किसी प्रकार के शारीरिक श्रम में लग जाना चाहिए, जिससे कि ध्यान बंट जाने के कारण क्रोध का आवेग कम हो जाए। दूसरा प्रयोग यह है कि जब क्रोध आदि का आवेग आए तब स्वाध्याय या किसी मनोरंजन में लग जाना चाहिए। ये दोनों उपाय भी तात्कालिक हैं, सामयिक हैं, समस्या को स्थायी रूप में समाहित नहीं कर सकते।

18.6.5 क्रोध और मनोविज्ञान

मनोवैज्ञानिक शोध के अनुसार यदि व्यक्ति नौ मिनिट तक क्रोध के आवेश में रहता है तो नौ घंटे तक काम में प्रयुक्त होने वाली शक्ति नष्ट हो जाती है।

धर्मशास्त्र क्रोध के दुष्परिणामों की लंबी तालिका प्रस्तुत करते हैं। वह सारी तालिका नरक के संदर्भ में है। क्रोध करने वाला नरकगामी होता है। क्षमा करने वाला स्वर्ग को प्राप्त होता है। मध्यकाल में इन दो शब्दों में सारी समस्या को बांध लिया गया। आज का आदमी इस भाषा को नहीं समझ सकता कि क्रोध करने से नरक मिलता है और क्षमा करने से स्वर्ग मिलता है। एक बार यह मान भी लिया जाए कि क्रोध करने से नरक मिलता है तो भी उसके लिए कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि उसके मन में न नरक का भय है और न स्वर्ग का प्रलोभन है। आदमी इस भय और प्रलोभन से ऊपर उठ चुका है।

आज की शरीरशास्त्रीय और मानसशास्त्रीय खोजों ने जिन सच्चाइयों का उद्घाटन किया है, वे सचमुच सोचने के लिए बाध्य करती हैं। यह माना गया है कि भावनात्मक आवेगों का जो आघात होता है, उसे न रोकना चाहिए और न दबाना चाहिए। उनका निरोध और दमन दोनों हितकर नहीं होते। उन आवेगों का तात्कालिक उपाय भी किया जा सकता है किंतु उसे स्थायी मान लेना उचित नहीं होता। मानसिक तनाव को मिटाने में ध्यान बहुत उपयोगी बनता है। जैसे–जैसे ध्यान की परिपक्वता आती है वैसे–वैसे मानसिक तनाव विसर्जित होता चला जाता है।

18.6.6 तनाव विसर्जन का सूत्र

युग प्रधान आचार्य श्री महाप्रज्ञ के अनुसार तनाव विसर्जन का सूत्र है– विचय ध्यान। विचय का अर्थ है– विश्लेषण। प्रेक्षा एक विश्लेषण है। व्यक्ति आत्मविश्लेषण करे – क्रोध क्यों आता है? लोभ क्यों जागता है? मिथ्यादृष्टि क्यों जागती है? हम विश्लेषण नहीं करते हैं तब सारी भावनाएं पनपती रहती हैं। जब हम अपना विश्लेषण प्रारम्भ करते हैं, अपनी ज्ञान शक्ति को जगाते हैं तब ये सारी बातें छूटने लग जाती हैं। जो व्यक्ति अपनी ज्ञान शक्ति का उपयोग नहीं करता, उसमें ये सारी विकृतियां पनपने लग जाती हैं। जब हम अपना विश्लेषण करते हैं तब आर्त्त–रौद्र ध्यान छूट जाते हैं, धर्म–ध्यान शुरु हो जाता है। धर्म–ध्यान का प्रारम्भ होता है विचय के द्वारा, विश्लेषण के द्वारा। यह विचय की प्रक्रिया, विश्लेषण की प्रक्रिया चिकित्सा की प्रक्रिया है। आज का मनोचिकित्सक सबसे पहले विश्लेषण का सहारा लेता है। कोई भी मानसिक बीमारी से ग्रस्त व्यक्ति मनोचिकित्सक के पास जाता है तो चिकित्सक सबसे पहले उसे कायोत्सर्ग कराता है, शिथिलीकरण के लिए कहता है। इसके बाद कहता है– 'अपना विश्लेषण करो, प्रतिक्रमण करो, अतीत की ओर लौटो और अपने मन में जो–जो बातें आएं, निःसंकोच कहते जाओ, छुपाओ मत।' अब वह रोगी अपना विश्लेषण करता है, प्रतिक्रमण करता है। मनोचिकित्सक सुनता जाता है और सुनते–सुनते यह बात पकड़ लेता है कि मन की गांठ कहां घुली है? मानसिक ग्रन्थि कहां बनी है? क्या बीमारी है? कौनसी वृत्ति का दमन हुआ है? किस प्रकार की ग्रन्थि बनी है? वह फिर उस ग्रन्थि को खोलने का प्रयत्न करता है।

18.6.7 अध्यात्म की प्रक्रिया

अध्यात्म की चिकित्सा भी इसी प्रकार चलती है। आर्त्त–रौद्र ध्यान के द्वारा जो ग्रन्थियां बनती हैं, वे ग्रन्थियां शारीरिक और मानसिक विकृतियां पैदा करती हैं, रोग पैदा करती हैं। आचार्य श्री महाप्रज्ञ का मंतव्य है कि मनोविज्ञान का यह सूत्र गलत नहीं है कि जो वृत्ति दबाई जाती है, वह वृत्ति शारीरिक और मानसिक रोग पैदा करती है। अध्यात्म की भाषा में इसका विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है– हमने यदि वृत्ति का दमन किया, दबाने का प्रयत्न किया, उसका रेचन नहीं किया, उसकी निर्जरा नहीं की तो उसका बंध हो जाएगा। वह बंध निरंतर सताता रहता है। क्रोध आता है और चला जाता है। हम मानते है कि क्रोध चला गया यह बहुत बड़ी भ्रांति है। क्रोध आया, स्थूल शरीर से चला गया, पता नहीं चलता कि क्रोध है। क्रोध आया था इस शरीर की आकृति में, वह अणु बनकर हमारे भीतर पैठ गया। कर्म के भी परमाणु हैं। हमारे जो कर्म का बंध होता है वह परमाणु का बंध होता है। आणविक क्रोध हमारे भीतर है। वह सताता रहता है, भीतर में तनाव पैदा करता रहता है। हमें ध्यान के द्वारा निर्जरा करना, रेचन करना, शोधन करना सीखना है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हम क्रोध का दमन न करें, उसका रेचन करें, शोधन करें। हम क्रोध का संवर करें, विवेक करें। जो व्यक्ति अक्रोध बन गया, जिसमें क्रोध का लेश भी नहीं बचा, उस व्यक्ति के परमाणु करुणा का विकिरण करते रहते हैं। उससे आभामण्डल स्वच्छ और सुन्दर बनता है। उस व्यक्ति की प्रत्येक प्रवृत्ति में मधुरता होती है। उसके व्यक्तित्व में निखार आ जाता है। ऐसा व्यक्ति तनाव की समस्या का हल स्वयं खोजने में सक्षम हो जाता है। वह अपने जीवन में तनाव का वेदन नहीं करता, आत्म–प्रदेशों में उसका स्पर्श तक नहीं होने देता। ऐसा व्यक्ति अपने जीवन में परम शांति का अनुभव करता है।

18.6.8 कायोत्सर्ग का महत्त्व

आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार "जैन साधना पद्धति का प्रारम्भ बिंदु है कायोत्सर्ग और अंतिम बिंदु है कायोत्सर्ग। यह ध्यान के प्रत्येक प्रयोग के पूर्व अथवा ध्यान की पूर्व कालावधि में करणीय है। इसका महत्त्व जितना ध्यान की दृष्टि से है, उतना ही स्वास्थ्य की दृष्टि से भी है। ह्रदयरोग, उच्च्य रक्तचाप आदि की स्थिति में कायोत्सर्ग बहुत उपयोगी है। डॉक्टर जिन–जिन स्थितियों में पूर्ण विश्राम का निर्देश देते हो, उन सब स्थितियों में कायोत्सर्ग का प्रयोग किया जा सकता है। हड्डी टूटने पर पट्टा बांधा जाता है, उस स्थिति में भी अस्थिभंग के स्थान पर कायोत्सर्ग का प्रयोग किया जाए तो अस्थिसंधान की गति त्वरित हो जाती है।

18.6.9 कायोत्सर्ग की पांच भूमिकाएं

कायोत्सर्ग के लिए दीर्घकालीन अभ्यास जरूरी है। अभ्यास की कालावधि के आधार पर कायोत्सर्ग की पांच भूमिकाएं बनती हैं–

1. सुझाव – (Auto-Suggestion) पूर्ण एकाग्रता के साथ स्वयं को सुझाव देना।
2. प्राणशक्ति के प्रकम्पनों का अनुभव और प्राणशक्ति के प्रवाह का अनुभव।
3. शरीर और प्राणप्रवाह के भेद का अनुभव। तैजस शरीर या प्राणविद्युत का अनुभव।
4. कर्म शरीर के प्रकम्पनों का अनुभव।
5. शुद्ध चैतन्य का अनुभव।

18.6.10 कायोत्सर्ग की प्रक्रिया

कायोत्सर्ग की प्रायोगिक प्रविधि का अध्ययन हम ईकाई 10 में कर चुके हैं। अतः यहां पर इसकी पुनरावृत्ति नहीं कर रहे हैं।

18.7 सारांश

मूल्य वे मापदंड हैं जिनके द्वारा ध्येय चुने जाते हैं। जो लोग अपने मूल्यों के अनुसार व्यवहार करते हैं, वे वैसी ही प्राथमिकता अपने ध्येय को देते हैं। चित्त की एकाग्रता का अर्थ है – चिंतन प्रवाह को एक ही दिशा में प्रवाहित करना। आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार–एकाग्रता प्रारम्भिक ध्यान साधना के लिए बहुत जरूरी है। मन को प्रशिक्षित करने का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है – एकाग्रता का विकास। भावों की प्रबलता का नाम ही इच्छा–शक्ति है। भावों को इच्छा–शक्ति के रूप में बदलने का साधन है, स्वतः सूचन (Auto Suggestion)। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर अनंत शक्ति का खजाना विद्यमान है। लेकिन यह व्यक्ति के अपने पुरुषार्थ पर निर्भर करता है कि वह अपनी सुषुप्त शक्ति कितनी जागृत कर पाता है। जिस व्यक्ति की संकल्प शक्ति जितनी सुदृढ़ होगी, आस्था घनीभूत होगी, वह व्यक्ति अपने पुरुषार्थ के द्वारा अपने भाग्य को भी बदल सकता है। मूल बात है कि जैसा हमारा मनोबल होगा, वैसा ही हमारा जीवन बनेगा। यदि हम अपने जीवन को आशा से भरपूर, स्फूर्तिमय और उल्लास से परिपूर्ण रखते हैं, तो दुनिया की कोई भी ताकत नहीं है कि वह हमारे कार्य में बाधक बन सके। जो व्यक्ति आत्मविश्वास के साथ कार्य करता है उसे निश्चित रूप से सफलता मिलती है। धैर्य बहुत सारी समस्याओं का समाधान करता है। धीर कौन हो सकता है ? इसको परिभाषित करते हुए श्रीसूत्रकृतांगचूर्णि में कहा गया है – 'धीरो इति बुद्धयादीन् गुणान् दधाती धीरः' अर्थात् जो बुद्धि आदि गुणों को धारण करता है वह धीर होता है। आज के युग की सबसे बड़ी कठिनाई है कि आदमी प्रतीक्षा करना नहीं चाहता, वह तत्काल फल चाहता है। आज ही बीज बोया और आज ही उसका फल मिल जाए, यह उसका प्रयत्न रहता है। यह अधैर्य, प्रतीक्षा न करने की वृत्ति साधना का विघ्न है।

साधना के मार्ग में जल्दबाजी खतरनाक होती है। धैर्य के साथ चलें, पूर्ण जागरूक रहें ताकि अधैर्य की स्थिति पैदा ही न हो। मन की भूमिका जब समुचित ढंग से चलती रहेगी, आलम्बन शुद्ध और मन की एक दिशागामिता बनी रहेगी तो लक्ष्य एक दिन अपने आप प्राप्त हो जाएगा। शिथिलीकरण का अर्थ है– चंचलता की निवृत्ति। कायोत्सर्ग का अभ्यास परिपक्व होने पर इच्छाचालित नाड़ी–संस्थान पर नियंत्रण सध जाता है तो स्वतः चालित नाड़ी–संस्थान अपने आप संतुलित हो जाता है। शक्ति का संचय और शक्ति की सुरक्षा का एक उपाय है तनाव से बचना। शरीर का तनाव शरीर की शक्ति को कम करता है। मानसिक तनाव मन की शक्ति को और भावनात्मक तनाव आत्मा की शक्ति को क्षीण करता है। शक्ति जागरण का पहला उपाय है– शिथिलीकरण। शिथिलीकरण अर्थात् प्रवृत्ति का विसर्जन। जो व्यक्ति कायोत्सर्ग साध लेता है, वह शक्ति जागरण का बीजमंत्र प्राप्त कर लेता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

18.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. एकाग्रता की साधना से क्या सधता है?
2. इच्छा–शक्ति क्या है?
3. 'मै अपने व्यक्तित्व को सदैव प्रफुल्ल बनाये रखता हूँ' – यह वाक्य किसका है?
4. उत्तरी ध्रुव की खोज किसने की?
5. 'मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता'–इसके लेखक कौन हैं?
6. मन को प्रशिक्षित करने का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है–..............का विकास।
7. रचनात्मक कार्यो में..............को लगाए रखें।
8. अस्वस्थ मन....................को अस्वस्थ बनाता है।
9. संकल्प एक महान......................है।
10. असंतुलित आहार के कारण भी................बिगड़ जाता है।
11. दशाश्रुतस्कन्ध आगम में कहा है – मूल मोहनीय कर्म और शेष कर्म हैं.............।
12. संगम देव ने..............को बहुत कष्ट दिये।
13. ....महान तत्त्ववेत्ता था।
14. मंगल भावना का चौथा संकल्प क्या है?
15. 'सफलता का सूत्र है– धैर्य'–यह किसने कहा?
16. धृतिबल भावना का उल्लेख कहां मिलता है?
17. गुर्जिएफ कौन थे?
18. 'राग और द्वेष'–ये कर्म के बीज हैं – यह उल्लेख कहां मिलता है?
19. तनाव का मुख्य हेतु है.................आवेश।
20. शक्ति जागरण का पहला उपाय है–...............।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. चित्त की एकाग्रता क्या है? संक्षेप में समझाइये।
2. संकल्प शक्ति को बढ़ाने वाले उपायों का विवेचन करें।
3. धैर्य के स्वरूप पर प्रकाश डालें।
4. धीर कौन हो सकता है? स्पष्ट करें।

निबंधात्मक प्रश्न

1. मानसिक संतुलन पर एक सार–गर्भित निबंध लिखें।
2. तनाव मुक्ति की उपयोगिता पर एक निबंध लिखें।

18.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. अमूर्त चिंतन – आचार्य महाप्रज्ञ।
2. चित्त और मन – आचार्य महाप्रज्ञ।
3. भगवती आराधना – आचार्य शिवार्य।
4. प्रेक्षाध्यान प्रयोग–पद्धति – आचार्य महाप्रज्ञ।
5. प्रेक्षाध्यान : कायोत्सर्ग – आचार्य महाप्रज्ञ।
6. भीतर की ओर – आचार्य महाप्रज्ञ।
7. अमूर्त चिंतन – आचार्य महाप्रज्ञ।
8. अणुव्रत दर्शन – युवाचार्य महाप्रज्ञ (आचार्य महाप्रज्ञ)।
9. चित्त और मन – आचार्य महाप्रज्ञ।
10. तुम अनन्त शक्ति के स्रोत है – मुनि नथमल (आचार्य महाप्रज्ञ)।
11. Jaina Meditation Citta-Samadhi : Jaina-Yoga &Dr. Nathmal Tatia
12. ध्यान सागर – प्रदीप कुमावत।
13. शिक्षा तथा भारतीय समाज – डॉ. डी. एल. शर्मा।
14. सफलता की कुंजी – स्वेट मार्डन।
15. जीत आपकी – शिव खेड़ा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 19 अनुप्रेक्षा द्वारा वैयक्तिक जीवन मूल्यों का विकास : निर्लोभता, सहिष्णुता, अभय, मृदुता (विनम्रता), ऋजुता (निष्कपटता), अनासक्ति, संवेग का संतुलन, आत्म–चिंतन/आत्म विश्लेषण

इकाई की संरचना

19.0 प्रस्तावना

19.1 उद्देश्य

19.2 वैयक्तिक जीवन मूल्यों का विकास

19.3 निर्लोभता

19.3.1 निर्लोभता का अर्थ
19.3.2 निर्लोभता का स्वरूप
19.3.3 निर्लोभता का महत्त्व
19.3.4 निर्लोभता की अनुप्रेक्षा

19.4 सहिष्णुता

19.4.1 सहिष्णुता का स्वरूप
19.4.2 सहिष्णु कौन?
19.4.3 सहिष्णुता का महत्त्व
19.4.4 सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा

19.5 अभय

19.5.1 अभय का स्वरूप
19.5.2 अभय की मुद्रा
19.5.3 अभय की निष्पत्ति
19.5.4 अभय की अनुप्रेक्षा

19.6 मृदुता

19.6.1 मृदुता का अर्थ
19.6.2 मृदुता का स्वरूप
19.6.3 मृदुता का महत्त्व
19.6.4 मृदुता के प्रकार
19.6.5 मृदुता के बाधक तत्त्व
19.6.6 मृदुता की अनुप्रेक्षा

19.7 ऋजुता

19.7.1 ऋजुता का अर्थ
19.7.2 ऋजुता का स्वरूप
19.7.3 ऋजुता का महत्त्व
19.7.4 आर्जव के बाधक तत्त्व
19.7.5 आत्मशोधन की प्रक्रिया – ऋजुता
19.7.6 ऋजुता की अनुप्रेक्षा

19.8 अनासक्ति

19.8.1 अनासक्ति का स्वरूप
19.8.2 अनासक्त कौन?
19.8.3 अनासक्ति का महत्त्व
19.8.4 निष्काम कर्म
19.8.5 अनासक्ति की अनुप्रेक्षा

19.9 संवेगों का संतुलन

19.9.1 संवेग क्या है?
19.9.2 संवेग नियंत्रण और जीवन विज्ञान की शिक्षा
19.9.3 स्वास्थ्य की अनुप्रेक्षा

19.10 आत्मचिंतन/आत्मविश्लेषण

19.10.1 आत्मचिंतन का स्वरूप
19.10.2 आत्मचिंतन के सूत्र
19.10.3 आत्मचिंतन का महत्त्व
19.10.4 आत्मतुला की अनुप्रेक्षा

19.11 सारांश

19.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

19.13 संदर्भ ग्रन्थ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

19.0 प्रस्तावना

श्यामधर सिंह ने अपनी कृति 'समाजशास्त्र के सिद्धांत' में उल्लेख किया है कि मूल्य भावात्मक होते हैं (Values are emotive)। व्यक्ति या समूह प्रासंगिक मानकों से भावात्मक रूप से बद्ध होता है। वह वस्तुओं का वरण करते समय या उनका मूल्यांकन करते समय कुछ सीमा तक उन मूल्यों को स्वीकार करता है और उनका प्रयोग करता है। भावोत्तेजक मूल्यों से प्रेरित होकर वह लड़ने–मरने को तैयार रहता है। इतिहास साक्षी है कि ऐसे मूल्यों की रक्षा के लिए उसने अपने प्राणों की भी आहुती दी है। सत्य जैसे मूल्य की खोज करने के लिए भगवान महावीर ने अपने राजकीय वैभव का परित्याग कर दिया। महात्मा बुद्ध ने अपना सर्वस्व त्याग दिया। यहां तक की उनकी सुन्दरतम पत्नी की यौवनावस्था एवं सौन्दर्य भी उन्हें रोक न सका। कर्त्तव्यपरायणता जैसे मूल्य का अनुशीलन करने के संदर्भ में महाराजा हरिश्चन्द्र ने श्मशान घाट की रखवाली करना स्वीकार किया। महाराणा प्रताप ने स्वतंत्रता, सम्मान, स्वाभिमान एवं धर्मगत मूल्य की रक्षा के लिए अपने बच्चों को भूखे मरते देखा किंतु अकबर का आधिपत्य स्वीकार नहीं किया। हिंदू–मुस्लिम एकता के मूल्य की कीमत महात्मा गांधी को प्राण देकर चुकानी पड़ी। ये सब उदाहरण इस बात के प्रबल साक्ष्य हैं कि मूल्यों का संबंध भावात्मक होता है।

डॉ. डी.एल. शर्मा के अनुसार आदर्शवादी दार्शनिकों की दृष्टि में मूल्य निरपेक्ष हैं, शाश्वत हैं। देश, काल इत्यादि से इनके स्वरूप में परिवर्तन नहीं होता। इन्होंने इन मूल्यों को सत्यं, शिवं एवं सुन्दरं के नाम से अभिहित किया है। इन्होंने मनुष्य की तीन आध्यात्मिक गतिविधियां मानी हैं। ये हैं– ज्ञानात्मक, क्रियात्मक एवं रागात्मक, इन्हें मानव व्यक्तित्व के तीन पक्ष भी कहा जा सकता है। ये तीनों मूल्य– सत्यं, शिवं एवं सुन्दरं मानव के इन तीनों पक्षों से संबंधित हैं। जिन्हें गीता में ज्ञान, कर्म एवं भक्ति की संज्ञा दी गई है। धर्म एवं मोक्ष इन्हें ही आध्यात्मिक शब्दावली में सत्यं, शिवं एवं सुन्दरं कहता है। ये उच्चतर एवं निर्पेक्ष मूल्य हैं।

19.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के निम्न उद्देश्य हैं –

1. वैयक्तिक जीवन में मूल्यों के विकास के महत्त्व को जान सकेंगे।
2. निर्लोभता के स्वरूप को पढ सकेंगे।
3. सहिष्णुता का महत्त्व जान सकेंगे।
4. अभय की निष्पत्ति को समझ सकेंगे।
5. मृदुता के प्रकारों के बारे में जान सकेंगे।
6. आत्मशोधन की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
7. अनासक्ति के बारे में जान पायेंगे।
8. संवेग नियंत्रण और जीवन विज्ञान की शिक्षा के बारे में जान सकेंगे।
9. आत्म–चिंतन के सूत्र समझ सकेंगे।

19.2 वैयक्तिक जीवन मूल्यों का विकास

प्रो. राधा कमल मुकर्जी ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'दि सोशल स्ट्रक्चर ऑफ वैल्यूज' में मूल्य को परिभाषित करते हुए लिखा है, "मूल्य एक जटिल संपूर्णता है, एक चेतन प्राणिशास्त्रीय सामाजिक आदर्श परिस्थिति है।" इस परिभाषा के अनुसार मूल्य संपूर्ण व्यक्तित्व से संबंध रखता है और यह मनुष्य की प्राणिशास्त्रीय आवश्यकताओं, सामाजिक संबंधों एवं मानव के आदर्शों पर आधारित होता है।

डोरोथी ली के अनुसार– "मानव मूल्यों अथवा एक मूल्य या मूल्यों की एक प्रणाली द्वारा मैं उस आधार पर समझता हूं जिस पर एक व्यक्ति एक मार्ग को दूसरे मार्ग की अपेक्षा चुनेगा, अच्छे या बुरे, उचित या अनुचित का निर्णय करेगा।" मूल्यों की व्याख्या करते हुए फेयर चाइल्ड ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है– "यह विश्वास की वह क्षमता है जिसके आधार पर मानव की इच्छा संतुष्टि का माप करते हैं। मूल्य स्पष्टरूप से एक मनोवैज्ञानिक सत्यता है जिसे किन्हीं साधनों से मापा नहीं जा सकता। मूल्य और उपयोगिता में बहुत भेद है, क्योंकि मूल्य की वास्तविकता मन में होती है, बाह्य वस्तुओं में नहीं। मूल्य विशुद्ध रूप से एक विश्वास का प्रश्न है, एक वस्तु जिसकी कोई उपयोगिता न हो फिर भी बहुत ही मूल्यवान हो सकती है। अंतिम मूल्य मानव स्वभाव में निहित है, क्योंकि वे स्वयं सिद्ध हैं। मूल्यों का अस्तित्व मनोवैज्ञानिक या सामाजिक अनुसंधान से लगाया जा सकता है किन्तु उनकी प्रामाणिकता या औचित्य को स्पष्ट नहीं किया जा सकता। इस पर भी वे समस्त चेतन तार्किक व्यवहार के प्रेरणा के अंतिम स्रोत हैं।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनुप्रेक्षा द्वारा वैयक्तिक जीवन में मूल्यों का विकास संभव है। अनुप्रेक्षा के प्रयोग द्वारा हमारे स्वभाव में परिवर्तन होता है जैसे, मुक्ति की अनुप्रेक्षा के द्वारा निर्लोभता का विकास होता है। सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा से सहन करने की क्षमता का विकास होता है। अभय की अनुप्रेक्षा से भय की ग्रन्थि छिन्न–भिन्न हो जाती है। मृदुता की अनुप्रेक्षा से विनम्रता का विकास होता है। ऋजुता की अनुप्रेक्षा से माया एवं छलना क्षीण होती हैं, निष्कपटता का भाव पुष्ट होता है। अनासक्ति की अनुप्रेक्षा से आसक्ति कम होती है। स्वास्थ्य की अनुप्रेक्षा से संवेगों पर संतुलन स्थापित होता है। आत्मचिंतन / आत्मविश्लेषण से व्यक्ति के आत्मा की विशुद्धि होती है और वह आत्मा की सन्निधि में पहुंचता है। इस प्रकार अनुप्रेक्षाओं के द्वारा वैयक्तिक जीवन मूल्यों का अभूतपूर्व विकास हो सकता है।

19.3 निर्लोभता (मुक्ति)

जो भावना या संकल्पपूर्वक पदार्थ समूह को त्याग देता है वह अकिंचन है। अकिंचन का एक अर्थ दरिद्र होता है, वह यहां विवक्षित नहीं है। जो त्यागपूर्वक अकिंचन बनता है, वही निर्लोभता को प्राप्त कर सकता है।

19.3.1 निर्लोभता का अर्थ

मुक्ति का अर्थ है– निर्लोभता। लोभ बंधन है। लोभ से छूटना मुक्ति है। जितने भी बंधन हैं, उनका मूल लोभ है। लोभ से ही मूर्च्छा का जन्म होता है।' अतः जो मूर्च्छा से मुक्त होता है वही आकिंचन्य को प्राप्त करता है। आकिंचन्य भाववाचक संज्ञा है। यह विशेषण अकिंचन से व्युत्पन्न है। आकिंचन का अर्थ है– 'नास्ति किंचन यस्य' अर्थात् जिसके पास कुछ भी न हो। डॉ. महावीर सरन जैन ने आकिंचन्य के निम्न अर्थ बताए हैं–

1. वस्तु अभाव स्थिति।
2. परिग्रह शून्यता।
3. किसी भी अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति की इच्छा का अभाव।
4. परिग्रह शून्य रहने की इच्छा एवं उसके लिए अभ्यास।
5. प्राप्त वस्तुओं के प्रति ममत्व का अभाव।
6. अहंकार, लोभ, तृष्णा, असंतोष एवं ममत्व आदि का त्याग।
7. आत्मा एवं अनात्मा के भेद की प्रतीति तथा इसके समस्त भौतिक पदार्थों का त्याग एवं अपने शरीर के प्रति भी ममत्व का त्याग।

19.3.2 निर्लोभता का स्वरूप

आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार– "दूसरों के प्रति प्रेम होता है, वह बांधता है और अपने प्रति प्रेम होता है, वह मुक्त करता है। बंधन का अर्थ है दूसरों की ओर प्रवाहित होने वाला प्रेम। यह स्वार्थ की संकुचित सीमा नहीं है। यह व्यक्तित्व की सहज मर्यादा है। जिसे अपने अस्तित्व का अनुराग है, वह दूसरों को बंधन में नहीं डाल सकता। बंधन, बंधन को जन्म देता है और मुक्ति, मुक्ति को। बाहरी बंधनों से मुक्ति पाने की अनिवार्य शर्त है मानसिक मुक्ति, आंतरिक प्रेरणा।" आत्मा के ज्ञान–दर्शनमय स्वभाव के अतिरिक्त परपदार्थ के प्रति आसक्ति का परित्याग एवं राग–द्वेष तथा मोह से रहित अवस्था का होना ही आकिंचन्य है।

भगवान महावीर निर्लोभता के परम साधक थे। अपनी अनुभूत वाणी में उन्होंने कहा– 'से हु दिट्ठपहे मुणि, जस्स णत्थि ममाइयं' अर्थात् वही साधक आत्मद्रष्टा है, जो ममत्व से मुक्त है। साधना का मार्ग निर्लोभता का मार्ग है। ममत्व साधना का बाधक तत्त्व है। लोभ अचिकित्स्य नहीं है। लोभ पर विजय प्राप्त की जा सकती है, लेकिन यह तभी संभव है जब हमारा चित्त लक्ष्य पर केन्द्रित हो। आकिंचन्य की स्थिति तक पहुंचने के लिए राग–द्वेष शून्यता तथा ज्ञान की दृष्टि से सत्य, कर्म की दृष्टि से तप, तथा भावनाओं की दृष्टि से त्याग की आराधना आवश्यक है।

19.3.3 निर्लोभता का महत्त्व

सामाजिक जीवन में यद्यपि व्यक्ति पूर्णरूप से आकिंचन्य का पालन नहीं कर सकता किंतु आकिंचन्य की भावना से पदार्थों के प्रति होने वाली आसक्ति को कम कर सकता है। जब व्यक्ति के जीवन में अनासक्ति का विकास हो जाता है तो पदार्थ के वियोग में भी मानसिक अशांति नहीं होती अपितु संतोष की वृत्ति का विकास हो जाता है। सबसे ज्यादा जटिल है लोभ की वृत्ति। सारी समस्याएं इसी से उत्पन्न होती हैं। जो व्यक्ति लोभी है, आराम चाहता है, प्रसाधन चाहता है, वह पढ़ा–लिखा होते हुए भी मन्द अर्थात् अज्ञानी बन जाता है। सर्दी के दिनों में दक्षिण दिशा में प्रस्थित सूरज भी मंद बन जाता है। कवि ने बहुत सुन्दर कल्पना प्रस्तुत की है–

दक्षिणाशा प्रवृत्तस्य, प्रसारितकरस्य च।
तेजःतेजस्विनस्तस्य, हीयतेऽन्यस्य का कथा।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जो व्यक्ति लाभ की आशा में चला गया, लोभ की दिशा में चला गया, धन की दिशा में चला गया उस व्यक्ति के सोचने का ढ़ंग बदल जाता है, उसका दृष्टिकोण बदल जाता है, उसके जीवन की दिशा ही बदल जाती है।

गौतम ने भगवान महावीर से प्रश्न किया– मुत्तीए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ? भंते! अर्थात् मुक्ति (निर्लोभता) से जीव क्या प्राप्त करता है? भगवान महावीर ने समाधान देते हुए कहा– 'मुत्तीए णं अकिंचणं जणयइ। अकिंचणे य जीवे अत्थलोलाणं अपत्थणिज्जो भवइ' अर्थात् मुक्ति से वह अकिंचनता को प्राप्त होता है। अकिंचन जीव अर्थ–लोलुप पुरुषों के द्वारा अप्रार्थनीय होता हैं उसके पास कोई याचना नहीं करता। वह तीन लोक का अधिपति बनता है–

अकि   चनोऽहमित्यास्व, त्रैलोक्याधिपतिर्भवे।

योगिगम्यमिदं प्रोक्तं, रहस्यं परमात्मनः।।

इस प्रकार आध्यात्मिक मूल्यों के विकास के लिए निर्लोभता का विकास होना जरूरी है।

19.3.4 निर्लोभता की अनुप्रेक्षा

निर्लोभता की अनुप्रेक्षा के द्वारा जीवन में आकिंचन्य की भावना का विकास होता है। निर्लोभता की अनुप्रेक्षा का निरंतर अभ्यास किया जाता है तो परिवर्तन अवश्यंभावी हो सकता है। इसकि प्रयोग विधि इस प्रकार है –

1. महाप्राण ध्वनि — 02 मिनिट
2. कायोत्सर्ग — 05 मिनिट
3. नीले रंग का श्वास लें। अनुभव करें– 'श्वास के साथ नीले रंग के परमाणु भीतर प्रवेश कर रहे हैं।' — 03 मिनिट
4. विशुद्धिकेन्द्र पर नीले रंग का ध्यान करें। — 03 मिनिट
5. ब्रह्मकेन्द्र (जीभ) पर ध्यान केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें– 'इच्छा का परिष्कार हो रहा है। स्वार्थ भाव क्षीण हो रहा है।' इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें फिर इसका नौ बार मानसिक जप करें। — 05 मिनिट
6. अनुचिंतन करें–

जीवन यात्रा के संचालन का केन्द्र बिंदु लोभ है। इससे इच्छा और स्वार्थ की भावना पैदा होती है। उसकी प्रेरणा से मनुष्य सुख–सुविधा चाहता है और उसकी साधन सामग्री का संचय करता है।

स्वार्थ सफलता की बहुत बड़ी प्रेरणा है, उसे सामाजिक प्राणी सर्वथा रोक नहीं सकता। दूसरे के स्वार्थ को हानि पहुंचाए बिना अपना स्वार्थ साधने को अमान्य नहीं किया जा सकता।

स्वार्थ की अति होने पर दूसरों के हितों को हानि पहुंचाकर अपना हित साधने के लिए क्रूर आचरण और व्यवहार किये जाते हैं। उस स्थिति में स्वार्थ समाज के लिए खतरा बन जाता है। असीम स्वार्थ की अवस्था में क्रोध, चौर्यवृत्ति, स्वादलोलुपता, असत्य, इन्द्रियलोलुपता, कामलोलुपता, अपराधी मनोवृत्ति, सामाजिक कर्त्तव्य की उपेक्षा, हित शिक्षा के प्रतिकूल भाव, कटु वचन का प्रयोग, इस प्रकार की प्रवृत्तियां जन्म लेती हैं। इसलिए मुझे अति स्वार्थ से बचने का अभ्यास करना चाहिए।

स्वार्थ मनोवृत्ति से अल्पकालीन लाभ होते हैं, दीर्घकालीन नहीं। स्व को व्यापक बनाकर तथा स्वार्थ त्याग करने वाली महान आत्माओं का जीवनवृत्त पढ़कर, उन्हें आदर्श मान कर स्वार्थ की संकुचित सीमाओं को तोड़ा जा सकता है। — 10 मिनिट

7. महाप्राण ध्वनि के साथ ध्यान सम्पन्न करें। — 02 मिनिट

19.4 सहिष्णुता

हमारी चेतना की बड़ी शक्ति है– सहिष्णुता। यह वह प्रज्वलित अग्नि है, जिसके द्वारा जीवन आलोकित होता है। जिसमें कष्टों को सहन करने की चेतना नहीं जागती, उसके जीवन में प्रकाश नहीं हो सकता। आग के जले बिना प्रकाश संभव नहीं होता।

19.4.1 सहिष्णुता का स्वरूप

क्रोध का विरोधी भाव क्षमा है। क्षमा 'क्षम' धातु से बना है। इसके मुख्य दो अर्थ हैं। एक अर्थ में क्षमा का अर्थ है– धैर्य, विनम्रता, सहनशीलता। दूसरे अर्थ में क्षमा सामर्थ्य वाचक है अर्थात् सहन करने में सक्षम होना है। क्षमाशील व्यक्ति समर्थ एवं सक्षम होता है। दुःख पहुंचाने वाले व्यक्ति को वह प्रताड़ित कर सकता है, किंतु अपनी क्षमा वृत्ति के कारण वह उस दुःख को समभाव पूर्वक सहन करता है। वह उपशम भाव के द्वारा क्रोध पर विजय प्राप्त करता है। ऐसा व्यक्ति कम्प रहित होकर क्रोध आदि कषायों को नष्ट करके विकाररूपी काष्ठ को जला डालता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

गणधर गौतम ने भगवान महावीर से प्रश्न किया— खंतीए णं भंते! जीवे किं जणयइ? अर्थात् भंते क्षांति (सहिष्णुता) से जीव क्या प्राप्त करता है? समाधान देते हुए भगवान महावीर ने कहा— गौतम! खंतीए णं परीसहे जिणइ। अर्थात् क्षांति से वह परीषहों पर विजय प्राप्त कर लेता है।

सहिष्णुता का अर्थ है—सर्दी को सहना, गर्मी को सहना। सर्दी मौसम की भी आती है और सर्दी भावना की भी आती है। गर्मी मौसम की भी आती है और गर्मी भावना की भी आती है। अनुकूल कष्ट का नाम है सर्दी और प्रतिकूल कष्ट का नाम है गर्मी। इस प्रकार अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों को समभाव से सहना है सहिष्णुता।

19.4.2 सहिष्णु कौन?

जिसको अपने जीवन को प्रकाश से भरना है, उसे कष्ट सहिष्णु बनना ही होगा। कष्ट सहिष्णुता के साथ—साथ मनोबल का विकास करना भी आवश्यक है। एक साथ अधिक कष्टों को सहन नहीं किया जा सकता, किंतु व्यक्ति को धीरे—धीरे कष्ट सहिष्णुता का अभ्यास बढ़ाना चाहिए। कष्ट सहिष्णुता के बिना जीवन में उदात्त कर्म की साधना नहीं की जा सकती। सारी उदात्तताएं, विशिष्टताएं, कष्ट सहिष्णुताएं एक साथ जुड़ी हुई हैं। इसीलिए कहा गया— 'परीषहे जिणंतस्से।' जो परीषहों को सहन करता है, कष्ट सहिष्णु होता है, वह उन्नति के शिखर को छू सकता है।

सहिष्णुता का एक प्रयोग है— कायोत्सर्ग। साधक कायोत्सर्ग की मुद्रा में खड़ा है। उस समय साधक को कहीं दर्द का अनुभव होता है, कहीं सुखद स्पन्दन का अनुभव होता है। भीतर में भूचाल उठ रहा है, बाहर से भी कष्टरूपी आंधी और तूफान आ रहे हैं पर साधक सहन करता है। ऐसी स्थिति में भी 'तथाता—तथाता' (वर्तमान में जीना, जो प्राप्त है उसे स्वीकार करना) का अनुभव करना, केवल ज्ञाता—द्रष्टा भाव का विकास अर्थात् चिंता से मुक्त हो जाना ही कायोत्सर्ग है।

19.4.3 सहिष्णुता का महत्त्व

सहिष्णुता अच्छी है इस बात को सब स्वीकार करते हैं। सहिष्णुता का मानव मात्र के जीवन में महत्त्व है। जब परिस्थिति आती है तब व्यक्ति भूल जाता है कि मुझे सहन करना है। जो व्यक्ति सहन करता है वह अपनी शक्ति का व्यर्थ व्यय नहीं करता है। शक्ति की सुरक्षा करने से ही व्यक्ति महान बन सकता है। शक्ति के अपव्यय को रोकने के लिए भी सहिष्णुता का विकास आवश्यक है। जैसा कि बुद्ध ने कहा था—

इहासने शुष्यतु मे शरीरं त्वगस्थिमांसं प्रलयं च यातु।
अप्राप्य बोधिं बहुकल्पदुर्लभां नैवासनात् कायमिदं चलिष्यति।।

जब तक बोधि प्राप्त नहीं होगी, इस आसन से मेरा शरीर विचलित नहीं होगा। यह सहिष्णुता की पराकाष्ठा का परिचायक है। महावीर ने साढ़े बारह वर्षों तक अनगिनत कष्टों को सहन किया। आचार्य भिक्षु का पूरा जीवन ही कष्टों से भरा हुआ था। आचार्य भिक्षु ने साधना के क्षेत्र में आने वाले कष्टों को हंसते—हंसते सहन किया। आचार्य भिक्षु की सहिष्णुता का मूर्त्त रूप है तेरापंथ धर्मसंघ।

कठिनाइयां हर व्यक्ति के जीवन में आती हो, चाहे वह गृहस्थ हो या साधु। उस संकट के समय में जो व्यक्ति कष्टों से घबराता नहीं अपितु सहिष्णुता का परिचय देता है। वही व्यक्ति अपने जीवन में सफलता का वरण कर सकता है।

19.4.4 सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा

सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा के द्वारा हम अपने जीवन में सहिष्णुता के गुण का विकास कर सकते हैं। इसकी प्रायोगिक प्रविधि इस प्रकार है—

1. महाप्राण ध्वनि — 02 मिनिट
2. कायोत्सर्ग — 05 मिनिट
3. नीले रंग का श्वास लें। अनुभव करें—श्वास के साथ नीले रंग के परमाणु भीतर प्रवेश कर रहे हैं। — 03 मिनिट
4. विशुद्धिकेन्द्र पर नीले रंग का ध्यान करें। — 03 मिनिट
5. ज्योतिकेन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें— 'सहिष्णुता के भाव पुष्ट हो रहे हैं। मानसिक संतुलन बढ़ रहा है'— इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें, फिर इसका नौ बार मानसिक जप करें। — 05 मिनिट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6. अनुचिंतन करें–

(1) शारीरिक संवेदन–

(क) ऋतु जनित संवेदन

(ख) रोग जनित संवेदन

(2) मानसिक संवेदन–

(क) सुख–दुःख

(ख) अनुकूलता–प्रतिकूलता

(3) भावनात्मक संवेदन–

(क) विरोधी विचार

(ख) विरोधी स्वभाव

(ग) विरोधी रुचि

ये तीनों प्रकार के संवेदन मुझे प्रभावित करते हैं, किंतु इनके प्रभाव को कम करना है। यदि इनका प्रभाव बढ़ा तो मेरी शक्तियां क्षीण होंगी। जितना इनसे कम प्रभावित होऊंगा, उतनी ही मेरी शक्तियां बढ़ेंगी। इसलिए सहिष्णुता का विकास मेरे जीवन की सफलता का महामंत्र है। 10 मिनिट

7. महाप्राण ध्वनि के साथ प्रयोग संपन्न करें। 02 मिनिट

19.5 अभय

अभय शब्द का अर्थ परमात्मा और शिव भी है। परमात्मा ज्ञान भी है और वह व्यक्ति भी है, जिसके पास कोई संपत्ति नहीं है। भय से मात्र मुक्ति वही पा सकता है जिसने आत्म–साक्षात्कार कर लिया हो।

19.5.1 अभय का स्वरूप

अहिंसा का आदि बिंदु है अभय। मानसशास्त्र के अनुसार मनोविकास का आदि बिंदु है– अभय। भगवान महावीर की वाणी का सार है अभय। प्रमादी व्यक्ति को चारों ओर से भय सताता है। अप्रमत्त व्यक्ति को कोई भय नहीं लगता। भगवान महावीर ने गौतम आदि श्रमणों को बुलाया और प्रश्न किया कि जीव किससे डरते हैं ?

गौतम आदि श्रमणों ने विनम्रता से वन्दनापूर्वक निवेदन किया भगवन्! हम नहीं जानते। अतः देवानुप्रिय आपको कष्ट न हो तो आप ही इसका समाधान देने की कृपा कराएं।

भगवान ने समाधान देते हुए कहा– आर्यो! जीव दुःख से डरते हैं।

गौतम ने पुनः प्रश्न किया– भंते! दुःख का कर्त्ता कौन है और उसका कारण क्या है?

भगवान ने कहा– दुःख का कर्त्ता जीव है और उसका कारण प्रमाद है।

गौतम ने पुनः प्रश्न पूछा– भगवन्! दुःख का अन्तकर्त्ता कौन है और उसका कारण क्या है?

समाधान देते हुए भगवान महावीर ने कहा– गौतम! दुःख का अन्तकर्त्ता जीव है और उसका कारण है अप्रमाद अर्थात् जो अप्रमादी होता है उसको कोई भय नहीं सताता। वह अभय होता है।

गांधी जी के शब्दों में "अभय मोह रहित अवस्था की पराकाष्ठा है। जब व्यक्ति एक बार निश्चय कर लेता है तो वह निरंतर प्रयत्न करता है, पीछे नहीं हटता। तब उसके भीतर अभय की स्थिति पैदा होने लगती है और वह लगभग अपनी मंजिल को पा लेता है।" विष्णु प्रभाकर के अनुसार– "यदि मनुष्य सब भयों को जीत ले तो उसकी क्या स्थिति होगी। वह तो एकदम निर्भय हो जाएगा अर्थात् शिवत्व को प्राप्त कर लेगा। जो शक्ति की आराधना और उपासना करने वाले हैं उन्हें तो निश्चित रूप से इन सब सांसारिक भयों से मुक्ति प्राप्त करनी होगी। निर्भीक बनना होगा। वास्तव में अभय होना ही तो मुक्ति है।" इसीलिए गांधीजी ने अभय व्रत के पालन को अशक्य बताया है। मनुष्य के लिए इस संसार में कुछ भी असंभव नहीं है परंतु दुष्कर अवश्य है। जो व्यक्ति अभय होने का संकल्प कर लेता है उसे कोई बाधा रोक नहीं सकती, बल्कि वे बाधाएं उसकी शक्ति बन जाती हैं। इसी को आत्म–साक्षात्कार कहते हैं। इसी को गांधी जी ने सुन्दर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

और सार्थक शब्दों में स्पष्ट किया है– ''भय मात्र देह के साथ है। देह विषयक राग दूर हो जाए तो अभय सहज प्राप्त हो सकता है। विचार करने पर हमें मालूम होता है कि भय मात्र हमारी कल्पना की सृष्टि है। धन से, परिवार से, शरीर से अपनापन हटा लें तो फिर भय कहां है?'' अभय होने के लिए आत्म–विश्वास का होना अत्यन्त आवश्यक है। जिस व्यक्ति का आत्म–विश्वास प्रबल होता है उससे भय भी कतराने लग जाता है। अतः आत्म–विश्वासी व्यक्ति ही पूर्ण अभय की साधना करने में सफलता प्राप्त कर सकता है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार– 'अभय आता है प्रज्ञा से। जब प्रज्ञा जागती है?, तब आदमी ''तथाता'' बन जाता है। ''तथाता'' का अर्थ है– वर्तमान में जीना, जो प्राप्त है उसे स्वीकार कर लेना। घटना को घटना के रूप में स्वीकार कर लेना ''तथाता'' है। उसके साथ भय को जोड़ना आवश्यक नहीं है। ''तथाता'' आती है प्रज्ञा से। बाह्य विस्मृति और अन्तर् जागरण यह है ''तथाता''।

19.5.2 अभय की मुद्रा

अभय का भाव जब–जब जागता है तब–तब अभय की मुद्रा का निर्माण होता है। अभय की मुद्रा का बाहरी लक्षण है– प्रफुल्लता, चेहरा खिल जाएगा। भीतर में असीम शांति का भाव होता है। जब भय की भाव–धारा होती है तब अनुकंपी नाड़ी तंत्र (सिंपेथेटिक नर्वस सिस्टम) अधिक सक्रिय हो जाता है। एड्रिनल ग्लैण्ड का स्राव भी बढ़ जाता है। जब अभय की भाव–धारा होती है तो परानुकंपी नाड़ी तंत्र (पेरासिम्पेथेटिक नर्वस सिस्टम) अधिक सक्रिय हो जाता है। उस समय कोई उत्तेजना नहीं होती, केवल सुख और शांति का अनुभव होता है।

अभय को विकसित करने का एक उपाय है– अनुप्रेक्षा। अभय की तरंग से भय की तरंग को निरस्त किया जा सकता है। अनुप्रेक्षा का सिद्धांत प्रतिपक्ष का सिद्धांत है। अशुभ भाव की तरंग को शुभ भाव की तरंग से निरस्त किया जा सकता है। व्यक्ति पूर्ण जागरूक और अप्रमत्त रहता हुआ विधायक भाव से अनुप्रेक्षा का प्रयोग करता है तो वह अभय बन सकता है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने कहा है कि यदि हम अभय की मुद्रा का विकास करना चाहते हैं तो अहिंसा का विकास करें, अहिंसा अभय की एक मुद्रा है। सत्य का विकास करें, सत्य अभय की एक मुद्रा है। असंग्रह का विकास करें, असंग्रह अभय की एक मुद्रा है। जिसके अन्तःकरण में ये भावधाराएं जन्म लेती हैं, वह सचमुच अभय बन जाता है।

19.5.3 अभय की निष्पत्ति

जब जीवन में सहिष्णुता का विकास होता है तब अभय घटित होता है। धर्म की यात्रा का आदि बिंदु है अभय और अंतिम बिंदु भी है अभय। धर्म अभय से प्रारम्भ होता है और अभय को निष्पन्न कर कृतकृत्यता का अनुभव करता है। वीतरागता का शुभारम्भ भी होता है अभय से और वीतरागता की पूर्णता भी अभय में निष्पन्न होती है।

अभय दान वही व्यक्ति दे सकता है जिसने अभय की पूर्णता को प्राप्त किया है और जिसके आभामण्डल से अभय की रश्मियां चारों ओर विकिरण होती हैं। अभय की रश्मियां चारों ओर के वातावरण को अभय से आपूरित कर देती है। जीवन की पूर्णता है अभय या अभय में ही जीवन की पूर्णता सन्निहित है।

19.5.4 अभय की अनुप्रेक्षा

अभय की अनुप्रेक्षा से हमारे भीतर में ऐसी प्राणधारा उत्पन्न होती है। जो भय को समाप्त कर अभय की भावधारा को पुष्ट बनाती है। इस अनुप्रेक्षा की प्रायोगिक विधि इस प्रकार है –

1. महाप्राण ध्वनि — 02 मिनिट
2. कायोत्सर्ग — 05 मिनिट
3. गुलाबी रंग का श्वास लें। अनुभव करें– श्वास के साथ गुलाबी रंग के परमाणु भीतर प्रवेश कर रहे हो। 03 मिनिट
4. आनन्दकेन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर गुलाबी रंग का ध्यान करें। — 03 मिनिट
5. दर्शनकेन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें–'अभय का भाव पुष्ट हो रहा है। भय का भाव क्षीण हो रहा है'–इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें फिर इस का नौ बार मानसिक जप करें। — 05 मिनिट
6. अनुचिंतन करें–

भय से विकसित शक्तियां कुण्ठित हो जाती हो। नई शक्तियां विकसित नहीं हो पात , इसलिए मुझे अभय होने का अभ्यास करना चाहिए। जो डरता है उसे सभी डराते हो। भय आदमी को कमजोर बनाता है। कमजोर आदमी का कोई सहयोग नहीं करता। शक्ति के विकास के लिए अभय की साधना करूं यह मेरा दृढ़ निश्चय है। मो निश्चित ही भय से छुटकारा पा लूंगा। 10 मिनिट

7. महाप्राण ध्वनि के साथ ध्यान सम्पन्न करें। — 02 मिनिट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

19.6 मृदुता (विनम्रता)

साधना के क्षेत्र में मृदुता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हृदय की कठोरता का परित्याग किये बिना व्यक्ति आध्यात्मिक क्षेत्र में चरणन्यास नहीं कर सकता। सामाजिक जीवन में भी व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि उसका व्यवहार मृदु हो।

19.6.1 मृदुता का अर्थ

'मृदोर्भावः मार्दवम्' अर्थात् मृदुता, कोमलता का नाम मार्दव है। मृदुता का अर्थ है– मृदु, शिष्ट एवं विनम्र व्यवहार। कठोरता का पूर्ण विसर्जन अर्थात् किसी भी प्राणी को दुःखी देखकर व्यक्ति करुणा से अभिभूत हो जाता है। प्राणी मात्र को अपनी आत्मा के तुल्य समझता है। भगवान महावीर ने कहा है– 'विणओ धम्मस्स मूलं' अर्थात् विनय धर्म का मूल है।

19.6.2 मृदुता का स्वरूप

उत्तराध्ययनसूत्र के उन्नतीसवें अध्ययन में उल्लेख मिलता है कि गौतम स्वामी भगवान महावीर से प्रश्न करते है– भगवन्! मृदुता से जीव क्या प्राप्त करता है? समाधान देते हुए भगवान महावीर कहते है– मृदुता से वह अनुद्धत मनोभाव को प्राप्त करता है। अनुद्धत मनोभाव वाला जीव मृदु–मार्दव से संपन्न होकर मद के आठ स्थानों का विनाश कर देता है। उत्तराध्ययन सूत्र के टिप्पण में मृदु–मार्दव का अर्थ इस प्रकार है– मृदु का अर्थ है– विनम्र। मार्दव का अर्थ है– विनम्र स्वभाव अथवा विनम्रतापूर्ण आचरण। जिस व्यक्ति का आचरण मृदुतापूर्ण होता है वही मृदु कहलाता है। अतिशय मृदुता को द्योतित करने के लिए ''मृदु–मार्दव'' दोनों का संयुक्त प्रयोग किया गया है। यह सामूहिक जीवन की सफलता का सूत्र है। इसके द्वारा व्यक्ति के जीवन में सरसता रहती है। मृदु स्वभाव में लोच होती है। इस स्वभाव वाला व्यक्ति किसी भी वातावरण को अपने अनुकूल बना लेता है। बहुत बार कठोर अनुशासन से जो काम नहीं होता, वह मृदुता से हो जाता है। नैतिक चेतना का सूत्र है– मृदु व्यवहार। कुछ व्यक्ति क्रूर होते हैं। वे पशुओं तथा आदमियों के साथ ऐसा कठोर व्यवहार करते हैं कि उनकी क्रूरता प्रत्यक्ष हो जाती है। दहेज की भूख क्या क्रूर व्यवहार नहीं है? प्रतिवर्ष सैकड़ों मासूम बच्चियां दहेज की बलिवेदी पर आहूत हो जाती हैं, अतः सामाजिक धरातल पर मृदुता प्रतिष्ठित हो तो मानव ऐसे क्रूरतापूर्ण व्यवहार से बच सकता है। समस्त जीवों पर मैत्री भाव रखने एवं समस्त संसार के जीवों को समभाव से देखने की दृष्टि भी मृदुता से प्राप्त होती है। मृदुता से ही अनाग्रह की चेतना विकसित होती है। अनाग्रह से ही अनेकांत दृष्टि का अभ्युदय होता है।

19.6.3 मृदुता का महत्त्व

अहंकार के कारण पारिवारिक जीवन में अशांति उत्पन्न होती है, सामाजिक जीवन में संघर्ष उत्पन्न होता है एवं राजनैतिक जीवन में पराजय प्राप्त होती है। पारिवारिक एवं सामाजिक विकास के लिए इनकी इकाइयों में परस्पर प्रेमभाव, दूसरों के अस्तित्व की स्वीकृति तथा अन्य प्राणियों के प्रति करुणा एवं मैत्रीभाव का होना जरूरी है। मृदुता से उपर्युक्त गुणों का विकास होता है। अन्य व्यक्तियों के विचारों तथा कार्यों के प्रति उसके मन में अनाग्रह, सम्यग्दृष्टि, सहिष्णुता, उदारता एवं प्रमोद भावना का विकास होता है।

राजनैतिक जीवन में भी मार्दव गुण का बहुत बड़ा महत्त्व है। लोकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था में यदि नेता में मृदुता का अभाव होता है तो वह कभी भी सफल नहीं हो सकता। मृदुता के अभाव में शासक और प्रजा के बीच में दूरी हो जाती है, जिसका परिणाम सुखद नहीं होता। इस दृष्टि से जयशंकर प्रसाद के महाकाव्य ''कामायनी'' में वर्णित संघर्ष सर्ग की कथा अत्यंत प्रेरक है। मनु सारस्वत प्रदेश के राजा बनकर स्वयं अनुशासनहीनता का जीवन व्यतीत करते हैं। प्रजा के ऊपर कानून एवं कठोर नियम लगा दिए। इड़ा मनु को समझाती है कि प्रजापति को भी नियमों का पालन करना चाहिए। अहंकारी मनु पर इस उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। वह इड़ा को प्राप्त करने के लिए अपनी प्रजा की तरफ कोई ध्यान नहीं देता। परिणाम स्वरूप प्रजा भी राजा के प्रति विद्रोह कर देती है। मनु भी क्रूरता से अपनी खड्ग से लोगों को मौत के घाट उतार कर स्वयं आगे बढ़ना चाहता है, लेकिन प्रजा का साहस भी कम नहीं होता है। भीषण नरसंहार होता है। आखिर जनता की असीम शक्ति के सामने मनु को पराजित होना पड़ा।

इस घटना से हमें प्रेरणा मिलती है कि जब तक व्यक्ति में मृदुता का विकास नहीं होता तब तक वह लोकप्रिय व्यक्तित्व या शासक नहीं हो सकता। मृदु व्यवहार एवं विनम्रता से ही शासक अपनी प्रजा का लोकप्रिय बन सकता है। वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में इसकी आवश्यकता और ज्यादा बढ़ जाती है। मृदुता की अनुप्रेक्षा से ही इस समस्या का समाधान संभव है।

19.6.4 मृदुता के प्रकार

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मृदुता के दो प्रकार हैं– 1. प्रतीयमान मृदुता 2. यथार्थ मृदुता।

19.6.4.1 प्रतीयमान मृदुता – इस प्रकार की मृदुता का पालन करने वाला व्यक्ति बाह्य दृष्टि से विनम्र होता है। व्यवहार में वह बहुत ही शिष्ट एवं मधुर व्यवहार करता है, मृदुभाषी होता है, लेकिन भीतर में मृदुता से रहित, अहंकार से युक्त तथा स्वार्थवृत्ति से परिपूर्ण होता है। ऐसा व्यक्ति धोखेबाज होता है, उसे मृदुता की कोटि में नहीं माना जा सकता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

19.6.4.2 यथार्थ मृदुता – जो व्यक्ति मृदुता का अभ्यास करता है उसका अन्तर्मन मृदुता से भावित होता है। उसके जीवन में विनयशीलता, निरभिमानता एवं उदारता का क्रमशः विकास होता है। यही वास्तव में विनम्रता का सही स्वरूप है।

19.6.5 मृदुता के बाधक तत्त्व

मार्दव अर्थात् मृदुता के विरोधी भाव अहंकार, गर्व, मद, कठोरता हैं। मृदुता की विपरीत स्थिति मन, वचन, क्रिया की कठोरता है। डॉ. महावीर सरन जैन के अनुसार – "अहंकार अधर्म का मार्ग है, इससे हम आत्म–चेतना से दूर होते जाते हैं। बाह्य पदार्थों में हमारी आसक्ति एवं अनुरक्ति बढ़ती जाती है। गर्व के कारण मन में अपने अहंकार के प्रति ''मान'' होता है। मान विनय का विनाश कर डालता है। मद में हम विवेक खो देते हैं। सोचने–समझने की शक्ति समाप्त हो जाती है। मन की सारी कोमलता नष्ट हो जाती है। हमारा वचन ही नहीं, मन एवं कर्म भी कुटिल हो जाते हैं।" आचार्य समन्तभद्र ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में संसार में प्रसिद्ध आठ प्रकार के मदों का उल्लेख किया है–

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः।।

अर्थात् 1. ज्ञान, 2. पूजा, 3. कुल, 4. जाति, 5. बल, 6. ऋद्धि, 7. तप और 8. शरीर; इन आठ वस्तुओं के आश्रय से जो मान किया जाता है, उसे वीतराग भगवान ने मान कहा है। मानरूपी हाथी पर आरुढ़ होने के कारण ही बाहुबली को एक वर्ष तक ध्यान साधना करने पर भी कैवल्य की प्राप्ति नहीं हुई। अपनी दोनों बहिनों ब्राह्मी और सुन्दरी का प्रतिबोध पाकर बाहुबली का अहंकार चकनाचूर हो जाता है। उनकी भावना में छोटे भाइयों के प्रति विनम्रता का उद्रेक होते ही कैवल्य की प्राप्ति हो गयी। वास्तव में जो व्यक्ति इन आठों प्रकार के मदों का अंशमात्र भी अहंकार नहीं करता वही मृदुता का अधिकारी होता है। विनम्रता अर्थात् मृदुता से ही कषायरूपी शत्रुओं का विनाश संभव होता है। विनम्रता से पाषाण के समान कठोर दिल भी विगलित होकर कोमल सिकता कणों में परिणत हो जाता है। विनम्रता के द्वारा आन्तरिक गुणों का विकास होता है। यथार्थ में जो व्यक्ति अपनी आत्मा के प्रति विनम्र होता है वही दूसरों के प्रति विनम्र व्यवहार कर सकता है। दूसरा व्यक्ति यदि उसका अहित करता है तो भी मृदु व्यक्ति क्षमा प्रदान कर देता है। वहीं अहंकारी व्यक्ति सत्ता के मद में अपने आप में गर्व का अनुभव करता है। प्रतिशोध की भावना में मद युक्त होकर आचरण करता है, ऐसा व्यक्ति लक्ष्य से भटक जाता है। वह गंतव्य से दूर केवल बाहरी यात्रा में ही अपने अमूल्य जीवन को बर्बाद कर देता है, फिर उसे रावण की तरह पराजय का ही सामना करना पड़ता है।

19.6.6 मृदुता की अनुप्रेक्षा

मृदुता की अनुप्रेक्षा के द्वारा मृदुता के बाधक तत्त्वों का निराकरण संभव है। इसकी प्रविधि इस प्रकार है –

1. महाप्राण ध्वनि — 02 मिनिट
2. कायोत्सर्ग — 05 मिनिट
3. हरे रंग का श्वास लें। अनुभव करें–श्वास के साथ हरे रंग के परमाणु भीतर प्रवेश कर रहे हो। — 03 मिनिट
4. दर्शनकेन्द्र पर हरे रंग का ध्यान करें। — 03 मिनिट
5. शांतिकेन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें– 'मृदुता का भाव पुष्ट हो रहा है। अहं का भाव क्षीण हो रहा है'–इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें फिर इसका नौ बार मानसिक जप करें। — 05 मिनिट
6. अनुचिंतन करें–
   1. व्यक्ति और वस्तु के प्रति मेरा व्यवहार विनम्र होना चाहिए।
   2. सत्य के प्रति विनम्र भाव, जो मो कहता हूं वही सत्य है, इस आग्रह से बचने का मनोभाव।
   3. मुझे अपने अहं का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए।
   4. कृतज्ञता ज्ञापन के लिए साधुवाद, धन्यवाद देना, सत्य प्रकृति का अनुमोदन करना जीवन की सफलता का एक आवश्यक तत्त्व है।
   5. अपनी भूल के लिए खेद प्रकट करना, अप्रिय व्यवहार हो जाने पर क्षमायाचना करना अपने आपको बड़ा बनाने का उपाय है। इन सबके प्रति मो जागरूक बना रहूंगा। — 10 मिनिट
7. महाप्राण ध्वनि के साथ प्रयोग संपन्न करें। — 02 मिनिट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

19.7 ऋजुता

भारतीय परम्परा में विशुद्धि के लिए प्रायश्चित्त का कथन किया गया है। प्रायश्चित्त की पहली शर्त है कि व्यक्ति बच्चे जैसा सरल होकर अपने दोषों को गुरु के समक्ष रखें। यह है– आलोचना। जो अपने ज्ञात को छिपाता है, दुर्बलता और कमजोरी को छिपाता है, उसकी शुद्धि नहीं हो सकती। जिसकी शुद्धि नहीं हो सकती उस आत्मा में धर्म टिक नहीं सकता। ऋजु आत्मा शुद्ध होती है और शुद्ध आत्मा में ही धर्म टिकता है।

19.7.1 ऋजुता का अर्थ

'ऋजोर्भावः आर्जवम्' ऋजुता अर्थात् सरलता का नाम आर्जव है। आर्जव का अर्थ है सरलता। सरलता वह प्रकाश–पुंज है जिसे हम चारों ओर देख सकते हैं। ऋजु शब्द के दो अर्थ हैं– सरलता और मोक्ष। उत्तराध्ययनचूर्णी में ऋजुभूत का अर्थ किया गया है– 'अर्जतीति ऋजुभूतः तद् गुणवतः' अर्थात् सरलता के गुण से युक्त। वृहद्वृत्ति में इसका अर्थ है– चतुरंग की प्राप्ति से मुक्ति के प्रति प्रस्थित।

19.7.2 ऋजुता का स्वरूप

गीता में ऋजुता को साधना का एक प्रधान अंग माना गया है। अर्जुन को ज्ञान के साधनों को बताते हुए श्री कृष्ण ने श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, दम्भाचरण का अभाव, अहिंसा तथा क्षमा के बाद ''आर्जव'' को स्थान दिया है। जैसा कि गीता के तेरहवें अध्याय में कहा गया है– ''अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्'' अर्थात् कपट का त्याग करके व्यक्ति सत्य की साधना कर सकता है तथा अन्तःकरण की शुद्धि कर सकता है। इस कारण सत्य एवं शौच के पालन के लिए 'आर्जव' भूमिका का निर्माण करता है।

भगवान् महावीर ने उत्तराध्ययनसूत्र में कहा है –

सोही उज्जुयभूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई।
निव्वाणं परमं जाइ घयसित्त व्व पावए।।

अर्थात् शुद्धि उसे प्राप्त होती है जो ऋजुभूत होता है। धर्म उसमें ठहरता है जो शुद्ध होता है। जिसमें धर्म ठहरता है वह घृत से अभिषिक्त अग्नि की भांति परम निर्वाण (समाधि) को प्राप्त होता है।

ऋजुता शुद्धि का घटक तत्त्व है। निर्जरा हमारे प्रत्यक्ष नहीं है। शुद्धि व्यवहार में प्रत्यक्ष हो जाती है। शुद्धि और ऋजुता दोनों में सन्निकट संबंध है। ऋजुता का एक प्रकार है– अविसंवादन अर्थात् कथनी और करनी में संवादिता। असंवादिता आने पर ही जीवन में धर्म की आराधना होती है। उनतीसवें अध्ययन में इसका स्पष्ट उल्लेख है–

गौतम ने पूछा– भंते! संवादिता–ऋजुता से जीव क्या प्राप्त करता है?

भगवान् बोले– ऋजुता से वह काया, मन और भाषा–वाणी की सरलता और अविसंवादन वृत्ति को प्राप्त होता है। अविसंवादन वृत्ति से संपन्न जीव धर्म का आराधक होता है।

माया एक शल्य है। उसकी विद्यमानता में व्रत या धर्म की प्राप्ति नहीं होती। उमास्वाति ने इसी आशय से तत्त्वार्थवार्तिक में लिखा है– निःशल्यो व्रती अर्थात् व्रती या धार्मिक वही व्यक्ति होता है जो निःशल्य हो जाता है।

19.7.3 ऋजुता का महत्त्व

स्वस्थ शरीर, शुद्ध मन तथा आत्मानुसंधान के अतिरिक्त सामाजिक विश्वास का वातावरण बनाने की दृष्टि से भी आर्जव का बहुत बड़ा महत्त्व है। कुटिलता के कारण पारिवारिक जीवन में बिखराव, अविश्वास, तनाव एवं वैमनस्य की स्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं। आर्जव गुण के कारण छल, कपट, कुटिलता दूर होती हैं तथा मन, वचन और कर्म की एकरूपता स्थापित होती है। आर्जव से ही मैत्री भाव की आधारभूमि सुदृढ़ बनती है। मित्रता का आधार है– परस्पर निष्कपटता, स्पष्टवादिता तथा उन्मुक्तता। मित्रों के बीच कोई दुराव–छिपाव नहीं होता। माया के दुष्परिणाम को बताते हुए भगवान महावीर ने कहा है– ''माया मित्ताणि नासेइ।'' अर्थात् माया मित्रता का नाश कर देती है। इस प्रकार पारिवारिक और सामाजिक जीवन मे परस्पर मैत्री भाव उत्पन्न करने के लिए आर्जव गुण के सतत् अभ्यास की आवश्यकता है।

गौतम बुद्ध ने कहा था कि जिस प्रकार कुशल बढ़ई लकड़ी को सीधा करके उससे सुन्दर खिलौने और विशाल भवन तैयार करता है, वैसे ही साधक ऋजुता से अपने आपको सीधा और सरल बनाता है।

19.7.4 आर्जव के बाधक तत्त्व

आर्जव के विरोधी भाव माया, छल, कपट एवं कुटिलता हैं। जिस व्यक्ति के हृदय में कपट एवं कुटिलता होती है उसकी दृष्टि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आविष्ट, आविल एवं मलिन होती है। उसका जीवन कृत्रिम एवं असामाजिक बन जाता है। माया का निरुपण करते हुए आचार्य शुभचन्द्र ने ज्ञानार्णव के उन्नीसवें सर्ग में कहा है–

जन्मभूमिरविद्यानामकीर्तेर्वासमन्दिरम्।
पापपंकमहागर्तो निकृतिः कीर्तिता बुधैः ।।
अर्गलेवापवर्गस्य पदवी श्वभ्रवेश्मनः।
शीलशालवने वह्नि र्मायेयमवगम्यताम् ।।

अर्थात् बुद्धिमान लोग कहते हैं कि माया को इस प्रकार जानो कि वह अविद्या की जन्मभूमि, अपयश का घर, पापरूपी कीचड़ का बड़ा भारी गड्ढा, मुक्ति द्वार की अर्गला, नरकरूपी घर का द्वार और शालरूपी शालवृक्ष के वन को जलाने के लिए अग्नि है। माया के कारण व्यक्ति यह नहीं समझ पाता कि प्रकृत क्या है, अप्राकृतिक क्या है? ऋजु क्या है और कृत्रिम क्या है? कपट क्या है और निष्कपट क्या है? इस प्रकार माया से सद्गति का प्रतिघात होता है। छल एवं कपट से दुर्गुणों को प्रश्रय मिलता है। हमारा व्यक्तित्व कुण्ठा ग्रस्त हो जाता है। आन्तरिक द्वन्द्व बढ़ जाता है। ऐसे व्यक्ति के चित्त की एकाग्रता समाप्त हो जाती है, स्मरण शक्ति एवं कल्पना शक्ति कमजोर हो जाती है। मानसिक ग्रन्थियां दृढ़तर होती जाती हैं। ऐसे व्यक्ति में न चरित्र बल होता है और न व्यक्तित्व की एकरूपता रह पाती है। कपट के कारण व्यक्ति खुल नहीं पाता, अचेतन मन की खोज करके प्रत्येक प्रकार के द्वन्द्व को चेतना की सतह पर लाने में असमर्थ होता है। उसके अचेतन मन में कलुषित भावों का जो भण्डार भरता है, वह उसके व्यक्तित्व को विभाजित कर देता है। ऐसी स्थिति में मानसिक रोग, बेचैनी, कल्पित भय आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इन मानसिक रोगों से बचने के लिए व्यक्ति का अंतर हृदय निष्कपट होना जरूरी है। निष्कपटता से व्यक्ति की दमित वासनाएं अचेतन मन से निकल कर चेतन मन पर अभिव्यक्त हो जाती हो और व्यक्ति अपने आप पर नियंत्रण रखने में सक्षम हो जाता है। अतः सरलता से ही माया का विरेचन सम्भव होता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से व्यक्ति माया के कारण राग–द्वेष एवं मोह ग्रस्त हो जाता है और अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरुप को भूल जाता है।

19.7.5 आत्म–शोधन की प्रक्रिया ऋजुता

भगवान महावीर ने कहा– 'निर्मलता उसे प्राप्त होती है, जो ऋजु होता है।' कपटी मनुष्य का मन कभी निर्मल नहीं होता। बच्चे का मन सरल होता है इसलिए उसके ऊपर सभी स्नेह भाव रखते हैं। लेकिन व्यक्ति जैसे–जैसे बड़ा होता है उसमें छलना का विकास होना शुरु हो जाता है। माया एवं प्रपंच का आवरण सघन होता चला जाता है, जिसके कारण एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के प्रति अविश्वास पैदा होता है और वैमनस्य की वजह से आपस में दूरी बढ़ती चली जाती है। एक संस्कृत कवि ने कहा है– 'सन्धते सरला सूची, वक्रा छेदाय कर्तरी' अर्थात् सूई सरल होती है, इसलिए जोड़ती है, दो को एक करती है और कैंची टेढ़ी होती है, इसलिए वह काटती है, एक को दो कर देती है। यदि हर व्यक्ति का मन खुली पोथी जैसा होता तो मनुष्य–मनुष्य से कभी नहीं डरता। आज एक आदमी दूसरे आदमी से इसीलिए डरता है कि उसके मन में छिपाव है, घुमाव है, अस्पष्टता है और अंधकार है तथा दूसरे को धोखा देने की प्रवृत्ति है। आवश्यकता है व्यक्ति सरल हो, वातावरण के प्रति सजग हो। जिसका मन सरल होता है वह दूसरों से ठगा नहीं जाता। सरलता मन का वह प्रकाश है, जिसमें कोई भी वस्तु अस्पष्ट नहीं रहती।

आर्जव का अर्थ मूर्खता नहीं है। प्रज्ञा सम्पन्न व्यक्ति के द्वारा आन्तरिक सद्गुणों का विकास करना है, अचेतन मन की अनजानी दमित वासनाओं को चेतन मन के धरातल पर लाना है।

19.7.6 ऋजुता की अनुप्रेक्षा

आर्जव (ऋजुता) आत्म शोधन की अपूर्व प्रक्रिया है। यह व्यक्ति के चरित्र और व्यवहार को निष्कपट बनाता है। कषायों के बंधनों को ढ़ीलाकर आत्मोपलब्धि का मार्ग प्रशस्त करता है। ऋजुता की अनुप्रेक्षा के द्वारा जीवन में सरलता का विकास होता है। इस अनुप्रेक्षा का अभ्यास इस प्रकार किया जा सकता है–

1. महाप्राण ध्वनि	02 मिनिट
2. कायोत्सर्ग	05 मिनिट
3. अरुण रंग का श्वास लें। अनुभव करें– श्वास के साथ अरुण रंग के परमाणु भीतर प्रवेश कर रहे हैं।	03 मिनिट
4. दर्शन–केन्द्र पर अरुण रंग का ध्यान करें।	03 मिनिट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. दर्शन–केन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें–

'ऋजुता का भाव पुष्ट हो रहा है। वक्रता का भाव क्षीण हो रहा है'–इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें, फिर इसका नौ बार मानसिक जप करें। 05 मिनिट

6. अनुचिंतन करें–

ऋजुता और सत्य–दोनों परस्पर जुड़े हुए हो। जहां ऋजुता है वहां सत्य है और जहां सत्य है वहां ऋजुता है। ऋजुता को छोड़ कर सत्य की कल्पना नहीं की जा सकती।

ऋजु व्यक्ति ही अपने भावों को दूसरों तक सम्यग् प्रकार से पहुंचा सकते हैं और दूसरों के भावों को सम्यग् प्रकार से ग्रहण कर सकते हैं। ऋजु व्यक्ति ही कथनी और करनी की दूरी को कम कर सकते हैं। ऋजुता एक बहुत बड़ा मानवीय गुण है। मेरा संकल्प है कि मैं इसे अपने में विकसित करूं। 10 मिनिट

7. महाप्राण ध्वनि के साथ प्रयोग संपन्न करें। 02 मिनिट

19.8 अनासक्ति

अनासक्ति साधना का महत्त्वपूर्ण साधन है। जहां आसक्तिरूपी चेप होता है वहां कर्मरूपी मल आकर आत्मा के चिपकता रहता है। आत्मा कर्म–मलों से मलिन होती रहती है। जीवन योग प्रधान है। योग में अनासक्ति और आसक्ति का भाव है। अनासक्त योग से आत्मस्थ होने का भाव विकसित होता है और आसक्त होने से उसका विघटन होता है। जैन दर्शन में इनको संयम और असंयम के नाम से पहचाना जाता है। अनासक्त और आसक्त का प्रयोग भी प्राप्त होता है। जैसे 'असंसत्तं न पलोएज्जा' अर्थात् आसक्त भाव से मत देखो।

19.8.1 अनासक्ति का स्वरूप

अनासक्ति का अर्थ है– पदार्थ के साथ जुड़ी हुई चेतना का छूट जाना, उसके घनत्व का तनूकरण हो जाना, पदार्थ के साथ चेतना का संपर्क कम हो जाना। जब यह होता है तब समूचे जीवन में चेतना व्याप्त हो जाती है और आसक्ति की छाया दूर हो जाती है। अनासक्ति वस्तु का विवेकपूर्ण त्याग है। त्याग में उसका सर्वथा विसर्जन होता है। अनासक्ति का चरम विकास त्याग है। सही मायने में त्याग का भाव वहीं फलित होता है जहां अनासक्ति की साधना हैं। अनासक्ति के बिना त्याग में आसक्ति के स्रोत फूटने लगते हो। जैन मनीषियों ने उसे मनोवैज्ञानिक ढंग से चार भागों में विभक्त किया है– 1. सर्वप्रथम वस्तु के प्रति इच्छा होती है, 2. उस ओर प्रयत्न, 3. उसकी प्राप्ति, 4. प्राप्त की हुई का उपभोग।

आसक्ति का आपात भद्र लगता है और परिणाम अभद्र। आसक्ति में व्यक्तित्व भटकता है और अनासक्ति में वह निखरता है। आसक्ति पर–प्रवेशी है और अनासक्ति स्व–प्रवेशी। आसक्ति आकाश के समान अनन्त होती है– 'इच्छा हु आगास समा अणंतया' और अनासक्ति में उसका नियंत्रण होता है। गीता का नवनीत है– अनासक्ति योग। अनासक्ति एक महान प्रयोग है।

18.8.2 अनासक्त कौन?

अनासक्त व्यक्ति ही त्यागी हो सकता है, आसक्त व्यक्ति कभी भी त्यागी नहीं हो सकता। जो आसक्त होता है वह परतंत्र है और परतंत्र कभी त्यागी नहीं हो सकता। भोगी आसक्ति के कारण संसार में लिप्त हो जाता है, अभोगी नहीं। भोगी भ्रमण करता है, अभोगी नहीं। मिट्टी के आर्द्र गोले पर रज चिपकती हैं, अनार्द्र पर नहीं चिपकती। इस प्रकार अविरक्त लिप्त होता है, विरक्त लिप्त नहीं होता। यह आसक्ति और अनासक्ति का रूपक है। इससे यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि चिपकने का कारण मिट्टी नहीं, उसमें सन्निहित आर्द्रता है, आसक्ति है। जैन साहित्य में युग के आदि सम्राट् भरत चक्रवर्ती की अनासक्त भावना विश्रुत है। वे महलों में विपुल वैभव विलासों में रहते हुए भी भीतर से कमल की भांति निर्लिप्त थे। जैसा कि उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है– 'जहा पोमं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा।' अर्थात् मन जब बाहरी भूमिका से उठ कर ऊपर चला जाता है तब वह अनासक्त बन जाता है। स्थूलिभद्र ने कोशा वेश्या की रंगशाला में चातुर्मास किया, किंतु उनके मन पर अंश मात्र भी आसक्ति का भाव नहीं आया। वे अनासक्ति की पराकाष्ठा को प्राप्त कर चुके थे। अनासक्त मन पर बाहरी वस्तुओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

योगीराज कृष्ण ने कहा– मैं उदासीन की भांति आसीन हूं। कर्मों में अनासक्त हूं, इसलिए वे कर्म मुझे बांध नहीं पाते–

न च मां तानि कर्माणि, निबध्नन्ति धनंजय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु।।

प्रयोग के बिना कोई मनुष्य उदासीन नहीं हो सकता। सामन्यतः हर मनुष्य प्रिय और अप्रिय संवेदना में जीता है। इन संवेदनाओं से ऊपर उठना साधना के बिना संभव नहीं हो सकता। गीता में उदासीन का अर्थ है आत्मवान्। आत्मवान् ही अनासक्त हो सकता है, उसे कर्म नहीं बांध पाते। जैसा कि गीता में ही अन्यत्र कहा गया है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

योगसंन्यस्तकर्माणि, ज्ञानसंच्छिन्नसंशयम्।

आत्मवन्तं न कर्माणि, निबध्नन्ति धनंजय।।

आत्मवान होने का प्रयोग है– वैभाविक क्रिया के अकर्तृत्व का अनुभव। देखना, सुनना, छूना, सूंघना, श्वास लेना ये सब इन्द्रिय कार्य हैं। इन्द्रियां अपने–अपने विषयों में प्रवृत्त हो रही हैं। संवेदन मेरा मौलिक स्वभाव नहीं है। इस प्रकार अपने ज्ञाता– द्रष्टा स्वरूप की अनुभूति करने वाला आत्मवान् हो जाता है।

19.8.3 अनासक्ति का महत्त्व

गीता में अनासक्ति के महत्त्व को बताते हुए कहा गया है– "जो पुरुष समस्त कर्मों और उनके फल में आसक्ति का सर्वथा त्याग करके संसार के आश्रय से रहित हो गया है और परमात्मा में नित्य तृप्त है, वह कर्मों में भलीभांति बर्तता हुआ भी वास्तव में कुछ भी नहीं करता। जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति का त्याग कर कर्म करता है, वह पुरुष जल में कमल के पत्ते की तरह पाप में लिप्त नहीं होता।

अनासक्त व्यक्ति संसार में रहता हुआ भी लिप्त नहीं होत उसी का उल्लेख करते हुए आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने संबोधि में कहा है–"जो विषयों से विरक्त होता है वह शोक को प्राप्त नहीं होता। वह संसार में रहता हुआ भी पानी में कमल की तरह भोगों में लिप्त नहीं होता।"

19.8.4 निष्काम कर्म

लक्ष्य प्राप्ति का महत्त्वपूर्ण साधन है निष्काम कर्म। गीता का निष्काम कर्म सर्वत्र प्रसिद्ध है। किसी भी मनुष्य के द्वारा सम्पूर्णता से सब कर्मों का त्याग किया जाना शक्य नहीं है; इसलिए जो कर्मफल का त्यागी है, वही त्यागी है– ऐसा कहा जाता है। इसीलिए श्रीकृष्ण ने स्पष्ट शब्दों में कहा है–

कर्मण्यवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।

अर्थात् तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो। अतः केवल कर्म करते जाओ, फल की आकांक्षा नह , वास्तव में वही निष्काम कर्म है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने संबोधि में निष्काम कर्म का विश्लेषण करते हुए कहा है–

अशुभांश्च शुभांश्चापि, पुद्गलांस्तत्फलानि च।

विजहाति स्थितात्माऽसौ, मोक्षं यात्यपुनर्भवम्।।

जो स्थितात्मा शुभ–अशुभ पुद्गल और उनके द्वारा प्राप्त होने वाले फल का त्याग करता है, वह मोक्ष को प्राप्त होता है। फिर वह कभी जन्म ग्रहण नहीं करता।

19.8.5 अनासक्ति की अनुप्रेक्षा

हम यदि अपने जीवन में अनासक्ति का विकास करना चाहते हैं तो आवश्यकता है कि अनासक्ति की अनुप्रेक्षा का प्रयोग करें। अनासक्ति की अनुप्रेक्षा के द्वारा हम आसक्ति के उपर विजय प्राप्त कर सकते हैं। इसकी प्रविधि इस प्रकार है –

1. महाप्राण ध्वनि — 02 मिनिट
2. कायोत्सर्ग — 05 मिनिट
3. नीले रंग का श्वास लें। अनुभव करें– श्वास के साथ नीले रंग के परमाणु भीतर प्रवेश कर रहे हैं। — 03 मिनिट
4. विशुद्धि–केन्द्र पर नीले रंग का ध्यान करें — 03 मिनिट
5. शांतिकेन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें– "अनासक्ति का विकास हो रहा है। पदार्थ के प्रति मूर्च्छा का भाव क्षीण हो रहा है" (इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें फिर इसका नौ बार मानसिक जप करें)। — 05 मिनिट
6. अनुचिंतन करें– मैं पदार्थ की प्रकृति को जानता हूं। वह मेरे लिए उपयोगी है। उससे मुझे सुविधा मिलती है, किंतु सुख और शांति नहीं। ये मेरे आंतरिक गुण हो। मो संकल्प करता हूं कि मो पदार्थ के प्रति मूख्च्छत नहीं बनूंगा। सदा अपने प्रति जागरूक रहूंगा। — 10 मिनिट
7. महाप्राण ध्वनि के साथ प्रयोग सम्पन्न करें। — 02 मिनिट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

19.9 संवेगों का संतुलन

संवेगों का संतुलन होना बहुत जरूरी है। यदि व्यक्ति के संवेग संतुलित नहीं होते हैं तो वह समाज के लिए सिर दर्द बन जाता है। आज विद्यार्थी शिक्षा के क्षेत्र में सिर दर्द बना हुआ है। उसका मूल कारण है कि आज केवल बौद्धिक विकास की तरफ तो ध्यान दिया जाता है, परन्तु भावनात्मक विकास की तरफ ध्यान नहीं दिया जाता। भावनात्मक विकास के अभाव में संवेगों का संतुलन बिगड़ जाता है। संवेगों के असंतुलन के कारण व्यक्ति अपने आप का नियंत्रण नहीं रख पाता। अतः संवेगों का परिष्कार होना जरूरी है।

19.9.1 संवेग क्या है?

आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार– "भय एक संवेग है। इसके कारण व्यक्ति शारीरिक और मानसिक पीड़ाओं को भोगता है। यदि भय और चिंता का संवेग कम होता है तो खतरे की बात टल जाती है और बहुत सारी बीमारियां स्वतः टल जाती हैं। मनोकायिक (साईकोसोमेटिक) बीमारियों में कमी आ जाती है।" मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य में मौलिक मनोवृत्तियां और संवेग होते हैं। संवेग जीवन को बहुत प्रभावित करते हैं। इसलिए संवेगों पर संतुलन होना जरूरी है। विद्यार्थी जीवन में इसकी समस्या संक्रमण काल में अधिक आती है। जब दो अवस्थाओं का संधिकाल होता है तब एक खतरनाक मोड़ उपस्थित होता है। आठ–नौ वर्ष की अवस्था, ग्यारह–बारह वर्ष की अवस्था और सतरह–अठारह वर्ष की अवस्था; ये तीन मोड़ ऐसे हैं जहां बालक को माता–पिता के मार्ग–दर्शन की विशेष आवश्यकता होती है। क्योंकि इस समय बालक में विशेष प्रकार के हार्मोन्स के स्राव होते हैं। वे स्राव बालक में संवेग की विचित्र स्थिति पैदा कर देते हैं। शिशु किशोर बनता है। उसकी मांसपेशियां शक्तिशाली बनती हैं। शरीर में अतिरिक्त शक्ति का संचार होता है। यह किशोरावस्था की शुरुआत है। इस अवस्था में बालकों में शारीरिक परिवर्तन होते हैं, शरीर की क्रियाएं बदलती हैं। यौवन के बीज अंकुरित होने लगते हो। इस अवस्था में क्रोध, मान, अपमान, भय, सम्मान, तिरस्कार आदि का बोध होने लगता है। संवेगों का प्रबल ज्वार उमड़ता है। बालकों को सही मार्ग–दर्शन की अपेक्षा होती है। यदि वे अपने आप पर नियंत्रण करना सीख लेते हैं तो आगे बढ़ जाते हैं अन्यथा इस उम्र में बालक बाधा ग्रस्त होकर पिछड़ जाते हैं। अतः संवेग नियंत्रण की शिक्षा बहुत जरूरी है।

19.9.2 संवेग नियंत्रण और जीवन विज्ञान की शिक्षा

संवेग हमारे ग्रन्थितत्र और नाड़ीतत्र दोनों को प्रभावित करते हो। यदि इन दोनो में सतुलन रहता है तो जीवन का निर्माण अच्छा होगा। अगर नाड़ीतंत्र और ग्रन्थितंत्र में ही असंतुलन होता है जो पूरे जीवन का ढांचा ही लड़खड़ा जाता है। उस समय बच्चों में अनेक प्रकार की जटिल आदतों का निर्माण हो जाता है। इसलिए बच्चों के भविष्य का अच्छा निर्माण करने के लिए भावात्मक विकास की शिक्षा की आवश्यकता है। जीवन विज्ञान की शिक्षा के द्वारा भावात्मक विकास किया जा सकता है। बाल अवस्था में जो शिक्षा बच्चों को दी जाती है उसी के आधार पर उनके जीवन का निर्माण निर्भर करता है। उनके संवेगों पर ध्यान देना आवश्यक है। जैसे अक्षर बोध शिक्षा का अनिवार्य अंग है वैसे ही बालकों के जीवन का सर्वांगीण विकास करना शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग है। सर्वांगीण विकास के लिए शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और भावात्मक– इन चारों आयामों का संतुलित विकास होना जरूरी है। इन चारों आयामों का संतुलित विकास होता है तो संवेगों का परिष्कार अवश्यम्भावी है।

संवेग नियंत्रण के लिए जीवन विज्ञान में वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से चिंतन किया गया है। वैज्ञानिक दृष्टि से ग्रन्थितंत्र एवं नाड़ीतंत्र के संतुलन में चैतन्यकेन्द्रों के जागरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। चैतन्यकेन्द्रों के जागरण से हृदय परिवर्तन होता है। हृदय परिवर्तन के द्वारा ही स्वभाव एवं आदतों का परिष्कार संभव होता है। आध्यात्मिक दृष्टि से जिस व्यक्ति का तृतीय नेत्र जागृत होता है, वह अपने भावों पर नियंत्रण कर सकता है। जीवन विज्ञान में तृतीय नेत्र का अर्थ है 'अन्तर्दृष्टि का जागरण हो जाना।'

वैज्ञानिक दृष्टि से चिंतन करें तो हाइपोथेलेमस संवेगों का उद्‌गम स्थल है उस पर ध्यान करने से नियंत्रण स्थापित हो जाता है। उसे ही हम अध्यात्म की भाषा में हृदय परिवर्तन कहते हैं, अर्थात् हृदय परिवर्तन का अर्थ है 'भावों का परिष्कार'। अध्यात्म के क्षेत्र में हम तृतीय नेत्र के जागरण की बात करते हैं। वैज्ञानिक क्षेत्र में उसे ही पीच्युटरी ग्लैण्ड का संतुलन कहते हैं। इस प्रकार अध्यात्म और विज्ञान दोनों आपस में बहुत नजदीक हैं। इसे हम ऐसे भी कह सकते हैं कि जीवन विज्ञान के प्रयोग आध्यात्मिक होते हुए भी वैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

19.9.3 स्वास्थ्य की अनुप्रेक्षा

रवारथ्य की अनुप्रेक्षा रांवेग परिष्कार का गहत्त्वपूर्ण प्रयोग है। इराका अभ्यारा करने के लिए उराकी प्रायोगिक प्रविधि का ज्ञान होना आवश्यक है, जो इस प्रकार है –

1. महाप्राण ध्वनि 05 बार
2. संकल्प– "मैं स्वस्थ होने के लिए प्रयोग कर रहा हूं। मेरी आंतरिक शक्तियां मुझे सफल बनायेंगी।"
3. जप (ध्यान स्वास्थ्य केन्द्र या शक्ति केन्द्र पर रखते हुए) – ऊँ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं का जप – 02 मिनिट
4. स्वास्थ्य या शक्तिकेन्द्र पर नीले रंग का ध्यान। 03 मिनिट
5. कायोत्सर्ग – तीन बार तनाव–भारीपन–हल्केपन का अनुभव के बाद शिथिलीकरण – 03 मिनिट
6. आनन्द केन्द्र पर ध्यान रखते हुए स्वतः सुझाव – मेरा मन शांत हो रहा है ; मेरा मन संतुलित हो रहा है ; मेरा मन स्वस्थ हो रहा है। तीन बार दोहराएं फिर मन में भावना करें। 02 मिनिट
7. दीर्घश्वास – ध्यानपूर्वक रेचन करते हुए अनुभव करें – शरीर के विकार बाहर जा रहे हो। शोधन (निर्जरा) हो रहा है। शरीर का कण–कण शुद्ध हो रहा है। 02 मिनिट
8. ध्यानपूर्वक पूरक करते हुए अनुभव करें – चारों ओर स्वास्थ्य के परमाणु फैले हुए हैं। प्रत्येक श्वास के साथ वे भीतर प्रवेश कर रहे हैं। पोषक परमाणु शरीर के भीतर जा रहे हैं। 03 मिनिट
9. चित्र–निर्माण– अब मानसिक चित्र का निर्माण करें। अपने इष्ट महावीर या बाहुबली जैसी प्रतिमा का साक्षात्कार करें और तादात्म्य के साथ स्वयं को वैसा अनुभव करें। 01 मिनिट
10. जप (ध्यान स्वास्थ्य केन्द्र या शक्ति केन्द्र पर रखते हुए) – ऊँ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं का जप। 01 मिनिट
11. नीले रंग का ध्यान करे।
12. महाप्राण ध्वनि (तीन बार) के साथ प्रयोग सम्पन्न।

19.10 आत्म चिंतन / आत्म विश्लेषण

आत्म चिंतन का मतलब है कि आत्मा को चिंतन करते–करते आत्मा तक पहुंच जाएं। हमारा चिंतन तब तक चले जब तक हम आत्मा तक न पहुंच जाएं। व्यावहारिक पक्ष यह है कि हमारा चिंतन तब तक चले जब तक हम अपने आप को दुःखी बनाने वाली चेष्टाओं को न पकड़ पाएं। सहज ही प्रश्न उठता है कि क्या चिंतन से बुराई को मिटाया जा सकता है? समाधान मिला कि बुराई मिट सकती है। मनुष्य जो बुराई करता है वह मूल नहीं है, वह तो मात्र अभिव्यक्ति है। बुराई का मूल तो यह है कि मन बुराई के संस्कारों के पास में बैठा है। बुराई के संस्कार सूक्ष्म हैं। सूक्ष्म को मिटाने के लिए सूक्ष्म ही समर्थ हो सकता है। चिंतन मन की क्रिया है। वह सूक्ष्म है, इसीलिए बुराई को मिटाने में जितना उसका महत्त्व है उतना बाह्य कर्मों का नहीं है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ का चिंतन है कि "दो क्षण के ध्यान से जो शुद्धि होती है, वह कई उपवासों से भी नहीं होती।" जो अपनी दुर्बलताओं को मिटाना चाहते हैं। वे उनके विच्छेद होने का चिंतन करें, चित्त की तीव्रतम अनुभूति उसमें जोड़ दें। जिन अच्छाइयों का हम अपने जीवन में विकास करना चाहते हैं, उनका अनुचिंतन करें, चित्त की सघन अनुभूति का सातत्य बना रहे। जो आत्मा को प्राप्त करना चाहते हैं वे चित्त की तीव्रतम अनुभूति उसके साथ जोड़ दें।

19.10.1 आत्मचिंतन का स्वरूप

सतत् चिंतन को महात्मा बुद्ध ने स्मृति उपस्थापन कहा है, अर्थात् जिस कार्य में चित्त को नियोजित करें वह उसी में लगा रहे तथा उसकी सतत् अनुभूति होती रहे, उसे स्मृति उपस्थापन कहा जाता है। भगवान् महावीर ने इसी को भावक्रिया कहा है। कोई भी व्यक्ति व्रतों को स्वीकार करता है तो उसके साथ तीव्र अनुभूति का जुड़ना जरूरी है, तभी वे सिद्धि को प्राप्त होते हैं। इसीलिए व्रतों के साथ–साथ आत्मोपासना का जुड़ना जरूरी है। आत्मोपासना का पहला सूत्र है– प्रतिदिन आत्मचिंतन करना। आचार्यश्री महाप्रज्ञ का चिंतन है कि "आत्मा की सतत स्मृति के लिए श्रुतोपासना का होना जरूरी है। जैसे प्रतिदिन आत्म–चिंतन करूंगा, वैसे प्रतिदिन श्रुत का अभ्यास करूंगा; यह जुड़ जाए तो आत्म–चिंतन को अवलम्बन मिल जाए। श्रुत की धाराएं असंख्य हैं। यहां वही प्रयोजनीय है जो आत्मचिंतन को सहारा दे, चरित्र का उन्नयन करे।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

19.10.2 आत्म–चिंतन के सूत्र

स्वेट मार्डन ने आत्मचिंतन के कुछ आधार बिंदु बताए हैं, जिनको अपना कर व्यक्ति अपने जीवन का अच्छा निर्माण कर सकता है। प्रतिदिन प्रातः उठकर आत्मविश्लेषण करें और कुछ सूत्रों को आत्मसात करने का प्रयास करें तो व्यक्ति को सफलता मिल सकती है। वे सूत्र निम्न हैं–

1. मैं सबसे गौरवशाली बनूंगा।
2. मैं अपने जीवन में और अधिक सफलता पाऊंगा। मैं इस कार्य को और अच्छी तरह से कर सकता हूं।
3. मैं अपने दोषों को मिटा कर रहूंगा।
4. मैं संकट आने पर कभी नहीं घबराऊंगा। धैर्य, साहस तधा दुगुनी शक्ति से काम करूंगा। संकट के समय अपनी पूरी ताकत लगा दूंगा।
5. मैं अपना लक्ष्य प्राप्त करके रहूंगा।
6. मैं अपना जीवन स्तर ऊंचा उठाऊंगा। इसके लिए निरंतर घोर परिश्रम करता रहूंगा।
7. मैं सदा कार्यरत रहूंगा।
8. मैं अपना प्रत्येक कार्य समय पर पूरा करूंगा। लोगों को दिये गए वचनों का पालन करूंगा।
9. मैं अपना व्यवहार विनम्र रखूंगा।
10 मैं गलत काम नहीं करूंगा।

एकांत में बैठकर सुबह और सायंकाल दोनों समय इस प्रकार से आत्म–विश्लेषण किया जाए तो अपने आपमें अपूर्व शक्ति के संचार का अनुभव किया जा सकता है। यह अपने आप से वार्तालाप करने का एक महत्त्वपूर्ण तरीका है। इससे आत्मज्ञान बढ़ता है और जीवन में उत्साह का संचार होता है। आत्म–चिंतन कर व्यक्ति स्वयं अपने आपका निरीक्षण कर सकता है, परीक्षण कर सकता है। आगे के लिए अपने आप ही निर्देशन प्राप्त कर सकता है।

19.10.3 आत्मचिंतन का महत्त्व

आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार– "जो व्यक्ति अपने मनोभावों का शिकार होता है, वह बीमारियों को निमंत्रित करता है। बीमारी को मिटाने से पहले अपना आत्मालोचन कर लेना चाहिए। जैन आगमों में दस प्रायश्चित्त बतलाए गए हैं उनमें एक है– आलोचना। इसका अर्थ है आत्म–विश्लेषण करना, आत्मनिरीक्षण करना। भाव–चिकित्सा का यह महत्त्वपूर्ण सूत्र है– बीमारी के समय स्वयं का निरीक्षण करना, अपनी भावनाओं का निरीक्षण करना। हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि क्रोध, भय, चुगली और निंदा से बीमारियां पैदा होती हैं। अठारह पापों के सेवन से भिन्न–भिन्न बीमारियां उत्पन्न होती हैं। जैसे क्रोध के तीव्र आवेग से हृदय रोग हो जाता है। आत्म–ग्लानि के भाव से क्षय रोग हो जाता है।" इस आत्म–विश्लेषण के द्वारा मनोकायिक बीमारियों पर विजय प्राप्त कर सकते है।

रविन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार– "जीवन को ऊंचा उठाने के लिए अपने आपको अपना ही अन्तरंग सखा मानकर आप जब वार्तालाप करते हैं, तो उसके द्वारा आपको एक नई दिशा मिलती है। आपकी सारी गलतियां एकदम स्पष्टरूप से सामने आ जाती हैं।" आत्मचिंतन के द्वारा अपनी बुराइयों का परिष्कार करते जाएं तो हम निश्चितरूप से अपने जीवन में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। आत्मचिंतन के साथ हम प्रतिदिन अपना आत्मविश्लेषण करें कि इस दिन, इस सप्ताह, इस माह मैंने क्या–क्या किया? क्या–क्या करना था जो मैं नहीं कर पाया? अमुक कार्य क्यों नहीं हुआ? जैसा कि गणाधिपति गुरुदेवश्री तुलसी ने कहा था–

क्या किया, क्या कर रहा हूं और क्या करणीय है?
कर सकूं फिर भी न करता, यह सदा स्मरणीय है।।

इस प्रकार के प्रश्न उभार कर हम स्वयं अपने आपका विवेचन करें। अपनी दुर्बलताएं सामने आने पर दृढ़–संकल्प के साथ उनका परिष्कार करें तो हमारे जीवन का एक–एक क्षण सफल और सार्थक हो सकता है।

19.10.4 आत्मतुला की अनुप्रेक्षा

मनरूपी घोड़े को वश में करने की लगाम है अनुप्रेक्षा, श्रुतज्ञान, आत्म–चिंतन, आत्मबोध। अपने विषय में जानना, अपने विषय में सोचना, अपने बारे में चिंतन करना और गहराई में उतर कर अपने आप का अनुभव करना है – यह है आत्म–चिंतन की अनुप्रेक्षा। इसके अभ्यास कि विधि इस प्रकार है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. महाप्राण ध्वनि 02 मिनिट
2. कायोत्सर्ग 05 मिनिट
3. शांति केन्द्र पर सफेद रंग का ध्यान करें–

   (क) अनुभव करें– अपने चारों ओर सफेद रंग के परमाणु फैले हुए हैं। सफेद रंग का श्वास लें। अनुभव करें– प्रत्येक श्वास के साथ सफेद रंग के परमाणु भीतर प्रवेश कर रहे हैं। 03 मिनिट

   (ख) अब अपने चित्त को शांति केन्द्र पर केन्द्रित करें और वहां पर अरुण रंग का ध्यान करें। 3 मिनिट
4. शांति केन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर आत्मतुला की अनुप्रेक्षा करें–

   वह तू ही है जिसे तू तिरस्कृत करना चाहता है।

   वह तू ही है जिसे तू संताप देना चाहता है।

   वह तू ही है जिसे तू मारना चाहता है–इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें। फिर इसका नौ बार मानसिक जप करें। 10 मिनिट
5. अनुचिंतन करें– तिरस्कार किसी को भी पसंद नहीं है।

   संताप किसी को भी प्रिय नहीं है।

   कोई भी मरना नहीं चाहता है।

   क्या विषमतापूर्ण व्यवहार करना सामाजिक जीवन के प्रति अन्याय नहीं है?

   "क्या क्रिया की प्रतिक्रिया नहीं होती? यदि होती है तो मुझे विषमतापूर्ण व्यवहार से बचना है।" 10 मिनिट
6. महाप्राण ध्वनि के साथ प्रयोग संपन्न करें। 2 मिनिट

19.11 सारांश

अनुप्रेक्षा द्वारा वैयक्तिक जीवन में मूल्यों का विकास संभव है। अनुप्रेक्षा के प्रयोग द्वारा हमारे स्वभाव में परिवर्तन होता है जैसे, मुक्ति की अनुप्रेक्षा के द्वारा निर्लोभता का विकास होता है। सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा से सहन करने की क्षमता का विकास होता है। अभय की अनुप्रेक्षा से भय की ग्रन्थि छिन्न–भिन्न हो जाती है। मृदुता की अनुप्रेक्षा से विनम्रता का विकास होता है। ऋजुता की अनुप्रेक्षा से माया एवं छलना क्षीण होती हैं, निष्कपटता का भाव पुष्ट होता है। अनासक्ति की अनुप्रेक्षा से आसक्ति कम होती है। स्वास्थ्य की अनुप्रेक्षा से संवेगों पर संतुलन स्थापित होता है। आत्मचिंतन/आत्मविश्लेषण से व्यक्ति के आत्मा की विशुद्धि होती है। जो भावना या संकल्पपूर्वक पदार्थ समूह को त्याग देता है वह अकिंचन है। अकिंचन का एक अर्थ दरिद्र होता है, वह यहां विवक्षित नहीं है। जो त्यागपूर्वक अकिंचन बनता है, वही निर्लोभता को प्राप्त कर सकता है। सामाजिक जीवन में यद्यपि व्यक्ति पूर्णरूप से आकिंचन्य का पालन नहीं कर सकता किंतु आकिंचन्य की भावना से पदार्थों के प्रति होने वाली आसक्ति को कम कर सकता है। जिसमें कष्टों को सहन करने की चेतना नहीं जागती, उसके जीवन में प्रकाश नहीं हो सकता। अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों को समभाव से सहना है सहिष्णुता। सहिष्णुता का एक प्रयोग है– कायोत्सर्ग। भय से मात्र मुक्ति वही पा सकता है जिसने आत्म–साक्षात्कार कर लिया हो। आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार– 'अभय आता है प्रज्ञा से। जब प्रज्ञा जागती है?, तब आदमी ''तथाता'' बन जाता है। ''तथाता'' का अर्थ है– वर्तमान में जीना, जो प्राप्त है उसे स्वीकार कर लेना। जब अभय की भाव–धारा होती है तो परानुकंपी नाड़ी तंत्र (पेरासिम्पेथेटिक नर्वस सिस्टम) अधिक सक्रिय हो जाता है। उस समय कोई उत्तेजना नहीं होती, केवल सुख और शांति का अनुभव होता है। अभय को विकसित करने का एक उपाय है– अनुप्रेक्षा। हृदय की कठोरता का परित्याग किये बिना व्यक्ति आध्यात्मिक क्षेत्र में चरणन्यास नहीं कर सकता। मृदुता का अर्थ है– मृदु, शिष्ट एवं विनम्र व्यवहार। कठोरता का पूर्ण विसर्जन। मृदु स्वभाव में लोच होती है। इस स्वभाव वाला व्यक्ति किसी भी वातावरण को अपने अनुकूल बना लेता है। बहुत बार कठोर अनुशासन से जो काम नहीं होता, वह मृदुता से हो जाता है। समस्त जीवों पर मैत्री भाव रखने एवं समस्त संसार के जीवों को समभाव से देखने की दृष्टि भी मृदुता से प्राप्त होती है। मृदुता से ही अनाग्रह की चेतना विकसित होती है। अनाग्रह से ही अनेकांत दृष्टि का अभ्युदय होता है। ऋजु आत्मा शुद्ध होती है और शुद्ध आत्मा में ही धर्म टिकता है। ऋजु शब्द के दो अर्थ हैं– सरलता और मोक्ष। गीता में ऋजुता को साधना का एक प्रधान अंग माना गया है। भगवान महावीर ने कहा– 'निर्मलता उसे प्राप्त होती है, जो ऋजु होता है।' कपटी मनुष्य का मन कभी निर्मल नहीं होता। आर्जव (ऋजुता) आत्म शोधन की अपूर्व प्रक्रिया है। यह व्यक्ति के चरित्र और व्यवहार को निष्कपट बनाता है। कषायों के बंधनों को ढ़ीलाकर आत्मोपलब्धि का मार्ग प्रशस्त करता है। अनासक्ति का अर्थ है– पदार्थ के साथ जुड़ी हुई चेतना का छूट जाना, उसके घनत्व का तनूकरण हो जाना, पदार्थ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के साथ चेतना का संपर्क कम हो जाना। सही मायने में त्याग का भाव वहीं फलित होता है जहां अनासक्ति की साधना हैं। अनासक्त व्यक्ति ही त्यागी हो सकता है। गीता में अनासक्ति के महत्त्व को बताते हुए कहा गया है– "जो पुरुष समस्त कर्मों और उनके फल में आसक्ति का सर्वथा त्याग करके संसार के आश्रय से रहित हो गया है और परमात्मा में नित्य तृप्त है, वह कर्मों में भलीभांति बर्तता हुआ भी वास्तव में कुछ भी नहीं करता। जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति का त्याग कर कर्म करता है, वह पुरुष जल में कमल के पत्ते की तरह पाप में लिप्त नहीं होता। संवेगों का संतुलन होना बहुत जरूरी है। यदि व्यक्ति के संवेग संतुलित नहीं होते हैं तो वह समाज के लिए सिर दर्द बन जाता है। आज केवल बौद्धिक विकास की तरफ तो ध्यान दिया जाता है, परन्तु भावनात्मक विकास की तरफ ध्यान नहीं दिया जाता। भावनात्मक विकास के अभाव में संवेगों का संतुलन बिगड़ जाता है। संवेगों के असंतुलन के कारण व्यक्ति अपने आप का नियंत्रण नहीं रख पाता। अतः संवेगों का परिष्कार होना जरूरी है। संवेग हमारे ग्रन्थितंत्र और नाड़ीतंत्र दोनों को प्रभावित करते हो। यदि इन दोनों में संतुलन रहता है तो जीवन का निर्माण अच्छा होगा। सर्वांगीण विकास के लिए शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और भावात्मक– इन चारों आयामों का संतुलित विकास होना जरूरी है। इन चारों आयामों का संतुलित विकास होता है तो संवेगों का परिष्कार अवश्यम्भावी है।

संवेग नियंत्रण के लिए जीवन विज्ञान में वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से चिंतन किया गया है। वैज्ञानिक दृष्टि से ग्रन्थितंत्र एवं नाड़ीतंत्र के संतुलन में चैतन्यकेन्द्रों के जागरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। संवेग नियंत्रण के लिए जीवन विज्ञान में वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से चिंतन किया गया है। वैज्ञानिक दृष्टि से ग्रन्थितंत्र एवं नाड़ीतंत्र के संतुलन में चैतन्यकेन्द्रों के जागरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। चैतन्यकेन्द्रों के जागरण से ह्रदय परिवर्तन होता है। ह्रदय परिवर्तन के द्वारा ही स्वभाव एवं आदतों का परिष्कार संभव होता है। आध्यात्मिक दृष्टि से जिस व्यक्ति का तृतीय नेत्र जागृत होता है, वह अपने भावों पर नियंत्रण कर सकता है। जीवन विज्ञान में तृतीय नेत्र का अर्थ है 'अन्तर्दृष्टि का जागरण हो जाना।' चिंतन मन की क्रिया है। वह सूक्ष्म है, इसीलिए बुराई को मिटाने में जितना उसका महत्त्व है उतना बाह्य कर्मों का नहीं है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ का चिंतन है कि ''दो क्षण के ध्यान से जो शुद्धि होती है, वह कई उपवासों से भी नहीं होती।'' जो अपनी दुर्बलताओं को मिटाना चाहते हैं। वे उनके विच्छेद होने का चिंतन करें, चित्त की तीव्रतम अनुभूति उसमें जोड़ दें। जिन अच्छाइयों का हम अपने जीवन में विकास करना चाहते हैं, उनका अनुचिंतन करें, चित्त की सघन अनुभूति का सातत्य बना रहे। जो आत्मा को प्राप्त करना चाहते हैं वे चित्त की तीव्रतम अनुभूति उसके साथ जोड़ दें।

19.12 अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अभय शब्द का अर्थ क्या है?
2. अहिंसा का आदि बिन्दु क्या है?
3. माया किसका नाश करती है?
4. 'दि सोशल स्ट्रक्चर ऑफ वैल्यूज' के लेखक कौन हैं ?
5. नैतिक चेतना का सूत्र क्या है?
6. आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार– अभय ....से आता हैं।
7. आर्जव का अर्थ है............।
8. गीता में ऋजुता को..........का एक प्रधान अंग माना गया है।
9. धर्म उसमें ठहरता है जो.............होता है।
10. आर्जव से ही...................भाव की आधारभूमि सुदृढ़ बनती है।
11. 'दो क्षण के ध्यान से जो शुद्धि होती है, वह कई उपवासों से भी नहीं होती'–यह चिंतन किसका है?
12. क्रोध के तीव्र आवेग से कौन–सा रोग हो जाता है?
13. 'तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः'–यह स्वर किसका है?
14. जीव अकेला ही कर्मों को भोगता है–यह कौन–सी अनुप्रेक्षा है?
15. साधना का महत्त्वपूर्ण साधन क्या है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

16. अनासक्ति का चरम विकास..............है।

17. ....मन पर बाहरी वस्तुओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

18. गीता में उदासीन का अर्थ है..................... ।

19. लक्ष्य प्राप्ति का महत्त्वपूर्ण साधन है..................... ।

20. संवेग हमारे.............और नाड़ीतंत्र–दोनों को प्रभावित करते हो।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. निर्लोभता के अर्थ को स्पष्ट करें।
2. सहिष्णुता की महत्ता पर प्रकाश डालिए।
3. अनित्य अनुप्रेक्षा के स्वरूप का संक्षेप में वर्णन करें।
4. संवेग नियंत्रण में जीवन विज्ञान की भूमिका पर प्रकाश डालें।

निबंधात्मक प्रश्न

1. मृदुता की हमारे जीवन में क्या उपयोगिता है? वर्णन करें।
2. आत्मचिंतन के स्वरूप एवं महत्व पर प्रकाश डालते हुए उसके सूत्रों को लिखें।

19.13 संदर्भ ग्रन्थ

1. उत्तराध्ययनसूत्र – वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, संपादक – आचार्य महाप्रज्ञ।
2. अमूर्त्त चिंतन – आचार्य महाप्रज्ञ।
3. ज्ञानार्णव – आचार्य शुभचन्द्र।
4. प्रेक्षा–ध्यान : कायोत्सर्ग – आचार्य महाप्रज्ञ।
5. तुम अनन्त शक्ति के स्रोत हो – मुनि नथमल (आचार्य महाप्रज्ञ)।
6. धर्म के दश लक्षण – डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल।
7. विश्व चेतना तथा सर्वधर्म समभाव – डॉ. महावीर सरन जैन।
8. समाजशास्त्र के सिद्धांत – श्यामधरसिंह।
9. शिक्षा तथा भारतीय समाज – डॉ. डी. एल. शर्मा।
10. मैं : मेरा मन : मेरी शांति – आचार्य महाप्रज्ञ।
11. अभय की खोज – आचार्य महाप्रज्ञ।
12. सर्वार्थ सिद्धि – आचार्य पूज्यपाद।
13. भगवती आराधना – आचार्य शिवार्य।
14. अमूर्त्त चिंतन – आचार्य महाप्रज्ञ।
15. तुम अनन्त शक्ति के स्रोत हो – मुनि नथमल (आचार्य महाप्रज्ञ)।
16. सफलता की कुंजी – स्वेट मार्डन।
17. प्रेक्षा–ध्यान : प्रयोग पद्धति – आचार्य महाप्रज्ञ।
18. चित्त और मन – आचार्य महाप्रज्ञ।
19. अहिंसा और अणुव्रत – मुनि सुखलाल, डॉ. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी 'रत्नेश'।
20. जैनभारती 10 दिसम्बर, 1961।
21. कैसी हो इक्कीसवीं शताब्दी – आचार्य महाप्रज्ञ।
22. संबोधि का समीक्षात्मक अनुशीलन – डॉ. समणी स्थितप्रज्ञा।
23. जीवन विज्ञान : सिद्धांत और प्रयोग – मुनि धनंजयकुमार, मुनि प्रशांतकुमार, डॉ. संपत जैन।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ईकाई – 20 अनुप्रेक्षा द्वारा सामाजिक जीवन मूल्यों का विकास : कर्त्तव्यनिष्ठा, सामंजस्य, सह–अस्तित्व, मानवीय एकता, विश्वमैत्री, राष्ट्रीयता एवं साम्प्रदायिक सौहार्द

इकाई की रूपरेखा

- 20.0 प्रस्तावना
- 20.1 उद्देश्य
- 20.2 कर्त्तव्यनिष्ठा
  - 20.2.1 कर्त्तव्यों के प्रकार
  - 20.2.2 कर्त्तव्य के क्षेत्र
  - 20.2.3 मनुष्य के मूल अधिकार
  - 20.2.4 राज्य के प्रति कर्त्तव्य
  - 20.2.5 कर्त्तव्यनिष्ठा की अनुप्रेक्षा
- 20.3 सामंजस्य
  - 20.3.1 सामंजस्य का स्वरूप
  - 20.3.2 सामंजस्य के पांच सूत्र
  - 20.3.3 सामंजस्य का महत्त्व
  - 20.3.4 सामंजस्य की अनुप्रेक्षा
- 20.4 सह–अस्तित्व
  - 20.4.1 सह–अस्तित्व का स्वरूप
  - 20.4.2 सह–अस्तित्व का महत्त्व
  - 20.4.3 विश्व शान्ति और सह–अस्तित्व
  - 20.4.4 सह–अस्तित्व के तीन सूत्र
  - 20.4.5 सह–अस्तित्व की अनुप्रेक्षा
- 20.5 मानवीय एकता
  - 20.5.1 मानवीय एकता का स्वरूप
  - 20.5.2 मानवता में विश्वास
  - 20.5.3 मानवीय एकता की अनुप्रेक्षा
- 20.6 विश्व मैत्री
  - 20.6.1 विश्वमैत्री का अर्थ
  - 20.6.2 विश्वमैत्री का स्वरूप
  - 20.6.3 मैत्री का मनोवैज्ञानिक प्रभाव
  - 20.6.4 विश्वमैत्री की आवश्यकता एवं महत्त्व
  - 20.6.5 मैत्री की आराधना – शक्ति की आराधना
  - 20.6.6 खमतखामणा का वास्तविक अर्थ
  - 20.6.7 विश्वमैत्री के प्रयोग
- 20.7 राष्ट्रीयता
  - 20.7.1 राष्ट्रीय एकता का अर्थ
  - 20.7.2 राष्ट्रीय एकता के आवश्यक तत्त्व
  - 20.7.3 राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता
  - 20.7.4 राष्ट्रीय एकता का स्वरूप
  - 20.7.5 राष्ट्रीय एकता के लिए शैक्षिक कार्यक्रम
  - 20.7.6 समाजिक तथा राष्ट्रीय एकता
- 20.8 साम्प्रदायिक सौहार्द
  - 20.8.1 साम्प्रदायिक सौहार्द का अर्थ
  - 20.8.2 साम्प्रदायिक सौहार्द का स्वरूप
  - 20.8.3 विभिन्न धर्मों में साम्प्रदायिक सौहार्द
  - 20.8.4 धार्मिक सौहार्द का महत्त्व
  - 20.8.5 साम्प्रदायिक उन्माद के कारण
  - 20.8.6 साम्प्रदायिक निराकरण के उपाय
- 20.9 सारांश
- 20.10 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 20.11 संदर्भ ग्रन्थ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

20.1 प्रस्तावना

प्रत्येक व्यक्ति, समूह, समुदाय एवं समाज व संस्कृति के कुछ केन्द्रीय मूल्य होते हैं जिनके आधार पर वे जीवित रहते हो। मूल्यहीन व्यक्ति एवं समूह तथा संस्कृति एवं समाज मृतक के तुल्य होते हैं। वस्तुतः किसी समाज व संस्कृति का अस्तित्व मूल्यों पर ही आधारित होता है। बिना मूल्यों, आदर्शों और सद्गुण के विकास एवं पुनर्निर्माण के समाज का अस्तित्व नहीं रह सकता। मूल्य प्रत्येक संस्कृति की आत्मा है। कई मूल्य ऐसे ही पाए जाते हो जो संपूर्ण मानव जाति पर लागू होते हो तथा संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करते हैं। मूल्यों का निर्धारण स्वयं समूह व समाज करता है। अतएव वह मूल्य किसी समूह व समाज का प्रतिनिधित्व करता है। मूल्यों की खोज एवं मूल्यों का निर्माण स्वयं समाज ही करता है। अतः मूल्य समूह का अविभाज्य अंग है। किसी समूह विशेष के लोग किसी मूल्य विशेष के संबंध में एकमत रहते हैं। सभी उन्हें स्वीकार करते हैं। इन विचारों की एकता के आधार पर ही कोई वस्तु या विषय समूह में मूल्य के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं।

थॉमस और जनैनिकी के शब्दों में, "मूल्य के कई उद्देश्य हैं जो एक सामाजिक समूह के सदस्यों को संतोष एवं अर्थ प्रदान करते हैं।"

जीवन विज्ञान के संदर्भ में जब हम अनुप्रेक्षाओं के द्वारा सामूहिक मूल्यों के विकास की चर्चा करते हैं तो उनमें मुख्य रूप से कर्त्तव्यनिष्ठा की अनुप्रेक्षा, सामंजस्य की अनुप्रेक्षा, सह–अस्तित्व की अनुप्रेक्षा, मानवीय एकता की अनुप्रेक्षा, विश्वमैत्री की अनुप्रेक्षा, राष्ट्रीयता की अनुप्रेक्षा, सांप्रदायिक सौहार्द की अनुप्रेक्षाओं का समावेश होता है। इन प्रमुख सामूहिक जीवन्त मूल्यों तथ सम्बन्धित अनुप्रेक्षाओं का विश्लेषण इस प्रकार है–

20.1 उद्देश्य

1. कर्त्तव्यनिष्ठा के बारे में जान पायेंगे।
2. सामंजस्य के पांच सूत्रों को पढ़ पायेंगे।
3. विश्व शान्ति और सह–अस्तित्व के बारे में जान पायेंगे।
4. मानवीय एकता की अनुप्रेक्षा को जान सकेंगे।
5. विश्वमैत्री की आवश्यकता एवं महत्त्व का जान पायेंगे।
6. खमतखामणा के वास्तविक अर्थ को समझ सकेंगे।
7. राष्ट्रीय एकता के आवश्यक तत्त्वों के बारे में जान सकेंगे।
8. साम्प्रदायिक सौहार्द का अर्थ जान सकेंगे।

20.2 कर्त्तव्यनिष्ठा

कर्त्तव्य और अधिकार एक ही पदार्थ के दो विभिन्न पहलू हो। यदि हम समाज व राज्य में रहते हुए अधिकारों का उपभोग करना चाहते हैं तो हमारे लिए यह भी आवश्यक है कि हम समाज व राज्य के कर्त्तव्यों का पालन करें। भारत के प्राचीन विचारकों ने अधिकार की अपेक्षा कर्त्तव्य को अधिक महत्त्व दिया था। चाणक्य सदृश राजशास्त्रियों ने मानव अधिकारों का प्रतिपादन न कर मनुष्यों के कर्त्तव्यों का विशद् रूप से प्रतिपादन किया था, क्योंकि कर्त्तव्य की भावना के साथ अधिकारों की स्थापना स्वयमेव हो जाती है। कर्त्तव्य के सिद्धांत को स्वधर्म नाम से अभिव्यक्ति दी। उनका यह मंतव्य था कि "स्वधर्म का पालन अनन्त सुख और समृद्धि का हेतु होता है।" यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने–अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहे, उसका अच्छी तरह पालन करे तो समाज में मर्यादा कायम रहेगी और सभी सुख व समृद्धि से संपन्न हो सकेंगे।

20.2.1 कर्त्तव्यों के प्रकार

समाज के अंग के रूप में कर्त्तव्यों के दो प्रकार हैं– 1. कानूनी (Legal) और 2. नैतिक (Moral)

20.2.1.1 कानूनी कर्त्तव्य – कानूनी कर्त्तव्य वे हैं जिनके पालन के लिए राज्य संस्था मनुष्य को विवश करती है। मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह दूसरों के जानमाल को नुकसान न पहुंचाएं, चोरी न करें, किसी पर आक्रमण न करें, टैक्स को समय पर अदा करें और राज्य द्वारा विहित कानूनों का उल्लंघन न करें। इन कानूनी कर्त्तव्यों का पालन न करने पर सरकार मनुष्य को दंड देती है।

20.2.1.2 नैतिक कर्त्तव्य – नैतिक कर्त्तव्य वे हैं जिनका पालन करना मनुष्य के वैयक्तिक व सामूहिक हित के लिए उपयोगी होता हैं। जैसे कोई व्यक्ति अपने जीवन में पवित्रता व सदाचार को महत्त्व दे या नहीं ये सब बातें उसके अपनी इच्छा पर निर्भर है। इसमें

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सरकार कोई हस्तक्षेप नहीं करती पर स्वच्छ रहना और सदाचारमय जीवन व्यतीत करना व्यक्ति के ऐसे नैतिक कर्त्तव्य हैं जो कि उसके जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं।

वस्तुतः कानूनी कर्त्तव्यों का आधार भी नैतिक ही है। अतः कर्त्तव्यों का वर्गीकरण एक अन्य प्रकार से भी किया जाता है। कुछ कर्त्तव्य विधिपरक (Positive) हैं तथा कुछ निषेधपरक (Negative) हैं।

20.2.1.3 विधिपरक कर्त्तव्य (Positive) – नियमपूर्व टैक्स देना, वोट के अधिकार का उपयोग करना, देश में शांति व्यवस्था बनाए रखने में सहायता प्रदान करना, शासन कार्य में सरकार का सहयोग करना आदि मनुष्य के ऐसे कर्त्तव्य हैं जिन्हें विधिपरक कहा जाता है।

20.2.1.4 निषेधपरक कर्त्तव्य (Negative) – चोरी न करना, झूठ न बोलना, किसी को धोखा न देना, मिलावट न करना, रिश्वत न लेना, किसी पर आक्रमण न करना, आदि ऐसे कर्त्तव्य हैं जिन्हें निषेधपरक कर्त्तव्य कहते हैं।

20.2.2 कर्त्तव्य के क्षेत्र

मनुष्य के कर्त्तव्यों के अनेक क्षेत्र हैं। व्यक्ति, परिवार, गांव, समाज, देश; सबके प्रति व्यक्ति के अनेक प्रकार के कर्त्तव्य हैं। व्यक्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है अपने स्वयं के प्रति। अपने आपको स्वस्थ, सुशिक्षित, सभ्य एवं सुसांस्कृतिक बनाना व्यक्ति का प्रथम कर्त्तव्य है। गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी ने अणुव्रत गीत में कहा है– "सुधरे व्यक्ति, समाज व्यक्ति से राष्ट्र स्वयं सुधरेगा।" अतः जिस समाज व राज्य के अंगभूत व्यक्ति स्वस्थ, सुशिक्षित, साहसी, सभ्य व परिश्रमी होंगे, वह समाज व राज्य अवश्य ही उन्नत व समृद्ध होगा। वर्तमान में व्यक्ति के कर्त्तव्यों का क्षेत्र केवल अपने परिवार, गांव या देश तक ही सीमित नहीं है। अपितु वैज्ञानिक उन्नति के कारण मनुष्य ने देश और काल पर अभूतपूर्व विजय प्राप्त की है। जिसके कारण व्यक्ति का सामुदायिक जीवन का क्षेत्र बहुत विशाल हो गया है। कर्त्तव्य पालन के बारे में मार्टिन लूथर किंग, जूनियर ने कहा है कि "If a man is called to be streetsweeper, he should sweep streets even as Michelangelo painted, or Beethoven composed music, of Shakespeare wrote poetry. He should sweep streets so well that all the hosts of heaven and earth will pause to say, here lived a great streetsweeper who did his job well."

अर्थात् अगर किसी आदमी को सड़क साफ करने का काम दिया जाए तो उसे सफाई वैसे ही करनी चाहिए जैसे माइकेल एंजिलो पेंटिंग करता हो या बीथोवन संगीत की रचना करता हो या शेक्सपियर कोई कविता लिखता हो। उसे सड़क की सफाई इतनी अच्छी तरह करनी चाहिए कि स्वर्ग और पृथ्वी, दोनों जगहों के लोग रुककर बोलें कि यहां सड़क सफाई करने वाला रहता था जिसने अपना काम गर्व से और बहुत अच्छी तरह से किया। संपूर्ण मानव समाज ही अब व्यक्ति के सामुदायिक जीवन का क्षेत्र बन गया है। अतः मानवमात्र के, मानव समाज के प्रति भी अनेक प्रकार के कर्त्तव्य हो गए हैं। "सब मनुष्य सुखी हों, सब मनुष्य निरोग हों, सब समृद्ध व संतुष्ट हों, सबका कल्याण हो।" वैदिक ऋषियों का यह आदर्श अब पूर्णतया क्रियात्मक बन गया है तथा प्रत्येक मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह इस आदर्श के प्रति सक्रिय होकर कार्य करे।

20.2.3 मनुष्य के मूल अधिकार

व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए अनेक विचारकों ने उसे कुछ मूल अधिकार प्रदान करना आवश्यक माना है। ये मूल अधिकार ऐसे हैं जिनसे वंचित कर दिये जाने पर व्यक्ति न तो अपना विकास कर सकता है और न समाज के कल्याण में कोई योगदान कर सकता है। जे.एस. मैकेंजी ने अपनी पुस्तक 'ए मैनुअल ऑफ एथिक्स' में मनुष्य के निम्नलिखित अधिकारों का उल्लेख किया है– 1. जीवन का अधिकार, 2. स्वतंत्रता का अधिकार, 3. रोजगार का अधिकार, 4. सम्पत्ति का अधिकार, 5. समझौते का अधिकार 6. शिक्षा का अधिकार। अधिकतर विचारक किसी न किसी रूप में मनुष्य के इन मूल अधिकारों को कुछ सीमा तक स्वीकार करते हैं। अब संक्षेप में मनुष्य के इन मूल अधिकारों पर विचार किया जायेगा।

20.2.3.1 जीवन का अधिकार – प्रत्येक व्यक्ति का यह मूल अधिकार है कि उसे उसके जीवन से वंचित न किया जाये। व्यक्ति का विकास तथा सामाजिक कल्याण हेतु सभ्य समाज द्वारा मनुष्य के इस मूल अधिकार को स्वीकार किया जाता है। जीवन के इस अधिकार के साथ स्वयं अपने अथवा किसी अन्य व्यक्ति के जीवन को समाप्त न करने का कर्त्तव्य भी अनिवार्यतः सम्बद्ध है। जो व्यक्ति स्वार्थ सिद्धि के लिए जानबूझ कर किसी की हत्या करके इस कर्त्तव्य का उल्लंघन करता है उसे जीवन के अधिकार से वंचित करना न्याय–नैतिकता की दृष्टि से उचित माना जा सकता है। इस प्रकार जीवन का अधिकार किसी व्यक्ति के जीवन की हानि न पहुंचाने के कर्त्तव्य से पृथक नहीं माना जा सकता।

20.2.3.2 स्वतंत्रता का अधिकार – प्रत्येक व्यक्ति को जीवन के अधिकार के साथ–साथ स्वतंत्रतापूर्वक अपना सर्वांगीण विकास करने का अधिकार भी प्राप्त है। इसका अभिप्राय यह है कि अपनी उन्नति के लिए प्रयास करने तथा विचारों को अभिव्यक्त करने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के सम्बन्ध में प्रत्येक व्यक्ति को उचित स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए। परन्तु इस अधिकार के साथ भी व्यक्ति का यह कर्त्तव्य सम्बद्ध है कि वह दूसरों की स्वतंत्रता में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करे। जो व्यक्ति दूसरों की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करके सामाजिक व्यवस्था में बाधा डालता है उसे स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित करना नैतिक दृष्टि से उचित माना जा सकता है।

20.2.3.3 रोजगार का अधिकार – अपनी योग्यतानुसार उचित रोजगार प्राप्त करके ही व्यक्ति सम्मानपूर्वक अपने जीवन की रक्षा तथा स्वतंत्रतापूर्वक अपना विकास कर सकता है। इसके अतिरिक्त यदि व्यक्ति के पास जीविकोपार्जन का कोई उचित साधन नहीं है तो वह समाज पर भार बन जाता है और उसके विकास में किसी प्रकार का योगदान नहीं कर सकता। इसी कारण आज बहुत से विचारक यह मानते हैं कि व्यक्ति के इस मूल अधिकार को स्वीकार करते हुए उसे उपयुक्त रोजगार प्रदान करना प्रत्येक राज्य का आवश्यक कर्त्तव्य है। इस अधिकार के साथ भी व्यक्ति का यह कर्त्तव्य सम्बद्ध है कि वह समाज के हित को ध्यान में रखते हुए अपना काम सदैव ईमानदारी और निष्ठा के साथ करे।

20.2.3.4 सम्पत्ति का अधिकार – प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास के लिए कुछ भौतिक साधनों की आवश्यकता होती है, अतः उचित सीमा तक साधनों को एकत्र करने तथा उन पर अपना स्वामित्व बनाये रखने का उसे अधिकार प्राप्त होना चाहिए। इस अधिकार को प्राप्त करने वाले प्रत्येक व्यक्ति का यह आवश्यक कर्त्तव्य है कि वह दूसरों की सम्पत्ति का अपहरण तथा अपनी सम्पत्ति का दुरुपयोग न करें। यदि कोई व्यक्ति छल या बल से दूसरों की सम्पत्ति छीन लेता है अथवा समाज को हानि पहुंचाने के लिए अपनी सम्पत्ति का उपयोग करता है तो उसे सम्पत्ति के अधिकार से वंचित करना नैतिक दृष्टि से न्यायसंगत ही नहीं, अपितु आवश्यक हो जाता है।

20.2.3.5 समझौते का अधिकार – प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार प्राप्त है कि वह पारस्परिक समझौते के अनुसार दूसरे व्यक्ति से उचित समय पर आवश्यक सेवाएं प्राप्त करे। इस अधिकार के साथ भी व्यक्ति का यह कर्त्तव्य सम्बन्धित है कि वह दूसरों के साथ किये गये अपने समझौते को पूरा करे और किसी के साथ ऐसा कोई समझौता न करे जिसे पूरा करना उसके लिए सम्भव न हो तथा जो सामाजिक कल्याण के विरुद्ध हो।

20.2.3.6 शिक्षा का अधिकार – उचित शिक्षा के अभाव में कोई भी व्यक्ति अपनी क्षमताओं का विकास तथा सदुपयोग नहीं कर सकता, अतः शिक्षा प्राप्त करना मनुष्य का मूल अधिकार माना जाता है। समाज अथवा राज्य से यह मांग करना प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है कि वह उसे उसकी योग्यतानुसार शिक्षा प्राप्त करने के लिए आवश्यक अवसर प्रदान करे। अधिकतर देशों में जनसाधारण को उच्च शिक्षा के लिए आवश्यक सुविधाएं तथा अवसर प्राप्त नहीं हैं। ऐसी स्थिति में राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने सभी नागरिकों को उनकी योग्यतानुसार उचित शिक्षा प्रदान करने का प्रबंध करे। इसके साथ ही प्रत्येक व्यक्ति का भी यह कर्त्तव्य है कि वह स्वयं शिक्षा ग्रहण करे और अपनी शिक्षा का केवल अपने विकास के लिए ही नहीं, अपितु समाज के हित के लिए भी उपयोग करे।

उपर्युक्त अधिकारों को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति उन सभी कर्त्तव्यों का भी भलीभांति पालन करे जो इन अधिकारों के साथ अनिवार्यतः सम्बद्ध हैं। प्रत्येक अधिकार से सम्बद्ध कर्त्तव्य का निष्ठापूर्वक पालन किये बिना उस अधिकार को प्राप्त करने की आशा तथा चेष्टा करना उचित एवं न्याय संगत प्रतीत नहीं होता; क्योंकि मनुष्य के लिए नैतिक दृष्टि से अधिकार प्राप्ति की अपेक्षा कर्त्तव्य पालन का कहीं अधिक महत्त्व है। वस्तुतः व्यक्ति के प्रत्येक अधिकार के साथ यह कर्त्तव्य भी सम्बद्ध रहता है कि वह दूसरों के उस अधिकार का आदर करे।

20.2.4 राज्य के प्रति कर्त्तव्य

मनुष्य के सामुदायिक जीवन का सबसे उत्कृष्ट रूप राज्य द्वारा प्रकट होता है। राज्य ही मानव को स्वतंत्रता के साथ रहने का वातावरण निर्मित करता है। राज्य के कारण ही व्यक्ति को विकास की सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। अतः राज्य के प्रति मनुष्य के निम्न कर्त्तव्य होते हैं– 1. राज भक्ति (Alligiance), 2. आज्ञापालन (Obedience), 3. टैक्स प्रदान करना (Payment of taxes), 4. मताधिकार का उपयोग, 5. सार्वजनिक सेवा के लिए तत्परता।

कर्त्तव्य–परायणता का महत्त्वपूर्ण सूत्र है– निष्ठा और जागरूकता। जिस व्यक्ति की कर्त्तव्य पालन में निष्ठा होती है, वह प्रमाद, अन्याय और मुफ्तखोरी जैसा कोई कार्य नहीं कर सकता। व्यक्ति में यदि अपने राष्ट्र के प्रति उदात्त प्रेम होता है तो भी व्यक्ति कर्त्तव्य से च्युत नहीं होता है।

20.2.5 कर्त्तव्यनिष्ठा की अनुप्रेक्षा

कर्त्तव्यनिष्ठा की भावना का विकास करने के लिए प्रेक्षाध्यान में कर्त्तव्यनिष्ठा की अनुप्रेक्षा का प्रयोग कराया जाता है, जिससे व्यक्ति का चित्त कर्त्तव्यनिष्ठा की भावना से भावित हो जाता है। इसकी प्रायोगिक प्रविधि इस प्रकार है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. महाप्राण ध्वनि 02 मिनिट

2. लयबद्ध दीर्घश्वास 05 मिनिट

3. भस्त्रिका 05 मिनिट

4. कायोत्सर्ग 05 मिनिट

5. शांति केन्द्र पर चित्त को केन्द्रित कर संकल्प करें – 'मैं अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक रहूंगा। कर्त्तव्य के बाधक तत्त्वों–क्रोध, लोभ, भय आदि को अनुशासित रखने का अभ्यास करूंगा।' –5 मिनिट उच्चारण पूर्वक, 5 मिनिट मन्द उच्चारण पूर्वक और 5 मिनिट मानसिक अनुचिंतन के रूप में। 15 मिनिट

6. महाप्राण ध्वनि के साथ प्रयोग संपन्न करें। 02 मिनिट

20.3 सामंजस्य

अनेकान्त का पहला तत्त्व है– सापेक्षता। प्रत्येक विचार सापेक्ष होता है। एक व्यक्ति अपने विचार को सही मानता है, दूसरों के विचार के साथ उसका समन्वय स्थापित करता है तभी वह सही हो सकता है। पानी जीवन है, उसके बिना जीवन चल नहीं सकता, यह विचार सही है किन्तु आहार के प्रसंग में सही है। जब श्वास और पानी की तुलना करें तो कहना होगा कि श्वास जीवन है। पानी जीवन को चलाने का एक साधन है। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व से गुंथा हुआ है। एक विचार दूसरे विचार से जुड़ा हुआ है। इस ग्रंथन और जोड़ की सापेक्षता को समझकर ही सामंजस्य का विकास किया जा सकता है। गति में दोनों पैर सापेक्ष हैं। एक पैर आगे बढ़ता है दूसरा पीछे सरक जाता है। पीछे वाला पैर आगे आता है और आगे वाला पैर पीछे चला जाता है। इस गौण और मुख्य भाव से अर्थात् सामंजस्य के द्वारा ही समाज की व्यवस्था और राष्ट्र की एकात्मकता संभव हो सकती है।

20.3.1 सामंजस्य का स्वरूप

आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार– ''जैन दर्शन का ध्रुव सिद्धांत है कि मूलतः मानव जाति एक है। वह उपयोगिता व व्यावहारिकता की दृष्टि से अनेक भागों में विभक्त है। उपयोगिता और मौलिकता का अतिक्रमण करे, यह असंगत बात है। राष्ट्रों की इकाइयां भी उपयोगिता के आधार पर बनी हैं, किन्तु वे शांतिपूर्ण जीवन तभी जी सकते हैं जब सापेक्षता के सूत्र में बंधे हुए हों। सापेक्षता इतनी जुड़ी हुई है कि कोई राष्ट्र अलग होकर अकेला नहीं जी सकता। एक राजधानी में सैकड़ों राष्ट्रों के दूतावास सापेक्षता के प्रतीक हैं।'' यह भावना हमारे मनों और हृदयों को छू जाती है तो हम वर्तमान संकट से मुक्त होकर सार्वभौम समाज की मानवीय आशा के निकट पहुंच सकते हैं। विभिन्न धर्म–मतों के सदस्यों के रूप में अपनी निष्ठाओं को रखते हुए भी लोग धर्म–भ्रातृत्व के लिए कार्य कर सकते हैं। विभिन्न राष्ट्रीय समाजों के सदस्य अपने वर्तमान संघर्ष को समाप्त कर भाईचारे का वातावरण बना सकते हैं। मानव मात्र में सहयोग एवं सामंजस्य की भावना को जागृत करें तो हमारा श्रम सार्थक हो सकता है।

20.3.2 सामंजस्य के पांच सूत्र

अनेकांत की दृष्टि का फलित समन्वय और सद्भाव है। इसके लिए आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने सामंजस्य के पांच सूत्रों का विश्लेषण किया है, जिनका अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिए। पांच सूत्र इस प्रकार हैं –

1. मण्डनात्मक नीति बरती जाए। अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया जाए। दूसरों पर मौखिक अथवा लिखित आक्षेप न किया जाए।
2. दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णुता रखी जाए।
3. दूसरे संप्रदाय और उसके अनुयायियों के प्रति घृणा और तिरस्कार की भावना का प्रचार न किया जाए।
4. कोई संप्रदाय परिवर्तन करे तो उसके साथ सामाजिक बहिष्कार आदि अवांछनीय व्यवहार न किया जाए।
5. धर्म के मौलिक तथ्यों– अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को जीवन व्यापी बनाने का सामूहिक प्रयत्न किया जाए।

20.3.3 सामंजस्य का महत्त्व

न अकेला व्यक्ति मार्ग बन सकता है और न अकेला समाज मार्ग बन सकता है। दोनों का योग ही हमारे जीवन की विकास यात्रा का मार्ग बन सकता है। सत्यग्राही दृष्टिकोण का चरण और आगे बढ़ता है तो वहां ज्ञान और क्रिया का समन्वय हो जाता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ का कहना है कि किसने कहा कि दर्शन जीया नहीं जा सकता। जो दर्शन जीया नहीं जा सकता वह केवल हवाई उड़ान होता है, आकाशी कल्पना होता है यथार्थ नहीं होता। वह आदर्श किसी काम का नहीं जो व्यवहार में न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आ सके और वह व्यवहार भी किसी काम का नहीं जो आदर्श तक न पहुंचा सके। आदर्श और व्यवहार दोनों का योग होना चाहिए। एक हाथ में पांच अंगुलियां होती हैं। हाथ एक है। इसमें सब अगुलियों का स्वतः समावेश हो जाता है। यह अद्वैत प्रधान दृष्टि है। द्वैत की कल्पना सामने आते ही पांचों अंगुलियों का अस्तित्व अलग–अलग रूप में उभर आता है। कनिष्ठा, अनामिका, मध्यमा, तर्जनी और अंगुष्ठ। इस प्रकार पांचों अंगुलियों की अपनी स्वतंत्र पहचान है। आत्मा एक है, अद्वैत है। कर्मों के साथ उसका संपर्क द्वैत की देन है। कर्म मुक्त आत्मा कभी कर्मों का आकर्षण नहीं कर सकती। गुण के पास गुण आते हैं और दोष के पास दोष जाते हैं। महाकवि कालीदास ने रघुवंश में लिखा है–

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।

गुणागुणानुबन्धित्वात् तस्य सप्रसवा इव।।

सहोदर भाइयों की तरह महाराज रघु के गुण दूसरे गुणों से जुड़े हुए थे। उनका ज्ञान प्रौढ़ था। ज्ञान के साथ उनमें मौन रहने की भी क्षमता थी। वे शक्ति संपन्न होकर भी क्षमाशील थे, सहिष्णु थे। वे त्याग करते थे, मुक्त मन से दान देते थे, पर नाम और प्रतिष्ठा की भावना उन्हें छू तक नहीं पाई थी। इस प्रकार एक और अनेक अथवा अद्वैत और द्वैत को सापेक्ष दृष्टि से समझ लिया जाए तो आत्मा के सर्वांगीण स्वरूप का बोध हो सकता है।

20.3.4 सामंजस्य की अनुप्रेक्षा

सामंजस्य की अनुप्रेक्षा का अभ्यास करने कि विधि इस प्रकार है –

1. महाप्राण ध्वनि — 02 मिनिट
2. कायोत्सर्ग — 05 मिनिट
3. अनुचिंतन– मैं मानवीय संबंधों में विश्वास रखता हूं। इसलिए मैं सामंजस्यपूर्ण स्थिति का निर्माण करूंगा। इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें। फिर इसका नौ बार मानसिक जप करें।

   सामंजस्य के बाधक तत्त्व पांच हो–

   1. आग्रह– मैं आग्रह के स्थान पर अनाग्रह का प्रयोग करूंगा।
   2. विचार भेद– मैं दूसरों के विचारों का सम्मान करूंगा। उन्हें समझने का प्रयत्न करूंगा।
   3. रुचि भेद– मैं दूसरों की रुचि का आदर करूंगा।
   4. स्वार्थ भेद– मैं अपने स्वार्थ को प्रधानता नहीं दूंगा। सबके हित की बात सोचूंगा।
   5. विरोध भेद– मैं विरोध की स्थिति में भी मैत्री का प्रयोग करूंगा। सब मेरे मित्र हो, कोई मेरा शत्रु नहीं है। — 20 मिनिट

   प्राणी मात्र मेरा मित्र है। — 03 बार

   मैत्री........मैत्री.......मैत्री — 01 मिनिट

20.4 सह–अस्तित्व

वर्तमान में राजनीति के मंच से सह–अस्तित्व की ध्वनि मुखर हो रही है। संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसे अंतर्राष्ट्रीय मंच से सह–अस्तित्व की चर्चा सुनाई देती है किंतु इस सिद्धांत का सर्वप्रथम प्रतिपादन किया था भगवान महावीर ने। सह–अस्तित्व का विस्तृत विवेचन हमें उपलब्ध होता है भगवान महावीर के अनेकान्तवाद और सापेक्षवाद के सिद्धांत में।

20.4.1 सह–अस्तित्व का स्वरूप

भगवान महावीर ने कहा कि दो विरोधी धर्म भी एक साथ रह सकते हैं। जैसे नित्य–अनित्य, अस्ति–नास्ति, सामान्य–विशेष का आपस में विरोध होते हुए भी सह–अस्तित्व है, एक साथ रहते हैं। अर्थात् नित्य अनित्य का विरोधी है और अनित्य नित्य का विरोधी है, अस्तित्व नास्तित्व का विरोधी है और नास्तित्व अस्तित्व का विरोधी है, सामान्य विशेष का विरोधी है और विशेष सामान्य का विरोधी है, पर इनका सह–अस्तित्व है। इस जगत् में एक भी तत्त्व ऐसा नहीं है, जिसे हम कह सकें कि यह इसका सर्वथा विरोधी है या सर्वथा अविरोधी है। जिसे हम विरोधी मानते है वह अविरोधी भी है और जिसे हम अविरोधी मानते है, वह विरोधी भी है; दोनों धर्म एक साथ चलते हैं, दोनों का सह–अस्तित्व है।

मेरा अस्तित्व मुझे प्रिय है किन्तु 'मैं' पर जैसा मेरा अधिकार है, वैसा अस्तित्व पर नहीं है। मुझसे जो भिन्न है उसका भी अस्तित्व है और वह उसे उतना ही प्रिय है जितना कि मेरा अस्तित्व मुझे प्रिय है। बाहरी उपकरणों की दृष्टि से हम भिन्न भी हो सकते हैं किन्तु अस्तित्व की श्रृंखला में हम सब समान हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शरीर, भाषा, भौगोलिक सीमाएं, संप्रदाय, जाति; ये सब समानता के समर्थक नहीं हैं किन्तु इनमें प्राण संचार चैतन्य से होता है और उसके जगत् में हम सब समान हैं। हमारे मन में असमानता के संस्कार अधिक तीव्र हैं। हमारी इंद्रियां बाहर की ओर झांकती हो और जो बाहर है, वह सब असमान है। असमानता के भाव से प्रेरित होकर हम अपने ही जैसे लोगों के साथ अन्याय करते हैं। हमारी न्याय बुद्धि तभी जागृत हो सकती है जब हम समानता की धारा को अविरल प्रवाहित करें। लोकतंत्र समानता की प्रयोग भूमि है। समान अधिकार का सिद्धांत दार्शनिक समानता का व्यावहारिक रूप है। लोकतंत्र की सफलता के लिए यह अपेक्षित है कि उसके नागरिकों में समानता के प्रति आस्था हों।

बाइबिल में आता है कि एक व्यक्ति जब प्रभु के पास पहुंचा तो उन्होंने कहा– 'मैं तेरे दरवाजे पर प्यास से तड़पता हुआ आया था, पर तुमने मुझे धक्के देकर वहां से हटा दिया।'

मनुष्य चकित होकर बोला– 'प्रभो! आप मेरे द्वार पर आए और मैं आपको पहचानूं नहीं, यह कैसे हो सकता है?'

प्रभु बोले, 'उस दिन दोपहर के समय वह जो एक हड्डियों का ढांचा लकड़ी टेकता हुआ 'पानी', 'पानी' चिल्लाता हुआ तेरे द्वार पर आया था, वह मैं ही तो था।'

इस प्रकार सभी धर्म ग्रंथों में इसी तरह की बातें लिखी हैं, परन्तु क्या मनुष्य इनका पालन करता है? यदि पालन करता तो वह 'स्व' और 'पर' के बंधन से मुक्त हो जाता। प्राणी मात्र के प्रति सह–अस्तित्व, तादाम्य भाव जुड़ जाता।

20.4.2 सह–अस्तित्व का महत्त्व

पारिवारिक जीवन में शांत सहवास से पारिवारिक जीवन सफल हो सकता है। पारिवारिक कलह के अनेक कारण हैं जैसे पीढ़ीगत भिन्नता, वैचारिक भिन्नता, स्तर की भिन्नता आदि। इनके होते हुए भी भिन्न जीवन स्तर वाले, दो पीढ़ी के लोग, दो विचारों के लोग शांतिपूर्वक रह सकते हैं। ऐसा संभव तब हो सकता है जब वे इस भिन्नता में अभिन्नता के बीज को खोज सकें। विरोध तो अक्सर होता ही है। अपेक्षा है समन्वय के प्रयोग की। यदि विरोध में समन्वय खोजा जाए तो विरोधों के बावजूद भी सह–अस्तित्व संभव हो सकता है।

समाज में समत्व के अभाव के कारण वैमनस्यता देखने को मिलती है। सांप्रदायिक और जातीय संघर्ष पुराने समय में थे। वर्तमान समय में वर्ग संघर्ष है। वर्ग संघर्ष स्वार्थ वृत्ति को खत्म किए बिना नहीं मिट सकता। स्वार्थ से ऊपर उठकर सभी व्यक्तियों में अपनत्व भाव रखें एवं सबको अपने ही समान समझें। इसी भावना के द्वारा एक साथ रहा जा सकता है। सह अस्तित्व से ही समाज सुन्दर बन सकता है।

20.4.3 विश्व शांति और सह–अस्तित्व

वर्तमान के परमाणविक युग में जब हिंसा समग्र हो गई है तो केवल दो विकल्प सामने हैं– अहिंसा या विश्व शांति या फिर महाविनाश। हिंसा की धारणा से ही सह–अस्तित्व की धारणा पुष्ट हुई है। मनुष्य जाति को यदि जीना है तो एक मात्र उपाय है– सह–अस्तित्व।

प्रमुखता की दृष्टि से सभी राष्ट्रों के स्वतंत्र होते हुए भी सामर्थ्य की दृष्टि से समानता नहीं है। कोई शक्तिशाली है तो कोई कमजोर, कोई समृद्ध है तो कोई गरीब। सभी राष्ट्रों में कुछ साम्यता है तो कुछ वैषम्यता। यदि वैषम्यता को प्रधानता दी जाए तो दूसरों को मिटाने की बात आएगी, यदि केवल साम्य को प्रधान माना जाए तो ऐकान्तिक आग्रह होगा। इसका परिणाम होगा शीतयुद्ध। अतः लोक–तंत्र और पूंजीवाद एक साथ रह सकता है क्योंकि विरोधी प्रणालियों में सह–अस्तित्व है।

20.4.4 सह–अस्तित्व के तीन सूत्र

व्यवहार के संदर्भ में सह–अस्तित्व के तीन सूत्र हैं – आश्वासन, विश्वास और अभय। सह–अस्तित्व संभव बनता है आश्वासन में। जहां एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के आश्वासन से आश्वस्त बनता है वहीं सह–अस्तित्व का विकास होता है। दूसरी बात है विश्वास की। जहां एक–दूसरे व्यक्ति के प्रति विश्वास होता है वहां तीसरी बात फलीभूत होती है अभय। इस प्रकार आश्वासन से विश्वास सुदृढ़ होता है और विश्वास से अभय का भाव पुष्ट होता है। जब इन तीनों का योग मिलता है तब सह–अस्तित्व का सूत्र व्यवहार में फलीभूत होता है। जब व्यक्ति समाज में रहता है, परिवार में रहता है तो आश्वासन, विश्वास और अभय के वातावरण का निर्माण भी आवश्यक हो जाता है।

''सब जीव समान हैं और मनुष्य जाति एक है'' अर्थात् सह अस्तित्व को व्यापक रूप देने के लिए व्यापक प्रतिष्ठा आवश्यक है। इसके लिए सह–अस्तित्व की भावना को पुष्ट करना जरूरी है। तभी वह हमारे व्यावहारिक जीवन में अवतरित होगी। यदि यह समस्या

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पुष्ट नहीं बनी तो जातिवाद की समस्या, रंगभेद की समस्या और संप्रदाय की समस्या हमेशा प्रस्तुत रहेगी और सह–अस्तित्व का सिद्धांत व्यवहार के धरातल पर फलित नहीं हो सकेगा।

20.4.5 सह–अस्तित्व की अनुप्रेक्षा

सह–अस्तित्व के मूल्य को विकसित करने का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है– सह–अस्तित्व की अनुप्रेक्षा। इसके प्रयोग के चरण इस प्रकार है –

1. महाप्राण ध्वनि — 02 मिनिट
2. लयबद्ध दीर्घ श्वास — 05 मिनिट
3. भस्त्रिका — 05 मिनिट
4. कायोत्सर्ग — 05 मिनिट
5. आनन्द केन्द्र पर चित्त को केन्द्रित कर संकल्प करें – 'मैं शांतिपूर्ण सहवास का अभ्यास करूंगा। मैं विध्वंसात्मक और आक्रामक प्रवृत्ति का समर्थन नहीं करूंगा। पांच मिनिट उच्चारणपूर्वक, पांच मिनिट मंद उच्चारण पूर्वक और पांच मिनिट मानसिक अनुचिंतन के रूप में पुनरावृत्ति करें। — 15 मिनिट
6. महाप्राण ध्वनि के साथ ध्यान संपन्न करें। — 02 मिनिट

20.5 मानवीय एकता

एकता समाज की सुरक्षा का आधार है। जहां पारंपरिक एकत्व है वहां आनन्द का निवास है। कलह दारिद्रता का लक्षण है। जिस घर, परिवार, समाज, नगर और राष्ट्र में कलह है वह पनप नहीं सकता। एकता के प्रत्यक्ष परिणाम प्रतिपल हमारे सामने रहते हैं। वस्त्र में तंतुओं का एकत्व है। जब उनमें भिन्नत्व आया, तार अलग–अलग हुए कि उलझकर स्वयं का अस्तित्व गंवा देते हैं। झाड़ू एक–एक तिनका मिलाकर ही बनती है। जब तक सब तिनके एक मुट्ठी में बंधे हुए हैं वे घर के कचरे को साफ कर देते हैं। यदि वे तिनके अलग–अलग बिखर पड़े तो जो कचरा निकालने वाले थे, वे स्वयं कचरा बन जाते हैं।

छोटे–छोटे मतभेदों को लेकर मनभेदों की दिवारें खड़ी करना महान् भूल है। मतभेदों की खाई में मनभेदों की दरारें अधिक घातक हैं। अपनी–अपनी मान्यताएं अपने–अपने पास हैं। अपनी श्रद्धा के अनुसार साधना करते हुए भी एक ऐसी भूमिका की आवश्यकता है। जिसके माध्यम से एक सामूहिक आवाज उठाई जा सके।

20.5.1 मानवीय एकता का स्वरूप

ऋग्वेद में यह भी कहा गया है– 'एकैव मानुषी जाति।' भगवान महावीर ने भी कहा– 'एक्कामणुस्सजाई' अर्थात् मानव की जाति एक ही है। 'वसुधैव कुटुंबकम्' की संकल्पना भी यहां थी। अथर्ववेद का वचन है– समान ह्रदयता, समान मानसिकता, अप्रतिकूलता का मैं तुम लोगों के लिए सृजन करता हूं; तुम एक–दूसरे के प्रति उसी प्रकार प्रीति प्रकट करो जैसे गौ अपने नवजात वत्स के लिए करती है।

रोमा रोलां के शब्दों में ''भयंकर विनाशकारी दो विश्व युद्धों ने कम से कम इस तथ्य को तो स्थापित कर ही दिया है कि प्रचण्ड आक्रमणकारी राष्ट्रीयता को समाप्त कर देना चाहिए ताकि प्रेम, दया और सहानुभूति की भूमि पर मानवीय संबंधों का विकास किया जा सके।'' टॉम पेन ने घोषित किया था– "विश्व ही मेरा देश है।" विश्वमैत्री का आदर्श लेकर चलने वाले यदि छोटी–छोटी बातों को लेकर परस्पर मन मुटाव रखें, वैमनस्य फैलाएं, अनैक्यता को प्रश्रय दें, यह सर्वथा हेय है। छोटे–छोटे मतभेदों को गौणकर समन्वय का मार्ग अपनाना चाहिए। एकता जीवन का पथ है।

भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा के अनुसार, ''शिक्षा–प्रणाली का निश्चित प्रयोजन होता है। प्रयोजन यह है कि बौद्धिक उपलब्धि के साथ–साथ नैतिक ताने–बाने में भी उत्कृष्टता और पूर्णता प्राप्त हो।''

जो शिक्षा दी जाए, उसका सतत् उद्देश्य नैतिक लक्ष्य प्राप्त करना होना चाहिए। उसके फलस्वरूप मानवता का उत्थान हो तथा वह ज्ञान–पिपासु को मानवीयता के विशुद्ध वातावरण में रहने की प्रेरणा दे। ऐसा इसलिए कि हमारे प्राचीन चिंतन–मनन में मानवता का पूर्ण निरूपण सर्वांगपूर्ण संकल्पना के रूप में किया गया था। सहिष्णुता, सद्भाव, सेवा तथा एकता की जिन भावनाओं के आधार पर धर्म निरपेक्षता, लोकतंत्र और समाजवाद की आधुनिक संकल्पनाएं टिकी हैं, उन्हें सही रूप से पहचाना गया था और उन्हें मान्यता प्रदान की गयी थी। ऋग्वेद में कहा गया है 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदंति' अर्थात् सत्य तो एक ही है, भले ही विद्वान् लोग उसे अलग–अलग प्रकार से व्यक्त करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

20.5.2 मानवता में विश्वास

मानवता में विश्वास उत्पन्न किया जाये। छात्र यह विचार कर सकें कि मानव सृष्टि का सुन्दरतम प्राणी है और वह मूल रूप से अच्छाई एवं शांति पसंद करता है। साहित्य में मानवता का आदर निहित है। कला से मानवता का विकास होता है। मानव की रचनात्मक शक्ति का इससे विकास होता है। दूरी का एवं जाति विशेष का कला पर प्रभाव नहीं पड़ता है।

रविन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार, ''मानवता को राष्ट्रीयता, सांप्रदायिकता या अन्य किसी प्रकार की संकीर्णता से ऊपर उठना चाहिए; क्योंकि इसी में उसका कल्याण है।'' अन्यत्र उन्होंने बड़े स्पष्ट शब्दों में बताया– ''उन्नति और प्रसन्नता की प्राप्ति उन्हीं लोगों को होती है जो समस्त मानव जाति में वर्तमान एक ही आत्मा के विभिन्न स्वरूपों का अनुभव करते हों।'' सन् 1916 ई. के 11 अक्टूबर को रविन्द्रनाथ टैगोर ने विदेश से भेजे हुए अपने पत्र में लिखा था– ''शांति निकेतन को समस्त जातिगत, भौगोलिक बंधनों से अलग हटाना होगा, यही मेरी इच्छा है। समस्त मानव जाति की विजय पताका यहीं गड़ेगी।''

भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने 'शिक्षा के आयाम' नामक अपनी कृति में उल्लेख किया है कि देश ने महात्मा गांधी के प्रकाशमय मार्गदर्शन का अनुसरण किया। लाखों देश भक्तों ने अपने मन में सत्य तथा अहिंसा के सशक्त मूल्यों को संजोया। सन् 1947 में हमें आजादी मिली। देश की नियति के मार्ग दर्शन के लिए हमारा अपना संविधान है। भारत लोकतंत्रात्मक गणराज्य है। हम धर्म निरपेक्षता, सहिष्णुता तथा सद्भाव के आदर्शों का पालन करते हैं। सर्वधर्म समभाव की विचारधारा तथा सर्वधर्म समभाव के पालन की धरोहर विश्व में मानवीयता की एक प्रबल शक्ति है।

महावीर ने कहा– मनुष्य कर्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय, कर्म से वैश्य और कर्म से शूद्र होता है यह तात्त्विक नहीं है, केवल व्यवहार की उपयोगिता है। मनुष्य केवल मनुष्य होता है। वह विद्याजीवी होता है तब ब्राह्मण हो जाता है। वही व्यक्ति उसी जीवन में रक्षाजीवी होकर क्षत्रिय, व्यवसायजीवी होकर वैश्य और सेवाजीवी होकर शूद्र हो जाता है। परिवर्तनशील जाति मनुष्य–मनुष्य के बीच में ऊंच–नीच और छुआछूत की दीवार खड़ी नहीं करती। श्रीमती इंदिरा गांधी ने विश्वविद्यालय के बारे में कहा था, ''विश्वविद्यालय ऐसी शिरोरेखाएं हैं, जो समूची मानवता के अतीत तथा भविष्य को आपस में जोड़ती हैं।''

डॉ. शंकरदयाल शर्मा के अनुसार, ''उत्तम शिक्षा व्यक्ति तथा वृहत्तर समाज के एकीकरण के बीच का सेतु बने।'' मानवीय एकता का ध्येय और मन की एकाग्रता का अभ्यास– यह मणि–कंचन योग है। इस पर निर्भर है समूची मानव जाति की समृद्धि और उसके सह–अस्तित्व का भविष्य।

20.5.3 मानवीय एकता की अनुप्रेक्षा

मानवीय एकता की अनुप्रेक्षा का अभ्यास इस प्रकार किया जाता है –

1. महाप्राण ध्वनि — 02 मिनिट
2. लयबद्ध दीर्घश्वास — 05 मिनिट
3. भस्त्रिका — 05 मिनिट
4. कायोत्सर्ग — 05 मिनिट
5. आनन्द केन्द्र पर ध्यान केन्द्रित संकल्प करें– 'मैं साम्प्रदायिक कट्टरता से बचूंगा। मैं विभिन्न मान्यताओं और संप्रदायों के प्रति संद्भावना का विकास करूंगा।' फिर इस संकल्प की 15 मिनिट तक पुनरावृत्ति की जाए– पांच मिनिट उच्चारण पूर्वक, पांच मिनिट मंद उच्चारण पूर्वक और पांच मिनिट मानसिक अनुचिंतन के रूप में। — 15 मिनिट
6. महाप्राण ध्वनि के साथ ध्यान संपन्न करें। — 02 मिनिट

20.6 विश्व मैत्री

विश्वमैत्री मैत्री का व्यापक रूप है। साधना की उत्कृष्ट भूमिका है। भारतीय संस्कृति में इसके विराट् स्वरूप का दिग्दर्शन होता है। जैसे कहा गया है –

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरित्तानां तु वसुधैव कुटुंबकम्।।

उपर्युक्त श्लोक से विश्वमैत्री की भावना के विकास का लक्ष्य स्पष्ट होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

20.6.1 विश्वमैत्री का अर्थ

मानव अपने विचारों, कार्यों और व्यवहारों से जब स्वत्व या अपनत्व को त्याग कर 'सर्वमयं जगत्' मानता है तो यही भावना विश्वमैत्री की भावना मानी जाती है। विश्व बंधुत्व की भावना 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' भारतीय संस्कृति का आदर्श है। भगवान् महावीर ने दशवैकालिक सूत्र में कहा है–

''सव्व भूयप्प भूयस्स, समं भूयाइं पासओ।

पिहिया सव्वस्स दंत्तस्स, पावं कम्मं न बंधई।''

अर्थात् प्राणी मात्र में अपनी आत्मा के समान समानता का अनुभव करें।

20.6.2 विश्वमैत्री का स्वरूप

भारतीय ऋषियों ने प्राणी मात्र के सुख की कामना करते हुए कहा है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ।।

अर्थात् संसार के सभी व्यक्ति सुखी हों, सभी निरोग हों, सभी का कल्याण हो और कोई भी दुःखी न हो। इस प्रकार भारतीय विचारधारा विश्व बंधुत्व से ओत–प्रोत रही है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का विश्वमैत्री का अक्षुण्ण संदेश अन्तर्राष्ट्रीयता का प्रतीक है– "Through Swaraj, We would serve the whole World." इससे प्रतीत होता है कि गांधी जी की भावना बहुत व्यापक थी। जैसा कि Young India में भी उल्लेख मिलता है कि "Gandhi's nationalism was not narrow or chauvinistic, It was essential pre-condition of sound Internationalism.

इसी परिप्रेक्ष्य में बी. सी. राय का मत है कि– ''अन्तर्राष्ट्रीयता, विश्व बंधुत्व, विश्वमैत्री, विश्व नागरिकता पर आधारित एक ऐसी भावना है जिसमें हमें केवल अपने तक ही सीमित रहने की प्रेरणा नहीं मिलती बल्कि हम विश्व नागरिकता के संबंध में विचार करते हैं। हम अपने को विश्व का एक नागरिक समझते हैं और विश्व के कल्याण के सामने निजी कल्याण की चिन्ता नहीं करते। इस भावना को बहुत ही ऊंची और पवित्र भावना कहा जा सकता है।''

भगवान् महावीर ने मैत्री का बहुत बड़ा सूत्र दिया। एक पादरी ने आचार्यश्री तुलसी से कहा– प्रभु ईशु ने कितनी बड़ी बात कही है कि अपने शत्रु के साथ भी मैत्री करो। कितनी बड़ी बात है? क्या इससे बड़ी बात हो सकती है? आचार्यश्री ने कहा– यह बड़ी बात है किन्तु भगवान् महावीर ने इससे आगे की बात कही है कि किसी को शत्रु मानो ही मत। पहले शत्रु माने फिर मैत्री करे, इससे तो अच्छा है कि किसी को शत्रु माने ही नहीं। पादरी अवाक् रह गया और उसने मैत्री के रहस्य को समझ लिया।

कुछ व्यक्तियों ने लिंकन से कहा, आपके शत्रु बहुत हैं। अभी आप सत्ता में हैं। उनको समाप्त क्यों नहीं करते? लिंकन ने कहा, उन्हें समाप्त कर रहा हूं। लोगों ने कहा– अभी तक तो किसी को जेल में नहीं डाला, फांसी नहीं दी, देश से नहीं निकाला। फिर कैसे समाप्त कर रहे हैं? लिंकन बोले, "शिष्ट व्यवहार से सबको जीत रहा हूं। कुछ ही समय में वे मेरे मित्र बन जाएंगे। फिर कोई शत्रु नहीं रहेगा। सब शत्रु समाप्त हो जाएंगे।" इस प्रकार मैत्री एक ऐसा सद्गुण है जो दूसरों के दिलों को तोड़ता नहीं जोड़ता है। यह मैत्री का महान सूत्र है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार मैत्री की भावना जागने पर अनेक समस्याएं समाहित हो जाती हैं। प्रतिदिन हमारे मन पर अनेक मैल जमा होते जा रहे हैं। उनमें सबसे क्लिष्ट मैल है शत्रुता का, द्वेष का। इस दुनिया का यह अटल नियम है कि आदमी जैसा चाहता है, वैसा होता नहीं है। इस संसार में रुचि और चिंतन का भेद है, व्यवहार और व्यवस्था का भेद है, रहन–सहन और खान–पान का भेद है, रीति–रिवाजों का भेद है ये सब भेद न रहें, यह कभी संभव नहीं है। जब तक रुचि की भिन्नता है तब भेद समाप्त नहीं हो सकते। इन भेदों के कारण हमारे मन में शत्रुता और द्वेष का भाव पनपता है, यह अवांछनीय है।

भगवान् महावीर ने कहा– दूसरे के साथ बुरा व्यवहार करने में यह देखो कि तुम्हारा स्वयं का अहित हो रहा है। दूसरे का अहित हो या नहीं, यह निश्चित नहीं है किन्तु तुम्हारा अहित निश्चित है, उसमें कोई विकल्प नहीं है। दूसरे के प्रति तुम्हारे मन में बुरा विचार आया, चाहे उसका पता किसी को न लगे, पर उसका अंकन तुम्हारे मस्तिष्कीय कोषों में हो जाएगा। उसका बुरा परिणाम तुम्हें अवश्य भोगना पड़ेगा। दूसरे का अनिष्ट करने में स्वयं का अनिष्ट है। जो इस सूत्र को पकड़ लेता है वह कभी दूसरे का अहित नहीं कर सकता। जिसके मन में मैत्री की भावना का जागरण होता है वह कभी किसी का अहित नहीं कर सकता।

भारतीयों ने 'विश्वमेकं नीडम्' मानकर अखिल विश्व को एक परिवार माना है। सबके प्रति आत्मीय या पारिवारिक भावना होने पर मन प्रफुल्ल रहता है। उसे किसी से भी भय नहीं होता। शत्रुता और भय तथा मैत्री और अभय, ये दो युगल हैं। जिसका मन भय से

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भरा होता है, वही दूसरे को शत्रु मानता है। जिसके मन में कोई भव नहीं होता, वह अनिष्ट करने वाले को अज्ञानी मान सकता है पर शत्रु नहीं मान सकता। सब जीवों के हित चिंतन का बार–बार अभ्यास करने से मैत्री का संस्कार पुष्ट होता है। 'मित्ति मे सव्वभूएसु वेरं मज्झ न केणइ' अर्थात् मेरा सबके साथ मैत्रीभाव है। कोई मेरा शत्रु नही है। आंतरिक चेतना में जैसे–जैसे यह भाव पुष्ट होता जाता है वैसे–वैसे साधक के मन में शत्रुता का भाव नष्ट होता चला जाता है। मित्र मन सर्वत्र प्रसन्न रहता है और अमित्र मन अप्रसन्न। शत्रु मन अशांत, हिंसक, घृणायुक्त और क्लिष्ट रहता है। उसमें प्रतिशोध की आग निरन्तर प्रज्वलित रहती है। मित्र–मन में ये सब दोष नष्ट हो जाते हैं।

मैत्री–भावना का साधक स्वयं अपने को कष्ट में डाल सकता है, किन्तु दूसरों को कष्ट नहीं देता। उसकी दृष्टि में पर–शत्रु जैसा कोई रहता ही नहीं। शत्रु का भाव ही अनिष्ट करता है। खलीफा अली अपने शत्रु के साथ वर्षों तक लड़ता रहा। एक दिन शत्रु हाथ में आ गया। उसकी छाती पर बैठकर भाला मारने ही वाला था, इतने में शत्रु ने मुंह पर थूक दिया। अली को एक क्षण गुस्सा आया और बोला 'आज नहीं लड़ेंगे।' लोगों ने कहा, 'कैसी मूर्खता कर रहे हो? वर्षों के प्रयास से शत्रु हाथ आया और आप छोड़ रहे हैं।' अली ने कहा–'कुरान का वचन है क्रोध में मत लड़ो' मुझे गुस्सा आ गया। शत्रु को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा–'इतने वर्षों क्या आप बिना क्रोध के लड़ रहे थे?' अली ने उत्तर दिया– हां।' शत्रु चरणों में गिर पड़ा। उसे पता ही आज चला के बिना क्रोध के भी लड़ा जा सकता है। वह मित्र हो गया। लड़ने का हेतु भिन्न हो सकता है, किन्तु क्रोध नें नहीं लड़ना यह मित्रता का परिचायक है। मैत्री भाव का जब विराट् स्वरूप सामने आता है तब द्वैत नहीं रहता। **'आयतुले पयासु'** अर्थात् प्राणियों को अपने समान देखो, यह उसका फलितार्थ है।

20.6.3 मैत्री का मनोवैज्ञानिक प्रभाव

हम इस बात को भूल गए कि मैत्री और प्रेमपूर्ण भावनाओं के द्वारा, निर्मल और पवित्र भावनाओं के द्वारा आदमी को जितना जगाया जा सकता है जितना प्रेरित किया जा सकता है, उतना कठोर व्यवहार से नहीं किया जा सकता। आज वैज्ञानिक खोजों के द्वारा नयी सच्चाईयां सामने आयी हैं कि पवित्र और सद्भावनापूर्ण भावनाओं के द्वारा पौधा को विकसित किया जा सकता है। खेती को बढ़ाया जा सकता है। फूल को और अधिक विकसित किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में पूर्ण चेतनाशील व्यक्ति को निर्मल और सद्भावनापूर्ण चेतना के द्वारा क्या विकसित नहीं किया जा सकता? क्या वह निरा पत्थर है? पत्थर को भी पवित्र भावनाओं से चैतन्य जैसा किया जा सकता है। जब बड़ी चट्टान को उठाना होता है तब पांच–सात आदमी उस चट्टान के प्रति समर्पित होकर संकल्प शक्ति के सहारे उसे उठा सकते हैं।

विनम्रता, मृदुता हर किसी को पिघला देती है। हम किसी के प्रति सद्भावना करें, प्रेमपूर्ण भावना करें, वह पिघल जाता है। गाय अधिक दूध देने लग जाती है, वृक्ष अधिक फल–फूल देने लग जाते हैं और लताएं अपनी दिशा बदल देती हैं। एक ईसाई महिला ने एक प्रयोग किया। उसने कुछ पौधे लगाए। किन्तु एक लता उन पर छा जाती, उन पौधों को ढ़क देती। पौधों को पनपने का मौका नहीं मिलता। एक दिन महिला उस लता के पास गयी और विनम्र स्वर में बोली– 'लता मुझे दुःख है कि तुझे काटना पड़ेगा। मुझे खेद है! मुझे क्षमा करना।' उस महिला ने पौधे पर छा जाने वाली लता को काट डाला। फिर लता को सुझाव दिया कि तुम अमुक दिशा में ही बढ़ते जाओ। कुछ दिनों बाद उस महिला ने देखा कि उस लता ने अपना मार्ग बदल डाला और दूसरी दिशा में बढ़ना प्रारंभ कर दिया। जब लता भी विनम्र बात सुन लेती है, पौधा भी सुन लेता है, तब आदमी हमारी भावना को क्यों नहीं सुनेगा? हमारी मृदुता को वह न समझे, यह कैसे हो सकता है? किन्तु हमने यह रूढ़ धारणा बना ली है कि आदमी पर मृदुता से शासन नहीं किया जा सकता। इस धारणा से मानवीय संबंधों में कटुता आयी है। एक आदमी दूसरे आदमी को पराया या शत्रु मानता चला जा रहा है।

20.6.4 विश्वमैत्री की आवश्यकता एवं महत्त्व

अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विशेष महत्त्व है, इसका मूल कारण है विश्व के सभी समृद्धिशाली राष्ट्र "आणविक स्पर्द्धा में व्यस्त हैं। परिणामतः बुद्धिजीवियों ने विश्व रक्षण कामना से आणविक संधि निःशस्त्रीकरण की बातें सोचीं।" विज्ञान की दृष्टि से अखिल विश्व एक है। कहीं यह विज्ञान विनाश का कारण न बन जाए इस तरह की आशंका प्रकट करते हुए बर्टेण्ड रसेल (Bettrend Russell) ने कहा था– यदि चतुर्थ विश्व युद्ध हुआ तो वह पत्थरों और लाठियों से लड़ा जाएगा क्योंकि तीसरे महायुद्ध में सभ्यता पूर्णतया नष्ट हो जाएगी और मानव इतिहास में पुनः पाषाण युग आ जाएगा।

स्टॉक होम अन्तर्राष्ट्रीय शांति अन्वेषण संस्थान ने रसेल की मान्यतता को महत्त्व दिया और कहा आगामी पांच वर्षों में परमाणु अस्त्र बनाने वाले देशों की संख्या 30 हो जाएगी। आज विश्व में 50 प्रतिशत वैज्ञानिक विनाशकारी शस्त्रों के निर्माण में संलग्न हैं और विश्व तीसरे महायुद्ध के कगार पर खड़ा है। किसी भी देश का रक्षा बजट सबसे अधिक होता है। विज्ञान अन्वेषण के नाम पर जो व्यय किया जा रहा है वह सबके रक्षा रूप में ही या विध्वंसक संयत्रों के निर्माण के लिए ही किया जा रहा है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

डॉ. शालिग्राम त्रिपाठी के अनुसार– ''अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना की आवश्यकता एवं महत्त्व बढ़ गया है। लोगों को मानवता की स्वतंत्रता, भय से मुक्ति आदि के संदेशों को देना आवश्यक है। इनसे अन्तर्राष्ट्रीयता का विकास होता है। मानव कल्याण की भावना **'वसुधैव कुटुंबकम्'** का विशेष महत्त्व है।

डॉ. भास्करानंद पाण्डेय के अनुसार ''अन्तर्राष्ट्रीयता की भारतीय भावना अपना विशिष्ट स्थान रखती है। यह अस्तित्व विश्व बंधुत्व ही है।''

20.6.5 मैत्री की आराधना – शक्ति की आराधना

शक्ति के बिना मैत्री नहीं हो सकती। मैत्री की आराधना का अर्थ है– शक्ति की आराधना। सहिष्णुता एक शक्ति है। शक्ति की जब तक उपासना नहीं होती, मैत्री का भाव स्थायी नहीं हो सकता। दूसरी बात है, शक्ति के बिना कलुषता का निरसन भी नहीं हो सकता। कमजोर आदमी दिन में सौ बार मैत्री का संकल्प करता है और शत्रुता के भाव को दिल से निकाल देता है। फिर परिस्थिति आती है और उसके चित्त पर कलुषता का भाव छा जाता है। यह चित्त का आकाश कभी निर्मल नहीं होता। उसको निर्मल करने के लिए सहिष्णुता की शक्ति चाहिए, निर्मलता की शक्ति चाहिए।

20.6.6 खमतखामणा का वास्तविक अर्थ

खमतखामणा आराधना का महत्त्वपूर्ण सूत्र है। उसका तात्पर्य है कि किसी भी व्यक्ति के प्रति तुम्हारे मन में असहिष्णुता का भाव आ जाए, कलुषता का भाव जाग जाए, उसे ज्ञात हो या नहीं, वह जाने या न जाने, किन्तु तुम अपनी ओर से क्षमा मांग लो, सहन कर लो। यह महान व्यक्तित्व की प्रक्रिया है। उससे व्यक्ति इतना विराट् बन जाता है कि उसके सामने फिर शत्रु जैसा कोई व्यक्ति नहीं होता। भगवान् महावीर को देखें। अन्यान्य साधकों को देखें। वे सब अपनी साधना के द्वारा महान बने हैं।

आराधना का महत्त्वपूर्ण सूत्र है– मैत्री का विकास। मैत्री के विकास के लिए शक्ति का विकास और शक्ति के विकास के लिए सहिष्णुता का विकास, निर्मलता का विकास। जब ये सब विकास हमारी चेतना में घटित होते हैं तब दृष्टि का रूपांतरण होता है। हम तब सचमुच इकोलॉजी के सिद्धांत की परिधि में आ जाते हैं। आज की इस नई शाखा का विकास जितना अहिंसा के जगत् में हुआ है, आज तो उसका मात्र पुनरावर्तन हो रहा है वह भी बहुत ही थोड़े अंशों में। परस्परावलंबन, सहयोग और परस्पर निर्भरता; ये सब प्रकृति के कण–कण से जुड़े हुए हैं। ये सब अहिंसा के सिद्धांत में बहुत विकसित हुए हैं। अहिंसा के विकास से विश्वमैत्री की भावना का विकास किया जा सकता है।

20.6.7 विश्वमैत्री के प्रयोग

आचार्यश्री तुलसी ने विश्वमैत्री के नौ सूत्र प्रस्तुत किए। वे इस प्रकार हैं–

1. विश्वभर में अहिंसा का प्रचार किया जाये और हिंसा के प्रति जन साधारण के हृदय में घृणा–हार्दिक घृणा उत्पन्न की जाय। 'स्वजीवन की तरह ही दूसरों को अपना जीवन प्रिय है न कि मरण।' इसका पाठ पढ़ाया जाये, जिससे विश्व शांति का बीजारोपण हो सके।
2. क्रोध, अभिमान, दंभ और असंतोष ये चारों ही अशांति के मूल हैं। जितने भी विग्रह जगत् में हैं वे सब कषायचतुष्क के ही प्रभाव मात्र हैं। इसलिए यथासाध्य इन चारों को कम करने का पूर्ण प्रयत्न किया जाये।
3. वर्तमान शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन किया जाये। भौतिक अभिसिद्धि को ही मात्र लक्ष्य न रखकर शिक्षा में आध्यात्मिकता को मुख्य स्थान दिया जाये। इसके लिए राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय चेष्टा की जाये।
4. भावी मानव की व्यवस्था नैतिक और धार्मिक तथा सदाचारपूर्ण नियमों को छोड़कर द्वेष और स्वार्थपूर्ण तथा शोषण नीति के आधार पर न की जाय।
5. वैज्ञानिक आविष्कारों का उपयोग अनियंत्रित रूप से न किया जाये। कम से कम युद्ध के लिए तो एक बारगी बंद ही कर दिया जाये। भौतिक सुखों के लिए भी यथासाध्य उनका उपयोग करने की चेष्टा कम की जाये।
6. ऐसे राष्ट्रीय प्रेम का जिससे अन्य राष्ट्रों में मनोमालिन्य होने की संभावना हो, प्रचार न किया जाये। उसकी अपेक्षा वास्तविक विश्व बंधुत्व का प्रचार अधिक से अधिक किया जाय और आर्थिक तथा राजनैतिक प्रतिद्वंद्विता को घटाने का पूर्ण प्रयास किया जाये।
7. आवश्यकता से अधिक संचय करने की चेष्टा न की जाये। पारस्परिक स्पर्द्धा, ईर्ष्या, सत्ता प्राप्ति, दूसरे की संपत्ति, स्वत्व और सौख्य को हड़पने की चेष्टा न की जाये। इसी से व्यक्ति, समाज और राष्ट्रों में अशांति हो जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8. दुर्बल, दलित जातियों और देशों पर जाति विशेष के कारण अन्याय और अत्याचार न किये जायें। न्याय, अपक्षपात और मनुष्यत्व के मूल सिद्धांत जीवन में अधिक से अधिक विकसित किए जायें।

9. बल प्रयोग, कूटनीति, आर्थिक प्रलोभन और अन्य अन्यायपूर्ण तथा कुत्सित साधनों से किसी भी मत, धर्म, सिद्धांत या विचारधारा का प्रचार न किया जाये।

उपर्युक्त सूत्रों को यदि जीवन व्यवहार में चरितार्थ किया जाता है तो विश्वमैत्री की भावना का विस्तार संभव हो सकता है।

20.7 राष्ट्रीयता

भारत में भौगोलिक, सामाजिक, भाषा, परंपरा और धर्म संबंधी विभिन्नताओं के होते हुए भी जीवन की एकता है। यह भावना भारतीय चरित्र और सामान्य व्यक्तित्व की है। इसका आधार सांस्कृतिक एकता है।

20.7.1 राष्ट्रीय एकता का अर्थ

पाठक एवं त्यागी के अनुसार– ''राष्ट्रीय एकता का सामान्य अर्थ है – देश या राष्ट्र के विभिन्न धर्मों, भाषाओं, जातियों आदि के निवासियों में देश के हित के लिए देश प्रेम एवं देश भक्ति की भावना की एकता।''

पंडित श्रीदत्त त्रिपाठी के विचारानुसार–''राष्ट्रीय एकता का अर्थ है–देश के विभिन्न राज्यों के व्यक्तियों की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भाषा विषयक विभिन्नताओं को वा छनीय सीमा के अन्तर्गत रखना और उनमें भारत की एकता का समावेश करना है।'' इस प्रकार राष्ट्रीय एकता एक मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोगों में एकता, संगठन एवं सन्निकटता की भावना, सामान्य नागरिकता की भावना और राष्ट्र के प्रति भक्ति की भावना का विकास किया जाता है।

20.7.2 राष्ट्रीय एकता के आवश्यक तत्त्व (The Essential Elements of Nationality)

मनुष्य जाति के किसी अंग में जो परस्पर एकानुभूति होती है, उसे ही राष्ट्रीयता कहा जाता है। यह एकानुभूति धर्म, नसल, भाषा, व्यवहार, रीति–रिवाज आदि की एकता व समानता के कारण उत्पन्न होती है। जब किसी राज्य के निवासी यह एकानुभूति रखते हैं तो उसे राष्ट्र कहते हैं। सत्यकेतु विद्यालंकार ने अपनी पुस्तक 'राजनीतिशास्त्र' में राष्ट्रीयता के आवश्यक तत्त्व निम्न बताए हैं–

20.7.2.1 नसल की एकता (Unity of Race) – जिन लोगों की नसल एक हो, यह स्वाभाविक है कि उनमें अपने को एक समझने की भी प्रवृत्ति हो। इतिहास के प्रारंभिककाल में जिन विविध जनों ने अपने पृथक् जनपदों व राष्ट्रों का निर्माण किया था, वे नसल की दृष्टि से एक थे। स्पार्टन, मालव आदि जनों में नसल की एकता अवश्य ही विद्यमान थी। उनमें एकानुभूति का प्रधान तत्त्व नसल ही था। पर वे जब किसी एक प्रदेश में बसकर 'जनपद' बन गए तो अपने अभिजन, निवासस्थान व मातृभूमि की एकता का भाव भी उनमें उत्पन्न हुआ। वह प्रदेश जिन किन्हीं लोगों का अभिजन हो, जिन किन्हीं की भी उसके प्रति भक्ति हो, वे सब एक हैं, यह भाव विकसित होना शुरु हुआ। इसी का यह परिणाम हुआ कि धीरे–धीरे एक जनपद में अनेक नसलों व जातियों के लोगों का निवास होने लगा और नसल का सम्मिश्रण होने पर भी लोगों में एकता की भावना बनी रही। राष्ट्रीय अनुभूति के लिए नसल एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व अवश्य है, पर मानव समाज के विकास की वर्तमान दशा में उसका महत्त्व निरंतर कम होता जा रहा है।

20.7.2.2 भाषा की एकता (Integrity of Language) – राष्ट्रीयता के विकास के लिए भाषा एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। भाषा ही एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य व मानव समुदाय अपने भावों को प्रकट करता है। विभिन्न मानवों की अपनी पृथक् संस्कृति होती है, मनुष्य के विभिन्न समुदायों के अपने–अपने आदर्श, अपनी–अपनी भावनाएं और अपने–अपने विचार होते हैं। इनकी अभिव्यक्ति के लिए भाषा ही साधनरूप होती है। दर्शन, काव्य और साहित्य में किसी विशिष्ट मानव समुदाय की अपनी विशेषताएं प्रतिबिंबित होती हैं। यह स्पष्ट है कि भाषा के बिना दर्शन, काव्य और साहित्य का विकास संभव नहीं है। भाषा एक ऐसा साधन है, जिससे मनुष्य एक–दूसरे के समीप आ जाते हैं उनमें घनिष्ठता स्थापित हो जाती है। यही कारण है कि एक भाषा को बोलने वाले लोग परस्पर एकानुभूति रखते हैं। राष्ट्रीयता की भावना के लिए भाषा का तत्त्व परम आवश्यक है। भारत में बहुत सी भिन्न–भिन्न भाषाएं हैं। फिर भी यहां के लोग अपने को एक राष्ट्र के निवासी समझते हैं। राष्ट्रीयता की भावना भारत के सब निवासियों में विद्यमान है।

पर यह मानना होगा कि भाषा की भिन्नता के कारण राष्ट्रीय एकता कुछ न कुछ निर्बल अवश्य हो जाती है। भारत में ही महाराष्ट्र, आसाम, आंध्र, पंजाब आदि के निवासियों में जो प्रान्तीय भावना कभी–कभी प्रबल हो उठती है, उसका एक मुख्य कारण भाषा की भिन्नता ही है। इसीलिए हिन्दी को भारत की राष्ट्र भाषा स्वीकार कर लिया गया है और जब इस विशाल राष्ट्र के विविध प्रदेशों में हिन्दी का भलीभांति प्रचार हो जाएगा तो राष्ट्रीयता की भावना अधिक सुदृढ़ हो सकेगी।

20.7.2.3 धर्म की एकता (Unity of Religion) – मनुष्यों को एक–दूसरे के समीप लाने के लिए धर्म का बहुत महत्त्व है। जिससे मनुष्यों का अभ्युदय हो और वे इहलोक तथा परलोक में सुख प्राप्त करें, उसे धर्म कहा जाता है। यद्यपि सब धर्मों के मूलभूत तत्त्व

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एक हैं, पर उनके बाह्य कलेवर भिन्न–भिन्न हैं। हिन्दू, इस्लाम, ईसाई, बौद्ध आदि विविध धर्मों व संप्रदायों के नैतिक सिद्धांतों व सदाचार के नियमों में विशेष भेद नहीं है, पर उनके पूजा–पाठ, विधि–विधान व विश्वासों में बहुत अन्तर है। जो लोग एक ढंग से ईश्वर की पूजा करें एक प्रकार के विधि–विधान का अनुष्ठान करें, एक प्रकार के सामाजिक व्यवहार का अनुसरण करें, उनमें यदि एकानुभूति विकसित हो जाए तो यह सर्वथा स्वाभाविक ही है। पुराने युग में धर्म राष्ट्रीयता के लिए सबसे अधिक महत्त्व रखता था।

20.7.2.4 भौगोलिक एकता (Geographical Unity)– जो लोग किसी एक ही प्रदेश में एक भाषा के साथ रहते हैं, धीरे–धीरे उनमें परस्पर संबंध बढ़ता जाता है और वे अपने को एक समझने लगते हैं। राष्ट्रीय एकता की अनुभूति के लिए भौगोलिक एकता आवश्यक होती है। एक स्थान पर देर तक बसे रहने के कारण भिन्न नसलों व भिन्न धर्मों के लोग भी उस स्थान के अन्य निवासियों के साथ एकानुभूति रखने लगते हैं। भारत के पारसी इसके उदाहरण हैं। उनकी नसल व धर्म बंबई प्रदेश के अन्य लोगों से भिन्न हैं पर भौगोलिक एकता के कारण अब वे बम्बई के हिंदुओं के सदृश भारतीय ही हो गए हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में इंग्लिश लोगों के अतिरिक्त जर्मन, ग्रीक, इटालियन, फ्रेंच, व जापानी लोग भी पर्याप्त संख्या में बसे हुए हैं, पर अमेरिका में रहने से भौगोलिक एकता के कारण वे सब अमेरिकन हो गए हैं। यही बात कनाडा में बसने वाले फ्रेंच और इंग्लिश लोगों के संबंध में भी कही जा सकती है।

ऐसे उदाहरण भी विद्यमान हैं, जब भौगोलिक एकता राष्ट्रीयता के विकास में सहायक नहीं हुई है। भारत के जो प्रवासी लोग अफ्रीका में विविध प्रदेशों में जाकर बसे हैं, वे अब भी भारतीय ही हैं। दक्षिण अफ्रीका में गौरांग यूरोपियन, भारतीय और मूल अफ्रीकन लोग बहुत समय से एक साथ बस रहे हैं, पर इन तीनों तत्त्वों ने मिलकर एक अफ्रीकन राष्ट्रीयता का विकास नहीं किया। नसल, वर्ण, धर्म आदि की भिन्नता के कारण वे एक साथ रहते हुए भी एक राष्ट्र नहीं बन सके। ऐसा ही विवेचन अन्य देशों के बारे में भी मिलता है। भारत में जो मुसलमान सदियों से बसे हुए थे, जिनकी नसल, रीति–रिवाज आदि भी अन्य भारतीयों के समान ही थे, वे भी केवल धर्मभेद के कारण अपने को पृथक् समझते रहे और भौगोलिक एकता की सर्वथा उपेक्षा कर अन्त में वे अपना पृथक् राष्ट्र बनाने में सफल हो गए।

20.7.2.5 संस्कृति और ऐतिहासिक परंपरा की एकता (Community of Culture and Traditions) – जिस समुदाय की संस्कृति, रीति–रिवाज व ऐतिहासिक परंपरा एक होती है, वह भी राष्ट्रीय एकता का अनुभव करता है। वर्तमान युग में इन तत्त्वों की राष्ट्रीय एकता के लिए अत्यधिक महत्ता है। काव्य, कला, साहित्य, संगीत, भाषा, धर्म; ये सब संस्कृति के विकास में सहायक होते हैं। जिन लोगों की संस्कृति एक होती है, वे परस्पर मिलने और साथ रहने में एक प्रकार का आल्हाद अनुभव करते हैं। इस करण उनमें जो एकतानुभूति होती हैं, वह राष्ट्रीयता का परम आवश्यक तत्त्व है। अमेरिका में रहने वाले विभिन्न जातियों के लोग एक संस्कृति को अपना चुके हैं। चीन के लोगों के अनेक धर्म हैं, पर उनकी संस्कृति एक है। यह बात, रूस, भारत आदि के संबंध में भी कही जा सकती है। जो जन समूह लंबे समय से एक साथ रहें हों, उनकी ऐतिहासिल परंपरा एक होती है। आज तमिल, गुजराती, बंगाल, तेलगू, हिन्दी आदि विवधि भाषाओं के बोलने वाले तथा अनेकविध नसलों के भारतीय लोग, जो एक राष्ट्र के रूप में संगठित हैं, उनमें जहां संस्कृति की एकता एक बडा कारण है, वहीं ऐतिहासिक परंपरा की एकता भी उसमें बहुत सहायक हुई है। ब्रिटिश लोगों के खिलाफ जब भारतीयों ने लंबे समय तक एक साथ मिलकर संघर्ष किया। देश की खातिर सबने एक साथ कुर्बानियां दीं। स्वराज्य के लिए बलिदान करने वाले क्रांतिकारियों और सत्याग्रहियों के प्रति सारा भारत एक समान आदर रखता है। ब्रिटिश काल से पूर्व राजपूतों, मराठों व सिक्खों ने अपनी स्वतंत्रता के लिए जो संघर्ष किए, उन्हें सब भारतीय एक समान अभिमान के साथ स्मरण करते हैं। भारत के जिन धर्माचार्यों, भिक्षुओं व महात्माओं ने भारतीय धर्म व सभ्यता का दूर–दूर तक विदेशों में प्रचार किया, उनके सम्मुख सब भारतीय समान रूप से सम्मान के साथ सिर झुकाते हैं। ऐतिहासिक परंपरा की यह एकता भारत में राष्ट्रीय अनुभूति के विकास के लिए परम सहायक सिद्ध हुई है।

20.7.2.6 राजनीतिक आकांक्षा की एकता (Common Political Aspirations) – जिन लोगों की नसल, भाषा, धर्म, संस्कृति आदि एक हों, उनकी यह स्वाभाविक राजनीतिक आकांक्षा होती है कि वे अपना पृथक् राज्य बनाएं। राष्ट्रीय भावना अपना मूर्तरूप 'राज्य' द्वारा ही प्राप्त करती है। 1914–18 के महायुद्ध से पूर्व पोल लोग जर्मनी, आस्ट्रिया और रूस; इन तीन राज्यों के अधीन थे। तीन विभिन्न शासनों के अधीन रहते हुए भी पोल लोगों में यह राजनीतिक आकांक्षा विद्यमान थी कि वे विदेशी शासन से मुक्त होकर अपना पृथक् व स्वतंत्र राज्य बनाएं। युद्ध की समाप्ति के बाद उनकी यह आकांक्षा पूर्ण हुई। इसी प्रकार स्लाव लोगों ने यूगोस्लाविया, मुसलमानों ने पाकिस्तान व यहूदी लोगों ने इजराइल के रूप में अपनी राजनीतिक आकांक्षा को मूर्त्त रूप दिया। राष्ट्रीयता एक भावना है, वह मनुष्यों के मानसिक चिंतन व अनुभूति का परिणाम है। इसके विपरीत राज्य एक मूर्त्त सत्ता है। जब राज्य का निर्माण राष्ट्रीय भावना के अनुसार होता है, जब मनुष्यों की मानसिक एकानुभूति राज्य में प्रतिबिंबित होती है, तब हम उसे राष्ट्र कहते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

20.7.3 राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता

डॉ. राधाकृष्णन् के विचार हैं कि– "राष्ट्रीय एकता एक ऐसी समस्या है, जिससे सभ्य राष्ट्र के रूप में हमारे अस्तित्व का घनिष्ठ संबंध है।" डॉ. राधाकृष्णन् के इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि यदि हम एक राष्ट्र के रूप में रहना चाहते हैं तो राष्ट्रीय एकता को स्वीकार करना ही पड़ेगा।

डॉ. कानूनगो के अनुसार– "भारत की जनसंख्या में असाधारण विविधता है, उसके विभिन्न भागों को एक–दूसरे से पृथक् करने वाली दूरियां बहुत लंबी हैं। उसके निवासियों के दैनिक जीवन एवं व्यवसायों को प्रभावित करने वाली एवं भौतिक दशाओं में अत्यधिक भिन्नता है और सर्वोपरि वह अति तीव्र गति से होने वाले आर्थिक, सामाजिक, प्राविधिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों के युग में से गुजर रहा है। ऐसे संक्रमण काल में भारतीयों को अत्यधिक सतर्कता से कार्य करना चाहिए। वे ऐसा तभी कर सकते हैं जब वे अपने आन्तरिक भेदभावों को निश्चित सीमाओं के अन्तर्गत रखें, आवश्यकता पड़ने पर शांतिपूर्ण विधि से उनका निपटारा करें और साथ ही सामान्य राष्ट्रीयता की भावना का विकास करें। राष्ट्रीय एकता की हर देश को हर समय आवश्यकता है परन्तु भारत को कहीं अधिक आवश्यकता है।"

20.7.4 राष्ट्रीय एकता का स्वरूप

भूतपूर्व प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में– "प्रान्तीयता और भाषा विवाद राष्ट्र के महान शत्रु हैं। असम और पश्चिम बंगाल के लोग राष्ट्रीयता का अर्थ आंचलिक राष्ट्रीयता लगाते हैं जो देश के हित के लिए महान घातक है।"

राष्ट्रीय अखंडता संबंधी प्रस्ताव पेश करते हुए तत्कालीन केन्द्रीय गृहमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने कहा था– "भारतीय सरकार और जनता किसी भी ओर से होने वाले आक्रमण को रोकने के लिए दृढ़ संकल्प है और इसके लिए सक्षम भी है।" भारत के नागरिक स्वयं का और राष्ट्र का सही मायने में हित चाहते हैं तो उन्हें छोटे–मोटे स्वार्थों का त्याग कर संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठना होगा। शासन प्रणाली को लेकर पारस्परिक मतभेद होते हुए भी उन्हें मनोभेद को मिटाकर चलना होगा।

मनोभेद को मिटाकर चलने का दृढ़ संकल्प ही बहुत कुछ अंशों में वर्तमान की समस्याओं का समाधान है। अतः भारतवासी यदि आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत आन्दोलन के इस नियम को– "मैं हत्या और तोड़फोड़ का उद्देश्य रखने वाले दल या संस्था का सदस्य नहीं बनूंगा और न ऐसे कार्यों में भाग लूंगा।" हृदय में अपना लें तो भारत की आन्तरिक स्थिति और पारस्परिक कटुता में बहुत कुछ सुधार आ सकता है और फिर दूसरों के आक्रमणों से बचने की शक्ति भी सहज ही प्राप्त हो सकती है (जैन भारती 4 जून, 1961, संपादकीय)।

'शिक्षा के आयाम' पुस्तक में भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने लिखा है– "हमारा समाज अनेकतावादी समाज है। इसलिए आवश्यक है कि सहिष्णुता और सद्भाव की प्राचीन परंपराओं को ध्यान में रखते हुए देश के नागरिकों को, उनके निर्माण–काल में, इस योग्य बनाया जाए कि वे धर्म निरपेक्षता के सही अर्थ तथा मूल्यों को आत्मसात कर सकें। हमारे देश में भूगोल, जलवायु, जाति, भाषा, धर्म, स्थानीय परंपराएं, खान–पान, परिधान और व्यवसाय आदि की व्यापक विविधताएं हैं। इसलिए शिक्षा संस्थाएं नागरिकों को इस योग्य बनाएं कि वे राष्ट्रीय अखंडता और अनेकता में व्याप्त भारत की एकता के सर्वोपरि मूल्य को समझ सकें। ऐसी राज्य व्यवस्था में, जहां आय–वितरण तथा संपदा के स्वामित्व के अवसरों में विभिन्न स्तरों की भरमार हो, यह महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य है कि नागरिक लोकतंत्र, विधि शासन और समाजवाद की संकल्पनाओं का समादर करना सीखें। आज की आवश्यकता है कि धन लोलुपता और भौतिकवाद से ग्रस्त एवं त्रस्त संसार में नागरिकों को इस योग्य बनाया जाए कि वह अपने कर्त्तव्य को समझे, राष्ट्र हित में हाथ बंटाए और व्यक्तिगत, सामाजिक तथा राष्ट्रीय सत्प्रयास के लिए अडिग नैतिक आधार की व्यवस्था करे। ऐसी परिस्थितियों में जहां–जहां निर्धनता और अभाव का साम्राज्य है और व्यक्तिगत रूप से धन–संग्रह के मिथ्या मूल्यों का बोलबाला है, अपने नागरिकों को यह सिखाना ही होगा कि वे निष्काम, निःस्वार्थ सेवा तथा श्रम की गरिमा को मान्यता दें। ऐसे युग में, जहां विज्ञान और अन्तर्राष्ट्रीय साहचर्य ने अभूतपूर्व प्रगति की है, आवश्यक है कि नागरिकों को ऐसी प्रेरणा दी जाए कि वे नई प्रौद्योगिकी तथा आधुनिकता के रचनात्मक प्रभावों को ग्रहण करें। साथ ही, अपने प्राचीन आदर्शों तथा संस्कृति के उदात्त तत्त्वों से मुंह न मोड़ें। होड़ भरी राजनीति के चंगुल में फंसे समाज में नागरिकों के मन में यह बात बिठानी ही होगी कि सर्वोदय की गांधीवादी संकल्पना का महत्त्व है और साधनों की पवित्रता और नैतिक शक्ति का प्रभाव आवश्यक है। आजादी के पचास वर्षों बाद आने वाली पीढ़ियों के हित में यह आवश्यक है कि पहले से ही कहीं अधिक मात्रा में हमारे नागरिक बलिदान, देशप्रेम और राष्ट्रवाद की उस जाज्वल्यमान भावना से ओतप्रोत हों, जो हमारे स्वाधीन संग्राम के दिनों में देदीप्यमान थी। हमारी शिक्षा प्रणाली अपने एक प्रमुख कर्त्तव्य के रूप में ऐसी प्रेरणाओं की व्यवस्था करे।"

'हरिजन' में बापू ने कहा था– "मैं कॉलिज की शिक्षा में क्रांति लाऊंगा और उसका नाता राष्ट्र की जरूरतों से जोडूंगा। विश्वविद्यालयीन शिक्षा का लक्ष्य तो यह होना चाहिए कि वह जनता के ऐसे सच्चे सेवक तैयार करें, जो केवल देश की आजादी के लिए जिएं और मरें।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सरदार पटेल विश्वविद्यालय में वल्लभभाई पटेल की जन्मशती वर्ष के समापन समारोह पर इंदिरा गांधी ने श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था– ''सरदार पटेल मुख्यतः निर्माता और संयोजक थे। सर्वप्रथम तथा सर्वोपरि वे अनुशासन और कर्त्तव्य के उपासक थें उन्हें इसका ज्ञान था कि कब भारतीय एकता और दृढ़ता का शिलान्यास किया जाना है; भले ही उसके लिए कोई भी बलिदान देना पड़े और राष्ट्रीय ध्येय के प्रति लगन व जतन की उनकी इस दृढ़ आस्था ने ही उन्हें वह बनाया, जो वे थे और उसी ने आज भारत को बनाने में हमारी सहायता की है।''

मानव की स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र और समाजवाद मानवतावादी भारतीय जीवन शैली के मूल प्रतीक हैं। ये आदर्श हमारे संविधान के तत्त्व और हमारी राष्ट्रीयता के वास्तविक आधार हैं।

20.7.5 राष्ट्रीय एकता के लिए शैक्षिक कार्यक्रम

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने राष्ट्रीय एकता के लिए देश प्रेम को विशेष महत्त्व दिया है। इस संबंध में चार महत्त्वपूर्ण पक्ष प्रस्तुत किए हैं–

1. व्यक्तिगत हित की अपेक्षा राष्ट्रीय हित को विशेष महत्त्व दिया जाये।
2. राष्ट्रीय कमजोरियों को तत्काल मान लिया जाये।
3. योग्यतानुसार लोगों को नौकरियां दी जाये।
4. सांस्कृतिक एवं सामाजिक मान्यताओं का उचित मूल्यांकन किया जाये।

उपर्युक्त शिक्षा के कार्यक्रम विभिन्न स्तरों पर इस प्रकार से होने चाहिए–

20.7.5.1 प्राथमिक स्तर पर (Primary Stage)

1. भारत में विभिन्न क्षेत्रों की कहानियों, लोकगीतों को महत्त्व दिया जाये।
2. महान पुरुषों की जीवनियों का ज्ञान कराया जाये।
3. बालकों को भूगोल के साथ सामाजिकता की शिक्षा दी जाये।
4. छात्रों को राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय गीत, राष्ट्रीय चिह्न, राष्ट्रीय त्यौहार, राष्ट्रीय पर्व आदि का ज्ञान कराया जाये।

20.7.5.2 माध्यमिक स्तर (Secondary Stage)

1. छात्रों को सांस्कृतिक एवं सामाजिक तथ्यों का ज्ञान कराया जाये।
2. वैज्ञानिक, आर्थिक एवं राष्ट्रीय चेतना के विषयों को महत्त्व दिया जाये।

20.7.5.3 विश्वविद्यालय स्तर (University Stage)

1. विचार गोष्ठियों, अध्ययन गोष्ठियों का समय–समय पर आयोजन किया जाना चाहिए।
2. देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों के अध्यापकों, छात्रों, युवकों के लिए कार्यक्रमों का आयोजन किया जाये।
3. भाषा, साहित्य, संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन किया जाये।

राष्ट्र में आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार का संकट है। ऐसी स्थिति में अध्ययन करने वाले छात्रों को, अध्ययन केन्द्रों में और जो पृथक्–पृथक् क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं, उन्हें उनकी सुविधा के अनुसार राष्ट्रीय एकता की शिक्षा की व्यवस्था की जाये ताकि लोगों को राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत किया जा सके।

पं. जवाहरलाल नेहरू के अनुसार– ''हमें स्थानीय, संकीर्ण, प्रान्तीय, साम्प्रदायिक एवं जातीय विचारों का नहीं होना चाहिए क्योंकि इसको एक महान् कार्य करना है। हम जो भारतीय गणतंत्र के नागरिक हैं, उन्हें भारतीय जनता में एकता स्थापित करनी है। हमें इस महान देश को महान राष्ट्र बनाना है, शब्द के साधारण अर्थ में महान नहीं वरन् विचार में महान, संस्कृति में महान और मानव जाति की शांति से सेवा करने में महान।''

20.7.6 सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता

कोठारी आयोग ने सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता के बल पर विशेष महत्त्व दिया है। भावनात्मक एकता एक आदर्श एकता है। राष्ट्र की एकता सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक तत्त्वों पर आधारित है।

डॉ. रामशकल पाण्डेय के अनुसार– ''एकता को प्राप्त करने के लिए राष्ट्र के भविष्य पर भरोसा करना बहुत जरूरी है। इसके लिए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में अवसरों की समानता का विकास करना पड़ता है। संपूर्ण देश से सारी जनता को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तादातम्य स्थापित करना पड़ता है और राष्ट्र में एक अच्छे और निष्पक्ष प्रशासन के लिए वचनबद्ध होना पड़ता है। राष्ट्रीय संस्कृति का इस प्रकार विकास करना राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक है।''

इस प्रसंग में शिक्षा आयोग के विचार हैं कि बुद्धिजीवियो को सच्चे अर्थ में सेवक समूह बनने का प्रयत्न करना चाहिए, जो बहुसंख्यक जनता की उन्नति का प्रयत्न करें और अपने विशेषाधिकार से चिपके हुए एक परावलंबी एवं स्वार्थी दल बनने के प्रलोभन से बच सके।

डॉ. शालिग्राम त्रिपाठी के विचार से अधोलिखित सुझाव हो सकते हैं–

1. सामाजिक, सामुदायिक एव राष्ट्रीय कार्यक्रमों को प्रोत्साहन दिया जाये।
2. राष्ट्रीय एकता के लिए उपयुक्त भाषा नीति होनी चाहिए।
3. आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास किया जाना चाहिए।
4. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा, राष्ट्रभाषा हो।
5. राष्ट्रीय चेतना का विकास होना चाहिए।
6. पाठ्यक्रम में सामाजिकता, सांस्कृतिकता, राष्ट्रीयता को विशेष महत्त्व दिया जाना चाहिए।
7. परंपरागत आधारभूत भाषा संस्कृत भाषा को ज्ञान–विज्ञान संस्कार संस्कृति के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए (शिक्षा–सिद्धांत पृष्ठ 102–3)।

25 मार्च, 2000 को चूरू में राष्ट्र संत आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने कहा कि ''हमें राष्ट्रीय प्रेम के बंधन को और मजबूत करना होगा। वर्तमान में सभी समस्याओं की मूल जड़ भारतीय एवं भारतीयता का बिखराव है। धर्म, राजनीति, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री आदि सभी को यदि समस्या का निराकरण करना है तो सबको एक मंच पर बैठना होगा।''

उपर्युक्त विवेचन के अतिरिक्त आज सबसे बड़ी आवश्यकता है– भाव परिष्कार की। भाव परिष्कार का अनुप्रयोग है– अनुप्रेक्षा। राष्ट्रीयता की अनुप्रेक्षा से हम जन–जन में राष्ट्रीय उत्तरदायित्व की भावना को पल्लवित और पुष्पित कर सकते हैं।

20.8 साम्प्रदायिक सौहार्द

धर्म जीवन का शाश्वत मूल्य है। यह एक सार्वभौम सत्ता है। आत्मसाक्षात्कार या सत्य के साक्षात्कार की प्रक्रिया का नाम धर्म है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो आत्मा ही धर्म है, सत्य ही धर्म है। धर्म एक अखंड चेतना है। इसे टुकड़ों में विभक्त करना कठिन है।

20.8.1 साम्प्रदायिक सौहार्द का अर्थ

''संप्रदाय त्र सम्यक् रूपेण ज्ञान–विज्ञानं प्रददाति इति सम्प्रदायः।'' अर्थात् सम्यक् रीति से ज्ञान विज्ञान प्रदान करने वाली संस्था का नाम संप्रदाय है। गांधी जी ने 'हिन्द स्वराज' में कहा था ''धर्म तो एक ही बिन्दु की ओर जाने वाले अलग–अलग रास्ते हैं।'' 18 सितंबर 1924 के 'यंग इंडिया' में गांधी जी ने लिखा था ''कुरान, बाइबिल, ताल्मुद, अवेस्ता और गीता जैसे अलग–अलग माध्यमों से हम 'उसे' (ईश्वर) देखते हैं। एक ही सूरज हिमालय के पर्वतों पर भी चमकता है और मैदानों पर भी।''

गांधीजी ने हरिजन, 22 सितंबर 1946 में कहा है– "You must watch my life, how I live, eat, sit, talk, behave in general. The sum toral of all these in me is my religion."

20.8.2 साम्प्रदायिक सौहार्द का स्वरूप

संप्रदाय अपने आप में कुछ नहीं है। वह तो अनेक व्यक्तियों की अध्यात्म साधना का संवाहक है, प्रेरक है। उसके मिटाने का अर्थ है– व्यक्ति–व्यक्ति के अध्यात्म को मिटाना। यह कभी संभव नहीं है। एक बार आचार्यश्री तुलसी ने कहा था "प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में एक संप्रदाय है। संप्रदाय को मिटाने का अर्थ है– व्यक्ति के अस्तित्व को मिटाना। मनुष्य मोहग्रस्त होता है। जब मोह के परमाणु तीव्र होते हैं तब वह मूढ़ बन जाता है। अपने विचारों के प्रति आसक्ति बढ़ती है और उसे केवल अपने ही विचारों में सत्य दीखता है, दूसरों के विचार उसे सत्य से भटकाने वाले प्रतीत होते हैं और वह आग्रह को लिए चलता रहता है। विचारों के प्रति मोह प्रबल होता है और वह ज्यों–त्यों दूसरों के विचारों का विरोध करता हुआ ही अपना अस्तित्व बनाए रखता है। पूर्वाग्रह से व्यक्ति भटक जाता है।" आचार्य हेमचंद्र ने भी कहा है–

कामरागस्नेहरागो ईषद्करनिवारणैः ।
दृष्टिरागस्तु पायीयान् दुरच्छेदः सतामपि।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बैंजामिन फैंकलिन ने भी कहा है– **When you are good to others, you are best to yourself.**

विचारों की विविधता बुरी नहीं होती। बुरा होता है विचारों के प्रति व्यामोह। मूढ़ व्यक्ति ही अपने अयथार्थ या क्षुद्र विचारों से चिपका हुआ रहता है और अपने निर्णय को ही सर्वोपरि मानकर दूसरों को उसी के अनुसार चलने की बात कहता है। यही संघर्ष की भूमिका है। जो व्यक्ति जहां है, उसे वे विचार अच्छे लगेंगे, यह स्वाभाविक बात है। व्यक्ति अपने विचारों को सुन्दर माने, श्रेष्ठ माने, श्रेष्ठतम भी मान ले। किन्तु उसे यह अधिकार नहीं कि दूसरों के विचारों को वह हीन या हीनतम ही माने। ऐसा मानना स्वयं ही हीनता है। परन्तु जो व्यक्ति दूसरों की हीनता दृष्टिगोचर कर अपनी महनीयता का प्रासाद खड़ा करना चाहता है वह जघन्य है। उसकी विचार संपदा निकृष्ट है और वह अपने विचारों में कभी सफल नहीं हो सकता (जैन भारती 12 नंवबर, 1961)।

स्याद्वाद के संदर्भ में समभाव का अर्थ होगा अपने भावों का समीकरण। जिसका दृष्टिकोण अनेकान्तस्पर्शी होता है, वही व्यक्ति प्रत्येक धर्म के सत्यांश को स्वीकार और असत्यांश का परिहार करने में सम रह सकता है। धर्म के विचार अनेक हैं। कोई कालवादी है, कोई स्वभाववादी। कोई ईश्वरवादी है, कोई यदृच्छावादी। कोई नियतिवादी है, कोई पुरुषार्थवादी। कोई कर्मवादी है, कोई परिस्थितिवादी। कोई प्रवृत्तिवादी है, कोई निवृत्तिवादी (जैन भारती 16 जनवरी 1966)।

सर्वधर्म सद्भाव का जो नारा है, वह मजहबों को लेकर है, क्योंकि एक युग ऐसा आया जिसमें धर्म अपनी व्यापकता को खोकर संप्रदाय अर्थ में ही रूढ़ हो गया। संप्रदायों का अस्तित्व किसी युग विशेष की देन नहीं है। यह तो विचार भेद की स्वाभाविक परिणति है। राजनीति और समाजनीति में जिस प्रकार सिद्धांत और नीति के आधार पर अलगाववादी मनोवृत्ति उभरती है, वैसे ही धर्म भी इसका अपवाद नहीं है।

किसी भी देश में अनेक जातियों, वर्गों या संप्रदायों का होना कोई समस्या नहीं है। समस्या है अपने को सर्वोच्च मानकर अन्य संप्रदायों को छोटा दिखाने या तिरस्कृत करने का मनोभाव। धार्मिक असद्भावों के बीजों का वपन इसी धरती पर होता है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो सांप्रदायिक भावना को उकसाते रहते हैं। इस काम में कट्टरतावादी और असामाजिक तत्त्वों का हाथ रहता है। सांप्रदायिक भावना जब वैमनस्य और संघर्ष का रूप लेती है तब खून खराबे की नौबत आ जाती है। इस सांप्रदायिक उन्माद ने हजारों–हजारों लोगों को मौत के घाट उतार दिया है (नैतिकता की धूप : अणुव्रत की छतरी, पृष्ठ 188–189)।

युग प्रधान आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने भी 'लोकतंत्र : नया व्यक्ति नया समाज' नामक पुस्तक में उल्लेख किया है– "धर्म और संप्रदाय एक नहीं हैं। संप्रदाय धर्म की व्याख्या अथवा संप्रेषण की गुरु परंपरा है। म्यान तलवार की सुरक्षा के लिए है किन्तु म्यान और तलवार एक नहीं हो सकती। छिलका फल की सुरक्षा के लिए है पर गुदे और छिलके को एक ही तुला से नहीं तोला जा सकता। संप्रदाय उपयोगी है पर सांप्रदायिक कट्टरता ने जो घृणा और हिंसा का ताण्डव किया है, उससे संप्रदाय का पवित्र अर्थ आज अपनी पवित्रता को बनाए नहीं रख सका।"

आस्था, रुचि या विचार में जो अन्तर है, वह समाप्त हो जाए, यह कभी संभव नहीं लगता। संभावना इतनी ही हो सकती है कि व्यक्ति अपनी धार्मिक आस्था के प्रति अडिग रहता हुआ दूसरों के प्रति सद्भाव रखे। कुछ लोग 'सर्वधर्म सद्भाव' के नाम पर गलत तत्त्वों को प्रोत्साहन देते हैं। यह धार्मिक सद्भावना की विडंबना है। सर्वधर्म सद्भाव का अर्थ इतना ही होना चाहिए कि अपने द्वारा स्वीकृत सही सिद्धांतों के प्रति दृढ़ विश्वास और दूसरे के विचारों के प्रति सहिष्णुता।

सर्वधर्म सद्भाव का विचार अनाग्रह की पृष्ठभूमि पर ही फलित हो सकता है। किसी भी व्यक्ति या संप्रदाय के सिद्धांतों पर आक्षेप करना किसी के प्रति घृणा व तिरस्कार के भाव फैलाना, किसी के साथ अवांछनीय व्यवहार करना सद्भावना की बाधाएं हैं। वैचारिक सहिष्णुता का विकास और धर्म के मौलिक सिद्धांतों को लोक जीवन में उतारने का सामूहिक प्रयत्न ये दो बातें ऐसी हैं जो धार्मिक सद्भावना की निष्पत्ति हो सकती हैं।

20.8.3 विभिन्न धर्मों में साम्प्रदायिक सौहार्द

20.8.3.1 हिन्दू धर्म – हिन्दू धर्म सभी प्राणियों के प्रति हेतुरहित दया–भाव का उपदेश देता है और सभी प्राणियों के प्रति हेतुरहित दया–भाव रखने वाला पुरुष ही दैवी सम्पदा से युक्त माना जाता है। मन–वाणी–शरीर से किसी प्रकार भी, किसी को कष्ट न देना, यथार्थ तथा प्रिय भाषण करना, अपना अपकार करने वाले पर क्रोध का न होना, किसी की भी निन्दा न करना, सब प्राणियों में हेतुरहित दया, क्षमा, धैर्य, बाहर–भीतर की शुद्धि, किसी में भी शत्रु का भाव न होना आदि हिन्दू धर्म के मौलिक तत्व हैं।

20.8.3.2 जैन धर्म – यह धर्म कर्मकाण्ड, जातिगत भेदभाव और बलिकर्म का विरोधी है। जैन धर्म व्यक्ति के अन्तःकरण एवं बाह्य शुद्धता पर जोर देता है। यह व्यक्ति के नैतिक उत्थान को महत्व देता है। व्यक्ति का विकास ही जैन धर्म का मूल उद्देश्य है। अहिंसा जैन धर्म का आधारभूत सिद्धांत है। जैन धर्म मिशनरी धर्म नहीं है। यह धर्मान्तरण द्वारा धर्म प्रसार में विश्वास नहीं करता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

20.8.3.3 बौद्ध धर्म — बुद्ध के उपदेशों में मुख्य रूप से पांच बातों पर जोर दिया गया है— 1. सत्य का आचरण करना। 2. अहिंसा का पालन करना। 3. सबके प्रति प्रेम भाव रखना 4. सभी जीवों, निर्बल व असहाय लोगों के प्रति करूणा 5. स्वावलम्बी बनना।

बौद्ध धर्म में पंचशील के बारे में बताया गया है, अर्थात— 1. किसी प्राणी की हिंसा न करना 2. चोरी न करना 3. व्यभिचार न करना 4. असत्य न बोलना 5. नशीली वस्तुओं को ग्रहण न करना।

20.8.3.4 यहूदी धर्म — यहूदी का मन्तव्य है— किसी व्यक्ति के आत्म—सम्मान को चोट न पहुंचाओ। किसी के सामने किसी व्यक्ति को अपमानित न करो। उसका अपमान करना उतना ही महान पाप है, जितना कि किसी व्यक्ति का खून करना। वह व्यक्ति दुष्ट कहलाएगा जो किसी व्यक्ति को मारने के लिए हाथ उठाता है, शक्ति के अभाव में भले ही वह न मारे। यदि तुम्हारा कोई शत्रु तुम्हें मारने के लिए तुम्हारे घर आए और यदि वह भूखा—प्यासा है, तो तुम्हारा प्रथम कर्त्तव्य है कि तुम उसे भोजन कराओ और पानी पिलाओ। प्राणिमात्र के प्रति निर्वैरभाव रखने की प्रेरणा प्रदान करते हुए यह बतलाया ग्या है कि— अपने मन में किसी के भी प्रति वैर का दुर्भाव मत रखो। बन्धुत्वभाव को विकसित करने के लिए कहा हैं— बन्धुत्व का प्रेम जाति और धर्म की सीमाओं के ऊपर है। अपने पड़ौसी से प्यार करो तथा उनके प्रति तुम्हारे मन में किसी भी प्रकार की घृणा की भावना न रहे। उनसे ईर्ष्या न करो। उनसे घृणा करना ईश्वर से घृणा करने के समान है। अपने पड़ौसियों के साथ वैसा ही व्यवहार करो, जैसा तुम अपने प्रति चाहते हो। अपने साथियों की सेवा करना यह एक प्रकार का सुकर्म है, सुकृति है। यहूदी धर्म ने मानवता पर बल दिया है तथा इसे विकसित करने के लिए ईमानदारी, ब्रह्मचर्य, सत्य, भक्ति, सद्‌गुणों को महत्वपूर्ण माना। दया और प्रेम को उन्होंने ईश्वर माना। क्रोध, विलास, अन्याय आदि दुर्गुणों को नष्ट करने की प्रेरणा दी।

20.8.3.5 इसाई धर्म — जीसस के उपदेश सीधे—सादे थे तथा मानव—जाति के कल्याण एवं प्रेम की भावना से ओत—प्रोत थे।

(1) ईश्वर एक सर्वोपरि और सर्वत्र है।

(2) ईश्वर की दृष्टि में सब समान हैं। सब भाई—भाई हो। अतः हमें सभी के प्रति एक जैसा व्यवहार करना चाहिए।

(3) प्रत्येक मनुष्य को सेवा, प्यार और अहिंसा से दूसरों के ह्रदय को जीतना चाहिए और दूसरों को कष्ट नहीं पहुंचाना चाहिए। निःस्वार्थ सेवा से स्वर्ग मिलता है।

(4) जीसस ने दीनों, दलितों एवं उपेक्षितों को असीम आशा का संदेश दिया।

(5) जीसस ने प्रेम, दया, करुणा तथा ह्रदय की पवित्रता पर बहुत अधिक बल दिया। उसने कहा कि चरित्र वाले व्यक्तियों को ही ईश्वर के राज्य में स्थान प्राप्त होता है।

(6) जीसस ने धन इकट्ठा करने की प्रवृत्ति की भी निन्दा की। उन्होंने उपदेश दिया कि धन—संचय में विश्वास करने वाले ईश्वर के राज में प्रवेश नहीं कर सकते हैं।

(7) जीसस ने शान्ति और क्षमाशीलता पर बहुत अधिक जोर दिया। उसने कहा था, "प्रतिशोध की भावना निन्दनीय है।" यदि कोई तुमसे घृणा करें, तो तुम उससे प्रेम करो।

(8) सहनशीलता—आत्म त्याग ही जीवन के ऊंचे मूल्य हैं।

20.8.3.6 इस्लाम धर्म — इस्लाम में सद्‌गुण और दुर्गुण का स्पष्ट विवेचन हुआ है। इस धर्म ने ईश्वर में विश्वास करने, धर्म—पथ प्रदर्शकों के विचारों पर आस्था रखने, निर्धनों और दुर्बलों के प्रति दया—भाव करने की सीख दी है। इसमें गाली, क्रोध, चुगली, लोभ, खून—खराबा, रिश्वत लेना, झूठा अभियोग, बेईमानी, मदिरापान, ईर्ष्या, चापलूसी, लालच, पाखण्ड, असत्य, कृपणता, अभिमान, कलंक, आत्महत्या, ब्याज लेना, हिंसा, उच्छृंखलता, युद्ध, हानिप्रद कर्म आदि को हमेशा त्याज्य माना है। इसके विपरीत भाईचारा, दान, स्वच्छता, ब्रह्मचर्य, क्षमा, मैत्री, कृतज्ञता, विनम्रता, न्याय, दया, श्रम, उदारता, प्रेम, कृपा, संयम, सुशीलता, पड़ोसीपन, ह्रदय की शुद्धता, सदाचार, धैर्य, सत्य, विश्वास आदि सद्‌गुणों को ग्रहण करने का उपदेश दिया गया है।

20.8.3.7 सिक्ख धर्म — सिक्ख धर्म में जाति पांत का भेदभाव नहीं है। सिक्ख धर्म में सभी को समानता का अधिकार है। सिक्ख धर्म सभी सिक्खों को आपस में समानता और भाईचारे के साथ रहने का संदेश देता हैं। सिक्खों के धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन में गुरूद्वारे की महत्वपूर्ण भूमिका है।

20.8.4 धार्मिक सौहार्द का महत्त्व

गणाधिपति गुरुदेवश्री तुलसी के अनुसार— "संप्रदाय का जन्म धर्म के प्रचार के लिए ही होता है, किन्तु परिणाम यह बताता है कि हर संप्रदाय ने मानवता को विभक्त किया है। आज मानवता टुकड़ों—टुकड़ों में बंट गई है। जाति के नाम पर उसके टुकड़े किए गए, भाषा के आधार पर उसके टुकड़े—टुकड़े किए गए, प्रांत, राष्ट्र के नाम पर उसके टुकड़े किए गए, राजनीतिकवादों के नाम पर उसके

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

टुकड़े—टुकड़े किए गए और सबसे अधिक दुःख इस बात का है कि जिस धर्म का उद्देश्य टूटे दिलों को जोड़ना रहा है, उस धर्म के नाम पर भी मानवता के टुकड़े किए गए।"

धर्म अपने आप में अखंड है। प्राणिमात्र की एकता और अखंडता को साधना ही उसका प्रयोजन है; किन्तु आज वह जैन, वैष्णव, वैदिक, बौद्ध, इस्लाम, क्रिश्चियन और पारसी धर्म, पता नहीं कितने—कितने टुकड़ों में बांट दिया गया है। मैं चाहता हूं, वह धर्म इन सब व्यवच्छेदक रेखाओं से मुक्त हो। मानव—मात्र के लिए उसके द्वार खुले हों और मानवीय अखंडता ही उसका सर्वोपरि लक्ष्य हो।

किसी भी संप्रदाय विशेष का उसमें कोई स्थान नहीं होगा। वैसे समस्त धर्म संप्रदायों को उसमें समान रूप से अवकाश मिलेगा। अपने—अपने सांप्रदायिक विधि—विधानों, क्रिया—कांडों और पूजा—उपासनाओं का उसी रूप से पालन करते हुए हर व्यक्ति उसमें सम्मिलित हो सकेगा। यही तो भेदात्मक स्थिति में अभेदात्मक स्वरूप की परिकल्पना है। पूजा, उपासना और क्रियाकांड की विविधता रहते हुए भी मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा हेतु सब मतैक्य से काम करें, यही उसका स्वरूप होगा (अणुव्रत गति—प्रगति पृष्ठ 129—30)।

20.8.5 सांप्रदायिक उन्माद के कारण

भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में साम्प्रदायिक उन्माद के प्रमुख कारण निम्न हैं —

1. परंपरागत शत्रुता।
2. अपने धर्म को ही श्रेष्ठ मानना।
3. दोषपूर्ण नेतृत्व।
4. सामाजिक, आर्थिक कारण।
5. राजनीतिक स्वार्थ।

20.8.5.1 परंपरगत शत्रुता — सांप्रदायिकता से विभिन्न वर्गों में आपसी द्वेष को बढ़ावा मिलता है। भारतीय इतिहास का सिंहावलोकन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि भारत आर्यों का देश था और यवनों ने आकर अपना स्थापत्य जमाया। मुसलमानों ने हिन्दुओं को मुसलमान बनाना प्रारंभ किया, परिणामस्वरूप हिंदुओं में मुसलमानों के प्रति द्वेष, घृणा, वैमनस्य एवं संकीर्णता की भावना का प्रादुर्भाव हुआ। अंग्रेजों की भी यह कूटनीति थी कि 'फूट डालो, राज करो' क्योंकि अंग्रेजों के मन में यह भय था कि कहीं हिंदु—मुस्लिम एक हो गए तो हमारा राज कर पाना मुश्किल हो जाएगा। इसी कारण से अंग्रजों ने ऐसी चालें खेलीं जिनसे हिंदू मुसलमान दोनों एक दूसरे से लड़ते रहें। अंग्रजों ने अपनी जड़ें मजबूत करने के लिए पादरियों को प्रोत्साहित किया तथा ईसाई धर्म का प्रचार—प्रसार किया। संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि संप्रदाय आज भी सांप्रदायिकता की लपटों में झुलस रहे हैं।

20.8.5.2 अपने धर्म को श्रेष्ठ मानना — सांप्रदायिक विवाद का बहुत बड़ा कारण है कि व्यक्ति अपने धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ मानता है, उसी को सम्मान देता है और दूसरे धर्मानुयायियों की निंदा करता है। यह असहिष्णुता की भावना सांप्रदायिक सौहार्द को खत्म कर देती है। कभी—कभी तो ऐसी नौबत आ जाती है कि एक संप्रदाय के लोग दूसरे संप्रदाय के लोगों को मारने—काटने पर उतर जाते हैं। परिणामस्वरूप हिंसा का तांडव नृत्य होने लग जाता है।

20.8.5.3 दोषपूर्ण नेतृत्व — दोषपूर्ण नेतृत्व सांप्रदायिकता को उकसाने का महत्त्वपूर्ण कारण बनता है। इसका उदाहरण है— हमारे देश का भारत—पाकिस्तान दो भागों में बंट जाना। 1906 में ऑल इंडिया मुस्लिम लीग की स्थापना से सांप्रदायिक राजनीति का प्रारंभ हुआ। 1937 में मुस्लिम लीग ने मुसलमानों को एकत्रित करके उनके वोट प्राप्त करने का प्रयत्न किया। तब हिंदू राजनीतिज्ञों ने भी धर्म को राजनीति का सशक्त मुखौटा बनाया और हिन्दू महासभा की स्थापना की। मुस्लिम लीग तथा हिन्दू महासभा के नेताओं ने हिन्दुस्तान के हिन्दुओं तथा मुसलमानों को जनसंख्या के आधार पर ऐसे दो विरोधी दलों में बांट दिया जो अपने—अपने धर्म के हितों के बारे में सोचते थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विभिन्न राजनीतिक दलों ने हिन्दू राष्ट्रीयता तथा मुस्लिम राष्ट्रीयता की भावना को सुदृढ़ बनाने का भरसक प्रयत्न किया। मुस्लिम सांप्रदायिकता को बढ़ाने के लिए जमात इस्लामी के नेता मौलाना मौदी के लेखों में उतना ही सांप्रदायिकता का जहर फैला हुआ प्रतीत होता है जितना कि गोलवलकर तथा बलराज मधोक के लेखों तथा भाषणों में। मुस्लिम सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने में उर्दू के समाचार—पत्रों का बहुत बड़ा हाथ है। दावत (उर्दू), मार्गदीप (मराठी) तथा रेडियेंस (अंग्रेजी) में रोज ऐसी खबरें, लेख तथा भाषण छापे जाते थे जिनको पढ़कर साधारण मुसलमान हिन्दुओं से शत्रुता का संबंध रखने की सोचने लगता। जमाते इस्लामी के बढ़ते हुए दूषित प्रभाव को रोकने के लिए मजलिसे मुशावरत की स्थापना की गयी परंतु धीरे—धीरे इसकी शााखाओं में जमात के ही आदमी घुस गए और मुशावत भी एक सांप्रदायिक संगठन बनकर रह गया।

निष्कर्षतः वोट खींचने की दौड़ में राजनीतिज्ञों ने भारत के हिदुओं तथा मुसलमानों को दो परस्पर विरोधी धर्मों, वर्गों तथा समुदायों में बांट कर रख दिया। सांप्रदायिकता की जड़ों में भारत की गंदी राजनीति के सिद्धांत छिपे पड़े हैं और बहुत से राजनीतिक दल और सामाजिक—सांस्कृतिक उत्थान कराने का दावा करने वाले संस्थान इन सिद्धांतों को खुलेआम प्रयोग कर रहे हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

20.8.5.4 सामाजिक–आर्थिक कारण

सामाजिक–आर्थिक असमानता के कारण भी सांप्रदायिकता की नींव मजबूत होती है। समाज शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में देश के जिन नगरों में 1960 तथा 1975 के मध्य बड़े–बड़े सांप्रदायिक दंगे हुए, उनके निष्कर्ष इस प्रकार हैं–

1. अधिकांश सांप्रदायिक दंगे नगरों तथा कस्बों में होते हैं।
2. इस प्रकार के दंगे नगरों के उन क्षेत्रों में होते हैं जिन्हें पिछड़ा इलाका या गंदी बस्ती कहा जाता है।
3. सांप्रदायिक दंगा करने वाले तथा इनके कोप–भाजन बनने वाले व्यक्ति अधिकांशतः गरीब वर्ग के लोग होते हैं।
4. सांप्रदायिक दंगे नगरों के उन क्षेत्रों में होते हैं जहां अज्ञान, अशिक्षा, अंधविश्वास, गंदगी, बेरोजगारी, गरीबी और बीमारियों का बोलबाला है।
5. सांप्रदायिक दंगे नगरों के उन क्षेत्रों में होते हैं जहां नागरिक जीवन अस्त–व्यस्त होता है और जहां कानून व्यवस्था के स्थान पर असामाजिक, अवैधानिक एवं अव्यवस्था का साम्राज्य होता है। सरकार तथा प्रशासन के द्वारा उचित सामाजिक–आर्थिक न्याय न पाने की स्थिति में इन वर्गों के लोग उन स्वार्थी नेताओं के चंगुल में फंसे रहते हैं जो उनकी अशिक्षा, अज्ञानता, मजबूरी तथा गरीबी का फायदा उठाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं।

20.8.5.5 राजनीतिक स्वार्थ – राजनीतिक स्वार्थ के कारण भी सांप्रदायिकता को प्रोत्साहन मिलता है। वैसे तो इस नीति का प्रवर्त्तन अंग्रेजों ने किया परंतु आजादी के बाद भी भारतीय नेताओं ने अपने स्वार्थ के कारण जाति भेद और धर्म भेद का सहारा लेकर सांप्रदायिकतावाद को बढ़ावा दिया है।

20.8.6 सांप्रदायिक निराकरण के उपाय

सांप्रदायिकता राष्ट्रीय निर्माण में बहुत बड़ी बाधा है। इस सांप्रदायिकतावाद को निरस्त करने के लिए डी. आर. गोयल ने निम्न उपाय सुझाए हैं–

1. प्रशासनिक व्यवस्था इतनी प्रभावशाली बनायी जानी चाहिए कि सांप्रदायिक तनावों का पूर्वानुमान लगाया जा सके तथा उन्हें रोकने के लिए कठोर कदम उठाए जा सकें।
2. सांप्रदायिक तत्त्वों को पहचान कर उनका भंडा–फोड़ करना चाहिए ताकि संदेह की स्थिति में जनता ऐसे तत्त्वों का साथ न दें।
3. राष्ट्रीयता के बारे में सांप्रदायिक विचारों का मुकाबला राजनीतिक प्रचार द्वारा किया जाना चाहिए। शिक्षा संस्थाओं तथा शिक्षा प्रक्रियाओं को इन तत्त्वों का विरोध करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

आचार्य विनोबा भावे ने 'सर्वोदय सामयिकी' में सांप्रदायिकता के विरोध में कुछ सुझाव दिये। वे इस प्रकार हैं–

1. सर्वत्र इस भावना को प्रोत्साहन दिया जाए कि सब धर्मों के लोग मिल–जुलकर रोज मौन प्रार्थना करें। सार्वजनिक अथवा व्यक्तिगत स्थानों पर जहां प्रार्थना आदि के कार्यक्रम होते हैं, वैसा वातावरण बनाया जाए।
2. शिक्षण में आध्यात्मिक मूल्यों का समावेश किया जाए। सांप्रदायिक या मजहबी क्रिया–कर्म भिन्न चीज है।
3. किसी भी सार्वजनिक क्षेत्र में बहुमत के आधार पर कोई प्रवृत्ति पैदा न की जाए। सारा कार्य ऐसे ढंग से हो कि अल्पसंख्यकों को अपने अल्पसंख्यक होने का भान ही न रहे।
4. धर्म विशेष से संबंध न रखने वाले व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक उत्सव–प्रसंगों में सब लोग मिल–जुलकर सहयोग करें।
5. विभिन्न धार्मिक तथा सांस्कृति उत्सवों में सब धर्मों के लोगों को सम्मिलित किया जाए। आपस में विचारों का आदान–प्रदान किया जाए और इस प्रकार एक–दूसरे के प्रति भय के वातावरण को दूर किया जाए।
6. विभिन्न धर्म वालों को, विचार वालों को और विशेषतः मुसलमानों को अध्ययन मंडल या विचार गोष्ठियां चलानी चाहिए और उनमें विभिन्न धर्मों के उसूलों का अध्ययन चिंतन हो।
7. ग्रामदान, शांति सेना तथा खादी संबंधी जो त्रिविध कार्यक्रम बना है, वह सारे देश में बिना किसी भेदभाव के फैलाया जाए।

इस प्रकार उपर्युक्त उपायों को क्रियान्विति कर सांप्रदायिकता के विषैले जहर को समाप्त किया जा सकता है।

20.8.6.1 सांप्रदायिक सौहार्द के लिए 7–सूत्रीय कार्यक्रम – राष्ट्रीय एकीकरण पर कार्यदल (The Working Group on National Integration) ने सौहार्द उपलब्ध कराने के लिए 28 नवंबर 1976 को एक 7–सूत्री कार्यक्रम बनाया तथा राष्ट्रीय सौहार्द की शक्तियों को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मजबूत बनाने के लिए अन्य अनेक दूरगामी निर्णय लिए। इस दल की कार्यवाही की अध्यक्षता तत्कालीन गृहमंत्री श्री ब्रह्मानंद रेड्डी ने की। दल की सिफारिशें इस प्रकार हैं –

1. समाज के कुछ वर्गों पर उग्रपंथियों तथा सुधार–विरोधी तत्त्वों की पकड़ को तोड़ा जाए तथा इसके लिए प्रचार माध्यम को पूरी तरह सक्रिय किया जाए।
2. आधुनिकता (Modernity) के सकारात्मक तत्त्वों (Positive elements) को जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रोत्साहित किया जाए तथा गुमराह तत्त्वों को धर्मोन्मत्त तत्त्वों की पकड़ से निकाला जाए।
3. अल्प संख्यकों के प्रति बहुसंख्यक समुदाय के रवैये में एक रचनात्मक परिवर्तन हो, ताकि अल्पसंख्यक अपनी सारी भ्रांतियों को त्यागकर राष्ट्र की मुख्य धारा में सम्मिलित हो जाएं।
4. विभिन्न धार्मिक विश्वासों और पेशों वाले लोगों को जीवन से मुक्त मेल–जोल को प्रोत्साहित किया जाए। सभी प्रकार के बिरादरीवाद समाप्त हैं तथा इस कार्य में प्रगतिशील नेताओं का उपयोग किया जाए।
5. छात्र हिंसा (Student Violence) अर्थात् छात्रों को गैर शैक्षिक (Non-academic) गतिविधियों में लिप्त करने से राजनीतिक दलों को बाज रहना चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में छात्रों की उचित मांगों पर विचार करके उन्हें पूरा किया जाना चाहिए।
6. औद्योगिक संबंध (Industrial Relation) – यद्यपि प्रबंधकों और श्रमिकों के संयुक्त परिषद् की स्थापना करने एवं हड़ताल व तालाबंदी को रोकने संबंधी अधिनियमों के पारित करने से अच्छे परिणाम मिले हैं, फिर भी उत्पादन बढ़ाने एवं हिंसा को मिटाने के उद्देश्य से एक ही श्रमिक यूनियन बनाने के लिए प्रयत्न किया जाना चाहिए।
7. उग्रपंथी (Extremist Violence) – आदिवासी क्षेत्रों के विकास पर नए सिरे से बल दिया जाए तथा इन क्षेत्रों में अपर्याप्त विकास से निपटने के लिए विशेष कदम उठाए जायें। पुलिस व प्रशासनिक तंत्र को पर्याप्त रूप से संगठित करके हर प्रकार की हिंसा, चाहे वह सांप्रदायिकता की हो या उग्रपंथी, से निपटने के लिए दीर्घकालीन समाधान निकाले जायें।
8. अल्पसंख्यक तथा उनका रोजगार (Minorities and their Employment)– अल्पसंख्यक समुदायों के बच्चों को प्रतिष्ठित एवं प्रगतिशील शिक्षा संस्थाओं में दाखिले के अवसर प्रदान किए जाएं तथा विशेष समुदायों की आवश्यकता की पूर्ति करने वाली शिक्षा संस्थाओं से उन्हें दूर रखा जाए। इन छात्रों की सहायता के लिए गैर–सांप्रदायिक संगठनों को प्रोत्साहित किया जा सकता है। बहुसंख्यक समुदायों के लोगों के उद्योगों में अल्पसंख्यकों की भर्ती हो सके, ऐसे नियम लागू किए जाएं। स्कूल–कॉलेजों में अल्पसंख्यकों के प्रति भेदभाव पर कड़ी कार्यवाही की जाए।

अणुव्रत सर्वधर्म सद्भाव का मंच है। विशुद्ध धर्म की प्रतिष्ठा ही इसका उद्देश्य है। इसीलिए यह सार्वभौम धर्म है। सभी संप्रदाय संविधान के दायरे में रहते हुए अपने में अनुशासन विकसित करें, आपस में विश्वास और समझ बढ़ाएं और एक दूसरे के साथ मुहब्बत व भाईचारे का व्यवहार करें। सांप्रदायिक सौहार्द की अनुप्रेक्षा के प्रयोग से भावों का रासायनिक परिवर्तन कर सांप्रदायिक सौहार्द की भूमिका का निर्माण करने में कामयाबी हो सकते हैं।

20.09 सारांश

प्रत्येक व्यक्ति, समूह, समुदाय एवं समाज व संस्कृति के कुछ केन्द्रीय मूल्य होते हैं जिनके आधार पर वे जीवित रहते हो। मूल्यहीन व्यक्ति एवं समूह तथा संस्कृति एवं समाज मृतक के तुल्य होते हैं। वस्तुतः किसी समाज व संस्कृति का अस्तित्व मूल्यों पर ही आधारित होता है। चाणक्य सदृश राजशास्त्रियों ने मानव अधिकारों का प्रतिनादन न कर मनुष्यों के कर्त्तव्यों का विशद् रूप से प्रतिपादन किया था, क्योंकि कर्त्तव्य की भावना के साथ अधिकारों की स्थापना स्वयमेव हो जाती है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने–अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहे, उसका अच्छी तरह पालन करे तो समाज में मर्यादा कायम रहेगी और सभी सुख व समृद्धि से संपन्न हो सकेंगे। कर्त्तव्यों का वर्गीकरण एक अन्य प्रकार से भी किया जाता है। कुछ कर्त्तव्य विधिपरक (Positive) हैं तथा कुछ निषेधपरक (Negative) हैं। मनुष्य के कर्त्तव्यों के अनेक क्षेत्र हैं। अपने आपको स्वस्थ, सुशिक्षित, सभ्य एवं सुसांस्कृतिक बनाना व्यक्ति का प्रथम कर्त्तव्य है। मनुष्य के कर्त्तव्यों के अनेक क्षेत्र हैं। सापेक्षता को समझकर ही सामंजस्य का विकास किया जा सकता है। सामंजस्य के द्वारा ही समाज की व्यवस्था और राष्ट्र की एकात्मकता संभव हो सकती है। राष्ट्रों की इकाइयां भी उपयोगिता के आधार पर बनी हैं, किन्तु वे शांतिपूर्ण जीवन तभी जी सकते हैं जब सापेक्षता के सूत्र में बंधे हुए हों। सापेक्षता इतनी जुड़ी हुई है कि कोई राष्ट्र अलग होकर अकेला नहीं जी सकता।

भगवान महावीर ने कहा कि दो विरोधी धर्म भी एक साथ रह सकते हैं। जैसे नित्य–अनित्य, अस्ति–नास्ति, सामान्य–विशेष का आपस में विरोध होते हुए भी सह–अस्तित्व है, एक साथ रहते हैं। इस जगत् में एक भी तत्त्व ऐसा नहीं है, जिसे हम कह सकें कि यह इसका सर्वथा विरोधी है या सर्वथा अविरोधी है। जिसे हम विरोधी मानते है वह अविरोधी भी है और जिसे हम अविरोधी मानते है,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वह विरोधी भी है; दोनों धर्म एक साथ चलते हैं, दोनों का सह–अस्तित्व है। दो विचारों के लोग शांतिपूर्वक रह सकते हैं। ऐसा संभव तब हो सकता है जब वे इस भिन्नता में अभिन्नता के बीज को खोज सकें। यदि विरोध में समन्वय खोजा जाए तो विरोधों के बावजूद भी सह–अस्तित्व संभव हो सकता है। एकता समाज की सुरक्षा का आधार है। रविन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार, ''मानवता को राष्ट्रीयता, सांप्रदायिकता या अन्य किसी प्रकार की संकीर्णता से ऊपर उठना चाहिए; क्योंकि इसी में उसका कल्याण है।'' भारत लोकतंत्रात्मक गणराज्य है। हम धर्म निरपेक्षता, सहिष्णुता तथा सद्भाव के आदर्शों का पालन करते हैं। सर्वधर्म समभाव की विचारधारा तथा सर्वधर्म समभाव के पालन की धरोहर विश्व में मानवीयता की एक प्रबल शक्ति है। डॉ. शंकरदयाल शर्मा के अनुसार, ''उत्तम शिक्षा व्यक्ति तथा वृहत्तर समाज के एकीकरण के बीच का सेतु बने। विश्वमैत्री मैत्री का व्यापक रूप है। साधना की उत्कृष्ट भूमिका है। भारतीय संस्कृति में इसके विराट् स्वरूप का दिग्दर्शन होता है। भारतीय ऋषियों ने प्राणी मात्र के सुख की कामना करते हुए कहा है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ।।

अर्थात् संसार के सभी व्यक्ति सुखी हों, सभी निरोग हों, सभी का कल्याण हो और कोई भी दुःखी न हो। इस प्रकार भारतीय विचारधारा विश्व बंधुत्व से ओत–प्रोत रही है। पाठक एवं त्यागी के अनुसार– ''राष्ट्रीय एकता का सामान्य अर्थ है – देश या राष्ट्र के विभिन्न धर्मो, भाषाओं, जातियों आदि के निवासियों में देश के हित के लिए देश प्रेम एवं देश भक्ति की भावना की एकता।''
मनुष्य जाति के किसी अंग में जो परस्पर एकानुभूति होती है, उसे ही राष्ट्रीयता कहा जाता है। यह एकानुभूति धर्म, नसल, भाषा, व्यवहार, रीति–रिवाज आदि की एकता व समानता के कारण उत्पन्न होती है। जब किसी राज्य के निवासी यह एकानुभूति रखते हैं तो उसे राष्ट्र कहते हैं। मानव की स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र और समाजवाद मानवतावादी भारतीय जीवन शैली के मूल प्रतीक हैं। ये आदर्श हमारे संविधान के तत्त्व और हमारी राष्ट्रीयता के वास्तविक आधार हैं। सम्यक् रीति से ज्ञान विज्ञान प्रदान करने वाली संस्था का नाम संप्रदाय है। संप्रदाय अपने आप में कुछ नहीं है। वह तो अनेक व्यक्तियों की अध्यात्म साधना का संवाहक है, प्रेरक है। किसी भी देश में अनेक जातियों, वर्गों या संप्रदायों का होना कोई समस्या नहीं है। समस्या है अपने को सर्वोच्च मानकर अन्य संप्रदायों को छोटा दिखाने या तिरस्कृत करने का मनोभाव। सांप्रदायिक भावना जब वैमनस्य और संघर्ष का रूप लेती है तब खून खराबे की नौबत आ जाती है। इस सांप्रदायिक उन्माद ने हजारों–हजारों लोगों को मौत के घाट उतार दिया है। आस्था, रुचि या विचार में जो अन्तर है, वह समाप्त हो जाए, यह कभी संभव नहीं लगता। संभावना इतनी ही हो सकती है कि व्यक्ति अपनी धार्मिक आस्था के प्रति अडिग रहता हुआ दूसरों के प्रति सद्भाव रखे। सर्वधर्म सद्भाव का अर्थ इतना ही होना चाहिए कि अपने द्वारा स्वीकृत सही सिद्धांतों के प्रति दृढ़ विश्वास और दूसरे के विचारों के प्रति सहिष्णुता।

20.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'सुधरे व्यक्ति समाज व्यक्ति से राष्ट्र स्वयं सुधरेगा'। यह वाक्य किसका है?
2. व्यवहार के संदर्भ में सह–अस्तित्व के कितने सूत्र हैं ?
3. अनेकांत का पहला तत्त्व क्या है ?
4. जैन दर्शन का ध्रुव सिद्धांत है कि मूलतः मानव जाति एक हैं यह किसने कहा?
5. एक राजधानी में सैकड़ों राष्ट्रों के दूतावास किसके प्रतीक हैं ?
6. संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसे अन्तर्राष्ट्रीय मंच से..........की चर्चा सुनाई देती है।
7. सह–अस्तित्व संभव बनता है...............में।
8. एकता समाज................का आधार है।
9. विश्व ही मेरा......................है।
10. वस्तुतः कानूनी कर्त्तव्यों का आधार भी..................ही है।
11. धर्म जीवन का................मूल्य है।
12. स्याद्वाद के संदर्भ में समभाव का अर्थ होगा अपने भावों का................।
13. ....का जन्म धर्म के प्रचार के लिए ही होता है।
14. मैत्रीभाव का...............रूप जब सामने आता है तब द्वैत नहीं रहता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

15. विज्ञान की दृष्टि से अखिल..............एक है।
16. मैत्री की आराधना का अर्थ है– शक्ति की.............. ।
17. आराधना का महत्त्वपूर्ण सूत्र है– मैत्री का................... ।
18. आचार्यश्री तुलसी ने विश्वमैत्री के............सूत्र प्रस्तुत किए।
19. राष्ट्रीय.........को तत्काल मान लिया जाय।
20. राष्ट्रीय............का विकास होना चाहिए।

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सह–अस्तित्व के स्वरूप पर प्रकाश डालें।
2. 'मानवता में विश्वास' से आप क्या समझते हैं ? स्पष्ट करें।
3. राष्ट्रीयता के स्वरूप का विवेचन करें।
4. सांप्रदायिक सद्‌भाव के महत्त्व पर प्रकाश डालें।

3. निबन्धात्मक प्रश्न

1. कर्त्तव्यनिष्ठा मूल्य का सविस्तार विवेचन करें।
2. विश्वमैत्री पर एक सारगर्भित निबंध लिखें।

20.11 संदर्भ ग्रंथ

1. जैन दर्शन के मूल सूत्र – आचार्य महाप्रज्ञ।
2. प्रेक्षाध्यान प्रयोग–पद्धति – आचार्य महाप्रज्ञ।
3. राजनीतिशास्त्र – सत्यकेतु विद्यालंकार।
4. समाजशास्त्र के सिद्धांत – श्यामधर सिंह।
5. जैन भारती, 3 जुलाई, 1966।
6. अमूर्त चिंतन – आचार्य महाप्रज्ञ।
7. अहिंसा और अणुव्रत : सिद्धांत और प्रयोग – आचार्य तुलसी, युवाचार्य महाप्रज्ञ समाकलन : मुनि सुखलाल, डॉ. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी 'रत्नेश'।
8. भारतीय संस्कृति : कुछ विचार – डॉ. राधाकृष्णन्
9. भारतीय जीवन मूल्य – सुरेन्द्र वर्मा
10. जैन भारती, 4 जून, 1961।
11. जीत आपकी – शिव खेड़ा।
12. विश्व शांति एवं अहिंसा प्रशिक्षण – डॉ. बच्छराज दूगड़।
13. शिक्षा और संस्कृति – लेखक जैनेन्द्र कुमार / ललित।
14. शिक्षा के आयाम – डॉ. शंकर दयाल शर्मा।
15. अणुव्रत गति – प्रगति – आचार्यश्री तुलसी।
16. अनैतिकता की धूप : अणुव्रत की छतरी – आचार्यश्री तुलसी।
17. अशांत विश्व को शांति का संदेश – श्रीमद् तुलसी रामजी महाराज नवमाचार्य।
18. लोकतंत्र नया व्यक्ति नया समाज – आचार्य महाप्रज्ञ।
19. शिक्षा सिद्धांत – डॉ. शालिग्राम त्रिपाठी।
20. अमूर्त चिंतन – आचार्य महाप्रज्ञ।
21. राजनीतिशास्त्र – सत्यकेतु विद्यालंकार।
22. भारतीय समाज और संस्कृति – मुकर्जी रविन्द्रनाथ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूँ–341306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

एम.ए./एम.एस–सी. (पूर्वार्द्ध)

विषय - योग एवं जीवन विज्ञान

द्वितीय पत्र :

जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान एवं मूल्यपरक शिक्षा

संवर्ग

संवर्ग 1	जीवन विज्ञान : परिचय
संवर्ग 2	जीवन विज्ञान का सैद्धान्तिक आधार
संवर्ग 3	जीवन विज्ञान का प्रायोगिक आधार : प्रेक्षाध्यान – I
संवर्ग 4	जीवन विज्ञान का प्रायोगिक आधार – II
संवर्ग 5	जीवन विज्ञान : मूल्यपरक शिक्षा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेषज्ञ समिति

1. **प्रो. ए.के. मलिक**
   आचार्य, मनोविज्ञान विभाग
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

2. **डॉ. साधना दानोरिया**
   विभागाध्यक्ष, योग विभाग
   बरकतुल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

3. **प्रो. संग्रामसिंह नाथावत**
   आचार्य, मनोविज्ञान विभाग
   नेशनल विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

4. **प्रो. जे.पी.एन. मिश्रा**
   विभागाध्यक्ष, जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान एवं योग
   जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज)

5. **डॉ. कामाख्या कुमार**
   सह–आचार्य, योग विज्ञान विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय
   शांतिकुंज – गायत्रीकुंज, हरिद्वार

6. **डॉ. समणी मल्लीप्रज्ञा**
   सहायक आचार्य, जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान एवं योग विभाग
   जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज)

लेखक

मुनि धर्मेश कुमार

डॉ समणी स्थितप्रज्ञा

संपादक

डॉ. युवराज सिंह खंगारोत

सहायक आचार्य, योग एवं जीवन विज्ञान विभाग,

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज)

कापीराइट

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

नवीन संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियां : 2000

प्रकाशक :

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं–341 306 (राज.)

Printed at

M/s Nalanda Offsets, Jaipur

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विषय सूची

क्र.सं.	अध्याय	पृष्ठ संख्या
संवर्ग 1 जीवन विज्ञान : परिचय		
इकाई 1.	ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि, स्वरूप, परिभाषा, दृष्टिकोण, लक्ष्य एवं उद्देश्य	1–15
इकाई 2.	जीवन विज्ञान के मूल तत्त्व एवं बहुआयामी शिक्षा प्रणाली	16–28
इकाई 3.	व्यक्तित्व विकास, शिक्षा एवं चिकित्सा में जीवन विज्ञान की उपयोगिता	29–45
इकाई 4.	सामाजिक जीवन, प्रशासन, उद्योग एवं पुनर्वास में जीवन विज्ञान की उपयोगिता	46–60
संवर्ग 2 जीवन विज्ञान प्रशिक्षण का सैद्धान्तिक आधार		
इकाई 5.	अनेकान्त व्यवहार : सिद्धान्त और प्रयोग	61–75
इकाई 6.	अहिंसा की अवधारणा एवं अहिंसा प्रशिक्षण	76–90
इकाई 7.	व्रत : अवधारणा एवं स्वरूप, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक आधार	91–109
इकाई 8.	मूल्य : स्वरूप, आवश्यकता एवं महत्त्व, मूल्यपरक शिक्षा और जीवन विज्ञान – समन्वित शिक्षा पद्धति एवं शिक्षण प्रक्रियाएं	110–131
संवर्ग 3 जीवन विज्ञान का प्रायोगिक आधार : प्रेक्षाध्यान - I		
इकाई 9.	प्रेक्षाध्यान : अर्थ, प्रयोजन, उपसम्पदा, स्वरूप, आधार, स्रोत, अंग एवं निष्पत्तियां	132–153
इकाई 10.	कायोत्सर्ग : प्रयोजन, आध्यात्मिक – वैज्ञानिक दृष्टिकोण, निष्पत्तियां एवं प्रक्रियां	154–171
इकाई 11.	अन्तर्यात्रा : प्रयोजन, आध्यात्मिक – वैज्ञानिक दृष्टिकोण, निष्पत्तियां एवं प्रक्रियां	172–180
इकाई 12.	श्वास प्रेक्षा : प्रयोजन, आध्यात्मिक – वैज्ञानिक दृष्टिकोण, प्रकार, निष्पत्तियां एवं प्रक्रियां	181–192

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग 4 जीवन विज्ञान का प्रायोगिक आधार : प्रेक्षाध्यान - II

इकाई 13. शरीर प्रेक्षा : प्रयोजन, आध्यात्मिक – वैज्ञानिक दृष्टिकोण, निष्पत्तियां एवं प्रक्रियां 193–204

इकाई 14. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा : प्रयोजन, आध्यात्मिक – वैज्ञानिक दृष्टिकोण, निष्पत्तियां एवं प्रक्रियां 205–213

इकाई 15. लेश्या ध्यान : प्रयोजन, आध्यात्मिक – वैज्ञानिक दृष्टिकोण, निष्पत्तियां एवं प्रक्रियां 214–225

इकाई 16. अनुप्रेक्षा : प्रयोजन, आध्यात्मिक – वैज्ञानिक दृष्टिकोण, निष्पत्तियां एवं प्रक्रियां 226–233

संवर्ग 5 जीवन विज्ञान : मूल्यपरक शिक्षा

इकाई 17. अनुप्रेक्षा द्वारा नैतिक मूल्यों का विकास : प्रामाणिकता, करुणा, आत्मानुशासन, आत्म संयम, अहिंसा, सत्य एवं अपरिग्रह 234–250

इकाई 18. इकाई–18 : अनुप्रेक्षा द्वारा मानसिक मूल्यों का विकास– चित्त की एकाग्रता, मानसिक संतुलन, मनोबल/संकल्पशक्ति, धैर्य एवं शिथिलिकरण 251–263

इकाई 19. अनुप्रेक्षा द्वारा वैयक्तिक जीवन मूल्यों का विकास : निर्लोभता, सहिष्णुता, अभय, मृदुता (विनम्रता), ऋजुता (निष्कपटता), अनासक्ति, संवेग का संतुलन, आत्म–चिंतन/आत्म विश्लेषण 264–282

इकाई 20. अनुप्रेक्षा द्वारा सामाजिक जीवन मूल्यों का विकास : कर्त्तव्यनिष्ठा, सामंजस्य, सह–अस्तित्व, मानवीय एकता, विश्वमैत्री, राष्ट्रीयता एवं साम्प्रदायिक सौहार्द 283–306

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun